UGC Care Listed

त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका

ISSN-2321-1504 Nagfani

RNI No. UTTHIN/2010/34408

वर्ष-12, अंक-42, जुलाई - सितम्बर 2022

भाग-3

नागफनी

मूल्य

₹ 150/-

अस्मिता, चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य

आगामी अंक की सूचना

अक्टूबर से दिसंबर 2022 के लिए 30 सितम्बर तक ही लेख स्वीकार किये जायेंगे। 30 सितम्बर के बाद मेल पर प्राप्त शोधालेखों पर आगामी अंक में प्रकाशित करने पर विचार किया जाएगा। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल/मोबाईल पर सूचित किया जाएगा।

"नागफनी" अस्मिता, चेतना, और स्वाभिमान जगाने वाली त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका है। इस पत्रिका को यूजीसी केयर लिस्ट मे शामिल किया गया है। पत्रिका का ISSN&2321&1504 nagfani और RNI No-UTTHIN/2010/34408 नम्बर है। साथ ही यह Peer Reviewed Referred journal है। आलेख –nagfani81@gmail-com पर भेजने का कष्ट करें। व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी।

आलेख भेजने संबंधी निर्देश–

- शोधालेख यूनिकोड kokila फॉन्ट 14 साइज में तथा एरियल युनिकोड में टाइप करके word और PDF दोनों में भेजना है।
- कलर पासपोर्ट फोटो।
- मौलिकता और प्लेगरिज्म संबंधी प्रमाण–पत्र।
- अन्य किसी टाइप फॉन्ट को स्वीकृत नहीं किया जाएगा।
- आलेख मेल पर भेजने के बाद आलेख स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना मेल पर ही दी जाएगी ।

धन्यवाद!

नागफनी

A Peer Reviewed Refereed Journal
(अस्मिता चेतना और स्वाभिमान जगाने वाला साहित्य)
UGC Care Listed त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका
ISSN-2321-1504NaagfaniRNI No.UTTHIN/2010/34408

वर्ष-12 अंक 42, जुलाई -सितम्बर 2022 भाग-3

संपादक
सपना सोनकर

सह संपादक
रूपनारायण सोनकर

कार्यकारी संपादक
डॉ.एन.पी.प्रजापति
प्रोफेसर बलिराम धापसे

सलाहकार मण्डल (Peer Review committee)

प्रोफेसर विष्णु सरवदे, हैदराबाद (तेलंगाना)
प्रोफेसर आर. जयचंद्रन तिरुअनंतपुरम (केरल)
प्रोफेसर दिनेश कुशवाह,रीवा (मध्य प्रदेश)
डॉ.एन. एस. परमार, बड़ौदा (गुजरात)
प्रो. दिलीप कुमार मेहरा, बी.बी.नगर (गुजरात)
डॉ.उमाकांत हजारिका, शिवसागर(असम)
डॉ. आर. कनागसेल्वम, इरोड (तमिलनाडु)
प्रोफेसर संजय एल. मादार,धारवाड़ (कर्नाटक)
प्रोफेसर गोबिन्द बुरसे, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ.दादा साहेब सालुनके, महाराष्ट्र (औरंगाबाद)
प्रोफेसर अलका गड़करी, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)
डॉ. साहिरा बानो बी. बोरगल, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ.बलबिंदर कौर, हैदराबाद (तेलंगाना)
डॉ.ओमप्रकाश सैनी,कैथल (हरियाना)

प्रकाशन/मुद्रण

प्रकाशक रूपनारायण सोनकर की अनुमति से डॉ.एन.पी.प्रजापति एवंम प्रोफेसर बलिराम धापसे द्वारा नमन प्रकाशन–423/Aअंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 11002 में प्रकाशन एवं मुद्रण कार्य।

मुख पृष्ठ– डॉ.आजम शेख मैत्री ग्राफिक्स,सावंगी (ह), औरंगाबाद

संपादकीय/व्यवस्थापकीय कार्यालय

दून व्यू कॉटेज स्प्रिंग रोड, मंसूरी -248179, उत्तराखण्ड, दूरभाष : 0135-6457809 मो.0941077718

शाखा कार्यालय

पी.डब्ल्यू.डी.आर-62 ए,ब्लाक कालोनी बैढन,जिला-सिंगरौली म.प्र.486886 मो. 09752998467

सहयोग राशि -150/-रुपये, वार्षिक सदस्यता शुल्क (संस्था के लिए)-1000/-रुपये, पंच वार्षिक सदस्यता शुल्क (व्यक्ति के लिए)-2000/-रुपये, पंच वार्षिक संस्था और पुस्तकालयों के लिए –3000/-रुपये, विदेशों में$50 आजीवन व्यक्ति-6000/-रुपये,संस्था-10,000/-रुपये।

सदस्यता शुल्क एवं सहयोग राशि-इंडिया पोस्ट पेमेंट बैंक- **A/C** –8367100138282 **IFSC Code**-IPOS0000001

Branch-Sidhi, NIRPAT PRASAD PRAJAPATI

नोट:-पत्रिका की किसी भी सामग्री का उपयोग करने से पहले संपादक की अनुमति आवश्यक है। संपादक-संचालक पूर्णतया अवैतनिक एवं अध्यवसायी हैं।**'नागफनी'**में प्रकाशित शोध-पत्र एवं लेख, लेखकों के विचार उनके स्वयं के हैं। जिनमेंसंपादक की सहमति अनिवार्य नहीं हैं।**'नागफनी'** से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल देहरादून न्यायालय के अधीन होंगे। अंक में प्रकाशित सामग्री के पुनर्प्रकाशन के लिए लिखित अनुमति अनिवार्य है। सारे भुगतान मनीऑर्डर, बैंक/चेक/बैंक ट्रांसफर/ई-पेमेंट आदि से किए जा सकते हैं। देहरादून से बाहर के चेक में बैंक कमीशन 50/-अतिरिक्त जोड दें।

लेख भेजने के लिए –Mail-ID- nagfani81@gmail.com
पत्रिका के बारे मे विस्तार से जानने के लिए देखें Website:–http://naagfani.com

नागफनी

वर्ष-12 अंक 42, जुलाई - सितम्बर 2022 Volume-III

अनुक्रम — पृष्ठ क्रमांक

संपादकीय 3

साहित्यिक विमर्श

1) लोक साहित्य का ऐतिहासिक परिदृश्य - रमाकान्त गौड़ 4-7
2) समकालीन संदर्भ और मध्यकालीन हिंदी कविता- डॉ. निर्मला जोशी 8-9
3) भारत में नक्सलवाद की समस्या : कारण एवं निदान- डॉ. राजेश कुमार साहू, डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय 10-15
4) हिंदी उपन्यासों में वृद्धों का संघर्ष: एक विवेचना - प्रियांषु कुमारी 16-18
5) मार्कण्डेय की कहानी और ग्रामीण जीवन - डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय 19-22
6) वैश्वीकरण हिन्दी भाषा और साहित्य- डॉ. निर्मला जोशी 23-24
7) भ्रमरगीत-परम्परा और उद्धव-शतक- पीयूष कुमार 24-28
8) हिंदी डायरी विधा : एक अंतः केन्द्रित यात्रा - अनुराग सिंह 29-31
9) संजीव के उपन्यासों के दर्दनाक गाथा की कलात्मक अभिव्यक्ति - डॉ. अम्बर कुमार चौधरी 32-34
10) भारतीय सिनेमा और तकनीक : बाहुबली फिल्म के विशेष संदर्भ में - अरुण कुमार 35-37
11) 60 के दशक की कविताओं में लोकतंत्र के मूल्य (विशेष सन्दर्भ: मुक्तिबोध, धूमिल, रघुवीर सहाय) - अंकित यादव 38-41
12) हिंदी साहित्य में लघु-पत्रिकाओं की भूमिका - जितेन्त्र कुमार 42-44
13) रामचरितमानस में मानवेतर पात्रों की उपादेयता (काकभुशुण्डि, गिद्धबंधु और जामवंत के विशेष संदर्भ में) -विमला भावनानी 45-49
14) समकालीन हिंदी गजलों में सामाजिक चेतना –प्रा.डॉ. एफ. मस्तान शाह 50-52

दलित विमर्श

1) सूत्रधार में व्यक्त स्त्री और दलित चेतना- डॉ. रामचंद्र मीणा 53-54
2) नवगीत में दलित चेतना के सशक्त हस्ताक्षर : जगदीश पंकज- डॉ. प्रवीण चंद 54-56
3) हिंदी दलित साहित्य - विष्णु 57-58
4) हिन्दी दलित आत्मकथाओं का समीक्षात्मक अध्ययन- आँचल यादव 59-62

स्त्री विमर्श

1) वृद्ध स्त्री जीवन या तिरस्कृत व्यथा : फिर लौटते हुए - प्रीतिका एन 63-65
2) परिवार की आतंरिक संरचना में स्त्री संदर्भ - रेत-समाधि - डॉ. अर्चना रानी 66-69
3) सामाजिक अंतर्संरचना और स्त्री-जीवन संदर्भ - शिकंजे का दर्द - डॉ. निरंजन महतो 70-73
4) हिन्दी उपन्यास में स्त्री का लोकतंत्र -डॉ. विनोद कुमार विश्वकर्मा 74-82
5) 'शिकंजे का दर्द' : दलित स्त्री का जीवन संघर्ष - अखिलेश यादव 83-85
6) कीर्ति शर्मा की कहानियों में व्यक्त आधुनिक स्त्री जीवन और सामाजिक समस्याओं की विवेचना- सुनीता सेरावत 86-87

किन्नर विमर्श

1) हिंदी कहानियों में किन्नर अस्मिता - डॉ. दादासाहेब सु. खांडेकर 88-89

English

1) Sight and Insight of Belonging: A Poetic Evaluation of A. K. Ramanujan's Poems - Dr. Santosh Kumar Mishra 90-94
2) Portrayal of Myth, Tradition and Female Objectification in R K Narayan's The Guide - Dr. Ashish Kumar Gupta 95-97
3) Cultural Displacement and Identity in Amitav Ghosh's Gun Island- Dr. Naveen Kumar Vishwakarma 98-102
4) Care Ethics and Rational Ethics: A Comparative Discussion- Sarbajit Mitra 103-112
5) Impact of Sports on Social adjustment & Mental ability of Soccer Players-Samir Kumar, Dr. Ayaz A. Khan 113-119
6) Unravelling the 'Infodemic : A Thematic Analysis of Misinformation Published by Indian Mainstream Media during COVID-19 - Ms. Akanksha Singh, Mr. Monu Singh Rajawat, Mr. Rajiv Pratap Singh 120-130
7) New Education Policy 2020 and the Future of India - Joyti Alune, Dr. Rajesh Kumar Sahu , Kiran Alone 131-134
8) Role of Cyanobacteria in Ecology and Food Problem - Dr. Sarvajeet Singh 135-137
9) Impact of Motor Skill Learning Aptitude on Fielding Skills of Junior National Cricket Players Playing as Specialist Batsmen - Md Shabab Baksh Qureshi, Dr. Alok Kumar Singh 138-142
10) Policy Implications of Integrating MGNREGA, PMAY, and PMGSY for Sustainable Rural Transformation- Arun Kumar 143-149
11) Effect on Aerobic Capacity and Body Mass of Soccer Players during the COVID-19 Pandemic- Samir Kumar, Dr. Ayaz A. Khan 150-154
12) Association of Motor Skill Learning Aptitude and Neuroticism in U-19 National Male Cricket Players Playing as Specialist Bowlers - Md Shabab Baksh Qureshi, Dr. Alok Kumar Singh 155-159
13) Yoga: An Ancient Practice's Evolution, Global Spread, and Modern Impact on Health and Well-being - Mr. Sunil Kumar Singh, Dr. Prashant Kumar Rai 160-167

नागफनी

वर्ष-12 अंक 42, जुलाई - सितम्बर 2022 Volume-III

अनुक्रम पृष्ठ क्रमांक

14) Unveiling the Socio-Cultural Dynamics and Communicative Behaviour of Tribal Communities in East Singhbhum District, Jharkhand: A Comprehensive Exploration.- Puja Pathak, Dr. Amrit Kumar 168-173
15) Role of Media Literacy in Combating Communal Violence - Abhijit Singh, Rajiv Pratap Singh 174-178
16) Gift of a *Pig* is a novel of science fiction. It eradicates blind faith and hypocrisy from the society - Dr. Shelly Sonkar Shah 179-181
17) India's Soft Power in International Organizations: UNESCO, WHO, and Beyond - Dr. Arvind Verma 182-186
18) Role of tourism development schemes like VCSGPSY in tourism development in the state of Uttarakhand - Rohit Joshi, Prof. B. D. Kavidayal 187-196
19) Uncovering the Secrets of Clear Writing - Dr. Sushant Chaturvedi 197-199
20) Self Seeking in Fiction - Dr. Chhaya Singh 200-202
21) Yoga -A Therapy for Mental Peace &World Betterment - Dr. Girish Kumar Vats 203-206
22) Indian Knowledge Traditions and National Education Policy 2020 - Dr. Sachin Kumar 207-210
23) Tripitaka: A Critical Study- Awadhesh Kumar Sah 211-214
24) Presentation of Women in Girish Karnad's Mythical and Folk Plays: A Case Study- Dr. Satish Kumar Prajapati 215-220

अन्य

1) शिक्षा में आई. सी. टी., ई-कामर्स का नया आयाम, विकास और जागरूकता- डॉ. अरुण कुमार चतुर्वेदी 221-223
2) औपनिवेशिक बनारस : धार्मिक सांस्कृतिक स्वरूप और हिन्दू पुनर्जागरण-डॉ. शिव नारायण 224-226
3) माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन-डा. अनिल कुमार 227-230
4) पण्डित दीनदयाल उपाध्याय : अन्त्योदय की अवधारणा-कृष्ण बहादुर यादव 231-232
5) योगपरक शिक्षा का सार्वभौमिक शैक्षिक महत्व - एक विवेचनात्मक अध्ययन- राघव कुमार वर्मा, डॉ. सुनील कुमार मिश्र 233-237
6) सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर: 21वीं सदी में भारत-चीन संबंधों का तुलनात्मक विश्लेषण- निधि सिंह 238-242
7) क्षेत्रीय पार्टियों का उदय और उनका प्रभाव : भारतीय राजनीति में एक विश्लेषण- अनिल हनवत 243-248
8) गांधी और नेहरू के विकास मॉडल की तुलना - डॉ प्रशांत कुमार 249-252
9) भारत में अवैध अप्रवासन – एक सामाजिक समस्या - श्रीमती साजिदा जमाल 253-254
10) भारतीय समाज में डॉ.भीमराव अम्बेडकर का योगदान (राजनीतिक एवं आर्थिक विचारों के विशेष संदर्भ में)-डॉ. हरिचरण अहिरवार, डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय 255-262
11) यौगिक अभ्यासों का महिलाओं एवं पुरूषों के समायोजन क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन- कु. श्वेता कुर्रे, डॉ. सुनील कुमार मिश्रा 263-267
12) पर्यावरण पर मानव व्यवहार का प्रभाव -डॉ.रश्मि जहाँ, डॉ. बोबिन्द्र 268-271
13) गृहवास्तु निर्माण में भूमि-विचार - डॉ. सर्वेन्द्र कुमार 272-274
14) ज्योतिषशास्त्र के अनुसार गृह के उत्पात एवं शांति के उपाय–सौरभ 275-278
15) भारतीय परिवेश में लैंगिक असमानता- विवाह, परिवार और समुदाय में महिलाओं पर हिंसा (एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)- डॉ. संगीता रावल 279-284
16) राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की वर्तमान समय में प्रासंगिकता - डॉ. रश्मि गुप्ता 285-288
17) भारतीय संविधान में डॉ.आंबेडकर के योगदान : एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन—शशिकान्त कुमार 289-292
18) स्वच्छ भारत अभियान के प्रति जागरुकता में प्रिन्ट मीडिया का योगदान (वाराणसी शहर से प्रकाशित प्रमुख हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों पर आधारित अध्ययन)- मनीष कुमार शुक्ल 293-303
19) लोकसभा चुनाव 2019 में बीजेपी और कांग्रेस के जन अभियान में सोशल मीडिया की भूमिका, उपयोगिता एवं प्रभाव का अध्ययन- नितिन भगौरिया 304-316
20) आश्वलयानगृह्य सूत्र में विवाह के प्रकार एवं विधि - सौरभ 317-320
21) भवभूति की दृष्टि में राम - डॉ. सर्वेन्द्र कुमार 321-324
22) भारतीय संस्कृति में तीर्थ यात्रा का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व (नदी तीर्थ गंगा के विशेष संदर्भ में)-डॉ.चंद्रशेखर पासवान 325-329
23) आंबेडकर का बौद्ध धर्म : एक समालोचनात्मक विश्लेषण---डॉ.नवीन कुमार 330-337
24) महावाक्योपनिषदि प्रतिपादिताद्वैतवेदान्तविचार: -विभाकर कुमार दीक्षित 338-340
25) भारतेन्दु का अनुवाद सिद्धांत--डॉ. अभिषेक कुमार पटेल 341-345
26) शुक्लयजुर्वेद में वर्णित चातुर्मास्य यज्ञ मीमांसा--हंसराज, डा. देवेन्द्र नाथ ओझा 346-349
27) Green Chemistry: Sustainable Synthesis And Applications Of Renewable Resources--Pooja S Pawar, 350-355
28) श्री कमलकांत त्रिपाठी कृत ऐतिहासिक उपन्यास 'पाहीघर'का कथ्य विश्लेषण-डॉ. चंद्रशेखर लमाणी 356-357
29) अनुदित साहित्यों द्वारा साहित्य का विकास.(तमिलनाडु के विशेष संदर्भ में)-डॉ. एस.प्रीति 358-360
30) नाथ साहित्य और गोरखनाथ--कपिल कुमार रंजन 361-362
31) दलित वैचारिकता एवं दलित आत्मकथा लेखन--डॉ. अब्दुल हासिम 363-366
32) राजी सेठ की कहानियों में प्रेम और सौन्दर्य की नई अवधारणा- डॉ गीता रानी,अनिता देवी 367-369
33) वैदिक प्रकृति और पर्यावरण मीमांसा--शुभम केशरी 370-373
34) A COMPREHENSIVE Examination Of Terrorism's Historical Evolution In India- Shantanu Mukharji, Dr. Vikram Singh Dr.Aprana Sharma 374-376

संपादकीय .....

दलित लेखकों को बहूत कम साहित्यिक पुरस्कार मिलते है.

साहित्य अकादमी, ज्ञानपीठ और अन्य चर्चित सरकारी और गैर सरकारी पुरस्कार बहूत कम दलित लेखकों को दिए जाते है. दलित लेखकों की बहूत किताबें चर्चा मे रहती है. UGC NET /JRF EXAMS, IAS, PCS और अन्य COMPETITIVE परीक्षाओं मे दलित लेखकों की पुस्तके लगातार स्थान पा रही हैं. उनकी स्तरीय रचनाएँ विश्व विद्यालयों के सिलेबस का भाग बन रही है . देश विदेश के विश्वविद्यालयों मे पढ़ाई जा रही हैं. शहरी और ग्रामीण भारत के उत्थान करने मे अपना अहम् रोल अदा कर रही हैं. सामजिक, आर्थिक और राजनितिक समस्याएं सरकार के सामने प्रस्तुत करने मे दलित साहित्य पूर्णतया सफल रहा हैं. यह पीड़ित, शोषित और वंचित लोगों का साहित्य हैं. यह साहित्य ऐसे लोगों की बुलंद आवाज़ हैं जो आसमान तक सुनाई पडती हैं और पूरे यूनिवर्स का चक्कर लगाती हैं. लेकिन जातिवाद और असमानता के कारण बड़े बड़े दलित लेखकों को अवार्ड पाने वालों की श्रेणी से अलग करती हैं.

अक्करमासी, झूठन, नागफनी, अपने अपने लोग , छप्पर, सूअरदान, झलकरी बाई ऐसे स्तरीय रचनाएं हैं जो राष्ट्रीय अवार्डबपाने की हक़दार हैं.

जूठन वाल्मीकि समाज की भूख की पीड़ा को सिद्दत से उकेरती हैं जो सदियों से उच्च जाति के झूठन पर जीवित हैं. उच्च जाति के लोग अपना जूठन वाल्मीकि समाज को खिलाना अपना गर्व समझते हैं. यहाँ पर मानव मानव मे कितना अधिक फर्क हैं. विश्व के किसी भी देश मे एक मानव दूसरे मानव का जूठन नही खाता हैं. झलकारीबाई उपन्यास जो जो मोहनदास नेमिसराय द्वारा लिखा गया है वह इस सत्य को उजागर करता है कि दलित विरंगनायें सवर्ण समाज की बीरंगनाओं से कम नही हैं. देश व अपनी रानी को बचाने के लिये स्वयं लड़ते हुए कुरवानी देती है.

अपने अपने लोग ऐसा उपन्यास है जो एक दलित जाति के लोग दूसरे दलित जाति के लोगों से आपस मे शादी करते हैं. जहा दलित जातियाँ अपनी ही जाति को सर्वोच्च मानती हैं दूसरी दलित जातियों को उनसे कम सनझती है. इस अंतर को इस उपन्यास मे तोड़ा गया है.. छप्पर उपन्यास मे दलितों की दयनीय व वेवस जीवन को दर्शाया गया है.उनके नशीब मे रहने के लिये केवल छप्पर ही है.

नागफनी के बारे मे तत्कालीन हंस के संपादक ने एक बड़ी व महत्वपूर्ण साहित्यिक टिप्पणी की है -" अभी तक जितनी भी दलित लेखकों की आत्मकथाएं आयी हैं उनमे हाय मार डाला की चित्तकारें सुनाई पडती हैं लेकिन नागफनी एक ऐसी आत्मकथा है जिसमे चित्तकारे नही सुनाई पडती हैं बल्कि संघर्ष है जिसको अंग्रेजी भाषा मे साइलेंट रेवोलुशन कहा जाता है." शीर्ष आलोचक नामवार सिंह ने कहा था --"नागफनी की भाषा, शैली और बिम्ब सराहनीय हैं. "सूअरदान उपन्यास को प्रोफेसर सुरेश चंद ने इक्कीसवी सदी का बेस्ट उपन्यास माना है." उपर्युक्त दलित लेखकों की इन उत्कृष्ट रचनाओं को राष्ट्रीय स्तर के सम्मानों से सम्मानित किया जाना समय की मांग है.

रुपनारायण सोनकर

लोक साहित्य का ऐतिहासिक परिदृश्य

-रमाकान्त गौड़
असिस्टेण्ट प्रोफेसर (हिन्दी)
सावित्री बाई फुले राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
चकिया-चन्दौली।

लोक, संसार का ऐसा मानस होता है जो अपनी रूचि अथवा व्यवहार में निरन्तर गतिशील एवं जीवन समूह के क्रियाकलापों को संचालित करता रहता है। लोक में सहज विवेक एवं मंगल की भावना रहती है। वह अनायास ही अनजाने में अपना परिष्कार करता रहता है। उसके कुछ ऐसे परम्पराजन्य व्यवहार और विश्वास अपना स्थान बनाये रखते हैं,जो उसकी सहज प्रकृति व तर्क के द्वारा अपनी स्थिति को कालान्तर में अधिक सुदृढ़ बना लेते हैं, जिन्हें संस्कार कहा जाता है। संस्कार और मानवीय क्रियाकलाप, विश्वास तथा दर्शन द्वारा निर्मित दो किनारे हैं, जिनसे होकर जीवन-धारा प्रवाहित होती रहती है। यही दो किनारे मनुष्य-जीवन को मर्यादित, सन्तुलित तथा नियमित होने में सहायता करते हैं। भारतीय जीवन-संस्कृति में भिन्न-भिन्न संस्कार अपने-अपने समय पर आते रहते हैं। यह इसी प्रकार के विभिन्न संस्कार भारतीय जीवन के नियामक का कार्य करते हैं। कहा जाता है कि लोक हमारे अच्छे-बुरे कर्मो को हमें तुरन्त दिखाने का कार्य करता है। लोक मानव- समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। इस शोध-लेख में इन्ही से सम्बन्धित समाज के ऐतिहासिक परिदृश्य को खोजने का प्रयास किया गया है। जैसे- रस्म-रिवाज, रहन-सहन, वेशभूषा, आचार-विचार, लोक-विश्वास इत्यादि।

मुख्य शब्द- परिष्कृत, रूचि-सम्पन्न, पोथियाँ, कामगार, धर्मग्रन्थ, अनुसन्धानकर्ता, बंजरवा, लोक साहित्य, बैलेड, सिविलियन, लोक-संस्थान, इसाई मिशनरियाँ इत्यादि।

लोक साहित्य का तात्पर्य उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोक साहित्य उतना प्राचीन है जितना कि मानव प्राचीन है। इसी कारण लोक साहित्य में जन-जीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, समय और प्रकृति सभी कुछ समाहित है। इस सम्बन्ध में डॉ0 सत्येन्द्र कहते हैं कि "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पाण्डित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।

अर्थात् साधारण जनता से सम्बन्धित साहित्य को लोक साहित्य कहना चाहिए। क्योंकि साधारण जन-जीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है। किसी भी देश अथवा क्षेत्र का लोक साहित्य वहाँ की आदिकाल से लेकर अब तक की उन सभी प्रवृत्तियों का प्रतीक होता है जो साधारण जन स्वभाव के अन्तर्गत आती है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी जनपद पुस्तक में कहा है कि "लोक शब्द का अर्थ जन-पद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नही है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रूचिसम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारिता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तु मे आवश्यक होती है उन्हे उत्पन्न करते हैं।"

अतः स्पष्ट होता है कि डॉ0 हजारी प्रसाद जी मजदूर, कामगार, किसान, एवं अन्य ग्रामीण जनता जो अभिजात तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए जीवन यापन करती है जिनका

साहित्य परम्परागत रूप से मौखिक रहता है। उन्हे लोक साहित्य में समाहित करते हैं।

लोक साहित्य का संकलन एवं संपादन कार्य लोक साहित्य का अध्ययन प्राचीन काल से नृविज्ञान और पुरातत्व के अध्ययन के लिए यूरोप में किया जाता रहा है। 17 वीं शताब्दी में जान आब्रे ने 'रिमेंस आफ जेंटिलिज्म एण्ड जुडाइज्म' और 'पापुलर एक्टिविटिज' नामक दो पुस्तकों के द्वारा लोक साहित्य के अध्ययन की तरफ सबका ध्यान आकर्षित किया। तत्पश्चात् धर्मग्रन्थ एवं भाषा विज्ञान के लिए भी लोक साहित्य के अध्ययन की शुरूआत होने लगी। धीरे-धीरे सम्पूर्ण विश्व में लोक साहित्य का अध्ययन शुरू होने लगा।

भारत में लोक साहित्यके अध्ययन की ओर दृष्टि 19वीं शताब्दी के आरम्भ में गई, जबकि अंग्रेजी शासन की नींव हमारे देश में जम गयी थी। 18वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में (सन् 1784 ई0) सर विलियम जोन्स ने कलकत्ता (वर्तमान में कोलकाता) में 'एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल' नामक शोध संस्थान की स्थापना की। तत्पश्चात 19वीं शताब्दी में कुछ योग्य विद्वान अंग्रेज शासकों ने भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी जिज्ञासा प्रकट की और इस क्षेत्र में कार्य करना शरू किया। बस, यहीं से हमारे देश में लोक साहित्य के अध्ययन की नींव पड़ी।

भारतीय लोक साहित्य के अनुसंधानकर्ताओं में दो प्रकार के लोग दृष्टिगोचर होते है।

अंग्रेज सिविलियन

ईसाई मिशनरी

अंग्रेज सिविलियन इस देश पर शासन करने आये थे और ईसाई मिशनरी को ईसाई धर्म का प्रचार करने हेतु बुलाया गया था। परन्तु दोनो यह अच्छी तरह समझते थे कि जब तक इस देश की विभिन्न भाषाओं तथा साहित्यों का सम्यक अध्ययन नहीं किया जाता तब तक जनता से सम्पर्क नहीं हो सकता। क्योंकि धर्म प्रचार करने हेतु साधारण जनता को भाषा और साहित्य को जानना अत्यन्त आवश्यक है। अतः इन दोनों ने भारतीय भाषा एवं साहित्य का सम्यक ज्ञान प्राप्त किया और साधारण जनता से भी अपना सम्पर्क स्थापित किया।

भारतीय लोक साहित्य का प्रारम्भिक अध्ययन करने वाले अंग्रेज सिविलियन थे। जिनमें कर्नल जेम्स टाड ने इस कार्य का शुभारम्भ किया। कर्नन टाड राजस्थान के कई देशी राज्यों में रेजिडेण्ट था। जिससे उसे वहाँ के स्थानीय इतिहास रस्म-रिवाज, रहन-सहन, वेश -भूषा, आचार-विचार, आदि के अध्ययन का अधिक अवसर प्राप्त हुआ था। जिससे 1829 ई0 में 'एनल्स एण्ड ऐक्टिविटिज आफ राजस्थान' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रकाशित किया। भारतीय लोक साहित्य के अध्ययन का प्रथम प्रयास इसी ग्रन्थ से मानना चाहिए क्योंकि इस पुस्तक से राजस्थान में प्रचलित विभिन्न लोक गाथाओं वीरगीतों आदि का विवेचन किया गया है। हिल्सप नामक पादरी ने मध्यप्रदेश की जंगली जातियों का अध्ययन किया। इसी लेख को 1866 में हेमपुल ने संपादित कर प्रकाशित करवाया था।

दक्षिण भारत के लोकगीतों पर चार्ल्स ई0 कोंवर ने 1871 ई0 में एक पुस्तक फोकसांग्स आफ सदर्न इण्डिया संपादित की। भारतीय लोकगीतों का यह सर्वप्रथम संग्रह है, जिसमें कन्नड़, कुर्ग, तेलगू, मलयालम तथा कूरल के लोकगीतों का अंग्रेजी अनुवाद किया गया था। इसी प्रकार पंजाब, पश्चिम बंगाल, बिहार आदि रियासतों में लोक साहित्य के अध्ययन को गति प्राप्त होने लगी।

भारतीय लोक कथाओं तथा लोकगीतों के संग्रहकर्ताओं में जार्ज ग्रियर्सन का नाम लोकप्रिय है। ग्रियर्सन भाषा विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान थे। 'लिग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया' आपकी प्रसिद्ध रचना है। इन्होने 1884 ई0 में बिहारी लोकगीतों का संग्रह 'सम बिहारी फोकसांग नामक पुस्तक में किया। 1886 ई0 में अपने क वृहद लेख में विरहा, जैतसार, सोहर आदि लोकगीतों का संकलन प्रस्तुत किया। इन्होने विजयमल, गोपीचन्द, आल्हा का विवाह आदि लोकगाथाओं पर अपने लेख छपवाये। ग्रियर्सन जी के काव्य संग्रह की विशेषता यह है कि इन्होने लोकगीतों का मूल पाठ भी दिया और उसका अंग्रेजी अनुवाद भी 1889 ई0 में 'नयका वनजरवा' नामक गीत जर्मनी की प्रसिद्ध पत्रिका में छपवाया। भारतीय लोक

साहित्य तथा लोक संस्कृति के प्रथम दौर के संग्रह तथा संरक्षण के क्षेत्र में विलियम क्रुक, जे0डी0 एण्डरसन, लाफ्रेनैस, स्वीनटर्न, पं0 राम गरीब चैबे, आदि का नाम उल्लेखनीय है।

सन् 1920 ई0 तक लोक साहित्य की प्रचुर सामाग्री एकत्रित, संपादित और प्रकाशित हो चुकी थी। परन्तु अधिकांश शोधकार्य विदेशी विद्वानों द्वारा किया गया था। 1920 ई0 के बाद विभिन्न प्रान्तों में भारतीय विद्वान अपने लोक साहित्य की रक्षा में जुट गये। अपने अथक परिश्रम द्वारा साहित्य एवं संस्कृति की रचना की। जैसे बंगाल में डॉ0 दिनेश चन्द्र सेन, बिहार में रायबहादुर शरच्चन्द्र राय, उ0प्र0 में पं0 रामनरेश त्रिपाठी गुजरात में झवेरचन्द्र मेघाणी, आदि विद्वानों ने इस कार्य को अपने हाथें में लिया और अपना सम्पूर्ण जीवन लोक साहित्य की सेवा हेतु लगा दिया।

बंगाल में डॉ0 आशुतोष मुखर्जी ने लोक साहित्य की रक्षा के लिए प्रशंसनीय कार्य किया इन्ही की प्रेरणा से प्रेरित होकर डॉ0 दिनेश चन्द्र सेन ने 1920 के आसपास पूर्वी बंगाल के मेमन सिंह जिले के लोक गीतों का संकलन तथा उसका अंग्रेजी अनुवाद 'ईस्टर्न बंगाल वैलेड्स' नामक पुस्तक में प्रकाशित करवाया और इनके बंगला लोक साहित्य के भाषाओं का प्रकाशन 'फोक लिटरेचर आफ बंगाल' के नाम से हुआ। इनके पहले 1919 में श्री योगीन्द्रनाथ सरकार ने 'खुकूमणीर छडां' तथा 'बंगला व्रत' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका था। इन लोगों के अतिरिक्त बंगाल में श्री अवनिन्द्र नाथ ठाकुर, मु0 मनसूरूद्दीन (बंगलार वाडल), आदि विद्वानों ने बंगला लोक साहित्य पर महत्वपूर्ण कार्य किया।

गुजराती लोक साहित्य के अग्रणी एवं एकान्त साधक श्री झबेरचन्द मेघाणी का कार्य अत्यन्त सराहनीय रहा है। मेघाणी जी गुजराती लोकगीतों, लोक कथाओं, शिशुगीतों (पालने के गीत), वीरगाथाओं आदि का सुन्दर एवं विशाल संग्रह प्रस्तुत किया।

बिहार की मुंडा, उराँव विरसौर आदि आदिम जातियों पर गम्भीर कार्य करने वाले प्रसिद्ध शोध प्रत्रिका 'मैन इन इण्डिया' के संपादक श्री शरच्चन्द्र राय का कर्य अत्यन्त महत्वपूर्ण, प्रशंसनीय और मौलिक है। आपकी पुस्तकें 'द मुंडाज एण्ड देयर कन्ट्री' 'द विरसोर्स', 'उराँव रिलीजन एण्ड कास्ट', खारीज, द हिल्स भुडसाज आफ ओरीसी, आदि विहार के लोक सहित्य पर अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

भोजपुरी लोक साहित्य के क्षेत्र में पं0 रामनरेश त्रिपाठी, श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय आदि का कार्य अत्यन्त सराहनीय रहा है। पं0 राम नरेश त्रिपाठी और देवेन्द्र सत्यार्थी ने भारत के कई प्रान्तों में भ्रमण करके कई हजार गीतों का संकलन किया। पं0 त्रिपाठी ने सन् 1929 ई0 में 'कविता' कौमुदी (पाँच भागों में) ग्राम गीतक प्रकाशन किया, जिसमें उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी विहार के लोकगीतों को संकलित किया गया था। इन्होने लोकगीतों, कहावतों एवं मुहावरों पर 'हमारा ग्राम साहित्य' नामक पुस्तक लिखी।

1930 ई0 के बाद श्री देवेन्द्र सत्यार्थी भी लोकगीतों की खोज में जुट गये। इन्होने भारत के अतिरिक्त वर्मा, लंका आदि देशों का भ्रमण करके अनेकों लोकगीतों का संग्रह किया। इनके सराहनीय कार्य को देखते हुए महात्मा गांधी जी ने कहा था कि ''पचास से अधिक भाषाओं के कोई तीन लाख गीत संग्रह कर डालना कोई छोटा काम नहीं है। तुम्हारे बीस वर्ष इसी काम में खर्च हो गये। श्री देवेन्द्र जी ने इन गीतों का संकलन लगभग एक दर्जन पुस्तकों में किया। जैसे- धरती गाती है, बेला फुले आधी रात, धीरे बहो गंगा, बाजत आवे ढोल आदि।

भोजपुरी में आजकल जो साहित्य उपलब्ध होता हैं उसमें कुछ तो गीतों के संग्रह हैं और कुछ जनता के दैनिक जीवन तथा समाज का चित्रण करने वाले विभिन्न विषयों पर लिखे गये गीत हैं। जैसे- मेला घुमनी, गंगा नहवनी इत्यादि। यद्यपि इन छोटी-छोटी पुस्तिकाओं का मूल्य साहित्यिक दृष्टि से अधिक नहीं है फिर भी भोजपुरी भाषा के नमूने के रूप में इनका महत्व कुछ कम नहीं है।

भोजपुरी भाषा मे विभिन्न विषयों पर लिखे गये साहित्य का आज

भी अभाव है। डॉ0 बीम्स ने अपने व्याकरण में लिखा है कि भोजपुरी का कोई साहित्य नहीं है। भाषाशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ0 ग्रियर्सन ने लिखा है कि भोजपुरी का शायद ही कुछ स्थानीय साहित्य हो। भोजपुरी प्रान्त में प्रसिद्ध लोरिक का महाकाव्य और कुछ गीत इसमें है। इसमें कुछ पुस्तकें भी छपी हैं। भोजपुरी-साहित्य के सम्बन्ध में डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी का यह मत है कि कुछ लोक गीतों और बैलेड के अतिरिक्त- जो बहुत ही सुन्दर है तथा देहातों में गाये जाते हैं- भोजपुरी में प्रयत्न पूर्वक किसी साहित्य की सृष्टि नहीं हुई है। इस बोली का सबसे प्राचीन नमूना संत कबीर की कविता में मिलता है जो कुछ पद्यों में ही सीमित है। प्रो0 बलदेव उपाध्याय ने इन्ही उपर्युक्त मतों का समर्थन करते हुए लिखा है कि "इतना होने पर भी यह कम दुःख की बात नहीं है। इसका साहित्य अभी तक समृद्ध रूप में नहीं दिखा पड़ता। यह अभी तक लिखित अवस्था में भी नहीं है, बल्कि जीविका के लिए इधर-उधर भ्रमण करने वाले गायकों और अनपढ़ देहातियों की जिह्वा पर निवास कर रहा है।'' भोजपुरी-भाषा के अधिकारी विद्वान डॉ0 उदयनारायण तिवारी की सम्मति है।

"भोजपुरी में सबसे बड़ी कमी इसमें प्रकाशित उच्च श्रेणी के साहित्य का अभाव है। भोजपुरियों को अपनी भाषा के प्रति इतना अनुराग होने पर भी यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस भाषा की श्रीवृद्धि नहीं हुई है और प्राचीन काल में भी इसकी बहनों बंगाली, मैथिली एवं कोशली के मुकाबिले में इसमें साहित्य रचना विशेष नहीं हुई। इसका प्रधान कारण ब्राह्मण पंडितों का संस्कृत-भाषा के प्रति (मातृभाषा की उपेक्षा कर) विशेष अनुराग है।''

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजपुरी का साहित्य प्रधानतया मौखिक है और जो कुछ साहित्य उपलब्ध होता है वह अनेक स्फुट विषयों पर लिखा गया है।

लोक साहित्य से सम्बन्धित अनेक संस्थाओं की स्थापना और पत्र-पत्रिकायें भी प्रकाशित हुई जैसे- टीकमगा (राजस्थान) से लोकवार्ता सं0 कृष्णानन्द गुप्त, मधुकर, पत्रिका पं0 बनारसी दास चतुर्वेदी। आपने ही टीकमगढ़ में 'लोकवार्ता परिषद' की स्थापना की थी। काशी (वाराणसी) में 'हिन्दी जनपदीय परिषद की स्थापना हुई और एक पत्रिका 'जनपद' प्रकाशित हुई जो धनाभाव के कारण बन्द हो गयी। मथुरा में ब्रज साहित्य मण्डल की स्थापना हुई जहाँ से ब्रज भारती नामक पत्रिका प्रकाशित हुई।

वर्तमान समय में लोक साहित्य से सम्बन्धित संस्थाओं एवं पत्रिकाओं में बनारस से भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, यहाँ से त्रिमासिक पत्रिका 'भोजपुरी जनपद' का प्रकाश हो रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. कृष्णदेव उपाध्यय भोपुरी लोकसहित्य 2008 विष्वविघालय प्रकाषन वाराणसी द्वितीय संस्करण।
2. डॉ0 अर्जुन तिवारी भोजपुरी सहित्य के इतिहास 2014 विष्वविघालय
3. डॉ0सत्येन्द्र लोकसाहित्य विज्ञान 2017 राजस्थानी तृतीय संस्करण।
4. पुन्नी सिंह, कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, (सम्पादक), भारतीय दलित साहित्य-परिप्रेक्ष्य 2017, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, पृ0सं0 -32।
5. डॉ0 शरण कुमार लिंबाले, (सम्पादक), डॉ0 विनोद कुमार, वायचल, (अनुवादक), दलित पैन्थर-भूमिका एवं आन्दोलन, 2017, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम
6. **www.rachanakar.com, date -30-01-2020 time 8pm**

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

समकालीन संदर्भ और मध्यकालीन हिंदी कविता

-डॉ.निर्मला जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर
स.भ.सिंह रा.स्ना.महाविद्यालय
रुद्रपुर, (उधम सिंह नगर)उत्तराखंड

यों तो मानव मूल्य से जुड़ी कोई भी कविता या रचना स्वयं में समय सापेक्ष शाश्वत होती है, क्योंकि समाज अनेक विविधताओं से भरा हुआ होता है तथा वर्तमान समाज में वर्ग विभाजित है ही, अतः बहुत स्वाभाविक है, कि सांस्कृतिक स्तर पर इसके अनेक स्तर है इसलिए कविता भी देशकाल – परिस्तिथि से प्रभावित होती है। इस दृष्टि से विहंगावलोकन करने पर हम पाते हैं कि हमारे समकालीन समय पर मध्यकालीन हिंदी कविता का अत्यंत गहरा एवं व्यापक असर पड़ा है।

मध्यकालीन हिंदी कविता को साहित्य की मुख्य धारा में स्वर्ण युग के तौर पर स्वीकृति प्रदान की गयी। आगे ऐसा हो भी क्यों ना क्योंकि मध्यकाल ने सामाजिक समरसता के मूर्धन्य कवि दिए है जिन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से तमाम सामाजिक विसंगतियों से कुठाराघात एवं समाज को पुनः सामुदायिक सद्भाव की ओर एकजुट होने की प्रेरणा से आप्लावित किया है। हम इसे अत्यंत सरल भाषा में जहां-वहां पा सकते है। उदारहणार्थ - तुलसी कवि कहते है कि –

"परहित सरिस धरम नहीं भाई, परपीड़ा सम नहीं अधिमाई"।

परोपकार से बढ़कर कोई उत्तम कार्य नहीं और पर पीड़ा से बढ़कर कोई नीच कार्य नहीं, परोपकार भावना ही वास्तव में व्यक्ति को मनुष्य बनाती है। कभी किसी भूखे व्यक्ति को खाना खिलाते समय चेहरे पर व्याप्त संतुष्टि के भाव से जिस असीम आनंद की प्राप्ति होती है वही अवर्णनीय है।

इसी तरह से एक अन्य स्थान पर कहा गया है –

"जाके हृदय न राम बैदेही
तजिए ताहि कोटि बेरि सम जगति परम स्नेही"।

यह राम से तात्पर्य जय श्री राम से नहीं उस रामत्व से है, उस उच्चतर मानव मूल्यों से है, जो कि उन्नत सामाजिकता का पक्षधर है - आगे कबीर दास जी विभिन्न धर्मों की आस्थाओं पर चोट नहीं करना चाहते है, अपितु विभिन्न आडंबरों व रूढ़ियों के विरुद्ध मूर्ति भंजक के बतौर खड़े दिखाई देते है, जो कहते है कि ईश्वर का वास यदि आत्मा में है तो उसे किसी मूर्ति पूजा जैसे वाह्य आडंबर की आवश्यकता नहीं है बल्कि उसका ध्यान, सदाचरण पर एकाग्र होना चाहिए।

"पाहन पूजे हरि मिले तो मैं पूजू पहाड़

ताते यह चाकी भली पीस खाए संसार।

कांकर पांथर जोरि के, मस्जिद लई बनाय"

ता चढ़ी मुल्ला बांग दे, का बहिरा हुआ खुदाय ।।

भक्तिकाल के भक्त कवियों ने भक्ति काव्य के माध्यम से लोगों को सदाचार का पाठ पढ़ाया, तुलसीदास ने इसी काल में रामचरितमानस की रचना की। उस समय के भक्त कवियों की भक्ति को सामाजिक दृष्टि से मुक्त करने और गुण विकसित करने की पुकार सुनाई देती है।

भक्तिकाल से हिंदू मुस्लिम एकता का बढ़ावा दिया, कई मुसलमान कवियों ने भी हिंदू देवताओं की भक्ति में सराबोर होकर काव्यों की रचना की। भक्तिकाल की सबसे बड़ी उपलब्धि काव्यों के जरिए समाज सुधार करना था। उस काल में समाज में कई प्रकार के अंधविश्वास एवं आडम्बर विद्यमान थे। मुसलमानो के आगमन के कारण एक नई संस्कृति का प्रभाव भारतीय समाज पर पढ़ने लगा था। राजनीतिक शक्ति मुसलमानो के हाथ में थी।इसलिए हिंदूओं की स्थिति बिगड़ी जा रही थी। धार्मिक कट्टरता, रूढ़िवादिता, जातिवाद इत्यादि समस्यायें समाज को दीमक की तरह खाये जा रही थी। ऐसे समय में कवियों ने अपने काव्यों से ऐसे आडंबरों पर कुठाराघात कर जनता को सही रास्ते पर लाने के प्रयास किए। सामाजिक भेदभाव मिटाने के प्रयास हुए, एक उदाहरण –

"जाति-पाति पूछै नहीं कोई
हरि को भजै सो हरि को होई"।

काव्य शिल्प एवं भाषा के दृष्टिकोण से भी मध्यकाल बहुत समृद्ध रहा है। रामचरितमानस आज तक हिंदी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य बना हुआ है। कबीर के दोहे आज भी जन-जन में लोकप्रिय है। इनके काव्य भारतीय मानस में रच-बस चुके है। आज तक भी आम आदमी को प्रभावित करने वाले काव्य की रचना नहीं की जा सकी है। मध्यकालीन कविता की प्रासंगिकता आधुनिक संदर्भ में भी कम नहीं हुई है।

मध्यकालीन कविताएं भाव पक्ष एवं कला पक्ष दोनों दृष्टिकोण से उच्च कोटि की थी। इस युग को भक्तिकाल के नाम से भी अभिहित किया जाता है।

शुक्ल जी तुलसी के माध्यम से जिस लोक धर्म की प्रतिष्ठा देखते है और जिसे वह वास्तविक तथा आदर्श लोक धर्म कहते है उसका संबंध तुलसीदास के पहले रूप से अधिक है। दूसरे धरातल पर वे उसके विपरीत भी जाते है। वो भक्ति को ही सबसे बड़ा मानते है वह किसी के द्वारा की गई हो –

"मोरे मन अति दृढ़ विश्वासा
राम से अधिक रामकर दासा"।

भक्त को राम से श्रेष्ठ मानना तुलसीदास जी के इसी दूसरे व्यक्तित्व की पहल है। इसी तरह से प्रथम कोटि के काव्य और कवियों की स्थिति प्राचीन काल की एकांत विशेषता नहीं है क्योंकि मध्यकाल में भी ऐसी बहुसंख्यक कवियों का पता चलता है जिनकी काव्य विषयक मान्यता उन्हें काव्य शास्त्रीय परंपरा से पृथक कर देती है तथा कथित कवियों को लक्ष्य कर कबीर ने कहा है कि –

कवि- कबीनै कविता मुए, काफड़ी केदारौ जादू
केस लूंचि लूंचि भुए,बरविया, इनमें किनहू न पाई।

इस युग के संत कवि ईश्वर की सत्ता सर्वशक्तिमान में अटूट विश्वास रखने के कारण अत्यंत निर्भीक, स्पष्टवादी, साहसी और सत्यवादी थे। कबीर ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि मैं चौराहे पर सिर पर कफन बांधकर खड़ा हूँ, सत्य को प्रकट करते समय मुझे किसी का भय नहीं है जिसमें सत्य को प्रकट करने का साहस है वह मेरे साथ आयेगा।

मध्यकालीन कवियों की भाषा में लोकप्रियता का प्रभाव यह है कि उनकी रचनाएं जनता के दैनिक व्यवहार और बोलचाल की सूक्तियां के रूप में स्थान पा गयी है। आज भी इन संतों की उक्तियों का प्रयोग हम व्यावहारिक भाषा के रूप में करते है जैसे कि कहा गया है –

"हम बड़े कुलीन हम पंडित, हम जोगी सन्यासी
ज्ञानी गुणी सूर हम दाता याहू कहै भति नासी"।
तुम्ह णिभी जानौ गीत है
याहू कहै भति नासी।

काव्य शिल्प एवं भाषा की दृष्टिकोण से भी भक्तिकाल बहुत समृद्ध रहा। रामचरितमानस आज तक हिंदी का सर्वश्रेष्ठ गद्य काव्य बना हुआ है। कबीर के दोहे आज भी जन-जन में लोकप्रिय है।

भक्तिकाल के कवियों में कबीर, तुलसी, रहीम ने जनमानस को जितना प्रभावित किया उतना न इससे पहले किसी काल में किसी ने किया था और अब तक भी आम आदमी को प्रवाहित करने वाले काव्य की रचना नहीं की जा सकी है। आधुनिक कवियों ने अच्छी कविताओं की रचना की है। किंतु आम आदमी तक इन काव्यों की उतनी पहुंच नहीं है जितनी कबीर, तुलसी और रहीम की है। इनके काव्य भारतीय जन मानस में रच - बस चुके है। जैसे आगे कहा गया –

" तुम्ह बिन जानौ गीत है, यहु निज ब्रह्म विचार"।

भक्ति काव्य को स्वर्ण युग सिद्ध करने के लिए इसकी उत्कृष्टता की तुलना अन्य कालों के साहित्य से कराना भी आवश्यक है।

रीतिकाल में श्रृंगार रस की कविताओं की अधिकता थी। इस काल के अधिकतर कवि किसी न किसी राजदरबार की शोभा हुआ करते थे। इसलिए उनका अधिकतर काव्य राजा की प्रशंसा के लिए होता था। इनमें से अधिकतर काव्य साहित्य के उद्देश्यों को पूरा करने में सक्षम नहीं थे। इस दृष्टिकोण से यह काव्य भक्तिकालीन काव्यों के समक्ष नहीं ठहर सकते।

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारंभ 1842 ई. में हुआ था। इस काल ने हिंदी साहित्य को बेहद बेशक बहुत अच्छे, जैसे- सुमित्रानंदन पंत, निराला, दिनकर, हरिवंशराय बच्चन, मुक्तिबोध इत्यादि दिये किंतु इनमें से कितने कवियों एवं कितनों के काव्य से भारत का आम आदमी परिचित है। भक्ति काल को समाप्त हुए साढ़े तीन सौ वर्ष बीत चुके है फिर भी रामचरितमानस की चौपाइयां तथा कबीर व रहीम के दोहे भारतीय जनमानस के जीवन का हिस्सा बने हुए है। भक्तिकालीन काव्य की प्रासंगिता आधुनिक संदर्भ में भी कम नहीं हुई है। काव्य शिल्प एवं भाषा सौंदर्य के दृष्टिकोण से भी रामचरितमानस के समक्ष आधुनिक काल का कोई काव्य नहीं ठहरता। जैसे - तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में राम के उन गुणों का उल्लेख किया है जो वस्तुतः निर्गुण ब्रह्म के गुण है।

"ब्रह्म व्यापक अकल सकल पर परमहित
ग्यान–गोवीन – गुण – वृत्ति – हर्ता
सिन्धु –सुन –गर्व गिरि बज्र
गौरीस, भव दच्छ – मख –अखिल विध्वंस – कर्ता"।

भक्तिकाल का काव्य भाव-पक्ष एवं कलापक्ष दोनों दृष्टिकोण से उच्च कोटि का था। भक्तिकाल के काव्य के बिना हिंदी साहित्य की समृद्धि की कल्पना भी नहीं की जा सकती। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। पर उसमें समाज-सुधार की क्षमता विद्यमान होती है। साहित्य के इस पैमाने पर भी भक्तिकाल का साहित्य बिल्कुल खरा उतरता है। इसलिए भक्तिकाल को सर्वोत्तम काल माना गया है।

प्राचीन और अर्वाचीन वाङ्मय को मिलाकर देखें तो गुण व परिणाम दोनों की दृष्टि से हिंदी कविता सर्वाधिक संपन्न है। कालजयी कृतियों का इतना बड़ा संग्रह और उच्चकोटि के कृतिकारों का ऐसा विपुल समारोह अत्यंत दुर्लभ है। हिंदी काव्य में प्राय: सभी संप्रदायों के कवि हुए हैं। तुलसी व सूर को गौरव तो स्वयंसिद्ध है ही, विद्यापति कबीर, जायसी, नंददास, परमानंददास, मीरा, रसखान, रहीम सिद्ध है आदि कवि किसी भाषा के श्रृंगार हो सकते है। रीतिकालीन हिंदी का अपना वैशिष्टय है किसी अन्य में शास्त्रीय काव्य की इतनी विस्तृत और समृद्ध परम्परा नही मिलती।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. प्राचीन एवं मध्यकालीन भक्ति काव्य : डॉ. मानवेंद्र पाठक।
2. तुलसी : राममूर्ति त्रिपाठी।
3. निबंधमाला : योगेश चंद्र जैन।
4. भक्ति काव्य : शिवकुमार मिश्र।
5. हिंदी साहित्य का इतिहास : डॉ. नागेंद्र।

****

भारत में नक्सलवाद की समस्या : कारण एवं निदान

-डॉ. राजेश कुमार साहू
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
शासकीय कन्या महाविद्यालय
सीधी, मध्य प्रदेश
Mob. No- 8085400776

-डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
शासकीय कन्या महाविद्यालय

सारांश-

नक्सलवाद की समस्या न केवल राष्ट्रीय बल्कि यह दिनों-दिन अंतर्राष्ट्रीय समस्या होता जा रहा है। नक्सलवाड़ी क्षेत्र में मूल निवासी आदिवासियों के विरोध से इस संघर्ष का जन्म हुआ किन्तु वर्तमान में यह आन्दोलन केवल आदिवासियों तक ही सीमित नहीं है। जहाँ-जहाँ नक्सलवाड़ी के समान असमानता, दरिद्रता तथा अभाव और उत्पीड़न रहा है वहाँ-वहाँ नक्सलवाद का विस्तार होता चला जा रहा है। नक्सली संघर्ष को केवल आदिवासियों से जोड़कर नहीं देखा जा सकता है। वर्तमान में कई मूल निवासी जातियों, गरीब परिवारों व पीड़ित व्यक्ति के द्वारा आर्थिक, मानसिक, बौद्धिक व शारीरिक रूप से सहयोग व समर्थन देकर संघर्ष को तीव्र कर दिया गया है।

मुख्य शब्द- संघर्ष, असमानता, शोषण, मूलनिवासी, नक्सलवाद, अशिक्षा, विषमता, आदिवासी, आंदोलन।

प्रस्तावना-

भारत में जन्मे नक्सलवाद जैसे इस क्रांतिकारी संघर्ष के उदय के पीछे की वास्तविकता क्या है? इसका समाधान क्या है? आखिर क्यों है? इन सभी प्रश्नों का वैज्ञानिक अध्ययन करना इस शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है। लेखक स्वयं छत्तीसगढ़ के नक्सल प्रभावित क्षेत्र बीजापुर जिले के भोपालपट्नम शासकीय महाविध्यालय में अध्यापन कार्य करते हुए नक्सलवाद की इस समस्या से अवगत है बस्तर क्षेत्र में आए दिन नक्सलवादी घटनाएं घटती रहती है। नक्सलवादी और सेना के बीच मुठभेड़ व गोलीबारी होती रहती है। यहाँ लोगों को अपना जीवन सुरक्षित नहीं दिखता और भय का वातावरण बना रहता है। नक्सलवाद का संघर्ष भूमि से प्रारंभ हुआ था वर्तमान में यह भूमि के साथ-साथ कई मुद्दों पर एक मत व संगठित होकर लड़ाई व संघर्ष छेड़ दिया है। जिसमें एक प्रमुख मुद्दा व्यवस्था परिवर्तन का है अर्थात भारतीय शासन व्यवस्था को बदलकर उस पर कब्जा करना है। इसी वजह से इस संघर्ष के समर्थक साथी नक्सलवाद को एक विचारधारा व सिद्धांत कहते हैं।

आज यह प्रश्न विचारणीय है कि नक्सलवाद मूल रूप से कानूनी समस्या है या विषमता से उत्पन्न समस्या। विचारकों का एक वर्ग जहाँ नक्सलवाद को आतंकवाद जैसी गतिविधियों से जोड़कर इसे देश की आंतरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ी चुनौती मानता है तो दूसरा वर्ग इसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विषमताओं एवं दमन-शोषण की पीड़ा से उपजा विद्रोह समझकर इसका पक्षपोषण करता है।

"हाँ, अब हमने उठा ली है तुम्हारे खिलाफ़ बंदूक
तुम जो समझते हो तमंचों की भाषा।"

समाज में तिरस्कार की ज्वाला, आर्थिक व सामाजिक विषमता ने नक्सलवाद को जन्म दिया है। देशवासियों को आजादी के बाद जो सरकार से अपेक्षाएं की थी वे पूरी नहीं हुई। देश में विकास के अनेक कार्यक्रम शुरू हुए लेकिन सत्ता सामंती चरित्र, पूँजीपति, उच्चवर्गीय हाथों में होने और निरंकुशता की वजह से भ्रष्टाचार प्रशासनिक उपेक्षाएं बढ़ती ही गई, जिससे विकास का लाभ कुछ वर्गों तथा चंद मुट्ठीभर लोगों तक सीमित रहा। नक्सल आंदोलन के विस्तार और उसके प्रसार में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। नक्सल आंदोलन के विस्तार में देश की बढ़ती असमानता प्रमुख कारण हैं। नक्सलवादी अपनी जड़ें कितनी गहरी जमा चुके हैं, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि प्रारंभ में इस आंदोलन का केंद्र पश्चिम बंगाल था लेकिन बाद के वर्षों में देश के 20 राज्यों की 223 जिलों में इसका विस्तार हो चुका है। नक्सलवादी संगठन के पास कुशल सूचना तंत्र, विशेष प्रशिक्षण और आधुनिक अस्त्र-शस्त्र से युक्त है। जिस कारण से यह आज 40% हिस्से में फैल चुके हैं। नक्सलियों के करीब दर्जन भर गुट भारत में विभिन्न हिस्सों में सक्रिय हैं। इनमें ऐसे गुट भी हैं जिनका जनाधार केवल एक जिला या जिले के कुछ गांवों या क्षेत्रों तक सीमित है, किंतु उनकी सोच और दर्शन राष्ट्रीय है, बल्कि कुछ नक्सली गुट तो पूरी दुनिया को बदलने का सपना देखते हैं।

गौरतलब है कि गृह मंत्रालय द्वारा 126 जिलों को नक्सल घोषित किया गया था। इन जिलों को सुरक्षा संबंधी खर्च के लिए केंद्र की तरफ से विशेष धनराशि प्रदान की गई इन्हीं में से 44 जिलों को अब नक्सलवाद के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त पाया गया है। इनमें 32 जिले तो ऐसे हैं जहां पिछले कुछ वर्षों से एक भी नक्सल हमला नहीं हुआ है शेष जिलों में 30 ऐसे जिले बचे हैं,

जहां नक्सलियों का प्रभाव अब भी कायम है। गृह मंत्रालय की रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि पिछले 4 वर्षों में नक्सली हिंसा कम हुई है। आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2013 के मुकाबले में वर्ष 2017 में नक्सली हिंसा में 35% की भारी कमी दर्ज की गई है। वर्ष 2017 में केवल 57 जिलों में ही नक्सली घटनाएं होने की जानकारी रिपोर्ट में दी गई है। इन तथ्यों के आलोक में एक बात तो स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि नक्सलवाद से लड़ने के लिए वर्तमान सरकार की योजना और रणनीति एकदम सही दिशा में सफलतापूर्वक गतिशील है। दरअसल मोदी सरकार नक्सलियों से निपटने के लिए केवल सशस्त्र संघर्ष के विकल्प तक ही सीमित नहीं रही है बल्कि और भी कई तरीके अपनाकर उनको कमजोर करने का काम इसने किया है। नक्सलियों की फंडिंग के नेटवर्क जिसके तार विदेशों तक से जुड़े होने की बात सामने आती रही है, को ध्वस्त करने की दिशा में सरकार अलग-अलग ढंग से प्रयासरत रही है।

1991 में वैश्वीकरण, निजीकरण, उदारीकरण और विनिवेशीकरण जैसी प्रक्रियाओं की शुरुआत के कारण बहुराष्ट्रीय निगम संस्थाओं का ध्यान आदिवासी अंचलों में मौजूद विपुल प्राकृतिक संपदा की ओर गया इससे आदिवासी इलाकों में असंतोष का नया विस्फोट हुआ जिसकी परिणति लालगढ़, नंदीग्राम, सिंगूर जैसी घटनाओं में देखी जा सकती है नक्सलियों ने इन असंतोषों को अपनी विचारधारा के लिए जमकर भुनाया। केंद्रीय गृह मंत्री के अनुसार देश में करीब 25-30 जिले ऐसे हैं। जहां सरकार की उपस्थिति नगण्य है। किसी भी लोकतंत्रीय देश के लिए गंभीर बात है। रॉ के अनुसार नक्सलियों की सेना में 20000 सशस्त्र कैडर और 50,000 से अधिक निमित्त कैडर हैं। आखिर ऐसा कैसे हुआ? इसके कुछ निश्चित कारण होने चाहिए। प्रसिद्ध पूर्व प्रशासक डॉ. ब्रम्ह देव शर्मा ने करीब 30 वर्ष पहले ही अपनी 29वीं रिपोर्ट में सरकार को चेता दिया था कि यदि आदिवासी क्षेत्रों की ओर तत्काल ध्यान नहीं दिया गया तो इन अंचलों में हिंसात्मक गतिविधियां पैदा हो जाएंगी। उनकी बहुचर्चित रिपोर्ट में दर्ज है कि विकास का वर्तमान स्वरूप आदिवासी हितों के अनुकूल नहीं है।

नक्सलवाद के चरण

प्रथम चरण- वर्ष 1967 से 1980 तक का समय नक्सलवादी गतिविधियों का प्रथम चरण था। इसका प्रथम चरण मार्क्सवादी -लेलिनवादी माओवाद पर आधारित था, अर्थात यह 'वैचारिक और आदर्शवादी' आंदोलन का चरण रहा है। इस चरण में नक्सलवादियों को जमीनी अनुभव तथा अनुमान की कमी देखने को मिली। इस चरण में नक्सलियों को 'राष्ट्रीय पहचान' अवश्य मिली।

द्वितीय चरण- वर्ष 1980 से 2004 तक का समय जमीनी अनुभव, जरूरत और आवश्यकता के आधार पर चलने वाला क्षेत्रीय नक्सली गतिविधियों का दौर था। इस चरण में नक्सलवाद का व्यावहारिक विकास हुआ। इस अवधि मैं नक्सलियों ने सशस्त्र बलों पर हमले आरंभ कर दिए। इसी चरण में नक्सली आंदोलन का सीमा विस्तार सर्वाधिक हुआ। पूरे भारत में लाल गलियारे का निर्माण होने लगा जो पश्चिम बंगाल से होते हुए बिहार, झारखंड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र तक पहुंच गया। गोरिल्ला युद्ध में माहिर नक्सलियों द्वारा छत्तीसग,ढ़ झारखंड एवं उड़ीसा आदि के जंगलों में घात लगाकर सशस्त्र बलों पर हमले आरंभ हो गए।

तृतीय चरण- वर्ष 2004 से वर्तमान में जारी इस चरण में नक्सलियों का राष्ट्रीय स्वरूप उभरा और विदेशी संपर्क बढें जिससे अब नक्सलवाद राष्ट्र की सबसे बड़ी आंतरिक चुनौती बनकर उभरा। 2004 के बाद नक्सलवादी आंदोलन अपने मूल उद्देश्य से भटक गया ऐसा कहे तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। साल 2004 में पीपुल्स बार ग्रुप एवं एमसीसीआई के एकीकरण के पश्चात एक नई पार्टी का गठन किया गया जिसे भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) का नाम दिया गया है।

25 मई 2013 के छत्तीसगढ़ के सुकमा जिले के जंगलों में हमले हुए। इस हमले में सलमा जुडूम के प्रवर्तक महेंद्र कर्मा व छत्तीसगढ़ कांग्रेश अध्यक्ष नंद कुमार पटेल और उनके बेटे दिनेश पटेल, पूर्व केंद्रीय मंत्री विद्याचरण शुक्ल व 8 लोग मारे गए। इस हमले के बाद से स्पष्ट हो जाता है कि नक्सलवादी अपने मूल उद्देश्य से भटककर उन लोगों को निशाना बनाने लगे हैं जो नीति -नियंता राजनीतिक नेतृत्वकर्ता एवं राजनीतिक पार्टियों से जुड़े हुए हैं। 4 अप्रैल 2021 को छत्तीसगढ़ के बीजापुर में सुरक्षाबलों और नक्सलियों के बीच हुई मुठभेड़ में 23 जवान शहीद हो गए। स्पेशल डीजी नक्सल ऑपरेशन अशोक जुनेजा ने इसकी पुष्टि की थी यह साल 2021 में अब तक का सबसे बड़ा नक्सली हमला था। शनिवार को जिस जगह पर मुठभेड़ हुई रविवार को वहां जवानों के पार्थिव शरीर पड़े हुए थे। इस मुठभेड़ में 25-30 नक्सली भी मारे गए थे।

मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, आंध्र प्रदेश तथा उत्तर-पूर्व के कुछ क्षेत्रों में सर्वेक्षण, अनुभवों व निष्कर्षों के आधार पर कहा जा सकता है कि नक्सलवादी आंदोलन वर्तमान की नहीं विगत विसंगतियों की देन हैं। यदि राज्य व केंद्र सरकारें वांछित कदम उठाती, आदिवासियों को विश्वास में लेकर विकास की योजनाएं लागू करती तो नक्सलवादियों को इन क्षेत्रों में पैर पसारने का अवसर नहीं मिलता। हमारी आजादी के 75 वर्ष बीत चूके हैं। इन 75 वर्षों में जहाँ एक और हमारे देश ने आर्थिक ऊंचाइयों के

आसमान को छुआ है, वहीं दूसरी ओर आज भी देश की 77 फीसदी जनसंख्या महज 37 प्रति दिन या उससे भी कम पर अपना जीवन यापन कर रही है। गांवों और कस्बों में आज भी लोगों को पीने का साफ पानी उपलब्ध नहीं है। आज भी गाँवों और कस्बों में बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध क्यों नहीं है? देश का पेट भरने वाला किसान अपने ही बच्चों को भूखा सुलाने पर मजबूर क्यों है? जब जुल्म और अत्याचार के राज़ में इन बुनियादी सवालों का समाधान नहीं हो पाता, तब जनता इन सवालों का हल खोजने के लिए शस्त्र उठाती है या हिंसा को चुनती है और नक्सलवाद के रास्ते पर चल पड़ती है, आदिवासी गांवों में बेरोजगारी, अत्याचार, असंतोष, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, पारिवारिक कलह एवं लक्ष्य से भटके हुए महिला एवं पुरुष नक्सली गतिविधियों की तरफ बढ़ते हैं। तथा जनसंख्या के शोषित वर्गों के बीच विद्यमान अविश्वास और अन्याय का लाभ उठाते हैं तथा आम जनता का समर्थन प्राप्त करते हैं।

नक्सलियों का प्रभाव ग्रामीण अंचलों में ज्यादा देखने को मिलता है तथा इनके द्वारा सरकारी भवनों में बम ब्लास्ट, आवागमन को वाधित करने हेतु सड़कों और रेलवे लाइनों, पटरियों को तोड़ना, बिजली एवं टेलीफोन लाइनों को तोड़ना, पुलिस एवं सेना के साथ मुठभेड़ एवं कभी कभी तो आम नागरिकों पर जानलेवा हमला किए जाते हैं। छत्तीसगढ़ के दक्षिणी जिलों बस्तर, दंतेवाड़ा और बीजापुर में गृह युद्ध जैसी स्थिति है। नक्सलियों द्वारा लगाए गए प्रेशर बमों से कई बार बड़ी संख्या में लोग मारे गए हैं। यह दिल दहला देने वाली घटना थी, पहले हमले में केंद्रीय रिज़र्व पुलिस बल के सशस्त्र जवान मारे गए। नक्सलियों की अगली घटना ने कई लोगों के मन में नक्सलियों के लिए घृणा भर दी है। इसमें कुछ ऐसी बस को निशाना बनाया गया जिसमें सवार कई निहत्थी बच्चों की जान गई। कुछ समय पहले मिदनापुर में माओवादियों ने राजधानी एक्सप्रेस को रोक कर रखा था। और लालगढ़ में भी उन्होंने काफी हिंसा का प्रदर्शन किया था।

नक्सलवादी आंदोलन मध्यप्रदेश में भी बड़ी मजबूती के साथ तीव्र गति से फैलता चला गया संयुक्त मध्य प्रदेश में सबसे ज्यादा वन और मूलनिवासी आदिवासी निवास करते हैं जिनमें में प्रायः सभी अत्यंत निर्धन एवं आधुनिकता से दूर सीधे सरल स्वभाव वाले व अर्धनग्न अवस्था धारण कर वंचित वैभव ग्रस्त जीवन यापन करते हैं स्वाधीन भारत के इतिहास में नक्सलवादी का आंदोलन मात्र किसान एवं भूमिहीन वर्ग की जागृति का एक आंदोलन नहीं था बल्कि भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन हेतु कम्युनिस्ट कांति कारियों ने चीन में हुई कम्युनिस्ट क्रांति से सबक सीखते हुए लेनिन बाद मार्क्सवाद और मौत से तुम की विचारधारा को अपना प्रस्थान बिंदु माना सामंतवाद को समाप्त करने हेतु साम्यवाद का यह संघर्ष उस समय हुआ जब भूमिहीन मूलनिवासी दलित आदिवासी किसान एवं उपेक्षित सामाजिक वर्ग ने इस का दामन थाम लिया भारी भूल भटकाव भागम भाग एवं भड़ास से भरे तथा राज्य प्रशासन द्वारा अभूतपूर्व दमन दबाव एवं उत्पीड़न के बावजूद नक्सलवादी संघर्ष की गतिविधियों का सिलसिला जारी रहा नक्सलवाद अपने मूल स्थान पश्चिम बंगाल से निकलकर आगे बढ़ते हुए वहां जाकर स्थाई रूप से मजबूत हुआ जहां नक्सलियों के लिए रहने, अपने रणनीति बनाने हेतु जंगल एवं सुरक्षित घाटी क्षेत्र विशेष रूप से उपलब्ध है साथ ही जहां उत्पीड़न अधिक है वहां के निवासी विकास और अपने मूल अधिकार से वंचित हैं वहां पर नक्सलवाद अधिक तीव्र गति से पनपा और इसका सर्वाधिक प्रभाव संयुक्त मध्यप्रदेश में एवं वर्तमान छत्तीसगढ़ में रहा है व है।

संयुक्त मध्यप्रदेश में बस्तर जिला मध्य प्रदेश के विकास की दृष्टि से सबसे पिछड़ा जिला है जहां प्रारंभ से ही जीवन की आधारभूत व न्यूनतम आवश्यकताएं रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा, चिकित्सा, बिजली, सड़क, पानी, सिंचाई साधन आदि का आभाव रहा है साथ ही ऐसी स्थिति में कतिपय भ्रष्ट अधिकारियों कर्मचारियों द्वारा श्रमिकों को निर्धारित पारिश्रमिक ना दिया जाना, व्यापारियों द्वारा आदिवासियों को वन उपज का उचित मूल्य न दिया जाना, उनका शोषण करना, उनके साथ किया गया अमानवीय व्यवहार आदि कुछ ऐसे मुद्दे थे जो नक्सलवाद के विस्तार एवं पनपने के लिए एक सस्ती उपजाऊ जमीन तैयार कर रहा था जहां से अपनी विचारधारा के बीच वहां की भौगोलिक विशेषताएं भी उसे गोरिल्ला युद्ध के लिए विशेष अनुकूल बनाती है। उस समय तक आंध्र प्रदेश के तेलंगाना क्षेत्र के श्रीकाकुलम क्षेत्र में प्रारंभ नक्सली गतिविधियों अन्य जिलों के सीमा क्षेत्रों में फैल चुकी थी अतः आंध्र प्रदेश में सक्रिय नक्सलवादियों ने दक्षिण पश्चिम बस्तर को अपना कार्यक्षेत्र बनाने के लिए उपयुक्त स्थान समझा। सन 1972 में सर्वप्रथम नक्सलियों ने बस्तर जिले के थाना भोपालपटनम क्षेत्र में अपनी गतिविधियां प्रारंभ की। मध्यप्रदेश के बालाघाट, मंडला, डिंडोरी जिले तो शुरु से ही नक्सली आंदोलन के गढ़ रहे हैं। बाद में सन 2004 में सीधी जिला और उसके विभाजन से बना सिंगरौली जिला भी इनके प्रभाव क्षेत्र में आ गया।

नक्सल क्रांतिकारियों ने 1980 के दशक में सबसे पहले दंडकारण्य में प्रवेश किया और भूमिहीनों, मजदूरों, छोटे किसानों को एकजुट किया क्योंकि ग्रामीण स्तर पर काम करने वाले क्रांतिकारियों ने वर्ग हीन समाज की कल्पना की थी इसलिए उन्होंने अपना आधार तैयार करने के लिए पर्चा बांटे और सभाएं

की फिर जल्दी ही ससस्त्र ग्रुप तैयार किया जिसका काम अलग-थलग पड़े सशस्त्र बलों व वर्ग शत्रुओं से हथियार लूटना था। जैसे-जैसे इसमें तीव्रता आई वैसे-वैसे इनकी ताकत व क्षेत्र में विस्तार होता रहा और यह अपने इरादों से पुलिस को प्रशासन को सरकार को अवगत करा दिया है कि समस्त समस्याओं की जड़ प्रत्येक क्षेत्र में मौजूद असमानता है जिसे दूर करने में सरकारी नाकाम रही है। नक्सली खूनी संघर्ष का सर्वाधिक प्रभाव संयुक्त मध्य प्रदेश के दक्षिणी हिस्से में है जो माकूल पनाहगाह के रूप में उम्दा है इसका कारण है छत्तीसगढ़ के जल, जंगल, जमीन, खनिज संपदा और जनजाति गरीबी यह सभी इसके लिए आवश्यक खाद पानी उपलब्ध कराते हैं।

मूल निवासियों के क्षेत्र ऐसे हैं जहां विकास के नाम पर लोगों को छला गया है यहां की आम जिंदगी बद से बदतर है यहां की आदिवासी यह नहीं जानते कि कौन सी चीज कितनी कीमती है क्योंकि उनके जंगलों में चिरौंजी आसानी से उपलब्ध हो जाती है तो 1 किलोग्राम नमक 1 किलो चिरौंजी के बदले में खरीदते हैं और यहां तक कि उन्हें उसे खरीदने के लिए 14 किलोमीटर पैदल चलकर पहाड़ उतर कर नीचे बाजार आना पड़ता है जिंदगी की आम सुविधाओं से वंचित आदिवासियों के पहाड़ी क्षेत्रों का जनजीवन आज भी सड़क, पीने का पानी, सिंचाई और बिजली की सुविधाओं से सर्वथा अपरिचित हैं जबकि सरकारी फाइलों में इन क्षेत्रों का विकास जमकर हो रहा है मीडिया के लोग भी यदा-कदा ही इनका असली चेहरा दिखा पाते हैं नहीं तो यह भी विभिन्न प्रकार के प्रलोभन में आ जाते हैं नक्सलियों ने बस्तर के भोले भाले आदिवासियों के मध्य उपरोक्त मुद्दों एवं सरकारी नीतियों तथा सीमित विकास योजनाओं को मुद्दा बनाकर सरकार के विरुद्ध अभियान चलाकर अपनी बात समझा पाने में सफल रहे इनकी गतिविधियां मूल रूप से एक मामूली प्रचार तक ही सीमित नही है बल्कि यह आंदोलन बढ़ता ही चला गया और घटनाओं में वृद्धि हुई है।

समय आ गया है कि सरकार यह खुलकर समझाएं कि पिछले सालों में सुरक्षा को लेकर जो रणनीति तैयार की थी, क्या वह काफी है और विकास, प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन व देश के जनजातीय इलाकों में शासन व्यवस्था को लेकर लोगों में जो आक्रोश है उसे दूर करने के लिए वह क्या कदम उठा रही है? नक्सली अराजकता को रोकने के लिए सरकार कोई ठोस रणनीति बनाने में विफल रही है। सच्चाई तो यह है कि अगर गृह मंत्रालय के आंकड़ों पर नजर डालें तो पता चलता है कि पिछले सालों में नक्सली हिंसा में मारे गए लोगों की संख्या बढ़ती ही चली गयी है।

नक्सल संगठन का मूल मंत्र है कि सत्ता बंदूक से निकलती हैं। नक्सली क्रांतिकारी वर्ग अस्त्रों का कत्लेआम कर क्रांति लाना चाहते हैं। वे बंदूक के माध्यम से सर्वहारा वर्ग का प्रभुत् स्थापित करना चाहते हैं। अभी तक तो यह कहा जाता था कि गरीब व शिक्षित पीड़ित वर्ग ही नक्सली बनते हैं, लेकिन सर्वेक्षण के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि निर्धन, भूमिहीन मूल निवासी आदिवासियों के युवक-युवतियों के अलावा शिक्षित योग्य बुद्धिजीवी बेरोजगार युवक-युवतियां भी इस आंदोलन से जुड़ चुकें हैं, क्योंकि उन्हें अब अपनों की देखभाल के लिए नियमित वेतन भी मिलता है और वे इसे अपना पेशा व रोजगार बना रहे हैं।

क्यूँ खत्म नहीं हो पा रही नक्सली समस्या?

दरअसल नक्सलवाद सामाजिक, आर्थिक कारणों से उपजा है। आदिवासी समाज के लोग गरीबी और बेरोजगारी के कारण एक निचले स्तर की जीवन शैली जीने को मजबूर हैं। स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में गंभीर बीमारियों से जूझते इन क्षेत्रों के लोग मौत से सामना करते रहते हैं। आदिवासियों का विकास करने और उन्हें शिक्षा, चिकित्सा सेवा और रोजगार देने के बजाय उन्हें परेशान करने के नए-नए कानून बनाए जाते हैं। आर्थिक असमानता, भ्रष्टाचार खेती की दुर्दशा एक बहुत बड़ी समस्या है और ये समस्याएँ असंतोष के बीच पैदा करते हैं जिनमें विद्रोह करने की क्षमता होती हैं। इन्हीं असंतोष की वजह से नक्सलवादी सोच को बढ़ावा मिल रहा है। सरकारें इन समस्याओं के सभी पहलुओं पर विचार नहीं कर रही है, जिससे समस्याएं जस की तस बनी हुई है।

क्या चाहते हैं नक्सली?

नक्सलियों का मकसद राज्य को अस्थिर बनाना है। और वे मौजूदा व्यवस्था को सही नहीं मानते हैं। वे व्यापक जनाधार तैयार करके जनता का सरकार लाना चाहते हैं, लेकिन इसके लिए वे हिंसा का रास्ता अपनाते हैं।

- नक्सलवादी ज्यादातर सुरक्षाबलों और उनके ठिकानों पर हमला करते हैं।
- नक्सलवादी कुछ इन्फ्रास्ट्रक्चर जैसे की रोड, रेलवे और पावर हाउस को निशाना बनाते हैं।
- नक्सली सरकार समर्थक सिविल सोसायटी और सरकारी संगठनों पर भी हमला करते हैं और इसके जरिए अपनी विचारधारा का प्रचार प्रसार करने का काम भी करते हैं।
- नक्सली अन्य विकासात्मक कार्यों जैसे कि सड़क, अस्पताल, स्कूल, कॉलेजों का निर्माण आदि का भी विरोध करते हैं।

नक्सलवादियों की मौजूदगी महज जनजातीय इलाकों तक सीमित नहीं है और यह भी नहीं है कि नक्सली एजेंडा जन-जातियों का उत्थान भरा है। मगर हम जिस सुदूर और वन क्षेत्रों

की बात कर रहे हैं। वहाँ मुमकिन है की उन्हें ज्यादा समर्थन और संरक्षण प्राप्त है। यहाँ उनका ऐसा दबदबा है कि वे आसानी से अपना पीछा कर रहे पुलिस बलों का खात्मा कर सकते हैं। यही वजह है कि सबसे पहले देश के जनजातीय इलाकों में लोगों के आक्रोश का हल ढूंढने की जरूरत है। अगर हम इस समस्या का हल महज पैसे खर्च करके करना चाहते हैं तो शायद यह समस्या कभी सुलझ ही नहीं पाएगी। हमें जनजातियों के अधिकार क्या है ये समझना होगा और उन्हें राजनीतिक शक्तियों का इस्तेमाल करने की छूट देनी होगी। मेरे समझ में नक्सली समस्या के समाधान हेतु सरकार निम्न कदम उठा सकती है-

आदिवासी अंचलों के लिए संवेदनशील व चेतना संपन्न कैडर का निर्माण और नियुक्ति प्रतिबद्ध अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति से आदिवासियों में विकास, विवेचनात्मक चेतना, वह प्रतिरोधात्मक शक्ति पैदा करना, आदिवासी विकास योजनाओं के निर्माण से क्रियान्वयन तक की प्रक्रिया में आदिवासियों की सक्रिय भागीदारी।

- जल, जंगल, जमीन व बाहरी कब्जों को समाप्त करना, विकास कार्यों के माध्यम से रोजगार सृजन तथा आदिवासी जनपदीय भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा देना।
- वन व कृषि उपज का वांछित मूल्यांकन व वितरण।
- अगले 10-15 वर्षों तक देश के एकाधिकार पूंजीपतियों और बहुराष्ट्रीय निगमों के आदिवासी अंचलों में प्रवेश पर पूर्ण प्रतिबंध।
- दोषी अधिकारी कर्मचारियों के विरुद्ध तत्काल कार्यवाही।
- संविधान प्रदत्त अधिकारों, सरकारी योजनाओं, संवैधानिक उपायों आदि के संबंध में जागरूकता पैदा करने के लिए आदिवासियों के क्षेत्र में चेतना, सशक्तिकरण शिविरों का आयोजन।
- विभिन्न विकास योजनाओं की सफलता के लिए ऐसे अतिवादी तत्वों का सहयोग प्राप्त करना जो हिंसा का रास्ता छोड़ अहिंसा के उपायों में विश्वास करने लगे हैं।
- नक्सलियों को नक्सल गतिविधियों को छोड़ने हेतु कहा जाए तथा उन पर कोई भी मुकदमा न लगाते हुए सम्मानपूर्वक प्रोत्साहन दिया जाए राजकीय सेवाओं के साथ उन्हें रोजगार की सुविधा उपलब्ध कराया जाए तथा उनके परिवार एवं बच्चों की उचित देखभाल सरकार द्वारा किया जाए। साथ ही यह भी जरूरी है कि जहाँ सरकार उदारता का परिचय दें। वहीं संसद वादी वामपंथी पार्टियां भी नक्सलियों को मुख्यधारा में लाने के लिए सकारात्मकता से भूमिका निभाएं।

नक्सलवादी क्या चाहते हैं विचार करना अनिवार्य है उनकी क्या मांगे हैं इस पर ध्यान देना आवश्यक है। कृषक मजदूर वर्गों की मंहगाई के अनुपात में घटती आय, बढ़ती निर्धनता के कारणों का पता लगाया जाना और इसे दूर करना अति आवश्यक है? खेद की बात है इस संघर्ष या समस्या को खत्म करने के लिए शासन के स्तर पर हम शक्ति (सेना एवं पुलिस) का तो भरपूर इस्तेमाल करते हैं किंतु वैचारिक संघर्ष करते हुए इसके हल के लिए आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक कदम बहुत कम उठाते हैं लेकिन यह सफलता का नहीं असफलता का मार्ग है। नक्सलवादियों को अपना मानकर क्षमा करते हुए समाज के अंग के रूप में अपनाना होगा। यदि हम योजनाबद्ध तरीके से नक्सलवादियों को मार डाले तो भी नक्सलवाद उसी तरह से समाप्त नहीं होगा जिस तरह से बीमार को मार देने से बीमारी समाप्त नहीं होती। देश की माटी में खून के छींटे जो गिर रहे हैं वह अपनों के ही तो हैं, उन्हें रोकने हेतु दोनों पक्षों को गंभीरता से सोचना होगा। भाई, बहन, मां, बाप और रिश्तेदारों के आंसू कब तक बहते रहेंगे। खून किसी का बहे रंग तो एक ही होता है लाल। न कोई जात न कोई धर्म, कोई तो समझे मानवता का मर्म।

नक्सलवाद का संघर्ष व्याप्त असमानता, अव्यवस्था, अन्याय, अत्याचार को स्वयं समाप्त करने का सशस्त्र क्रांतिकारी प्रयास है। नक्सलवादी आंदोलन मार्क्स, लेनिन, माओ के खूनी क्रांति व उनकी वर्ग संघर्ष की विचारधारा पर आधारित है। देश प्रदेश के कई क्षेत्रों में व्याप्त असमानता मौजूद अनेकानेक समस्याओं को नक्सलियों ने क्रांतिकारी विचारधारा के माध्यम से इसका प्रचार प्रसार कर इसे समाप्त करने का संकल्प लिए है। नक्सलवादी संघर्ष विचारधारा से जुडी लड़ाई है यह अपनी विचारधारा से वर्तमान की विचारधारा को पराजित करके समतामूलक वर्ग-विहीन शोषण-विहीन समाज की स्थापना करना चाहते है। जहां पर सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व होगा इस प्रकार से नक्सलवादी संघर्ष, संपूर्ण व्यवटस्था परिवर्तन का संघर्ष और आंदोलन समस्त समस्याओं की जड़ सत्ता परिवर्तन है इसीलिए यह संघर्ष वर्तमान में एक राजनीतिक संघर्ष का रूप ले चुका है नक्सलवादी संघर्ष गांव गरीबों की असमानता का संघर्ष है इसका उद्देश्य सर्वहारा वर्ग के उत्थान पर आधारित है जिससे इसे आदर्श श्रेणी का संघर्ष कहा जाता है। वास्तव में इसके असंतोष के वास्तविक कारण को जड़ से अभी तक समझा ही नहीं गया है जिसे समझना होगा तथा इसके निराकरण के उपाय शांत मन से करना होगा। जिन कारणों से देश अथवा राज्य में नक्सलवाद को बढ़ावा मिला दुखद कि वे सभी आज ही मौजूद है समाज में व्याप्त वर्ग विभेद के साथ गरीबी और बेरोजगारी भी एक प्रमुख कारण है भूमि सुधार कार्यक्रमों पर ईमानदारी से अमल नहीं किया गया दलित

आदिवासियों के साथ सम्मानजनक व्यवहार नहीं हो रहा है जब तक भूख, उत्पीड़न, दबाव, दहशत, पीड़ा, वंचित एवं बेरोजगार आबादी रहेगी तब तक असंतोष और विरोध आंदोलन को जन्म देते रहेंगे।

सरकारी प्रयास-

भारत सरकार द्वारा नक्सली समस्या के समाधान की दिशा में अनेक प्रमुख कदम उठाए गए जिनमें दंड के प्रावधान के साथ-साथ सुधारात्मक पहलू पर भी ध्यान दिया गया अनेक जनकल्याणकारी कदम भी उठाए गए गए हैं।

नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे कौशल विकास शिक्षा ऊर्जा के क्षेत्र में व्यापक विकास और डिजिटल कनेक्टिविटी के विस्तार पर कार्य।

2013 में रोशनी नामक विशेष पहल की शुरुआत।

2017 में केंद्र सरकार द्वारा 8 सूत्री समाधान नाम की एक कार योजना की शुरुआत।

समाधान पहल- भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा नक्सली समस्या के समाधान के लिए एक नई पहल की गई है जिसे 'समाधान' नाम दिया गया है।

S- Smart leadership (कुशल नेतृत्व)

Aggressive strategy (आक्रामक रणनीति)

M- Motivation and training (अभिप्रेरणा एवं प्रशिक्षण)

A- Actionable intelligence (अभियोज्य गुप्तचर व्यवस्था)

Dashboard based Key performance indicator and Key result area (कार्ययोजना आधारित प्रदर्शन सूचकांक एवं परिणामोन्मुखी क्षेत्र)

Harnessing technology (कारगर प्रौद्योगिकी)

Action plan for each threat (प्रत्येक रणनीति की कार्य योजना)

N- No access to financing (नक्सलियों के वित्त-पोषण को विफल करने की रणनीति)

इसमें कोई संदेह नहीं है कि नक्सलवाद देश के लिए गंभीर चुनौती है। समस्या के समाधान के लिए सरकारी स्तर पर वर्षों से प्रयास जारी हैं। अनेक नीतियां बनाई गई किंतु उन नीतियों का कार्यान्वयन उचित ढंग से आज तक नहीं हो पाया है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि नक्सलवाद के मूल में जाकर समस्या के समाधान के लिए समुचित प्रयास किए जाएं। गुमराह व्यक्तियों के लिए पुनर्वास की उचित व्यवस्था की जाए भूमि सुधार कार्यक्रम लागू कर समस्या का स्थाई समाधान किया जा सकता है।

जिस तरह से एक परिवार में सबसे कमजोर सदस्य पर सबसे ज्यादा ध्यान दिया जाता है उसी तरह हमें समाज के सबसे कमजोर वर्गों विशेषकर आदिवासियों, दलितों पर ध्यान देना होगा तभी इस समस्या से स्थाई रूप से निजात पाई जा सकती है ऐसी स्थिति में यह प्रश्न खड़ा होता है कि क्या आंदोलन को बंदूक की ताकत से दबाया जा सकता है। आज छत्तीसगढ़ में एक लाख से ज्यादा मिलिट्री, बीएसएफ, सीआरपीएफ, कोबरा तथा राज्य की पुलिस मिलकर अभियान को चला रही है इस ऑपरेशन को भारतीय मिलिट्री की देखरेख में चलाया जा रहा है सेना स्वयं नक्सल विरोधी अभियान में लगे हुए सुरक्षाबलों को प्रशिक्षण दे रही है लेकिन सरकार को याद रखना चाहिए कि इस आंदोलन का हल हथियार से नहीं चलने वाला है इसके लिए सरकार को जनता की बुनियादी समस्याओं जिसमें मुख्य रुप से जल, जंगल, जमीन का हल तलाशना होगा।

निष्कर्ष-

यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि नक्सलवादी आंदोलन को अंततोगत्वा लोकतांत्रिक मुख्यधारा में ही लौटना पड़ेगा। शोषण के विरुद्ध हथियार उठाने वाले ये नक्सली अपने लक्ष्य से भटक गए है और देश के लिए एक बड़ी समस्या बन गए हैं। कई दूरवर्ती और वनांचल राज्यों में यह समस्या विराट रूप में देखी जा सकती है तथा लोगों को भय एवं कई परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आवश्यक यह है कि आदिवासियों को ग्रामीण अंचलों में जल, जंगल, जमीन की भागीदारी देकर ग्रामीण क्षेत्रों का विकास तीव्र स्तर पर किया जाए तथा मूलभूत आवश्यकताओं शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार उपलब्ध कराते हुए शोषण एवं अत्याचार पर रोक लगाई जाए।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. देवी महाश्वेता, जंगल के दावेदार राधाकृष्णन् प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. जोशी, भगवतशरण, आदिवासी सत्ता मासिक पत्रिका, जुलाई 2010
3. प्रसून, देवाशीष, लेख आदिवासी सत्ता, अंक 7 अगस्त 2010
4. तिवारी, डॉ. मुकेश कुमार श्रीवास्तव, डॉ. मृगांक शेखर श्रीवास्तव, डॉ. एन.के. नक्सलवाद-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और सामाजिक विश्वास, आशा पब्लिशिंग एचआईजी एच-24 तृतीय मंजिल, बाईपास रोड आगरा 2012
5. दीपेंद्र लवकुश, मध्यप्रदेश में नक्सलवाद की समस्या 2001 से वर्तमान तक शोध प्रबंध, 2014
6. 2016 JETIR July 2016 Volume 3,Issue 7
7. आउटलुक जनवरी 2012

****

हिंदी उपन्यासों में वृद्धों का संघर्ष: एक विवेचना

-प्रियांषु कुमारी
शोधछात्रा
हिन्दी विभाग
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

प्रस्तावना:-

वृद्ध होना मानव जीवन की स्वाभाविक अवस्था हैं, जो क्रमशः धीरे-धीरे आने वाली अवस्था है। यह अवस्था स्वाभाविक एवं प्राकृतिक रूप से घटित होती है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि वृद्धावस्था परिवर्तन की वह अवस्था है, जिसमें व्यक्ति के जीवन में अनुभव के सभी पक्ष सम्मिलित है। परंतु इस आधुनिक युग में युवापीढ़ी वृद्धों की महत्ता को समझ नहीं पाते हैं, जिसके कारण उम्र के अंतिम दौड़ में अपना जीवन यापन करने के लिए वो सहारा ढूँढने को विवश हो जाते हैं। आधुनिक युग में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाइए देने लगा है। आज की युवा आगे निकलने की होड़ में अपने घर के बुजुर्ग को भुलते जा रहे हैं। वर्तमान समय में मनुष्य की दिनचर्या ऐसी हो गई है कि वह बहुत जरूरतमंद तथा जिनसे कोई काम निकलवाना हो उन्हीं को याद करते हैं बाकी को याद रखना जरूरी नहीं समझते है। समय के अभाव में नई पुरानी पीढ़ियों के बीच में विचारों का तालमेल नहीं बैठ पा रहा है, जिस कारण से दोनों पीढ़ियों में तनाव उत्पन्न हो रहा है। हिन्दी कथा साहित्य में वृद्धों के इसी संघर्ष को दिखाया गया है।

मनुस्मृति का श्लोक है - "**अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः चत्वारि तस्य वधन्ते आयुर्विधा यशो बलम्**" अर्थात् प्रतिदिन बुजुर्गों को प्रणाम करने और उनकी सेवा करने वाले व्यक्ति की आयु, विद्या, शक्ति और यश में वृद्धि होती है। लेकिन आज समय बदल गया है। व्यक्ति जैसे-जैसे वृद्धावस्था की ओर बढ़ते जा रहे हैं, वैसे-वैसे अकेलापन, भय और उपेक्षा का शिकार होते जा रहे हैं। समाज में हो रहे इस बदलाव को साहित्य में भी देखने को मिल रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति एवं बाजारवाद संस्कृति के बीच स्थित वृद्धों के दयनीय स्थिति का वर्णन समकालीन उपन्यासों में देखा जा रहा है।

कृष्णा सोबती का उपन्यास 'समय - सरगम' आज के बदलते परिदृश्य में बदलते मूल्यों के साथ अपने ही परिवार में उपेक्षा को दर्शाता है। आधुनिक समय में संयुक्त परिवार में रहने के बावजूद भी वृद्ध अकेलेपन की समस्या से जूझ रहे हैं, उनके रिश्तों में बिखराव देखा गया है। इस उपन्यास में वृद्धों के साथ जो रवैया अपनाया गया है वह चिंता का विषय है। दमयंती, प्रभुदयाल, कामिनी तीनों अपने ही परिवार में घुट - घुटकर रहने को मजबूर है। दमयंती अरण्या को कहती है - "मैं तुम्हारी तरह अकेली होती तो क्यों परेशान होती। बच्चे साथ रह रहे हैं। मेरे घर में मेरा किचन चल रहा है, खर्चा मैं कर रही हूँ और मैं अपने कमरे में अकेली खड़ी रहती हूँ। बिना मेरी इजाजत मेरा सामान इधर से उधर करते रहते हैं........मैं अपने बच्चों से वैर विरोध क्यों करूँगी ! उनका भी कोई फर्ज बनता है, मैंने कुछ खाया पिया है कि नहीं बीमार हूँ, दवा लानी है, टेस्ट करवाना है, डॉक्टर के पास जाना है वह सब मैं अपने आप ही करूँ......... मैं ड्राइंग रूम में नहीं बैठ सकती, मेरे मेहमान नहीं बैठ सकते जबकि वहाँ का सब फर्नीचर साज- समान मेरा अपना बनाया हुआ है और मैं किसी बेजान काठ की तरह देखी जाती हूँ।"1 इस उपन्यास में वर्णित लगभग सभी वृद्धों का यही हाल है कि जवानी में व्यक्ति अपने घर को सजाते हैं लेकिन वृद्धा होने पर उनका उसी घर पर बस नहीं चलता, किंतु लेखिका द्वारा अद्भुत प्रयास किया गया है। वह ईशान तथा अरण्या के माध्यम से वृद्धावस्था में भी जीवन को एक नया मोड़ देते है। ये दोनों पड़ोसी होते हैं परंतु पड़ोसी होकर भी दोनों एक दूसरे के लिए पूर्ण होते हैं। "जीवन में स्वतंत्र कर्म अपनाकर वह वृद्धावस्था में सुखी जीवन का आनंद ले रहे हैं। अकेलेपन की समस्या से पड़े अरण्या जीवन में कठिनाइयों का सामना करते हुए आगे बढ़ती है। समकालीन वृद्धों को अपनी विचारधारा से अलग सकारात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करके अन्य वृद्धों के जीवन में उदाहरण प्रस्तुत कर रही है।"2 वर्तमान प्रगतिशील समाज में उपस्थित शोषित वृद्ध महिलाओं को अरण्या जैसे पत्रों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है और सामाजिक परिवर्तन का अहम हिस्सा बनना जरूरी है। परंपरागत विचारधारा से हटकर नवीन विचारों को स्वीकार करना आवश्यक है।

अंतिम अरण्य निर्मल वर्मा का वृद्धावस्था केंद्रित उपन्यास है। इस उपन्यास में मिसेज मेहरा अपने पति मेहरा साहब के जीवन के हर पल और बुढ़ापे के मनोभावों का लेखा-जोखा लिखने के लिए एक व्यक्ति को नियुक्त करती है। वह व्यक्ति मेहरा साहब की मनोदशा को अपने विचारों द्वारा अभिव्यक्त करता है। इस उपन्यास में मेहरा साहब की स्मृति प्रधान यादों, बुढ़ापे के एकाकीपन, उदासी, बेबसी आदि को व्यक्त करता है। मेहरा साहब अपनी पत्नी के देहांत के बाद अस्वस्थ रहने लगते हैं वह बोलते हैं -" देह अपने में तकलीफ है...... उठता हूँ, तो वह भी उठने लगती है, चलता हूँ, तो मेरे साथ-साथ चलती है; कभी-कभी सोचता हूँ कि उससे आँख बचाकर कहीं छुप जाऊँ, फिर देखूँ, कैसे मेरा सुराग पाती है....... कोई अपनी देह की आँखों में धूल झोंककर उससे बच सकता है ? कैसे पीछा छुड़ा सकता है उससे, जो जन्म से आपके साथ जुड़ी हैं।"3 यहाँ मेहरा साहब जीवन की गहराइयों को समझने की कोशिश करते दिखाई देते हैं। वह अपने जीवन की परेशानियों से भागना चाहते हैं, परंतु भाग नहीं पाते, उसका सामना करते हैं। मेहरा साहब जीवन में मानसिक अशांति से ग्रस्त है वह गहन विचारों से प्रभावित हैं।

अंतिम अरण्य उपन्यास मनुष्य के जीवन के अंतिम अवस्था पर आधारित है। मेहरा साहब जीवन और मृत्यु के बीच संघर्ष करते

देखे जाते हैं। मेहरा साहब मृत्यु की राह देखता है, अपने जीवन के रहस्य को उजागर नहीं होने देते, इस बोझ को अपने साथ लेकर जाना चाहते है। बुढ़ापे में व्यक्ति अपने मन के भावों को खुलकर किसी के सामने प्रकट नहीं कर पाते और अंदर ही अंदर घुटते रहते हैं। मेहरा साहब भी अपने जीवन की कशमकश से छुटकारा पाने के लिए तड़पते रहते है। मृत्युशय्या पर वह अपनी अंतिम इच्छा पूरी न होने के कारण व्यथित रहते हैं। मेहरा साहब का जीवन कई उतार - चढ़ाव से होकर गुजरता है, परंतु वृद्धावस्था में मृत्यु के द्वार पर वह सत्य बोध को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। अपनी बेटी के साथ समय बिताना, उससे मिलना उनके जीवन की अंतिम इच्छा बनकर रह जाती है। परंतु इसमें भी सफल नहीं हो पाते। इससे पहले वह लकवा ग्रस्त होकर प्राण त्याग देते हैं।

गिलिगडु उपन्यास चित्रा मुद्गल की वृद्धावस्था पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास में चित्रा जी ने वृद्धावस्था के दौरान वृद्धों को होने वाली परेशानियों का सजीव चित्रण किया है। जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी दोनों वृद्धावस्था की ओर संकेत करते हैं। इस उपन्यास की कथावस्तु जसवंत सिंह की बीमारी से प्रारंभ होकर कर्नल स्वामी की त्रासदी पर समाप्त होती है। यह आत्मकथा शैली में कहा गया उपन्यास है। जसवंत सिंह स्वयं को यथार्थ से जोड़ने का सफल प्रयास करते है। गिलिगडु का साधारण अर्थ है -चिड़िया। इसमें निहित चिड़ियों अर्थात् अबोध बालिकाओं को बुजुर्गों का सहारा मिलता है।

गिलिगडु उपन्यास बाबू जसवंत सिंह और रिटायर्ड कर्नल स्वामी इन दोनों मित्रों की जीवन के इर्द-गिर घूमती रहती है। बाबू जसवंत सिंह अपने बेटे नरेंद्र के इंजीनियरिंग की पढ़ाई के लिए अपनी भविष्य निधि की रकम तोड़ देते हैं, लेकिन अपनी पत्नी के स्वर्गवास के बाद बदहवास से हो जाते हैं। उन्हें अपने पुत्र नरेंद्र के साथ दिल्ली में रहना पड़ता है। उन्हें दिल्ली आकर एक बालकनी की स्लाइडिंग लगाकर कमरे में तब्दील की हुई स्थान पर रहने को मजबूर होना पड़ता है। उनकी प्रतिदिन की ड्यूटी होती है कि वह सुबह टॉमी को बाहर मैदान में ले जाकर फारिग कराएँ। जसवंत सिंह वहीं मैदान में ही अपने मित्र के साथ अपना दुख बाँटते हैं। परिवार के सदस्यों के पास उनके लिए समय नहीं होता है। तभी वह एक जगह कहते हुए दिखाई देते हैं कि "इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं - एक टॉमि, दूसरा अवकाश प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवंत सिंह। टॉमी की स्थिति निस्संदेह उनकी बनिसबत मजबूत है। उसकी इच्छा - अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता है पूरा घर। उसके लिए किसी को बिछे रहना जरूरी नहीं लगता।"4 बाबू जसवंत सिंह के बेटे, बहु, साथ ही बहुत भरोसे की बेटी भी उनके दौलत को हासिल करने के फिराक हैं। लेकिन जसवंत बाबू करनाल स्वामी की स्थिति को जानकर अपनी सारी संपत्ति अपनी नौकरानी सुनगुनिया के नाम कर देते हैं , यहाँ तक की अपने अंतिम क्रियाकर्म भी सुनगुनिय के बेटे को ही सौंप देते है। उनका वक्षस्थल छलनी - छलनी हो जाता है। उन्हें ऐसा आभासित होता है कि "शायद नीम का वक्षस्थल उन्हीं का वक्षस्थल हो।"5

दौड़ उपन्यास ममता कालिया द्वारा रचित है। यह उपन्यास वर्तमान समाज में बाजारवादी, उपभोक्तावादी विचारधारा की होड़ में युवावर्ग द्वारा रिश्तों को दाँव पर लगाने की मार्मिक प्रस्तुति है। इस संवेदनाशून्य समाज में युवावर्ग रिश्तों और परिवार को अपनी तरक्की की राह में काँटा समझकर उनसे दूर हो रहे है। इस उपन्यास में कर्तव्यविमुख और पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित संतानों का चित्रण किया गया है। इसमें वृद्ध पात्र रेखा और राकेश अपने बच्चों से दूर अकेलेपन की उदासी में बैठा उसका धीरज टूटता दिखाई देता है।

दौड़ उपन्यास में रेखा और राकेश के दो बेटे हैं - पवन और सघन। ये दोनों ने बहुत संघर्ष करके बेटों को उच्च शिक्षा दिलवाई, जिससे उनका भविष्य उज्ज्वल बन सके। पवन ने एम० बी० ए० करके बहु राष्ट्रीय कंपनीयों की दुनिया में कदम रखा, जहाँ पर रेखा और राकेश के लिए कोई स्थान नहीं था। बेटा सघन भी ताइवान में जाकर बस गया था। बुढ़ापे में वृद्ध दंपत्ति फोन, कंप्यूटर और ईमेल के बीच फंसकर रह गए हैं। बच्चों के फोन का इंतजार करते रहते है। इसपर रेखा कहती भी है "यह सीनियर सिटीजन कॉलोनी बनती जा रही है। सबके बच्चे पढ़ - लिखकर बाहर चले जा रहे हैं। हर घर में, समझो एक बूढ़ा, एक बुढ़ी, एक कुत्ता और एक कार बस यही रह गया है।"6 यहाँ पर वृद्ध दंपत्ति के जीवन की विवशता और वास्तविकता का चित्रण है जो वर्तमान महानगरीय जीवन की यथार्थवाद को प्रस्तुत करती है। दोनों बेटे अपने पिता की मृत्यु पर भी शोक करने के बजाय एक औपचारिकता निभाते हैं। युवाओं के लिए समाज, परिवार, रिश्ते - नाते, मानवीयता, संवेदना का महत्व न के बराबर होता जा रहा है। वें उत्तर - आधुनिक भूमंडलीकरण के दौर में बहुत आगे निकल चुके हैं। परंपरागत सामाजिक विचारधारा को वह स्वीकार नहीं करना चाहते।

रेहन पर रग्घू उपन्यास के रचयिता काशीनाथ सिंह हैं। यह उपन्यास सामाजिक परिवर्तन पर आधारित रचना है। इसमें ग्रामीण, शहरी और विदेशी संस्कृति का चित्रण किया गया है। वर्तमान समय में व्यक्ति कितना महत्वाकांक्षी, आक्रामक, विस्तारवादी और हिंसक बनता जा रहा है, इसका प्रभावी रूप से सजीव चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। इसमें वृद्धावस्था की ओर संकेत करते पात्र हैं - रघुनाथ और शीला। इसमें इकहत्तर वर्ष के मास्टर रघुनाथ के जीवन की कशमकश का यथार्थवादी प्रस्तुतिकारण है। रघुनाथ और शीला के तीन बच्चे है , लेकिन तीन बच्चों के होने के बावजूद भी उन्हें लगता है कि वह निःसंतान है। तभी तो एक जगह वह अपनी पत्नी शीला से कहते हैं -"शीला हमारे तीन बच्चे हैं लेकिन पता नहीं क्यों कभी-कभी मेरे भीतर ऐसी हूक उठती है जैसे लगता है मेरी औरत बाँझ है और मैं निःसंतान पिता हूँ ! माँ और पिता होने का सुख नहीं जाना हमने ! हमने न बेटे की शादी देखी ना बेटी की ! ना बहू देखी, न होने वाला दामाद देखा। हम ऐसे अभागे माँ-बाप हैं जिसे उनका बेटा अपने विवाह की सूचना देता है और बेटी धौंस देती है कि इजाज़त नहीं दोगे तो न्यौता नहीं दूंगी।"7 रघुनाथ के बड़े बेटे अमेरिका जाकर अपनी पत्नी को तलाक देकर किसी और के साथ रहने लगता है, उनकी पत्नी सोनल अपने देश वापस आ जाती हैं। छोटा बेटा किसी ऐसे औरत के साथ रह रहा है जिसके एक बच्चे पहले से ही है। बेटी चमार जाति के लड़के से विवाह करने का मन बना चुकी है। गाँव में भाई - भतीजे जमीन के टुकड़े के लिए उसके

दुश्मन बन बैठे है। तीन बच्चों के होने के बाद भी उन्हें अपने तलाकशुदा बहू का सहारा लेना पड़ता है, और यह दोनों दंपत्ति अपने तलाकशुदा बहू के साथ बनारस में रहने आ जाते हैं। जब माँ - बाप का दुख उनके संतान की ना समझे तो समाज कौन होता है समझने वाला। समाज तो इन बातों में केवल मज़े तलाशता है। उन्हें तो संवेदनाओं से कोई मतलब ही नहीं होता। अपनी संतान के लिए माँ-बाप की अनेकों उम्मीदें जुड़ी होती है कि उनके बच्चे बुढ़ापे का सहारा बने, उन्हें परेशानियों में ना छोड़े ,उनका काम - से - कम बुढ़ापे में तो ख्याल रखें। लेकिन आज की युवापीढ़ी इन सबसे पड़े अपने में ही व्यस्त रहते हैं। उनके जीवन में अपने वृद्ध माता-पिता के लिए कोई स्थान नहीं होता है। यह बच्चे उनके विचारों को ना सुनना पसंद करते हैं और ना ही समझना। माता-पिता जब अपने ही बच्चे से उपेक्षित होते हैं तो वे टूट जाते हैं -"आखिर किस उम्मीद से रघुनाथ - शीला ने मिलकर रची थी यह दुनिया ? वे इतने निःस्पृह और निःस्वार्थ तो नहीं थी और उनकी उम्मीद भी उनसे अलग नहीं थी जो गाँव घर के थे कि जब वे अशक्त हो जाएँगे तो ये बच्चे उनकी आँखें बनेंगे, उनके हाथ - पाँव बनेंगे ? कि वे बीमार होंगे तो यही बच्चे उनकी सेवा करेंगे, दवा दारू करेंगे, अस्पताल में भर्ती कराएँगे ? कि मरने लगेंगे तो मुँह में गंगाजल तुलसी दल डालेंगे, अर्थी सजाएँगे, शमशान ले जाएँगे, क्रिया कर्म करेंगे ?...... लेकिन देखो तो इससे बड़ी मूर्खता क्या हो सकती है ? और मरने पर सड़ो - गलो, कौवे - चील खाएँ या कुत्ता - क्या फर्क पड़ता है ?"8 रघुनाथ और शीला ने कितना संघर्ष करके बच्चे को बड़ा किया और आज जब इन्हें इसका फल मिलना चाहिए तब उसके पास मन में दुखों का बोझ है समाज के उलाहने और बच्चों की झीड़क है। यही सब से रघुनाथ की मानसिक स्थित को आघात पहुंचता है, वो अपना सुध-बुध खो बैठते है। तभी तो अंत में वह अपने ही हाथों अपहरण हो जाते हैं, शायद इस उम्मीद से कि उनकी संतान खोजबीन करते हुए उनके पास आए और उसका एकाकीपन दूर कर दे। उनकी जिंदगी को सुंदर बनाने की जमीन तैयार कर दे।

निष्कर्ष:-

भारतीय हिंदी कथाकारों ने समाज में उपस्थित समस्याओं को साहित्य में स्थान देकर समाज की वास्तविकता से रूबरू कराया है। भारतीय समाज में पारंपरिक रूप से संयुक्त परिवार प्रणाली का संचालन होता आया है, लेकिन सामाजिक मूल्य परिवर्तन के कारण भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव देखने को मिल रहा है। पाश्चात्य संस्कृति से आकर्षित होकर युवावर्ग उसे अपनाना चाहते हैं जिसके कारण परंपरागत विचारधारा और उत्तर आधुनिक विचारधारा में मतभेद और घर्षण पैदा हो गया है। इस कारण समाज में अनेक समस्या अपनी जड़े जमा रही है। 'समय सरगम' उपन्यास में बुद्धिजीवी वर्ग की स्वतंत्रता का चित्रण करते है। 'अंतिम अरण्य' उपन्यास में वृद्ध व्यक्ति के मनोभावों का चित्रण मार्मिकता के साथ हुआ है यहाँ पर मृत्युबोध और तर्पण विधि का चित्रण किया गया है। 'गिलिगडू' उपन्यास में वृद्ध जसवंत सिंह शहरीकरण की प्रगतिशील विचारधारा और सामाजिक पृष्ठभूमि को स्वीकार नहीं कर पाते और समस्याग्रस्त पात्र बनकर रह जाते हैं। 'दौड़' उपन्यास में भूमंडलीकरण के दौर में वृद्ध माता - पिता की अनदेखी को प्रस्तुत किया है। अकेले, निस्हाय वृद्धों के लिए समाज में वृद्धाश्रमों का निर्माण करा दिया गया है। 'रेहन पर रग्घू' उपन्यास में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति में मूल्य परिवर्तन को दिखाया गया है।

वृद्ध जीवन पर आधारित इस पुस्तक का उद्देश्य समाज में वृद्धों के प्रति नजरिया परिवर्तन और उन पर हो रहे अत्याचारों को उजागर करना है। वृद्धों की स्थिति में सुधार लाने के लिए जमीनींस्तर पर कार्य करने की जरूरत है। युवावर्ग को वृद्धों की जिम्मेदारी उठाने के लिए सहर्ष तत्पर रहना जरूरी है। सामाजिक परिवर्तन की लहर में वृद्ध, समाज के लिए उपयोगी एवं मार्गदर्शक है, ऐसा एहसास दिलाने की जरूरत है। सेवानिवृत्त, अस्वस्थ वृद्ध को अकेला न छोड़कर उनका मजबूत सहारा बने। समाज में वृद्धों का परिचय देते समय उन्हें शर्मिंदगी नहीं अपना गर्व मानें। वृद्ध हमारे समाज की अमूल्य धरोहर है उनका भावनात्मक सहारा बनना आवश्यक है। वृद्ध जीवन पर आधारित यह पुस्तक अपनी साहित्यिक उपयोगिता का परिचय देता है।

संदर्भ :-

1. समय - सरगम, कृष्णा सोबती, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० - 74
2. हिन्दी कथा साहित्य में वृद्धावस्था का यथार्थ, डॉ अंकिता शर्मा, पृ० - 124
3. अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ० -30
4. गिलिगुड, चित्रा मुद्गल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० -96
5. वही पृ० -141
6. दौड़, ममता कालिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० -43
7. रेहन पर रग्घु, काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० - 83
8. वही पृ० -149

****

मार्कण्डेय की कहानी और ग्रामीण जीवन

डॉ.कृष्ण बिहारी रॉय
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
शासकीय कन्या महाविद्याल, सीधी (म.प्र.)

सारांश

भारत की अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, यही कारण है कि वास्तविक जीवन शैली तथा संस्कृति हमें गाँव में ही देखने को मिलती है। ग्रामीण और शहरी जीवन दोनों में काफी अंतर होता है। मार्कण्डेय साहित्य और समाज का निकटतम संबंध स्वीकार करने वाले प्रतिबद्ध रचनाकार हैं। इस अर्थ में वे जीवनवादी साहित्यकार हैं। मार्कण्डेय जी साहित्य को समाज का प्रेरक मानते हैं। साहित्यकार जितना ग्रामीण जीवन परिवेश रीति–रिवाज, संस्कृति, बोली, रहन–सहन, वेश–भूषा, आदि का आचार–व्यवहार करते हैं उतनी नगरी संस्कृति का नहीं। इसी प्रकार अनेक कहानीकारों ने ग्रामीण जीवन की झांकी को अपनी कहानियों में अभिव्यक्ति दी है। इस प्रकार की कहानियां मन को स्पर्श किये बिना नहीं रहती हैं। प्रस्तुत लेख में ग्रामीण जीवन में विचार किया गया है।

मुख्य शब्द

मार्कण्डेय, कहानी, साहित्य, ग्रामीण, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, कृषि, जीवन आदि।

प्रस्तावना

मार्कण्डेय जी ग्रामीण जीवन के रूप में एक सफल चित्रकार के रूप में कहानी लेखक के रूप में अवतरित हुए हैं। उनके लगभग सभी कहानियों का केन्द्र स्वातंत्र्योत्तर भारत का ग्रामीण जन–जीवन है। उनकी अनेक कहानियों को पढ़ने के बाद प्रतीत होता है कि उन्होंने भारतीय गाँवों की नई जिन्दगी और उन झुझती शक्तियों का सही और यथार्थ चित्रण किया है। यों ग्रामीण भावबोध के रचनाकार होने के कारण ग्राम जीवन तथा कहानी के संबंध में उनका अपना एक दृष्टिकोण है, जिसके माध्यम से मार्कंडेय की भीतरी कथाकार को समझा जा सकता है। उनके अनुसार "हमारे देश की सांस्कृतिक और भौगोलिक बनावट ऐसी है जिसके कारण हर सौ–दो सौ मील के बाद जनता के रहन–सहन, बोल–चाल, भाषाओं में परिवर्तन लक्षित होने लगता है। राजनीतिक और सामाजिक कारणों से आर्थिक स्तर भी भिन्न–भिन्न हैं। खासकर किसानों में या गाँवों में बसने वाली जनता में यह अंतर स्पष्ट दिखाई देता है। भूमि संबंधों में भयानक असमानता है। विभिन्न शासकों की नीतियों का प्रभाव इस पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। कहीं बटाईदार है तो कहीं तालुकदारी है तो कहीं जमींदारी। अंचलों का निर्माण इन्हीं सब कारणों से हुआ है।"[1]

मार्कण्डेय जी के अनुसार "स्वराज के पहले गाँव का किसान शोषित था, स्वतंत्रता के बाद स्थिति में बहुत ज्यादा परिवत. न नहीं हुआ। क्योंकि अब उसके शोषण के नये रूप उभर आए हैं। पंचायतें आज भी बड़े लोगों के हाथों में हैं। पहले जमींदार का कारिंदा बेदखलीनामा लेकर आता था, अब सरकारी कारिंदा वारंट लेकर आता है। इसी तरह सरकारी विकास योजनाएँ भी शोषण का माध्यम बन गयी हैं। नहर बनती हैं तो वह छोटे लोगों के खेतों से होकर गुजरेगी। उनकी भूदान आदर्श कुक्कट गृह, उत्तराधिकार, दाना–भूसा आदि कहानियों तथा अग्निबीज उपन्यास में देखा जा सकता है।"[2]

अग्निबीज के हरगोन सिंह कहते हैं– "किसी पार्टी की नीति क्या वह देश की भूखी–नंगी जनता की समस्याएँ कैसे हल करना चाहती हैं, शोषण और अन्याय खत्म करने के बारे में क्या कार्यक्रम है, यह देखना चाहिए।"[3] मार्कंडेय जी की दृष्टि में किसी राजनीतिक दल का महत्व आम जनता की दैनंदिन जरूरतों को लेकर उसकी नीति तथा प्रत्यक्ष कार्य प्रणाली पर अवलंबित है। परन्तु आजकल राजनीतिक दल जनता की उन जरूरतों के लिए उतने संघर्षशील नहीं है जितने कुर्सी के लिए हैं। मार्कण्डेय जी सत्ता हथियाने के लिए जाति और धर्म की राजनीति करने वाली पार्टियों तथा नेताओं की खबर लेने से नहीं हिचकते। "नौ सौ रूपय और एक ऊँच दाना कहानी के बुचऊ के जबान से वर्तमान राजनीति की परिभाषा देते हुए हैं–विचार नाहीं रहा अब अउर बिना विचार के नेति कहाँ अब तो कुरसी की नेति है। धरम के नाव पर, जाति के नाव पर वोट उगहात है। ठाकुर के ठाकुर, ब्राम्हण के ब्राम्हण कहाँ गयी गरीबी? कहाँ गया छुआछूत? अब विचार नहीं रहा बस वोट रह गया है।"4 देश की राजनीति पर की गई यह व्याख्या

वर्तमान पतनोन्मुख राजनीति पर करारा व्यंग्य है। वर्तमान राजनीतिक परिस्थियों में वे गांधीवादी आदर्शों को अनुपयुक्त मानते हैं। क्योंकि महात्मा गांधी के आदर्शों की दुहाई देने वाली कांग्रेस आज उनके सिद्धांतों से दूर हैं। गाँधी के आदर्शों को वे गाँधी जी के साथ ही समाप्त होने की बात करते हैं। उनके अनुसार आज के कांग्रेसी गाँधी जी के आदर्शों पर नहीं, खद्दर और टोपी से प्रेम करते हैं। यह खद्दर और टोपी उनके लिए ढाल का काम करती है। उनकी प्रसिद्ध कहानी प्रलय और मनुष्य में कहते हैं– डरो नहीं यह खादी की टोपी है। इसकी दीवारों के बीच हम सुरक्षित हैं। यह इस लोक की सबसे बड़ी ढाल है। इसके पीछे कुछ भी छिप सकता है।

मार्कण्डेय

मार्कण्डेय जी का जन्म 2 मई 1930 को उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के केराकत तहसील के बराईपट्टी नामक गाँव में हुआ था। आप प्रतापगढ़ से इंटरमीडियट तथा इलाहाबाद से बीए एवं एम. ए. की डिग्री हासिल की। आप आकाशवाणी सें जुड़े रहे साथ ही हैदराबाद से प्रकाशित कल्पना पत्रिका में चक्रधर उपनाम स्तम्भ लेखन करते थे, इस कार्य को आपने लगातार 15 वर्षों तक स्तम्भ लेखन कार्य के रूप में करते रहे। 18 मार्च 2010 को दिल्ली में आपका निधन हो गया। आप ग्रामीण कहानीकार के रूप मे ंहमेशा याद किए जायेंगे।

मार्कण्डेय समाजवादी समाज–रचना के पक्षधर थे। उनके विचार से भारत में स्थिर अन्य राजनीतिक दलों की अपेक्षा कम्युनिस्ट पार्टी ही पूंजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर जनता का शासन स्थापित कर सकती है। वर्तमान युग में एक तरफ राजनीति पर जाति, धर्म, संम्प्रदाय हावी है और दूसरी ओर फासीवादी ताकतों तथा बाजारवाद के बढ़ते दबावों को देखते हुए मार्कण्डेय समस्त लोकतंत्र को संकटग्रस्त महसूस करते हैं। अपनी इस चिंता को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं–हमारे सामाजिक संदर्भ ही नहीं बल्कि शासन और सत्ता भी एक ऐसे दौर से गुजर रही है, जो फासिस्ट शक्तियों के दबाव से मुक्त नहीं है। बाजारवाद ने हमें आदमी की जगह ग्राहक बना दिया है, जहाँ हमारा लोकतंत्र जैसे झूठा होता जा रहा है। भूख और बेरोजगारी से सारा देश त्रस्त है। किसान जो इस देश का प्रथम नागरिक है, आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहा है। निश्चय ही हमारे समय का यथार्थ बदल गया है। उनके अनुसार वर्गों में बटे समाज में लोकतंत्र एक दिखावा बनकर रह जाता है। मार्क्सवादी विचारों के समर्थक मार्कण्डेय अपने उक्त विचारों के माध्यम से शोषितों का एक व्यापक संगठन निर्माण करना चाहते हैं, जो वर्तमान पूँजीवादी–तंत्र को समाप्त कर एक नई व्यवस्था को लाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सके।

निर्भीकता और जुझारूपन, मार्कण्डेय के व्यक्तित्व में कुछ परस्पर विरोधी विशेषताएं घुली–मिली हैं। एक ओर जहाँ आरंभ से ही उनका व्यक्तित्व कोमल रहा है, वहीं दूसरी ओर जन सामान्य पर होने वाले अन्याय, दमन को देखकर

उनके भीतर का इन्सान क्रुद्ध भी हो उठा है। किसानों और मजदूरों की दुर्दशा को देखकर उन्होंने बचपन से ही ठान लिया था कि वे पढ़–लिखकर नौकरी नहीं करेंगे, बल्कि शोषितों के हक के लिए लड़ेंगे। यही कारण है कि तत्कालीन लोकप्रिय समाजवादी नेता आचार्य नरेंद्र देव की कांग्रेस समाजवादी पार्टी से जुड़कर राजनीति में सक्रिय रहे। प्रतापगढ़ के सुदूर गाँवों में जाकर तथा मंच पर भाषण देकर लोगों में जमींदार, सामंत तथा तालुकेदारों के खिलाफ क्रांति के चेतना जगाते रहे। उनके ध ाारा–प्रवाह भाषण सुनकर गाँव के लोग मंत्र–मुग्ध हो जाते थे। यों अपनी युवावस्था में ही मार्कण्डेय ने निर्भीकता, जुझारूपन तथा प्र खर नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया। यह दूसरी बात है कि आगे चलकर पार्टी में वैचारिक मतभेद के कारण पार्टी से दूर हो गए। परंतु उन्होंने मार्क्सवादी विचारधारा के आलोक में ही साहित्य के माध्यम से अपना कार्य आगे भी बरकरार रखा।

ईमानदारी और सत्यवादिता, मार्कण्डेय सर्वहारा वर्ग के किसान, मजदूरों की विकास के प्रति समर्पित रचनाकार हैं। वे आरंभ से ही सत्य के प्रखर पक्षधर रहे हैं। उनके मत से प्रबुद्ध लोग सच्चाईयों से आँख नहीं चुराते। उनका व्यक्तिगत जीवन विचारों के आड़े नहीं आता। लाभ–हानि की चिंता रखकर कदम उठाने वाले लोगों की कभी कोई पहचान नहीं बनती। वे सदा भयग्रस्त बने रहते हैं। अपने लौकिक जीवन में उन्होंने सत्य और प्रामाणिकता को सर्वोपरि माना है। यही कारण है कि स्वतंत्रता के पूर्ववर्ती काल में विद्यार्थी दशा में जब प्रतापगढ़ के प्रतापबहादूर कॉलेज में एक दिन तिरंगे झंडे के साथ पकड़े गए और प्रिंसीपल के पूछे जाने पर कि – तिरंगा कहाँ से मिला तब सत्यनिष्ठ छात्र मार्कंडेय ने बताया था कि तिरंगा झंडा उनके बाबा का दिया हुआ है। अंग्रेजों के सम्मुख बिना डरे सही–सही उत्तर देना उनकी सत्यवादिता और निर्भीकता का परिचायक है। आप विद्रोही और संघर्षशीलता के कथाकार हैं साथ ही प्रतिबद्धता के साथ समर्पणशील साहित्य साधक है।

सम्मान एवं पुरस्कार, मार्कण्डेय ने किसान परिवार में

जन्म लेकर किसानों, मजदूरों, शोषितों के बीच रहकर उनके यथार्थ को जिया है और उसी को अपनी कहानियों और उपन्यासों में अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्रेमचंद के बाद मार्कण्डेय अकेले एक ऐसे लेखक हैं, जिनकी पूरी रचनाशीलता गाँव तथा वहाँ के गरीब किसानों और भूमिहीन खेतीहर मजदूरों के यथार्थ चित्रण के लिए समर्पित है। उनकी समस्त कहानियों का उद्‌देश्य शोषण और अन्याय के विरूद्ध निरंतर संघर्ष करना है।

मार्कण्डेय बहुआयामी प्रतिभा के एक धनी रचनाकार हैं। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी साहित्य को मार्कंडेय ने ग्रामीण जीवन के धरातल पर एक मजबूत आधार प्रदान किया है। वे प्रगतिशील चेतना के रचनाकार हैं। स्वातंत्र्योत्तर गतिरोध के काल में नई कहानी और कहानीकार साहित्य के केन्द्र बन गए। इसका एक कारण मार्कण्डेय और उनकी कहानियां भी हैं। यथार्थ चित्रण मार्कण्डेय की कहानियों का प्रमाण है। यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने भारत का ग्रामीण परिवेश चुना क्योंकि यहाँ का यथार्थ शहरों के यथार्थ से भिन्न और भयावह था। भारतीय ग्रामीण जनों की स्व. तंत्रता के प्रति जुड़ी हुई आशा–आकांक्षाएँ भ्रम साबित हुई थी। शहर में रहने वालों का इस तरफ ध्यान नहीं था। शहर के मध्यवर्ग को विषय बनाकर जो काम मोहन राकेश, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा, उषा प्रियंवदा, अमरकांत आदि कहानीकार कर रहे थे, ग्रामीण परिवेश को लेकर वही काम मार्कण्डेय जी, शिवप्रसाद सिंह, भैरवप्रसाद गुप्त, मध् ाुकर सिंह करते रहे। इस तरह स्वातंत्र्योत्तर युग में एक बार फिर हिन्दी कहानी को ग्रामीण जीवन के धरातल पर ले जाकर प्रेमचन्द की परंपरा के साथ जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य मार्कण्डेय और उनके साथियों ने किया। डॉ. बलभद्र के शब्दों में– बीसवी सदी का साध ाारण भारतीय जीवन जो बुनियादी रूप से किसानों, मजदूरों या इनके घरों से आए लोगों का जीवन है, प्रेमचन्द के कहानी साहित्य के बाद मार्कण्डेय की कहानियों में बहुत सशक्त कलात्मक अभिव्यक्ति है।

मार्कण्डेय की कहानियां

"जिन रचनाकारों ने सामाजिक यथार्थ को जागरूक दृष्टि से व्यंजित करने वाली प्रेमचन्द, निराला, राहुल सांस्कृत्यायन, यशपाल, रांगेय राघव आदि कहानीकारों की परंपरा को सही मायनों में और आगे बढ़ाया उनमें भीष्म साहनी, रेणु, हरिशंकर परसाई, अमरकांत, भैरवप्रसाद गुप्त, नागार्जुन, शेखर जोशी के साथ मार्कण्डेय का भी नाम शामिल है। सामाजिक दृष्टि से समाजवादी दृष्टि तक की यथार्थवादी मंजिल इन कहानीकारों ने तय की थी। रूपवादी कहानीकारों की तुलना में ये वस्तुवादी नहीं थे लेकिन द्वंदात्मक संबंधों को पहचानते थे और रचनात्मक स्तर पर चरितार्थ करते थे। रूपवादी सीमाओं और वस्तुवादी संसरों का अतिक्रमण कर इन कहानीकारों ने हिंदी कहानी साहित्य को एक से एक अच्छी रचनाएँ दी।"5

इन सभी लेखकों से अलग धरातल पर भी मार्कण्डेय ने अपना स्थान निश्चित किया है। आनंद प्रकाश के अनुसार– "कला में उनका जो विश्वास है वह हिंदी में आसानी से नहीं मिलेगा। उनकी कहानियाँ सहज दिखते हुए भी निबंध का कसाव लिए होती हैं। आदि से अंत तक स्पष्ट निश्चित मूर्त और वास्तविक दिखाई देती हैं। मार्कण्डेय जीवन के विभिन्न पक्षों तथा अनेक समस्याओं को अभिव्यक्ति देने का कार्य अपने लेखन साहित्य में करते हैं।"6

मार्कण्डेय ग्रामीण जीवन के सशक्त कहानीकार रहे हैं। इनकी ग्रामीण जीवन पर आधारित कुछ कहानियाँ अंचलों की विशिष्टता को निरूपित करने के कारण आंचलिक हैं। जैसे जौनपुर बनारस की सरहद पर गोमती के दक्षिण में परानपुर के मजदूरों का संघर्ष, महुआ और उसकी विशिष्टता आदि कहानियों की कथ. ावस्तु तथा अग्निबीज उपन्यास में चित्रित सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं के साथ–साथ रामपुर सेनपुर के लोकजीवन उनके संस्कार आदि से ग्रामीण अंचल परिवेश में परिवर्तन हो जाता है। वस्तुतः प्रेमचन्द की परंपरा को ही आगे बढ़ाया है जिसमें गाँव का यथार्थ तेजी से उभरा है। जिस तरह होरी को निराश, हारा हुआ पाते हैं, उसी प्रकार बेचन भी अपनी समस्याओं के सामने घ ाुटने टेकता है। पुराने संस्कारों की जड़ता तथा अंध ा–विश्वास, रूढ़ियों की जकड़न इनकी कहानियों में चित्रित हुई हैं।

मार्कण्डेय के पानफूल संग्रह से लेकर बीच के लोग में तथा सेमल का फूल, अग्निबीज उपन्यास में विविध विषयों का तांता लगा हुआ है। ग्रामीण किसान उच्च वर्ग के सामंती संस्कार उनकी बहुबेटियाँ वहाँ की प्रकृति, उनका संघर्ष, पंचवर्षीय योजनायें, स्व. ातंत्रयोत्तर भारत की आशा–आकांक्षाओं की पूर्ति न होने के फलस्वरूप उत्पन्न मोहभंग की स्थिति, अत्याचार, भ्रष्टाचार, अंध ाविश्वास, शहरी वातावरण, उन चरित्रों की मनः स्थितियाँ, प्रेम, काम संबंध आदि। इन सभी की तह तक जाकर मार्कण्डेय ने कहानी के जीवन्त प्रवाह से पाठक के दिलोदिमाग को झंकृत किया है।

मार्कण्डेय की कहानियों में अनेक विषय ऐसे हैं, जिनको लेखक ने अपने निजी जीवन में स्वयं भोगा है, परखा है। लेखक अपनी स्वानुभूति के आधार पर ग्रामीण जीवन का संघर्ष, किसानों की भूमि संबंधी समस्याएँ, स्वातंत्रयोत्तर भारत में बनती–बिगड़ती स्थितियाँ और शहरी जीवन के उपभोक्ता समाज आदि को स्वयं महसूस किया है। स्वतंत्रता आंदोलन के उपरांत भी न्यायदेवता के आँखो पर से पट्टी नहीं हटी परिणामस्वरूप गाँवों का आम वर्ग भ्रष्टाचार की चक्की में पिसता रहा। ग्राम पीड़ितों को सामंतों के, जमींदारों तथा ठेकेदारों के चंगुल से बचानेवाला कानून अब तक कार्यान्वित नहीं हो पाया है। भूदान, आदर्श कुक्कुट गृह, बीच के लोग आदि कहानियाँ कटु वास्तविकता के ज्वलंत उदाहरण हैं। जमींदार प्रथा के उन्मूलन, भूमिसुधार, भूमिहीनों को भूमि प्रदान करना, मशक्कत करने वालों के कायदे कानून की बात कागज पर लिखी हुई रहती है। सारी प्रगतिशील योजनाओं के बावजूद भारतीय गाँवों के जमींदारों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ वे उसी सामाजिक व्यवस्था में जीवन जी रहे हैं जिसमें वे स्वतंत्रता पूर्व काल में जी रहे थे।

मार्कण्डेय ने गाँवों में द्रष्टव्य अकाल, मूल्य–विघटन, भ्रष्टाचार, पुरातन जर्जर परंपराएँ, मिन्नत–मनौति, शकून–अपशकून, अशिक्षा आदि अंधविश्वासों को भी उद्घाटित किया है। इस तरह उनकी कहानियाँ वैविध्यपूर्ण है। जिसमें उन्होंने ग्राम–जीवन की तमाम विसंगतियों एवं बारीकियों को बड़े मनोयोग से प्रस्तुत किया है। उनकी कहानियों को पढ़कर सुखद अनुभूति इस कारण होती है कि वर्तमान वितृष्णापूर्ण(सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक और सांस्कृतिक) वातावरण के होते हुए भी कहानियों में कहीं भी विकल्पहीनता के दर्शन नहीं होते। इसके विपरीत हर बार वे आगे की राह का संकेत करते हैं। मार्कण्डेय की कहानियों से यह स्पष्ट होता है कि सत्ताध ारी वर्ग, प्रशासन–तंत्र और तथाकथित सभ्य समाज द्वारा श्रमजीवी वर्ग का निरंतर शोषण और उपेक्षा उनकी नीति बन गई है। अतः आजादी के साठ वर्षों के बाद आज भी भारत का ग्रामीण श्रमजीवी वर्ग दो वक्त की रोटी जुटाने में असमर्थ है। मार्कंडेय की दृष्टि में इससे मुक्ति का उपाय आत्मक्लेश नहीं आमूल क्रांति है। मार्कण्डेय ग्रामीण भारतीय समाज तथा उससे संबद्ध यथार्थ को ही अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाते हैं। ऐसा करते हुए वे गाँवों के भूमिहीन किसान, मजदूर, दलित एवं निम्नवर्गीयों कि निरंतर शोषण को सम. ाप्त कर देश व्यापी समता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। मार्कण्डेय की कहानी में ग्रामीण जीवन से संबंद्ध सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक सांस्कृतिक क्षेत्रों की लगभग सभी समस्याओं को न केवल उठाया गया है, बल्कि वर्तमान संदर्भों में उनके निराकरण के उपाय भी बतलाए गए हैं।

मार्कण्डेय स्वातंत्रयोत्तर ग्रामीण भारतीय समाज के सजग व्या ख्याता हैं। अतः उनके ग्राम केंद्रीय कहानी साहित्य में वैचारिक प्र खरता के दर्शन होते हैं। मार्कण्डेय जनवादी चेतना के साहित्यकार हैं। मार्क्सवाद का उन पर गहरा प्रभाव है। अतः वे शिल्प की अपे क्षा कथ्य को अधिक महत्व देते हैं। मार्कण्डेय की भाषा प्रतीकों से युक्त बिंबात्मक, सरल, स्वाभाविक, मुहावरेदार, लोकोक्तियों से युक्त ग्रामीण परिवेश के अनुकूल है। अतः उससे गाँव की मिट्टी की सोंधी गंध आती है। मार्कंडेय प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले और समृद्ध करने वाले एक समर्थ रचनाकार सिद्ध होते हैं।

निष्कर्ष

अंततः यह कहा जा सकता है कि मार्कण्डेय निर्विवाद रूप से ग्रामीण संवेदना के रचनाकार हैं। वे भारत की जमीन से जुड़े साहित्यकार हैं, उनकी संलग्नता और लगाव मूलतः ग्रामीण जीवन के प्रति है। उनके संख्यात्मक दृष्टि कम किन्तु गुणात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ कहानी के अध्ययन से प्रतीत होता है कि वे कहीं भी जमीन से कटे नहीं हैं। ग्राम समाज और जीवन के अनेक अनछुए पहलुओं को अपने संपूर्ण कहानियों के जरिए पाठक समाज के सम्मुख उद्घाटित कर दिया है। उनकी संपूर्ण कहा. नियां प्रेमचन्द्र की परम्परा की अगली कड़ी और भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर से कम नहीं हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 मार्कण्डेय की कहानियाँ, महुए का पेड़, मार्कण्डेय, पृष्ठ 112

2. मार्कण्डेय की कहानियाँ, भूदान, भूमिका भाग पृष्ठ 247

3 अग्निबीज, मार्कण्डेय, पृष्ठ 131

4 मार्कण्डेय की कहानियाँ, महुए का पेड़, मार्कण्डेय, पृष्ठ 112

5 मार्कण्डेय की कहानियाँ, महुए का पेड़, मार्कण्डेय, पृष्ठ 112

6 मार्कण्डेय की कहानियाँ, महुए का पेड़, मार्कण्डेय, पृष्ठ 112

****

वैश्वीकरण हिन्दी भाषा और साहित्य

डॉ.निर्मला जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर
स.भ.सिंह रा.स्ना.महाविद्यालय
रुद्रपुर, (उधम सिंह नगर)उत्तराखंड

वैश्वीकरण अर्थात भूमण्डलीकरण का तात्पर्य विश्व के प्रत्येक देश का अन्य देशों के साथ किसी वस्तु, सेवा, विचार, पूंजी, अथवा सिद्धांत का अप्रतिबंधित आदान-प्रदान से होता है। वैश्वीकरण का प्रभाव तकनीकी, सामाजिक, आर्थिक, एवं साहित्यिक क्षेत्रों पर पड़ता है। वैश्वीकरण के इस युग में मानव की एक प्रजाति दूसरी प्रजाति के अधिक निकट आई है, जिससे विश्व शांति को भी बढ़ावा मिला है एवं उनके बीच सभ्यता संस्कृति का आदान-प्रदान हुआ है। आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया में विश्व की भाषाएं भी अछूती नहीं रही है। भारत जैसे विकासशील देशों को वैश्वीकरण का अधिक लाभ हुआ है और पूरे विश्व में हिंदी – भाषा, साहित्य, सभ्यता - संस्कृति का आदान-प्रदान हुआ है।

वर्तमान में हिंदी केवल शिक्षा और साहित्य की भाषा की परिधि तक ही सीमित नहीं रह गई है। वैश्वीकरण के दौर में हिंदी वैश्विक परिदृश्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना रही है। हिंदी विदेशी भाषाओं के शब्दों को स्वयं में आत्मसात करने की क्षमता रखती है अर्थात हिंदी भाषा का लचीलापन उसके विकास में सहयोगी सिद्ध हुआ है। उपभोक्तावादी संस्कृति ने भी हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार में काफी योगदान दिया है। बाजार के दृष्टिकोण से बहुराष्ट्रीय कंपनियां विज्ञापनों और बाजार की भाषा को समझने के लिए हिंदी की ओर अग्रसर हो रही है, हालांकि यह एक लाभ केंद्रीय दृष्टिकोण ही है परंतु इससे भाषायी प्रसार तो हो ही रहा है इससे इनकार नहीं किया जा सकता है। वैश्विक फलक में हिंदी तीसरी सबसे अधिक बोले जाने वाली भाषा का स्थान प्राप्त कर चुकी है।

कोई भी भाषा अभिव्यक्ति और संप्रेषण मौखिक रूप के साथ-साथ लिखित साहित्य के रूप में भी करती है। हिंदी के वैश्विक रूप पर स्थापित होने के पीछे इसमें रचित उत्तम साहित्य का बड़ा योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त हिंदी साहित्य को वैश्विक साहित्य की कोटि में बहुत बड़ा योगदान प्रवासी भारतीयों का भी रहा है। पूरे विश्व के 150 से अधिक देशों में हिंदी के शिक्षण केंद्र खोले गए है जिस कारण हिंदी की व्यापकता दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। अकेले अमेरिका जैसे देश में साठ विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्यापन हो रहा है, वहां हिंदी सीखने वालों की तादाद बढ़ रही है। वहां भारत के बारे में जानकारी हासिल करने के लिए पहले हिंदी की जानकारी होना आवश्यक है, इसके लिए हिंदी फिल्मों व साहित्य के माध्यम से भी हिंदी सीखी जा रही है। विदेशी छात्र बड़ी संख्या में यहां की भाषा–साहित्य, कला-संस्कृति के अध्ययन हेतु आ रहे है।

सूचना एवं प्रौद्योगिकी के इस युग में व्यक्ति इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से हर वक्त दुनिया की खबरों व घटनाओं पर नजर रखे हुए हैं। इंटरनेट, टीवी, रेडियो के माध्यम से हिंदी वैश्विक स्तर पर नये आयाम छू रही है। हिंदी समाचार पत्र व पत्रिकाएं भी जनसंचार का प्रमुख एवं लोकप्रिय माध्यम बन चुके हैं। इंटरनेट पर ब्लॉग की बहार आने से हिंदी लिखने पढ़ने वालों ने भी इसमें रुचि दिखाई है। इंटरनेट के माध्यम से कविताएं, कहानियां, समाचार आदि का अध्ययन किया जा रहा है। हिंदी भाषा में ई बुक्स का प्रचलन धीरे-धीरे बढ़ने लगा है। संचार माध्यमों के सहारे हिंदी भाषा की संप्रेषण क्षमता का विकास हो रहा है। फिल्म व विज्ञापन तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी क्षेत्र में हिंदी ने दिखा दिया है कि वह समय में बदलावों के अनुरूप अपने को ढालने में बेहद सक्षम है। देसी विदेशी भाषाओं के शब्दों को सरलता से आत्मसात करने की शक्ति के कारण हिंदी विश्व में अपनी अलग छाप छोड़ने में सफल रही है। हिंदी भाषा में विदेशी शब्दों का भी खूब उपयोग हुआ है। व्यावसायिक शिक्षा में प्रगति के कारण अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग बहुतायत में होने लगा है क्योंकि अधिकतर व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम अंग्रेजी में ही उपलब्ध है। वैश्वीकरण के प्रभाव के कारण भाषायी विकृति भी आयी है, समाज के दर्पण के रूप में साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। साहित्य भी संचार का माध्यम ही होता है, जो सूचनाओं का व्यापक संप्रेषण करता है। संचार माध्यमों के सहारे हिंदी भाषा की भी संप्रेषण क्षमता बहुमुखी विकास हो रहा है राष्ट्रीय ही नहीं विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय चैनल में हिंदी सब प्रकार के आधुनिक संदर्भों को व्यक्त करते हुए अपने सामर्थ्य को विश्व पटल पर प्रमाणित कर रही है।

हिंदी के वैश्विक विस्तार का बड़ा श्रेय संचार माध्यमों को जाता है परंतु सामान्य बोलचाल की भाषा एवं साहित्य की सृजन की भाषा में अंतर होता है। साहित्य सृजन की भाषा में जहां व्याकरण के नियमों का पूरा ध्यान रखा जाता है वहीं सामान्य बोलचाल की भाषा में समाज एवं क्षेत्र का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। हिंदी व्याकरण की दृष्टि से एक समृद्ध भाषा है भारत की प्रमुख संपर्क भाषा होने के कारण यह पूरे देश को एक भावनात्मक एकता के सूत्र में बांधने में सक्षम है।

वैश्वीकरण के कारण किसी भी भाषा में दूसरी भाषा का प्रयोग बहुतायात में होने लगा है, हालांकि ऐसी मिश्रित भाषा विभिन्न भाषा - भाषियों के बीच वाक् सेतु का कार्य करती है, परंतु भाषा की गरिमा के दृष्टिकोण से यह जनता का विषय है। चूँकि भाषा अपने यहां की संस्कृति-सभ्यता की संरक्षक व वाहक होती है इसलिए भाषा की गरिमा के नष्ट होने से सभ्यता-संस्कृति पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में समाचार पत्रों और टेलीविजन के कार्यक्रम में ऐसी ही मिश्रित भाषा का प्रयोग किया जा रहा है,जिस कारण युवा वर्ग ने इसे अपने सक्रिय भाषा कोष में शामिल कर लिया है। इसलिए इस सब का प्रभाव आम आदमी पर पढ़ना स्वाभाविक है। यदि भाषाई गरिमा एवं व्याकरण के कुछ अन्य पहलुओं को छोड़ दिया जाए तो हिंदी बोलने वालों की संख्या में वृद्धि होने से हिंदी को लाभ ही होगा।

देसी विदेशी भाषाओं के शब्दों को सरलता से आत्मसात करने की शक्ति के कारण हिंदी विश्व में अपनी अलग छाप छोड़ने में सफल रही है। पूरी दुनिया की निगाह में पर्यावरण वर्ष, महिला वर्ष आदि की तरह भाषा का प्रश्न भी महत्वपूर्ण हो गया है। इसलिए यूनेस्को ने वर्ष 2008 को अंतर्राष्ट्रीय भाषा

वर्ष घोषित किया था, इससे भी भाषायी अस्मिता को मजबूती मिली है। प्रत्येक देश की पहचान का प्रमुख आधार उसकी भाषा होती है, भारत में भी राष्ट्रभाषा का बढ़ावा देने के लिए प्रत्येक वर्ष 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाया जाता है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भारत व भारतीयों का मजबूती से उभर कर आने एवं नई बाजार व्यवस्था के इस दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के भारत में आने के कारण हिंदी भाषा को सीखने और समझने वालों की संख्या में बढ़ोतरी हो रही है। बहुराष्ट्रीय कंपनियां बाजार की मांग और भारत की आर्थिक साथ में वृद्धि के कारण विशाल हिंदी समुदाय को अपनी ओर आकर्षित करने हेतु अपने उत्पाद के प्रचार – प्रसार के लिए हिंदी भाषा का प्रयोग कर रही है।

वैश्वीकरण के कारण पाश्चात्य संस्कृति को बढ़ावा मिला है, पाश्चात्य संस्कृति को ही लोगों द्वारा आधुनिकरण की प्रक्रिया समझा जाने लगा है इसलिए लोग अपनी भाषा संस्कृति एवं साहित्य को भूल रहे हैं। जीवन साहित्य का आधार होता है जहां जीवन के बिना साहित्य की कल्पना असंभव है , वही साहित्य के बिना जीवन एवं सम्यक विकास असंभव है।

आज विश्व फलक में हिंदी अपनी विशिष्ट पहचान बना रही है एवं वैश्विक संवाद की भाषा बन रही है। हिंदी भाषा स्वाभाविक रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषा बनने की वास्तविक हकदार है। अपने साहित्य एवं ज्ञान के क्षेत्र में योगदान के बल पर हिंदी अंतरराष्ट्रीय भाषा के रूप में विश्व मंच पर स्थापित हो रही है तथा विश्व भाषा बनने की ओर अग्रसर है।

हिंदी साहित्य की भक्तिकालीन अनुपम कृति रामचरितमानस की लोकप्रियता विश्वभर में फैली हुई है। हिंदी साहित्य के प्रति विदेशी विद्वानों की रुचि प्राचीन समय से ही चली आ रही है इन्हीं विद्वानों के माध्यम से हिंदी साहित्य कृतियां अनुवादित होकर विश्व के कोने-कोने तक अपनी पहुंच बना रही है। हिंदी साहित्य को दुनिया भर में विस्तारित करने का श्रेय उन बहुत सी संस्थाओं को भी जाता है जो विदेशी भूमि पर रहकर भी अपनी भाषा और संस्कृति के प्रचार-प्रसार में लगे हुए है जैसे - मॉरीशस हिंदी संस्थान, विश्व हिंदी सचिवालय, हिंदी सोसायटी सिंगापुर, हिंदी परिषद नीदरलैंड, युवा हिंदी संस्थान अमेरिका।

उषा प्रियवंदा, अभिमन्यु अनंत, तेजेंद्र शर्मा आदि प्रमुख प्रवासी साहित्यकार हिंदी सेवी बनकर हिंदी भाषा के साहित्य को वैश्विक साहित्य बनाने के लिए निरंतर प्रयासरत है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. हिन्दी भाषा का वैश्विक परिदृश्य – डॉ. वेद प्रकाश उपाध्याय
2. हिन्दी भाषा का भूमंडलीकरण – सुषम बेदी
3. भूमंडलीकरण : साहित्य,समाज और संस्कृति – डॉ. रेनू

****

भ्रमरगीत-परम्परा और उद्धव-शतक

-पीयूष कुमार (शोधार्थी)

हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग

जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय, रायां सुचानी बगला,

ज़िला सांबा, जम्मू-कश्मीर –181143

हिन्दी साहित्येतिहास में कृष्णकाव्य से सम्बन्धित भ्रमरगीत की परम्परा बहुत अर्वाचीन नहीं है बल्कि यह परम्परा संस्कृत साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य तक के व्यापक अन्तराल को समेटती है। हिन्दी कविता में यह परम्परा भक्तिकाल से लेकर रीतिकाल और आधुनिक काल में भी देखने को मिलती है। कुछ कवियों के यह मुख्य रूप से तो कुछ के यहाँ गौण रूप से परिलक्षित होती है। भ्रमरगीत की परम्परा का उपजीव्य ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत' का दशम स्कन्ध है। इस ग्रन्थ के मुख्यतः छियालिसवें और सैतालिसवें अध्याय में परवर्ती भ्रमरगीत-काव्य के सूत्र बिखरे पड़े हैं। भागवत के पश्चात उपालम्भ के रूप में भ्रमरगीत की परम्परा महाकवि कालिदास के विश्वविख्यात नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' में प्रथमतः परिलक्षित होती है। महाकवि कालिदास से प्रारम्भ हुई यह परम्परा कालान्तर में संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत व अपभ्रंश से होती हुई हिन्दी साहित्य में बड़े ही मार्मिक और व्यापक रूप से प्रसरित हुई। कहना न होगा कि हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में यह परम्परा अपनी उच्चतम दशा को प्राप्त होती है, विशेषकर सूरदास के यहाँ। यद्यपि कृष्णकाव्य धारा और अष्टछाप के लगभग सभी कवियों के यहाँ इस परम्परा की उपस्थिति देखी जा सकती है तथापि महाकवि सूरदास के यहाँ यह परम्परा जिस मार्मिकता और चरमावस्था को प्राप्त होती है, निःसंदेह वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

भ्रमरगीत-परम्परा के सभी काव्यों का कथ्य लगभग एक समान है पर उसकी अभिव्यक्ति किञ्चित भिन्न है। अपने समय, समाज की परिस्थितियों और परिवर्तनों के कारण कवियों की अभिव्यक्ति में भी परिवर्तन आ गया है। कथा का सार इस प्रकार है कि कृष्ण ब्रज में रहते हुए तमाम लीलाएँ करते रहे हैं। समस्त ब्रजवासी उनके प्रेम के दीवाने हो गए थे। गोपियाँ तो इस क़दर उनके प्रेम में आबद्ध थीं कि वे अपना सब कामकाज छोड़कर उनके ही इर्दगिर्द अपने को पाकर धन्य मानती थीं। समूचा ब्रजमंडल एक प्रकार से कृष्ण के प्रेम में सम्मोहित हो गया था। यह प्रेमलीला अपने उन्वान पर ही थी कि इसी बीच कृष्ण का मथुरा से बुलावा आ जाता है। ब्रजवासी भी सन्तोष कर लेते हैं कि चलो कुछ हो दिन की तो बात है। कृष्ण अपना काम निपटाकर शीघ्र ही लौट आएँगे। लेकिन नियत ने कुछ और ही तय कर रखा था। एकबार कृष्ण अक्रूर के साथ रथ पर सवार होकर मथुरा गए तो फिर लौटे नहीं। यही विरह ब्रजवासियों के लिए जीवन-मरण का सबब बन गया। अपने मामा कंस को मारकर उन्होंने अपने पितरौ को कारागार से मुक्त करवाया। और राजकाज में संलग्न हो गए। इधर राधा अन्य गोपियों सहित कृष्ण के लौटने की प्रतीक्षा में रत थीं और उधर कृष्ण राजकाज में इस क़दर उलझे कि उलझते ही चले गए। हालाँकि उन्हें ब्रज कभी बिसरा नहीं लेकिन चाहकर भी वे ब्रज लौट नहीं पाए। यह बात कितनी हृदयविदारक है कि गोपियाँ चाहकर भी मथुरा नहीं जा पायीं और कृष्ण चाहकर भी ब्रज नहीं जा पाए। यही तड़पन कवियों के काव्य का आधार बनी। कवियों की निजी पीड़ा का इस तड़पन से साधारणीकरण हुआ और उन्होंने आँसुओं की स्याही से बोर-बोरकर इसे काग़ज़ पर उकेर दिया।

अब जहाँ तक बात भ्रमरगीत के शुरूआत की है तो वह विभिन्न कवियों के यहाँ भिन्न-भिन्न रूपों में आयी है। किन्तु सभी का सार कमोबेश

एक है। और वह है उद्धव का ब्रज आना। उद्धव कृष्ण के सखा और निर्गुण पंथ के प्रबल हिमायती थे। वे प्रेम और भक्ति को बहुत तवज्जो नहीं देते थे। उनके अनुसार प्रेमादि सभी माया-मोह है। क्षणिक और कोरी भावुकता है। ज्ञान ही सबकुछ है और ज्ञान के द्वारा ही उस ब्रह्म तक पहुँचा जा सकता है। उन्हें अपने ज्ञान का अभिमान हो चला था। जब यह बात कृष्ण हो पता चली तो उन्हें यह बात नागवार गुजरी। अभिमान, ज्ञान को खा जाता है। इसलिए अपना सखा होने के नाते कृष्ण ने उद्धव को अभिमान से मुक्त करने की सोची। फलतः उन्होंने उद्धव को अपने संदेशवाहक के रूप में ब्रज भेज दिया। कृष्ण का उद्देश्य उद्धव के मन में घर कर गए नीरस व शुष्क ज्ञानमार्ग को भक्ति व भक्तिमार्ग से सरस् और उदात्त बनाना था। ब्रज पहुँचकर उद्धव जब अपने ज्ञान की गठरी खोलते हैं तो गोपियों को इस गठरी से निकला ज्ञान अपनी अनुभूतियों के सर्वथा प्रतिकूल जान पड़ता है। प्रेम में दग्ध गोपियों को उद्धव की ज्ञानोक्तियाँ जले में नमक की भाँति लगती हैं और वे बड़ी ज़ोर से छरछरा उठती हैं। अब चूँकि गोपियों को उद्धव के सामने अपने स्त्रियोचित व्यवहार को ध्यान में रखना था और उन्हें इस बात की भी सावधानी बरतनी थी कि उद्धव उनके प्रियतम कृष्ण के यहाँ से आए हैं। चूँकि प्रेम का ऐसा विधान है कि प्रेमी से जुड़ी हर चीज़ प्रिय होती है। अतएव रोषातिरेक में ऐसी कोई बात न निकल जाए जिससे प्रियतम या प्रियतम से जुड़े किसी व्यक्ति को कष्ट हो। मानो गोपियों की इस दशा से भ्रमर (भौंरा) को सहानुभूति हुई और दैवयोग से उड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। अँधे को क्या चाहिए? दो आँखें। भौरे ने गोपियों का काम आसान कर दिया। डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। इसके बाद उस भौरे की आड़ लेकर गोपियों ने उद्धव महाराज को जो लानत-मलानत की, वही भ्रमरगीत काव्य-परम्परा का सार है; जिसे विभिन्न कवियों ने भिन्न-भिन्न भिन्न ढंग से व्यक्त किया है।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि भ्रमरगीत की परम्परा सूरदास के यहाँ श्रेष्ठतम रूप में मिलती है। सूरदास के काव्य में यह परम्परा आचार्य शुक्ल द्वारा संपादित सूरसागर के अंश 'भ्रमरगीत सार' में व्यापक रूप से दृष्टिगोचर होती है। यहाँ यह परम्परा लगभग चार सौ पदों में विस्तृत है। सूरदास की गोपियाँ वाद विदग्धता में बड़ी निपुण हैं। उनकी तर्कशीलता देखते बनती है। वे उद्धव को खरी खोटी सुनाने में भी पीछे नहीं रहतीं –

"बिलग जनि मानहु, ऊधौ प्यारे!
वह मथुरा काजर की कोठरि, जे आवहिं ते कारे।
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भाँवरे।।" (1)

सूरदास का भ्रमरगीत वस्तुतः ज्ञान पर भक्ति की, निर्गुण पर सगुन की और तर्क पर आस्था की विजय है। सूरदास शंकराचार्य के अद्वैत से भलीभाँति परिचित थे। भक्तिकाल की लगभग सभी दार्शनिक विचारधाराओं का प्रस्थान और खण्डन का आधार शंकर का मायावाद ही रहा है। फिर वह चाहे रामानुजाचार्य का 'विशिष्टाद्वैतवाद' हो या फिर वल्लभाचार्य का 'शुद्धाद्वैतवाद'। ध्यातव्य है कि सूरदास की भक्ति जब ज्ञान पर भारी पड़ती है तो उनके मन में ज्ञान के प्रति कोई दुराग्रह नहीं है। आचार्य शुक्ल के शब्दों में कहें तो "वे ज्ञान के विरोधी नहीं, भक्ति-विरोधी ज्ञान के विरोधी हैं" (2)

सूरदास के बाद भ्रमरगीत की परम्परा अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददास के माध्यम से प्रतिष्ठा को प्राप्त करती है। उनके द्वारा रचित 'भँवरगीत' से उनके दार्शनिक विचारों का पता चलता है। उनकी गोपियाँ सूरदास की गोपियों की तरह भावुक कम तर्कशील ज़्यादा हैं। सूरदास भ्रमरगीत में इतने सिद्धहस्त या प्रतिष्ठित हो चुके थे कि कालान्तर में भ्रमरगीत सूरदास का पर्याय ही हो गया। शायद इसीलिए बच्चन सिंह को नन्ददास के भ्रमरगीत को सूरदास की 'देखादेखी' कहना पड़ा। वे लिखते हैं कि – "सूर की देखादेखी नन्ददास ने भ्रमरगीत लिखा। सूर का भ्रमरगीत मुक्तक काव्य है तो नन्ददास का प्रबंधात्मक। सूर में लोक का रंग है तो नन्ददास में शास्त्र का। सूरदास के भ्रमरगीत में गोपी-उद्धव संवाद की स्थितियाँ कम हैं जबकि नन्ददास के भ्रमरगीत में गोपियों और उद्धव का शास्त्रार्थ होता है-कथोपकथन के रूप में। उद्धव कहते हैं - 'सुनो ब्रजनागरी'। इसके उत्तर में गोपियाँ संबोधित करती हैं - 'सखा! सुनि स्याम के'। सूर की गोपियाँ सरल-सहज हैं और नन्ददास की पंडित। सूर की भाषा ठेठ ब्रजी है और नन्ददास की संस्कृतनिष्ठ ब्रजी।" (3)

रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास की सभी रचनाएँ यद्यपि राम पर केन्द्रित हैं तथापि कृष्ण पर भी उनकी एक रचना 'कृष्णगीतावली' मिलती है जिसमें भ्रमरगीत की परम्परा का पर्याप्त निर्वहन हुआ है। तुलसीकृत 'श्रीकृष्णगीतावली' में कुल 61 पद हैं। इनमें से 27 पद उद्धव-गोपिका-संवाद पर आधरित हैं। इन्हीं 27 पदों में तुलसी ने भ्रमरगीत की परम्परा को आगे बढ़ाया है। तुलसी की गोपियाँ सूर की तरह न तो सीधी-सादी ग्रामबालाएँ हैं और न ही नन्ददास की गोपियों की तरह तार्किक और ज्ञानवान विदुषी हैं, अपितु वे मर्यादित हैं। भ्रमरगीत के प्रसंग में भी तुलसी का आदर्शवाद या मर्यादावाद झलकता है। तुलसी की गोपियाँ एक-दूसरे को उद्धव से अमर्यादित ढंग से बात करने के लिए मना करती हैं। उनका कहना है कि उद्धव जी वरिष्ठ हैं और हमारे प्रिय के सखा हैं। वे इस समय श्रीकृष्ण के दूत और हमारे अतिथि हैं, इसलिए हमें उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार करना चाहिए। उद्धव जी ज्ञानी हैं। श्रेष्ठ हैं। ज्येष्ठ हैं। वे जो कह रहे हैं, उचित ही कह रहे हैं। दोष तो हमारा ही है जो हम उनकी बात समझ नहीं पा रही हैं और श्रीकृष्ण के वियोग में अभी भी जिए जा रही हैं। सूरदास की तरह तुलसीदास के यहाँ भी कुब्जा का प्रसंग आया है। तुलसी की गोपियों मर्यादित होकर भी अपनी व्यथा को उद्धव के समक्ष बड़ी ही शालीनता और सौम्यता के साथ कह देती हैं। वे उद्धव पर न तो कटाक्ष करती हैं और न हीं व्यंग्य के बाण छोड़ती हैं, अपितु दुःखी होकर दया की याचना करती हैं –

"ऊधौ या ब्रज की दसा बिचारौ।
ता पाछे यह सिद्धि आपनी जोग कथा बिस्तारौ।।
जा कारन पठए तुम माधव, सो सोचहु मन माहीं।
केतिक बीच बिरह परमारथ, जानत हौ किधौ नाहीं।।
जेहिं उर बसत स्यामसुन्दर घन, तेहि निर्गुन कस आवै।
तुलसिदास सो भजन बहावौ, जाहि दूसरो भावै।। (4)

तुलसीदास के अलावा रहीम ने भी 'फुटकर छन्द तथा पद' के नाम से कतिपय पदों की रचना की है। रहीम द्वारा वर्णित सखियों को भी मोहन की प्रीति भुलाए नहीं भूलती। वे भी कृष्ण के वृन्दावन आने की बाट जोहती रहती हैं। संयोगावस्था में जो बातें मन को आह्लादित करती थीं, वियोगावस्था में वही दुःखदायी हो गयी हैं। उनके मन से पल भर के लिए भी कृष्ण की स्मृति दूर नहीं होती। कृष्ण का मन्द-मन्द मुस्कुराना उन्हें भूल नहीं रहा है –

"कमल दल नैननि की उनमानि।
बिसरत नाहिं सखी मो मन ते मन्द मन्द मुसुकानि।।
अनुदिन श्री वृन्दाबन ब्रज तें आवन जावन जानि।
अब रहीम चित ते न टरति है सकल स्याम की बानि।। (5)

कृष्णभक्ति काव्यधारा में रसखान का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। भ्रमरगीत परम्परा का उल्लेख करते हुए रसखान का नाम नहीं छोड़ा जा सकता। हालाँकि उन्होंने स्वतंत्र रूप से तो भ्रमरगीत का प्रणयन नहीं किया है, लेकिन 'सुजान-रसखान' के कवित्त और सवैयों में गौण रूप से इस परम्परा का अंशतः विद्यमान है। उन्होंने भी ज्ञान पर भक्ति की प्रतिष्ठा की है। वे बिना गोपियों की आड़ लिए अपने कई पदों कवित्त और सवैयों में भक्ति की श्रेष्ठता का बखान करते चलते हैं। उन्होंने उस निर्गुण को कहाँ-कहाँ नहीं ढूंढा! वेदों-पुराणों में भी खोजा। ऋचाओं का बड़े ही मनोयोग से अध्ययन किया। फिर भी वह इन्द्रियातीत ही रहा। कोई भी जोग-जतन उस निर्गुण निराकार ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं करवा सका। इस निर्रथक भटकन से थक-हारकर रसखान का परिचय जब भक्ति से हुआ तो उन्हें उसकी प्राप्ति हो गयी। उन्हें वह निराकार ब्रह्म कृष्ण के रूप में साकार मिल गया जो कुंज-कुटीर में प्रेम-देवी राधिका के पैर पलोट रहा है –

"ब्रह्म मैं ढूँढयो पुरानन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहुँ न कितूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।।
टेरत हेरत हारि परयो रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देखौ दुरो वह कुंजकुटीर मैं बैठो पलोटत राधिका पायन।। [6]

भक्तिकाल के अतिरिक्त भ्रमरगीत की परम्परा मतिराम, देव, सेनापति, घनानन्द और पद्माकर आदि के रीतिकालीन कवियों के काव्य में भी गौण रूप में मिलती है। रीतिकाल के पश्चात आधुनिक काल में यह परम्परा खड़ी बोली के प्रथम महाकाव्य 'प्रियप्रवास' में देखने को मिलती है। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की राधा समाजसेविका हैं। उनके लिए तो यही अभिधेय है की प्रभु जगहित करें, गेह आवैं चाहे न आवैं। आधुनिक काल में भ्रमरगीत की परम्परा को आगे बढ़ाने में सत्यनारायण 'कविरत्न' का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भ्रमरगीत-परम्परा में उनका नाम सहज ही स्मृति हो आता है। सत्यनारायण 'कविरत्न' की समस्त रचनाओं का संकलन 'हृदय तरंग' शीर्षक से बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रकाशित करवाया है। सत्यनारायण 'कविरत्न' की रचना 'भ्रमरदूत' में भ्रमरगीत की परम्परा का बहुत ही सुन्दर ढंग से निर्वहन हुआ है। सत्यनारायण 'कविरत्न' की गोपियाँ भी सीधी-सादी हैं। वे प्रायः निरक्षर हैं। ज्ञान से वंचित हैं। अभावग्रस्त हैं। दूध-दही खाने में ही अपना पूरा जन्म गँवा दिया है। ऐसा प्रायः देखा गया है कि जो जितना कम पढ़ा-लिखा होता है, वह उतना ही भावुक और संवेदनशील होता है। गोपियाँ ग्रामीण हैं, नागरिक नहीं। इसलिए वे नागरिक-जीवन के छल-छद्म से सर्वथा दूर हैं। वे कृष्ण के दूत उद्धव को अपनी यथास्थिति सहज और स्पष्ट रूप से बता देती हैं –

"पढ़ी न अच्छर एक, ग्यान सपनें ना पायौ।
दूध दही चाटन में, सबरो जन्म गमायौ।। [7]

श्रीमद्भागवत से प्रारम्भ हुई भ्रमरगीत की परम्परा का आधुनिक काल के प्रसिद्ध कवि जगन्नाथदास रत्नाकर के 'उद्धव-शतक' में अवसान होता है। यह इस प्रसंग का संभवतः अन्तिम और श्रेष्ठ काव्य-ग्रंथ है। सन 1866 को काशी में जन्मे जगन्नाथदास रत्नाकर आधुनिक काल में ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवि हैं। खड़ी बोली के युग में उन्होंने ब्रजभाषा में काव्यसृजन किया। "भाषा-संबंधी उनका अध्ययन बड़ा विशाल था। ब्रजभाषा के प्रति अत्यधिक अनुराग के कारण उनकी रुचि पौराणिक कथाओं के नवीनीकरण की ओर हुई। बीसवीं शताब्दी में रहते हुए भी हृदय से वे मध्यकाल में रहते थे।" [8] उनके द्वारा रचित कई ग्रंथों का पता चलता है। वे न केवल ब्रजभाषा बल्कि उर्दू, फ़ारसी, संस्कृत, मराठी, बंगला, पंजाबी और अंग्रेजी के भी अच्छे जानकर थे। उनका रचनाकर्म कविता से लेकर संपादन, अनुवाद, टीका और पत्रकारिता आदि तक व्यापक है। उनकी अनुवाद-कला का श्रेष्ठ उदाहरण 'समालोचनादर्श' है, जो अंग्रेजी के कवि-आलोचक एलेकजेंडर पोप की कृति 'एन एसे ऑन क्रिटिसिज्म' का अनुवाद है। रत्नाकर ने इसका अनुवाद ब्रजभाषा में रोला छंद में किया है। रत्नाकर एक कुशल टीकाकार और संपादक के रूप में 'बिहारी-रत्नाकर' में दिखते हैं। बिहारी के एक-एक दोहे को उन्होंने जिस प्रकार खोल दिया है, उस प्रकार का कार्य आज भी दुर्लभ है। आज तकरीबन नब्बे वर्ष बाद भी उनके द्वारा 'बिहारी सतसई' की टीका का उतना ही महत्त्व है। आज भी बिहारी को जानने-समझने में 'बिहारी-रत्नाकर' एक मील का पत्थर है। यही क्या कम है कि बिहारी के पहले दोहे की टीका में रत्नाकर को तीन पृष्ठ लगते हैं और इस एक दोहे का एक अर्थ नहीं बल्कि तीन-तीन अर्थ व्याख्यायित करते हैं। वे बिहारी की कविताई से बहुत प्रभावित थे। इसीलिए 'बिहारी-रत्नाकर' के प्राक्कथन में उन्होंने अपना बिहारी-प्रेम इन शब्दों में प्रदर्शित किया है – "बिहारी की कोमल-कांत पदावली और प्रशस्त प्रतिभा से प्रभावित होकर हमारा विचार हुआ कि सतसई का एक ऐसा संस्करण प्रकाशित किया जाए जिससे दोहों के यथार्थ भावार्थ पाठकों की समझ में सहज ही आ सके।" [9] निःसंदेह रत्नाकर अपने इस पुनीत-परमार्थ-कार्य में सफल हुए हैं।

जगन्नाथदास रत्नाकर की पहली काव्यकृति 1894 में प्रकाशित 'हिंडोला' है। यह कृति सौ रोला छंदों में राधा-कृष्ण द्वारा वर्षाकाल में झूला झूलने का मनोहारी चित्रण प्रस्तुत करती है। इसके अलावा राजा हरिश्चंद्र के जीवन पर आधारित रत्नाकर विरचित चार सर्गीय खंडकाव्य 'हरिश्चन्द्र' भी मिलता है। 'हिंडोला' और 'हरिश्चन्द्र' के अलावा जगन्नाथदास रत्नाकर की 'कलकाशी', 'गंगा-विष्णु लहरी', 'श्रृंगार-लहरी', 'प्रकीर्ण पदावली', 'रत्नाष्टक', 'वीराष्टक' और 'गंगावतरण' है। रत्नाकर की प्रसिद्धि का कारण 'गंगावतरण' है। तेरह सगों में विभक्त इस ग्रंथ की विषयवस्तु गंगा के धरती पर आने की घटना है। इस ग्रंथ का आधार वाल्मीकि 'रामायण' है। इन ग्रंथों के अतिरिक्त जगन्नाथदास रत्नाकर ने भ्रमरगीत-परम्परा का सफलतापूर्वक निर्वाह अपनी सर्वाधिक लोकप्रिय कृति 'उद्धव-शतक' में किया है। रत्नाकर के समक्ष भ्रमरगीत की एक लंबी परम्परा थी जिससे वे परिचित थे। इस ग्रंथ में सभी का समाहार करते हुए उन्होंने भ्रमरगीत के प्रसंग को नवीन, सरस् और युगानुकूल वर्णित किया। 'उद्धव-शतक' में कुल 117 कवित्त मिलते हैं। प्रारम्भ में एक मंगलाचरण है। किसी प्रकार का भ्रम या गड़बड़ी न हो, इसीलिए रत्नाकर ने संभवतः पूरे कथाप्रवाह को कई शीर्षकों में भी विभक्त किया है। जैसे 'श्री उद्धव को मथुरा से ब्रज भेजते समय के कवित्त', 'श्री उद्धव के ब्रज में पहुँचने के समय के कवित्त', 'गोपी-वचन उद्धव-प्रति' और 'उद्धव के मथुरा लौट आने के समय के कवित्त' आदि। 'उद्धव-शतक' पर सविस्तार बात करने से पूर्व इसकी कथावस्तु का संक्षेप में उल्लेख कर देना समीचीन जान पड़ता है।

'उद्धव-शतक' का प्रारम्भ मंगलाचरण के एक कवित्त से होता है। इस ग्रंथ के पूरे घटनाक्रम केमुख्यतः तीन पड़ाव हैं। पहला है उद्धव का ब्रज जाना। दूसरा है ब्रज जाकर गोपियों को कृष्ण का संदेश देना और तीसरा है उनका मथुरा लौटना। कथा मुख़्तसर-सी यह है कि कृष्ण का ब्रज से मथुरा आगमन हो जाता है। मथुरा आकर वे राजकाज में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि उन्हें ब्रज की ओर पुनः कूच करने का न तो अवसर मिलता है और न ही समय। लेकिन उन्हें

ब्रज बराबर याद आता रहता है। नंद-यशोदा, राधा व अन्य गोपियाँ, गाय चराना, बंशी बजाना, यमुना नदी और वृन्दावन की कुंज-गालियाँ उन्हें रह-रहकर याद आती रहती थीं। एक दिन कृष्ण जब मथुरा में उद्धव के संग यमुना नदी में स्नान कर रहे होते हैं तो नदी के प्रवाह में बहते हुए एक मुरझाए हुए कमल को देखते हैं। उस कमल को उठाकर कृष्ण अपने नाक के पास ले जाते हैं और उसकी सुगन्ध का आस्वादन करते हैं। कमल की उस सुगंध से उन्हें अपनी कमलनयनी राधा की याद आ जाती है और वे तत्क्षण वहीं भूमि पर ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ते हैं। उनको चैतन्य करने के हरचंद प्रयास किये जाते हैं लेकिन कोई लाभ नहीं होता। भला हो एक तोते का जो उड़ते-उड़ते वहाँ आता है और 'राधा' नाम का उच्चारण करता है। राधा का नाम सुनकर कृष्ण की मूर्च्छा दूर होती है और वे राधा की स्मृति में भाव-विह्वल हो जाते हैं। उन्हें फिर एक-एक करके ब्रज के दिन याद आने लगते हैं। राधा के साथ-साथ उन्हें नंद-यशोदा और गोपों-गोपियों की भी याद आने लगती है। कृष्ण को इस प्रकार भाव-विह्वल देखकर उद्धव उन्हें बहुभाँति समझाते-बुझाते हैं, माया-मोह का हवाला देकर उनकी विह्वलता को दूर करने का प्रयास करते हैं लेकिन कृष्ण उनकी एक नहीं सुनती। वे उद्धव से ब्रज जाने के लिए कहते हैं। कृष्ण का संदेश लेकर उद्धव ब्रज के लिए रवाना होते हैं। ब्रज आकर वे अपनी ज्ञान-गठरी को उतारते हैं। ब्रज में प्रवेश करते ही उन्हें अलग प्रकार की ही अनुभूति होने लगती हैं। ब्रज की गोपियों से उनका गंभीर शास्त्रार्थ होता है। उनकी निर्गुण-उपासना और उनका ब्रह्म-ज्ञान धरा का धरा रह जाता है और उन्हें 'मुँह की खानी' पड़ती है। गोपियों की भक्तिभावना और प्रेमभाव से वे अभिभूत होकर स्वयं प्रेममय हो जाते हैं और मथुरा की ओर प्रस्थान करते हैं। वे नंद-यशोदा और गोपियों के संदेशों और उनके द्वारा कृष्ण को दी गयीं भेंट-सामग्रियों के साथ-साथ भक्ति और प्रेम से लद जाते हैं। उनका कायाकल्प हो जाता है। "ऊधव नितांत कांत-मनि" बनकर लौटते हैं।

जगन्नाथदास रत्नाकर की दार्शनिक चेतना 'उद्धव-शतक' में आकर उच्चता को प्राप्त होती है। भ्रमरगीत-परम्परा के अन्य पूर्ववर्ती कवियों की भाँति उन्होंने भी इस ग्रंथ के माध्यम से ज्ञान पर प्रेम, तर्क पर आस्था और निर्गुण पर सगुण की श्रेष्ठता को सिद्ध किया है। उद्धव ज्ञानमार्ग के हिमायती हैं। वे शंकर अद्वैतवाद से प्रभावित हैं। ब्रज जाकर वे गोपियों को निर्गुण उपासना की शिक्षा देते हैं। वे गोपियों से कहते हैं कि गोपियाँ अपनी आत्मा को परमात्मा में विलीन कर दें। गोपियाँ जिस कृष्ण के विरह में इतनी व्याकुल हैं, वो तो सबके अंतर्मन में वास करता है। वस्तुतः आत्मा-परमात्मा में कोई भेद नहीं है। माया या भ्रम के वशीभूत होकर जीव उनमें अंतर देखता है। यह उसका अज्ञान है। उद्धव गोपियों को समझाते हैं कि विरह में इस प्रकार तन को क्षीण और मन को हीन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वे भ्रमवश कृष्ण को अपने से भिन्न मान रही हैं। भ्रम के पटल को ज्ञान की आँखों से उघाड़ कर देखने से पता चलेगा कि सभी में कान्हा है और कान्हा में सभी हैं। वे गोपियों को घड़े के दृष्टान्त के माध्यम से भी समझाने का यत्न कर रहे हैं। जिस प्रकार घड़े के भीतर का जल बाहर के जल से अभिन्न है और घड़े को टूट जाने पर भीतर और बाहर का जल मिल जाता है, वैसे ही वो भी अपनी आत्मा को परमात्मा में लीन कर दें –

"माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि ज्यौं अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है।।

अबिचल चाहत मिलाप तौ बिलाप त्यागि
जोग-जुगती करि जुगावौ ज्ञान-धन कौं
जीव आतमा कौं परमातमा मैं लीन करौ
छीन करौ तन कौं न दीन करौ मन कौं।। (10)

उद्धव की बातें गोपियों को समझ में नहीं आतीं। उनका अनुभूति उद्धव के द्वारा बतायी गयी बातों से भिन्न मालूम पड़ती हैं। इसलिए वे उद्धव की बातों का प्रतिकार करने लगती हैं। वे उद्धव से कहती हैं कि आप कृष्ण के दूत हैं या ब्रह्म के? जो कृष्ण का संदेश न देकर लगातार ब्रह्म की ही चर्चा किये जा रहे हैं। हम कृष्ण के अलावा और किसी को नहीं जानती हैं। तुम ऊपर से तो सरल स्वभाव के दिखते हो पर भीतर से तुम्हारी बातें जले में नमक की भाँति लगती हैं। इसलिए हे उद्धव! इस प्रकार कठोर वचन रूपी पत्थर हम पर न चलाओ, नहीं तो हमारा मन रूपी शीशा चूर-चूर हो जाएगा। हम एक कृष्ण के प्रेम में ही इतनी उद्विग्न हैं, अब अनेक या दूसरे कृष्ण की बात न करें –

"आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तौपै
ऊधौ ये बियोग के वचन बतरावौ ना।
टूक-टूक ह्वै है मन-मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर-बैन पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसकै उजारयौ मोहिं
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना। (11)

गोपियाँ भावुक और सरल होने के साथ-साथ तर्कशील भी हैं। वे उद्धव की निर्गुण निराकार ब्रह्म की अवधारणा को सिरे से ख़ारिज करती हैं। बहुत ही शालीन और विनम्र लहजे में वे उद्धव से तर्क करती हैं कि यदि कृष्ण अगम, अगोचर और निराकार हैं तो फिर बिना हाथ के वो हमारी गाय कैसे दुहेंगे। बिना पैरों के नृत्य कैसे करेंगे। और तो और बिना देह के वो माखन कैसे खाएंगे, बंशी कैसे बजाएँगे –

"कर-बिनु कैसें गाय दूहिहै हमारी वह
पद-बिनु कैसैं नाचि थिरकि रिझाइहै।
कहै रत्नाकर बदन-बिनु कैसे चाखि
माखन बजाइ बैनु गोधन गवाइहै।। (12)

रत्नाकर की गोपियाँ अपने अस्तित्त्व को लेकर भी सजग हैं। उनके लिए काया को ब्रह्म में विलीन कर देना कोई होशियारी का काम नहीं है। इससे तो उल्टा नुकसान ही होता है। हम अपना अस्तित्त्व खो देते हैं। इसलिए वे उद्धव द्वारा प्रदत्त ज्ञान को अनुपयोगी और अव्यावहारिक करार देती हैं। वे उद्धव से साफ़-साफ़ कह देती हैं कि इस ज्ञान के प्रकाश को ले जाकर हिमालय की चोटियों में फैलाओ। यहाँ ब्रज में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है और न ही आपकी यह "टायँ-टायँ" कोई सुनने वाला है। हमसे ये योग-वोग नहीं होगा। वैसे भी साँस रोकने की यह पद्धति ही बड़ी बेढंगी है। हमारे भीतर तो कृष्ण का प्रेम बसता है। "हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं"। इसी अभिमान के चलते ही अभी तक हमारे प्राण नहीं गए हैं और न ही जाएँगे। उद्धव काश आप "हमारी आँखों से कान्हा को देख लेते" तो आप इस प्रकार "ब्रह्म-ज्ञान का बखान नैकु न करते"।

भ्रमरगीत की परम्परा को लेकर चलने वाले कवियों के यहाँ कुब्जा का प्रसंग कई बार आया है। सूरदास के यहाँ तो अनेकशः आया है। कुब्जा

दरअस्ल कृष्ण के मामा कंस की दासी थी। कंस को मारने के बाद कृष्ण ने कुब्जा को अपना संरक्षण प्रदान कर दिया। कुब्जा कृष्ण के स्नेह की कृपापात्र हो गयी, और यह बात ब्रजबालाओं को नागवार गुजरी। इसलिए जब उद्धव मथुरा से ब्रज आते हैं तो गोपियाँ कुब्जा को खरीखोटी सुनाने से बाज़ नहीं आतीं। रत्नाकर का 'उद्धव-शतक' भी इस कुब्जा-प्रसंग का अपवाद नहीं है। यहाँ भी ब्रज की गोपियाँ कुब्जा को लेकर 'सौतिया-डाह' से पीड़ित हैं। वे बहु प्रकार से कुब्जा को लानत-मलानत भेजती हैं और कुब्जा के प्रति ईर्ष्या से भर जाती हैं। सूरदास की गोपियाँ तो "ऊधौ जाके माथे भाग" कहकर कुब्जा के सौभाग्य की तारीफ़ करती हैं, लेकिन कुब्जा को लेकर रत्नाकर की गोपियों का व्यवहार तल्खी भरा ही रहता है। वे उद्धव को कुब्जा का प्रतिनिधि मानने लगती हैं। उनका मानना है कि उद्धव उस कुब्जा के ही सिखाए-पढ़ाए हैं। उसी ने सभी को बहका और भड़का रखा है। गोपियाँ तो उद्धव को "कुब्जा के पच्छवारे" भी कहती हैं। प्रेम एकाधिकार चाहता है। गोपियाँ कृष्ण से अनन्य भाव से प्रेम करती हैं। किसी अन्य का हस्तक्षेप उन्हें बिल्कुल स्वीकार नहीं है। वे कुब्जा के प्रति इस क़दर रोष से भरी हुई हैं कि उन्हें कथ्याकथ्य का भी ध्यान नहीं रहता। वे उद्धव से कहती हैं कि कृष्ण उस कुब्जा के प्रेम में इतने निमग्न हैं कि उन्हें भला हमारी सुधि क्यों ही आती होगी। उन्होंने कूबरी (कुब्जा) की पीठ का भारीपन उतारकर तुम्हें हमारे पास हमारी क्षीण छाती पर थोपने के लिए भेज दिया है। कृष्ण को उस कुब्जा के अलावा अन्य किसी बात की कोई परवाह नहीं है। वे उसके भार (प्रेमभाव के भार) से ही नहीं उबर पा रहे हैं तो यहाँ ब्रज आकर भला अब गोवर्धन का भार क्योंकर उठावेंगे –

"कूबरी के कूबर तैं उबरि न पावैं कान्ह
इंद्र-कोप-लोपक गुबर्धन उठैहै को। [13]

जगन्नाथदास रत्नाकर ने गोपियों के विरह-वर्णन में कोई कसर नहीं बाक़ी रखी। इसके लिए उन्होंने ऋतु-वर्णन का भी अवलम्ब लिया है। उन्होंने छहों ऋतुओं का बड़ी ही मनोहारी चित्रण किया है। प्रकृति के परिवर्तन के साथ गोपियों की भी परिवर्तित होती मनःस्थिति को बहुत ही सूक्ष्म ढंग से रत्नाकर ने विवेचित किया है। उनका ऋतु-वर्णन एक ओर जहाँ गोपियों की विरह को बिम्बित करता है, वहीं दूसरी ओर प्रकृति-चित्रण का भी श्रेष्ठ उदाहरण है। जब वसंत ऋतु आती है तो गोपियों के लिए उल्लास का समय जान पड़ता है। वे कृष्ण के प्रेम में इतनी निमग्न हैं कि उन्हें तो बरसाने में हमेशा वसंत-ही-वसंत मालूम पड़ता है। जब वर्षा ऋतु आती है तो गोपियाँ भी पपीहे की तरह अपने प्रिय कान्ह को पुकारती रहती हैं। शिशिर और हेमन्त ऋतु में न केवल पेड़-पौधों अपितु गोपियों की आस पर भी पाला गिर जाता है। हद तो तब हो जाती है जब "दरद दिवैया सरद ऋतु" ब्रज में बनी ही रहती है। जाने का नाम ही नहीं लेती।

रत्नाकर अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं। उन्होंने गोपियों के उद्धव का 'ब्रेनवॉश' आखिरकार करा ही दिया। वे ब्रज के लोगों द्वारा दी गयी भेंट को लेकर जब मथुरा की ओर प्रस्थान करते हैं तो वे "प्रेम-मद" में इतने छक गए हैं कि उनके "पग कहाँ के कहाँ" पड़ रहे हैं। इतना ही नहीं वे अपनी "ज्ञान-गूदड़ी में अनुराग का रतन" लेकर लौटते हैं। ब्रज से लौटते समय उनके पग नहीं उठते हैं। वे चोर की भाँति नज़रें बचाकर चलते हैं। "कुंजनि की कूल की कलिंदी की रुएंदी दसा" देखकर उद्धव रथ से उतरकर वहीं पथ की पावन भूमि पर लोटने लगते हैं। वे मथुरा जाकर कृष्ण को बताते हैं कि आपने ब्रजवासियों को जो योग का ज्ञान देने के लिए हमें पठाया था, वह सब हेरा गया है। ज्ञान की गठरी हम वहीं पटक कर चले आए हैं। अब तो हमारा भी मन वहीं ब्रज में बसने का है। वहीं यमुना के रम्य तीर पर कुटी बनाकर बस जाना चाहते हैं। वो तो कहिए आपको प्रत्युत्तर में संदेशा देना था और आपको देखना भी था (क्योंकि आप अस्वस्थ हो गए थे) नहीं तो ब्रज-गाँव को छोड़कर हम यहाँ कभी पाँव नहीं धरते। उद्धव उवाच –

"रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते
ज्ञान गुन गौरव के अति उद्गार मैं।
कहै रत्नाकर पै चातुरी हमारी सबै
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं।।
पटकि पराने ज्ञान-गठरी तहाँ हीं हम
थमत बन्यो न पास पहुँचि सिवान के।
छाले परे पगनि अधर पर जाले परे
कठिन कसाले परे लाले परे प्रान के।। [14]

उपर्युक्त विवेचना के पश्चात निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर कृत 'उद्धव-शतक' भ्रमरगीत-परम्परा का सम्यक उपसंहार है। उन्होंने अपने इस ग्रंथ में भ्रमरगीत काव्यपरम्परा उचित समाहार करते हुए अपने युगानुकूल उसका निरूपण किया है। एक प्रकार से इस ग्रंथ के माध्यम से उन्होंने प्राचीन द्रव्य को नवीन पात्र में रखने का सराहनीय उपक्रम किया है। अपनी काव्यपरम्परा और व्यक्तिगत अभिरुचियों में सामंजस्य स्थापित करने में भी वे सफल रहे हैं। यह कहना अत्युक्ति नहीं कि भ्रमरगीत-परम्परा के विषय में कोई भी पूर्ण बात 'उद्धव-शतक' के बिना अपूर्ण है। इति।

संदर्भ/सहायक ग्रंथ :-

1. शुक्ल, रामचंद्र. (2020). भ्रमरगीत सार. प्रयागराज : लोकभारती प्रकाशन. पृ. सं. 48
2. वही, पृ. सं. 57
3. सिंह, बच्चन. (2018). हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास. दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन. पृ. सं. 129
4. तुलसीदास. (संवत). (2074). श्रीकृष्णगीतावली. गोरखपुर : गीताप्रेस. पृ. सं. 38
5. मिश्र, सत्यप्रकाश. (संपा.). (2019). रहीम रचनावली. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन. पृ. सं. 137
6. मिश्र, विद्यानिवास व मिश्र, सत्यदेव. (संपा.). (2007). रसखान रचनावली. नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन. पृ. सं. 26
7. पाण्डेय, सरस्वती व पाण्डेय गोविन्द. (2014). हिन्दी भाषा एवं साहित्य का वस्तुनिष्ठ इतिहास. इलाहाबाद : अभिव्यक्ति प्रकाशन. पृ. सं. 189
8. मानव, विश्वम्भर व शर्मा, रामकिशोर. (2019). आधुनिक कवि. प्रयागराज : लोकभारती प्रकाशन. पृ. सं. 43
9. रत्नाकर, जगन्नाथदास. बिहारी रत्नाकर. वाराणसी : वैभव लक्ष्मी प्रकाशन. पृ. सं. 5
10. रत्नाकर, जगन्नाथदास. (2020). उद्धव-शतक. हल्द्वानी : देवभूमि प्रकाशन. पृ. सं. 76
11. वही, पृ. सं. 79
12. वही, पृ. सं. 81
13. वही, पृ. सं. 95
14. वही, पृ. सं. 110

****

हिंदी डायरी विधा : एक अंत:केन्द्रित यात्रा

-अनुराग सिंह
एम.ए. हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय,

साहित्य अपने अंतश्चेतना में एक विस्तृत प्रतिफल है। इन साहित्यिक प्रक्रियाओं में हिंदी साहित्य अपनी समृद्ध साहित्यिक विधाओं में अग्रणी रहा है। नई चेतना, आधुनिक ज्ञान -विज्ञान, तकनीकी के फलस्वरूप लेखन की सुविधाओं का जैसे विकास हुआ उसी क्रम में हम साहित्य के क्षेत्र में विभिन्न विधाओं का प्रादुर्भाव देखते है। हिंदी साहित्य में आधुनिक काल विभिन्न साहित्यिक विधाओं का पथ प्रदर्शक रहा है, जिसमें समाज उपन्यास, नाटक, कहानी, साक्षात्कार, डायरी लेखन विभिन्न विधाओं के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुआ है।

डायरी विधा के क्षेत्र में डायरी अपने अंतःकरण की अनुभूति का बिना किसी संकोच के अभिव्यक्ति का साधन रहा है। ऐतिहासिक परंपरा में देखे तो डायरी का इतिहास भी अनोखा रहा है।

"हिंदी साहित्य कोश" में डायरी को परिभाषित करते हुए उसे आत्मकथा का ही रूप बताया है, शाब्दिक उत्पत्ति के नज़रियें से देखे तो डायरी शब्द अंग्रज़ी भाषा का है जो लैटिन शब्द 'डायिस' से बना है।[1] रामधारी सिंह दिनकर 'डायरी' शब्द को परिभाषित करते हुए कहते है कि, - "डायरी वह चीज़ है, जो रोज़ लिखी जाती है और इसमें घोर रूप से वैयक्तिक बाते भी लिखी जा सकती है।"[2] लेखक की मनःस्थिति, परिस्थितियों एवं फुरसत के अनुरूप दिनभर में जो कुछ भी महत्व का घटित हो उसका उल्लेख डायरी लेखक करता है। इसी आधार पर कमलेश्वर डायरी को "लेखक का अपना और अपने हाथ से किया हुआ पोस्ट – मार्टम"[3] मानते हैं।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी डायरी लेखन के कारण को इस रूप में स्पष्ट करते हैं कि, "कुछ भी जिसने मन पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव डाला, जिससे कुछ विशेष विचार आया और जो कुछ भी लिखने योग्य लगा, मैंने अंकित करने की कोशिश की।"[4]

साहित्यिक अर्थ में डायरी को देखा जाय तो यह केवल तिथि देकर अपने दिनचर्या का उल्लेख मात्र न होकर, डायरी इससे परे एक मानसिक उद्वेग को व्यक्त करने का ऐसा माध्यम है जिसमें भावुक ह्रदय की संवेदनात्मक अभिव्यक्ति भी हो सकती है। डायरी लेखक अपनी रूचि व आवश्यकतानुसार राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि विभिन्न पक्षों के साथ निज अनुभूतियों का चित्रण कर सकता है।

डायरी विधा का इतिहास विभिन्न सांस्कृतिक और सामाजिक परंपराओं से जुड़ा हुआ है। यह एक लेखनात्मक और सांस्कृतिक गतिविधि है जिसमें व्यक्ति अपने विचार, अनुभव और दैहिक – मानसिक, स्वास्थ्य को दर्ज करता है। डायरी विधा का उपयोग शिक्षा, मनोबल, लक्ष्यनिरूपण और स्वयं विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है।

आधुनिक संदर्भ और रूप में डायरी विधा का प्रादुर्भाव पाश्चात्य साहित्य से हुआ है। अभी तक ज्ञात डायरियों में सबसे पहली डायरी एक अनाम फ्रेंच पादरी द्वारा चालर्स पष्ठ एवं सप्तम् के राज्यों (1401 ई. से 1431 ई.) की अवधि में 'journal de d'um bourgeois de paris' के नाम से लिखी गयी। डायरी साहित्य में जॉन ईवलिन (1620-1706) का स्थान बहुत ऊँचा माना जाता है। यही से डायरी ने विधा का रूप लेना आरंभ किया। अंग्रज़ी डायरी साहित्य में सबसे सशक्त लेखक सैमुअल पैपीज़ को माना जाता है। उसके बाद विलियम वर्ड्सवर्थ की बहन डोरीथी वर्डसवर्थ (1771-1855) का नाम लिया जाता है। इनके अतिरिक्त जार्ज एलिओट, थॉमस क्रीवी, वर्जिनिया वुल्फ, टालस्टॉय, चालर्स पूटर आदि का नाम उल्लेखनीय हैं।[5]

भारतीय साहित्य में डायरी विधा का आगमन 19 वीं शताब्दी में हुआ। छायावाद काल में यह एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। जब व्यक्ति तथा उसकी अंतरंग अनुभूतियों को साहित्य में स्थान मिलना प्रारंभ हुआ तो डायरी का प्रचलन तेज़ी से बढ़ा।

क्षमा कौल की डायरी 'समय के बाद' पूर्ण रूप से एक विस्थापित की डायरी है। 1990 में हुआ कश्मीरी पण्डितों का कश्मीर से विस्थापन, उनके मूलभूत कारण तथा विस्थापन के बाद के हालात, इन सभी का स्पष्ट तस्वीर डायरी में प्रस्तुत है। वह बाहरी तौर पर विस्थापन से जूझते हुए स्वयं की तलाश करती हैं, एक पत्नी, माँ तथा बेटी के रूप में अस्तितित्व तलाशती हैं। कहीं – कहीं साहित्य व समाज की झलक भी उभरी है परंतु केन्द्र में एक विस्थापित कश्मीरी हिन्दू स्त्री ही रहती है।

इसी परिपाटी पर निदा नवाज़ की डायरी 'सिसकियाँ लेता स्वर्ग' भी है। एक तरफ जहाँ क्षमा कौल कश्मीरी पण्डितों के कश्मीर से विस्थापन की पीड़ा की बात करती हैं वहीं दूसरी ओर निदा नवाज़ कश्मीर समस्या से जूझते एक आम कश्मीरी की ओर ध्यान केन्द्रित करते हैं।

अजीत कुमार की डायरी 'अंकित होने दो' तीन भागों में विभक्त है – परिमण्डल, अनुभूति और रचना, जो आगे भी उपशीर्षकों में अंकित है। यह डायरी मानसिक आवेग से अधिक घटनाओं पर प्रतिक्रिया रूप में उभरती है। एक अच्छे लेखक की तरह अजित बहुत ही सूक्ष्म दृष्टि रखते हैं। स्टेशन पर बैठे हुए, ट्रेन पर सफर करते समय छोटे – छोटे दृश्यों व अनुभवों को अंकित करते हुए वह एक वैचारिक दृश्य उकेरते हैं। एक भिखारी के मुख के हाव – भाव को रेखांकित करते हुए उसको समाज से जोाड़ना अजित जी ही कर सकते हैं –

"मैंने गौर किया कि भीख माँगने से पहले और भीख माँग चुकने के बाद उनके चेहरे कुछ और ही होते हैं। बस भीख माँगने का क्षण ऐसा होता है कि भिखारी हम तथा कथित न माँगने वालों से भिन्न दिखाई पड़ते हैं। वरना,

ISSN-2321-1504Naagfani RNINO.-UTTHIN/2010/34408

उनमें और हममें अन्तर ही क्या हैं।"[6]

इसी प्रकार समाज के विभिन्न पहलुओं पर वह अपनी सूक्ष्म दृष्टि से घटना का वैचारिक पक्ष स्पष्ट करते चलते हैं।

रामधारी सिंह दिनकर की डायरी जनवरी 1961 से लेकर दिसम्बर 1972 तक की है। उन्होंने अपने जीवन के इन बारह वर्षों की अधिकांश घटनाएँ इस डायरी में अंकित की हैं। लेखकीय और वैयक्तिक संबंधों के कई धरातल इसमें उजागर हुए है। दिनकर जी डायरी की भूमिका को स्पष्ट करते हुए कहते हैं – "डायरी हो या आत्मकथा, आदमी अपने सही रूप को उस तरह आँक नहीं सकता जिस तरह उसे कोई तटस्थ व्यक्ति आँक सकता है।"[7]

परंतु फिर भी उनके जीवन के काफी अनछुए पहलू यहाँ झलक जाते हैं। राजनैतिक जीवन के साथ दिनकर जी साहित्यिक जीवन भी उत्कृष्ट कोटि का रहा है। डायरी का आरम्भ ही 'उर्वशी' की रचना प्रक्रिया सो होता है। जहाँ वह रचना की प्रक्रिया का उल्लेख इस प्रकार करते हैं, -

"पहले कवि चाहता है कि कविता मुझे पकड़ ले और जब कविता उसे पकड़ लेती है, तब कवि से न सोते बनता है, न जागते बनता है। रचना का यह दर्द उर्वशी के प्रसंग में मैंने आठ वर्ष तक लगातार भोगा है।"[8]

आठ वर्ष की मानसिक पीड़ा के बाद 'उर्वशी' जैसा उत्कृष्ट काव्य उभरकर पाठक के समक्ष आया, जिसने उनके उत्कृष्ट कवि होने को प्रमाणित किया।

हरिवंशराय बच्चन की 'प्रवास की डायरी' में अप्रैल 1952 से जनवरी 1953 तक की तिथियों का समावेश है। प्रस्तुत डायरी बच्चन जी के इंग्लैंड प्रवास के समय की है, जब वह ईट्स पर शोध करने हेतु कैम्ब्रिज विश्विविद्यालय गए थे। इस डायरी में उनके शोध कार्य के समय की गतिविधियाँ, सुन गए लैक्चर्स, पढ़े हुए लेख व पुस्तकों का विवरण आदि मिलता है। यह डायरी केवल एक व्याख्यात्मक दृष्टि ही नहीं रखती, अपितु शोध सामग्री के अतिरिक्त कैम्ब्रिज का परिवेश, लोगों का रहन – सहन उनकी संस्कृति सभी की झलक प्रस्तुत करती है।

पश्चिम ती व्यवस्था को देखते – समझते हुए लेखक जहाँ – तहाँ पूर्व (भारत) व पश्चिम की तुलना प्रस्तुत करता चलता है। कुछ मामलों में पश्चिम की व्यवस्था उचित जान पड़ती है, जैसे सैन्य व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था, सफाई व्यवस्था आदि। डायरी निजी होने के कारण लेखक की आर्थिक स्थिति स्पष्ट रूप से उभर आती है। बच्चन जी कला के प्रति अपना मत स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि –

"शांति लानी है तो शांति की स्थापना मानव हृदय में करनी होगी और उसे छूना विशुद्ध कला के द्वारा ही सम्भव है।"[9] इसी प्रकार वह बहुधा मनुष्य को, उसकी मानसिकता को कला से जोड़ते हैं। इसके अतिरिक्त साहित्य को भी मानव से जोड़ने हेतु वह कलाकार को नए आयाम खोजने का सुझाव देते हैं।

बच्चन जी कुछ जगह सूक्तियों के माध्यम से जीवन की फिलॉसफी स्पष्ट करते हैं – "लोग ध्येय बनाते हैं, पर जब आदमी ध्येय तक पहुँतचा है तो उसका आकर्षण खत्म हो जाता है, ध्येय बदल जाता है, मनुष्य फिर संघर्ष में पड़ जाता है।"[10] "मंजिल, मुमकिन है, धोखा दे, पर, यात्रा कभी धोखा नहीं देती।"[11]

काव्य की गहनता को बच्चन जी इन शब्दों में व्यक्त करते है - "कविता गहन भाव – विचारों की या इससे अच्छा होगा यह कहना कि गहन क्षणों की सहज वाणी है या अगम अनुभूतियों की सगम अभिव्यक्ति।"[12]

'मोहन राकेश की डायरी' 1948 से 1968 तक की प्रतिक्रियाओं को समाहित किए हुए है। डायरी 20 वर्षो की है परंतु लेखक बीच – बीच में लम्बा अन्तराल लेता है। कई बार यह अन्तराल एक या दो वर्षो का भी हो जाता है। अनियमित लेखन के बावजूद डायरी लेखक की मानसिकता को अभिव्यक्त करती है।

संपूर्ण डायरी में ही वह एक उपन्यास को लेकर उलझन में रहे कि वह समाप्त हो भी पाएगा या नहीं। कहानियों, नाटकों के ड्राफ्ट कई – कई दिनों तक पड़े रहते परंतु अंतिम रूप न ले पाते। वैसे तो उन्हें 'आषाढ़ का एक दिन' के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला, परंतु जिस प्रकार का व जितना लेखन कार्य वह करना चाहते थे, नहीं कर पाते थे। एक नाटककार के रूप में उन्होंने इतिहास के किसी प्रसिद्ध चरित्र को नाटक के ज़रिए गौरवान्वित करने वाले ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा को तोड़ा। वहीं दूसरी ओर उनकी डायरी में 'नई कहानी' आंदोलन की चर्चा भी मिलती है।

निर्मल वर्मा की डायरी 'धुँध से उठती धुन' वैसे तो 1973-95 तक की नोटिंग्स को अपने में समेटे हुए है। निर्मल वर्मा, जैसा कि स्पष्ट करते हैं कि डायरी को उन्होंने तब लिखा जब वह घर से दूर रहे अर्थात् यह नोटिंग्स शिमला, रानीखेत, मनाली, मॉस्को, मणिपुर, हावर्ड आदि स्थलों पर की गई हैं। विभिन्न स्थलों पर घूमते हुए वहाँ के परिवेश, दृश्य, मौसम आदि का वर्णन वह करते चलते हैं। आसपास के परिवेश का वर्णन अधिकतर उनकी भीतरी मनःस्थिति के अनुरूप ही व्यक्त होता है, -

"किंतु सूरज की इस आखिरी हिचकी में कुछ इतनी भयानक उदासी, इतना ट्रैजिक विलाप है कि हम सहसा आँखे मोड़ लेते हैं, ताकि उसे मरना है, तो अकेला मर सके...।"[13]

इसी तरह हर जगह एक बेचैनी, तलाश का मोह लेखक के साथ – साथ चलता है। एक रिपोर्टर, प्रकृति प्रेमी तथा साहित्यकार के पीछे छिपा अकेलेपन से लड़ता हुआ निर्मल वर्मा का व्यक्तित्व उनकी डायरी में सहज ही उभर आया है।

कृष्ण बलदेव वैद का डायरी लेखन नियमित है। अपने जीवनकाल के 52 वर्षों को उन्होंने वर्ष प्रति वर्ष डायरी में अंकित किया है। 1954 से लेकर 2001 तक की डायरी चार भागों में प्रकाशित है। 'ख्वाब है दीवाने का' उनकी प्रवास के समय की डायरी है, जो अपने देश से दूर रहने की तड़प व बेचैनी दर्शाती है, जिसका माध्यम लेखक के स्वप्न रहे हैं। 'शम'अ हर रंग में' ते अन्तर्गत दो परिदृश्य उभरते हैं, पहला '1954-58' उनके विदेश जाने से पहले का संघर्ष तथा दूसरा '1983-1990' विदेश से लौटकर अपने परिवेश के बदलाव को अपनाने का संघर्ष। 'डुबोया मुझको होने ने' 1991 -97 तक की तिथियों का संयोजन है, इसमें उनकी बढ़ती उम्र की ऊब, मृत्यु बोध के मर्म की आहट सुनी जा सकती है। 'जब आँख खुली गई' '1998-2001' डायरी की अंतिम कड़ी तक आते – आते उनके स्वभाव में एक

स्वीकार्य का भाव आ जाता है। पहली तीन डायरियों में तनाव, उलझाव, हताशा विद्यमान है परंतु अंतिम डायरी में एक निर्णायक स्थिति, एक ठहराव का भाव इलकता है।

समग्र रूप से देखें तो वैद जी अपनी सभी डायरियों में अपनी कमियों पर तीक्ष्ण टिप्पणी करने के साथ – साथ उच्चकोटि के साहित्य सृजन की एक दबी सी कामना प्रस्तुत करते हैं। स्वंय का आकलन व विश्लेषण वह हमेशा अफनी रचनाओं के स्तर पर करते हैं। वे हर बार बाहर व भीतर में सामंजस्य लाने के लिए सदैव स्वयं से ही लड़ते हुए नज़र आते हैं।

रामदरश मिश्र के रचना संसार में उनका डायरी साहित्य महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कविता, कहानी आदि के साथ उनकी तीन डायरियाँ 'आते – जाते दिन', 'आस – पास' और 'बाहर – भीतर' उनके सृजन को और समृद्ध बनाते हैं। 2003 से 2012 तक के 10 वर्षों के समय को बड़ी कुशलता से डायरी में पिरोया गया है। घर परिवार हो या साहित्य जगत, मित्र हो या प्रतिद्वंद्वी सभी विषय विस्तार के साथ उनकी डायरी में स्थान पाते हैं। मिश्र जी डायरी में घटनाओं को लम्बी व्याख्या के साथ प्रस्तुत करते हैं, कभी – कभी तो वर्णन करते हुए वह अतीत की घटनाओं को भी लंबा – चौड़ा लेखा – जोखा प्रस्तुत कर देते हैं।

संवेदना के स्तर पर आम आदमी से जुड़े होने के कारण सामान्य समस्याओं पर भी लेखक की पैनी दृष्टि रही है। समाज के विभिन्न पक्षों पर चर्चा करते हुए वह विवरणात्मक चिंतन प्रस्तुत करते हैं। अपने जीवन के लम्बे काल खण्ड में अर्जित अनुभवों के आधार पर लेखक साहित्य जगत के विभिन्न विषयों को छूते हैं। साहित्य के महत्व पर वह इन शब्दों द्वारा प्रकाश डालते हैं –

"साहित्य जीवन को जितनी अधिक संश्लिष्टता और सघनता में पहचानता और अभिव्यक्त करता है वह उतना ही अधिक प्रभावशाली होता है।"[14]

यह एक वाक्य अपने आप में ही व्याख्यात्मक है तथा साहित्य का जीवन से संबंध एक गूढ़ अर्थ में स्थापित करता है। इसी प्रकार की भाषा विन्यास का प्रयोग संपूर्ण डायरी को और अधिक रोचक तथा व्याख्यायित विषय को अधिक महत्वपूर्ण बनाता है।

आलोचना के स्तर पर साहित्य के विभिन्न प्रतिमान स्थापित करने वाले विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'दिन रैन' शीर्षक से डायरी जो फरवरी 1968 से लेकर जून 2013 तक के विशाल कालखण्ड को अपने में समेटे हुए है। पैंतालीस वर्षों का लम्बा समय, उसमें लेखक की बनती – बदलती विचारधारा, साहित्य जगत की गतिविधियाँ, उनका मित्र – मण्डल, बदलते परिवेश में जूझता उनका व्यक्तित्व समय के अनुरूप उभरता नज़र आता है। यह डायरी अधिकांशतः साहित्यिक क्रियाओं – प्रतिक्रियाओं से भरी हुई है। यहाँ वह सृजन प्रक्रिया, लेखक – पाठक संबंध, विभिन्न विमर्श, काव्य, भाषा, समकालीन काव्य विमर्श जैसे विभिन्न विषयों पर प्रकाश डालते हैं। वह काव्य सृजन की परिपाटी के लिए स्पष्ट शब्दों में कहतें है कि, -

"महसूस तो सभी करते हैं पर सब उसे व्यक्त नहीं कर पाते। कवि इस समस्या को सुलझा लेता है।"[15]

इसी प्रकार लेखक ऐसी सरल भाषा तथा छोटे – छोटे वाक्यों में माध्यम से साहित्य की विभिन्न अवधारणाओं को व्याख्यायित करते चलते हैं जो उनकी डायरी को रोचक व आकर्षक बनाती है।

यदि समग्र रूप से बात की जाए तो डायरी विधा लेखक के संपूर्ण जीवन, उसके परिवेश यहाँ तक की उसके युग का बोध कराती है। पारिवारिक, वैयक्तिक, राजनैतिक, साहित्यिक क्षेत्र को व्याख्यायित करते हुए लेखक का वैचारिक मंथन डायरी प्रस्तुत करती है। अतः डायरी निजी विधा न होकर समाज को देखने का दर्पण है। जहाँ एक खास दृष्टिकोण से घटनाओं की छवि देखी जा सकती है। अतः डायरी एक गौण विधा न होकर समस्त समाज की वैचारिक प्रस्तुति के साथ लेखक और समाज की अंतःकेन्द्रित यात्रा का ज्वलंत दस्तावेज भी है।

संदर्भ ग्रथ सूची-

1. डॉ. हरदेव बाहरी, अंग्रजी, हिन्दी पारिभाषिक शब्दकोश, पृ. 179
2. रामधारी सिंह दिनकर, व्यक्तिगत निवंध और डायरी, पृ. 53
3. मोहन राकेश, मोहन राकेश की डायरी, पृ. 9
4. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, दिन रैन, भूमिका
5. J.A. Cuddon, Dictionary of literary terms & literary theroy, पृ. 220,221
6. अजित कुमार, अंकित होने दो, पृ. 194
7. रामधारी सिंह दिनकर, व्यक्तिगत निवंध और डायरी, पृ. 54
8. रामधारी सिंह दिनकर, व्यक्तिगत निवंध और डायरी, पृ. 120
9. हरिवंशराय बच्चन, प्रवास की डायरी, पृ. 126
10. हरिवंशराय बच्चन, प्रवास की डायरी, पृ. 246
11. हरिवंशराय बच्चन, प्रवास की डायरी, पृ. 130
12. हरिवंशराय बच्चन, प्रवास की डायरी, पृ. 62
13. निर्मल वर्मा, धुँध से उठती धुन, पृ. 28
14. रामदरश मिश्र, आस – पास, फ्लैप एक
15. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, दिन रैन, पृ. 89

सहायक ग्रंथ सूची

1. माजदा असद, गद्य की नई विधाओं का विकास, ग्रंथ अकादमी, नई दिल्ली, 1991
2. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, छायावादोत्तर हिन्दी गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रका., वाराणसी,1968
3. नया ज्ञानोदय पत्रिका, नवम्बर, 2003
4. वया पत्रिका, डायरी निजता की अनुभूति 1, 2023

****

संजीव के उपन्यासों के दर्दनाक गाथा की कलात्मक अभिव्यक्ति

-डॉ.अम्बर कुमार चौधरी
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
रवींद्र भारती विश्वविद्यालय,कोलकता

शोध सारांश : संजीव हिन्दी कथा-साहित्य के एक मूर्धन्य साहित्यकार माने जाते हैं। संजीव ने अपने उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, विषमताओं को केन्द्र बिन्दु बनाया है। मानव जीवन के विविध समस्याओं का मार्मिक-कलात्मक उद्घाटन तथा मजदूर-दलित, पीड़ित, शोषित-नारी, आदिवासी व शोषितों को शोषकों से मुक्त करने के पक्ष में संजीव के उपन्यासों का उद्देश्य परिलक्षित होता है। संजीव के उपन्यासों की बुनावट पूर्णतः देशी है। इसका ताना-बाना आँचलिकता के धरोहर पर खड़ा है और इसमें लोक जीवन की धड़कन मौजूद है। संजीव के उपन्यासों में एक ओर लोक संस्कृति के मूल्यवान सन्दर्भो की अभिव्यक्ति हुई है, तो दूसरी ओर उनकी दृष्टि वैज्ञानिक है। उन्होंने उपन्यासों में लोकगीत, लोककथा, लोक संगीत, लोक नाट्य, लोक कला, आदि का कलात्मक रूप में प्रयोग किया है। उन्होंने संघर्षवादी चेतना को कलात्मक रचाव दिया है। संजीव के उपन्यासों की भाषा सशक्त और अर्थवान है। प्रवाहात्मकता, काव्यात्मकता, आंचलिकता, जनधर्मिता, यथार्थ, लोकतत्व जैसी कई विशेषताएँ भाषा में मिलती है।प्रभावी और कलात्मक अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण मानदण्ड उनके उपन्यासों में सहज ही दिखाई देता है। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से यह निष्कर्ष ढूंढने का प्रयास किया है कि संजीव का उपन्यास साहित्य सामाजिक बदलाव की माँग करता है।

कुंजी शब्द : संजीव, हिन्दी साहित्य, कथा साहित्य, उपन्यास।

भूमिका : मनुष्य के जीवन में हर कार्य के पीछे कोई न कोई उद्देश्य होता है। पाश्चात्य आलोचकों ने साहित्य के प्रधान उद्देश्य आनंद प्राप्ति, जीवन की आलोचना करना, प्रसन्नता एवं शिक्षा देना आदि माने हैं। उपन्यास के विषय क्षेत्र के विकास के साथ-साथ उसके लक्ष्य में भी विविधता दिखाई देती है। ठीक उसी प्रकार संजीव भी आधुनिक काल के उपन्यासकारों के बीच सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि में से किसी भी प्रकार की रचना में किसी न किसी उद्देश्य को लेकर ही लिखते हैं। संजीव के उपन्यासों का उद्देश्य मानव जीवन की व्याख्या करना, मनुष्य के वास्तविक जीवन को अभिव्यक्त करना, मानवतावादी दृष्टि का विकास करना तथा मनुष्य के विविध अंगों का मूल्यांकन करना परिलक्षित होता है। संजीव अपने उपन्यासों के जरिए आदिवासी समाज की समस्याओं, संघर्षों एवं सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन मूल्यों के साथ उनमें पाई जाने वाली रूढ़ियों, परम्पराओं व अंधविश्वासों का निष्पक्ष रूप से वर्णन करते हैं। समाज, देश और मनुष्यता के प्रति समर्पित होकर संजीव उनकी सहानुभूति का पात्र बनाते हैं। सामंतवाद, पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ प्रताड़ित जनता की व्यापक एकता एवं संघर्ष उनका एक ध्येय माना जाता है। अपने कथा साहित्य में जहाँ एक ओर उन्होंने आम जन के दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति की है। वहीं उन्होंने बदहाली की कारक शक्तियों के विरूद्ध जाग्रत करने की चेष्टा भी की है।

विश्लेषण : संजीव हिन्दी कथा साहित्य में एक सशक्त हस्ताक्षर माने जाते हैं। उन्होंने अपने जीवन में जिन परिस्थितियों का अनुभव किया है, उन्हीं अनुभवों, परिस्थितियों को अपने साहित्य का विषय बनाया है। संजीव के जीवन वृतान्त एवं कृतित्त्व पर प्रकाश डालने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि, उन्होंने जीवन को जिस रूप में देखा, जाना और समझा है, उससे उनके व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व का सृजन हुआ है। जीवन की अनुभूति के अनुसार उन्होंने लेखन कार्य किया है। प्रेमचन्द के बाद हिन्दी साहित्य में उसी व्यक्तित्त्व के धनी कथाकार संजीव ही हैं। लेकिन व्यक्तित्त्व में जिन्दादिल दोस्त, ईमानदारी, स्त्री एवं देश के प्रति सद्भावना आदि विशेषताएँ दिखाई देती हैं। उन्होंने उपन्यासों के माध्यम से हाशिए पर जीवन जीने वालेलोगों, उपेक्षित पिछड़े वर्गों तथा शोषितों की व्यथा को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करने का असाधारण कार्य किया है। उपन्यास लेखन संजीव के लिए कोई शौक या हॉबी की वस्तु न होकर उनका एक मिशन बन गया है। वे एक अन्वेषी किश्म के माने जाते हैं और लोक से जुड़ी समस्याओं को रचने का कार्य करते हैं। वे हमेशा तमाम सन्दर्भों का अध्ययन-अन्वेषण कर उन्हें रचनात्मक रूप देने का अथक प्रयास करते हैं। उनके उपन्यास एक ओर प्रेमचन्द, रेणु की परम्परा से रिश्ता रखते हैं तो दूसरी ओर वे समकालीन जीवन को भी नजर अन्दाज नहीं करते। वे एक ओर संस्कृति के संरक्षण-संवर्धन को महत्त्वपूर्ण स्थान देते हैं और वहीं दूसरी ओर वैज्ञानिक दृष्टि का भी विकास करते हैं। इसलिए इनके बारे में कहा गया है- **"संजीव के उपन्यासों का कथ्य मौलिक और अछूत संदर्भो को उजागर करता है। वे किसी व्यक्ति की कहानी कहने की अपेक्षा किसी अंचल संदर्भ या समस्या को व्यापक धरातल पर व्याख्यायित करते हैं। उनके उपन्यासों का कथा चुनौतियाँ राहों से गुजरती है।"**1 उनके उपन्यासों में कथा तो किसी एक क्षेत्र से सम्बद्ध होती है; लेकिन उसका वे व्यापक परिप्रेक्ष्य में चित्रित करते हैं। उनके उपन्यासों में कथागत बिखराव, सन्दर्भ बहुलता, विस्तार आदि के कारण कथा-रस में विविधता देखने को मिलता है। उनके उपन्यासों का दुरत गति से पठन करना सामान्य पाठक को असंभव है, लेकिन वह पढ़े बगैर इसका अंदाजा लगाना असंभव सा दिखता है। संजीव जी विज्ञान का छात्र होते हुए भी उन्होंने साहित्य के प्रति काफी रूचि रखकर उसे विकसित करते हुए हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने का सफल प्रयास किया।

संजीव आदिवासियों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक समस्याओं और शोषण आदि से उत्पन्न घृणा, संघर्ष, असंतोष को आधार बनाकर अपने उपन्यासों का कथानक बुनते हैं

तथा जीवंत दस्तावेज़ को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास करते हैं। इनके उपन्यास किसी व्यक्ति की कहानी कहने की अपेक्षा किसी विशेष अंचल की समस्याओं और अछूत-पहलुओं को उद्घाटित करते हुए, वहाँ के जन-जीवन, संस्कृति-सभ्यता को जीवंत रूप में सामने लाते हैं। उनके उपन्यास साहित्य में मजदूरों, बेरोजगारों की दुर्दशा, शोषण, पूँजीपति, कलाकार, पुलिस, असफल प्रेम, धार्मिक आस्था, अंधविश्वास, धर्मान्तरण, हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध, गरीबी, सत्ता एवं राजनीति, उद्योगपति आदि विषयों में से मुख्य रूप से आदिवासी लोगों की समस्याएँ उनका शोषण आदि को केन्द्र बनाया है। समाज में स्थित अज्ञान, अंधश्रद्धा, आर्थिक अभाव को केन्द्र बिन्दु में रखकर उनका संशोधन बुद्धि से चित्रण किया है।

'किसनगढ़ की अहेरी' उपन्यास में आर्थिक विषमता, बन्धुआ-प्रथा, जातिभेद, शोषण, निम्नवर्ग और उनका जीवन संघर्ष एवं पूँजीपतियों की काली करतूतों को समेटा है। उपन्यासकार ने मटरु पात्र के मनोभाव को इस तरह चित्रित किया है- ***''उन्हें विश्वास है कि गाँव के भाग्य नियंता वे ही हैं वे- यानी उसके शकुन और टोटके! साही काँटे खरभान के घर की नींव में गाड़कर उसकी मरती हुई संततियों में डूबते वंश को बचाया तो मुर्दा की हड्डी नींव में गाड़कर कितनों को निर्वेश किया। साही के काँटो दो घरों में खोंसकर उनमें झगड़ा लगवाया, नहा कर पसारे गए चुनरी के लूगा से देह पुंछवा कर गली के प्रताव से रुपई का सेंहुवा ठीक करवाया।..... पता नही कितने-कितने साधन हैं उनके पास रोग-शोक की मुक्ति के।''2*** आजाद देश के नव अंग्रेज बुरी तरह से देशवासियों का खून एवं आजादी के रस का आस्वाद किस प्रकार लेते हैं, उसे स्पष्ट किया है। **'सर्कस'** उपन्यास में उपेक्षित कलाकारों की व्यथा 'सर्कस' की दुनियाँ का भूगोल, अन्तर्विरोध, कलाकारों की उपेक्षा, सर्कस मालिकों की कुटिलताएँ, कलाकारों का शोषण एवं त्रासदी तथा सर्कस की अंदरूनी दुनियाँ को उजागर किया है। **'सावधान! नीचे आग है'** उपन्यास में कोयला अँचल क्षेत्र की खदान है, जो जल प्लावन का शिकार बन गयी थी। इसमें खदान में काम करने वाले मजदूरों का दयनीय जीवन ठेकेदार दलालों की कुटिलताएँ, शोषण तन्त्र नए रूप और व्यवस्थागत विसंगतियों का यथार्थ रूप से चित्रण हुआ है। **'धार'** उपन्यास में संथाल परगना का बांसगड़ा अँचल और संथाल आदिवासी केन्द्र में हैं। इसमें पूँजीवादी व्यवस्था, शोषण तन्त्र, माफियागिरोहों का आतंक, राष्ट्रीय सम्पत्ति की लूट, मेहनतकश आदिवासियों की अभिसप्त जिन्दगी और व्यवस्थागत विसंगतियों आदि को उजागर किया है। **'जंगल जहाँ शुरू होता है'**, उपन्यास में आपरेशन ब्लैक पाइशन उपन्यास का मुख्य केन्द्र बिन्दु है। इस प्रदेश में मूलतः डाकू समस्या यहाँ आरोपित नहीं तो यहाँ के प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवेश की ऊपज है। जाति, धर्म, पूँजीवादी व्यवस्था, शोषण, राजनीतिक तथा थारू-जनजाति, प्रकृति, संस्कार, जैसे कई कारक व्यक्ति को डाकू बनाते हैं। इसका जीता-जागता चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में परिलक्षित होता है। उनके उपन्यास-साहित्य में भी कोयलांचल, जातिवाद, सामंतवादी-क्रूरता, अनैतिक दुष्कर्म, ज्योतिष, ऐय्याशी और स्त्रियों, मेहनतकशों का शोषण-दमन, सर्कस में काम करने वाले लोगों की ऊपर से दिखाई देने वाली चकाचैंध के साथ-साथ उनके जीवन की वास्तविकता उनके प्रति मालिकों का अनिष्ट व्यवहार, खान कामगारों का आक्रोश, कोयला खदान, पूँजीपति वर्ग द्वारा सन्थालों का शोषण, दरिद्रता, अंधश्रद्धा, अँचल की संस्कृति, रीति-रिवाज, फैक्ट्री में काम करने वाले लोगों का शोषण, डाकुओं का आंतक, थारूओं की संस्कृति, पुलिस का आंतक, आदिवासियों का शोषण, झारखण्ड मुक्ति-आन्दोलन, बेकारी की समस्या आदि का यथार्थवादी रूप में पर्दाफाश करने में संजीव को सफलता मिली है। आजादी के बाद भी आदिवासी समाज, विस्थापन, भुखमरी, बेरोजगारी जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रहा है। निजीकरण, उदारीकरण की नीतियों ने आदिवासी समाज के सामने विस्थापन की सबसे बड़ी और प्रमुख समस्या खड़ी कर दी है। विस्थापन के कारण आदिवासी समाज के सामने न केवल पहचान और अस्मिता का संकट आया है, बल्कि उनके अस्तित्व ही खत्म होने की राह पर खड़ा है।संजीव के कथा साहित्य में विस्थापन और उसके कारण उपजी सामाजिक, सांस्कृतिक पहचान के संकट का मार्मिक चित्रण हुआ है। विस्थापन होने के साथ ही उनकी सामूहिकता में पली-बढ़ी सामाजिक व्यवस्था नष्ट हो जाती है। उनके सभी पर्व, त्यौहार, नृत्य गान जो उनकी सामूहिक संस्कृति की पहचान हैं वे सब नष्ट होते जा रहे हैं।

'पाँव तले की दूब' शीर्षक अपने-आप में पूरी कथा कहने का प्रयास करता है। पाँव तले की दूब को कितना भी खाद-पानी दे दिया जाए, वह उजिया नहीं पाती है अर्थात् अपना विस्तार नहीं कर पाती है और कुपोषित ही रहती है। लोग अपनी सुविधा के लिए उसे लतमर्दन करते रहते हैं क्योंकि वह गर्मी में शीतलता प्रदान करती है एवं जाड़े में ठंड से बचाती है, इसलिए हर कोई उसे कुचलते हुए आगे बढ़ जाता है। ठीक उसी प्रकार औद्योगिक क्षेत्र से भरे हुए प्राकृतिक संसाधनों से लबरेज होते हुए भी आदिवासी उजिया नहीं पाता है; उसका विस्तार, विकास, उन्नति एवं उद्धार नहीं हो पाता है। वह अपने अस्तित्व के लिए हमेशा संघर्ष करता रहता है और वह हमेशा लतमर्दन होता रहता है। कभी विस्थापन की वजह से तो कभी प्रदूषण की वजह से तो कभी सरकार की गलत नीतियों की वजह से। 'पाँव तले की दूब' उपन्यास में संजीव आदिवासियों को अपनी जमीन वापस लेने के लिए संघर्ष करवाते हैं। वह दर्शाते हैं कि - ***''दूसरी सुबह हम जल्दी-जल्दी तैयार होकर टीले पर पहुँचे थे। मेड़ पर नगाड़ा बज रहा था और तीर धनुष, कुल्हाड़ी, हंसिया लिए काले -काले दरिद्र आदिवासी, महिला, पुरूष, बच्चे तक दो एक बंदूक भी थी। बहुत दूरी पर खड़े कुछ अपेक्षाकृत सम्पन्न से दिखने वाले लोग ताक रहे थे....... मगर वे पास न फटके और दोपहर तक सारा धान कट-बटकर पहाड़ की दरारों में समा गया।''3*** उपन्यास में संजीव आदिवासी समाज को अपने अधिकारों के प्रति सचेत करते नजर आते हैं। उसका प्रत्येक जगह शोषण होता रहता है। वह ठीक 'पाँव तले की दूब' की तरह दूसरों को तो ठंडक पहुँचाता है पर अपने अस्तित्व की रक्षा भी नहीं कर पाता और उसके लिए हमेशा संघर्ष करता रहता है।

संजीव के उपन्यास साहित्य में सामाजिक समस्याओं के

साथ-साथ राजनीतिक समस्याओं का भी चित्रण हुआ है। दलसिंगार ठाकुर नाई जाति के कामधन्धों और उच्च जाति के लोगों की प्रताड़ना से तंग आकर सोचता है- ***''पिछले जन्म में जरूर कोई ऐसा बड़ा पाप किया होगा कि इस जन्म में नाई के घर पैदा हुए। और ये जो बड़ जात में जनमें हैं, उन्होंने कोई बड़े पुन्न का काम किया होगा............ बड़ जात में जनम लेकर फिर से वही, पाप करने लगे हैं, इसका क्या होगा, अगले जनम में?''4*** सामाजिक समस्याओं और राजनीतिक भ्रष्टाचार से खोखला एवं जर्जर बन रही परिस्थितियों को संजीव ने उपन्यासों के जरिये बख़ूबी दिखाया है। संजीव के उपन्यासों के विषय-वस्तु एवं शिल्प दोनों ही दृष्टि से परवर्ती उपन्यासों से भिन्न है। इनके उपन्यासों में पूर्वाग्रह से मुक्त होकर जीवन को यथार्थता से दिखाने का प्रयास किया गया है। लेखक ने कथानक को भोगे-देखे हुए यथार्थ से जोड़कर प्रस्तुत किया है इसलिए यह अधिक प्रामाणिक दिखाई देता है। राजनीतिक भ्रष्टाचार बढ़ गया है। एक बार कुर्सी मिल जाने पर नेतागण जनता की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। पंचायत, शासन-व्यवस्था के कारण नेताओं की संख्या बढ़ती गई है; परिणामस्वरूप राजनीति में अवसरवादिता एवं भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है। जनता के पवित्र वोटों से चुनकर आये नेता जनता की रक्षा करने के अलावा उससे विश्वासघात करके अपनी जेबें भर लेता है। संजीव अपने उपन्यासों में आदिवासी समाज की रूढ़ियों, परम्पराओं, अंधविश्वासों का वर्णन के साथ उन आदिवासी समाज के उन जीवन मूल्यों का भी वर्णन करते हैं जिनके आधार पर यह समाज सदियों से जीता आ रहा है। सामुहिकता, लोकतांत्रिकता, समानता, स्वतंत्रता आदि ऐसे जीवन मूल्य जिनके आधार पर आदिवासी संस्कृति अपना अलग अस्तित्व रखती है। संजीव ने अपने लेखन के बारे में स्वयं कहते हैं कि ***''देश के लाखों, दलित, दमित, प्रताड़ित, अवहेलित जनों की जिजीविषा और संघर्ष का मैं ऋणी हूँ। जिन्होंने वर्ग, वर्ण, भाषा, सम्प्रदाय के तंग दायरों को तोड़ते हुए शोषकों, दलालों, कायरों के विरूद्ध मानवीय अस्मिता की लड़ाई लड़ी है और लड़ रहे हैं। मेरा लेखन उससे ऋण मुक्ति की छटपटाहट भर है''5*** संजीव के कथा साहित्य में आदिवासी समाज की रूढ़ परम्पराओं एवं अंधविश्वासों का भी निष्पक्ष रूप से वर्णन हुआ है। संजीव इन परम्पराओं और अंधविश्वासों पर गहरी चोट करते हैं और उन्हें समाप्त करने का विकल्प सुझाते हैं। वे अपने उपन्यासों में आदिवासी समाज में प्रचारित उन पुरातन परम्पराओं पर भी चोट करते हैं जिनकी वजह से समाज का पूरा संतुलन और संरचना पर घातक असर होता है। वे इन सभी परम्पराओं अंधविश्वासों के लिए शिक्षा की कमी और शोषणकारी लोगों की चालाकी के साथ खुद आदिवासी समाज को भी जिम्मेदार ठहराया है। शिक्षा के प्रसार से ही आदिवासी समाज में चेतना और जागृति लाई जा सकती है।

संजीव के उपन्यासों की भाषा सशक्त और अर्थवान है। उनके उपन्यासों में पात्रानुकूल भाषा का सर्वत्र प्रयोग हुआ है। उपन्यासों में केवल मौलिक कथ्य की ही खोज नहीं करते बल्कि उसकी कलात्मक प्रस्तुति भी करते हैं। वे धारदार, ऊर्जास्वित, कथ्य के अनुरूप उसका ताना-बाना बुनने के हिमायती हैं। प्रवाहात्मकता, काव्यात्मकता, आंचलिकता, जनधर्मिता, यथार्थ, लोकतत्व जैसी कई विशेषताएँ भाषा में मिलती है। उपन्यासों की भाषा को सशक्त बनाने की दृष्टि से अवधी, बंगाली, भोजपुरी तथा आदिवासी बोलियों के शब्दों का प्रयोग सफलता से किया है। शब्द-योजना को सफल बनाने के लिए संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी, भोजपुरी, बंगाली, अवधी आदि पात्रानुकूल शब्दों का एवं भाषा सौन्दर्य के लिए उपमान, शब्द शक्तियाँ आदि का सार्थक रूप में प्रयोग किया है। संजीव के उपन्यासों में काव्यात्मकता गीत एवं लोकगीतों का प्रयोग भी दिखाई देता है। कहावतें, लोकोक्तियाँ, वर्णनात्मकता, पत्रात्मकता स्वप्न, पूर्वदीप्ति, चित्रात्मक शैली, लोकतत्व और मिथक आदि के माध्यम से सरसता विविधता एवं रोचकता का निर्माण किया है। भाषा-शैली, लोकोक्तियाँ, गाली-गलौच आदि का भी प्रयोग करते हैं। संजीव ने अपने उपन्यास साहित्य की भाषा को प्रभावमयी एवं रोचक बनाने के लिए अनेक प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है, जिसमें वर्णनात्मक, आत्मकथामक, पत्रात्मक, संवाद, पूर्वदीप्ति, व्यंग्यात्मक, भाषण, फैंटेसी, प्रतीकात्मक शैलियों का प्रयोग करते हैं।

निष्कर्ष: संजीव एक परिश्रमी, बेचैन, प्रतिबद्ध और जनधर्मी चेतना के पक्षधर व उपन्यासकार हैं। संजीव का उपन्यास संसार विविध संभावनाओं से भरा है। वे उपेक्षित सन्दर्भो का गहराई से अन्वेषण कर उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति करते हैं। वे उपन्यास लेखन के लिए अनछुए विषय को तलाशते हैं। वे बहुधा वैज्ञानिक दृष्टि, प्रगतिशील विचारक, शोध प्रवृत्ति से काम लेने वाले बहुआयामी व्यक्ति हैं, जो हिन्दी साहित्य को अनेक मौलिक रचनाएँ देकर समृद्ध करते रहते हैं। निःसन्देह संजीव की उपन्यास यात्रा उल्लेखनीय और नई राह पर अग्रषित होती दिखाई देती है। उन्होंने हिन्दी उपन्यास को नई अर्थवत्ता, नया तेवर, नई भाषा, नई दृष्टि एवं नया स्वर दिया है। संजीव अपने उपन्यास साहित्य में पर्दाफाश करते हुए लोगों में उसका विरोध करने की दृष्टि से चेतना निर्माण करते हैं। इस प्रकार निष्कर्षतः कह सकते हैं कि संजीव के उपन्यास मूलतः पिछड़े, शोषित, वंचित, उपेक्षित, प्रताड़ित, वर्जित क्षेत्र की दर्दनाक गाथा को वाणी देते हैं।

संदर्भ सूची :

1. (सं.) मनीष कुमार गुप्ता, आदिवासी समाज और हिन्दी उपन्यास, 2017, अनुसंधान पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, पृ. सं – 157.
2. संजीव, किशनगढ़ के अहेरी, मीनाक्षी पुस्तक मंदिर, दिल्ली प्र.सं. - 1981, पृ. सं – 40.
3. संजीव, पांव तले की दूब, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर, प्र.सं. -2005, पृ. सं – 15.
4. संजीव, सूत्रधार, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं. -2004, पृ. सं – 157.
5.संजीव, संजीव की कथा यात्रा: पहला पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं – 10.

****

भारतीय सिनेमा और तकनीक : बाहुबली फिल्म के विशेष संदर्भ में

-अरुण कुमार
शोधार्थी हिंदी विभाग
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
मो. न. 98109955802

वर्तमान दौर तकनीकी का दौर है, हर रोज हम एक नई तकनीक से परिचित होते हैं। आज कल हर जगह तकनीक का प्रयोग हो रहा है नई नई मशीनें हमें देखने को मिल रही हैं और हर क्षेत्र में तकनीक का प्रभाव देखा जा सकता है। घर से ले कर बड़ी सी फैक्ट्री में हर जगह आपको मशीन देखने को मिल जाएगी, हम चारों तरफ से मशीनों से घिरे हुए हैं। यही मशीनें हमारे जीवन को आसान बना रही हैं। ये हमारा काम करने के साथ साथ हमारा मनोरंजन भी कर रही हैं। लेकिन तकनीकी का संबंध केवल मशीन या मशीन सम्बन्धी प्रत्ययों से नहीं है अपितु इनके बिना भी तकनीकी का प्रभावी प्रयोग हो सकता है। तकनीकी शब्द का उद्भव ग्रीक भाषा के 'टेकनिकोस' (Technikos) शब्द से हुआ हैं जिसका अर्थ है कला, कलामय या व्यावहारिक कुछ विद्वान इसकी उत्पति ग्रीक भाषा के दो शब्दों टेकने (techne) तथा लोगोस (logos) से मानते है। टेकने (techne) का अर्थ है-कला, कौशल, क्राफ्ट या निश्चित तरीके या ढंग से जिसके द्वारा कुछ प्राप्त किया जाए है तथा लोगोस (logos) का अर्थ शब्द व निश्चित कथन जिसके माध्यम से अन्तर्निहित विचारों को अभिव्यक्त या भावाभिव्यक्त किया जाए है। तकनीकी का अर्थ है- कुशलता, कुछ करने या बनाने की प्रणाली । सामान्य अर्थ में तकनीकी से आशय है- वैज्ञानिक सिद्धांतों, ज्ञान, विस्थाओं तथा प्रविधियों का व्यवहारिकता में अनुप्रयोग से हैं। इसका तात्पर्य किसी भी प्रयोगात्मक कार्य करने के तरीके से है, जिसमें वैज्ञानिक ज्ञान या सिद्धांतों का अनुप्रयोग किया गया हो। इसकी परिभाषा से ये तो साफ हो गया कि तकनीक सिर्फ मशीन नहीं है। इसके अलग अलग रूप हैं, जैसे शैक्षिक तकनीक, उद्योग तकनीक, वाणिज्य तकनीक - आदि इसके रूप हैं।

अब हर क्षेत्र में तकनीक देखने को मिल रही है, तो फिल्म जगत इससे कैसे पीछे रह सकता है। वैसे तो फिल्म निर्माण भी एक तकनीक ही है, लेकिन समय के साथ- साथ फिल्म निर्माण की तकनीक में बहुत से बदलाव आए और ये बदलाव फिल्म जगत को बहुत ही ऊंचाई तक ले गए हैं। वर्तमान समय की फिल्म और पुराने समय की फिल्म को देख कर ये आसानी से पता लगाया जा सकता है कि पहले की तकनीक और अब के समय की तकनीक में कितना अंतर है। ऐसा नहीं है कि फिल्म जगत में वर्तमान समय में ही तकनीक का इतना प्रयोग देखने को मिल रहा है, फिल्म जगत में समय समय पर ऐसे प्रयोग होते - रहे हैं। जिससे सिनेमा को कुछ उत्कृष्ट फिल्म प्राप्त हुई जिनमें मुगल ए आजम, पाखीजा, उमराव जान आदि प्रमुख हैं। पुराने समय की फिल्मों में भव्य सेट ही तकनीक थी, एक्शन इतना नहीं होता था।

वर्तमान समय की बात करें तो हर फिल्म में एक्शन सीन होते हैं, कुछ फिल्म तो सामान्य होती हैं पर कुछ फिल्म में ऐसे एक्शन सीन होते हैं जो दर्शकों की कल्पना से परे होते हैं। ये सब वी एफ एक्स से ही मुमकिन है। पुराने समय मैं ये तकनीक नहीं थी, लेकिन वर्तमान समय में इस तकनीक का उपयोग लगभग हर फिल्म में होता है। यहाँ पर थोड़ा सा वी एफ एक्स के बारे में बता कर मैं अपने विषय पर आऊँगा जब कोई सीन शूट करने में महंगा हो या खतरनाक हो तो उस सीन को शूट करने के लिए कुछ स्पेशल इफेक्टस का इस्तेमाल किया जाता है यह इफेक्ट वीडियो बनाने के साथ में किया जा सकता है या वीडियो एडिट करते समय किया जा सकता है तो इन सभी इफेक्ट्स को ही वी एफ एक्स कहा जाता है। ऐसी कोई फिल्म नहीं है जिसमें इस तकनीक का उपयोग न होता हो किसी भी फिल्म में ऐसा कोई सीन आए जिसको देख कर लगे की ये संभव नहीं है, तो आप समझ जाइए इसको वी. एफ. एक्स. की मदद से बनाया गया है। वी एफ एक्स का उपयोग काफी बढ़ गया इसके पीछे का कारण है, इसमे खतरा नहीं होता और ये सस्ता भी होता है। इसी तकनीक से बने हुए बहुत से सीन बाहुबली फिल्म में मौजूद हैं।

बाहुबली फिल्म और तकनीक :-

बाहुबली एक ऐसी फिल्म है जिसको दर्शकों ने बहुत पसंद किया। एक सामान्य सी कहानी लिए हुए ये फिल्म भारतीय सिनेमा की

सबसे ज्यादा कमाई करने वाली फिल्म की सूची में अपना स्थान बनाने में सफल हुई। ये फिल्म भारत में ही नहीं विश्व के दूसरे देशों में भी देखी गई और वहाँ के दर्शकों ने भी इसको पसंद किया। विदेश में भी इस फिल्म ने बहुत अच्छी कमाई की, विदेश में सबसे ज्यादा कमाई करने वाली भारतीय मूल की फिल्मों की सूची में भी शामिल हुई। फिल्म समीक्षक अतुल कुमार कहते हैं- "आज जब बाहुबली देखते हैं तब आप सिर्फ फ़िल्म नहीं देखते वरन भारतीय सिनेमा का बदलता इतिहास देखते हैं, आप भारतीय सिनेमा में पहली बार भारत को देखते हैं। बाहुबली मात्र एक फिल्म नहीं, ये अश्लीलता और फूहड़ता के पश्चिमी शोर में अकेले गूंजता हुआ भारतीय शंखनाद है।"

बाहुबली फिल्म दो हिस्सों में निर्मित हुई पहला भाग बाहुबली द बिगनिंग 10 जुलाई 2015 सिनेमा घरों में प्रदर्शित हुई और दूसरा भाग बाहुबली 2 द कन्क्लूजन 28 अप्रैल 2017 को आई ये दोनों फिल्म बड़े बजट में बनी थीं और दोनों फिल्मों ने उम्मीद से बढ़कर कमाई भी की। बाहुबली की कहानी एक पौराणिक कहानी है, जिसमें महिष्मती राज्य होता है इसी राज्य को लेकर दो भाइयों के बीच हुए संघर्ष को दोनों भागों में दिखाया गया है। एक फिल्म को दर्शक तभी पसंद करते हैं जब उसकी कहानी अच्छी हो, उसमें एक्शन हो और कुछ अच्छे दृश्य हों, इन दिनों घोर वास्तविकता के आस- पास डोलने वाली हिंदी फिल्मों के बीच यह फिल्म अलग झोंके की तरह है, जो मनमोह लेती है, तिस पर इसके शानदार विजुअल इफेक्ट्स जिन्होंने एक अलग ही दुनिया हमारे समक्ष परदे पर रच दी है। परदे पर चलती कहानियां हम आए दिन देखते हैं, लेकिन किसी कहानी के साथ परदे पर एक जादुई दुनिया की रचना होती दिखे, तो? एस. एस. राजामौली की 'बाहुबली' कुछ ऐसा ही कर दिखाती है। फिल्म शुरू होने के कुछ समय बाद तक आप को लग सकता है कि क्या पुराने जमाने की कहानी है, किसी बालकथा जैसी...लेकिन जैसे ही झरनों की सम्मोहक दुनिया से निकलकर आप माहिष्मति की राज्यसीमा में प्रवेश करते हैं, सिनेमा अपने विविध रंगों में आपके समक्ष परत-दर-परत उघड़ने लगता है। एक-एक दृश्य आंखों के लिए किसी तोहफे से कम नहीं लगता। ये सब तकनीक के कारण ही संभव हो पाया है। दृश्यांकन हो, परिधान हो, दृश्यों की पृष्ठभूमि हो, या फिर हर दृश्य में छुई गई महीन बारीकियां सब कुछ चमत्कृत करता है। यह जरूर है कि इसके ज्यादातर दृश्य क्रोमा तकनीक का इस्तेमाल करके रचे गए हैं, लेकिन आंखों के समक्ष वे इतने जीवंत ढंग से सामने आते हैं कि असल लगते हैं और हर दृश्य को इतनी बारीकी से समझा और गढ़ा गया है कि आप खुश हुए बिना नहीं रह पाते हैं। फिल्म को बनाने के लिए पूरी तरीके से कंप्यूटर ग्राफिक्स का उपयोग किया गया है। बाहुबली के पहले भाग में आधे घंटे का युद्ध दिखाया गया है जिसमें दो ताकतवर इन्सान लड़ते हैं। साथ ही उनकी बड़ी सी सेना भी होती है, जिसमें हाथी, घोड़े, बैल सभी होते है। इस युद्ध में कंप्यूटर ग्राफिक्स का इतने अच्छे से उपयोग हुआ है कि दर्शक अपने दांतों तले उँगलियाँ चबाते रह जाते है। आपको यह भी हैरानी होगी कि युद्ध का मैदान असली नहीं है। वो सब कंप्यूटर ग्राफिक्स का ही कमाल है। युद्ध के दृश्य जो लंबे जरूर हैं लेकिन आंखों के समक्ष वे इतने जीवंत ढंग से सामने आते हैं कि असल लगते हैं और हर दृश्य को इतनी बारीकी से समझा और गढ़ा गया है कि आप खुश हुए बिना नहीं रह पाते हैं। फिल्म को बनाने के लिए पूरी तरीके से कंप्यूटर ग्राफिक्स का उपयोग किया गया है। बाहुबली के पहले भाग में आधे घंटे का युद्ध दिखाया गया है जिसमें दो ताकतवर इन्सान लड़ते हैं। साथ ही उनकी बड़ी सी सेना भी होती है, जिसमे हाथी, घोड़े, बैल सभी होते हैं। इस युद्ध में कंप्यूटर ग्राफिक्स का इतने अच्छे से उपयोग हुआ है कि दर्शक अपने दांतों तले उँगलियाँ चबाते रह जाते है। आपको यह भी हैरानी होगी कि युद्ध का मैदान असली नहीं है। वो सब कंप्यूटर ग्राफिक्स का ही कमाल है। युद्ध के दृश्य जो लंबे जरूर हैं लेकिन सुपरहिट हॉलीवुड फिल्म '300' के दृश्यों का मुकाबला करते हैं। फिल्म समीक्षक रवींद्र त्रिपाठी बाहुबली के युद्ध दृश्यों की तारीफ करते हुए लिखते हैं "इसमें अगर किसी तरह की कोई भव्यता है तो वह इसके मेकिंग या निर्माण में है। वह इसके रणक्षेत्रों में दिखाए गए हथियारों तीरों, तलवारों, ढालों भालाओं, गदाओं आदि में है। युद्ध कौशलों में है। घुड़दौड़ों में है"। बहुत कम फिल्में होती हैं जिनमें दर्शक का ध्यान परिधानों तथा मेकअप की तरफ जाता है, लेकिन 'बाहुबली' में ये दोनों पहलू भी आकर्षित करते हैं। फिल्म के एक सीन में प्रभास को शिवलिंग अपने कंधे पर उठाये देखा गया है, इतने कठिन सीन में भी प्रभास बहुत अच्छे से फिट बैठ रहे हैं, जो सीन को एक दम अद्भुत बना रहा है। यह भी ग्राफिक्स के कारण ही संभव हो पाया है। वरना इतना बड़ा शिवलिंग उठाना आसान काम नहीं है। फिल्म का सेट हमें एक अलग दुनिया में ले जाता है, जो हमें आज से 500 साल

पीछे ले जाती है। फिल्म के कुछ ऐसे दृश्य जो बिल्कुल भी संभव नहीं हैं उनको वी एफ एक्स के द्वारा बनाया गया है। जिससे वो हमें बिल्कुल असली दिखाई पड़ते हैं। बाहुबली फिल्म के कलाकारों को ऊंचे-ऊंचे पहाड़ पर खड़े देखकर आपको लगता है, हीरो को कितना मजा आ रहा है, लेकिन ये तो पूरा कमाल ही तकनीक का है।

अब बात फिल्म के दूसरे भाग की करते हैं, भव्यता के मामले में ये फिल्म पहले भाग से पीछे नहीं है बल्कि आगे ही है। इसमें भी तकनीक का प्रयोग हुआ है और फिल्म को पूरी तरह से पहले भाग से अच्छा बनाने का प्रयास किया गया है। बाहुबली 2 भव्यता और विशालता में पहले भाग से ज्यादा बड़ी और चमकदार हो गई है। सब कुछ बड़े पैमाने पर रचा गया है। फिल्म में पचास से अधिक प्रतिशत एक्शन है। "वीएफएक्स और तकनीक की मदद से निर्देशक एसएस राजमौली ने भारतीय सिनेमा को वह अपेक्षित ऊंचाई दी है, जिस पर सभी भारतीय दर्शक गर्व कर सकते हैं। हॉलिवुड के भव्य फिल्मों के समकक्ष 'बाहुबली' का नाम ले सकते हैं"।

वी एफ एक्स और कंप्यूटर एडिटिंग इतना आसान नहीं होता इसी फिल्म के एक्शन सीन को कंप्यूटर जेनरेटेड इमेजरी से जोड़ने का काम करने वाली कंपनी माकुटा वीएफएक्स के सहसंस्थापक पीट ड्रेपर कहते हैं, "अगर कला आसान होती, हर कोई वो करता ।" इसी बात को आगे बढ़ाते हुए ड्रैपर बताते हैं कि "हर एक शॉट की अपनी चुनौती होती है तभी हर दिन उसे निपटाते हुए सुबह के 4 बज जाते हैं। "विजुअल इफैक्ट्स प्रमुख ड्रेपर हर दिन फिल्म के शूटिंग सेट पर होते थे। उनका काम यह सुनिश्चित करना होता था, कि लोकेशन और एक्टरों के शॉट और हरकतें ऐसी हों, जिन्हें बाद में कंप्यूटर स्क्रीन पर सीजीआई इनहैंस्ड रेंडरिंग के साथ सिन्क्रोनाइज करना संभव हो दिन में सेट पर आधे अधूरे से महल के सेटो के साथ असली शूटिंग होती और रात में ग्राफिक्स की मदद से दृश्य को पूरा किया जाता। बेहद बारीकी के इस काम को करने में 80 से अधिक टेक्नीशियंस की टीम लगी थी। कुल बजट 6.7 करोड़ डॉलर का था प्रोडक्शन के र्च को सीमा में रखने के लिए सिर्फ भारत ही नहीं तमाम देशों के 35 बड़े स्टूडियो में बांट कर इसे किया गया।

निष्कर्षत: भारत में फंतासी फिल्में बनती रही हैं; दिमाग पर थोड़ा जोर डालेंगे तो जितेंद्र अभिनीत 'पाताल भैरवी' और 'हातिमताई' जैसी फिल्में याद आ जाएंगी। लेकिन 'बाहुबली' एक अलग ही स्तर पर है। यह उस जमाने में बनी है जब तकनीक आपकी दासी बनकर आपके साथ खड़ी है और जिसके इस्तेमाल से आप जो चाहे रच सकते हैं। तकनीक से लगभग सभी दृश्य जो नामुमकिन लग रहे होते हैं, वो भी मुमकिन हो जाते हैं। यही कारण है की भारतीय सिनेमा अब हर दिन दर्शकों को एक नई दुनिया से अवगत करवा रहा है। ये सब तकनीक के कारण और अच्छे निर्देशन के कारण ही संभव है। बाहुबली फिल्म इसका एक सटीक उदाहरण है। जिसमें अच्छी तकनीक के साथ साथ एस एस राजामौली का श्रेष्ठ निर्देशन हमें देखने को मिला। कल तक हम हॉलिवुड फिल्म देख कर उसमें देखी गई तकनीक को भारतीय फिल्मों में उसकी कल्पना करते थे, बाहुबली ने उस कल्पना को साकार किया है। ऐसा भी नहीं कि बाहुबली फिल्म में उपयोग तकनीक का स्तर हॉलीवुड फिल्म की तुलना में कमतर हो वही स्तर जो हॉलिवुड फिल्म में दिखाया जाता है, वही स्तर हमें बाहुबली फिल्म में देखने को मिलता है। बाहुबली फिल्म तकनीक का सही उपयोग करने के लिए भारतीय सिनेमा में अपना एक अलग स्थान बना चुकी है। इसको देखकर दूसरे निर्देशक भी कुछ नया दिखाने की कोशिश कर रहे हैं ताकि भारतीय सिनेमा को ऊंचाई प्रदान कर सकें।

संदर्भ सूत्र:

1. https://www.atulkumarrai.com/film-review-bahubali-hindi
2. https://cutt.ly/DGoB2Ef
3. https://cutt.ly/YGoCvDM
4. https://cutt.ly/pGoFa9Y

सहायक सूत्र:

1. https://cutt.ly/dGo48pf
2.https://satyagrah.scroll.in/article/13042/film-review-bahuball
3. https://cutt.ly/fGpeyaC
4. https://www.makehindi.com/vix-kya-hall

5. https://cutt.ly/EGpecOw

****

60के दशक की कविताओं में लोकतंत्र के मूल्य (विशेष सन्दर्भ: मुक्तिबोध,धूमिल, रघुवीर सहाय)

अंकित यादव
एम.ए. पास - (हिंदी विभाग)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
मो.9648121893

लोकतंत्र से तात्पर्य एक ऐसी शासन व्यवस्था से है, जहाँ जनता के द्वारा शासक का चुनाव हो। लोकतंत्र शब्द का निर्माण यूनान के डेमोक्रेशिया से बना है, जहाँ 'डेमोस'का अर्थ लोग और 'क्रेशिया' का अर्थ है, शासन। इस प्रकार डेमोक्रेसी अर्थात् लोकतंत्र का अर्थ है लोगों का शासन।भारत में लोकतंत्र का आगमन स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सविधान लागू होने के साथ हुआ। भारत में लोकतंत्र के इस वायदे के साथ आया कि उसका उद्देश्य लोकतांत्रिक शासन सत्ता के माध्यम से समाज को लोकतांत्रिक बनाना है इसी कारण हमारे संविधान निर्माताओं ने संविधान में मौलिक अधिकार (12-35) जैसे विशेष अधिकारों को जोड़कर जनता की शक्ति में इजाफा किया।

परंतु आने वाले समय में राजनेताओं एवं पूजीपतियों द्वारा किए गए शोषण के कारण लोकतंत्र के उदांत प्रभाव भारती शासन एवं समाज से धीरे धीरे विस्थापित होते चले गये फलस्वरूप लोकतंत्र का लोक भ्रष्टाचार एवं सांप्रदायिकता की आंच में मिटता गया है। तंत्र उस लोक पर हावी हो गया। तत्कालिन परिस्थिति में जनता के आजादी के पूर्व देखे सपने इस प्रकार खंडित हुए कि जनता में असंतोष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। और यह असंतोष शासन सत्ता के साथ -साथ समाजिक सामंती एवं रूढ़िवादी चेतना के प्रति भी था। इस प्रकार यह आवश्य ही था कि तत्कालिन स्थिति का साहित्य पर गंभीर प्रभाव पड़ा और हिंदी साहित्य के तत्कालिन कवियों ने शासन सत्ता की क्रूरता फैले भ्रष्टाचार जैसे कई ऐसे मुद्दे जो लोकतंत्र के विघटन का कारण बने उन मुद्दों पर बेबाक स्वरों में अभिव्यक्ति ही एवं तत्कालिन सत्ता पर प्रश्न उठाया। इस संदर्भ में हिंदी साहित्य के प्रमुख कवि मुक्तिबोध अपनी कविता बहुत शर्म आती है में अपने अधिकारों के लिए लड़ने वाले लोगों को संबोधित करते है जो शासन सत्ता के जाल में फस कर अपने प्राण खो चुके है-

बहुत खून या छोटी छोटी पंखुड़ियों में
जो शहीद हो गई किसी अनजाने कोने-कोई न बचे
केवल पत्थर रह गए तुम्हारे लिए
अकेले रोने।
मानव मुक्ति सास का
कुसुनकर जिसे
बहुत शर्म आती है
मैने खून बहाया नहीं तुम्हारे साथ।।

लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में जनता को अनु.14 (भाग -3) के अंतर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है, लेकिन तत्कालिन शासन व्यवस्था में शासक के खिलाप आवाज उठाने पर उसे किसी न किसी तरह खत्म करने या उसी आवाज को दबा देने का प्रयास किया जाता है जब की शासन सत्ता की चाटुकारता करने वाले को पुरस्कारों से नवाजा जाता है इस संदर्भ में मुक्तिबोध अपनी कविता मैं तुम लोगों से दूर हूं में कहते हैं -

असफलता का धूल-कचरा ओढ़े हूँ
इसलिए कि वह चक्करदार ज़ीनों पर
मिलती है।।

रेफ्रीजारेटरो विटैमिनो रेडियोग्रैयों के बहार की गतिविधियों की दुनियां में मेरी वह भूखी बच्ची मुनिया है शुन्यो में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में जनता को यह अधिकार है वह अपना सपने दिखाकर जनता को बरगलाकर वोट बैंक की राजनीत करके सत्ता हासिल करने वाले शासक के सम्बंध में मुक्तिबोध कहते हैं

भूल-ग़लती
आज बैठी है ज़िरहबख़्तर पहनकर
तख़्त पर दिल के,
चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक

मुक्तिबोध कहते है कि ये शासक हमारी ही भूल एवं गलतियों का कवच धारण करके बैठा है। और हम पर अत्याचार कर रहा है। मुक्तिबोध लोकतंत्र का क्षरण करती हुई सत्ता के प्रति क्रांति का आग्रह अपनी कविता अंधेरे में करते हुए कहते है कि अगर हम अपनी सुविधा और सुखमय जीवन के बारे में सोचते रहने और एकजुट होकर क्रांति नहीं करेंगे तो ये देश खत्म हो जाएगा।

अब जब वे कुछ नहीं कर पायेंगे
अब तक क्या किया,

जीवन क्या जिया,
ज़्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश, अरे, जीवित रहे गए तुम...

मुक्तिबोध जानते है कि शासन अपने खिलाफ स्वरों को तुरंत कुचल देगा फिर भी वे जनता से आग्रह करते हुए कहते है -
अब अभिव्यक्ति के सारे ख़तरे उठाने ही होंगे। तोड़ने होंगे ही मठ और गढ़ सब।

लोकतांत्रिक व्यवस्था में मिश्रित होते भ्रष्टाचार के खिलाफ प्रश्न उठाने वाले कवियों में रघुवीर सहाय भी एक महत्वपूर्ण कवि है। संविधान के अनु.21में वर्णित जीवन के अधिकार की व्याख्या को विस्तार देते हुए उच्चतम न्यायालय ने कहा था

"जीवन का अभिप्राय पशुवत जीवन का अधिक नहीं है। अपितु गरिमामय जीवन का अधिकार है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अस्मिता एवं गरिमा है परंतु रघुवीर सहाय लोकतांत्रिक व्यवस्था के विघटन के फलस्वरुप एक व्यक्ति की स्थिति को 'तोते' के समान देखते है जो यह भूल गया कि मैं एक व्यक्ति हूं मेरी अपनी अस्मिता है। जिस प्रकार तोता अपने स्वामी द्वारा रटाये गये शब्दों को रटता रहता है उसी प्रकार सामान्य जगत भी उच्च वर्ग व शासन वर्ग के निर्देश को बिना परखे पालन करती रहती है-

अगर कहीं मैं तोता होता
तोता होता तो क्या होता
बोल पट्ठे सीता राम

इस संदर्भ में किसी विद्वान् की लोकतंत्र के विषय में यह विचार विषेश रूप से प्रासंगिक है -
"व्यक्ति की न्यायप्रियता लोकतंत्र को संभव बनाती है लेकिन अन्याय के प्रति व्यक्ति का रुझान लोकतंत्र को जरूरी बनाता है।

सन् 1975 में आपातकाल के दौरान जिस प्रकार लोकतंत्र की हत्या की गई और व्यक्ति के जीवन के अधिकार को भी जिस प्रकार खत्म कर दिया गया उसका चित्रण रघुवीर सहाय अपनी कविता 'रामदास' में करते है यहां रामदास की हत्या किसी विशेष की हत्या नहीं बल्कि लोकतंत्र की हत्या है। और जनता के न्याय के विश्वास की हत्या नहीं बल्कि लोकतंत्र की हत्या है और जनता के न्याय के प्रति विश्वास की हत्या है जहां सत्य का साथ देने अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाला भी कोई नहीं सभी शासन के फांसीवादी रवैये से डरे हुए हैं -

धीरे-धीरे चला अकेले
सोचा साथ किसी को ले ले
फिर रह गया, सड़क पर सब थे
सभी मौन थे सभी निहत्थे
सभी जानते थे यह उस दिन उसकी हत्या होगी।।

भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार अपने प्रतिनिधि को मत देने का अधिकार परंतु शासक वर्ग के प्रतिनिधि अपने पक्ष में जिस व्यक्ति का मतदान नहीं पाते हैं शासन सत्ता प्राप्त करने के बाद उस व्यक्ति का शोषण करते है, शासक वर्ग एवं मतदाता के बीच का यह तनाव रघुवीर सहाय अपनी कविता कोई एक और मतदाता में इस प्रकार करते है -

रात तक दम तोड़ देता है परिवार
मेरा नहीं एक और मतदाता का संसार।

देश में चुनाव के पूर्व नेता मंचो से भाषण देते हुए अच्छी शिक्षा एवं बेहतर स्वास्थ्य सुविधा एवं अन्य मूल भूत आवश्यकता को जनता के लिए सुलभ कराने का आश्वासन देते है, परंतु चुनाव जीतने के बाद गरीब जनता वैसे ही स्वास्थ्य के अभाव में प्राण त्याग देती है इसका चित्रण रघुवीर सहाय अपनी कविता 'आत्महत्या के विरुद्ध' में इस प्रकार करते है -

उसने कहा लोहिया से लोहिया ने कहा
कुछ करो।
खुश हुआ वह चला गया अस्पताल में
भीड़ भौचक भीड़ धाय धाय
जब हम दफनाते है
एक हताश लड़के की लाश बार -बार।।

लोकतंत्र के इसी खंडित होते स्वरुप, सुदामा पांडे अपनी कविता 'पटकथा' के माध्यम से व्यक्त करते हुए कहते है -

दरअसल अपने यहाँ जनतंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की भाषा है।

अर्थात् जिस प्रकार मदारी किसी जानवर को अपने वश में करके उससे अपने मन कार्य करवाता है उसी प्रकार हमारे देश के नेता भी जनता को अपने वश में लिए है और उस पर दबाव डालकर अपने मन का कार्य करवाता है। हमारे देश के नेता भी जनता को अपने वश में लिए है और उस पर दबाव डालकर अपने मन का कार्य ही करवा रहें हैं। इसलिए देश में जनतंत्र का केवल नाम और शासक

वर्ग निरंकुश होकर शासन कर रहा है।

भारतीय संविधान अनु.19(1) में जनता को सूचना का अधिकार है परंतु व्यवहारिक परिदृश्य यह है कि जनता को कठोर परिश्रम के बाद भी कुछ नहीं मिलता और उसके परिश्रम का फल उच्च वर्ग क्षपट लेते है तब जनता द्वारा शासक वर्ग से प्रश्न पूछे जाने पर शासन वर्ग उसका जवाब नहीं देता -

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ़ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ—
'यह तीसरा आदमी कौन है?'
मेरे देश की संसद मौन है

इसी प्रकार सुदामा पांडे धूमिल भी अपनी कविता 'मोचीराम'में व्यक्ति की खंडित होती अस्मिता एवं गरिमा को इंगित करते हुए कहते है -

बाबूजी सच कहूँ—मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने
मरम्मत के लिए खड़ा है।

अब्राहम लिंकन ने जनतंत्र के संबंध में ये कहा था- "जनता का जनता के लिए जनता के द्वारा शासन"। तो कही न कहीं आज शासक सबसे बड़ा मोहरा इसी जनता को बनाती है। धूमिल में लोकतंत्र की आलोचना प्रखर रूप से की है। लोकतंत्र की यह आलोचना हवा में न होकर एक परंपरा के रूप में प्राप्त होती है, जिसमें प्रेमचंद, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, फैज अहमद फैज जैसे कवि व लेखक आते है। 'मैं भी भूखा न रहूं साधु न भूखा जाय' के मर्म को वे क्या जान सकेंगे जो पूरी दुनियाँ की दौलत अपनी मुट्ठी में कर लेने के हर संभव प्रयत्नों में हमेशा लगे रहते है। इस लोकतंत्र को मुक्तिबोध की एक कविता द्वारा समझा जा सकता है।

मैं कनफटा हूँ हठो हूँ
शेलब्रेट - डॉज के नीचे मैं लेटा हूँ
तेलिया लिबास में पुरजे सुधारता हूं
तुम्हारी आज्ञाएँ ढोता हूँ।

वहीं धूमिल की कविताओं में जिस तीसरे आदमी की बात हुई है वहाँ उस लोकतंत्र का खाना प्रस्तुत कर देता है जो कहीं न कहीं उसकी सारी पोल खोल देता है

"यह जनतंत्र
जिसकी रोज सैकड़ो बार हत्या होती है
और हर बार वह भेड़ियों की जुबान पर जिंदा है।"

वहीं मुक्तिबोध अपने समय के लोकतंत्र को शिनाख्त करते है. आज़ादी मिलने के बाद स्थापित हो रहे अपने देश में उस उदार जनतंत्र के रोग लक्षणों की भी। और पाते है कि यह जो उदार जनतंत्र है 'वह अपनी सामन्ती परम्परा से विच्छिन्न होकर भी। सामन्ती शासकवर्गीय प्रकृतियों की तानाशाहियत को अपने खून में लिए हुए है। क्रमशः मुक्तिबोध आजाद भारत की सत्ता - संरचना के प्रातीनीधि चरित्र - लक्षणों की गहन जांच करते है।

मुक्तिबोध की कविता भारतीय लोकतंत्र के अतीत और भविष्य की डार्क साइड को एक भयानक अनुभव की तरह हमारे सामने लाती है

मैं पुकारकर कहता हूँ -
'सुनो, सुननेवालों।
पशुओं के राज्य में जो वियाबान जंगल है
उसमें खड़ा है घोर स्वार्थ का प्रभाव दिखाई देता है।

मुक्तिबोध की 'अंधेरे में' और 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में इमरजेंसी के दमन और नंदीग्राम के संघर्ष की छवियों के कई । सिलसिले दिखते है। यह उनकी कविता का एक बेहद ख़ास गुण है जो हमें इस तकनीकी अतिरेक के युग से लेकर आदिम गुफाओं तक के मानव को एक साथ पढ़ने और समझने का अवसर देता है। यह मानव लोकसत्ता और राजसत्ता के गुंजित प्रभावों की यातना को झेलता हमोर युग का साधारण मानव है।

मुक्तिबोध की कविता हमारे समय की लोकतांत्रिक हायररेकी और उसकी सामंती संरचनाओं के नेगेटिव का कोलाज भी है। और ये नेगेटिव स्थिर चित्रों के नेगेटिव नहीं है, वे देश, काल और दूरी के सभी किनारों को तोड़ते हुये फैटेंसी की उस दुनियाँ में ले जाते है

जो हमारे असंतुष्ट मन की चेतना में हर समय बेचैन रहती है।

उपसंहार -

लोकतंत्र की आलोचना धूमिल के साहित्य के केंद्र में है। लोकतंत्र की यह आलोचना उनके यहां हवा में न होकर एक परंपरा से प्राप्त होती है, जिसमें प्रेमचंद, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, फैज़ अहमद फैज़ जैसे कवि व शायर आते हैं। प्रेमचंद गबन उपन्यास में ही देवीदीन खटिक के माध्यम से आने वाले स्वराज की आलोचना करते हैं। फैज़ अहमद फैज भी अपनी 'सुबह-ए-आज़ादी' कविता में 1947 में प्राप्त भारत की राजनीतिक आजादी से गहरे रूप में असंतुष्ट दिखाई देते हैं। नागार्जुन ने भी 15 अगस्त 1948 को 'जन्मदिन शिशु राष्ट्र का' कविता में प्राप्त आजादी की गहरी आलोचना की है।

जैसा कि प्रेमचन्द जी का कथन है कि साहित्य राजनीति के आगे जलने वाली मशाल है। अंत: संविधान लागू होने के बाद देश में राजनीतिक निरंकुशता एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के हनन को देखते हुए हमारे तत्कालीन साहित्यकारों ने एक तरफ कहीं- कहीं भ्रष्ट शासन व्यवस्था को दुरुस्त किया एवं उनके कुचक्रो का पर्दाफाश किया एवं वही दूसरी तरफ जनता की दयनीय स्थिति को उजागर किया। तथा जनता को आवाज़ उठाने के लिए प्रोत्साहित किया।

ठीक उसी प्रकार धूमिल की कविता में भारतीय लोकतंत्र के अंतरविरोधों की गहरी आलोचना के साथ ही उनके यहां पक्ष और विपक्ष पूरी तरह स्पष्ट है। विपक्ष अगर संसद और लोकतांत्रिक व्यवस्था है तो पक्ष भारतीय जनता है। इसलिए विपक्ष का कवि धूमिल कहने का अर्थ जनता के पक्ष में और उसके हितों के लिए संघर्ष और प्रतिरोध करने वाला कवि है। उन्होंने कहा कि धूमिल को कुछ आलोचकों ने अराजकतावादी भी कहा है लेकिन यह आरोप किसी भी रूप में सही नहीं है। वास्तव में धूमिल वामपंथी झुकाव वाले ऐसे समाजवादी चेतना के कवि थे जो उन्हें दुष्यंत कुमार, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और रघुवीर सहाय के अधिक करीब ले जाता है। ऐसा इसलिए कि इन कवियों के यहाँ भी भारतीय लोकतंत्र और उसके अंतरविरोधों की गहरी आलोचना तो मिलती है लेकिन कोई विकल्प नहीं मिलता। दूसरी ओर नागार्जुन और मुक्तिबोध जैसे मार्क्सवादी कवियों के यहाँ जनता के आंदोलन और संघर्ष का विकल्प मौजूद रहता है। यही तत्व कई बार धूमिल की कविता में गहरे आक्रोश और निराशा के रूप में भी दिखाई देता है। इसलिए धूमिल की कविता में भारतीय लोकतंत्र की सबसे प्रामाणिक और विश्वसनीय आलोचना मिलती है।धूमिल राजनीति के प्रचलित रूपों से असहमत थे लेकिन वे राजनीति को ही जनता की मुक्ति का एकमात्र रास्ता मानते थे। इसीलिए यह अब आवश्यक हो गया है कि हम सामाजिक संरचना के स्तर पर जब तक बदलाव नहीं लाएंगे तब तक धूमिल की चिंताओं और जनता के हितों के लिए उनके तनावों को व्यावहारिक परिणति तक नहीं पहुँचा सकते।

वरिष्ठ कवि शिव कुमार पराग ने कहा कि धूमिल को अपने परिवेश में जब कमी दिखाई देती है तो वे अपने समय से असंतुष्ट होते हैं। इसीलिए उनकी कविताओं में मिलने वाला व्यंग्य अधिक धारदार और मारक हो जाता है। उन्होंने धूमिल पर लगाए गए आरोपों को नकारते हुए कहा कि धूमिल ने अपनी कविता में समय को शब्द में ढाला है, इसीलिए उनकी कविता में जीवन के गहरे दृश्य दिखाई देते हैं, जिसकी छाप पाठक पर पड़ती है। उन्होंने अपने वक्तव्य में यह भी कहा कि धूमिल को धूमिल की तरह ही देखना चाहिए। भारतीय लोकतंत्र पर जब भी संकट के बादल मँड़राएंगे तब धूमिल एक जरूरी और अनिवार्य कवि के रूप में याद किए जाएंगे।

आधार सामग्री:

1.प्रतिनिधि कविताएं (पे.18)गजनान माधव मुक्तिबोध

2.प्रतिनिधि कविताएं (पे.84)गजनान माधव मुक्तिबोध

3. चाँद का मुँह टेढ़ा है (पे.31)गजनान माधव मुक्तिबोध

4. अंधेरे में (पे.142)गजनान माधव मुक्तिबोध

5.अंधेरे में (पे.161)गजनान माधव मुक्तिबोध

6 .प्रतिनिधि कविताएं (पे.22)रघुवीर सहाय

7. रघुवीर सहाय संचयिता (पे.31)रघुवीर सहाय

8.प्रतिनिधि कविताएं (पे.55)रघुवीर सहाय

9. एक साहित्यिक की डायरी -गजानन माधव मुक्तिबोध

10. पटकथा कविता (धूमिल)

11.कल सुनना मुझे (पे.66) धूमिल

12. संसद से सड़क तक (पे.39) धूमिल

13. कहने दो उन्हें जो यह कहते है (, पे..-114) मुक्तिबोध

हिंदी साहित्य में लघु-पत्रिकाओं की भूमिका

-जितेन्द्र कुमार
शोधार्थी हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
मो. 9899203112

हिन्दी भाषा में पत्रकारिता का ज लगभग 200 वर्ष पूर्व हुआ था। प्रथम प्राप्त हिन्दी साप्ताहिक पत्र है 'उदंतमार्तंड' जो श्री युगलकिशोर शुक्ल द्वारा 30 मई 1826 को कलकत्ता से प्रकाशित किया गया था। यह अल्पकालिक और समाचार प्रधान पत्र था। इसमें साहित्यिकता का पुट नहीं था। इसके पूर्व कुछ लोग दिग्दर्शन नामक पत्र के प्रकाशन की चर्चा करते हैं किन्तु वह सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। ऐसी स्थिति में साहित्यिक पत्रिका के रूप में भारतेन्दु द्वारा प्रकाशित कविवचनसुधा को प्रथम कहा जा सकता है। भारतेन्दु जी से प्रभावित होकर उस युग में (1867-1885 के बीच) कई साहित्यिक पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई जैसे हिन्दी बगदूत, प्रजामित्र, सुधाकर, बुद्धिप्रकाश, प्रजाहितैषी, आदि। आरंभिक पत्रों में बनारस अखबार उर्दू समर्थक था. राजा लक्ष्मण सिंह का प्रजाहितैषी पत्र संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का पोषक था. जबकि हरिश्चन्द्र मैगजीन (भारतेन्दु) और बुद्धिप्रकाश (सदासुख लाल नियाज) आज की भाषा के प्रवर्तक के रूप में मान्य है । भारतेन्दु ने 1873 में नयी चाल में हिन्दी के ढलने की बात कही थी।

लघु-पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक साहित्यिक आन्दोलनों का प्रचार प्रसार हुआ है, न जाने कितने ही श्रेष्ठ रचनाकारों की रचनाएँ प्रकाश में आई लेकिन आज जब पत्रकारिता का क्षेत्र इतने विस्तृत रूप में अपनी जड़ें जमा चुका है तब 'लघु पत्रिका' की पहचान करना मुश्किल हो जाता है। सरल शब्दों में लघु पत्रिका का अर्थ है एक ऐसी पत्रिका जो व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा सीमित संसाधनों से निकाली जाए। - ऐसी पत्रिकाओं की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि यह पत्रिकाएं किसी प्रतिष्ठित संस्थान या प्रकाशनों द्वारा परिचालित नहीं होती हैं। यहाँ पर लघु पत्रिका का अर्थ केवल लघु आकार या प्रसार का लघु दायरा नहीं है। बल्कि एक ऐसी दृष्टि है जो व्यवस्था के कुकृत्यों के खिलाफ विद्रोही चेतना को तैयार करती है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो यह पत्रिकाएं निःस्वार्थ साहित्य सेवा करती है तथा व्यवस्था के सामंती पूंजीवादी मूल्यों का विरोध कर, प्रगतिशील भूमिका अदा करती है।

हिन्दी साहित्य के अतीत और वर्तमान को पहचानने और विश्लेषित करने की कोई भी कोशिश, लघु-पत्रिकाओं की दुनिया पर नज़र डाले बिना, पूरी नहीं हो सकती। साठ और सत्तर के दशक में उभरे हिन्दी लघु- पत्रिकाओं के विविध-विशद संसार को एक संस्थागत सांस्कृतिक आन्दोलन का रूप देने की कोशिश नब्बे के दशक में की गयी। ख़ास बात यह थी कि यह पहल, कम्युनिस्ट पार्टियों के नेतृत्व में चलने वाले लेखक संगठनों से, अलग तरह की थी। दूसरे, उस समय तक सांस्कृतिक आन्दोलन के लिए ज़रख़ेज़ समझी जाने वाली साहित्य की ज़मीन बदली हुई राजनीतिक- सामाजिक परिस्थितियों में, नयी परिभाषाओं की, माँग कर रही थी। चुनौतियों का स्वरूप पहले जैसा नहीं रह गया था। विचारधारा, प्रतिबद्धता, प्रतिरोध, समाज-रचना, व्यावसायिकता और रचनाशीलता जैसे प्रत्यय संशोधन की माँग कर रहे थे। इस नयी परिस्थिति में साहित्यकारों और लघु-पत्रिकाओं के सम्पादकों को एक ऐसे द्वैध का सामना करना पड़ा जो नये वक़्त की सांस्कृतिक बेचैनियों की नुमाइंदगी कर रहा था।

हिन्दी में लघु -पत्रिका का मतलब लघु आकार, प्रसार का लघु दायरा और प्रकाशन का लघु संरचना तो है ही, ख़ास तरह की चेतना से लैस प्रतिरोध की ज़मीन तैयार करने का सांस्कृतिक-राजनीतिक मर्म भी, इन पत्रिकाओं को, व्यावसायिक पत्रिकाओं से अलग करता है। ख़ुद लघु-पत्रिका या लिटिल मैग़ज़ीन कहने वाले प्रकाशनों की शुरुआत द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान फ्रांस के रजिस्टेंस समूह से मानी जाती है। ज्याँ पाल सार्त्र जैसी हस्तियाँ इसमें शामिल थीं। चूँकि रजिस्टेंस समूह की पत्रिका का तेवर सत्ता के ख़िलाफ़ था इसलिए उसे प्रतिरोध की आवाज़ होने की पहचान मिली। लेकिन, इस इतिहास और सामान्य परिभाषा के बावजूद हिन्दी-क्षेत्र में, इस बारे में, अलग-अलग तरह के विचार मिलते हैं कि लघु-पत्रिका किसे माना जाय किसे नहीं । उन्नीसवीं सदी या उसके उपरान्त जिन लेखकों ने अपनी पत्रिका निकाली, उन्होंने उसे 'लघु' नहीं कहा। वास्तव में विवाद 'लघु' शब्द को लेकर ही है। कुछ लोग लेखकों के छोटे समूह या व्यक्तिगत प्रयास और सीमित साधनों से निकाली जाने वाली सारी पत्रिकाओं को लघु-पत्रिका का दर्जा देते हैं, और कुछ नहीं देते।

रामकृष्ण पाण्डेय ने लघु-पत्रिकाओं के भारतीय परिप्रेक्ष्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि-"एक समय था जब भारतीय भाषाओं में छोटी पत्रिकाओं का एक बड़ा आन्दोलन विकसित हुआ था। उसका मूल स्वर व्यवस्था-विरोध और बड़ी पत्र-पत्रिकाओं की जकड़बंदी से साहित्य को बाहर निकालना था। कहना न होगा कि छोटी पत्रिकाओं के आन्दोलन ने उस राजनीति को सम्पोषित किया जो परिवर्तनकामी

थी और सामाजिक रूपान्तरण की पक्षधर थी।

रामकृष्ण पाण्डेय ने जिस दौर को 'एक समय था' कहा है वह, साठ-सत्तर का दशक है। इसी दौर में बड़े प्रकाशन समूहों की पत्रिकाओं के बरअक्स (बल्कि प्रतिरोध में) छोटे स्तर पर (व्यक्तिगत या लेखकों के छोटे समूहों द्वारा) कई पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। इनके ज़रिये कई रचनाकार उभरे जो भविष्य में महत्त्वपूर्ण साबित हुए। उस दौर में साहित्य ही नहीं, अन्य कई क्षेत्र भी, बदलाव की प्रक्रिया से गुज़र रहे थे। इस आधार पर कहा जा सकता है कि लघु-पत्रिका के मर्म में परिवर्तनकारी राजनीति और बेहतरी की दिशा में सामाजिक रूपान्तरण की आवाज़ गूंजती है, उसमें वर्चस्वशाली विचारों के प्रतिरोध का मुद्दा केन्द्रीय होता है। कथाकार प्रियंवद ने ठीक ही कहा है कि "विचारशीलता और प्रतिरोध लघु पत्रिका के मूल स्वर हैं। विचारशीलता से आशय है, अपने समाज और समय के द्वन्द्वों को गहरायी से सम्बोधित करना। प्रतिरोध से आशय है मनुष्य विरोधी संरचनाओं को चिह्नित करके उनकी मुखालफत करना, इसमें भी मुख्यतः राजनीतिक वर्चस्ववादी सत्ता का। इसके अतिरिक्त लघु पत्रिका के स्वरूप व उसकी भूमिका को लेकर हमारे पास पहले की कुछ प्रचलित अवधारणाएँ भी हैं। ये हमारी मदद करती हैं। जैसे कि लघु पत्रिका अनियतकालीन हो, लघु आकार की हो, साधारण काज पर साधारण रूप से छपी हो, कम संख्या में प्रकाशित और साथियों के सहयोग से वितरित हो, उसके पीछे कोई बड़ी पूँजी, प्रतिष्ठान, वा सुव्यवस्थित बुनियादी ढाँचा न हो, व्यक्तिगत संसाधनों से निकलती हो, उसका ध्येय आर्थिक उपार्जन न हो, वह किसी विशेष विचारधारा और सत्ता-व्यवस्था का सक्रिय प्रतिरोध हो तथा वह बड़ी पूँजीवादी पत्रिकाओं के आतंक व वर्चस्व को चुनौती देती हो!" प्रियंवद द्वारा दी गयी यह परिभाषा लघु-पत्रिका की सूरत और सीरत स्पष्ट करती है।

कविवचन सुधा को हिंदी की पहली लघु पत्रिका माना जाता है, जिसमें साहित्यिक व सामाजिक विषय एक साथ थे। "भारतेन्दु ने भाषा को संवारने, उसका रूप स्थिर करने में बहुत बड़ा काम किया, लेकिन इससे भी बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य को नवीन मार्ग दिखाया।" सत्तर के दशक में हिंदी साहित्य में कई व्यावसायिक पत्रिकाएं थीं. जो लोकप्रिय भी थी मगर हिंदी के कई साहित्यकारों ने उनका बहिष्कार किया, क्योंकि उनकी नजर में उनका उद्देश्य जन पक्षधर साहित्य को बढ़ावा देने की बजाय पाठक को यथास्थितिवादी विषयों में उलझाए रखना था। तब कई लेखकों ने अपने सीमित साधनों से छोटी-छोटी साहित्यिक पत्रिकाओं को निकालना शुरू किया, जो पाठक के भीतर तात्कालिक सवालों से टकराने के अवसर देती थीं। इनमें कहानीकार ज्ञानरंजन और आलोचक कमला प्रसाद के संयुक्त प्रयास से निकली पहल लघु पत्रिका आंदोलन का सिरमौर बनी। इसके साथ ही क्यों, केक, अणिमा, और बिंदु लहर, अभिरुचि कथा जैसी पत्रिकाएं भी थी, जो छोटे-छोटे स्थानों से निकलकर आंदोलन का माहौल बना रही थी।

'पारिभाषिक अर्थ में लघु-पत्रिका सातवें दशक अन्तिम वर्षों में अस्तित्व में आयीं। यह चरण साहित्यिक से अधिक सामाजिक था। स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान लेखकों या हिन्दी सेवी प्रकाशन संस्थाओं द्वारा जो पत्रिकाएँ निकाली गयी थीं, वे प्रायः एक-एक कर बंद हो चुकी थीं और पत्रिका प्रकाशन पर इजारेदार घराने हावी थे। वहाँ से निकलने वाली पत्रिकाएँ थीं- धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि। इन्हें रंगीन पत्रिका कहा गया। स्वभावतः इनके द्वारा प्रक्षेपित विचारधारा से नयी पीढ़ी के लेखकों की विद्रोहपूर्ण विचारधारा का विरोध था। रंगीन पत्रिकाओं में उनके लिए जगह नहीं थी। इन परिस्थितियों में नये लेखकों ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए ख़ुद मंच बनाना शुरू किया और छोटे-छोटे नगरों / क़स्बों में लघु-पत्रिकाएँ निकलने लगीं। सत्तर के दशक में हिंदी साहित्य में कई व्यावसायिक पत्रिकाएं थीं. जो लोकप्रिय भी थी मगर हिंदी के कई साहित्यकारों ने उनका बहिष्कार किया, क्योंकि उनकी नजर में उनका उद्देश्य जन पक्षधर साहित्य को बढ़ावा देने की बजाय पाठक को यथास्थितिवादी विषयों में उलझाए रखना था। तब कई लेखकों ने अपने सीमित साधनों से छोटी-छोटी साहित्यिक पत्रिकाओं को निकालना शुरू किया, जो पाठक के भीतर तात्कालिक सवालों से टकराने के अवसर देती थीं। इनमें कहानीकार ज्ञानरंजन और आलोचक कमला प्रसाद के संयुक्त प्रयास से निकली पहल लघु पत्रिका आंदोलन का सिरमौर बनी। इसके साथ ही क्यों, केक, अणिमा, और बिंदु लहर, अभिरुचि कथा जैसी पत्रिकाएं भी थी, जो छोटे-छोटे स्थानों से निकलकर आंदोलन का माहौल बना रही थी। इस आधार पर कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग में लेखकों द्वारा निजी प्रयास से निकाली जा रही पत्रिका को लघु पत्रिका की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। दरअसल, उस दौर में तो हिन्दी में यही पत्रिकाएँ थीं। लिहाज़ा उस समय 'बृहद्' और 'लघु' के विभाजन की ज़रूरत नहीं थी। बीसवीं सदी के शुरुआती दशकों में यद्यपि इंडियन प्रेस सरीखे व्यावसायिक संस्थान पत्रिका-प्रकाशन में सक्रिय थे, पर इस दौर में भी निजी कोशिशों से होने वाले प्रकाशनों को लघु पत्रिका नहीं कहा गया। लेकिन वीर भारत तलवार सत्तर के दशक में लघु-पत्रिकाओं के उभार की धारणा से सहमत नहीं हैं। वे इस परिघटना में साठ का दशक भी जोड़ते हैं। "१९६० और ७० के दशक में लघु-पत्रिकाओं की बाढ़ आयी थी। लघु- पत्रिकाओं का साहित्यिक महत्त्व उभार पर था। तब एक-से-एक अच्छी रचनाएँ इन पत्रिकाओं में छपती थीं। उस वक़्त किसी ने भी इन पत्रिकाओं का संगठन नहीं बनाया, न कोई सचेत आन्दोलन चला। फिर भी आज कह सकते हैं

कि वह अपने आप में एक आन्दोलन जैसा था, जिसने उस वक़्त धर्मयुग और साप्ताहिक हिन्दुस्तान जैसी बड़ी रंगीन व्यावसायिक पत्रिकाओं को साहित्यिक दृष्टि से परास्त कर दिया था।"वीर भारत तलवार की बात से साफ़ पता चलता है कि साठ-सत्तर के दशक में भले ही सचेत आन्दोलन न चला हो, और पत्रिकाओं का संगठन भी न बना हो, पर वह अपने आप में एक आन्दोलन जैसा ही था ।

जयपुर में 2001 में लघु पत्रिकाओं का चौथा राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ और इसी में हर वर्ष नौ सितंबर को लघु पत्रिका दिवस के रूप में मनाना तय हुआ। विभिन्न माध्यमों के जरिये अप -संस्कृति के लगातार प्रसार से इन बीते वर्षों में साहित्य की चुनौतियां बढ़ी ही हैं। ऐसे में, लघु पत्रिकाओं के महत्व व जरूरत पर बात करना प्रासंगिक हो जाता है। इन दिनों हिंदी में लगभग 400 लघु पत्रिकाएं नियमित-अनियमित रूप से निकल रही हैं। भले ही कहा जाए कि इंटरनेट ने किताबों और साहित्य के पाठक घटाए हैं, पर लघु पत्रिकाओं के साथ-साथ किताबों के प्रकाशन में हो रही अपूर्व वृद्धि ने इसे मिथ्या साबित किया है। इसने रचनाओं के प्रकाशन का अवसर देकर लेखक को बड़ा मंच भी उपलब्ध कराया है। दूसरी बात यह है कि किताबें जिस तरह से महंगी और आम पाठक से दूर हो रही हैं, उसमें इन पत्रिकाओं का होना साहित्य की गतिशीलता की पहचान है। विगत 25-30 वर्षों की उम्दा रचनाशीलता इन लघु पत्रिकाओं के जरिए ही सामने आई है।

मुख्यधारा का मीडिया बाजार की शक्तियों के दबाव से साहित्य व संस्कृति के लिए पहले जितना सुलभ नहीं रहा है, वहीं लघु पत्रिकाएं दृढ़ता से पाठकों के सांस्कृतिक बोध को उन्नत कर सकती हैं। कहा जा सकता है कि लघु पत्रिकाओं के लिए सबसे बड़ी चुनौती पाठकों का सांस्कृतिक विकास है, जो थोड़े पाठकों से शुरू होकर अधिकाधिक पाठकों तक पहुंचने से संभव हो सकता है। अनेक लघु पत्रिकाएं अपने हर अंक को किसी ऐसे विषय पर केंद्रित करती हैं, जो अकादमिक व बौद्धिक जरूरतें पूरी करने वाले विषय होते हैं। इधर विधाओं में आ रहे बदलावों व अब तक उपेक्षित समझी गई विधाओं को केंद्र में रख कई लघु पत्रिकाओं ने उम्दा सामग्री दी है। आंदोलन के रूप में भले लघु पत्रिकाएं अब नहीं दिखती हों, मगर इनकी मिरिट आंदोलन जैसी है। भूमंडलीकरण के भयानक सांस्कृतिक हमले से जब हमारे मूल्य तिरोहित हो रहे हैं, तब लघु पत्रिकाएं इस अप-संस्कृति के खिलाफ खड़ी हैं। अब उन्हें नए पाठकों तक पहुंचने की चिंता करनी चाहिए। लघु पत्रिका दिवस मनाने के पीछे मुख्य भावना यही है कि साहित्य में रुचि रखने वाले नए पाठकों को इस संसार से परिचित करवाया जाए। किसी भी जीवित समाज में गतिशील साहित्यिक पत्रिकाएं सत्ता और संपन्नता की मुखापेक्षी नहीं हो सकती बल्कि उन्हें उस समाज के नागरिक निरंतर चलाए रखते हैं।

अरुण कमल ने आलोचनात्मक और साहित्यिक विवेक की रक्षा का दायित्व लघु-पत्रिकाओं के लिए बताकर इसके सरोकार को और व्यापक बनाया:-"लघु-पत्रिका आन्दोलन एक बृहत्तर सांस्कृतिक आन्दोलन का ही अंग है। युरोप में भी लिटिल मैगज़ीन मूवमेंट और अमेरिका में प्रोटेस्ट मूवमेंट है। जब तक प्रतिवाद का आन्दोलन रहेगा, तब तक लघु-पत्रिकाएँ रहेंगी। लघु- पत्रिकाओं का दायित्व है कि वह अपने आलोचनात्मक और साहित्यिक विवेक की रक्षा करें। हिन्दी लेखक अपने रक्त की अन्तिम बूँद तक लघु- पत्रिकाओं के साथ रहेंगे।

संदर्भ ग्रंथ:

1. राजेन्द्र यादव (२०१०), 'प्रतिरोध की आवाज रही हैं लघु-पत्रिकाएँ', सण्डे नयी byदुनिया, नयी दिल्ली, २६ सितम्बर, रविवार।
2. वीर भारत तलवार (१९९५), 'लघु पत्रिका आन्दोलन के बारे में कुछ विचार', उत्तरार्द्ध, मथुरा, (उप्र): ६७
3. दैनिक भास्कर, २० जून, २००९, अन्य लेखों में भी लघु पत्रिका आन्दोलन को इस दौर से जोड़ कर बताया गया है। देखें, राजीव रंजन गिरि (२००९), 'लघु पत्रिकाएँ: बड़े सवाल', आज समाज, नयी दिल्ली; ६ जुलाई; प्रियंवद (२००९), 'संघर्ष का स्वर', जनसत्ता, नोएडा।
4. 'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण', रामविलास षर्मा राजकमल प्रकाशन।
5. 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना', रामविलास शर्मा राजकमल प्रकाशन।

****

रामचरितमानस में मानवेतर पात्रों की उपादेयता (काकभुशुण्डि, गिद्धबंधु और जामवंत के विशेष संदर्भ में)

-विमला भावनानी
सहायक आचार्य,
हिंदी साहित्य,
आचार्य श्रीमहाप्रज्ञ इंस्टीट्यूट ऑफ एक्सीलेंस, आसींद, भीलवाड़ा (राजस्थान),

शोध सार— भारतीय जनमानस में भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर राम का नाम सभी दिशाओं में गुंजायमान होकर मनुष्यों के साथ-साथ समस्त परिवेश को आनंदित करता रहा है। युग चाहे कोई भी क्यों ना हो, विश्वास और आस्था मनुष्य की जिजीविषा को सकारात्मकता प्रदान करते रहे हैं। इसे आज का मनोविज्ञान भी स्वीकार करता है। सभी जीवों में मनुष्य को ज्ञानी मानव कहा गया है, जो अपनी बुद्धि व बल से असंभव को संभव कर सकता है। कई प्रसंगों में जीव-जंतुओं की चेष्टाओं से भी मानव प्रेरणा ग्रहण करता ही है। तुलसीदास कृत श्रीरामचरितमानस रामकथा में सुग्रीव, गरुड़राज जटायु, काकभुशुण्डि, जामवंत, अंगद, हनुमान आदि मानवेतर पात्रों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। राम काव्य में वर्णित ऐसे अनोखे चरित्रों ने भारतीय जनमानस पर युग-युगांतर तक अपनी छाप छोड़ी है। इस शोधालेख में कुछ मानवेतर चरित्रों के वैशिष्ट्ध व प्रासंगिकता का उद्घाटन किया गया है।

बीज शब्द— अवतार, भक्ति, पुनर्जन्म, शाप, लीला, धर्म, योगबल, युद्ध कौशल, समर्पण, अहंकार, कलियुग।

मूल आलेख -भारत का प्राचीन वाङ्मय सम्पूर्ण विश्व में अनूठा व अत्यंत समृद्ध माना जाता रहा है। विशेषकर महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण और महर्षि वेद व्यास कृत महाभारत भारतीय संस्कृति के मूल में एकाकार हो गया है। संस्कृत भाषा में वर्णित राम कथा का जो रूप रामायण में वर्णित था, वह आगे चल कर अनेक भाषाओं व परिवेश के ताने-बाने से नए-नए रूप में प्रकट होता गया। इसी परम्परा में अवधी भाषा में तुलसीदास कृत रामचरितमानस ने सम्पूर्ण भारत के लोगों के बीच सर्वाधिक स्वीकार्य हुआ। यह भारतीय जन-मन में प्रचलित व सर्वाधिक लोकप्रिय रामकाव्य है।

भारतीय मानस की इस बात में गहरी आस्था रही है कि सृष्टि में व्याप्त विविध प्रक्रिया को सचारू रूप से चलायमान करने हेतु दुष्टों के दमन और सज्जनों के कल्याण हेतु समय-समय पर परमशक्ति विभिन्न रूप (अवतार) में प्रकट होती है, जिसे लोक मानस ईश्वरीय अवतार की संज्ञा देता है। इस क्रम में उनके सहयोग हेतु विभिन्न प्रकार शक्तिसंपन्न जीव भी उपस्थित होते रहे है और उनका बाह्य स्वरूप मानव या फिर मानवेतर भी रहा है। काकभुशुण्डि, सुग्रीव, हनुमान, जामवंत, जटायु आदि राम कथा के ऐसे ही मानवेतर पात्र है, जिनके बगैर रामकथा पूर्णता को प्राप्त नहीं हो सकती।

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास स्पष्ट करते हैं कि राम कथा को सर्वप्रथम शिव ने पार्वती को सुनाया था, जिसे काकभुशुण्डि ने सुन लिया। बाद में उन्होंने नारद जी को और नारद जी ने वाल्मीकि को रामकथा सुनाई, जिससे वाल्मीकि द्वारा रामायण ग्रंथ की रचना की गई। सर्वप्रथम काकभुशुण्डि ने ही संसार में रामकथा का प्रचार-प्रसार किया और गरुड़ जी को रामकथा सुनाई। काकभुशुण्डि का चरित्र एकाएक नहीं बना था। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने नानापुराणनिगमागमसम्मत बुद्धि से उनका चरित्र के वैविध्य को उपस्थित किया है। आरम्भ में वे शिव के उपासक थे तथा अन्य देवी-देवताओं का अनादर किया करते थे। इसी क्रम में एक बार शिव मंदिर में जाप करते हुए, उन्होंने अहंवश उन्होंने अपने गुरु की उपेक्षा कर दी और शिवजी के शाप का सामना कर साँप बनना पड़ा –

बैठी रहेसी अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति व्यापी।। (1)

(अरे पापी ! तू गुरु के सामने अजगर की भाँति बैठा रहा। रे दुष्ट! तेरी बुद्धि पाप से ढक गई है, अतः तू सर्प हो जा और अरे अधम से भी अधम इस अधोगति को पा।)

बाद में हजार जन्म तक अजगर होकर उन्होंने फिर मनुष्य योनि में ब्राह्मण का शरीर पाया। लेकिन फिर सुमेरु पर्वत के शिखर पर लोमश ऋषि के तत्त्व ज्ञान संबंधी उपदेश में रुचि न दिखाकर, मुनि से तर्क-वितर्क किया। लोमश मुनि के क्रोध व शापवश उन्हें कौआ बनना पड़ा-

सठ स्वपच्छ तव हृदय विशाला। सपदि होंहि पंछी चांडाला।। (2)

(अरे मूर्ख! तेरे मन में अपने पक्ष का बड़ा भारी हठ है, अतः तू शीघ्र चांडाल पक्षी (कौआ) हो जा।)

बाद में लोमश मुनि द्वारा राम मंत्र और भगवान राम के

बाल रूप के ध्यान की विधि बताया गया। कौए के शरीर में भगवान राम का मंत्र मिलने पर, उन्हें अपने इसी शरीर से स्नेह हो गया और वे काकभुशुण्डि के नाम से पहचाने जाने लगे। वे कई युगों तक कौए के शरीर में रहकर ही रामभक्ति में रमण करते रहे। काकभुशुण्डि जीवों को ब्रह्म ज्ञान की तरफ उन्मुख करने और रामकथा का प्रचार प्रसार करने का कार्य करते रहे। इस प्रकार के प्रसंग पदम्पुराण और श्रीमदभागवत पुराण में भी मिलते है !

यहाँ पर यह विचारणीय है कि तुलसीदास ने रामकथा के प्रचार-प्रसार व रामकथा से प्राप्त होने वाले सुख को व्यक्त करने के लिए अपने ग्रंथों की रचना की थी। इस अर्थ में काकभुशुण्डि का चरित्र तुलसीदास के मूल मंतव्य की दृष्टि से बेहद महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त काकभुशुण्डि के चरित्र से यह सन्देश मिलता है कि व्यक्ति का अहंकार उसके जीवन में अनेक कष्टों का कारक बनता है।

रामकथा के कई प्रसंगों में काकभुशुण्डि के द्वारा काल (समय) और स्थान से बाहर जाकर समय के बनने व बिगड़ने की प्रक्रिया को देखे जाने का संकेत मिलता है। इसे विज्ञान के सापेक्षता के सिद्धांत (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) के परिप्रेक्ष्य में भी देखा सकता है। काकभुशुण्डि किसी भी काल में आ-जा सकते हैं। भारतीय परम्परा के अंतर्गत श्राद्ध पक्ष में पितरों के तर्पण हेतु कौए को भोजन देने की प्रथा पर भी, इस दृष्टि से विचार किया जा सकता है।

संपाती और जटायु के चरित्र का भी उल्लेख रामकथा में महत्त्वपूर्ण है। इन दो गिद्ध भाइयों में से एक की मृत्यु राम के लिए हुई और दूसरे का पुनर्जन्म राम के कारण हुआ। प्रजापति कश्यप और माता विनता की दो संतानों में से एक सूर्यवंशी अरुण के पुत्र संपाती और जटायु थे। ये बहुत वीर, शक्तिशाली और पराक्रमी थे।" दोनों किसी समय सूर्य के पास पहुँच गए थे। सम्पाती ने अपने अनुज को सूर्य की किरणों से व्याकुल देखकर उसे अपने पंखों से बैंक लिया था। इस प्रकार जटायु तो बच गया, किंतु संपाती के पंख जल गए और वह निस्सहाय होकर विंध्य पर्वत पर गिर गया था।" (3) इस अवस्था में निशाकर मुनि ने उनकी सेवा की और आशीर्वाद देकर कहा कि जब सीताजी की खोज में वानर सेना के साथ जामवंत और हनुमान आए तो उनकी यथा योग्य सहायता करना, जिससे तुम्हारे पंख पुनः आ जाएँगे और बल को प्राप्त होंगे। रामकथा के प्रसंग में जब अंगद, हनुमान और जामवंत तथा अन्य वानर जब सीता माता की खोज हेतु उस स्थान पर आए, तो संपाती ने रावण की लंका की ओर इशारा कर कहा।

जो नाघई सतयोजन सागर। करई सोराम काज माति आगर।।
मोहि बिलोकी धरहु मन धीरा। राम कृपा कसमयहू सरीरा ।। (4)

(जो सौ योजन समुद्र लांघ सकेगा और बुद्धिमान होगा। वही श्री राम का कार्य कर सकेगा। निराश होकर घबराओ मत। मुझे देखो मन में धीरज धारण करो श्री राम की कृपा से देखते ही देखते मेरा शरीर कैसा हो गया। बिना पंख का बेहाल था, पंख उगने से सुंदर हो गया।) संपाती अपनी दूरदर्शिता से रावण की लंका में स्थित अशोक वाटिका में बैठी चिंताग्रस्त सीता की स्थिति का वर्णन कर देता है-

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहं रह रावण सहज अशंका।।
तह अशोक उपवन जहरहहि। सीता बैठि सोच रत अहई। 1 (5)

जब रावण छल पूर्वक सीता का हरण करके ले जा रहा था, तब जटायु ने सीता की पुकार सुन रावण को ललकारा और युद्ध किया-

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काठेसी परम कराल कृपाना।।
कोटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरी राम करि अद्भुत करनी।। (6)

(क्रोधित रावण ने अपने तलवार से गिद्धराज जटायु के पंख काट दिए और उसे मरणासन्न भूमि पर छोड़ दिया। राम जी ने जब गिद्धराज जटायु को इस अवस्था में देखा तो उसने राम जी से संपूर्ण वृत्तांत कह सुनाया।)

क्षत-विक्षत अवस्था में वह धीर पक्षी प्राणों को तब तक रोके रहता है जब श्री राम से भेंट नहीं होती। रावण द्वारा सीता हरण का घटनाक्रम सुनाकर जटायु ने प्रभु श्रीराम की गोद में प्राण त्याग दिये। श्रीराम जी ने उनका दाह संस्कार, पिंडदान व जलदान किया-

गिद्धदेह तजि धरी हरिरूपा। भूषण बहू पटपीत अनूपा ।।
स्यामगात विशाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि भारी।। (7)

(जटायु ने गिद्ध की देह त्याग कर हरि का रूप धारण किया और बहुत से अनुपम आभूषण व पीतांबर पहन लिए। श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रों में प्रेमानंद के आँसू भरकर वह स्तुति कर रहा है।)

इस प्रकार दोनों गिद्धबंधुओं ने रामकथा में सहयोगी के रूप

में भूमिका का निर्वहन कर प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। दुष्ट द्वारा अपहृत सीता की खोज में दुःखी राम ने इन दोनों के प्रति आभार प्रदर्शित किया। राम के व्यक्तित्व की विराटत्ता है कि वे हिंसक व मांसाहारी पक्षियों में अन्तर्निहित सहयोग भाव की सकारात्मकता को पहचान लेते हैं। यह गिद्धबंधुओं के लिए भी कम आश्चर्यजनक नहीं था और इसी कारण वे राम के स्नेहसिक्त व्यवहार पर रीझ गए। गिद्धबंधुओं का चरित्र आज भी संकेत देता है कि हम सभी को अपने परिवेश के प्रति सजगता रखनी चाहिए। साथ ही किसी भी अन्याय के प्रति अपनी क्षमता के अनुरूप विरोध करना चाहिए और अपनी शक्ति का उपयोग किसी की मदद करने के लिए करना चाहिए। ऐसे नेक कर्मों का फल सदा ही कल्याणकारी होता है। अत्यंत बलशाली व अत्याचारी रावण का विरोध करते हुए, जटायु और सीता का पता बता कर संपाती रामकथा के साथ ही साथ अमर हो गए।

रामकथा में रीक्षराज जामवंत को सृष्टि निर्माता ब्रह्मा जी का अंशावतार माना गया है। ब्रह्मा जी को जम्हाई के समय उनके मुख से प्रकट होने के कारण, इनका नाम जामवंत पड़ा। रावण से युद्ध के समय श्रीराम की सेना के सेनापति का पद इन्होंने ही संभाला था। रावण के दूत सादुल ने भी जाम्बवान के अत्यंत बलशाली होने की चर्चा की थी। लेकिन इसके बावजूद वे बुद्धि व रणकौशल की बात को ज्यादा महत्त्व देते है। लंका जाने के लिए समुद्र को लांघने की चर्चा पर जामवंत ही हनुमान का नाम सामने लाते हैं और फिर हनुमान में शक्ति का संचार करने के लिए, जामवंत ने ही उन्हें उत्साहित कर उनके असीम बाल की स्मृति कराई -

पवन तनय बल पवन समाना। बुद्धि विवेक विग्यान निधाना।।

कवन सो काज कठिन जग माहीं। जो नहीं होत तात तुम पाही।। (8)

(तुम पवन के पुत्र हो और बल में पवन के समान हो। तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञान की खान हो। जगत में कौन सा ऐसा कठिन काम है जो है तात! तुमसे ना हो सके।)

जब मेघनाद वानर सेना पर हावी हो रहे थे। तब मेघनाथ के फेके त्रिशूल को हाथ में पड़कर उसे मेघनाद की छाती पर दे मारा था। जामवंतजी जी ने क्रोध में भरकर पैर पड़कर उसको घुमाया और पृथ्वी पर पटक कर उसे अपना बल दिखाया। लक्ष्मण के मूर्छित होने पर औषधि लाने हेतु हनुमान को आदेश भी जामवंत ही देते हैं। युद्ध काल में श्री राम पर जब नैराश्य भाव छाने लगता है, तब जामवंत ने ही उन्हें उत्साहित किया।

स्पष्टतः जामवंत का चरित्र ज्ञान और बुद्धि के प्रयोग को महत्त्व देते हुए, बल के संयमित प्रयोग का संकेत देता है। वे त्वरित निर्णय के समय अपने ज्ञान व बुद्धि का सहारा लेते हैं। दुःख व निराशा के क्षण में दूसरों में जिजीविषा व आशा का संचार करना भी जामवंत की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। ये गुण आज के मनुष्यों को भी प्रेरणा देने का कार्य करते हैं।

राम के मित्रों में वानर जातीय सुग्रीव प्रमुख हैं। सुग्रीव के साथ राम का आदर्श मित्र-भाव है। सुग्रीव की कष्टगाथा सुनकर वे बालि के वध की तुरन्त प्रतिज्ञा करते हैं और पूर्ण सहायता देने का विश्वास दिलाते हैं - सखा सोच त्यागहु बल मौरे। सब विधि घटब काज मैं तोरे || (9)

'बालि-वध' के पश्चात् राम सुग्रीव को किष्किंधा का राजा भी बना देते हैं। राज-लक्ष्मी में लिप्त प्रमादी सुग्रीव पर वे क्षुब्ध भी होते हैं, किंतु क्षमा माँग लेने पर वे उसे भरत-तुल्य भाई कहकर गाढ़ मित्रता का परिचय भी देते हैं। 'अपने अग्रज बालि से प्रपीड़ित येन-केन प्रकारेण जीने वाला सुग्रीव सहज मानवीय गुणों से समन्वयित है। राम से मित्रता होने पर वह एक ओर मानव दुर्बलता वश राजमद में डूब राम काज विस्मृत कर देता है, तो दूसरी ओर सीता शोधार्थ वानर सेना प्रेषण, सेतु निर्माण, सैन्य नेतृत्त्व, राक्षसों से युद्ध आदि के द्वारा वह राम की पूर्ण सहायता करता है। "(10) अयोध्या लौटने पर सुग्रीव का परिचय वशिष्ठ जी से कराते हुए राम उन्हें 'समर सागर का बेड़ा' कहते हैं। विदा के समय राम उन्हें सुंदर वस्त्रों से सुसज्जित कर अविरल मित्र प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। " (11)

राम अपने मित्रों के साथ गहन मित्रता का संबंध निर्वाह करते हैं। वे न मित्रों की जाति या कुल पर विचार करते हैं, न उनके गुण-शील का परीक्षण करते हैं और न ही उनके सुसंस्कृत असंस्कृत रूप को अपनी मित्रता का मापदंड बनाते हैं। रामकथा के विभिन्न प्रसंगों में मित्रों के प्रति राम का सौहार्द प्रकट हुआ है। राम सुग्रीव को अपने विश्वासी मित्र के रूप में ग्रहण करते हैं। राम अपने मित्रों पर आत्मीयता उड़ेलते हुए, उन्हें भरत-लक्ष्मण की तरह प्रिय स्वीकारते, उनको अभय दान एवं राजकीय सम्मान प्रदान करते तथा सुग्रीव को विपुल वैभव से सम्पन्न कर देते हैं। राम अपने मित्र के लिए भ्रातृत्व एवं दुःख निवारकता के रूप में रूप में प्रतिष्ठित हैं। श्रीराम की मित्रता वैयक्तिक लाभालाभ पर आश्रित न होकर, लोकसेवा की व्यापक भूमिका तैयार करता है।

अंगद रामकथा में अंगद (राजा बालि के पुत्र) बल में अपने पिता से कम न थे। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर श्री राम के शरणागत हुए और रामकथा में अपने बल युद्ध कौशल तथा राम

भक्ति के द्वारा अपनी विशिष्ट पहचान बनाई। समुद्र पार कर जब वानर सेना लंका पहुँची, तब राम जी ने जामवंत जी की मंत्रणा मानकर अंगद को दूत रूप में रावण को समझाने हेतु भेजा। अपनी सूझबूझ और वाक कौशल से रावण को हतप्रभ कर दिया। अंगद मक्त, विरक्त तथा प्रमु व्यक्तित्व वाला है। आततायी रावण के सम्मुख भी उनकी तेजस्विता, नीतिज्ञता, साहस एवं निर्भीकता व्यक्त होती है। वे अपनी व्यंग्योक्ति, प्रगल्भता एवं वाग्मिता के द्वारा वह दौत्यकर्म में अत्यन्त निष्णात प्रतीत होते हैं। उनके चरित्र में निहित मनोवैज्ञानिक अथवा नाटकीय संभावनाओं का दोहन तुलसीदास ने किया है-

एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की कांखा।
इन्ह महू रावण तैं कवन सत्य बदहि तजि माखा।। (12)

(एक रावण की बात कहने से तो मुझे बड़ा संकोच हो रहा है वह बहुत दिनों तक बालि की कांख में रहा था इनमें से तुम कौन से रावण हो? खींझना छोड़कर सच-सच बताओ ।)

अंगद के ऐसे वचन सुन रावण अपनी वीरता का बखान करने लगा। परंतु जब रावण ने राम को साधारण वनवासी कहा, तब अंगद ने को क्रोध से भरकर अपने दोनों भुजदण्डों को पृथ्वी पर दे मारा। इससे पृथ्वी हिलने लगी, रावण के दस सिरों के मुकुट गिर पड़े, कुछ को संभाल कर रावण ने पुनः सिर पर रखा और कुछ को तो अंगद ने उठाकर श्री राम के पास फेंक दिए।

जौ मम चरण सकसी सठ टारी। फिरहि रामु सीता में हारी।।
सुनहु सुभट सब कहे दस सीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा।। (13)

अंगद के यह वचन सिद्ध करते हैं कि राम जी के प्रति उनकी भक्ति इतनी प्रगाढ़ थी कि वह उसे भक्ति के बल पर माँ सीता को हारने की बात तक कर देते हैं। संसार का सबसे बड़ा बल भक्ति और विश्वास का होता है, यह बात अंगद के चरित्र से प्रमाणित हो जाती है।

विदुर नीति के अंतर्गत महाराज धृतराष्ट्र को समझाते हुए विदुर जी ने कहा है कि "पहले से कोई संबंध न होने पर भी जो मित्रता का बर्ताव करें वही बंधु, वही मित्र, वही सहारा और वही आश्रय है।" (14) अंगद के चरित्र में यह कथन अक्षरशः देखने को मिलता है।

आज की परिस्थितियों में अंगद के चरित्र की प्रासंगिकता यह है कि वह एक श्रेष्ठ सेवक, श्रेष्ठ साथी, अनुचर, वीरयोद्धा, युद्धकौशल के धनी, वाक्पटु, स्वामीभक्ति के गुण से युक्त समर्पित साधक है। इन गुणों को अंगीकार कर कोई भी मनुष्य वांछित सफलता प्राप्त कर सकता है। मनुष्य स्वयं के लिए एक ईमानदार, विश्वसनीय, भरोसेमंद अनुचर की कामना करता है, जो स्वामी का संकेत पाते ही उनके लिए सर्वस्व न्योछावर करने के लिए तैयार रहते हैं। अंगद लोकनीति, राजनीति और कर्तव्यपरायणता में अपना कोई सानी नहीं रखते।

हनुमान रामकथा में वर्णित हनुमान का व्यक्तित्व समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है। सेवक धर्म में अग्रणी हनुमान के बगैर तो राम-कार्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शिवांश हनुमान संयम, ब्रह्मचर्य, पुरुषार्थ, और सत्कर्म में संलग्न अद्वितीय चरित्र हैं। अनेक प्रकार की शक्तियों से संपन्न हनुमान अपनी बुद्धि कौशल के लिए भी विख्यात रहे हैं। सुरसा राक्षसी के मुख में सूक्ष्म शरीर बनाकर प्रवेश कर निकलना, पवन पुत्र का पवन वेग से उड़ जाना, समुद्री जीव को खाने वाली राक्षसी का संहार, लंकिनी नामक राक्षसी पर प्रहार, ब्राह्मण वेश में विभीषण से भेंट, माता जानकी के दर्शन कर उनका दुःख निवारण, रावण को समझाना, लंका दहन, माता का संदेश लेकर सुरक्षित राम के पास लौटना आदि प्रसंग रामकथा को रोचक बनाते हैं। श्रीराम के प्रति उनकी समर्पणशीलता, विनम्रता और एकनिष्ठ भक्ति में, स्वामी सेवक संबंध की प्रगाढ़ता दिखाई पड़ती है उलटी पलटी लंका सब जारी। कुदि परा आप पुनि सिंधु मझारी।। (15) (हनुमान ने उलट पलट कर सारी लंका जला दी। फिर वह समुंद्र में कूद पड़े।)

राम की छाया की तरह साथ रहने वाले हनुमान केवल रामभक्ति के ही प्रतीक नहीं, बल्कि अपना सारा जीवन प्रभु श्रीराम के चरणों में अर्पित करने वाले सच्चे समर्पित उत्साही वीर योद्धा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने "श्रद्धा और भक्ति" निबंध में भक्ति की महिमा वर्णित करते हुए लिखा है कि" श्रद्धा द्वारा हम दूसरे के महत्त्व के किसी अंश की अधिकारी नहीं हो सकते, पर भक्ति द्वारा हो सकते हैं। यहाँ तक कि दूसरे की भक्ति करके हम तीसरे की भक्ति के अधिकारी हो सकते हैं। राम पर अनन्य भक्ति करके हनुमान अन्य राम भक्तों की भक्ति के अधिकारी हुए।" (16)

आज के समय में उनकी प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है, जब मनुष्य कदम-कदम पर परिस्थितियों के दबाव के चलते दुःखी हो जाता है। हनुमान का चरित्र सामने आता है, जो अपने इष्ट के प्रति आस्थावान होकर सकारात्मकता दृष्टिकोण सृजित करता है। रामकथा में संकटमोचक की छवि का प्रभाव आज के समाज में भी दिखाई पड़ता है। जन सामान्य में यह विश्वास-सा हो चला है कि उनके स्मरण मात्र से मनुष्य निराशा, दुःख, उद्वेग, अशांति से निजात पा कर उत्साहित हो सत्कर्म की ओर प्रेरित होते हैं। हनुमान बल

और बुद्धि का पूर्ण आत्मविश्वास, अहंकार रहित चतुराई और मौन भाव के साथ प्रयोग करते हैं।

उपसंहार —सामान्य जीवन में मानव व मानवेत्तर के बीच किसी प्रकार के संबंध की बात आश्चर्यजनक लगती है। परंतु रामकथा में जटायु को राजा दशरथ का मित्र बताया गया है और जामवंतजी को ब्रह्मा का पुत्र कहा गया है अर्थात् ये गिद्ध (संपाती-जटायु), रीछ (जामवंत), कौआ (भुशुण्डि), वानरराज (सुग्रीव), वानर (हनुमान) आदि कोई साधारण पशु-पक्षी नहीं थे। भारतीय पौराणिक परम्परानुसार, ये सभी ब्रह्मा के शरीर से अनेक प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई। उन प्रजापतियों से कई जातियाँ उत्पन्न हुई, जिनमें से मनु की संतानें मानव, इरावती का पुत्र ऐरावत हाथी, इंद्र का पुत्र राजा केसरी वानर आदि के रूप में विकसित हुई। इन सभी में अपना अपना अलग सामर्थ्य और प्रभावशीलता थी। वे इतने अधिक विशिष्ट गुणों से युक्त थे कि देशकाल वातावरण की सीमा को आसानी से लांघ जाते थे। मानवी बोली को समझने और उसी भाषा में बात भी कर पाते थे। कुछ पशु-पक्षी तो आज के समय में भी विद्यमान है, जो बल और बुद्धि में मनुष्यों को भी आश्चर्य में डाल देते हैं। रामकथा के प्रति लोगों के विश्वास ने श्रीराम के साथ ही साथ इन मानवेतर पात्रों के योगदान को स्वीकारा है।

सत्य तो यह भी है कि बाह्य शरीर की आकृति कैसी भी क्यों ना हो, महत्त्व तो प्राणी के पुरुषार्थ, विवेक और कर्मों का होता है। श्रीराम के रामत्व के गायक ब्रह्मनिष्ठ काकभुशुण्डि, श्रीरामसेना के सेनापति रीछराज जामवंत, सीता की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग करने वाले जटायु, सीता का पता बताने वाले संपाती, भ्रातृत्व राग द्वेष, राजत्व में मदान्धता व मित्रत्व में उतार चढ़ाव के मानवीय दुर्बलताओं और सबलताओं से लैस सुग्रीव, बल-बुद्धि व सेवकधर्म के स्तंभ हनुमान आदि मानवेतर पात्र रामकाव्य के आधार हैं। संपूर्ण प्रकृति का वैविध्य किसी न किसी रूप में रामकथा के लिए अपना योगदान देता है। आज के समय में भी रामकथा के ये मानवेतर पात्र हमारे समाज को आदर्श मित्रता, बलिदान, जिजीविषा, संकटग्रस्त स्थितियों में आशा, उत्साह व सकारात्मकता आदि की प्रेरणा देकर रामकाव्य के कालजयी होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं।

संदर्भ—

(1) गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1996, 122वां संस्करण, पृष्ठ-994

(2) वही, पृष्ठ-1003

(3) डॉ. फादर कामिल बुल्के रामकथा उत्पत्ति और विकास, हिंदी परिषद प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग, दूसरा संस्करण, 1971, पृष्ठ-420

(4) गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1996, 122वां संस्करण, पृष्ठ-693

(5) वही, पृष्ठ-693

(6) वही, पृष्ठ-644

(7) डॉ. विनोद बाला अरुण संस्कार रामायण, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014,पृष्ठ 30

(8) गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1996, 122वां संस्करण, पृष्ठ 694

(9) वही, पृष्ठ-672

(10) डॉ. नाथूराम राठौर हिंदी राम काव्य के पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 2007 पृष्ठ-158

(11) गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1996, 122वां संस्करण, पृष्ठ-221

(12)वही, पृष्ठ 780

(13) वही, पृष्ठ -788

(14) हनुमान प्रसाद पोद्दार विदुर नीति (महाभारत उद्योग पर्व से), गीताप्रेस, गोरखपुर, 2005,पृष्ठ 69

15) गोस्वामी तुलसीदास श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1996, 122वां संस्करण, पृष्ठ-722

(16) आचार्य रामचंद्र शुक्ल चिंतामणि भाग-1, मलिक एंड कंपनी, जयपुर, 2016, पृ-29

****

समकालीन हिंदी गजलों में सामाजिक चेतना

प्रा.डॉ.एफ. मस्तान शाह
सहयोगी प्राध्यापक एवं हिंदी विभागाध्यक्ष
एन.एम.डी.कॉलेज, गोंदिया 441614

गजल का स्वरूप :

भारतीय साहित्य में गजल की बहुत लंबी परंपरा है । उर्दू साहित्य में इसे फारसी की देन के रूप में अपनाया गया है । प्यार और मोहब्बत के कारण सभी के मन में गजल के प्रति आकर्षण निर्माण हुआ है ।

हिंदी साहित्य में गज़ल का चलन आदिकाल से आया हुआ है । आधुनिक काल में साहित्य की अन्य विधाओं की तरह हिंदी गज़ल का प्रचार और प्रसार अधिक मात्रा में हुआ है । हिंदी में सबसे पहले गज़ल लिखने का प्रयास हजरत अमीर खुसरों ने किया है । हजरत अमीर खुसरों हिंदी के सर्वप्रथम गजलकार माने जाते है । गज़ल फारसी–साहित्य से उर्दू साहित्य में आयी । बाद में हिंदी साहित्य ने इसे अपना लिया।

इस तरह हजरत अमीर खुसरो से शुरू हुई गज़ल हिंदी साहित्य में नए तेवर लेकर प्रवाहित हो रही है । इन्हीं नए तेवरों का परिणाम यह है कि, आज हिंदी गज़ल की पहचान एक मजबुत विधा के रूप में हो गई है ।

हजरत अमीर खुसरों से लेकर आजादी प्राप्ती के पूर्व तक अनेक कवियों ने गजलें लिखी है लेकिन आज समकालीन हिंदी गजलों में जो वास्तविकता यथार्थता अधिक मात्रा में नजर आती है । वह वास्तविकता यथार्थता स्वमतंत्रता पूर्व काल तक के गजलों में दिखाई नहीं देती । समकालीन हिंदी गजलों ने अपनी एक अलग पहचान बनाई है । वह 'गजल' इष्क मोहब्बत के 'प्रेम–जाल' को तोड़कर बाहर आ गई है । उसने समाज की वास्तविकता से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया है । हिंदी गजलकार ने 'गजल' को 'हुस्न–इश्क' के क्षेत्र से हटाकर समाज की सच्चाई के साथ उसका नाता जोड़ दिया है ।

समकालीन हिंदी गजलकारों में दुष्यंतकुमार, चंद्रसेन 'विराट', कुँअर बेचैन, गोपालदास सक्सेना 'नीरज', हनुमंत नायडू, शेरजंग 'गर्ग', ज्ञानप्रकाश 'विवेक', पुरूषोत्तम 'प्रतीक', राजेश रेड्डी, रामदरश मिश्र, बेकल 'उत्साही', रामकुमार 'कृषक', भवानी शंकर, अवध नारायण 'मुद्गल', डॉ.उर्मिलेश, जहीर कुरेशी, चॉंद 'शेरी', अदम 'गोंडवी', विजय किशोर 'मानव', गिरिराज शरण अग्रवाल, हस्तिमल 'हस्ति', लक्ष्मण दूबे आदि आते हैं ।

अतः समकालीन हिंदी गजलों में सामाजिक सरोकार निम्नलिखित रूप से हम देख सकते हैं :

1. शहरों का बदलता जीवन :–

महानगर में रहनेवाला मनुष्य आज बदल चुका है । सुबह से लेकर शाम तक वह अपनी ही उलझनों में उलझा रहता है । पड़ोसी तथा गली मोहल्ले वालों की वह खबर तक नहीं लेता है । वह आत्मकेन्द्रीत एवं स्वार्थी बन गया है । महानगर में रहने वाले मनुष्य की इसी स्वार्थी प्रवृत्ति पर दुष्यंतकुमार ने करारा व्यंग्य किया है –

"इस शहर में तो कोई बारात हो या वारदात
अब किसी भी बात पर खुलती नहीं है खिड़कियॉं ।"

महानगर में रहनेवाले मनुष्य की वास्तविक विसंगतियों का मार्मिक चित्रण हिंदी गजलकार जहीर कुरैशी ने किया है । वे कहते हैं कि –

"अपना है और अपनों से अंजान है शहर,
सच पुछिए तो चेहरों की पहचान है शहर ।
रिश्तों के आईने जहां टूटें हैं बार–बार,
उन स्वार्थो की बेरहम चट्टान है शहर ।"

2. जनसामान्य मनुष्य की आवश्यकताऍं :–

स्वतंत्रता प्राप्ति के वक्त देश के नेताओं ने जनता को स्वतंत्र भारतवर्ष का सुहाना सपना बताया था । बड़े–बड़े वादे किये थे, लेकिन स्वाधिनता प्राप्ति के कुछ ही वर्षो के उपरांत वह सारे वादे, सपने खोखले साबित हुए । लोगों का मोहभंग हुआ । इसी स्थिति का वर्णन हिंदी के वरिष्ठ गजलकार दुष्यंतकुमार ने किया है । वे कहते है कि –

"कहॉं तो तय था चिरागॉं हरेक घर के लिए,
कहॉं चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए ।"

आज देश को आजाद हुए अर्ध शतक से अधिक का समय बीत चुका है । विकास सिर्फ कागजों पर हुआ है । वास्तव में अगर विकास हुआ है तो केवल पुंजीपतियों का । गरीब और अधिक गरीब हो गये हैं । देश के लोगों की इसी

दुर्दशा का यथार्थ चित्रण जहीर कुरेशी ने अपनी गजलों के चंद शेरों के माध्यम से किया है–

"दो रोटी के अलावा चार की बातें नहीं करते,
करोड़ों लोग, कोठी कार की बातें नहीं करते ।
बरस मे एक दिवाली–अमावस के अलावा हम,
अमावस से कभी उजियारे की बातें नहीं करतें ।"

हिंदी गजलकार चॉद 'शेरी' ने भी रोटी के लिए तरसने वाले भारतवासियों का वास्तविक चित्रण किया है । वे कहते हैं –

"तू न अमृत का पियाला दे हमें,
सिर्फ रोटी का निवाला दे हमें ।"

आजादी के बाद की भारतीय स्थिति का यथावत चित्रण दुष्यंतकुमार ने किया है । वे हिंदुस्तान की गरीबी का वर्णन करते हुए कहते हैं –

"कल नुमाईश में मिला वो चिथड़े पहने हुए,
मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिंदुस्तान है ।"
"वो आदमी नहीं मुकम्मल बयान है,
माथे पे उसके चोट का गहरा निशान है ।"
"सामान कुछ नहीं है फटेहाल है मगर,
झोले में उसके पास कोई संविधान है ।"

3. <u>बढ़ता भ्रष्टाचार</u> :–

आज पूरा देश भ्रष्टाचार से ग्रस्त हो चुका है । नेताओं और अफसरों ने देश का विकास छोड़ खुद का विकास किया है । जहीर कुरेशी ने नेताओं एवं अफसरों की इन्हीं काली करतूतों पर करारा व्यंग्य किया है । वे कहते हैं –

"पच्चहत्तर फीसदी वे खा गए – तब,
हमारे हाथ तक अनुदान आया ।"
"जिस बेरहमी से पैसे को खर्च किया आयोजक ने उसके कारण ही, वो धन 'अनुदान' दिखाई देता है ।"

देश में चुनाव का मौसम आते ही नेता चुनाव में जीत हासिल करने के लिए एक–से–एक वादे करते हैं । चुनाव जीतने के बाद नेताओं के सारे वादे–इरादे झूठे साबित होते हैं । देश की जनता के साथ धोखा होता है । नेताओं की इसी धोखाधड़ी पर दुष्यंतकुमार ने जबरदस्त प्रहार किया है –

"तेरी जुबान है झूठी जम्हूरियत की तरह
तू एक जलील–सी गाली से बेहतरीन नहीं ।"

4. <u>नारी शोषण, अत्याचार</u> :–

आज महिलाओं पर उत्पीड़न एवं अत्याचार के मामले बढ़ते ही जा रहे हैं । नारियों पर इसी बढ़ते अत्याचार का वास्त. विक चित्रण जहीर कुरेशी ने किया है । वे कहते हैं–

"क्या कहें अखबार वालों से व्यथा औरत,
यौन–शोषण की युगों लम्बी कथा औरत ।
अपहरण कर ले गए 'रावण' कभी 'बिल्ला'
कल 'सिया' तो आज 'गीता चोपड़ा' औरत ।"

आज नारियों के प्रति कारूणिक दृष्टिकोण कहीं भी नजर नहीं आता है । उसकी इज्जत को तार–तार करने की मानसिकता सर्वत्र नजर आती हे । इसी बात का यथार्थ चित्रण हिंदी गजलकार डॉ.रसूल अहमद 'सागर' ने किया है –

"बेवा की आबरू पै, निगाहें लगी हजार,
दिखता नहीं कोई भी, बेबस का गमगुसार ।"

5. <u>भय और असुरक्षा</u> :–

आज मनुष्य सुरक्षित नहीं रहा है । उसके मन में हमेशा हादसों, आतंकी एवं नक्सली गतिविधियों के चलते डर की भावना बनी रहती है । वह जब सुबह घर से बाहर जाता है, तो उसे यही भय बना रहता है कि, वह शाम में सही सलामत घर पहुँचेंगा भी या नहीं । इसी असुरक्षा एवं डर की भावना का यथावत चित्रण डॉ. हरि मौर्य ने किया है–

"दहशत भरी हुई है फिजाओं में देखिए,
कैसा जहर घुला है हवाओं में देखिए ।
बारिश में भीगने का मौसम नहीं रहा,
तेजाब भर गया है घटाओं में देखिए ।"

आज इन्सान पूरी तरह बदल गया है । एक जमाने में लोगों को जंगली जानवरों से भय लगता था । आज वे अपनों से भी सुरक्षित नहीं है । कवि ने लोगों की इसी बदलती मनोवृत्ती का यथार्थ चित्रण किया है । हिंदी गजलकार अश्विनीकुमार पांडेय कहते है –

"मेहमानों से डर लगता है,
अंजानों से डर लगता है ।
शैतानों की बात न पूछो,

इन्सानों से डर लगता है ।"

आस्था वीरता की प्रतीक है । कायरता उसके सामने टिक नहीं पाती । बड़ी से बड़ी चुनौतियों को भी वह स्वीकार कर लेती है, किंतु छल–कपट के सामने वह कमजोर पड़ जाती है । इसी छल–कपट का मुखौटा नोचते हुए जहीर कुरेशी लिखते हैं –

"पीठ पीछे से हुए वार से डर लगता है,
मुझको हर दोस्त से, हर यार से डर लगता है ।"
"चाहे पत्नी करे या प्रेमिका अथवा गणिका,
प्यार की शैली में व्यापार से डर लगता है ।"

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि, हिंदी गजलकारों ने अपनी समकालीन हिन्दी गजलों के माध्यम से समाज की विसंगतीयों का मार्मिक चिंत्रण किया है । समका. लीन हिंदी गजल में बढ़ते भ्रष्टाचार का चित्रण किया गया है । समकालीन हिंदी गजल में असुरक्षा एवं डर की भावना का भी अंकन हुआ है । समकालीन हिंदी गजल में महानगरीय जीवन की विद्रूपताऍं भी उजागर हुई है । समकालीन हिंदी गजल में नारियों पर बढ़ते अत्याचार की भी अभिव्यक्ति हुई है । समकालीन हिंदी गजल में जीवन की मुलभूत आवश्यकताओं की मार्मिक अभिव्यक्ति का चित्रण किया गया है ।

उपर्युक्त निष्कर्ष को देखने के उपरांत यह प्रतित होता है कि, समकालीन हिंदी गजलकारों ने अपनी गजलों के माध्यम से समाज की विसंगती एवं विद्रुपताओं को स्पष्ट रूप से चित्रीत करने का प्रयास किया है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी की सर्वश्रेष्ठ गजले : संपा, डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल, हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर, 1982, पृ. 78.
2. हिंदी गजल का समकालीन दशक : संपा., डॉ. सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 34.
3. जहीर कुरेशी : महत्व और मूल्यांकन, संपा., डॉ. विनय मिश्र, उर्वशीयम बी–12, सी–2 एण्ड सी–3, वर्धमान काम्प्लेक्स, यमुना विहार, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2010, पृ.126
4. गजल से गजल तक : संपा.,अशोक अंजुम, संवेदना प्रकाशन, एफ–23, नयी कॉलोनी, कासिमपुर, अलीगढ़, प्रथम संस्करण, 1993, पृ.33
5. चांदनी का दुःख : जहीर कुरेशी, पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1986, पृ.68
6. पानियों के शहर में : रसूल अहमद 'सागर', उत्तरायण प्रकाशन, एम–168, आशियाना, ल खनऊ, प्रथम संस्करण, 2008, पृ.16
7. साये में धूप : दुष्यंतकुमार, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2002, पृ.13
8. जहीर कुरेशी की चुनिंदा गजले : संपा., डॉ.मधु खराटे, विद्या प्रकाशन,सी 449, कानपूर, प्रथम संस्करण, 2001, पृ.118.
9. जर्द पत्तों का सफर : चांद शेरी, विकल्प प्रकाशन, कोटा, प्रथम संस्करण, 1999, पृ.11.

****

दलित विमर्श

सूत्रधार में व्यक्त स्त्री और दलित चेतना

-डॉ. रामचंद्र मीणा
दिल्ली विश्वविद्यालय

'स्त्री और दलित' समाज में हमेशा से शोषण के शिकार होते रहे हैं। ऐसे तो इस वर्ग के शोषण का इतिहास काफी पुराना है। स्वतंत्रता के बाद संविधान में जाति, धर्म, लिंग आधारित भेदभाव को निषिद्ध करने के साथ ही भारत में 'राजनीतिक समानता' सबको प्राप्त हो गई किन्तु सामाजिक असमानता बरकरार रही। आजादी के बाद भी इस समस्या का समाधान नहीं हो पाया है। स्त्री और दलित मुक्ति से जुड़े स्वप्न पूरे नहीं हो पाये, लेकिन इस चेतना का विस्तार वर्तमान में विस्तृत फलक पर हुआ है।

'स्त्री और दलित' के शोषणों के अनेक आयाम है। समाज मे प्रत्येक स्तर पर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हमें यह देखने को मिलता है। समय -समय पर हिन्दी साहित्य में किसी न किसी विधा के माध्यम से इनकी पीड़ा को आवाज मिलती रही है। अनेक रचनाकारों ने इन्हें अपनी रचना का विषय बनाया है, और साहित्य को एक नई दिशा दी है। स्त्री ओर दलित पीड़ा की सशक्त अभिव्यक्ति संजीव के उपन्यास 'सूत्रधार' (2003) में हुई है। इस चेतना को समृद्ध करने में संजीव का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जा सकता है। इन्होंने सूत्रधार के माध्यम से स्त्री और दलित की पीड़ा को बड़ी गहराई से उकेड़ा है।

'सूत्रधार' सशक्त लोक कलाकार भिखारी ठाकुर पर केन्द्रित उपन्यास है। अनेक तरह की चुनौतियों और जोखिम का सामना करते हुए सूत्रधार के बहाने संजीव ने लोक जीवन के अनछुये पहलू का चित्र उपन्यास में प्रस्तुत किया है। यह उपन्यास लोक जीवन एवं स्त्री मुक्ति, दलित मुक्ति का एक महाआख्यान है। नाट्य और रंगकर्म के माध्यम से भिखारी ठाकुर ने 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में भोजपुरी प्रदेश में नवजागरण की हवा बढ़ाई अपने लोक नाटकों के द्वारा उन्होंने भोजपुरी समाज में फैली तमाम कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों, जातीय और लैंगिक शोषणों के खिलाफ जनजागृति का कार्य किया। सूत्रधार में संजीव द्वारा उद्धृत भिखारी के बारे में राहुल सांस्कृत्यायन द्वारा दी गई टिप्पणी है कि ''भिखारी भोजपुरी के शेक्सपीयर है, सार्थक है।''

सूत्रधार स्त्री विमर्श और दलित विमर्श को एक नया आयाम देता है। सूत्रधार के भीतर नाटक के प्रभाव से दलित एवं स्त्री जागरण के स्वर एक साथ ऐसे फूटते दिखते हैं जिससे पूरा समाज हिल जाता है। संजीव के 'सूत्रधार' के माध्यम से ग्रामीण अंचल के एक ऐसे समाजशास्त्र को सामने लाया है जो लीक से हटकर है। इस उपन्यास में जटिल ग्रामीण सामाजिक संरचना, वर्ग जाति की कुण्ठा, मानव मनोविज्ञान के साथ ही संघर्ष एवं समन्वय सब कुछ साफ उभरकर सामने आता है। इस उपन्यस का नायक भिखारी ठाकुर सामान्य जन जीवन के बीच का आम आदमी है जो अपनी निजी नाच मंडली बनाकर अपने अंदर ले रही सामाजिक समस्याओं को मंच पर लाना शुरू करता है तो समाज के हर तबके के लोग जैसे अपना चेहरा आइने में देख रहे होते हैं।

जिस समय समाज में सभी जगहों पर सत्यवादी हरिश्चन्द्र, ध्रुव, भक्त प्रह्लाद, श्रवण कुमार, सुल्ताना डाकू इत्यादि नाटक खेले जा रहे थे, उस समय में लीक से हटकर भिखारी ठाकुर की नजर स्त्री शोषण एवं स्त्री पीड़ा की ओर गयी। परिणामस्वरूप 'बेटी वियोग' ओर विदेशिया जैसे नाटक भिखारी ठाकुर सामने लेकर आये। इस नाटक को लिखते समय एवं उसे खेलने के पहले भिखारी के

अन्तर्द्वन्द्व एवं मनोविज्ञान को संजीव ने बखूबी रचा है।

संजीव ने 'सूत्रधार' में बेटी वियोग नाटक के प्रदर्शन और प्रभाव पर प्रसंग लिखा है-''लगभग पांच सौ दर्शक फूट-फूटकर रो रहे थे। ये हजारीबाग के लोग थे। इनके यहां बेटी बेची जाती थी। नाटक मंच से उतरकर दर्शकों में आ गया था।'' भोजपुरी समाज की महिलाओं के दुख-दर्द और उनके जीवन की विभिन्न पक्षों का जिस तरह भिखारी ठाकुरी ने चित्रण किया है अन्यत्र दुर्लभ है महिलाओं के प्रति संवेदना रचनाक्रम में दिखाई देती है।

प्रो. मैनेजर पांडेय ने लिखा है कि-''उनके नाटकों का दूसरा प्रमुख केन्द्रिय विषय भोजपुरी समाज में स्त्रियों की दुर्दशा है। उनके नाटकों में विदेशिया, बेटी वियोग, ननद भौजाई, विधवा विलाप, गबरविचोर, कलुयुग प्रेम आदि में स्त्री के जीवन संघर्ष के विभिन्न रूप और दिखाई देते हैं। भिखारी ठाकुर ने जिस सूक्षमता और प्रमुखता से भोजपुरी समाज की स्त्रियों का चित्रण किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।''

भिखारी ठाकुर ने नारी जीवन नारी की सामाजिक स्थिति, नारी मनोविज्ञान और नारी की विभिन्न समस्याओं का सूक्ष्मता से अनुशीलन किया। उन्होंने तत्कालीन ग्रामीण परिवेश में नारियों की समस्या को अपना उपजीव्य बनाया तथा अपने लोकनाटकों का लगभग 75 प्रतिशत स्त्री समस्या को समर्पित किया।

संजीव उपन्यास में एक जगह लिखते हैं-''एक बबूकी फिर दूसरी, फिर तीसरी अनन्त क्रम है। बेची गई बेटियों का मन में भाव सी पक रही है पीर, मथ और बथ रही है पीर। झोंकार मारकर रोने को मन करता है, ताकि मवाद बाहर आ जाये ओर जी कुछ हल्का हो।''

उपरोक्त पंक्ति के अन्दर हजारों साल पुराने पुरुष प्रधान ढांचे के भीतर स्त्री जीवन की वह पीड़ा है जिसे शायद संजीव ने कम शब्दों में ताकतवर ढंग से प्रस्तुत किया है। यह एक ऐसे भाव की पीड़ा का वर्णन है जो इस सामाजिक संरचना को मथ और बथ रही है।

बेटी वियोग बिहारी ठाकुर का ऐसा नाटक था जिसने भोजपुरी समाज को अपना मूल्यांकन करने के लिए मजबूर किया। जनता ने इस नाटक में बेटी बेचवा नाम दिया क्योंकि इस नाटक का केन्द्रिय विषय भोजपुरी इलाके में प्रचलित बेटी बेचने की प्रथा थीं कई कारणों से इस इलाके में पैसा लेकर शादी करने की प्रथा थी। पेसे लेकर शादी करने के कारण बेमेल विवाह का दौर शुरू हुआ। बेमेल विवाह से उपजी स्त्री पीड़ा को

आगे संजीव भीखारी की पंक्तियों के माध्यम से उपन्यास में ऐसे लाते हैं- ''रोपेया गिनाई लिहल-अ पगहा धाराई दिहल-आ।

चोरिया के छोरिया बनवल ही बाबू जी।।
बर खोजे चली गइल-अ-माल लेके घरे
बाबा लेखा खोजल-दुलहवा हो बाबूजी।।''

लड़की एक खुँटे पर बंधे उन पशुओं की तरह अपने को बेवश पाती है, जो एक जगह से दूसरी जगह बेचे जाने के बाद भी चुपचाप ये बीना देखे वह कसाई के साथ जा रही है या किसी किसान के यहां चुपचाप चली जाती है। लगता है यहां संजीव उपन्यास के नायक भिखारी ठाकुर के अंदर प्रवेश कर गये हैं।

'सूत्रधार' भारतीय जाति व्यवस्था की कटु और निर्भय आलोचना है। सूत्रधार के नायक अपने समय के सामंती के साथ संतुलन बनाकर ही अपना संदेश दे पाते हैं। भिखारी ठाकुर को कई स्तरों पर संघर्ष करना पड़ा है। उनके मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है- उनका नाई होना। उच्च वर्ग उन्हें जातिगत हैसियत ओर ओकात की याद दिलाता रहा। लेकिन भिखारी के मन में कभी भी किसी के प्रति विद्वेष नहीं पाला। वे अपने रचना कर्म में नित नित कर्मशील रहे।

हाशिए पर पड़े लोगों को जाति व्यवस्था का विष दिन में कितनी बार मारता है और जीवन भर ये वर्ग कमतर होने की छटपटाहट, उससे उबरने, अस्मिता के लिए संघर्ष करते-करते भिखारी 'नाई' से भिखारी 'ठाकुर' वन भले अजेय हो जाएं पर मरते अनतृप्त ही है।

''नोह कार रे नऊवां नोह
काटू रे अंगुरि जिन करिहे...''

नवजागरण, समाज सुधार आन्दोलन आधुनिक शिक्षा आदि के बावजूद अभी भी जाति प्रथा हटने का नाम नहीं ले रही है। यह हमारी पहचान बन गयी है। इस उपन्यास के इसी यथार्थ को भिखारी नाई की पीड़ा के साथ एकाएक कर दिया गया है।

सूत्रधार में संजीव ने समाज के बुनियादी सामंती ढांचे पर अपने व्यंग्यपूर्ण सवाल खड़े करते हैं। भिखारी ठाकुर के नाटक का प्रभाव सामंती ढांचे के सात परत अन्दर तक परवेश कर गया है। भीखारी ठाकुर ने शोषण पर आधारित इस समाज की खूब खिल्ली उड़ाई है। यह भिखारी ठाकुर का अपना दर्द था अपनी पीड़ा को अपने नाटकों के माध्यम से व्यक्त किया है। भिखारी ठाकुर ने पुरुष सत्ता, सामंतवाद, पुरोहितवाद, नशा करने वालों, बेटी बेचने वालों को अपने नाटकों के माध्यम से अपने प्रभाव में लेकर एक बड़ी सामाजिक क्रान्ति की शुरूआत की। इस दृष्टि से 'सूत्रधार' लोक चेतना और लोकजागरण के धरातल पर अपने समय की एक समृद्ध कृति कही जा सकती है।

संदर्भ सूची

1. विजय बहादुर, उपन्यास : समाज और संवेदना, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
2. गोपाल राय, आधुनिक हिन्दी उपन्यास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
3. अपूर्व जोशी, पाखी, अगस्त 2009 (अंक)
4. कुमार विश्वभगत, अभ्यांतर, जुलाई-सितम्बर 2014
5. सत्यकाम, समीक्षा, जुलाई-सितम्बर, 2014
6. संजीव, सूत्रधार

****

नवगीत में दलित चेतना के सशक्त हस्ताक्षर : जगदीश पंकज

डॉ. प्रवीण चंद
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग
जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर
मो. 7737376464

नवगीत साहित्य में जगदीश पंकज का नाम एक जाज्वल्यमान नक्षत्र की तरह उदय होकर अपनी आभा से संपूर्ण साहित्य ब्रह्माण्ड को आलोकित किए हुए है जो अपनी प्रत्येक कृति के साथ अपनी वैचारिकी को लययुक्त नवगीतों में ढालकर सामान्य जन की वेदना को स्वयं द्वारा भुक्त वेदना से सिक्त स्वर दे रहे हैं। जगदीश प्रसाद जैन्ड उर्फ जगदीश पंकज का जन्म 10 दिसम्बर, 1952 ई. को पिलखुवा जिला गाजियाबाद, उत्तरप्रदेश में एक निर्धन दलित परिवार में हुआ।

आप बैंकिंग सेवा से सेवानिवृत्त होकर नवगीत विधा में साहित्य एवं समाज सेवा कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य की बहुत विधाओं में दलित साहित्यकारों ने अपना लोहा मनवाया है; लेकिन जगदीश पंकज नवगीत विधा में अपनी छाप छोड़ने में कामयाब हुए हैं। इनके द्वारा प्रकाशित सात नवगीत संग्रहों के अलावा देश की प्रतिष्ठित हिंदी साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित नवगीत नवगीत साहित्य को समृद्धि प्रदान करने के साथ-साथ दलित वैचारिकी के प्रति समर्पण दलित विमर्श को नवगीत विधा के माध्यम से हम सब तक संप्रेषित कर रहे हैं। इनके कथनानुसार "मैं किसी समृद्ध सम्भ्रान्त या भद्रलोकी साहित्यिक विरासत का उत्तराधिकारी नहीं अपितु एक निर्धन दलित परिवार में जन्मा ऐसा प्राणी हूँ जिसे विरासत में दायित्व ही प्राप्त हुए और अपने कैशोर्य से ही समाजार्थिक दबावों-तनावों से रू-ब-रू होते हुए संघर्ष करते रहना पड़ा।"[1]

जगदीश पंकज के सैकडों नवगीत 'सुनो मुझे भी', 'निषिद्धों की गली का नागरिक', 'समय है संभावना का', 'आग में डूबा कथानक', 'मूक संवाद के स्वर', 'अवशेषों की विस्मृत गाथा' तथा 'प्यास की पगडंडियों पर' नवगीत संग्रहों में दलित, पीड़ित, वंचित, उपेक्षित तथा शोषितों के हिमायती बनकर बड़ी धमक के साथ उपस्थित हैं, जो समाज एवं राजनीति को सोचने पर विवश कर रहे हैं। एक दलित साहित्यकार का आत्मकथ्य समाज को आईना दिखाने में कामयाब हो रहा है -"अपने होश संभालने से लेकर अब तक जीवन में अनेक ऐसी घटनाओं और अनुभवों से गुजरना पड़ा जो मेरे व्यक्तित्व या कार्यक्षमता या कृतित्व से नहीं बल्कि मेरे जन्म के कारण जुड़ी जाति पर आधारित रहे थे। मुझे अनेक बार मेरे निर्धन दलित परिवार में जन्म लेने का अहसास कराया गया। अनेक बार मनमाने तरीके से मुझे मेरे सामान्य और वैध अधिकारों से भी वंचित रखा गया। ऐसी स्थिति में क्रोध आना स्वाभाविक है, किंतु मैंने अपने क्रोध और आक्रोश को सकारात्मकता देते हुए अपने स्तर पर सामान्य तरीके से यथोचित मुकाबला किया।"[2]

दलित लेखन एवं साहित्यकारों के बारे में आपकी स्पष्टवादिता दलित लेखन में उतरने वालों के लिए पथप्रदर्शन का कार्य कर सकती है। इस संबध में उदाहरण दृष्टव्य है-"साहित्य में भी दलित विषयक मुद्दों पर गैर-

दलितों द्वारा आम तौर पर चुप्पी साधी गयी है, जिन्होंने दलितों की पीड़ा को सही तरह से व्यक्त किया है, उन्हें समुचित आदर मिला है। यहीं पर स्वानुभूति, सहानुभूति और समानुभूति के अंतर स्पष्ट हो जाते हैं। भुक्तभोगी होने से मैंने उस पीड़ा को स्वर देने की कोशिश की है।"[3]

दलितों के जीवन की समस्याओं पर केन्द्रित साहित्य दलित साहित्य के अन्तर्गत रखा जाता है। दलित तो पहले भी थे, परंतु साहित्यिक आंदोलन के रूप में दलित विमर्श आधुनिक एवं उत्तर आधुनिकवाद की देन है। दलित साहित्यकारों ने लगभग समस्त विधाओं में स्वयं को अभिव्यक्त करते हुए समाज को आईना दिखाने का कार्य किया है। कहीं दलित चेतना उपन्यास के माध्यम से कहानीबद्ध हुई है तो कहीं आत्मकथा के रूप में सहृदयों की सहानुभूति पाने में सफल हो पाई है, लेकिन कविता की एक छोटी सी विधा गीत में छंद, लय, ताल युक्त समाज की वेदना को गाना तथा समाज में व्याप्त विसंगतियों को यथार्थ रूप में उजागर करना एक अभूतपूर्व परिघटना है। यद्यपि नवगीत का सामाजिक यथार्थ वंचित वर्ग के साथ सहानुभूति रखता ही है तथापि एक दलित परिवार में जन्म लेने वाले नवगीतकार जगदीश पंकज की अनुभूति उस वर्ग की अनुभूति से एकाकार होकर प्रस्फुटित हो रही है। यह सत्य भी है जिस के पाँवों में काँटा लगा है वो ही सही तरीके से उसका दर्द अभिव्यक्त कर सकता है। देख और सुन कर लिखने वाले स्वानुभूति से काफी दूर रह जाते हैं। बकौल जगदीश पंकज "दलित लेखन में वही व्यक्त होता है जो लेखक या रचनाकार ने भोगा है या देखा है और देख रहा है।"[4]

पीड़ित, उपेक्षित वर्ग की वेदना को अपनी पीड़ा से मिलाकर स्वर देना कोई इनसे सीखेः-

"कोरे कागज पर पहले ही/ जाने क्या-क्या लिखा हुआ था
मैंने तो अपनी स्याही से/ केवल उसे उभार दिया है
मैंने वही लिखे हैं अक्षर/ जिनको अनगिन बार जिया है।"[5]

कवि यहाँ बाबा साहब भीमराव अंबेडकर एवं महात्मा बुद्ध की वैचारिकी एवं दर्शन को गीतों के माध्यम से इस भाँति बो रहे जिससे भावी पीढ़ियों को वह सब नहीं भोगना पड़े जो पहले की पीढ़ियाँ भोग चुकी हैं। दलित चेतना एवं दलित विमर्श सदैव महानायक भीमराव अम्बेडकर के साहित्य एवं उनके प्रेरक व्यक्तित्व से संपृक्त है। इनके कथनानुसार "आज की दलित वैचारिकी अपनी ऊर्जा अम्बेडकरवाद से ही ले रही है।"[6]

आज भी पुरातन मोह में ग्रस्त मदांध लोग स्वयं को सर्वश्रेष्ठ घोषित करने की लालसा में निर्धनों एवं दलितों का तिरस्कार करने से नहीं चूकते हैं। कवि भारतीय समाज में व्याप्त भेदभाव एवं कुप्रथाओं के प्रति अपनी बेबाक राय रखते हैं। सदियों से प्रचलित ऊँच-नीच के दृष्टिकोण ने सदैव दलित को हाशिये पर रखने का प्रयास किया है। सत्ता एवं शिष्य मोह से ग्रस्त द्रोण अब तक न जाने कितने ही एकलव्यों को किनारे कर चुके हैं। मिथक एवं प्रतीकों के माध्यम से शोषक वर्ग की बखिया उधेड़ती यह पंक्तियाँ बानगी भर है:-

"अनगिन एकलव्य रोके हैं/ हर युग के आचार्य द्रोण ने
कितने अवसर गवाँ दिए हैं/ ऊँच-नीच के दृष्टिकोण ने।"[7]

दृढ़ सामाजिक एवं राजनीतिक इच्छाशक्ति के अभाव में शोषक धनबल पर न्याय को भी अपनी तरफ झुक जाने के लिए विवश कर देते हैं। शोषित की हर बार जहर के घूँट पीकर भी तड़पकर जीवित रह जाना मजबूरी बन गया है। गीतकार इस प्रकार अपनी वेदना को शब्द दे रहे हैं:-

"जो लिखा था पृष्ठ पर / वह बिन पढ़े ही
कर दिये हस्ताक्षर / हर बार मैंने
अंतड़ी की आग से/ झुलसा हुआ तन
जीतकर भी भूख से हारा हुआ है
विवशता को चयन का/ अवसर नहीं है
इस तरह संचित अहम्/ मारा हुआ है
साँस पर प्रतिबन्ध के/ कोड़े सहन कर
पी लिया घुटकर जहर/ हर बार मैंने।"[8]

भारतीय राजनीति में भिन्न-भिन्न दलों की वोटबैंक की राजनीति चुनावों तक ही सीमित हो जाती है। पक्ष तथा विपक्ष हमेशा से ही वादों के पिटारे खोलकर पाँच साल तक कुर्सी का मोह त्याग नहीं पाते हैं और बारी बारी से बिना कुछ किए कानून को भी अपनी सहूलियत के हिसाब से परिवर्तित करने में सक्षम है तब वर्तमान में भी कवि हृदय की कराह जायज सी है, उनके नवगीत का उदाहरण दृष्टव्य हैः-

"मिल रहे अब भी/ दलित को दंश/ अत्याचार भारी
क्रूर है / प्रतिपक्ष भी / बनकर खड़ा आतंककारी।"[9]

चुनाव के समय दलित के घर का भोजन उंगलियाँ तक चाटने पर विवश कर देता है अन्यथा दलित पर होते अत्याचार को देखकर पतली गली निकलना इनका पुराना शगल है कवि ने किस प्रकार पोल खोल कर रख दी है:-

"कौन, कितना/ देखकर होता द्रवित है
टूटती हैं लाठियाँ जब भी दलित की/ पीठ पर,
जालिम दबंगों के कहर की।
गा रहे समभाव को/ ऊँचे स्वरों में
क्या उन्हें समता/ कहीं देती दिखायी
क्रूरता का वीडियो/ सोशल पटल पर
डालकर निर्भीक हो/ करते ढिढाई
नहीं देते जगह/ शव तक के दहन को
कौन आता है कहाँ प्रतिरोध में तब/ बिन किये
परवाह फैले क्रूर डर की।"[10]

जगदीश पंकज के गीतों में केवल सामाजिक विसंगतियों की ही यथार्थ अभिव्यक्ति नहीं है वरन् दलितों के विरोधी षड्यंत्रकारियों के प्रति आक्रोश एवं प्रतिरोध का स्वर इन्हें उनका सच्चा हिमायती बनाकर प्रस्तुत कर रहा है। यह क्रोध कृत्रिम नहीं है बल्कि प्राकृतिक रूप से एक भोक्ता की संचित पीड़ाओं की प्रतिध्वनि है जो अत्याचारियों के कर्ण द्वारों पर दस्तक दे रही है:-

"सह रहा है / पीठ पर वह / हर तरह के वार / पर झुकता नहीं
धर्म-धन-धरती नहीं / या हाथ में धंधा
हर तरह की नीतियों को / दे रहा कंधा
वह दलित,वह सर्वहारा / वक्त से लाचार / पर रुकता नहीं।"[11]

इस गीत की सुनें तो हम अस्वीकार के धरातल पर तिरस्कार पाकर भी उन

बबूलों के तने हुए तने है जो पाताल भेद कर भी अपना प्राप्य प्राप्त करने में प्रयासरत हैः-

"अंशतः/ स्वीकार मिल पाया नहीं, पर
हम घृणित दुत्कार पाकर भी तने हैं
हमीं हैं वंशज बबूलों के!
मानकर अस्पृश्य-सा/ बचकर निकलता
चल रहा अभिजात जन/ बचता-बचाता
आमजन हमको/ सहेजे है सदा से
रोटियों की आस में/ सिर पर सजाता।
हम उगे हैं आग-सी/ तपती धरा पर
हर चुनौती के रहे हम सामने हैं
हमीं हैं वंशज बबूलों के!"[12]

जगदीश पंकज के गीतों में दलितों पर हो रहे अत्याचार के प्रति आक्रोश एवं प्रतिरोध का स्वर प्रबलता के साथ जन-जन तक पहुँच रहा है। दलितों की जागृति के लिए आह्वान करते इनके नवगीत उनमें आत्मविश्वास तथा स्वावलंबन के बीज बोते हुए प्रतीत हो रहे हैं। जिससे कि इनके स्वाभिमान को कोई चोट नहीं पहुँचा सकें। यही बीज कालांतर में वटवृक्ष का रूप लेकर सिसकियों को चिंगारियों में परिवर्तित करने में सहयोग करेगा। इन चिंगारियों से अपने लोग ऊष्मा पाकर ऊर्जावान हो जाएँगे वहीं अन्यायी वर्ग अपनी उंगलियाँ जलाकर भाग जाएँगे। यह सुनकर अत्याचारी तिलमिलाकर रह जाता है वहीं दलित वर्ग में एक नवीन चेतना और ऊर्जा का संचार होता है अपनों के समृद्ध भविष्य के लिए स्वयं को पूर्ण रूप से खपा देना त्याग की पराकाष्ठा है:-

"पीढ़ियाँ भावी/ सुरक्षित फलें- फूलें/ बो रहा हूँ
मैं स्वयं को क्यारियों में
सिसकियों को/ अब बदलना है जरूरी/ कसमसाते
क्रोध की चिंगारियों में।"[13]

संविधान के प्रति आस्थावान एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति समर्पित जगदीश पंकज के गीतों में सदैव ही वंचित वर्ग के प्रति संवेदनशीलता विद्यमान है। नवगीतकार केवल सहानुभूति और संवेदनाएँ प्रकट कर इतिश्री नहीं करते वरन् उन षड्यंत्रकारियों के विरुद्ध तनकर खड़े हैं जो लोकतांत्रिक मूल्यों के विपरीत चलकर देश के एक वर्ग को सदा की दबा कुचला देखना चाहते हैं। आपके प्रेरक गीतों में उनका आक्रोश फूट पड़ता है, जिसका उदाहरण द्रष्टव्य है:-

"सोचिये जिसके बदन पर/ हो रहे हैं वार
पा दुत्कार है निर्दोष/ पर झुकता नहीं/ वह क्या करेगा?
कर रहा संचित/ किसी विद्रोह के कण
आज के आक्रोश को दिल में दबाये
सोचिये जब चेतना पर/ हो रही हो चोट
तब विस्फोट/ अन्तर में/ दबा, रुकता नहीं/ वह क्या करेगा?"[14]

जगदीश पंकज के उपर्युक्त नवगीतों एवं पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित उनके आलेख तथा साक्षात्कारों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि डॉ० भीमराव अम्बेडकर, महात्मा बुद्ध एवं कबीर के दर्शन से प्रभावित होकर स्वयं को गीतों के माध्यम से उस समाज के लिए खपा रहे हैं, इनकी जागृति के लिए आह्वान कर रहे हैं, संविधान एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति सजग कर रहे हैं तथा उन्हें स्वाभिमान के साथ जीने की सीख दे रहे हैं; जो सदियों से उपेक्षित और संतप्त है। एक वाक्य में कहें तो सही अर्थों में समकालीन नवगीतकार जगदीश पंकज दलित चेतना के सशक्त हस्ताक्षर है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1-पंकज जगदीश, सुनो मुझे भी, निहितार्थ प्रकाशन, गाजियाबाद,(2015), पृष्ठ-29

2-पंकज जगदीश, निषिद्धों की गली का नागरिक, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, (2015), पृष्ठ-17

3-पंकज जगदीश, निषिद्धों की गली का नागरिक, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, (2015), पृष्ठ-17

4-पंकज जगदीश, समकालीन दलित साहित्य की वैचारिकी के औजार, कथादेश, अगस्त 2017, पृष्ठ-29

5-पंकज जगदीश, सुनो मुझे भी, निहितार्थ प्रकाशन,गाजियाबाद,(2015), पृष्ठ-43

6-पंकज जगदीश, समकालीन दलित साहित्य की वैचारिकी के औजार, कथादेश, अगस्त 2017, पृष्ठ-30

7-पंकज जगदीश, मूक संवाद के स्वर, ए.आर.पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, (2019), पृष्ठ-40

8-पंकज जगदीश, आग में डूबा कथानक - ए.आर. पब्लिशिंग कम्पनी,शाहदरा, दिल्ली, (2019), पृष्ठ-80

9-पंकज जगदीश, निषिद्धों की गली का नागरिक, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, (2015), पृष्ठ-51

10-पंकज जगदीश, प्यास की पगडंडियों पर, ए.आर.पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, (2021), पृष्ठ-80

11-पंकज जगदीश, सुनो मुझे भी, निहितार्थ प्रकाशन,गाजियाबाद,(2015), पृष्ठ-66

12-पंकज जगदीश, प्यास की पगडंडियों पर, ए.आर.पब्लिशिंग कम्पनी, दिल्ली, (2021), पृष्ठ-66-67

13-वही, पृष्ठ-120-121

14-पंकज जगदीश, आग में डूबा कथानक - ए.आर. पब्लिशिंग कम्पनी,शाहदरा, दिल्ली, (2019), पृष्ठ-77-78

****

हिंदी दलित साहित्य

विष्णु
शोधार्थी पीए.डी. (हिंदी)
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

वर्तमान को समझने के लिए अतीत को समझना जरूरी है। दलित–साहित्य का भी अपना इतिहास है। "ऋग्वेद के दसवें मंडल में आए एक सूक्त के अनुसार आदि पुरुष/ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, बाहुओं से (क्षत्रिय), उरु वैश्य और पाँव से शूद्र उत्पन्न हुए। वैदिक समाज दर्शन में वेद और ब्राह्मण की सर्वोच्चता प्राप्त है।"

"दलित साहित्य वह साहित्य है, जो दलितों के जीवन, उनके सुख–दुख, उनकी सामाजिक–राजनीतिक स्थितियों उनकी संस्कृति, उनकी आस्थाओं–अनास्थाओं, उनके शोषण व उत्पीड़न तथा इस उत्पीड़न– शोषण को दलितों द्वारा प्रतिरोध की परिस्थितियों की व्यापकता तथा गहराई के साथ, कलात्मकता से प्रस्तुत करता है।"

डॉ. चन्द्रकान्त वादिवडेकर के अनुसार– जिन जातियों को महात्मा गाँधी ने 'हरिजन' कहा था, वे ही जातियाँ 'दलित' नाम से पहचानी गई।

दलित साहित्य में दलित शब्द साहित्य में जुड़कर एक ऐसी साहित्यिक धारा की ओर संकेत करता है, जो मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं की यथार्थवादी अभिव्यक्ति है। दलित साहित्य जन साहित्य है, यानी मास लिटरेचर (Mass Literature) सिर्फ इतना ही नहीं, लिटरेचर ऑफ एक्शन (Literature of Action) भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य।

निशिकांत ठाकुर लिखते हैं– दलित के नाम पर सवर्ण समाज की व्यवस्था प्रस्थापित थी। एक समय में वह मानवीय सभ्यता और संस्कृति की सभी उपलब्धियों से वंचित था। वह अछूत था, उसकी परछाई से भी परहेज किया जाता था। इसमें किसी सवर्ण को कोई अस्वाभाविकता प्रतीत नहीं होती थी।

हिन्दी दलित साहित्य का अध्ययन करते समय हिन्दू समाज में दलित की स्थिति पर विचार करते हुए लगा कि यहाँ तो मनुष्य की स्थिति पशु से भी बदतर बना दी गई है, क्योंकि पशुओं को जो भी लोग पालते हैं उसके प्रति मोह रखते हैं। लेकिन दलित, जो सबकी सेवा करता है। उसके लिए हिन्दू धर्म में ऐसे–ऐसे प्रतिबंधों का विधान किया गया है कि उन्हें पढ़ते ही मन में आक्रोश की भावना उत्पन्न होने लगती है। यदि किसी व्यक्ति को पढ़ने का अधिकार न हो, धर्म के किसी भी कार्य, अनुष्ठान में भाग लेने का कोई अधिकार न हो, इससे भी ज्यादा यदि किसी दलित के कान में वेदमंत्र भी पड़ जाए तो उसके कान में पिघला हुआ शीशा डालने जैसे और अमानवीय व्यवहार किया जाए तो दलित साहित्य कैसे रचा जा सकता है? और यह बन्धन इतने सख्त थे कि इनका उल्लंघन करना भी मृत्युदण्ड के सामन था। इस व्यवस्था के विरुध सबसे पहले आवाज़ ढाई हज़ार वर्ष पहले महामानव गौतम बुद्ध ने उठाई। जिन्होंने सड़क पर झाड़ू लगाते हुए एक युवक को अपना शिष्य बनाया।

हिन्दी में अब दलित लेखन का स्वर निरंतर मुखरित होता हुआ दिखाई दे रहा है। आज दलित साहित्य आम आदमी के जीवन का दर्पण बन गया है। शोषित–पीड़ित, दीन–हीन आम जनता के दुख–सुख, अभाव और आवश्यकताओं का दर्द बिछोरता रास्ता बतलाता हुआ आज का दलित साहित्य गतिमान है।

बीसवीं सदी का अन्तिम दशक दलित साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इसी दशक में हिन्दी दलित साहित्य ने अपना विधागत विस्तार किया है। वर्तमान समय में दलित साहित्य भारत की लगभग सभी भाषाओं में लिखा जा रहा है। कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा, निबंध, नाटक और आलोचना के क्षेत्र में ही नहीं, अनुवाद और शोध के क्षेत्र में भी पर्याप्त लेखन हुआ है।

ओमप्रकाश बाल्मीकि ने लिखा है– दलित शब्द भाषावाद, अलगाववाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद को नकारता है तथा पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है।

अभी तक दलित साहित्य की सर्वमान्य परिभाषा है– "दलितों का, दलितों द्वारा दलित समस्याओं पर लिखित साहित्य ही दलित साहित्य है।"

शुरूआती दौर में दलित साहित्य चाहे जैसा भी माना गया, लेकिन आज इसकी पहचान एक अलग साहित्य के रूप में हो चुकी है। आज ऐसी कोई भी विधा बाकी नहीं है जिस पर दलित साहित्यकारों की कलम न चली हो। अगर देखा जाए तो कविता के क्षेत्र में दलित साहित्यकारों ने जैसे गैर दलित साहित्यकारों को भी पीछे छोड़ दिया है।

दलित साहित्य परिवर्तनशीलता के नियमों में विश्वास करता है। मनुष्य का जीवन हो या प्रकृति, उसमें कुछ भी स्थिर नहीं है। न अजर, न अमर। जैसे–जैसे जीवन बदलता है, अनुभव बदलते हैं, यथार्थ बदलता है। दलित साहित्य में अनुभवों से उत्पन्न आशय निष्ठा ही अधिक है।

आलोचकों और रचनाकारों की यह धारणा बन गई है कि दलित साहित्य प्राचीन संस्कृति, कला साहित्य का तिरस्कार करता है। यह धारणा गलत है। दलित साहित्य नायकत्व का विरोधी है। समाज की जड़ता को तोड़कर वह मनुष्य की पक्षधरता को सर्वोपरि मानता है। सामाजिक बदलाव के माध्यम से वह सामाजिक समरसता चाहता है। भाईचारे और स्वतन्त्रता की बात करता है। सबके लिए समानता का पक्षधर है।

विद्वान आलोचक मैनेजर पांडेय कहते हैं– "हिन्दी के कई मार्क्सवादी आलोचक दलित साहित्य की आलोचना करने के लिए उन्हीं तर्कों का सहारा लेते हैं जो कलावादियों के हैं। लेकिन कुछ दूसरे वर्गवाद के नाम पर दलित साहित्य का विरोध

करते हैं। वर्गवाद और राष्ट्रवाद को मिलाकर जातीयता की धारणा बनाते हैं और साहित्य को उसी कसौटी पर कसते हैं। ऐसे लोग दलित साहित्य के आन्दोलन की हिन्दी साहित्य की जातीयता के लिए खतरा मानते हैं। लेकिन उनकी जातीयता के परम्पराबोध में हिन्दी क्षेत्र की दलित जातियों पर हुए अनन्त अमानुषिक अत्याचारों की कोई स्मृति नहीं होती और दलितों के संघर्ष की कोई पहचान भी नहीं। ऐसी जातीयता और उसके परम्पराबोध को दलित क्यों स्वीकार करेंगे।"

दलित साहित्य में संत रैदास को पहला कवि स्वीकार किया जाता है, जिन्होंने अपने काव्य में वर्णव्यवस्था का खुलकर विरोध किया है।

प्रतिवर्ष जितना हिन्दी दलित साहित्य प्रकाशित हो रही है और उस पर जिस तरह से चर्चा हो रही है, उससे लगता है कि दलित साहित्य का भविष्य बहुत उज्ज्वल है और आगे चलकर दलित साहित्य की मुख्यधारा होगा। राजेन्द्र यादव कहते हैं– "अगली सदी दलित रचनाकारों की होगी सच लगता है।" जैसा कि पहले बताया कि संत रैदास दलित साहित्य के प्रथम कवि थे। उन्होंने ही सबसे पहले वर्ण व्यवस्था पर टिप्पणी दी–

रैदास जन्म के कारणै, होत न कोई नीच।
नर को नीच करि डारि है, औछे करम की कीच।।

हिन्दी धर्म के व्याप्त छुआछूत के विरोध की जिस परम्परा का प्रारंभ निर्गुणी संतों ने किया, उसका अनुसरण बाद में सुधारवादी धर्मप्रचारक और राजनीतिज्ञ भी करते रहे इनमें आचार्य विनोबा भावे, स्वामी दयानंद सरस्वती तथा महात्मा गांधी के नाम महत्वपूर्ण है।

दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवन–संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।

कंवल भारती की धारणा है कि "हिन्दी दलित साहित्य वह है जो दलित मुक्ति के सवालों पर पूरी तरह अम्बेडकरवादी है।"

वास्तव में दलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है। दलित साहित्य जिस जगह पर जन्म लेता है, द्विज साहित्य उस जगह पर मरने तक भी नहीं पहुँच सकता।

डॉ. सी.बी. भारती के अनुसार– "दलित साहित्य नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परम्पराओं के पूर्वाग्रहों से युक्त साहित्य सृजन है, उसे हम दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं।"

दलित साहित्य को लेकर हिन्दी में कई तरह की आशंकाएँ पनप रही हैं। जहाँ एक ओर परंपरावादी हिन्दी के समीक्षक और लेखक उसे संदेहपूर्ण दृष्टि से देखते हैं वहीं वे साहित्य में दलितों के दखल को अनाधिकार चेष्टा मानकर नाक–भौह भी सिकोड़ रहे हैं। समाज में जो भी पीड़ित है वह दलित की श्रेणी में आता है। 'दलित साहित्य' संज्ञा मूलतः प्रश्नसूचक है। चमार, भंगी, महार जैसी जातियों की स्थितियों के प्रश्नों पर विचार तथा रचनाओं द्वारा उसे प्रस्तुत करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है। दलित साहित्य हिन्दी साहित्य के इतिहास के एक खास दौर– अस्सी और नब्बे के दशक में तेजी के साथ उभरा एक साहित्यिक आंदोलन है। दलित साहित्य वर्ग की जागरूकता का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसमें देखा हुआ, सुना हुआ सत्य नहीं, भोगा हुआ सत्य है।

निष्कर्ष

अन्ततः कहा जा सकता है कि दलित एक संवेदन शब्द है, विचार है, जिसका अर्थ दबाया गया है 'दबे हुए से नहीं। दलित साहित्य ने समाज का साहित्य चित्रण सच्चाई के साथ किया है वैसा चित्रण किसी साहित्य ने नहीं किया। मेरे अनुसार यह बात शत प्रतिशत सही है। दलित साहित्य दलित चेतना की उत्कट और सार्थक अभिव्यक्ति है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1 दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र– ओमप्रकाश बाल्मीकि, प्रकाशक– राधाकृष्ण प्रकाशक, पहला संस्करण– 2014, दूसरा संस्करण– 2017
2 हिंदी दलित साहित्य– मोहनदास नैमिशराय, प्रकाशक– साहित्य अकादमी, पहला संस्करण–2011 पुनर्मुद्रण– 2014, प्रथम संस्करण (पेपर बेक) 2018
3 दलित साहित्य का समाजशास्त्र– हरिनारायण ठाकुर, प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, चतुर्थ संस्करण–2018
4 दलित साहित्य की विकास–यात्रा– ओमप्रकाश बाल्मीकि के साक्षात्कार, डॉ. रामचन्द्र, प्रकाशक– साहित्य संस्थान, संस्करण–2013
5 दलित साहित्य एक मूल्यांकन– प्रो. चमन लाल, प्रकाशक– राजपाल एण्ड संस़, कश्मीरी गेट नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2018
6 दलित साहित्य एक अन्तर्यात्रा– बजरंग बिहारी तिवारी, प्रकाशक– नवारुण, सी 303, जनसत्ता अपार्टमेंट सेक्टर–9, वसुंधरा, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण– 2015
7 अपेक्षा– संपादक डॉ. तेज सिंह प्रवेशांक, अक्टूबर–दिसम्बर (2002)
8 मेरा दलित चिंतन– डॉ. एन. सिंह, प्रकाशक– कंचन प्रकाशन, दिल्ली–110032, प्र.स. 1998
9 भारतीय दलित पत्रकारिता– अश्वनी कुमार, प्रकाशक– स्वराज प्रकाशन, प्र.स. 2019

****

हिन्दी दलित आत्मकथाओं का समीक्षात्मक अध्ययन

आचँल यादव,
पी.एच.डी शोधार्थिनी
हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

दलित साहित्य का आविर्भाव बुनियादी तौर पर बौद्ध और संत साहित्य से माना जाता है।आधुनिक हिन्दी दलित साहित्य का विधिवत विकास अस्सी के दशक से आरंभ हुआ। दलित साहित्य की वैचारिकी में संत रैदास,कबीर, महात्मा ज्योतिबा फुले, स्वामी अच्युतानंद तथा डॉक्टर भीमराव अंबेडकर के जीवन दर्शन को देखा जा सकता हैं।सभी विश्वविद्यालयों,साहित्य सम्मेलनों,पुस्तकीय समीक्षा, कविता, कहानी, आत्मकथा तथा आलोचना आदि के क्षेत्र में दलित साहित्य ने नये आयाम स्थापित किये हैं।

दलित साहित्य के अवशेष साहित्य में प्राचीन हैं। दलित साहित्य को मुखर अभिव्यक्ति आत्मकथाओं से मिली।डॉक्टर अंबेडकर ने अपनी आत्मकथा 'मी कसा झाला'(मैं कैसे बना) शीर्षक से लिखी। डॉ अंबेडकर के शब्दों में "मेरा विकास किसी अद्भुत शक्ति के कारण नहीं हुआ बल्कि मेरे जीवन निर्माण में परिश्रम और संघर्ष मुख्य बिंदु रहे हैं"।१

आज दलित साहित्य में सभी विधाओं पर गंभीर लेखन हो रहा हैं । हिंदी में दलित आत्मकथाओं की शुरुआत नौवें दशक में 'पत्रकार राजकिशोर' द्वारा संपादित पत्रिका 'हरिजन से दलित' में प्रकाशित दलित लेखक 'ओमप्रकाश वाल्मीकि' के 'आत्मकथ्यांश' से मानी जा सकती हैं।२लेकिन पहली आत्मकथा मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' मानी जाती हैं।

वही जयप्रकाश कदम के विचार में "आत्मकथा लिखना निसंदेह हिम्मत और जोखिम का काम है; बल्कि यूं कहें कि तलवार की धार पर नंगे पैर चलना है।यदि लेखक सच्चाई पर टिका रहेगा तो लहूलुहान होना लगभग निश्चित है; क्योंकि आत्मकथा नंगी सच्चाई की मांग करती हैं। और इतना साहस बहुत कम लोगों में होता है जो सामाजिक यथार्थ के साथ-साथ अपने जीवन के नंगे यथार्थ का सार्वजनिक प्रदर्शन कर सकें"।३

दलित आत्मकथाओं में मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन तक',भगवानदास की 'मैं भंगी हूँ',शयोराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर',रूपनारायण सोनकर की 'नागफनी',डॉ तुलसीराम की मुर्दहिया (भाग-1) एवं मणिकर्णिका (भाग-2),सूरजपाल चौहान की तिरस्कृत(भाग-1),संतृप्त(भाग-2) आदि प्रकाशित हो चुकी हैं।

वही स्त्री लेखिकाओं में कौशल्या बैसत्री-दोहरा अभिशाप, सुशीला टाकभौरे-शिकंजे का दर्द,रजनी तिलक-अपनी जमीं अपना आसमां,अनिता भारती -छूटे पन्नों की उड़ान, कावेरी- टुकड़ा टुकड़ा जीवन आदि आत्मकथाएं आ चुकी हैं। वही पंजाबी आत्मकथाओं में बलबीर माधोपुरी की 'छांग्या रूख' तथा मराठी आत्मकथाओं में दया पवार की 'अछूत', शरण कुमार लिंबाले की 'अक्करमाशी', बेबी ताई काम्बले की 'जीवन हमारा' आदि ने आत्मकथा साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया हैं।

हिंदी दलित आत्मकथाओं के प्रश्न भारतीय समाज और साहित्य से छुपे नहीं हैं।समय- समय पर कविता, कहानी तथा आत्मकथाओं आदि के माध्यम से उजागर होते रहे हैं।भारतीय समाज जातीय उत्पीड़न को धर्म, परंपरा, रीति रिवाजों या वेद पुराणों आदि का हवाला देकर सही ठहराता रहा हैं। इसी जाति रूपी नागफनी के चलते एक दलित बच्चा शिक्षा के अधिकार से वंचित रह जाता हैं।तो दूसरी ओर शिक्षा संस्थानो में दलित छात्रों को जानवरों की भाँति मार खानी पड़ती हैं। तो कहीं शिक्षकों व सवर्ण छात्रों द्वारा भेदभाव का शिकार होना पड़ता हैं।

'जूठन','ओमप्रकाश वाल्मीकि' की आत्मकथा हैं।इसमें लेखक ने भारतीय समाज, संस्कृति, धर्म और इतिहास में पवित्र तथा उचित समझे जाने वाले प्रतीकों जैसे शिक्षण संस्थान,शिक्षक एवं प्रेम पर सामाजिक प्रतिक्रियाओं को दिखाया हैं।दलित व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व निर्माण और सामाजिक विकास की प्रक्रिया में इन तीनों प्रतीकों की नकारात्मक भूमिकाओं का सामना करना पड़ता हैं।'जूठन' के नायक मुंशीजी शिक्षण संस्थानों में मार खाते हुए इसलिए पढ़ाई जारी रखते हैं कि पढ़ लिखकर जाति सुधारनी हैं। लेकिन सिर्फ पढ़ने लिखने मात्र से जाति सुधर सकती हैं?

पढ़ लिखकर और नौकरी प्राप्त कर जीवन में पद और धन मिल सकता हैं।वहीं समाज में मान-सम्मान और प्रतिष्ठा भी आवश्यक हैं।

"दलित चेतना का सवाल सही है कि इस जन्मना जाति व्यवस्था में जब तक दलितों के साथ दलितों की पहचान जुड़ी हैं।उन्हें

सामाजिक श्रेष्ठता में शामिल नहीं किया जा सकता। समाज चाहे उन्हें और जिस रूप में पहचान दे, विवाह और स्त्री-पुरुष के संबंधों में उनके साथ समानता का व्यवहार करना मुश्किल हैं। 'जूठन' में कुलकर्णी जैसे लोग कितने प्रगतिशील क्यों न हो जाए, जब भी प्रेम अथवा विवाह का प्रसंग आएगा, जाति नामक यह ताकतवर दीवार इनके बीच आकर खड़ी हो जाएगी।"४

सुशीला टाकभौरे हिंदी दलित साहित्य की महत्वपूर्ण हस्ताक्षर रही हैं।इनकी आत्मकथा 'शिकंजी का दर्द' सन् २०११ में प्रकाशित हुई।इसमें लेखिका ने बचपन से युवावस्था के तमाम शिकंजों की बुनावट को पेश किया हैं।

प्रस्तुत हैं आत्मकथा का एक गद्यांश जिसमें चतुर्थ वर्ण दलित को धर्म,परम्परा, वेदों का हवाला देकर बहुमुखी शोषण को अंजाम दिया जाता हैं। लेखिका की नानी मैला ढोने का नारकीय काम करती थी। नानी के माध्यम से उन्होंने वस्तुस्थिति का वर्णन किया हैं-

"ऐसे ही बरसात का मौसम और सफाई का काम याद करते ही मन किचबिचा जाता।गीला,सड़ा,गिजगिजा,बदबूदार कचरा,गोबर,मैला देखकर ही मितली आ जाती। बजबजाती गंदगी पर मुट्ठी भर राख डालकर वह अपनी किस्मत को कोसती थी।ऐसे समय उसे गाँव बस्ती के लोग शैतान नजर आते। नानी गुस्से में भगवान को कोसते हुए कहती थी-

यह सब तेरी ही करतूत हैं भगवान। मुंह पेट बनायो तो बनायो, जात-पात क्यों बनाई? हम ही क्यों करें नरक सफाई का काम? जिसने रीत बनाई हैं, कभी वे भी करके देखें,तब पता चलेगो।"५

दलित आत्मकथाओं को दलित जीवन का दस्तावेज कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी।दलित आत्मकथाओं में आर्थिक अभाव,भुखमरी और खान-पान की समस्याएं उभर कर आई हैं ।दो वक्त की रोटी के लिए जूठन बटोरने से लेकर, खेत में काम करने,आटा पीसने से लेकर मैला ढोने, मरे जानवर को ढोना और शहर में बेचना इनकी विवशता हैं। इतना सब काम करने के बावजूद भी दो वक्त की रोटी मुहैया नहीं हो पाती थी। जूठन चटखारे लेकर खाई जाती थी। जूठन में मिली सूखी पूड़ियो को कई दिनों तक सुखाकर खाया जाता। तो कभी सुखी रोटी पानी के साथ नहीं करनी पड़ती है।

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा से लिया गया दूसरा गद्यांश जिसमें लेखिका ने अपनी नानी के माध्यम से दलित समाज के जातिगत दंश और आर्थिक अभाव से उत्पन्न कष्टपूर्ण जीवन का वर्णन किया हैं।

"नानी को गांव का काम पैतृक दाय के रूप में मिला था।दिन भर कड़ी मेहनत करने के बाद रुखा, सुखा, झूठा पाना ही उसका प्राप्य था।नानी अपने काम से, अपनी स्थिति से और मजबूरी से दुखी थी। मगर न तो उसके पास जीवनयापन का कोई दूसरा विकल्प था और न ही कोई नई राह,नई दिशा की जानकारी देने वाला ही मिला जो उसे इस नरक सफाई के काम को छोड़ने की बात कहता। जाति समुदाय के सभी लोगों का यही हाल था।धीरे-धीरे मौसम बदलते, मगर उनका काम नहीं बदलता"।६

दलित आत्मकथाओं में आर्थिक अभाव के कारण वस्त्र न खरीद पाने की समस्या दिखाई गई हैं।गरीबी तथा दो वक्त की रोटी के लिए कड़ा परिश्रम करना पड़े तो वस्त्र खरीदना की बहुत बड़ी बात हैं।दोहरा अभिशाप में कौशल्या बैसंत्री अपने परिवार की आर्थिक स्थितियों के विषय में लिखती हैं -

"बाबा (पिता) को मिल में मशीन साफ करने के लिए कपड़ों की पट्टियां मिलती थी। बाबा उनसे अच्छी लंबी पट्टियां अलग कर अपनी धोती के नीचे लंगोट की तरफ बांधकर लाते थे। कभी किसी को शक नहीं हुआ। उनमें से कुछ सफेद पट्टियों को अलग करके हम पेटीकोट और चड्डी हाथ से सीते थे। कभी पापा भी बैठकर सी देते थे। बड़ी बहन जनाबाई कपड़े काट देती थी। बहुत दिनों तक हम उन पट्टियों को जोड़कर बनाए गए पेटीकोट-ब्लाउज पहनते रहे। कभी बाबा सुंदर प्रिंट की पटिया लाते थे। उसी से हमने गुजारा किया था।७

सभी आत्मकथाओं की मुख्य समस्या -जातिवाद तथा अस्पृश्यता हैं।जाति के पौधे पर अस्पृश्यता के फूल उगाये जाते हैं।इस दोयम दर्जे से दलित समाज आज भी पीड़ित हैं।इन आत्मकथाओं में जातीय शोषण के अनेकों प्रसंग दर्ज हैं।

मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे' में नैमिशराय अपने बड़े भाई के साथ बचपन में बहन के यहां जाते हैं।गर्मी के मौसम में रास्ते में प्यास लगती हैं। भाई ने पड़ोस के गाँव एक घर से पानी माँगा।जाति का पता चलने पर जानवरों की भाँति भगा दिया।फिर मजबूरन गंदे जोहड़ का पानी पीना पड़ा।

वही दलित लेखक सूरजपाल चौहान की आत्मकथा के दो भाग तिरस्कृत और संतृप्त सन् 2006 में प्रकाशित हुए। इस आत्मकथा में लेखक ने जातीयता तथा अस्पृश्यता से लेकर जीवन के तमाम अनुभवों का बेबाकी के साथ करुणार्द्र वर्णन किया हैं।इनकी आत्मकथा से प्रस्तुत हैं एक गद्यांश जिसमें उन्होंने जातियता और अस्पृश्यता के अनुभवों को बताया हैं-

"'तिरस्कृत' में ठाकुर प्रताप जैसे व्यक्तित्व अपने बच्चे को बचपन से ही जातीयता और अस्पृश्यता सिखाते हैं। एक बार हमउम्र बच्चों में लेखक कंचे खेलता हैं।जिसमें लोधे का बनवरिया, काछी का श्यामू और ठाकुर का वीरू भी शामिल हैं।ठाकुर प्रताप बड़ा परेशान था कि उसका वीरू भरी दोपहर में कहां चला गया? सब के सब बच्चे खेलने में मग्न थे। अचानक ठाकुर प्रताप ने अपने बेटे को नीम के पेड़ के पास देखा। एक सेंटी तोड़कर चार पांच सेंटी अपने बेटे को जमा दी। वीरू को पीटते हुए देख बनवारी और श्यामू भाग खड़े हुए। उन दोनों को देख जैसे मैं भागने लगा, तुरंत ठाकुर ने मुझे आगे से आकर धर दबोचा। सटाक- सटाक संटियों की बरसात कर दी इसने मेरे ऊपर।

मेरा कान ऐंठते हुए ठाकुर ने कहा,

"साले भंगिया के, मेरे छोरे के संग खोलतू हैं....ठौर मार दूंगों"

ठाकुर ने अपने बेटे वीरू को घसीटते हुए कुएँ की ओर ले गया। मैं दीवार के सहारे टिका डबडबाई आंखों से सब देख रहा था। ठाकुर ने कुएँ से एक बाल्टी पानी खींचा और नीम की टहनी पानी में डुबोकर वीरू को छींटे देने लगा। वीरू रोते-रोते कह रहा था

"मो पै पानी क्यों डारि रहे हो?"८

दलित स्त्री आत्मकथनों में अभिव्यक्त हुए दलित जीवन के अनुभवों के संदर्भ, परिवेश, समस्याएं और संघर्ष का स्वरूप अनेक रूपों में प्रकट हुआ हैं।दलित स्त्री के जीवन में शिक्षा के लिए संघर्ष, जातिगत पहचान के कारण हर स्तर पर कठिनाई,आर्थिक सबलीकरण,भुख से लड़ाई, स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाला अपमान, शोषण की तिहरी मार की घटनाओं का चित्रण लेखिकाओं ने किया हैं।

लगभग सभी आत्मकथाओं में पितृसत्तात्मक सत्ता के दर्शन होते हैं।दलित समाज में भी पितृसत्ता का कड़ा स्वरूप देखने को मिलता हैं।दलित पुरुष द्वारा स्त्री का शोषण, उसके अस्तित्व को नकारना, अस्मिता को दबाना जारी रहता हैं। इन प्रवृत्तियों के विरोध में यदि स्त्री संघर्ष करे तो उसे उखाड़ फेंकने का प्रयास बराबर किया जाता रहा हैं।

दलित साहित्यकार और कवियत्री अनीता भारती की आत्मकथा सन् 2018 में 'छूटे पन्नों की उड़ान' प्रकाशित हुई। लेखिका ने अपने जीवन के तमाम अनुभव को पेश करते हुए दलित स्त्री के जीवन के संघर्ष को प्रस्तुत किया है।समाज की मनुष्यता को भी उजागर किया हैं। लेखिका ने अपने मित्र के माध्यम से पितृसत्ता की बखिया को उखाड़ा हैं।लेखिका दलित छात्र संगठन मुक्ति में शामिल हुई।मुक्ति संगठन में दलित छात्र-छात्राएँ मिलकर सभी छात्रों की समस्याओं के लिए आवाज़ उठाते थे।लेखिका का मित्र 'महेन्द्र' पुरूषों की ओर से प्रतिनिधित्व करता था। एक दिन वह अन्य छात्रों के संग विश्वविद्यालय प्रांगण में पढ़ रही थी।तभी महेंद्र आये और लेखिका से अकेले में बात करने का प्रस्ताव रखा। लेखिका के मित्र 'महेंद्र' ने कहा कि-

"मैं इन लड़को को जानता हूँ।घृणा से मुझे देखते हुए बोला-रंडी! रंडीकहते हैं तुम्हारी जैसी लडकियों को लोग। वह यह शब्द बोलकर तेजी से चला गया। मुझे लगा जैसे मेरे गाल पर किसी ने झन्नाटेदार थप्पड़ मार दिया हो! मैं स्तब्ध खड़ी रह गयी।मेरे कान में उसके शब्द गूंज रहे थे। मैं सोच रही थी कि विश्वविद्यालय में पढ़ने वाली लड़कियां यदि अन्य सहपाठी लड़कों के साथ मिल बैठकर बातें कर लें,चर्चा कर लें, तो उन्हें यो कुत्सित उपाधि से विभूषित करने वाली यह कौन सी मानसिकता हैं? मुझे उसकी संकीर्णता का कुछ कुछ तो आभास था।पर इतनी भयंकर संकीर्णता।आखिर मेरा उससे संबंध ही क्या था।केवल बातें करना, एक दूसरे से हंसी-मज़ाक कर लेना, मोर्चों पर एक साथ नारे लगाना या कभी-कभी एक दूसरे का हाल-चाल पूछ लेना और इससे अधिक क्या? क्या इन छोटी-छोटी बातों में स्त्री को उसकी हैसियत दिखा दी जाती हैं।यह महेंद्र नहीं उसके रूप में आदिपुरुष ही बोल रहा था। अपने संगठन के साथियों से चर्चा करो-विमर्श करो तो कोई हर्ज नहीं, क्योंकि उसमें हम भी शामिल हैं, दूसरे संगठन के लोगों से चर्चा विमर्श करो तो चरित्रहीन, क्योंकि वहां हमारी मर्जी नहीं हैं। यह है छात्र संगठनों में छायी पुरुष मानसिकता। स्त्री अधिकारों की बात करने वाले ये विभिन्न छात्र संगठन के कार्यकर्ता व उनके ठेकेदार अपनी सहयोगी लड़कियों को अपनी पूंजी की तरह समझते हैं। पितृसत्ता और ब्राह्मणवाद की जड़े इनके अंदर इतनी पैठ बना चुकी हैं कि वह नीले, पीले, लाल, हरे रंग में रंगी हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता"।९

प्रस्तुत है सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' से लिया गया एक उदाहरण जिसमें पितृसत्ता का स्वरूप देखा जा सकता हैं।इसमें न केवल दलित समाज का सच बल्कि भारतीय पुरुष की मनोदशा का भी पता चलता हैं-

"जब कभी खाना परोसने में देरी होने पर या किसी बात से नाराज होने पर वे खाना नहीं खाते थे,तब उन्हें घंटों मनाना पड़ता था।कभी-कभी वे स्पष्ट शब्दों में कहते थे- मेरे पैरों पर अपना सर रखकर माफी मांग, तब तेरी बात मानूँगा।"१०

महाविद्यालय में प्राध्यापिका का दायित्व क्षमता से निभाने वाली

सक्षम सुशीला समाज में जिन्दा हैं जो हमारे देश में पतियों के इन बोल वचनों को सुनने की आदि हो चुकी हैं।

रजनी तिलक की आत्मकथा 'अपनी जमीं अपना आसमां' में विस्थापन की समस्या दिखाई गई हैं।लेखिका के दादा 'दुर्जन सिंह' दलित होने के कारण अनूप शहर के ठाकुर परिवार की चालाकियों से गाँव को छोड़ पूरे परिवार सहित दिल्ली का रूख कर लेते हैं।पीछे भरा-पूरा खेत-खलिहान,मवेशी आदि छोड़कर पूरे परिवार का पलायन करना और किसान से मजदूर बन जाना त्रासदीपूर्ण हैं।

दलित लेखकों और लेखिकाओं की आत्मकथाओं में स्व की अपेक्षा समाज का चित्रण अधिक मिलता हैं।दलित आत्मकथाओं में लैंगिक शोषण की घटनाओं को दिखाया गया हैं।मोहनदास नैमिशराय की आत्मकथा 'अपने-अपने पिंजरे' के एक गद्यांश से बात स्पष्ट होती हैं-

"उनके घर में पुरूष दारू पीते,सम्टा खेलते।औरतें काम पर जातीं।सारा समाज अशिक्षा में डूबा था।सुबह -सुबह औरतें गोबर पाथने, घास लेने,जंगल से लकड़िया लाकर बेचने जातीं।जहां पर भी जातीं। वहां उन जमीदार, काश्तकारों की हवस का शिकार बनतीं या उनका बिस्तर बनतीं।औरतें जंगल जाती हैं। एक टोकरी गोबर पर बिक जाती हैं। उनके पांव दबाती हैं। उनका बिस्तर बनती हैं।"११

समस्त आत्मकथाओं में रीति रिवाजों, प्रथाओं और आडंबरओं का भी वर्णन हुआ हैं।शराब पीना, मरे हुए मवेशियों की खाल उतारना और उनका मांस खाना और देवी देवताओं के नाम पर सूअर आदि की बलि देना ऐसी ही बुराइयां थी। वहीं कुछ अपमानजनक रीति रिवाज जैसे सलाम की प्रथा थी।

संक्षेप में दलित आत्मकथाओं के प्रश्न सामान्यतः किसी एक व्यक्ति के ना होकर पूरे समाज के हैं। इसी कारण सभी आत्मकथाओं में अनुभव किसी एक व्यक्ति विशेष के न होकर पूरे समाज के दर्द के दस्तावेज माने जा सकते हैं। हिंदी दलित आत्मकथा में मुख्यतः जातीयता, अस्पृश्यता,शैक्षिक समस्याओं,आर्थिक तंगी,लैंगिक शोषण, पितृसत्तात्मक ढांचे के प्रति विरोध और संघर्षरत महिलाओं के जीवन को दिखाने का प्रयास किया गया हैं। सभी आत्मकथाओं में अपने अपने तरीके से दलित समाज के सच्चाई को सभी के समक्ष प्रस्तुत किया हैं।आत्मकथा लिखना नंगे पैर धारदार तलवार पर चलने के समान हैं।अपने जीवन को सार्वजनिक करना आसान नहीं है।

वही इन समस्त आत्मकथाओं में रीति रिवाजों,धार्मिक आडम्बरों,प्रथाओं को उदाहरण सहित दिखाया गया हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१ नैमिशराय, मोहनदास,२०१८,हिंदी दलित साहित्य, साहित्य अकादमी, दिल्ली, पृष्ठ -१७२

२ अरुणा, डी, २०१८,हाशिए पर, नई दिल्ली, मई अगस्त अकं,पृष्ठ ६९

३ ठाकुर, डॉक्टर हरिनारायण, २०१८,दलित साहित्य का समाजशास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली,पृष्ठ ४४९

४ टाकभौरे, डॉक्टर सुशीला, २०११,शिकंजे का दर्द,वाणी प्रकाशन, दिल्ली,पृष्ठ- २६

५ टाकभौरे, डॉक्टर सुशीला, २०११,शिकंजे का दर्द,वाणी प्रकाशन,दिल्ली,पृष्ठ-२४

६ यादव,डॉ वीरेंद्रसिंह,२०१२,समय से मुठभेड़ करती दलित आत्मकथाएं,पेसिफिक पब्लिकेशन,दिल्ली, पृष्ठ-१२९

७ भारती, अनीता,२०१८,छुट्टी पन्नों की उड़ान,स्वराज प्रकाशन,दिल्ली,पृष्ठ ६४

८ टाकभौरे, डॉक्टर सुशीला,२०११, शिकंजे का दर्द,वाणी प्रकाशन,दिल्ली,पृष्ठ-१४४

९ नैमिशराय,मोहनदास,१९९५,अपने-अपने पिंजरे,वाणी प्रकाशन,दिल्ली, पृष्ठ ८३

स्त्री विमर्श

वृद्ध स्त्री जीवन या तिरस्कृत व्यथा : फिर लौटते हुए

-प्रीतिका एन
शोधार्थी, हिंदी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय- 682022
केरल
मो नं.- 9746182124
ईमेल- preethikanv1998@gmail.com

भूमिका

स्त्री अक्सर साहित्य के लिए एक संवेदनात्मक विषय रहा है। समकालीन विमर्शों में स्त्री विमर्श का स्थान सर्वोच्च है। साहित्य में स्त्री के हरेक रूप की चर्चा होती है। बाल्य से लेकर यौवन तक स्त्री साहित्य की मार्मिक अभिव्यक्ति का स्वरूप है। लेकिन स्त्री केवल बालिका या युवती मात्र नहीं, वह समय के साथ वार्धक्य की परिधि की भी साक्षी बनती है। लेकिन साहित्य में अक्सर स्त्री जीवन का चित्रण यौवन तक ही सीमित है। लेकिन आज के बदलते सामाजिक परिवेश में स्त्री जीवन का हर मोड़ व पहलू महत्वपूर्ण है। विशेषकर वृद्धावस्था। जीवन की ऐसी अंतिम परिधि, जहाँ सब कुछ (अतीत, वर्तमान और भविष्य) धुँधला प्रतीत होता है। इसी परिधि में स्त्री दोहरे शोषण का भी शिकार बनती है। एक वृद्धावस्था के विभीषणताओं की तो दूसरी तरफ स्त्री जीवन की अपनी मजबूरियाँ। इसी दोहरे अभिशाप की व्यथा- कथा है, राकेश वत्स कृत फिर लौटते हुए।

बीज शब्द

स्त्री, वृद्ध, तिरस्कार, फिर लौटते हुए, वृद्धावस्था, उपन्यास, राकेश वत्स, वृद्ध नारीवाद, स्त्री मुक्ति, शोषण बना ज़िम्मेदारी

मुख्य अंश

स्त्री जीवन एवं उनके समस्याओं पर अक्सर चर्चा परिचर्चाएँ होती रहती है। इतना की स्त्री जीवन, स्त्री मुक्ति आदि साहित्य का इष्ट एवं सर्वोपरि चर्चित विषय बन गया है। "आज के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विमर्शों में स्त्री विमर्श का विशिष्ट स्थान है। हाशिये पर डाले गये स्त्री एवं पददलित जनसमूह का मुख्य धारा के केन्द्र में आने का संघर्ष ही इस का निदान है। स्त्री विमर्श को पश्चिमी देशों से आयातित माननेवाली विचारधारा से हम सहमत नहीं हो सकते। भारतीय नारीवाद भारत की प्रबुद्ध नारियों और विचारकों के चिन्तन की उपज है जिसका प्रमुख ध्येय सामन्ती व्यवस्था द्वारा स्थापित गुलामी से स्त्री को मुक्त करना है। इसमें एक ओर पुरुषवर्चस्व एवं मनुवाद का विरोध है, दूसरी ओर भारतीय जीवन मूल्यों की नवीन सन्दर्भों में पुनर्व्याख्या एवं पुनःस्थापन का प्रयास भी है। स्त्री के अधिकारों के लिए एवं स्त्री-सशक्तीकरण के लिए जो आन्दोलन चल रहे हैं उनसे भारतीय नारीवाद प्रेरणा ग्रहण करता है।"[1]

लेकिन इन सभी प्रयासों के बावजूद भी समाज में स्त्री की दुर्दशा निरंतर बढ़ती जा रही है। खासकर भारतीय समाज में स्त्रियों की जो दुर्दशा हो रही है, वह अन्य किसी भी देश की स्त्रियों की न हुई है और न होगी। देश की आधी से ज्यादा आबादी आज भी निरंतर प्रताडनाएँ एवं शोषण का शिकार बन रही है। परंतु ये सब बातें काफी बार चर्चा का विषय बन चूका है। जो आज तक हो के भी चर्चा का विषय नहीं बन पाया है, वह है ' वृद्ध स्त्री जीवन'। स्त्री का वह रूप या अवस्था जिस पर बातें एवं चर्चाएँ बेहद कम ही होती है। साहित्य में कई सालों से स्त्री के जीवन पर अनगिनत रचनाएँ पेश की जा चुकी है, लेकिन वृद्ध स्त्री जीवन कम विचारणीय या कम महत्वपूर्ण विषय सा प्रतीत होता है। अक्सर साहित्य में स्त्री के यौवन एवं यौवनकालीन शोषण पर अधिक बात की जाती है। लेकिन आज के तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए वृद्ध स्त्री जीवन अत्यंत प्रमुख विषय बनकर हमारे सामने उपस्थित होता है।

वृद्धावस्था किसी परिभाषा का मोहताज नहीं है। जीवन की एक ऐसी अवस्था जिससे सभी परिचित है, लेकिन अक्सर इस परिचय को नकारा एवं अनदेखा किया जाता है। क्योंकि कहने के लिए यह जीवन का स्वर्णिम काल है, लेकिन साथ ही साथ जीवन का सबसे भयावह दौर भी है। जिसका सामना करना या जिससे गुजरना हर किसी के लिए अप्रिय कार्य है। आज के युग में वृद्धावस्था अनुपयोगिता का प्रतीक है। जीवन का अंतिम पड़ाव, जो बेकारी एवं तनाव ग्रस्त है।" जीवन के इस चौथेपन तक पहुँचते- पहुंचते आदमी के हाथ पाँव थकने लगते हैं, अंग शिथिल होने लगते हैं और सारा शरीर ही धीरे-धीरे जवाब सा देने लगता है। और असमर्थता की इस प्रतीति के साथ ही मन पर एक अनजाना -सा भय हावी होने लगता है- आने वाले समय में आशक्ति घोर संघर्ष, तनाव, संताप और समाज से विशेषकर उन अपनों से ही मिलने वाले अपमान और यातनाओं का भय, जिसके लिए मनुष्य अपने

जीवन के महत्वपूर्ण घडियों को बलिदान कर- करके उनके सुख का भार ढोता रहा हो। इस अवस्था का आरंभ होते ही मानो सारा संसार अपना रंग बदलने लगता हो"[2]

इस प्रकार आज वृद्धावस्था एक भयंकर समस्या बन चुका है। स्त्री तो पहले ही समस्या ग्रस्त थी। ऐसे में वृद्ध स्त्री जीवन एक चिंतनीय विषय बन जाता है। इसलिए आज के विस्तृत साहित्यिक फलक पर स्त्री के वृद्धावस्था एवं इस अवस्था में उनके द्वारा भोगे जाने वाले मानसिक, पारिवारिक आदि तनाव एवं कुंडाओं के संबंध में विचार करना अतिआवश्यक हो जाता है। क्योंकि स्त्री जीवन और वृद्ध स्त्री जीवन कहीं न कहीं एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। वृद्ध स्त्री, स्त्री का ही एक स्वरूप है। जिस प्रकार स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं है, उसी प्रकार स्त्री उम्र के किसी भी पड़ाव में आबाद नहीं है। उसकी संपूर्ण जीवन प्रताड़नाओं को सहने के लिए प्रतिबद्ध है। चाहे वह किशोरी हो या वृद्धा, जीवन उसका संघर्षपूर्ण ही रहता है। इसलिए स्त्री विमर्श के तहत स्त्री के वृद्धावस्था और वृद्ध विमर्श के अंतर्गत स्त्री मुक्ति के संबंध में बात करना बेहद आवश्यक है। राकेश वत्स का उपन्यास 'फिर लौटते हुए' कहीं न कहीं ' वृद्ध नारीवाद' की ओर इशारा करता है। वैसे उपन्यास साहित्य हमेशा से जीवन की संवेदनाओं को यथार्थ के सम्मुख सांझा करने में समर्थ है। " साहित्य का क्षेत्र संवेदना और विचार का क्षेत्र है। उपन्यास ऐसा एक माध्यम है जहाँ मानव जीवन की संवेदनाओं को उससे जुड़ी तमाम बारीकियों को समाज और परिवेश के अंतः संबंधों को बेहतर तरीके से संवाद का विषय बनाया जा सकता है।"[3]

प्रस्तुत उपन्यास इस परिभाषा का लिखित दस्तावेज़ है, जिसमें लक्ष्मी देवी एवं उनके मन के जीवन के संदर्भों के माध्यम से वृद्ध स्त्री जीवन की तिरस्कृत व्यथा का चित्रण किया है।" लक्ष्मी ने फिर विलाप करना शुरू कर दिया,"हाए वे मेरया जीवन साथिया, मैंनू एत्थे क्यों छड़ड़ गया?... वे मैंनू वी नाल क्यों नी लैग्या?... हाए वे मैं हुन की करां?... कित्थे ढूंडां तैनू मैं औरत जात।"[4] उपन्यास का मुख्य पात्र लक्ष्मी देवी के पति दिवाकर शर्मा है। दिवाकर शर्मा को 'लक्ष्मी देवी के पति' नामक पहचान की आवश्यकता नहीं है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि, उपन्यास का ताना-बाना इस प्रकार बुना गया है कि, लक्ष्मी देवी पग- पग पर 'दिवाकर शर्मा की पत्नी' संबोधन की मोहताज़ सी प्रतीत होती है।क्यों? क्योंकि वह एक स्त्री है, एक वृद्ध स्त्री। जो अपने पति एवं बच्चों की आश्रिता है। जिसका संपूर्ण जीवन यह पहेली का अर्थ सुलझाने में लग गया कि वह अपने पति का साथ दे या संतानों का। अपनी विवशताओं के आगे हार मानकर, संतानों से किसी प्रकार का परहेज न होकर भी पति और बच्चों में से उन्हें अक्सर पति का साथ निभाना पड़ता है।" पत्नी, जिसने पति के साथ सारी जिंदगी गुजारी है, जिसने पति को उसकी माँ से भी ज्यादा बेपर्दा और नंगे रूप में देखने के अंधेरे झेले हैं, वह पत्नी अपने पति को बुढ़ापे की इस असहाय अवस्था में अकेला छोड़कर हमारे दिए सुख को अकेली कैसे भोग सकती है भला?"[5] लक्ष्मी देवी भी ऐसी एक माँ एवं पत्नी है, जिसका अपने बच्चों के साथ कभी कोई अनबन नहीं रहा है। वह अत्यंत स्नेहमय एवं जिम्मेदार माँ रही है, जिसने हर क्षण अपने परिवार का केवल सुख ही चाहा है। लेकिन इसके विपरीत उनके पति, गैर जिम्मेदार रहे हैं, न उन्होंने ठीक से पति की जिम्मेदारियाँ निभाई और न ही पिता की। इसलिए ही उनके बेटे और उनके बीच संघर्ष अक्सर दिखाई देता है। लक्ष्मी देवी का बेटा चंद्रमोहन माँ को अपने साथ रखना चाहता है, लेकिन पिता को नहीं। वह पिता द्वारा माँ पर किए गए अत्याचारों एवं पिता के गैर जिम्मेदाराना व्यवहार के कारण उनसे घृणा करता है।" फर्ज बाप का पहले होता है बसंत, और बेटे का बाद में। इनको पूछिए कि इन्होंने कौन -सा फर्ज निभाया था जो हम उनके प्रति निभाएँ?"[6]

यहाँ स्त्री का ज्वलंत त्यागमय चरित्र दिखता है। लक्ष्मी देवी अपने पति से घृणा नहीं करती बल्कि आज भी अपना पत्नी धर्म निभाने के लिए तत्पर है। जिसका कारण कहीं न कहीं उनकी परंपरावादी एवं आदर्शवादी सोच है, जो ऐसा मानती है कि, बेटी द्वारा अंधी माँ की मदद करना माँ का धर्म भ्रष्ट करना या पाप है।"सोने से पहले रेणु ने लक्ष्मी के सामने एक आशंका रखी, "दादी माँ, आप जब देख रही थीं कि आपकी माँ अलोन ही नहीं ब्लाइण्ड भी हैं तो आपने उन्हें शैल्टर आई मीन सहारा क्यों नहीं दिया?"

लक्ष्मी ने अपनी पुतलियाँ एक बार छत की तरफ उठाई, फिर जवाब दिया, "हमारे जमाने में बेटी, कुड़ी के माँ-बाप, कुड़ी के घर का पानी तिक नहीं पीते थे, जे मैं उनको अपने घर रखती ताँ लोग की कहते?"...

"आप अपनी तरफ से भी डाटर होने के नाते कुछ मिला देती होंगी।" -ना-ना बेटी, अपनी माँ का धरम भ्रष्ट करने का कोई कम्म मैं नी करती थी। जान परमात्मा को देनी है, एहोजेहा पाप मैं क्यों करूँ?" लक्ष्मी ने अपने दोनों हाथ कानों को लगाए और आँखें बन्द कर लीं।

रेणु समझ गई कि दादी माँ के साथ तर्क से बात नहीं की जा सकती। सिर्फ जानकारी ली जा सकती है कि लोग अपने ही बनाए वैचारिक दोजख में कैसे जिन्दगी जीते हैं और इस जिन्दगी की तकलीफों को सहन

करने की ताकत उन्हें कहाँ से मिलती है।"[7]

लेकिन इसमें गलती केवल लक्ष्मी देवी की नहीं है, उनको माहौल ही ऐसा मिला है कि वह ऐसा सोचने के लिए मजबूर है। क्योंकि हर एक नियम रूपी बेड़ियाँ केवल स्त्री के हक़ की है। वह बंधिनी है, यह बंधन वृद्धावस्था में जी का जंझाल बन जाता है। वे न इधर की रहती है न उधर की। क्या करें? कैसे करें? कुछ भी करने योग्य वे नहीं रहते। एक ओर स्त्री का अभिशप्त जीवन तो दूसरी ओर वृद्धावस्था की निसहायता। 'वे करें तो क्या करें?' यही लक्ष्मी देवी के चरित्र की दशा है।" अब तो इस बुढ़ापे में बस एक ही स्वभाव बन गया है, मुसीबत बहुत बड़ी आई घूँसा मार रही है, तो उसके पैरों में झुक गए, टल गई तो जुड़े हाथ आसमान की तरफ उठ गए है, परमेश्वर तेरी मर्जी।"[8] अपने निसहायताओं के बावजूद भी लक्ष्मी देवी अपने हर एक कार्य को धर्म समझ कर करती है। उनको तो इसका भी एहसास नहीं कि, यौवन काल से उनके साथ जो भी होता आ रहा है, वह जिम्मेदारी या स्नेह नहीं उत्पीड़न एवं शोषण है। जिसे वह जिम्मेदारी समझ वृद्धावस्था में भी निभा रही है।

निष्कर्ष

इस दृष्टि से देखा जाए तो वृद्ध स्त्री जीवन अत्यंत विचारणीय एवं संवेदनशील विषय है। दिवाकर शर्मा, प्रस्तुत उपन्यास के मुख्य पात्र है, उनके इर्द-गिर्द उपन्यास घूमता है। लक्ष्मी देवी तो केवल दिवाकर शर्मा की पत्नी है, क्योंकि अलग से उनके संबंध में कोई चर्चा उपन्यास में नहीं की गई है। उनकी भूमिका भी बेहद छोटी है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि, वृद्ध स्त्री जीवन कितना तिरस्कृत है, समाज में भी और उपन्यास के संदर्भ में कहे तो, साहित्य में भी। क्योंकि उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप से दिवाकर शर्मा अधिक समस्या ग्रस्त है, उनके संघर्ष, दर्द आदि संबंध में अधिक विचार किया गया है। लक्ष्मी देवी मात्र पत्नी है। वह भी इस पहचान से खुश है। लक्ष्मी देवी के जीवन की सार्थकता है पत्नी और माँ कहलाने में है। इस सार्थकता के आगे बलि चढ़ता जा रहा है, स्त्री का अस्तित्व। इसलिए गौर से विचार करने पर यह स्पष्ट होता है कि, लक्ष्मी देवी के माध्यम से एक तिरस्कृत वृद्ध स्त्री जीवन को अंकित करने का प्रयास किया गया है। जो कहीं बच्चे और पति के बीच पिस रही है तो, कहीं शोषण बना जिम्मेदारियों के बोझ तले दब रही हैं।

सन्दर्भ

1)डॉ. के. एम. मालती, स्त्री विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, भूमिका से

2)विमला लाल, वृद्धावस्था का सच, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2010, पृ.58

3)डॉ. के. एम. मालती, स्त्री विमर्श: भारतीय परिप्रेक्ष्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2010, पृ.76

4)राकेश वत्स, फिर लौटते हुए, राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2003, पृ.35

5)राकेश वत्स, फिर लौटते हुए, राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2003, पृ.8

6)राकेश वत्स, फिर लौटते हुए, राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2003, पृ. 32

7)राकेश वत्स, फिर लौटते हुए, राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2003, पृ.26-28

8)राकेश वत्स, फिर लौटते हुए, राजपाल एंड संज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, 2003, पृ.25

****

परिवार की आतंरिक संरचना में स्त्री संदर्भ - रेत-समाधि'

-डॉ. अर्चना रानी
सहायक प्रोफेसर
हिंदी विभाग, मोतीलाल नेहरू कॉलेज(सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली
9711082105
archna.rani.du@gmail.com

भूमिका- आधुनिक समय में समाज का परंपरागत स्वरुप काफी कुछ बदल गया है। इस बदलते हुए समाज ने गीतांजलि श्री के उपन्यासों में भी उपस्थिति दर्ज कराई है। स्त्री-शिक्षा, आत्मनिर्भरता, स्त्री-अधिकार, संवैधानिक संस्थाओं के विकास ने स्त्री को समाज में अपनी पहचान तलाशने और बनाने का अवसर दिया है। सिमोन का कथन है की 'स्त्री पैदा नहीं होती, बना दी जाती है।' गीतांजलि श्री के सभी स्त्री-पात्र परम्परागत स्त्री बने रहना नहीं चाहते। वे स्त्री की नयी परिभाषा को गढ़ते हैं। गीतांजलि श्री के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श सीधे-सीधे न जुड़कर पृष्ठभूमि का निर्माण करता है। कभी वे स्त्री-पुरुष के बीच संघर्ष को वर्णित करती हैं, कभी पितृसत्तात्मक समाज से विद्रोह करती ऐसी स्त्री को निर्मित करती हैं, जो अपने जीवन को अपनी शर्तों पर गढ़ती है। आधुनिक समय के अनुरूप पितृसत्ता ने अपने को अमीबा की भांति बदला जरूर है। किन्तु अपने मूल स्वरूप(दूसरों पर शासन करना) को खोये बिना। अपने बदले हुए स्वरुप में पितृसत्ता 'रेत-समाधि' में भी व्याप्त है। जिसकी पड़ताल मैं अपने शोधालेख में करूँगी।

बीज शब्द- पितृसत्ता, परिवार, परंपरागत, स्त्री-विमर्श, चक्रव्यूह, सांस्कृतिक-पहचान, मध्यवर्गीय परिवार, वैचारिक जड़ता, स्त्री मुक्ति, विवाह-संस्था, आज़ादख्याल, वर्चस्व, रूपांतरण, संचरण

विश्लेषण- 'रेत-समाधि' गीतांजलि श्री का महत्वपूर्ण उपन्यास है। जो भारतीय समाज की आतंरिक संरचना को परत दर परत उद्घाटित करता है. लेखिका इसमें मध्यवर्गीय परिवार की कथा कहती है, जिसमें अस्सी वर्षीय अवसादग्रस्त माँ और आज़ादख्याल बेटी दो केन्द्रीय पात्र हैं। उपन्यास इन्हीं पात्रों के इर्द-गिर्द घूमते हुए पितृसत्ता के बदलते स्वरुप और स्त्री सन्दर्भ में आज़ादी के मायनों और तमाम विमर्शों को अपने में समेटे हुए है। लेखिका परिवार में घटित होने वाली महाभारत में पितृसत्ता के षड़यंत्र, चालाकियों, सुख लाभ और इसके चक्रव्यूह को नाकाम करती स्त्रियों को उपन्यास में प्रस्तुत करती है। लेखिका के शब्दों में, "कहना चाहिये परिवार को। जब कि कहते हैं महाभारत को। कि जो दुनिया में वो उसमें, और जो उसमें नहीं, वो कहीं नहीं। महाभारत में दुनिया, दुनिया परिवार में, और इसलिए परिवार में महाभारत।" इसलिए 'परिवार' पितृसत्ता की पड़ताल करने की पहली इकाई है। प्रभा खेतान पितृसत्ता को सामाजिक परिघटना के रूप में व्याख्यायित करती हैं, "पितृसत्ता एक सामाजिक परिघटना है। हजारों सालों से चली आई ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्त्री की अधीनता सर्वविदित है।" इन परिवारों में स्त्रियाँ चुप रहती हैं अथवा चुप करा दी जाती हैं। कभी स्त्रियों का विद्रोह मुखर होता है एवं कभी मौन।

पितृसत्ता एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमे पुरुष का आर्थिक, राजनितिक, और सांस्कृतिक हर स्तर पर प्रभुत्व रहता है। लेखिका मध्यवर्गीय पारिवारिक जीवन में पितृसत्ता की पहचान करती है, "इस सबके पहले एक मौत हो चुकी थी। एक आदमी की जिसकी औरत ने उसकी छड़ी से इनकार कर दिया। वो आदमी इसी माँ के पति थे और पिता इसी बेटी के। यों लगा की मरणोपरांत भी पालक-चालक वही हैं और ये कि वो मरे हों या नहीं, उनकी पत्नी हर सूरत में मर गयी हैं। इस तरह वो अपने कमरे में पड़ी रहती।" लेखिका परिवार में मौजूद पितृसत्ता और उसके विरोध को बेहद कुशलता से व्यक्त करती है। "इस स्त्री ने "उसकी(पति की) छड़ी से इनकार कर" दिया है, पति ही घर के सर्वेसर्वा रहे और वे "पड़ी रहतीं" के निष्क्रिय विरोध में सक्रिय रही। बिना किसी तनावपूर्ण माहौल के पारिवारिक तनाव को लेखिका प्रस्तुत करती है। पुरुष की मृत्यु के बाद भी घर का माहौल पुरुष (पितृसत्तात्मक) वर्चस्व से आक्रांत है, इसकी बानगी देखिये, "उनका कमरा। घर के एक कोने में। मियाँ बीवी का बिस्तर। जाड़ों के दिन। मोटी रजाई-गिलाफ़ वाली। हॉट वाटर बोतल। ऊनी कनटोप। खूँटी पर टंगी छडी। प्याली अभी भी बिस्तर किनारे तिपाई पर, बिन पानी के, जिसमें वे जब थे, अपने दांत रात में डाल देते। सुबह उठाते। फिर छड़ी। बाहर दांत किटकिटाती ठंड, भीतर दांत किटकिटाती माँ"

इस तनाव को गीतांजलि श्री ने नाटकीयता से प्रस्तुत किया है, जिस कमरे का दृश्य है, वह स्त्री पुरुष का साझा कमरा है। इस कमरे में जाड़ों की ठंड से बचने के तमाम साधन हैं, पुरुष की उम्र का अंदाजे का संकेत है, कि वह वृद्ध है, उसके मुँह में दांत नहीं है, बावजूद इसके उसकी छड़ी का आतंक बना हुआ है, इस कमरे में माँ ठंड से नहीं वरन छड़ी की मार से दांत किटकिटाती है। और वह पुरुष(पति) से मुँह फेर रही थी, अपनी और अपने बच्चों की तरफ से अपनी नाराजगी जाहिर कर रही थी। उसकी तरफ पीठ कर रही थी। "और इस उपक्रम में दीवार की तरफ खिसकती गयी कि अपनी अस्सी से कुछ कम की सारी ताकत इसी में लगा दे कि कैसे दीवार में घुस सके।"

'पीठ करना' भारतीय समाज में एक प्रचलित मुहावरा है। 'पीठ करना' स्त्री का पति के प्रति अपनी उपेक्षा, अपना विरोध जताने का एक सामान्य व्यवहार है। एक-दूसरे के प्रति अपनी नाराजगी को जाहिर करने का तरीका है। एक स्त्री जब अपने पति से पीठ करती है, तो यह व्यवहार दाम्पत्य जीवन के तनाव को भी प्रस्तुत करता है। गीतांजलि श्री के शब्द अपने

अभिधात्मक अर्थ में एक उलझन जैसे लगते हैं लेकिन अपनी प्रतीकात्मकता में एक नये ही संसार की प्रस्तुति करते हैं। मध्यमवर्गीय परिवार और परिवार की बनावटी प्रतिष्ठा का सजीव खाका उन्होंने दीवार के माध्यम से खींच दिया है। जैसे दीवार ने छत, फ़र्श, खिड़की, दरवाजे संभाल रखे हैं और अपने भीतर छिपा रखे हैं-पानी और बिजली के तार। जिनकी मौजदगी बेहद आवश्यक है, और जिसके भद्देपन को दीवार ने अपने भीतर छिपा लिया है। उसी प्रकार माँ भी दीवार होती जा रही है, जिसके भीतर छिपा है मध्यवर्गीय परिवार का तनाव। और इस छिपाव के कारण दिखता है, 'परिवार'। "बस माँ दीवार की ओर होती गयी और उसकी पीठ अंधी बहरी होती गयी और खुद एक दीवार बन गयी, उन्हें अलगाती जो उस कमरे में आते उसे उकसाने, फुसलाने की उठो अम्मा।" माँ की पीठ रूपी दीवार माँ के अकेलेपन और अवसाद को, परिवार में बूढ़ी स्त्री के प्रति उपेक्षा और अलगाव को दर्शाती है। बूढ़ी स्त्री का सारा जीवन इसी तनावपूर्ण माहौल में बीता है, बच्चे चाहते हैं कि माँ पहले की तरह यंत्रवत जुटी रहे और जीवंत दिखे। पर दादी न उठने की जिद्द पकड़ी है और नहीं नहीं करते हुए नयी उठ खड़ी हुई है। सारी सरहदों को तोड़कर नया हो जाना। यही तो है 'स्त्री विमर्श का एकमात्र ध्येय'। पर इस नये हो उठने का संघर्ष कहीं भी, कभी भी सहज नहीं होता। इसमें टूटती हैं, देह की सरहदें, वर्जनाओं की सरहदें, वैचारिक जड़ता की सरहदें, और राजनैतिक सरहदें जो व्यक्तियों को परिवार से मुल्कों में बदल देती हैं।

गीतांजलि श्री दरवाजे को प्रतीकात्मकता में बेहद कुशलता से बांधती है। "ये कोई मामूली दरवाज़ा नहीं है। कि इसने मजबूती से जिन दीवारों को थाम रखा है, उन पर पीढियां टिकी है।" स्त्री का बड़ा बेटा अफसर है। "ये वाला बड़ा बेटा तबादले वाली सरकारी मुलाज़मत करता रहा है। तो उसके घर और दीवारें शहर बदलते रहे हैं और नए-नए जिलों में खुला दरवाज़ा खुला रहा है। क्या बड़े बेटे के घर की दीवारें सरकती हैं? नाचती हैं? दरवाज़ा बैल है जो घर की दीवारों को गाड़ी की तरह खींचता है? ये तो वही घर है जिस में परिवार के बाप-दादे अपने चाकरों और वीर्य-उपजों को सदियों से घुड़कते फिरते थे।"

पीढ़ी दर पीढ़ी 'घर' नामक संस्था अपना स्थान बदलती रही है और पितृसतात्मक संस्कारों को एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में सौंपती रही है। चाकर जो बाप-दादाओं के अनुशासित, आज्ञाकारी (वीर्य-उपजी) अपनी संताने हैं, जो पितृसता की पैरोकार हैं। ये घर नयी पीढ़ियों, नये विचारों के नहीं है, ये वही पुराने घर, पुराने लोग और पुराने संस्कार हैं, सिर्फ इनका बाहरी आवरण बदल गया है। लेकिन इन घर और दीवारों के बावजूद एक दरवाजा भी है। जो एक सेतु बनता है इन संस्कारों में फिट न होने वालों के लिए बाहर निकलने का और इस तरह ये घर और दीवारें बची रह जाती हैं। "किसी के बीच से निकलना एक तरह से उसे चीरने की बात हुई। भले ही वह दरवाज़ा क्यों न हो। उसके जिगर और दिल को चीर कर निकलते हो तुम सब। जो चीरा जाए उसमे भांपने सराहने की कूवत बढ़ जाती है।" जिसने चिरने की पीड़ा को सहा हो उसका सतर्क हो जाना लाजमी है। यही कारण है कि बदलते वक्त के साथ-साथ पितृसत्ता स्वम को प्रभावशाली बनाए रखने के लिए उदारता के चोले में छिपी रहती है। बड़े बेटे के घर का दरवाजा जानता है की उसे उन पुरातन दीवारों पर टिके रहना है तो उसे खुले रहना है, अन्यथा धकिया देने पर वे टूट कर गिर पड़ेगा और साथ ही ढह जाएँगी वह दीवारें जिन के सहारे वह खड़ा है। "बड़े बेटे के घर का दरवाजा जानता है कि उसे बहरसूरत खुले रहना है और उस के बीच से निकलने वाले पर वक्त की, पूर्वसूचना देने की, खटखटा कर घुसने जैसी पाबंदियाँ नहीं हैं।"

नयी लिपि-पुती दीवारों के साथ खड़े दरवाज़ों वाला घर, जिसमें पितृसत्ता अपने परंपरागत रूप में नहीं वरन अपने बदले नवीन रूप में खडी है। इस घर में बहन (घर की बेटी) को अपना वजूद कीड़े के समान तुच्छ प्रतीत होता है, जहाँ वह दूसरों की बनाई प्रयोगशाला(परिवार) में बन्द भाग निकलने के लिए सुराख़ की तड़प में। "कीड़ों का कीड़ा होना ठीक है, मगर इंसानों का कीड़ा होना" ठीक नहीं है। उनकी हरकतों पर, आचरण पर परिवार की कड़ी नजर (चौकसी भरी) हमेशा बनी रहती है। "तभी वे परिवारों से भागना चाहती हैं और दरवाज़े पर एक पैर उठाये सोच में पड़ जाती हैं कि उन्हें भीतर जाना है या बाहर।" लेखिका ने यमक का बहुत सुन्दर प्रयोग किया है। गीतांजलि की गद्य भाषा की अलंकारिकता अर्थ के प्रभाव को विस्तार प्रदान करती है। "इसी हेर-फेर में एयरपोर्ट पहुँच जाती हैं। एक चौकसी से भाग दूसरी में आ गिरती हैं। जानी-पहचानी सी चिढ़ उठती है और जाहिर सी बात है कि हवाईअड्डे बुरे लगने लगते हैं।"

घर की भीतरी दुनिया की चौकसी बेटियों को बाहर निकलने को विवश करती है। इस घुटन से बाहर निकलने के लिए आतुर वह हवाई अड्डे (स्वप्निल दुनिया) का स्वप्न देखती है। पर वास्तविक हवाईअड्डे एक विशेष निगरानी क्षेत्र होते है। वैसे ही स्त्रियों द्वारा घर से बाहर बनाए या ढूंढे हवाई अड्डे(स्वप्निल महल) सिर्फ हवा में ही हैं। उनका वास्तविक दुनिया में वजूद ही नहीं है और ये भ्रम दूर पर कि वह घर से बाहर की दुनिया में भी पितृसत्तात्मक निगरानी क्षेत्र में है।

माँ और बेटी उपन्यास के दो मुख्य पात्र हैं। दरअसल आप उन्हें घर की सत्ता(पितृ) में मौजूद दो स्त्रियों की तरह देख सकते हैं। दोनों एक-दूसरे के लिए, एक-दूसरे को समझती हुई। उपन्यास में 'खिड़की' वह रास्ता है, जो बिहारी की नायिका (सुख) की झलक देख लेने का जरिया मात्र नहीं है बल्कि (खिड़की)यह वह छोटा छिपा रास्ता है, जो कई बार बड़े दरवाज़ों से (सामने से) साहस के साथ बाहर निकलने का हौसला देता है। दूसरे शब्दों में, माँ के द्वारा किये छोटे-छोटे बचाव बेटी के लिए उस खिड़की के समान थे जिन्हें लांघकर उसने बाहरी दुनिया से खुद को जोड़ा और दरवाज़ों से बाहर निकलने का साहस किया। हौसला दिखाया। घर के भीतर पाबंदियों को सपोर्ट करती माँ, "अन्दर, 'नहीं बिल्कुल नहीं जाएगी' का हल्ला, इधर खिड़की लाँघ कर बेटी चिड़िया की तरह फुर्र। बस माँ को पता।"

रोहिणी अग्रवाल समाजवैज्ञानिक दृष्टीकोण से समाज को देखने पर बल देती हैं, ताकि स्त्री विमर्श की बाधाओं को दूर किया जा सके। "स्त्री विमर्श समाज में स्त्री एवं पुरुष दोनों की तुलनात्मक स्थिति पर तटस्थ एवं संवेदनात्मक ढंग से विचार करने का आह्वान है। इसका केंद्र बिंदु समाज है किन्तु विश्लेषण का मूल घटक है-समाजशास्त्र। अत: इसके स्वरुप को समझने के लिए समाजशास्त्रीय दृष्टी से समाजवैज्ञानिक की भांति पितृसत्तात्मक व्यवस्था की गहन पड़ताल अनिवार्य है।" लेखिका ने उपन्यास

में पितृसत्ता की पड़ताल की है। माँ-बेटे और पिता-बेटी के प्यार के दो सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत किये हैं जो पितृसत्ता के वर्चस्व और बदलते स्वरुप के द्योतक हैं। "एक थी माँ, माओं जैसी। जिसने बेटे से कहा मेरे तुम भगवान और बेटे ने उससे कहा तुम सबका दुःख हरने वाली महासतायी देवी। दोनों खुद को एक-दूसरे पर लपेटने लगे और एक बना अजगर, एक महबूब। एक की सांसे फूली और एक की घुटी। एक मुत्य, एक छुटाया। उसी की पीठ दोहरी हो गयी माँ को कंधो पर उठा उठा उडान करने में, और ये अफ़सोस की बात हुई।" दूसरा प्रसंग इस प्रकार है, "बेटी भी थी एक। बाप की मोहब्बत में यों पगलाई की कोई मर्द उनका पासंग न उतरता और बाप भी न तैयार की उनकी शहज़ादी को किसी कमतर से बाँध दे। और पूरी नहीं तो आधी से कुछ ज्यादा ही जवानी और जिंदगी उस बच्ची की हवा में चकचूर हुए।

माँ और बेटी दोनों ही रूपों में स्त्री, पुरुष से प्रेम कर अपना अस्तित्व खोती आई है। किन्तु पुरुष अपनी हर भूमिका(पिता, पति, भाई) में स्त्री को अपने अनुरूप ढालने में ही जीवन मूल्यों की सार्थकता समझता है। भले ही इन पितृसत्तात्मक मूल्यों को बनाये रखने के लिए वे स्त्री के अस्तित्व की भेंट चढ़ा दें।, बुढ़ापे में माँ की सेवा बेटे के लिए अफ़सोस (बोझ) हो जाती है और पिता बेटी को अपने ही अनुरूप सोचने वाले व्यक्ति के साथ देखना चाहता है।

"चिल्लाना परंपरा है। बड़े बेटों का चिल्लाने का रिवाज़ पुराना है। रिवाज़ मुल्लम्मा है। कहा जाता है कि बड़े के पिता दिल से चिल्लाते थे जबकि बड़े का दिल ज्यादा खोलन नहीं मारता। पर जबान दोनों की एक सी है। बड़े ने और जोर से चिल्लाने की शान ओढ़ी और चमकाने दमकने लगे। अब कुछेक महीनों में अवकाश प्राप्ति होगी और चिल्लाना सिड (बेटा) की झोली में जा गिरेगा।" चिल्लाना, मारना, अपशब्द, ये पितृसत्तात्मक हथियार हैं। ये पीढ़ी-दर–पीढ़ी संचरित होते रहते हैं। परंपरा, रिवाजों के नाम पर। हर छोटी-बड़ी बात पर चिल्लाना-डपटना पुरुषों के लिए सामान्य बात है।

पारिवारिक नोंक-झोंक, परिवार के भीतर दंगल का रूप ले लेती है। आधुनिक समय में अधिकांश मध्यवर्गीय घरों में नौकर-चाकर काम करते हैं। पारिवारिक सदस्यों पर घरेलू काम का दवाब अपेक्षाकृत कम है। इसके बावजूद रिश्तों की गर्माहट गायब है। भाई-बहन के बीच अरसे से बातचीत बन्द है, "दोनों ने आँख न-मिलाई सी मिलाई और कुछ न मुस्काए से मुस्कुराए।" प्रभा खेतान इस उपेक्षा के पीछे छिपे कारणों की पड़ताल करते हुए लिखती है, "सत्ता का आतंरिक स्वरुप ही ऐसा है, की वह शासन-प्रक्रिया द्वारा दूसरे का शोषण करना चाहती है, ताकि अपने से भिन्न को कमजोर और हीन बनाकर रखा जा सके।"

उपन्यास में गीतांजलि श्री ने बच्ची के स्वभाव को अनुकूल परिस्थितियों में विकसित हुए ऐसे गुण के रूप में देखती हैं, जो पितृसत्तात्मक समाज के अनुकूल नहीं है, इन परिस्थितियों को आधुनिक समय ने मुमकिन बनाया है, "बच्ची का 'नहीं' सबको बड़ा सुहाता। बचपन में वो नहीं की बनी थी। यहाँ तक की उससे जो करवाना हो उसका उलट कह दो तो झट 'नहीं' कहके वो कर देगी। चावल खा लो, परांठा नहीं। नहीं, परांठा खाऊगी। जब बचपन गया। उसका 'नहीं' उसके संग बालिग हुआ। नहीं, नहीं, मैं दुपट्टा नहीं। नहीं मैं नजरबन्द नहीं। नहीं, मैं आप नहीं। 'नहीं' से राह खुलती हैं, नहीं से आज़ादी बनती है। 'नहीं' से मज़ा आता है। 'नहीं' अहमकाना है। अहमकाना सूफियाना है। और इस तरह अपने भीतर नहीं को पालते-पालते घर की बेटी पितृसत्तात्मक घेरे, वर्जनाओं, पाबंदियों को न कह उठी है।

अपने प्रेमियों और पसंद को स्वीकारने के लिए घर भर को तैयार करती। लेकिन इसे एक संगीनतम जुर्म के रूप में चिह्नित कर पूर्वजों की मर्यादा के नाम पर उसका पारिवारिक बहिष्कार कर दिया गया। बहन आत्मनिर्भर थी, उसने अपना घर अलग कर लिया और इस घरेलु बहिष्कार से मुक्त हो गई। पर बड़े भाई की नाक जो पूर्वजों की ठेकेदार बनी थी उसने 'निकल जाने' को भी हिमाकत समझा। लेखिका ने पारिवारिक संस्था के भीतर परत दर परत पितृसत्ता के वर्चस्व, रूपांतरण, संचरण को विस्तृत होते और हर क़दम पर स्त्री द्वारा उसे चुनौती देते, इन सब वर्जनाओं के बीच अपने लिए स्पेस बनाते, संघर्ष करते दिखाया है।

परिवार संस्था के ये तनाव सिर्फ पति-पत्नी के मध्य ही नहीं है, वरन अन्य संबंधो में भी दिखाई देते हैं। माँ-बेटे के सम्बन्ध, भाई-बहन के सम्बन्ध, ननद-भाभी के सम्बन्ध। यह तनाव आधुनिक समाज में भी परिवारों का हिस्सा है। जॉन स्टुअर्ट मिल दी सब्जेक्शन ऑफ़ विमेन में परिवार को पारिवारिक सदस्यों के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में देखते हैं, जो तानाशाही की पाठशाला बनकर अपने दायित्त्व का सही ढंग से पालन नहीं कर रहा है। वे लिखते हैं, "परिवार एक ऐसी संस्था है, जो स्वतंत्रता के सद्गुणों को खुलकर उजागर कर सकती है। पर यह माता-पिता के शासन और बच्चों की आज्ञाकारिता की संस्था बनकर रह गई है। होना यह चाहिए कि परिवार परस्पर सहानुभूति और प्रेमपूर्वक एक साथ जीना सिखाने वाली एक पाठशाला हो; इसके लिए यह ज़रूरी है कि यह बात माता-पिता के आपसी संबंधो पर लागू हो। उसके बाद ही ये सद्गुण उनके माध्यम से बच्चों तक पहुँच कर परिवार के सभी सदस्यों के बीच स्वतंत्र, सहानुभूतिपूर्ण और सद्भाव भरे संबंधों की नींव रख सकते हैं।" लेकिन यह स्वतंत्रता, सहानुभूति, सद्भाव ज्यादातर परिवारों में व्यवहृत नहीं होती इसलिए आने वाली पीढियाँ परम्परागत प्राप्त आचरण की वाहक बन जाती हैं, "डांटना, फटकारना, दूराना, सब जरूरी था उसे राह पर लाने को। पर थी वो बेचारी।" परिवार उस की बेचारगी पर तरस खा रहा है। सब उसे नादान, मुर्ख समझते हैं और उसकी पसंद को नालायक प्रेमीजन, जोकि इस स्त्री का फायदा उठाना, या उसे प्रेम के भुलावे में रखना चाहता है। लड़की के भाई और पिता को न पटा (नकारात्मक, झांसे में लेने)पाने के कारण 'बेचारी रह जाती बार-बार अकेली।' उसके कपड़े, पसंद, नौकरी, जीवन सभी कुछ पर तरस खाता परिवार। 'कपड़े, लत्ते भी गंवारों, जमिदारनों जैसे' 'पड़ी है बहिष्कृत एक तरफ़।'

लेकिन स्त्री की सफलता, गाड़ी, घर, प्रसिद्धि ने इस हमदर्दी को विस्मृत कर दिया। कामयाब स्त्री की सफलता भी पितृसत्ता के लिए संदेहास्पद है। ये यकीं की स्त्री अपने ज्ञान के बल पर एक सम्मानित ओहदा पा सकती है, अकल्पनीय है। बड़े को बहन का यह आज़ादख्याल तरीका पसंद नही है। वह नहीं चाहता की माँ आज़ादख्याल बेटी से बात करे या

उसके पास रहने जाए। उसने माँ को मना किया है। क्योंकि बहिष्कृति ही बहन के जीवन शैली के प्रति अमान्यता का सूचक है।

भाई को डर है कि माँ का प्रेम और स्वीकृति बहन की जीवन शैली को मान्य करार कर देगी। किन्तु राष्ट्रपति भवन की दावतों में बहन की उपस्थिति और प्रसिद्धि देख भाई को 'समझ ही नहीं आ रहा था की आँखे किसको चुरानी चाहिए और चुरा कौन रहा है।'

गीतांजलि श्री विवाह संस्था के अजनबीपन को भी रेखांकित करती है। समाज में दुल्हनें चयनित होती हैं अपने गोरेपन के आधार पर। जिससे आने वाली नस्लें सुन्दर हों। उसका ज्ञान का, उसकी शिक्षा की विवाह में कोई मूल्य नहीं है। परंपरागत विवाह में घर, लोग, आचरण सभी बेगाने होते है। इस बेगानेपन के बीच स्त्री को अपने लिए जगह बनाने में बरसों लग जाते हैं। दहेज़ में धन ही स्त्री के साथ आता है। वह इस धन की न विवाह पूर्व मालिक होती हैं और न विवाह के बाद। यह दहेज़ पुरुषों की मल्कियत बन जाती है।

सिमोन स्त्री साज-श्रंगार और सामाजिक स्थिति को एक साथ जोड़कर देखती है, "साज-श्रृंगार स्त्री को केवल अलंकृत नहीं करता, वह उसकी सामाजिक स्थिति की और भी संकेत करता है।" महँगी ब्रांड के जूते आज के युग के श्रृंगार है। जो उसे पंख देने के दावे के साथ अपने श्रेष्ठ होने के अवसर को भी उपलब्ध बनाते हैं। गीतांजलि श्री भी उपन्यास में भी इसी ओर इंगित करती है। रीबोक पहनते ही घर की एकमात्र पुत्रवधू लम्बी सैर करने लगी। जोगिंग में रम गयी। योग में शामिल होने लगी। नृत्य भी सीखा और रीबोक जैसी महँगी ब्रांड के माध्यम से अफसर की पत्नी होने के अहम् को तुष्ट किया। सुधा सिंह पूंजीवाद की इस चालाकी को चिह्नित करती हैं, "पूंजीवाद ने स्त्री को इसलिए आज़ाद नहीं किया कि उसे पुरुषों की गुलामी से मुक्ति दिलानी थी। बल्कि स्त्री के अतिरिक्त श्रम को वह अपने हक़ में संसाधना और बाज़ार दोनों तरीके से इस्तेमाल करना चाहता था।" आधुनिक समय सूचना-संचार-सम्प्रेषण माध्यमों का युग है। इसमें बाज़ार का प्रभाव और वर्चस्व हमारे वैचारिक, सामाजिक- किर्याकलापों में झलकता है। बाज़ार, आज़ादी और स्त्री मुक्ति की अपनी ही परिभाषा गढ़ता है। पर वास्तविकता इससे परे है। रीबोक खूबसूरत स्वप्न(पैरों में पंख बनकर रहेंगे) के मोहपाश में बांधकर घर-घर पहुँच जाना जाता है। गीतांजलि श्री 'के स्त्री-पात्र रेत समाधि' के अतिरिक्त 'माई', 'तिरोहित', 'हमारा शहर उस बरस', ख़ाली जगह', में भी परंपरागत सामाजिक मूल्यों से इतर अपने मूल्यों को स्थापित करते है, जहाँ स्त्री बेफिक्री से जी सके।

निष्कर्ष- निसंदेह आधुनिक समाज में स्त्री के पास पहले की अपेक्षा अनुकूल परिस्थितियां हैं। स्त्रियों को शिक्षा दी जाने लगी है, उनके आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने को भी स्वीकारा गया है। किन्तु परिवार और विवाह संस्थाओं में पुरुष-वर्चस्व बना हुआ है। विवाह के लिए स्त्री की पसंद कोई मायने नहीं रखती है। विवाह परम्परागत और धूमधाम से हों, तभी सम्मानीय होते हैं। गोरेपन के आधार पर स्त्री का चुनाव हमारी नस्लभेदकता का परिचायक है। दहेज़ के सम्मुख स्त्री का बौद्धिक कौशल नगण्य है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर अविवाहित स्त्री (संपत्ति खरीदना) के मलिकनात्व को हिमाकत की तरह देखा जाता है। बाज़ार एक मायावीजाल समान प्रतीत होता है, जो अपनी बढ़ोतरी(विस्तार, मुनाफे) में स्त्री-मुक्ति के लुभावने स्वप्न बेचता है। परंपरागत मूल्य स्त्री और पुरुष के बीच भेद को बनाए हुए है। उनके मध्य शासित और शोषित के सम्बन्ध देखे जा सकते हैं। जिन्हें बनाए रखने के लिए साम, दाम, दंड, भेद का सहारा लिया जाता है। आधुनिक समय में समाज ने अपनी मूल संरचना(सयुंक्त परिवार, कुटुंब) को भले ही छोड़ दिया है। किन्तु इसके मूल चरित्र(आंतरिक संरचना, स्वाभाव) में कोई विशेष बदलाव नहीं हुआ है। समाज में अन्तर्निहित पितृसत्ता ने भी आधुनिक समय के अनुसार स्वम् को बदल लिया है, अब वह अपने बदले हुए रूप में (जिम्मेदारी, लाड़-दुलार, स्वतंत्रता, हमदर्दी, इत्यादि) परिवार में, समाज में व्याप्त है। गीतांजलि श्री के उपन्यास के स्त्री-पात्र परंपरागत मूल्यों के सांचे में फिट नहीं हो पाते। ये स्त्री-पात्र सीधे-सीधे आक्रामक नहीं है, किन्तु अमूर्तता में इनका मौन और साहस (दहलीज़ लाँघ जाने) भी सक्रिय हो उठा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. रेत-समाधि, गीतांजलि श्री, पृष्ठ सं-109,
2. प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री: मुक्ति कामना की दस वार्ताएं, पृष्ठ-39
3. रेत-समाधि, गीतांजलि श्री, पृष्ठ सं-11,
4. रेत-समाधि, गीतांजलि श्री, पृष्ठ सं-11
5. रेत-समाधि, गीतांजलि श्री, पृष्ठ सं-12
6. रेत-समाधि, गीतांजलि श्री, पृष्ठ सं-16
7. रेत-समाधि, गीतांजलि श्री, पृष्ठ सं-16
8. रेत-समाधि, गीतांजलि श्री, पृष्ठ सं-17
9. रेत-समाधि, गीतांजलि श्री, पृष्ठ सं-20
10. साहित्य का स्त्री-स्वर, रोहिणी अग्रवाल, पृष्ठ-12
11. प्रभा खेतान, मुक्ति कामना की दस वार्ताएं, पृष्ठ-
12. जॉन स्टुअर्ट मिल दी सब्जेक्शन ऑफ़ विमेन, पृष्ठ-55
13. सिमोन दी बोउवार, दी सेकण्ड सेक्स, स्त्री-उपेक्षिता, पृष्ठ-257
14. सुधा सिंह, ज्ञान का स्त्रीवादी पाठ, पृष्ठ-46

****

सामाजिक अंतर्संरचना और स्त्री-जीवन संदर्भ - शिकंजे का दर्द'

-डॉ. निरंजन महतो
सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
सत्यवती कॉलेज(सांध्य)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

भूमिका - सुशीला टाकभौरे हिंदी की महत्वपूर्ण साहित्यकार हैं। आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' स्त्री के द्वारा समाज, पितृसत्ता और सत्ता से टकराने की संघर्ष है। इस टकराहट में दलित समाज के संताप और पीड़ा को शब्दबद्ध करती हैं। विशेष कर एक स्त्री के संघर्ष को जो शुद्र वर्ण की है। दलित स्त्री का जीवन और संघर्ष अन्य स्त्रियों के संघर्ष से ज्यादा कठिन है, क्योंकि वह 'स्त्री होने के साथ ही अछूत होने' की पीड़ा भी झेलती है। सुशीला टाकभौरे वर्ण-व्यवस्था आधारित भारतीय समाज में दलितों की स्थिति की पड़ताल करती हैं। आधुनिक शिक्षा, नौकरी के बावजूद 'अछूत' होने की स्थिति को आसानी से नहीं बदला जा सकता। आत्मकथा दलितों का जीवन, लोकविश्वास और अज्ञानतावश उनके भय को प्रस्तुत करती है।

बीज शब्द- लोकतांत्रिक व्यवस्था, वर्ण-व्यवस्था, शूद्र वर्ण, दलित, चर्मकारी, मनुस्मृति, अस्पृश्यता, लोकविश्वास, अंधविश्वास, संवैधानिक अधिकार

शोध आलेख - सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' दलित समाज के संताप और संघर्ष की अभिव्यक्ति है। 'दलित समाज में और दलित समाज के बाहर' स्त्री होने की पीडा क्या है? इन प्रश्नों का उत्तर आत्मकथा को पढ़कर ही प्राप्त किया जा सकता है। दलित रचनाकार लेखन में अपने समय और समाज को अभिव्यक्त करते हैं तो कुछ कडवी सच्चाईयां स्वत: ही सम्मुख आ खडी होती हैं। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा इन सच्चाईयों में एक सच 'पितृसत्ता के दंश' को जोडती है। प्रश्न उठता है कि पितृसत्ता का दंश तो सवर्ण महिला रचनाकारों की रचनाओं में भी मौजूद है फिर सुशीला जी के लेखन में विशेष क्या है? सवर्ण महिला रचनाकारों का संघर्ष पितृसत्ता से है और पितृसत्ता से आगे बढ़कर सत्ता से है किंतु एक दलित स्त्री का संघर्ष पितृसत्ता के साथ-साथ अस्पृश्यता और सामाजिक वंचना से भी है। जो उसे आगे से कहीं ज्यादा पीछे की तरफ धकेलते हैं। दैहिक शोषण का भय सभी वर्णों की स्त्रियों को भयभीत करता है किंतु दलित स्त्री होने पर यह भय अधिक गहरा हो जाता है। एक दलित स्त्री के अनुभवजन्य सत्य से समाज को देखने का प्रयास 'शिकंजे के दर्द' को विशेष बनाता है।

आत्मकथा एक ऐसा दर्पण है जिसमें पाठक बीते हुए कल से रू-ब -रू होता है। अतीत से तादात्मय स्थापित कर पाता है। इस तादात्मय में बीते कल के सुखद अहसास के साथ-साथ, सामाजिक सांस्कृतिक विद्रुपताएं भी दिखती हैं। आने वाले समय को बेहतर बनाने के लिए जरूरी है कि अतीत की विद्रुपताओं, विसंगतियों को आगे बढने का हौसला बना लिया जाए। प्रश्न उठता है, कि वो कौन सी सामाजिक सांस्कृतिक विद्रूपताएं हैं जो दलित समाज को आगे बढने से रोकती हैं। अर्थात् दलित होने की पीड़ा क्या है? हिंदू समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर स्थित दलित समाज है। जिसे शूद्र वर्ण कहा गया। हजारों वर्षो से हिंदू समाज व्यवस्था ने मनुविधान अनुसार शूद्रों को संपति अर्जित करने, शिक्षा अर्जित करने एवं अन्य सम्मानजनक कार्य करने को निषेध घोषित किया गया। हिंदू समाज में दलितों को सम्मानजनक सामाजिक हैसियत प्राप्त नहीं है।

हिंदू समाज व्यवस्था के अनुसार भारत के प्रत्येक गांवों में चारों वर्ण निवास करते हैं। शूद्र वर्ण में भी अनेक जातियां और गोत्र हैं। प्रत्येक जाति की जीविका के पेशे स्थायी हैं। जातियों को निर्धारित पेशे को छोडकर अन्य पेशों द्वारा जीवनयापन करने की छूट प्राप्त नहीं है। इसलिए जाति और पेशे स्थायी एवं पर्याय बने हुए है। शूद्रों के लिए निर्धारित कार्यों में से कुछेक है- चर्मकारी, मरे हुए जानवरों की खाल छीलना और चमडे की वस्तुएं बनाना, जूठन उठाना, मैला ढोना। परंपरागत समाज में इस समाज व्यवस्था की महत्ता अनिवार्य सत्य है। इसके बावजूद ग्राम्य जीवन की धुरी होने पर भी दलित समाज हाशिएकृत हैं।

वर्णभेद और जातिभेद से उत्पन्न गैर-बराबरी और असमानता है। मसलन् दलित बस्तियों को मुख्य गांव से बाहर दक्षिण दिशा में बसाया जाता है। दलित बस्तियों के व्यक्तियों से अस्पृश्यता बरती जाती है और इसे सामान्य सहज नियम के रूप में स्वीकारा जाता है। जो विसंगति समाज में सहज मान्य हो उसका प्रतिकार उतना ही कठिन हो जाता है। लेखिका इस सत्य को पाठक के सम्मुख रखती हैं, "गाँवों में वर्णभेद-जातिभेद की सारी बुराइयाँ बसती थीं। अछूत माने गये जाति-समुदाय के लोग समाज-व्यवस्था के नियम से गाँव के बाहर बसाये जाते थे।...गाँव से मिली जूठन, रोटी,

अनाज और उतरन के कपड़ों से उनका जीवन चलता था। नानी दुख और कष्ट उठाते हुए पहले निजी रूप से गाँव का काम करती थी। बाद में नगर-परिषद् की सफाई कर्मचारी के रूप में नौकरी करने लगी।" दलित समाज के लिए कोई सम्मानजनक कार्य विकल्प के रूप में सदियों से मौजूद नहीं रहा। पुश्तैनी कार्य करना ही जाति-समाज कर्तव्य के रूप में निर्वहण करता रहा और सरकारी व्यवस्था ने भी उन्हें सफाई कर्मचारी के पदों पर नियुक्त कर अन्य सम्मानजनक कार्य विकल्पों पर विराम लगा दिया गया। यथार्थ है कि सफाई कर्मचारियों के पद वाल्मिकी समाज के लिए सुरक्षित कर राज्य और केंद्र सरकारे अपनी उपलब्धि के तौर पर गिनती हैं।

आधुनिक समय में नई शिक्षा पद्धति और अंग्रेजों के दखल ने भारतीय शिक्षा पद्धति को भी बदल दिया। दलित समाज का मानना है, "गोरे बडे दयावान थे। सबको समानता की एक नजर से देखते थे। उन्होंनें हमसे कभी भेदभाव नहीं किया। अपने देश के लोगों में हमारे लिए कभी ऐसी भावना नही रही। अंग्रेजों के आने से ही हमारे बच्चों को पढने लिखने का मौका मिल सको है, नहीं तो हमारे देश के बामन बनिया कभी उन्हें स्कूल में पढने नहीं देते।" सवर्णों पर इस अविश्वास का कारण हिंदू समाज व्यवस्था में सदियों से दलितों को शिक्षा एवं अन्य सम्मानजनक विकल्पों से वंचित किया जाना है। दलितों के इस विश्वास में सदियों की यातना का दंश निहित है।

आजादी और लोकतांत्रिक व्यवस्था में भारत के सभी नागरिकों को प्रदत्त शिक्षा के अधिकार और सरकारी स्कूल व्यवस्था ने दलित समाज के लिए शिक्षा के द्वार खोल दिए। यह बात अलग है कि इस व्यवस्था में भी संचालन स्तर पर सवर्ण और सवर्णवादी मानसिकता का ही वर्चस्व रहा है।

सवर्णवादी मानसिकता का वर्चस्व सिर्फ संचालन स्तर पर ही नहीं वरन् सत्ता के स्तर पर भी मौजूद है। लेखिका सवर्णवादी मानसिकता और सत्तात्मक षडयंत्रों को समझाने के लिए 'टंट्या भील' के विषय में बताती हैं। टंट्या भील ने आदिवासी हितों के लिए देश के शोषक अत्याचारियों से अधिकारों की लड़ाई लडी थी। खण्डवा बहरानपुर के बीच पुलिस मुठभेड में वह मारा गया था। समता और स्वतंत्रता की कामना में उठे विद्रोही स्वरों को जादू-चमत्कार कहकर सत्ता द्वारा एक व्यक्ति के सारे संघर्ष को खत्म कर दिया जाता है। ''यह प्रेरणा की बात थी, मगर हमारी जाति के लोग गुमराह थे और अंधविश्वास में भटक रहे थे। वे क्रांति और विद्रोह की बातें नहीं समझे। लोगों के बहकावे में आकर इन्हें चमत्कार और पूजा की बातें मानते रहे।'' व्यक्ति को ईश्वर में प्रणत करके व्यक्ति संघर्ष और चेतना को समाप्त करना नया नहीं है। लेखिका इन षडयंत्रों को पहचान कर वैचारिक संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। वाल्मीकि जयंती और रविदास जयंती के नाम पर छुट्टी मनाने और उत्सव, झांकी, डी.जे. से बाहर निकलकर दलित समाज को शिक्षा के लिए संघर्षरत होना चाहिए। सामाजिक न्याय और बराबरी को पाने के लिए सत्ता द्वारा रचित षडयंत्रों को समझना आवश्यक है।

लेखिका लोकविश्वास को मनौवैज्ञानिक नजरिए से देखने का प्रयास करती है, "टोटके द्वारा मन का वहम निकालने की पद्धति बहुत पुरानी है। मन को एकाग्र करके किसी अन्य दिशा में मोड देना मानसिक उपचार था।" वे इसे अंधविश्वास से अलग करके देखती हैं। लेखिका मानती है आंचलिक क्षेत्र में लोककथाएं, लोकविश्वास सामाजिक जीवन का अंग है। ये कभी अंधविश्वास बढाती हैं, कभी चमत्कृत करती हैं कभी भय के साथ सही मार्ग पर चलाती हैं। किंतु भूत, पिशाच, चूडैल, डायन और बाबा ये समाज में व्याप्त वो बुराईयां है, जिनके निदान का रास्ता शिक्षा से होकर जाता है।

शूद्रों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार ग्राम्य जीवन का हिस्सा है। पुश्तैनी कार्य, गरीबी और अधिकार चेतना के अभाव दलितों को कमजोर और दयनीय बना देता है। जातिगत भेदभाव, गैर-बराबरी और अस्पृश्यता का दंश लेखिका को झकझोर देता है- "भीख माँगेंगे, पर जात के बडे होने का घमंड नहीं भूलते। पता नहीं किस बात में बडे हैं? ये प्रश्न दलित समाज में व्याप्त चेतना का बोध कराते हैं। लेखिका मानती है, आजाद भारत में स्कूल के विद्यार्थियों को वर्णव्यवस्था के क्रमानुसार बैठाने की जो अघोषित परंपरा चलती है, उसने बच्चों में हीनताबोध और जातिव्यवस्था को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेने की मानसिकता का निर्माण किया है। "कक्षा में ब्राहम्ण, बनियों के बच्चों को सबसे आगे बैठाया जाता था। पिछड़ी जाति के बच्चों को पीछे बैठाया जाता। अछूत बच्चे सबसे पीछे अलग बैठते थे। कक्षा में यह श्रेणी वर्गीकरण जैसा था, इससे हमें अपने वर्ण और जाति का आभास हमेशा रहता था। मैं कक्षा में सबसे पीछे बैठती थी। स्कूल के सभी शिक्षक और सभी बच्चे मेरी जाति के विषय में जानते थे। सबके मन में मेरे लिए एक निश्चित दूरी थी। मैं नहाकर, साफ-सुथरे कपड़े पहनकर स्कूल जाती फिर भी स्कूल के बच्चों, अध्यापकों और चपरासी के लिए अछूत ही थी। मुझे छू जाने पर वे नहाकर शुद्ध होते हैं, यह बात मैं जानती थी।"

अस्पृश्यता की जडें जिस देश में इतनी गहरी हों कि किसी व्यक्ति के छू जाने भर से सवर्ण समाज अपवित्र हो जाता है। उस देश में सख्त कानून

और अस्पृश्यता को दंडनीय अपराध घोषित करके ही समाप्त किया जा सकता है। किंतु यह भी अपूर्ण सच्चाई ही कही जाएगी क्योंकि सदियों से हर मन में समाए इस संस्कार बोध को कुछ ही समय में नहीं बदला जा सकता। "रेलवे स्टेशन के नल से छोटी गागर में पानी भर लेती, तब लो नल को मिट्टी से कभी पाँच बार, कभी सात बार माँजते धोते थे और मुझे घृणा-उपेक्षा से देखते हुए डाँटते फटकारते थे।" सवर्णों के साथ आत्मीय संबंधों के बावजूद उनसे छूआछूत बरती जाती है और इस संकीर्ण मानसिकता के कारणों की पड़ताल करते हुए एच.एल.दुसाध लिखते हैं, "जिस अस्पृश्यता के कारण दलित दुनिया के सबसे घृणित प्राणी के रूप में देखे जाते हैं, वह व्यापक अर्थों में 'बहिष्कार' है। यह बहिष्कार मात्र सार्वजनिक स्थलों के उपयोग तक सीमित नहीं है। कर्म-संकरता की निषेधाज्ञा के तहत दलितों को सदियों से देश के संसाधनों और उच्च मान के तमाम लाभकारी पेशों से बहिष्कृत और वंचित करके रखा गया है।" यह वंचना सिर्फ लाभकारी पेशों में ही नहीं वरन् सामाजिक व्यवस्था में भी बनी हुई थी-"1965 तक हमारे गाँव में आटे की चक्की की मशीन लग गई थी मगर चक्की वाले हमारे घर का अनाज पीसने में एतराज करते थे।"

दलित चिंतक डॉ. धर्मवीर सवर्णों के सुधारवादी प्रयासों पर कटाक्ष करते हैं, "हिंदुओं का उदारवाद एक ऐसा छलावा है जो कुछ तय नहीं होने देता।...हिंदुओं का उदारवाद हिंदुओं में किसी परिवर्तन का हामी नहीं है। यह बदलाव की हर हवा को रोकता है। यह हिंदुओं का सुरक्षा कवच है।"

सवर्ण दबंगई की घटनाएं संपूर्ण दलित साहित्य में देखी जा सकती हैं, टाकभौरे लिखती हैं, "सवर्ण गुंडे, बदमाशों का दोष बेकसूर अछूतों के सिर मढ़ दिया जाता था। उन्हें मार-पीटकर जबरन् उनसे कसूर कबूल करवा लिया जाता।" आज़ादी के इतने वर्ष बाद भी कुछेक जातियों की यह दबंगई (आतंक) गांवों में आज भी अपने क्रूरतम रूप में मौजूद है।

दबंग जातियां खुद ही अदालत बन जाती हैं जहाँ हर निर्बल, गरीब, दोषी और सज़ा का हकदार है। स्त्री होने पर ये खतरे दैहिक और मानसिक भी हो सकते हैं। सुशीला टाकभौरे भी लिखती हैं, "गरीब-अछूत की बेटी की इज्जत सरेआम कभी भी लूटी जा सकती है। अक्सर गांवों में ऐसी घटनाएं होती रहतीं।" कॉलेज से घर लौटते समय कुछ दबंग सवर्ण युवाओं ने उन्हें रास्ते में अकेले पाकर घेर लिया था। भारत के किसी भी हिस्से में रहने वाली दलित जातियां हों, सभी दबंग जातियों की दबंगई से आतंकित रही हैं।

सामान्यतः माना जाता है यदि जातिगत पेशे को छोड़ दिया जाए तो दलित और अन्य समाज में उन्हे हेय दृष्टि से नहीं देखा जाएगा। लेखिका का आत्मकथन इस भ्रम को तोडता है, "कॉलेज की प्राध्यापिका होने के बावजूद भी मैं अछूत थी।" दलित आत्मकथाएं इस कथन पर बारंबार विचार करती हैं। "अन्य जाति के लोग भी पिगरी फॉर्म चलाकर लाखों का व्यापार व्यवसाय करते हैं। वे उद्योगी और व्यापारी कहलाते हैं, मगर हम जाति के कारण घृणा के पात्र बने रहे।" कदाचित इससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि बुराई जातिगत पेशों में नहीं बल्कि सवर्ण समाज में 'जातियों' को लेकर रही। कारण स्पष्ट थे, बहिष्कार कर संसाधनों पर वर्चस्व और सत्ता की कामना।

दलित लेखिकाओं को बाहरी समाज व्यवस्था के साथ-साथ घरेलू आंतरिक व्यवस्था पितृसत्ता से भी टकराना पड़ता है। यह आंतरिक टकराहट गैर-दलित स्त्री लेखिकाओं में भी मौजूद है, पर बाहरी समाज व्यवस्था का यह दंश सिर्फ दलित लेखन का वैशिष्ट्य है। दलित आत्मकथाओं में पुरुष लेखक सिर्फ परंपरागत समाज व्यवस्था में अपने अधिकार, अपनी अस्मिता की मांग करते हैं किंतु लेखिकाएं परिवार एवं समाज में व्याप्त पितृसत्ता के दंश से लहुलुहान है। उनके मन-मस्तिष्क में पुरुष दायरे के अतिरिक्त अन्य प्रश्न भी कोंचते हैं-"जिस माँ ने जन्म दिया, पाला-पोसा उसका नाम समाज में बेटा-बेटी के नाम के साथ नहीं जुड़ता, पति का नाम और सरनेम जुड़ता है, पिता का नाम और पहचान छूट जाते हैं। इसीलिए बेटी परायी वस्तु मानी जाती है। सामाजिक रीति-रिवाज, परंपराओं के कारण ही समाज में बेटियों के प्रति ऐसी मानसिकता व्याप्त रही है।"

जेंडर भेद की निर्मित्ति बालमन में एकाएक ही नहीं होती वरन् समाजीकरण की प्रक्रिया से इसका प्रारंभ हो जाता है। सामाजिक व्यवहार संस्कार के रूप में व्यवहार में शामिल हो जाता है। इस प्रकार संस्कार रूप में समाया भेद सहज और स्वाभाविक प्रतीत होने लगता है। "समाज में बेटियों की अपेक्षा बेटों को अधिक सम्मान और महत्त्व दिया जाता था। जिन लडकियों के भाई नहीं रहते थे परिवार के लोग और रिश्तेदार उन्हें बुरा कहते थे।...जिस मां को बेटा नहीं होता था वह तो मानो अपने-आप को दुनिया की सबसे दुखी अभागी स्त्री मानती।...बेटे के लिए अनेक व्रत रखे जाते, पूजा की जाती, मन्नतें मांगी जाती। चाहे जितनी बेटियां हो जाएं, बेटा होना ही चाहिए। बेटा होने पर ही उनके मातृत्व को महत्व मिलता था।" इस भेद भाव से अनेक प्रश्न स्त्री के भीतर जन्मते हैं। चिंतन की प्रक्रिया में वह इस समाज व्यवस्था को अपने प्रति निर्मम पाती है। स्त्री की पहचान पति या पुत्रों के द्वारा होती है। उनका अपना अस्तित्व स्वीकारने के खतरों से बचने के लिए स्त्री से

उसकी पहचान ही छीन ली गई है। वह पहचानी जाती है तो पिता, पति या पुत्र की पहचान से। इसे सामाजिक मर्यादा के रूप में निभाया जाता है। मर्यादा की रक्षा स्त्री की जिम्मेदारी है। अतः उसके पक्ष से विद्रोह की संभावनाएं क्षीण हो जाती हैं। परिवार के भीतर पनपा स्त्री-पुरुष भेद बुराई के रूप में नहीं देखा जाता। बेटी को पराया धन मानना, बेटों को संपत्ति का उतराधिकारी और सर्वेसर्वा। संतानों से मां की पहनचान नहीं जुडती। संतान पिता की पहचान होती हैं और विवाह के पश्चात् स्त्री से पिता की पहचान भी छूट जाती है और वह पति की पहचान का हिस्सा होती है। इस मानसिकता को रीति-रिवाज और परंपराओं के माध्यम से बनाया, बचाया और बढ़ाया जाता है।

पितृसत्ता सभी वर्णो और जातियों में गहरे पैठी है। आत्मकथाकार पारिवारिक अनुभवों को बांचते हुए लिखती हैं-"घर परिवार में लड़कियों के लिए अनेक बंदिशें थीं। जवाब नहीं देना, ज्यादा नहीं बोलना, धीरे बोलना हर समय सिखाया जाता था...पिता और भाइयों का मां अधिक ख्याल रखती थी, इस बात पर मैं मां से झगडा करती थी" पुरुष केन्द्रित समाज व्यवस्था के कारण दलित स्त्री का संघर्ष दोहरा हो जाता है। पुरुषों के प्रति अतिरिक्त मोह और बेटी के प्रति पराए धन की चौकीदारी करने का कर्तव्य। भले ही इसके लिए सामाजिक व्यवस्था का दोष हो किंतु इस की चोट सर्वप्रथम स्त्री पर ही होती है, चाहे वह मां के रूप में बेटियों को उनके अधिकार से वंचना में हो अथवा बेटी के रूप में बंचिता से। चोटिल तो स्त्री ही है।

विवाह के उपरांत पति-पत्नी के आपसी व्यवहार में, कार्यक्षेत्रों में पुरुषों द्वारा स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखना, उपेक्षित व्यवहार इत्यादि यह अत्यधिक गंभीर समस्या, गैर-बराबरी और कटुता के रूप में दिखाई देती है। लेखिका किसी व्यक्ति विशेष को दोष न देकर समाज व्यवस्था को इसका प्रमुख कारण स्वीकार करती हैं और 'शिक्षा, संघर्ष और संगठन' को सामाजिक समता के लिए अनिवार्य मानती है। निःसंदेह डॉ. अम्बेडकर के विचारों ने दलित चेतना और आंदोलन को प्रभावित किया है। पर दलित समाज इससे अछूता ही नजर आता है जब उसकी जागृति 'ईश्वर-भक्ति, पूजा और आडंबर' तक ही सीमित हो जाती है।

लेखिका पितृसत्ता को मजबूती प्रदान करने वाले कारकों में परंपरागत स्कूली पाठ्यक्रम, सिनेमा, धार्मिक दंत कथाओं, त्योहारों, रीति-रिवाजों की भूमिका को भी स्वीकारती है। ये सभी कारक धर्म के प्रति अधिक आस्थावान बनाते हैं, "हिंदी धार्मिक फिल्मों से और धार्मिक कथाओं से मैंनें यही सीखा था-पति बूढ़ा, बीमार, कोढ़ी, कलंकी, वेश्यागामी -कैसा भी हो, पति पूजनीय होता है।" महिलाओं को कष्ट सहने, त्याग, बलिदान, समर्पण, लज्जाशील और विनम्र बनने की सीख दी जाती है, "इन संस्कारों ने आदर्श के नाम पर मुझे कमजोर बनाया और दुख सहने के लिए बाध्य किया।...समाज में पत्नी पर तरह-तरह के अत्याचार करना आम बात है। ये बातें समाज में इस कदर व्याप्त हैं कि लोग इन्हें बुरा भी नहीं मानते। इन्हें मानों पति का अधिकार माना जाता है।"

निष्कर्ष- आधुनिक ज्ञान एवं अन्याय के प्रतिकार का सामर्थ्य ही था जिसने दलित समाज के लिए शिक्षा और सम्मान के दरवाजे खोले। यदि आधुनिक ज्ञान का मजबूत आधार न होता तो शायद परिदृश्य कुछ और होता। परंपरागत भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों को दलित बनाए रखने के अनेक उपक्रम किए गए। समाज का एक पक्ष दलित साहित्य के आइने में देखा जा सकता है। दलित साहित्य विभिन्न कलमों से निकली पीडाओं और सिसकियों की अभिव्यक्ति का साहित्य है। 'जूठन' वाल्मिकी समाज, 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' चमार समाज, 'मेरी पत्नी और भेडिया' जाटव समाज में मौजूद समस्याओं और स्त्रियों के गैर-जिम्मेदाराना प्रश्न को, साथ ही सामाजिक व्यवस्था में प्राप्त अन्याय और पीड़ाओं उकेरती है। 'शिकंजे का दर्द' में महार समाज में व्याप्त विसंगतियों और दलित स्त्री के संघर्ष और पितृसत्ता के दंश को साहित्य पटल पर उकेरती हैं। इन आत्मकथाओं में दलित समाज की अनेक छवियां मौजूद हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. सुशीला टाकभौरे, 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-13
2. सुशीला टाकभौरे, 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011,पृष्ठ-69
3. सुशीला टाकभौरे, 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-70
4. सुशीला टाकभौरे, 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-88
5. सुशीला टाकभौरे, 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-18
6. सुशीला टाकभौरे, 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-20
7. एच.एल.दुसाध, बहुजन डाइवर्सिटि का घोषणापत्र, पृष्ठ-59-60
8. सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-54
9. डॉ. धर्मवीर, बालक श्यौराजःमहाशिलाखंडों का संग्राम, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2014, पृष्ठ-17
10. सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-83
11. सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-111
12. सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-188
13. सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-57
14. सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-17
15. सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011,पृष्ठ-18
16. सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-134
17. सुशीला टाकभौरे 'शिकंजे का दर्द', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2011, पृष्ठ-36

****

समीक्षात्मक शोध आलेख

हिन्दी उपन्यास में स्त्री का लोकतंत्र

डॉ. विनोद कुमार विश्वकर्मा,
सहायक प्राध्यापक,
हिन्दी,
शासकीय स्वशासी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
एवं शोध अध्ययन केंद्र, सतना - (मध्य प्रदेश) 485001,

'' उपन्यास आज के साहित्य की सबसे प्रिय और सशक्त विधा है कारण यह है कि उपन्यास मनोरंजन का तत्व तो अधिक रहता ही है, साथ ही साथ जीवन को उसकी बहुमुखी छवि के साथ व्यक्त करने की शक्ति और अवकाश होता है इसमें। साहित्य की समस्त सर्जनात्मक विधाओं में उपर्युक्त दोनों गुण विद्यमान रहते हैं, किन्तु अन्य विधाएँ अपने-अपने विशिष्ट स्वरूप के कारण इन दोनों तत्वों का प्रस्फुटन उतना नहीं कर पाती जितना उपन्यास कर पाता है।'' [1]उपन्यास सशक्त एवं प्रिय विधा तो है ही, लेकिन इसके इतिहास को यदि व्यापकता एवं गहराई से देखा जाय तो इसने समाज में -क्रांतिकारी परिवर्तन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

स्त्री चिंतन की चुनौतियां और हिंदी उपन्यास । मेरा विषय दो भागों में विभाजित है , इसका पहला भाग है स्त्री चिंतन की चुनौतियां और दूसरा भाग है हिंदी उपन्यास । स्त्री चिंतन की चुनौतियों पर बोलने से पहले मैं अपनी मां को प्रणाम करना चाहूंगा जिन्होंने मुझे जीवन दिया और जीवन जीने की समझ विकसित की। वस्तुतः स्त्री चिंतन का जो शुरुआत है वह मेरी मां कलावती विश्वकर्मा के द्वारा ही मुझे प्रदान किया गया है ।

जैसे-जैसे हम समाज को जानने का प्रयास करते हैं तो समय संस्कृति और इतिहास को जानने का प्रयास शुरू होता है । सबसे बड़ा प्रश्न यह उठता है कि आखिर वर्तमान समय में स्त्री चिंतन की जरूरत क्या है ? जबकि आज विश्व लोकतांत्रिक दौर से गुजर रहा है तथा किसी भी संस्कृति को आज अपनी संस्कृति नहीं कहा जा सकता है । आज हम वैश्विक संस्कृति के दौर से गुजर रहे हैं तो क्या इस वैश्विक संस्कृति के दौर में अपने आपको भारतीय और वैश्विक समाज में स्त्री उतना ही सुरक्षित पाती है जितना पुरुष पाता है ? या फिर स्त्री और पुरुष के संघर्षों को स्त्री चिंतन की ओर ले जाना चाहिए या कोई बीच का रास्ता निकालना चाहिए। इन सारे प्रश्नों पर मैं विचार करूंगा।

प्राकृतिक रूप से यदि देखा जाए तो स्त्री और पुरुष दोनों ही स्वतंत्र है । जीवन के उतने ही क्षेत्र उन्हें मिले हुए हैं , जितने क्षेत्र स्त्री के पास है उतने ही क्षेत्र पुरुष के पास है तो स्त्री चिंतन की जरूरत क्या है ? स्त्री विमर्श की जरूरत क्या है ? लेकिन जब व्यापकता और गहराई से देखा जाए तो समझ में आता है कि हमारा समाज दरअसल दो भागों में बटा हुआ है , जबकि यह दो धड़ नहीं होने चाहिए थे । एक ध्रुव स्त्री का है और एक ध्रुव पुरुष का है । और इन दोनों में यदि हम देखते हैं तो स्त्री के साथ सामाजिक , सांस्कृतिक , आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से धोखा हुआ है क्योंकि प्राकृतिक रूप से जब स्त्री और पुरुष दोनों स्वतंत्र हैं तो फिर स्त्री को ही क्यों सारी नैतिकताओं , सारे रीति-रिवाजों , सारी रूढ़ियों में कैद कर दिया गया है ?

अगर हम भारत में स्त्री चिंतन के विकास की दृष्टि से देखें तो वैदिक युग में स्त्रियां अधिक स्वतंत्र थी। अगर आज का युग और वैदिक युग को ध्यान में रखा जाए तो उस समय की जो स्त्रियां थी उनमें से कुछ स्त्रियों के नाम हमारे सामने आते हैं , जैसे मैत्रेई हैं , गार्गी हैं, लोपामुद्रा हैं इत्यादि । लेकिन जैसे-जैसे हमारे समाज में व्यक्तिगत संपत्ति की अवधारणा का विकास हुआ और कबीला युग तक यदि देखा जाए तो स्त्री और पुरुष दोनों स्वतंत्र थे। लेकिन धीरे-धीरे स्त्री को घर का कार्य मिलने लगा और पुरुष बाहर के काम करने लगा । इस कारण से स्त्री घर के काम तक सीमित हो गई । कबीला युग तक तो स्त्रियां कुछ ठीक थी लेकिन जैसे-जैसे नगर और राज्यों का निर्माण होता चला जाता है , मनुष्य राजतंत्र युग तक आ जाता है, सामंती युग तक आ जाता है तो स्त्री के जीवन को एक तरह से नैतिक बंदिशों और सामाजिक बंदिशो के रूप में बांधने का प्रयास किया जाता है । और यह बांधने का प्रयास न केवल भारत में हो रहा था बल्कि विश्व के सभी देशों

अमेरिका , रूस , चीन इत्यादि देशों में भी यह देखने को मिल रहा था।

भारत में जो स्त्री संबंधी नियम बताए गए हैं उसमें मनुस्मृति का नाम बहुत उच्चता से लिया जाता है। मनुस्मृति में स्त्री जीवन के लिए अनेक तरह से निषेध कर दिए गए हैं , उसके नैतिकता के मानदंड बनाए गए हैं। पुरुष ने शास्त्र रचे और स्त्रियों को उसमें कैद कर दिया क्योंकि शास्त्र का रचनाकार पुरुष ही था। इसलिए उसने अपने लिए अधिक सुविधाएं ली और स्त्री के लिए कम सुविधाएं दी। जीवन स्त्री जीती रही लेकिन अगर हम अपने भारतीय इतिहास को देखते हैं तो चाहे पृथ्वीराज का युग हो या इसके पहले का युग हो ,स्त्रियों की स्थिति में बहुत अधिक सुधार दिखाई नहीं देता है।

मध्यकाल तक आते-आते स्त्री की स्थिति ऐसी हो गई थी कि स्त्री अब व्यक्ति नहीं रह गयी थी वह वस्तु के रूप में परिवर्तित हो गई थी। इसलिए उसको खरीदा और बेचा जाने लगा था। स्त्री चिंतन में यह समय बहुत नराधम समय था या बहुत ही कष्ट पूर्ण समय था। जिसने स्त्रियों को एक ऐसी दशा में लाकर खड़ा कर दिया था जिसमें स्त्री वस्तु का रूप धारण कर चुकी थी। व्यक्ति से वस्तु में बदल जाना वास्तव में स्त्री के लिए एक बहुत दुखद स्थिति थी।

मध्यकाल में धर्म , दर्शन , राजनीत , शास्त्र सब स्त्रियों के विरोधी हो गए थे। एक पाश्चात्य विचारक का कथन है कि - 'स्त्री पैदा नहीं होती स्त्री गढ़ी जाती है ,स्त्री की कंडीशनिंग होती है।' पैदा होते ही मां और अन्य जो लोग होते हैं , बेटियों को एक विशेष कार्य के लिए उत्पादित करते हैं। ये मध्यकाल की स्थिति थी जिसमें स्त्री का शरीर , स्त्री का प्रेम , स्त्री का धन सब कुछ पुरुष के हाथ में चला गया था। पुरुष ही स्त्री का नियंता होता था , पुरुष ही स्त्री का आदि और अंत होता था। मनुस्मृति के अनुसार स्त्री कब-कब किन-किन पुरुषों के हाथ में रहेगी तभी वह सुरक्षित रहेगी ऐसा कहा गया है। मध्यकालीन एक कवि ने कहा है कि यदि स्त्री को स्वतंत्रता दे दी जाए तो वह बिगड़ जाती हैं। ऐसी भी क्या बात है कि स्त्री को स्वतंत्रता दे दी जाए तो वह बिगड़ जाती है ?

आप देखेंगे कि जितने भी रीति-रिवाज हैं सब स्त्रियों को ढकने के लिए हैं। जैसे पर्दा प्रथा है ,बाल विवाह है , सती प्रथा है। स्त्री का जो मापदंड है लिंगभेद पर आधारित है तथा पतिव्रता होने का जो मापदंड है। वह ठीक नही है। मध्यकालीन समय में आपने कभी नहीं देखा होगा कि कोई पुरुष स्त्री के मरने पर सता हुआ हो या फिर किसी पुरुष ने अपनी पत्नी के मरने पर आजीवन विवाह ना किया हो। ऐसी स्थितियां सामाजिक विकास की दृष्टि से स्त्री, पुरुष समानता की दृष्टि से बहुत ही विखंडन कारी थी।

किसी भी तरह का कोई सहयोग स्त्री को नहीं मिल पा रहा था , स्त्री को केवल एक पुरुष से प्रेम करने की आजादी थी लेकिन पुरुष को अनेक स्त्रियों से प्रेम करने की आजादी थी। हमारा जो धार्मिक परिदृश्य है जिसमें हमारे महापुरुष राम और कृष्ण के चिंतन की विचारधारा का प्रभाव हमारी समाज में दिखाई देता है।जिसमें राम के द्वारा भी स्त्री के मानवीय मूल्यों को पूरी तरह से नहीं निभाया गया। अगर यह माना जाता है कि राम ईश्वर के अवतार हैं , मनुष्य के अवतार में जन्मे हैं तो सभी कुछ नियमों और परंपराओं को तोड़कर के भी स्त्री के पक्ष में खड़ा होने का प्रयास होना चाहिए था। अगर हम कृष्ण के चरित्र को देखते हैं तो उन्होंने राधा को सामाजिक परिधि से तो बाहर निकाला लेकिन राधा को अपने साथ नहीं रख सके। तो वहीं से कई सारे प्रश्न खड़े हो जाते हैं जो स्त्री चिंतन की पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।

हम यह देखते हैं कि मध्यकालीन समाज में स्त्री की स्वतंत्रता की वजाय स्त्री की कमनीयता को विकसित किया गया और उसको केवल शरीर मान लेने की मान्यता तक सीमित कर देने का भाव दिखाई देता है।

जिस समाज में स्त्री विकसित नहीं होगी, जिस समाज में स्त्री पूरी तरह से संचालित नहीं होगी , जिस समाज में स्त्री के स्वतंत्रता की बातें नहीं होंगी वह समाज पूरी तरह से स्वतंत्र और सामाजिक रूप से विकसित नहीं माना जा सकता है। इसका कारण यह है कि स्त्री आधी दुनिया है। प्रख्यात आलोचक और उपन्यासकार राजेंद्र यादव का कहना है कि - 'स्त्री-पुरुष की निगाह में दो तरह की होती है कमर के नीचे की स्त्री , और कमर के ऊपर की स्त्री। कमर के नीचे की स्त्री से पुरुष ज्यादा प्यार करना चाहता है , उसके दिमाग बुद्धि से वह दूर ही रहना चाहता है।' ऐसी स्थितियां हमें स्त्री के परंपरावादी स्वरूप की ओर ले आती हैं।

स्त्री का प्रथम परंपरावादी स्वरूप वैदिक युग में था वह बहुत अच्छा था लेकिन वह मध्यकाल में बिगड़ गया। आधुनिक काल में स्त्री की स्थिति में स्वतंत्रता की आहट सुनाई देती हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजों के आगमन के बाद

जो भारतीय रूढ़िवादी परंपरा थी , सामाजिक परंपरा थी उस पर गहरी चोट हुई । जैसे राजा राममोहन राय , दयानंद सरस्वती आदि ने स्त्री के सुधार के बारे में बातें की । सती प्रथा , बाल विवाह प्रथा , पर्दा प्रथा आदि के विरोध की बातें शुरू हो गई थी । हम यह मानकर चलते हैं कि 19वी सदी से आधुनिकता की शुरुआत होती है या आधुनिक स्थितियों का उद्भव होने प्रारंभ हो जाते हैं।

जब पुरानी स्थितियों में हम नयापन खोजने का प्रयास करते हैं तब हम आधुनिकता के पास जाते हैं। आधुनिक समय में स्त्री जीवन और चिंतन की शुरुआत तब होती है जब हम 1850 ई. से यह देखने लगते हैं कि हमारा समाज धीरे-धीरे बदल रहा है। स्त्री के आकाश का निर्माण होना शुरू हो गया है। ऐसे में मुझे सुशीला टाक भौरे की कविता की दो पंक्तियां याद आती हैं - ' लोग भूकंप की बात करते हैं / स्त्री ज्वालामुखी हो सकती है / यह तो सहज बात है।'

पुरुष और स्त्री में किसी भी तरह की असमानता नहीं है। जीवन और संस्कृति के चरण में दोनों ही एक साथ रह कर के अपने जीवन का विकास कर सकते हैं , इसके लिए प्रयास भी इसी समय शुरू हो जाते हैं।

हम भारतीय चिंतकों में देखते हैं तो सावित्रीबाई फुले, ताराबाई शिंदे , पंडिता रामाबाई और अज्ञात हिंदु महिला जिन्होंने 'सीमंतनी उपदेश' लिखा इनका नाम प्रमुख रूप से सामने आता है । 'सीमंतनी उपदेश' में अज्ञात हिन्दू महिला लिखती हैं -' ऐसा क्या हो जाता है कि पुरुष के मर जाने से स्त्री आधी हो जाती है और ऐसा क्या नहीं होता कि स्त्री के मर जाने से पुरुष आधा नहीं होता है।' उन्होंने बड़ी चतुराई से समाज को बदलने का प्रयास किया। हम यह देखते हैं कि सावित्रीबाई फुले ज्योतिबा फुले जी की पत्नी थी, वह स्त्रियों को शिक्षा देने के लिए जाती थी ,पढ़ाने के लिए जाती थी तो कुछ लोग उनके ऊपर गोबर फेंकते थे। कुछ विशेष जातियों के लोग नहीं चाहते थे कि स्त्रियों को शिक्षा मिले। तो ऐसे लोग उनके ऊपर गोबर फेंका करते थे , लेकिन कभी भी सावित्रीबाई फुले ने पलटकर नहीं देखा कि किस ने उनके ऊपर गोबर फेंका है। जबकि वह दो साड़ियां लेकर जाती थी एक साड़ी जो रास्ते में गंदी हो जाती थी उसे स्कूल में बदल कर के फिर बेटियों को पढ़ाया करती थी। ऐसी शुरुआत पंडिता रामा बाई ने भी किया। अगर हम महादेवी वर्मा के एक कथन को लेकर चलते हैं जो 'श्रृंखला की कड़ियां' उनकी बहुत प्रसिद्ध पुस्तक है , जिसमें उन्होंने स्त्री जीवन से, स्त्री की स्वतंत्रता से जुड़े हुए अनेक प्रश्न उठाए हैं। जिसमें उन्होंने कहा है कि - 'पुरुष स्त्री को अपने घर में ठीक उसी प्रकार रखना चाहता है जिस तरह से वह घर में भगवान की छोटी सी मूर्ति रखता है। वह भगवान को रोली चंदन चढ़ाता है, अगरबत्ती देता है ,अपनी मर्जी के अनुसार रोली और चंदन चढ़ाता है। अगर भगवान कहे कि मुझे ₹500 का या इससे अधिक मूल्य का प्रसाद चढ़ाओ तो वह भगवान को निकाल बाहर कर देगा। उसी तरह से वह स्त्री को गहने देता है , कपड़े देता है अगर स्त्री अधिक मांग करती है, इससे अधिक तो वह उसे घर से बाहर निकाल देता है।'

19वीं शताब्दी के अंत तक हम यह देखते हैं कि इंग्लैंड, अमेरिका आदि देशों में स्त्री मुक्ति आंदोलन शुरू हो चुके थे। जिसमें सिमोन द बोउवार की एक महत्वपूर्ण पुस्तक है जिसका हिंदी में अनुवाद हुआ है 'स्त्री उपेक्षिता' (The Second Sex 1949 ई. Simone de Beauvoir) के नाम से। इसमें कुछ अन्य विदेशी रचनाकार हैं जर्मन ग्रेयर हैं , बैट्री फ्रिडन हैं, वर्जिनिया वुल्फ इन्होंने स्त्री मुक्ति के लिए विशेष रूप से कार्य किया है।

स्त्री मुक्ति एक वह विचारधारा है जिसमें पारंपरिक सोच से हम अलग सोचते हैं , जिसमें पारंपरिक चिंतन से नई दृष्टि लाने की कोशिश करते हैं। यानी जिन-जिन अवस्थाओं में स्त्री को जंजीरों में जकड़ दिया गया है उन-उन अवस्थाओं से स्त्री को मुक्त करने का प्रयास ही स्त्री चिंतन है। और इसके समक्ष जो सबसे बड़ी चुनौती है वह है मध्यकालीन परंपरावादी सोच। जिसमें स्त्री को सामाजिक रूप से हीन , कुलक्षिणी, कुलटा आदि नामों से जाना जाता है।

सबसे महत्वपूर्ण हैं यह है कि सबसे पहले हमें अपनी दृष्टि बदलने पड़ेगी , स्त्री चिंतन की दृष्टि से यह भी हमारे लिए बहुत जरूरी हो जाता है। क्योंकि जिस तरह से स्त्री की कंडीशनिंग होती है उसी तरह से पुरुष की भी कंडीशनिंग होती है। बचपन से ही हमें बताया जाता है कि पुरुष श्रेष्ठ है, और स्त्री हीन है।

अगर हम हिंदी उपन्यास के विकास के प्रथम चरण की बात करें जिसे मैं मानता हूं 1882 ई. - 1920 ई. तक।

जिस समय 'सीमंतनी उपदेश'1882 ई. प्रकाशित हुआ

और उसमें स्त्री मुक्ति के बारे में बातें की गई। उसी समय 1882 ई. में प्रकाशित होता है हमारा हिंदी का प्रथम उपन्यास 'परीक्षा गुरु' लेकिन इसमें स्त्री चिंतन का कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई देता। इसमें पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव और उस से मुक्त होने की बात कही गई है। इसका जो प्रमुख पात्र है मदनमोहन व पाश्चात्य संस्कृति में फंसा हुआ है स्त्री मुक्ति आंदोलन जैसा कुछ भी इस उपन्यास में मुझे तो दिखाई नहीं देता।

स्त्री चिंतन मुझे प्रेमचंद के उपन्यासों में ही दिखाई देता है। इसके पहले तो तिलस्मी और ऐय्यारी, जासूसी उपन्यास लिखे जा रहे थे। जैसे 'चंद्रकांता' है तिलस्मी और ऐय्यारी का उपन्यास। 'चंद हसीनों के खतूत' जैसे उपन्यास हैं।

प्रेमचंद ही वह व्यक्ति हैं जिन्होंने अपने उपन्यासों को सामाजिक धारा से ओर जोड़ा, चाहे वह वेश्यावृत्ति की प्रथा हो जिसे उन्होंने 'सेवासदन' में 1918 ई. में उठाया था और चाहे वह अनमेल विवाह की समस्या हो जिसे उन्होंने निर्मला में 1924 ई. में उठाया था।

जब अनमेल विवाह की बात आती है तो मुझे अनायास ही तो टालस्टाय का उपन्यास 'अन्नाकारेनिना' 1877 ई याद आता है। जिसमें अन्ना की उम्र 20 साल की है जबकि उसका पति करीब 40 वर्ष का है। यानी उन दोनों की आयु में 20 वर्ष का अंतर है। ऐसा ही कुछ परिदृश्य निर्मला उपन्यास में दिखाई देता है।

मध्यकालीन संस्कृति में हम अगर हम देखते हैं तो 7, 8 साल की लड़कियां होती थी या 13 साल की लड़कियां होती थी और 27 साल के पुरुष के साथ उनका विवाह कर दिया जाता था, उनसे कभी भी यह नहीं पूछा जाता था बाल विवाह के समय की वह विवाह करेंगी कि नहीं करेंगे। टालस्टाय का जो उपन्यास है अन्नाकारेनिना और प्रेमचंद का उपन्यास निर्मला दोनों ही एक ही कथाभूमि को प्रस्तुत करते हैं। लेकिन जितनी प्रगतिशील अन्ना है उत्तनी प्रगतिशील निर्मला नहीं है निर्मला एक सामाजिक बंधनों से बंधी हुई नारी है जबकि अन्ना स्वतंत्र होने की चाहत में अपने आप को खत्म कर देने का दम रखती है। प्रेमचंद के दर्शन को जो प्रगाढ़ रूप से प्रस्तुत करता है वह उपन्यास गोदान है जो 1936 ई. में प्रकाशित होता है। उसमें प्रेमचंद ने स्त्री के जीवन को विशेष तौर पर व्याख्यायित करने की कोशिश की है। इसमें ग्रामीण जीवन से स्त्रियां हैं - जैसे धनिया है, झुनिया है इन दोनों में परिवर्तन की आहट है। सिलिया है जो छोटी जाति की स्त्री है। गोदान में ही हम अगर ग्रामीण परिदृश्य को देखते हैं तो धनिया लगातार होरी को रूढ़ीवादी परंपराओं से, रूढ़िवादी मान्यताओं से अलग होने की बात करती रहती है। यानी वह प्रगतिशील महिला है लेकिन कहीं ना कहीं वह मर्यादाशील भी है। वह अपने पति की बात मानती है, उसमें परंपरा का प्रभाव है। झुनिया प्रगतिशील है, सिलिया को यदि हम देखते हैं जो छोटी जाति की है और वह गांव के पंडित से प्रेम करती है तो किस तरह से ग्रामीण लोगों में विरोध होता है।

दरअसल स्त्री चिंतन का जो मुख्य आधार है वह यह है कि सबसे पहले हमें अपने शहर और गांव के परिदृश्य को बदलना पड़ेगा। मानसिक रूप से, राजनीतिक रूप से, धार्मिक रुप से। क्योंकि धर्म यह कहता है कि यदि बेटा होगा तभी मोक्ष प्राप्त होगा धर्म यह नहीं कहता कि यदि बेटी होगी तो मोक्ष प्राप्त होगा I पित्र ऋण तभी मिटेगा जब बेटा होगा। यदि ऐसी भी कोई मान्यता है ? ऐसा भी कुछ होता है ? मुझे तो नहीं लगता । धर्म की आड़ में जिस तरह से बेटियों को या स्त्रियों को नीचा कर दिया गया है यह उचित बात नहीं है, बेटा और बेटी दोनों के पैदा होने से मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

शहरी स्तर पर देखें तो, गोदान में जो पात्र है जिसका बाद में बहुत विस्तार हुआ, पूरी कथा लेखन में, हिंदी उपन्यास लेखन में, वह है मालती। मालती एक ऐसा चरित्र है जिसमें प्रेमचंद ने अपनी बहुत बड़ी वैचारिकी को प्रस्तुत किया है। मेहता अपने भाषण में कहते हैं कि - 'स्त्रियों को पुरूषों की तरह झगड़ालू होने की क्या जरूरत है, स्त्रियों की अपनी जगह है, उनमें दया है, ममता है, करुणा है, प्रेम है तो ये स्थान छोड़कर के स्त्री क्यों पुरुष की तरह हिंसक और बर्बर होना चाहती है।' इस व्याख्यान से बहुत से लोग प्रसन्न चित्त होते हैं और बहुत से लोग प्रसन्न चित्त नहीं होते हैं। लेकिन मैं स्त्री मुक्ति को वहां पर देखता हूं कि जब मेहता मालती के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखते हैं तो मालती विवाह से इंकार कर देती है। कहीं ना कहीं विवाह में जो शोषण का दंश छिपा हुआ है उससे प्रेमचंद अपने पाठक को परिचित कराना चाहते हैं। लेकिन वह यह नहीं भूलते कि विवाह का जो आनंद है वह गोविंदी नामक पात्र में दिखाते हैं। समझाते हैं कि पारिवारिक विघटन में कोई विशेष महत्व नहीं है।

जैनेंद्र का 'सुनीता' (1935 ई.) उपन्यास ने मुझे बहुत

उद्वेलित किया। मुझे लगता था कि अगर यह उपन्यास कोई स्त्री लिखती तो क्या वैसा ही करती जैसा जैनेंद्र ने सुनीता और हरिप्रसन्न के प्रकरण में किया है। बिल्कुल प्यार के अंतिम चरण से पहले पुरुष को वापिस बुला लिया है जिस तरह से सुनीता हरी प्रसन्न को, उसे पाने के लिए, उसे प्यार करने के लिए आवाहन करती है, और हरी प्रसन्न उसकी नग्न शरीर को देखकर अपने आपको वापस कर लेता है। वह बहुत अटपटा लगता है। क्या एक पुरुष स्त्री की इच्छा को पूर्ण करने में सक्षम नहीं है ? अथवा पुरुष स्त्री को इस रूप में देखकर भयभीत हो जाता है कि वह स्वयं अपने प्रेम का निवेदन करे ? ऐसे कई प्रश्न यह उपन्यास हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

लेकिन जैनेंद्र की इस बात के लिए तारीफ करनी चाहिए की एक संभ्रांत पारिवारिक स्त्री सुनीता को उन्होंने प्यार करने और केवल सुनीता के रूप में प्रकट होने और अपने प्यार को प्रकट करने का हौसला दिया। जो अपने व्यक्तित्व को केवल अपने रूप में पाती है और प्रेम करने के लिए अपने आप को अपने पति से अलग एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्थापित कर लेती है। यह एक बहुत क्रांतिकारी बात है जो मुझे जैनेंद्र के इस उपन्यास में दिखाई देती है।

इस तरह से एक जो अगला उपन्यास है भगवती चरण वर्मा का जो 1934 ई. में प्रकाशित होता है और बहुत ही चर्चित हुआ जिसे हम 'चित्रलेखा' के नाम से जानते हैं। चित्रलेखा एक पतित स्त्री है और इसके माध्यम से पाप और पुण्य को बड़ी चतुराई से भगवती चरण वर्मा ने प्रस्तुत किया है। जिसमें यह कहने की कोशिश की है कि पाप और पुण्य जैसा कुछ नहीं होता सब समय की परिस्थितियां हैं न तो पुरुष अपवित्र है और न ही स्त्री अपवित्र है, दोनों सही जीवन है। योगी कुमार गिरि का जीवन भी सही है और दूसरा सामंत बीजगुप्त का भी।

हिंदी उपन्यास में स्त्री चिंतन की चुनौतियां की दृष्टि से मैंने दूसरा चरण 1940 ई. से 1995 ई. तक माना है। हिंदी उपन्यास करीब डेढ़ सौ से अधिक समय से लिखा जा रहा है। और यह बहुत विस्तृत है और व्यापक फलक लिए हुए हैं इसलिए इसे एक आलेख में व्याख्यायित कर पाना कठिन है। इस कारण मैं कुछ स्त्री पात्रों और उन उपन्यास लेखक और लेखिकाओं लेखों की चर्चा करूंगा जिन्होंने किसी न किसी माध्यम से स्त्री चिंतन की चुनौतियों से लोहा लिया है और स्त्री मुक्ति की बात की है।

अज्ञेय की 'शेखर एक जीवनी' (1941 ई. प्रथम भाग एवं द्वितीय भाग 1944 ई.) की शशि जो शोषण का शिकार है लेकिन आगे के 'नदी के दीप' की रेखा है जो भुवन से प्रेम करती है शारीरिक संबंध भी बनाती है लेकिन विवाह किसी अन्य से करती है।

यशपाल की 'दिव्या' (1945 ई.) में हम स्त्री चिंतन अगला चरण देखते हैं। क्योंकि यह उपन्यास स्त्री चिंतन की चुनौतियों से सीधे-सीधे टकराता है और यह प्रकट करने की कोशिश करता है की वस्तुतः समाज में स्त्री की जगह कहां है वह कितना स्वतंत्र है और वह किस तरह से स्वतंत्र हो सकती है।

दिव्या को लगता है कि जब सब ने ठुकरा दिया तो मुझे धर्म अपना लेगा। तब वह बौद्ध मठ में जाती है लेकिन उसे प्रवेश ही नहीं मिलता। उससे उसके स्वामी के बारे में पूछा जाता है। तब वह कहती है कि बुद्ध ने एक स्त्री को अपना लिया था। तो वहां कहा जाता है कि बुद्ध ने जिस स्त्री को अपनाया था वह वेश्या थी और वेश्या स्वतंत्र नारी होती है, तुम स्वतंत्र नहीं हो। इस तरह से हिन्दी उपन्यास का जो चरित्र है वह बदलनें लगता है।

दिव्या उपन्यास की नायिका है वह अपने पराक्रम से अपने द्वारा चयनित व्यक्ति का वरण करती है। अर्थ, ज्ञान सबको हासिल करती है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास बाणभट्ट की आत्मकथा (1946 ई.) में भी स्त्री मुक्ति की आहटें दिखाई देती हैं, जो काबिलेगौर है। भट्टिनी में स्त्री मुक्ति की छटपटाहट है। और जो बाणभट्ट कहता है कि - ' मैं स्त्री देह को देव् मंदिर के समान पवित्र मानता हूँ।' इस वाक्य को मैं उत्कृष्ट और विकासवादी मानता हूँ। पुनर्नवा (1973 ई.) उपन्यास में हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने कहा है कि - 'जब तक समाज में परिवर्तन नहीं होगा, जो सड़ी गली परंपराएं हैं उनको नष्ट नहीं किया जाएगा, तब तक समाज में नए अंकुर नहीं फूटेंगे।' शर्मिष्ठा के प्रेम के माध्यम से उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है।

इस दौर में जो एक उपन्यास बहुत ज्यादा चर्चित हुआ वह सुरेंद्र वर्मा द्वारा रचित 'मुझे चाँद चाहिए' (1993 ई.) है। 'मुझे चाँद चाहिए' एक ऐसा उपन्यास है जो स्त्री की आकांक्षाओं को बहुत ऊपर तक ले जाता है। शाहजहांपुर की सिलबिल जो मुंबई में

जाकर 'वन एक्ट प्ले' की बहुत बड़ी नायिका बनती है। वर्षा वशिष्ट के रूप में, वह बहुत उत्कृष्ट और स्त्री मुक्ति का व्यापक और संघर्षशील उदाहरण है।

इस उपन्यास में हम देख सकते हैं कि किस तरह से जब पुरुष विकास के पथ पर चढ़ता है तो इससे स्त्री प्रसन्न होती है, लेकिन जब स्त्री विकास के पथ पर चढ़ती है तो पुरुष किस तरह से अपने अहंकार को दबा नहीं पाता। और पूरे गैर रचनात्मक कार्य करता है इस उपन्यास का नायक हर्ष है, वह आत्महत्या कर लेता है। मैं इस पक्ष से सहमत नहीं हूं कि हर्ष आत्महत्या कर ले , लेकिन यह हमारी मानसिकता है, जिसको कथाकार ने दिखाया है।

अब तक मैंने जो प्रमुख पुरुष लेखक हैं उनकी बात की है , अब मैं स्त्री मुक्त से संबंधित विचारधारा को आगे बढ़ाने में जिन स्त्री लेखिकाओं मैं अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है उनमें से कुछ प्रमुख की चर्चा करूंगा। जिसमें सबसे पहला नाम मैं नाम लेना चाहूंगा कृष्णा सोबती और आपका उपन्यास 'सूरजमुखी अंधेरे के'। जो 1972 ई. में प्रकाशित होता है। इसमें उपन्यास की नायिका रत्ती है। उसके साथ बचपन में बलात्कार हो जाता है और जवान होने तक वह इससे कैसे लड़ती हैं, कैसे किसी से प्रेम नहीं कर पाती इसको दिखाने का प्रयास इसमें किया गया है। उसके अंतर्मन की पीड़ा और बलात्कार जैसे दर्द को अंदर ही अंदर खेलने के संघर्ष को यह उपन्यास बहुत व्यापक तरीके से प्रस्तुत करता है जिससे यह पता चलता है कि वास्तव में स्त्री जीवन मानवीय समाज में कितना कठिन और अनेक चुनौतियों भरा है।

'मित्रो मरजानी' जो 1967 ई. में प्रकाशित हुआ। ईसमें यह दिखाने का प्रयास किया है कि जो 'मित्रों मरजानी' की मित्रों है या सुमित्रा है, वह किस तरह से यह प्रयास करती है कि वह मुक्त हो जाए । क्योंकि उसका पति शारीरिक रूप से संबंध बनाने में सक्षम नहीं है। ऐसे में वह समाज से विद्रोह करती है और एक दूसरे पुरुष से संबंध और प्यार पाने का प्रयास करती है।

उषा प्रियंवदा का जो उपन्यास है 'पचपन खंभे लाल दीवारें' यह 1961 ई. में आया , 'रुकोगी नहीं राधिका' 1966 ई. में आया। इन दोनों ने स्त्री चिंतन को विकसित किया और स्त्री की स्वतंत्रता को विकसित करने में योगदान प्रदान किया।

मृदुला गर्ग के दो उपन्यास बहुत चर्चित हैं हुए एक है 'चित्तकोबरा' जो 1979 ई.में आया ,दूसरा है 'कठगुलाब' जो 1986 ई. में आया। 'कठगुलाब' में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि जो जमीन पुरुष को मिलती है वहीं जमीन स्त्री को नहीं मिलती। स्त्री का बीज बड़ी मुश्किल से उगता है जो कठगुलाब का बीज है वह बड़ी मुश्किल से धरती पर उगता है। उसी तरह से जीवन के धरती पर स्त्री का विकास बहुत संघर्ष के बाद होता है, ऐसा हमारा समाज क्यों करता है ?

'ठीकरे की मंगनी' जो नासिरा शर्मा का 1979 ई. में प्रकाशित बहुत महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसमें नायिका ने समाज से विद्रोह किया है। 'आपका बंटी' (1971 ई) में मन्नू भंडारी ने बच्चे की समस्या और स्त्री प्रेम की समस्याओं को बहुत गहराई से उठाने का प्रयास किया है। 'महाभोज' (1979 ई.) में राजनैतिक और आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिओं को विकसित करने का प्रयास किया है।

ममता कालिया का 'बेघर' उपन्यास जो 1971 ई. में प्रकाशित होता है , एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। जिसमें जीवन को बदलने की कोशिश की गई है। ममता कालिया ने 'बेघर' उपन्यास में स्त्री की यौन पवित्रता का जो मानदंड बनाया गया है , उस पर प्रश्नचिन्ह उठाने की कोशिश की है कि क्या स्त्री की योनि ही पति के अलावा किसी दूसरे पुरुष के साथ प्रेम करने से अपवित्र हो जाती है ? पुरुष का जननांग अपवित्र नही होता ? ऐसा प्रतिमान किसने बना दिया कि पुरुष अनेक स्त्रियों से प्रेम करता रहे और स्त्री प्रताड़ना झेलती रहे। एक पुरुष के पल्ले बंधी रहे। उसकी ही यौन शुचिता अथवा यौन पवित्रता पर प्रश्न उठाए जाएं। पुरुष के जननांग पवित्रता पर कोई प्रश्न ना उठाया जाए। बार-बार स्त्री को पुरुष के साथ जीवन जीते हुए यह क्यों लगता है कि जिस घर में वह रह रही है वह घर उसका नहीं है, वह बेघर है क्यों ?

1995 ई. से लेकर 2020 ई. तक को मैं हिंदी उपन्यास के विकास को अगले चरण के रूप में देखता हूं।

1970 ई. के आस-पास भारतीय और वैश्विक परिदृश्य में उत्तर आधुनिकता नें अपनी पकड़ जमानी शुरू कर दी थी। गाँव परिवर्तित हो रहे थे , शहर परिवर्तित हो रहे थे। इस तरह से अब चूकि विभिन्न विमर्शों का दौर शुरू हो रहा था। जैसे स्त्री, दलित , आदिवासी , किसान, किन्नर आदि विमर्शों का। इनमें कहीं ना कहीं स्त्री के जीवन को रेखांकित करने का प्रयास किया

गया। अब आदिवासी स्त्री , संभ्रांत ,स्त्री और स्त्री तेरी कोई जाति नहीं ऐसे भी प्रश्न उठाए गए हैं। यह समय हिंदी उपन्यास में स्त्री चिंतन की धारा में व्यापक परिवर्तन और नए संघर्ष एवं नई सोच के उदय का भी समय है। उत्तर आधुनिकता के आगमन महा आख्यानों के नकार, इतिहास, संस्कृति, धर्म और राजनीति में परिवर्तन की नई आहटें जो समाज में दिखाई दे रही थी वह किसी न किसी रूप में हिंदी उपन्यास में भी दिखाई देने लगती हैं।

मैत्रेयी पुष्पा का 'इदन्नमम' उपन्यास जो 1994 ई. में आता है, उसमें मंदाकिनी नामक पात्र अपने समय और समाज से लड़ती है और यह दिखाने का प्रयास किया जाता है कि किस तरह से एक अकेली स्त्री अगर समाज में अकेले अपना जीवन स्थापित करने की कोशिश करे तो किस तरह से उसे प्रश्न भरी निगाहों से देखा जाता है।

इस तरह से देखा जाता है कि जरूर उसके किसी दूसरे से सम्बंन्ध होंगे , उसकी प्रगति को नहीं देखा जाता।

सारंग जो मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'चाक' की नायिका है। यह उपन्यास 1997 ई. में प्रकाशित हुआ। सारंग एक गांव में सरपंच है। हमारे यहां लोकतंत्र में सबसे बड़ी त्रासदी है कि लोकतंत्र में पत्नी सरपंच हो जाती है और पति सरपंच रहता है। पत्नी अंगूठा बस लगाती है या हस्ताक्षर करती है। पति ही सब कुछ करता है।

लेकिन 'चाक' उपन्यास में मास्टर श्रीधर के सहयोग से सारंग अपने व्यक्तित्व को उभारती है और सभी राजनीतिक फैसले लेती है वह एक संघर्षशील स्त्री के रूप में प्रकट होती है जो केवल एक रबर स्टांप नहीं है बल्कि बल्कि अपने सोच और व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलुओं को विकसित करते हुए वह गांव के विकास और राजनैतिक बदलाव में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सामाजिक रुप से भी वह एक क्रांतिकारी स्त्री है।

मास्टर श्रीधर सारंग से प्रेम करता है लेकिन कहने से ही चकता है यह बात सारंग को पता है इसलिए वह मास्टर श्रीधर को यह कहती है कि - ' अगर तुम्हें मेरे शरीर को देख करके खुशी मिलती है , तुम इसे पाना चाहते हो, तो तुम पाओ।' और वह उसके साथ सहवास करने से भी नहीं हिचकती है।

स्त्री विमर्श यहां से और विकास की ओर जाता है। मैत्रेयी पुष्पा ने अल्मा कबूतरी जैसे महत्वपूर्ण उपन्यास को लिखकर के आदिवासी जीवन को भी सामने रखा है। किस तरह कबूतरा जनजाति है , कैसे पूरी की पूरी जाति को ही अपराधी घोषित कर दिया गया है। इस प्रश्न को उठाने का प्रयास किया है। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने एक उपन्यास में यह दिखाया है कि जब पुरुषों के साथ बलात्कार होता है तो फिर क्या होता है , क्या उसे वैसे ही समाज की वितृष्णा झेलनी पड़ती है, जैसे एक लड़की को झेलनी पड़ती है ? ऐसे अनेक प्रश्न मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास में हमें देखने को मिलते हैं। हिंदी उपन्यास में 21वीं शताब्दी की दहलीज पर मैत्रेयी पुष्पा का आगमन वास्तव में इसमें बृहद परिवर्तन करता है और स्त्री चिंतन की चुनौतियों से लड़ते हुए इसके लोकतांत्रिक आधारों की तलाश कर सही मायने में स्त्री चिंतन में लोकतंत्र का विकास करता है।

शरद सिंह का एक बहुत चर्चित उपन्यास पिछले 'पन्ने की औरतें' जो आदिवासी जीवन पर आया है। मध्यप्रदेश की बेड़नी जनजाति पर आधारित है और इनके जीवन और संस्कृति में भूमंडलीकरण के प्रभाव और विकास के इस दौर में अलग-थलग रह जाने की पीड़ा शासन-प्रशासन की ओर आशा भरी नजरों से देखना तथा उनके संघर्ष को इस उपन्यास में व्यापकता और गहराई से प्रस्तुत किया गया है जिससे आदिवासी स्त्री के जीवन को समझने और उसके व्यक्तिगत संघर्ष तथा सामाजिक संघर्ष को समझने में सहायता मिलती है।

अल्पना मिश्र का एक उपन्यास आया है 'अन्हियारे लछट में चमका' (1915 ई.)जो स्त्री के जीवन की तहो से उभरकर के एक स्त्री के निर्माण की कथा है। समाज की अनिर्माणकारी परंपराओं में डूबी हुई एक स्त्री अपने जीवन को कैसे विकसित करती है, यह इसकी अनुपम कथा है।

अल्पना मिश्र का दूसरा उपन्यास जो 2019 ई. में आया - 'अस्थिफूल'। इसमें झारखंड में स्त्री शोषण , सामाजिक शोषण को दिखाया गया है। और यह प्रयास किया है, यह बताया है कि स्त्री का जीवन उस फूल की तरह उगता है पहले उसे जलना पड़ता है। जो मृत्यु की अस्थियां होती हैं उसके फूल की तरह स्त्री के जीवन को जल करके फिर नया बनना पड़ता है। यानी स्त्री का जीवन कितना ज्यादा संघर्षशील है, यह हम उस उपन्यास में देख सकते हैं।

मनीषा कुलश्रेष्ठ का उपन्यास ' मल्लिका' 2019 ई. में आया। मल्लिका भारतेंदु हरिश्चंद्र की प्रेमिका और विधवा थी। उनके प्रेम और उस काल की सामाजिक परिस्थितियों को विकसित करते हुए उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया है कि मल्लिका के व्यक्तित्व का भारतेंदु पर किस तरह से प्रभाव पड़ा है।

हिंदी उपन्यास के विकास को स्त्री चिंतन की दृष्टि से देखने पर यह पता चलता है कि यह बहुत ही बड़ी बात है कि स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर के उच्च विचारधारा का विकास कर रहे हैं। चाहे वह पुरुष लेखकों के द्वारा लिखे गए उपन्यास हों या फिर स्त्री लेखकों के द्वारा लिखे गए उपन्यास हों स्त्री मुक्ति की विचारधारा को व्यापकता और गहराई से समझने का प्रयास इन दोनों के माध्यम से ही हुआ है। दोनों ही एक दूसरे के सहयोग हेतु साथ खड़े हुए दिखाई देते हैं।

हिंदी उपन्यास में स्त्री चिंतन के विकास के संबंध में बात करते हुए मैं कुछ ऐसी पुस्तकों का नाम लेना चाहूंगा जिनसे स्त्री विमर्श और स्त्री चिंतन का विकास करने का प्रयास किया गया है। जैसे अनामिका की एक पुस्तक है 'स्त्री विमर्श का लोकपक्ष' । रेखा कस्तवार की एक पुस्तक है 'स्त्री चिंतन की चुनौतियां' । हंस के कई अंके स्त्री मुक्ति पर निकाले गए थे। जिसमें राजेंद्र यादव और हंस पत्रिका का स्त्री मुक्ति आंदोलन में बहुत बड़ा योगदान है। अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य हंस का विशेषांक और कमला प्रसाद ने :स्त्री मुक्ति का सपना' नामक वसुधा का एक अंक निकाला था। तो इन लोगों ने भी स्त्री मुक्ति आंदोलन की एक आधार भूमि तैयार की।

उत्तर आधुनिकता और वैश्विक संस्कृति ने जीवन को बदल कर रख दिया है। लोकतांत्रिक संस्थाएँ हमारा दरवाजा खटखटा रही हैं। स्वतंत्रता, समानता ,न्याय ,भाईचारा एवं बहनचारा दोनों ही हमारा दरवाजा खटखटा रहे हैं। तो ऐसे में जब हम लोकतांत्रिक युग में आ गए हैं, तो चाहे वह आदिवासी स्त्री हो, चाहे वह दलित स्त्री हो, अब उसे स्वतंत्र होना चाहिए। जब हम लोकतांत्रिक आकाश को देख रहे हैं। विश्व में भारत सबसे बड़ा लोकतंत्र है , अमेरिका बड़ा लोकतंत्र है, इंग्लैंड में भी लोकतंत्र है। तो जब ऐसे विकसित और विकासशील देशों में लोकतंत्र है तो स्त्री को एक परिधि में क्यों बांधा जाए ? स्त्री की एक परिधि क्यों निर्धारित की जाए ? वह जातिवादी ,सामंती , धर्मवादी , संप्रदायवादी विकृतियों में कैद क्यों रहे ?

स्त्रियों पर अलका सरावगी का एक अच्छा उपन्यास आया है 'एक ब्रेक के बाद'। आदिवासी जीवन पर राजेंद्र अवस्थी का उपन्यास है 'जंगल के फूल' जो बस्तर में आदिवासी स्त्रियां हैं उनके जीवन में किस तरह से उनका शोषण किया जा रहा है उस पर प्रकाश डालने की कोशिश की है। रणेन्द्र का उपन्यास 'ग्लोबल गांव के देवता' , संजीव का उपन्यास 'फाँस' और रणेन्द्र का दूसरा उपन्यास 'गायब होता देश'। मैंने अपने उपन्यास 'ठहरा हुआ देश' में यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस तरह से विनी नामक लड़की अपने ही घर में अपने पिता से यह नहीं कह पा रही है कि वह एक लड़के से प्रेम करती है। इसके अंतर्द्वंद्व को दिखाने की कोशिश की है।

इस बीच हिंदी के एक बहुत चर्चित उपन्यासकार सत्यनारायण पटेल का उपन्यास 'गांव भीतर गांव' (2015 ई.) आया जिसने दलित स्त्री के जीवन को दिखाने का प्रयास किया । जहां मैत्रेयी पुष्पा ने 'चाक' में सारंग के जीवन को प्रस्तुत किया है वही सत्यनारायण पटेल ने 'गांव भीतर गांव' में यह दिखाने का प्रयास किया है कि जब एक दलित स्त्री सरपंच बनती है तो उसके साथ क्या-क्या होता है। दबंगों द्वारा उसका बलात्कार भी होता है और उसको अंत तक मार डाला जाता है। स्त्री होना और उस पर भी दलित होना कितना कष्ट प्रद है भारतीय समाज में - 'गांव भीतर गांव' उपन्यास में झब्बू के चरित्र के माध्यम से, उसके संघर्ष और भारतीय समाज व्यवस्था की बुराइयों को व्यापकता और गहराई से देखा जा सकता है । किस तरह से लोकतंत्र आकर भी हमारे गांवों में अभी तक नहीं आ पाया है, और लोकतांत्रिक अधिकारों की प्राप्ति किन वर्गों को हुई है। लोकतंत्र की प्राप्ति के लिए संघर्ष करते हुए झब्बू मृत्यु को प्राप्त होती है और उसका मरना निश्चय ही हमारे जनवादी लोकतांत्रिक मूल्यों की हार है । सत्यनारायण पटेल ने इस उपन्यास में स्त्री के इस द्वंद्व को बहुत स्पष्ट और सही तरीके से प्रस्तुत किया है।

स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श और अन्य विमर्शों से गुजर करके आज स्त्री के लिए नए चिंतन के आकाश को देखने की जरूरत है। हितेंद्र पटेल का एक बहुत महत्वपूर्ण उपन्यास है 'हारिल' इसमें स्त्री मुक्ति की बात की गई है और यह प्रश्न उठाने का प्रयास किया गया है कि हर बार स्त्री को ही क्यों कटघरे में डाल दिया जाता है।

लड़का अगर बाहर रहता है रात में तो उससे नहीं पूछा जाता

कि तुम कहां थे , अगर लड़की बाहर रह गई या पत्नी बाहर रह गई तो उससे जरूर ही यह प्रश्न पूछा जाता है कि तुम बाहर क्यों रही।

वर्तमान समय संवैधानिक स्वतंत्रता और कानून के माध्यम से समाज के विकास का है। सुप्रीम कोर्ट ने अपने एक निर्णय में एडल्ट्री को अपराध से मुक्त कर दिया है। स्त्री से संबंधित ऐसे अनेक कानून है चाहे वह दहेज प्रथा का कानून हो या चाहे वह बाल-विवाह का कानून हो जिसको हमारा संविधान लागू तो करता है लेकिन हमारा समाज उसे अपनाने में , अपने चिंतन में लाने की कोशिश नहीं करता।

किरण सिंह का उपन्यास 'शिलावहा' 2019 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने स्त्री चिंतन में एक महत्वपूर्ण योगदान देने की कोशिश की है। 'शिलावाहा ' उस समय का उपन्यास है जब अहिल्या और राम का चरित्र निर्मित हो रहा था । किरण सिंह ने अहिल्या के संदर्भ में राम के चरित्र और अहिल्या के चरित को व्याख्या करने की कोशिश की है। आप यह जानते हैं कि अहिल्या को गौतम ऋषि ने श्राप दे दिया था वह गौतम ऋषि की पत्नी थी और इस रूप में ही वह इंद्र से प्रेम करती थी। गौतम ऋषि के श्राप के बाद वह पत्थर की बन गई थी यह पौराणिक या रामायण में दी गई कथा हम सभी लोग जानते हैं किरण सिंह ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि गौतम की पत्नी थी अहिल्या यह तो सर्वविदित है लेकिन अहिल्या ने इंद्र से प्रेम किया , इंद्र सुंदर पुरुष थे और जो अहिल्या को श्राप मिला उसमें बल्कि वह श्राप नहीं था बल्कि उस को घर से निकाल दिया गया था । अहिल्या ने अपने समकालीन सामाजिक व्यवस्था का विकास किया , जिसमें उन्होंने आदिवासी जीवन को विकसित किया और तब राम ने जाकर के अहिल्या से दीक्षा ली। जबकि हम यह जानते हैं कि राम के पैर छूने से अहिल्या जीवित हो गई थी। वह पत्थर की थी , जबकि ऐसा कुछ नहीं था। किरण सिंह ने अपने उपन्यास 'शिलावहा' में यह दिखाने की कोशिश की है।

मुझे लगता है कि आज का युग लोकतंत्र का युग है। लोकतंत्र में चाहे स्त्री हो या चाहे पुरुष हो सब को विकसित होने का अधिकार है। जैसे हमारे पुराणों में शिव के अर्धनारीश्वर स्वरूप की कल्पना की गई है, तो शिव का जो अर्धनारीश्वर स्वरूप है उसमें आधी स्त्री है और आधा पुरुष है , दोनों ही मिलकर एक बनते हैं।

जिस तरह से पुरुष के लिए आकाश है उसी तरह से स्त्री के लिए भी खुला आकाश होना चाहिए, हमें पुराने मानदंडों को भूल कर के वर्तमान संवैधानिक , लोकतांत्रिक आस्था को लेकर के स्त्री के विकास को देखना चाहिए। समाज में आज भी परंपरावादी दृष्टियों का स्वरूप रह गया है लेकिन हमें इन से हटकर के नवीन लोकतांत्रिक विचार को स्थापित करना पड़ेगा। स्त्री के जीवन में स्वतंत्रता , समानता , प्यार इन लोकतांत्रिक प्रतिमानों को स्थापित करना पड़ेगा।

21वीं शताब्दी का दूसरा दशक अब पूर्ण हो रहा है, कई मायनों में 21वीं शताब्दी का पूर्वार्ध स्त्री चिंतन के विकास में महत्वपूर्ण रहा है ऐसा कहा जा सकता है कि समाज और साहित्य में स्त्री के बदले हुए स्वरूप को व्यापक रूप से आज देखा जा सकता है। आगे आने वाले दशकों में 21वीं शताब्दी में स्त्री चिंतन की दृष्टि से अब यह विकसित करने की जरूरत है कि सत्ता में स्त्री को स्थान मिले और अधिक से अधिक लोकतांत्रिक जीवन का निर्माण हो जिससे पुरुष और स्त्री दोनों सत्ता का संचालन करते हुए समाज का संचालन करें। जीवन और जीवन से जुड़ी नई आकांक्षाओं को विकसित करें। स्त्री चिंतन की दृष्टि से यह अगला दौर व्यापक और महत्वपूर्ण होगा ऐसा कहा जा सकता है ।

संदर्भ -

1.'हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा' ,रामदरश मिश्र, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण- ,2008पृष्ठ-11

****

'शिकंजे का दर्द' : दलित स्त्री का जीवन संघर्ष

-अखिलेश यादव
पीएचडी शोधार्थी हिंदी विभाग
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
मो. न. 8285797175

हिन्दी आत्मकथा लेखन के क्षेत्र में दलित आत्मकथाओं ने अपनी एक अलग पहचान बनायी है। दलित आत्मकथाएं दलितों द्वारा भोगे गए जातीयदंश, शोषण, संघर्ष, संकीर्णता, अपमान और गरीबी को बहुत ही बेबाकी के साथ चित्रित करती हैं। यह आत्मकथाएं घृणा, शोषण, अत्याचार से उपजे अनुभवों की जीवंत दस्तावेज़ हैं। इनमें समाज की भयावह एवं बदहाल परिस्थितियों का चित्रण है। भारतीय साहित्य की परम्परागत मान्यताओं पर दलित आत्मकथाएं सवालिया निशान खड़ा करती हैं। आत्मकथाओं की सटीक समीक्षा सिर्फ साहित्य मानदंडों पर नहीं हो सकती, इसके लिए सामाजिक, आर्थिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों की समझ जरूरी है, क्योंकि इसकी विषयवस्तु निजी अनुभवों के माध्यम से एक समाजशास्त्र को सामने लाती है। दलित आत्मकथाएं सामाजिक विषमता, विसंगति को प्रस्तुत करने के साथ अमानवीय स्थितियों में व्यक्ति के अदम्य साहस और जीवन संघर्ष को सामने लाती हैं । ये आत्मकथाएं सिर्फ दलितों के जीवन का वास्तविक चित्रण ही नहीं करती बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवस्था की क्रूरता पर प्रश्नचिन्ह लगाकर इसमें परिवर्तन का प्रयास करती है। इन आत्मकथाओं के माध्यम से दलित रचनाकार एक ऐसे समाज की मांग करते हैं जहाँ सभी मनुष्य को समानता का अधिकार मिले और उनके बीच श्रेष्ठता या हीनता का कोई भाव न हो। दलित आत्मकथाओं के महत्व एवं उपयोगिता को रेखांकित करते हुए सुशीला टाकभौरे लिखती हैं "अक्सर सवर्ण लोग दलित आत्मकथा पढ़कर दलितों के प्रति दया और सहानुभूति का भाव बताते के हैं। यह उनकी समझ का फेर है। असल में उन्हें मनुवादी-वर्णवादी, जातिवादी, अन्याय-शोषण की दुष्ट नीतियों पर लज्जित होना चाहिए। अपने पूर्वजो कुचक्रों और छल-कपट पर शर्म करनी चाहिए । दलित आत्मकथाएं मनुवादियों की कलंकित नीतियों को बताने वाली सच्ची कथाएं हैं।"

मोहनदास नैमिशराय की 'अपने अपने पिंजरे', ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', श्यौराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधो पर', डी. आर. जाटव 'मेरा सफ़र मेरी मंजिल', माता प्रसाद की 'झोपड़ी से राजभवन', सूरजपाल की 'तिरस्कृत 'तथा 'संतप्त', रूपनारायण सोनकर की 'नागफनी', डॉ. धर्मवीर भारती की 'मेरी पत्नी और भेड़िया', डॉ. तुलसीराम की 'मुर्दहिया' तथा मणिकर्णिका आदि ऐसी आत्मकथाएं हैं जो दलित लेखकों की आत्मपीड़ा, उत्पीड़न के साथ उनके सामाजिक संघर्ष को व्यक्त करती है। सुशीला टाकभौरे द्वारा लिखित आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' इसी कड़ी में एक महत्वपूर्ण आत्मकथा है । 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में लेखिका ने दलित समाज में स्त्री के जीवन-यथार्थ को उसकी पीड़ा व्यथा को और स्त्री जीवन संघर्ष को बहुत ही स्पष्ट और संवेदनशील तरीके से प्रस्तुत किया है।

दलित स्त्री अपने जीवन में दोहरा अभिशाप झेलती है, पहला दलित होने का अभिशाप और दूसरा स्त्री होने का अभिशाप। आत्मकथा की भूमिका में स्वयं लेखिका दलित स्त्री होने के दर्द को इस प्रकार अभिव्यक्त करती हैं "शिकंजे का दर्द' में संताप है दलित होने का, स्त्री होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित जीवन की व्यथा है। स्त्री होना ही जैसे व्यथा की बात है। चाहे हमारा देश हो या विश्व के अन्य देश, हर जगह शोषण उत्पीड़न का शिकार स्त्री ही रही है। जिस देश में वर्णभेद, जातिभेद की कलुषित परम्पराएँ हैं वहां दलित स्त्री शोषण की व्यथा और भी गहरी हो जाती है। सदियों से तिरस्कृत और अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के मजबूर किए गए दलित जीवन की व्यथा-कथा का दर्द 'शिकंजे का दर्द' में समाहित है। 'शिकंजे का दर्द' लिखने का उद्देश्य दर्द देने वाले शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है।" आत्मकथा में लेखिका को बार-बार शोषण, उत्पीड़न, तिरस्कार और भेदभाव को झेलते हुए उनसे संघर्ष करना पड़ता है। वह पितृसत्तात्मक समाज, जातिवाद, सवर्ण मानसिकता और स्त्री शोषण रूपी शिकंजे से जकड़ी हुई है, जिसका दर्द उसे हमेशा होता है। वह मुक्ति पाने हेतु छटपटाती है और निरंतर उससे संघर्ष करती हैं। वह स्वयं लिखती हैं "हर बात के लिए बंधन, अपमान, अंकुश। अब इस शिकंजे का दर्द का महसूस हो रहा है। यह शिकंजा क्या है? कब से है? क्यों हैं? मैं इस बात को गहराई से समझ रही हूँ और जीवन के उन क्षणों को याद कर रही हूँ जो कष्ट, अभाव और अपमान के बीच मैंने जीये हैं।... शिकंजा एक नहीं, कई थे। उन शिकंजों की जकड़न से जूझते हुए मैं किस तरह पढ़ सकी? किस तरह आगे बढ़ सकी ? यह मेरी लम्बी कथा है। शिकंजे तब भी थे, दर्द तब भी था। शिकंजे के दर्द की कथा चल रही है जिन्दगी के साथ-साथ !"

लैंगिक भेदभाव एक ऐसी गंभीर बीमारी है जिसने लम्बे समय से भारतीय समाज को जकड़ रखा है। सरकार, सामाजिक संस्थाओं,

बुद्धजीवियों के द्वारा इस भेदभाव को मिटाने के लिए अनेको प्रयत्न किए जा रहे हैं लेकिन अभी भी बहुत जगह इस भिन्नता में कमी नही आयी है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत लड़कियों पर बहुत से बंधन लगाये जाते रहे। उन्हें कभी भी स्वतंत्रता और समानता का अधिकार नही दिया गया। उन्हें स्वयं निर्णय लेने का अधिकार नही दिया गया। घर, परिवार, मर्यादा, आचरण, नैतिकता और आदर्शों के नाम पर त्याग, बलिदान और समर्पण का उपदेश देकर उन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर बनाया गया। समाज में बेटियों की अपेक्षा बेटों को अधिक सम्मान और महत्व दिया जाता है। लेखिका को भी इस लैंगिक भेदभाव रूपी शिकंजे को झेलना पड़ा । लड़की होने के कारण उन्हें शुरू से ही घर के कामकाज सिखाने के साथ कम बोलना, धीमे बोलना का पाठ पढ़ाया जाता था। लड़का-लड़की के बीच के इस भेदभाव का दर्द सुशीला जी इस तरह व्यक्त करती हैं, "लड़किएँ तो चिरैया हैं, समय आते ही उड़कर परदेस चली जायेंगी। लड़किएँ का लूगड़ा (जलती लकड़ी) वहीं जले तो अच्छा है। सामाजिक मानसिकता की यह भावना एक शिकंजा बनकर लड़कियों की प्रगति में अवरोधक रही है। इस शिकंजे की शिकार मैं भी थी। कहीं परोक्ष और कही प्रत्यक्ष रूप से इस शिकंजे ने आगे बढ़ने से रोका। उस समय का अवरोध आज दर्द बनकर मुझे सालता है...।" ऐसे भेदभावपूर्ण मानसिकता और वातावरण के बीच लेखिका को शिक्षा ग्रहण करने के लिए तमाम चनौतियों का सामना करना पड़ता है। गरीबी और अभाव के शिकंजे में लेखिका का बाल्यकाल दबा रहा। उनकी नानी और माता-पिता का जीवन अभावों के कारण बहुत ही असमय बीता। लेखिका की नानी सभी मौसम में नालियों का गन्दा कचरा उठाकर टोकरे में भरकर अपने सर या कमर पर रखकर फेंकती थी फिर भी उन्हें रूखा-सुखा जूठा भोजन ही प्राप्त होता था। उनका पूरा जीवन इसी जूठन और उतरन के कपड़ो में बीता | लेखिका के पिता श्री बानापुर रेलवे स्टेशन में नौकरी करते थे । आमदनी कम होने के कारण उनके परिवार का दिन अत्यधिक कष्ट और अभावों में बीतता था । जहाँ खाने को पेटभर खाना भी मुश्किल से मिलता हो वहां बाकी जरूरतों के बारे में कहना ही क्या! एक जगह वो लिखती है "अभाव और कुपोषण से गरीबों के दांत क्यों जल्दी खराब हो जाते हैं, उनका दर्द मैं जानती हूँ ।" अभाव के कारण लेखिका को कई बार अपने विद्यालय में मजाक का पात्र बनना पड़ा जिस कारण उनका बालमन बहुत व्यथित होता है। वे अपने साथियों से अपनी गरीबी, रहन-सहन, खान-पान छिपाना चाहती थी। वे अपने सहेलियों के घर के सुख वैभव को देखकर, परिवार के अभावों के विषय बहुत दुखी मन से सोचती थी "क्या-क्या छिपाऊँ ? अपनी नानी को सबसे कैसे छिपाऊँ ? उसके फटे पुराने कपड़ों को, सहेलियों से कैसे छिपाऊँ ? खान-पान, रहन-सहन, घर-परिवार को किस किससे छिपाऊँ? इस पीड़ा से दुःख होता था ।" इसी कारण आर्थिक सबलता होने के बाद भी जब भी वह कभी महँगी या एक से अधिक साड़ी खरीदती है तो बचपन में गरीबी के कारण झेले गए अपमान और पीड़ा का दर्द उनके हृदय को व्यथित कर देता है।

भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था के नाम पर दलितों पर अनेक तरह के अत्याचार हुए हैं। जाति व्यवस्था को शोषण के हथियार के रूप में इस्तेमाल किया गया | उनके साथ अमानवीयता और क्रूरता का व्यवहार किया गया। ऐसी पाबंदियां थोपी गयी कि वे जातिगत भेदभाव और अपमान के चक्की में पिसते रहें । वास्तव में समाज में जातिगत भेदभाव एक ऐसी बुराई है जो मनुष्य को मनुष्य नहीं मानती | हमारे समाज में जातिवाद की जड़े इतनी गहरी हैं कि समाज के पढ़े-लिखे लोग भी सामाजिक छुआछूत को मानते है | इस आत्मकथा में भी लेखिका को जाति का दंश झेलना पड़ा। जाति के नाम पर उन्हें और उनके परिवार को अपमानित और प्रताड़ित होना पड़ा। जातिगत भेदभाव इस स्तर पर कि लेखिका की माँ की तबियत ज्यादा खराब होने पर डाक्टर बहुत मिन्नतों के बाद घर तो आता है लेकिन दूर से देखकर ही दवा देता है। शिक्षकों द्वारा जाति के कारण अपमानित किया जाता था, धार्मिक आयोजनों में उन्हें पीछे बैठाया जाता था, किसी भी आयोजन में उन्हें अलग बर्तन में खाना दिया जाता था, गावं की आटा चक्की में वो आटा नही पिसवा सकती थी, उन्हें कुत्ता, बिल्ली, मुर्गी, सुअर पालने का अधिकार था लेकिन गाय पालने का नही, नल का पानी छू देने पर उन्हें अपमानित किया जाता था । आखिरकार यह किस तरह की जाति व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति की पहचान और सम्मान उसके स्वाभाविक गुणों और उपलब्धियों की बजाय उसके जन्म पर आधारित है ? लेखिका धर्म और समाज पर एक साथ प्रश्न उठाती हैं "हिन्दू धर्म में नदी, पहाड़, पेड़, पौधे, गाय, सांप सभी को महत्व और सम्मान दिया जाता है लेकिन अछूत मनुष्यों को कोई स्थान नहीं, सम्मान नहीं। उनके लिए कोई दया-संवेदना नहीं ? हिन्दू धर्म के आडम्बर में मिट्टी से बने पुतलों को भी भगवान की तरह पूजा जाता है मगर इनसानों को इनसान नहीं मानते, यह हिन्दू धर्म की विडंबना है, हिन्दू संस्कृति का कलंक है।" इस जातिदंश, अपमान और तिरस्कार के शिकंजे को तोड़ने के लिए लेखिका का मन हमेशा से ही छटपटाता रहा, इतना कष्ट झेलने के बाद भी वह अपनी स्थिति में बदलाव के प्रति आशावान थी । लेखिका की नानी भी उनसे हमेशा कहती थी "जैसे कृष्ण ने कंस को मारो, जैसे नरसिंह ने हिरनकश्यप का पेट फाड़ो, वैसे ही कोई जरुर पैदा होयगो जो जांत-पांत बनाने वालों को, ऊँच-नीच की बात बताने वालों को सबक सिखायेगो | वही हमें न्याय दिलायेगो, हमको भी उंचे आसान पर बैठायेगो, अपमान की जिन्दगी से निकालकर सम्मान दिलायेगो ।"

स्त्रियां आज भी शोषण की चक्की में पिस रहीं हैं। वर्तमान समय में शिक्षा के प्रचार के कारण उनमे पहले से ज्यादा जागरूकता आयी है। अब वो पहले की अपेक्षा अपने अस्तित्व, अस्मिता और अधिकारों के प्रति सचेत हुई हैं लेकिन अब भी स्त्रियां चाहे कितनी ही शिक्षित हों, स्वावलंबी हों, सुविधा सम्पन्न हों पुरुष फिर भी अपनी ताकत से या छल-कपट से उन पर अपना अधिकार बनाये रहता है। लेखिका दलित स्त्री होने की पीड़ा का वर्णन करते हुए बताती है कि "गरीब अछूत होने के साथ लड़की होना दोहरे संताप की बात है। अछूत की बेटियां दुर्घटनाओं का सामना करती हैं। दलित स्त्रियां जीवन का संताप सदियों से भोग रही हैं।" शिकंजे में जकड़ा उनका जीवन कभी भी मुक्त भाव का अनुभव ही नहीं कर पाया। उनका विवाह उनके लगभग दुगुने उम्र के व्यक्ति सुन्दरलाल टाकभौरे से हुआ। यहीं से उनके जीवन का दूसरा शिकंजा शुरू हुआ। विवाह के बाद पति द्वारा डांट-फटकार, मारपीट, झगडा, अपमान आदि हर रोज की बात हो गई थी। पति की नजरों में उनकी हैसियत एक बर्तन मांजने वाली नौकरानी के बराबर थी। लेखिका इस स्थिति में परिवर्तन की मांग करते हुए कहती हैं "यह एक स्त्री का दुःख नहीं है, न जाने कितनी स्त्रियाँ मेरी तरह जिन्दगी का संताप भोगती हैं। न शिकवा, न शिकायत ! जिन्दगी क जहर चुपचाप पीते रहना, वे अपनी किस्मत मान लेती हैं। यह परम्परा टूटनी चाहिए। स्त्रियाँ स्वयं अपना दुख बतायेंगी, अपने कष्ट और अन्याय की बात स्वयं कहेंगी, तभी लोग इन बातों को समझेंगे।"

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा लेखिका के जीवनानुभावों जीवंत दस्तावेज है। इस आत्मकथा के माध्यम से लेखिका अपने जीवन पर कसे गए शिकंजों का बहुत ही मर्मस्पर्शी चित्रण करती है और असामजिक व्यवहार, परम्परा, रीति-रिवाज, कानून पर बार-बार चोट करते हुए हमारे सामने कई ज्वलंत प्रश्न छोड़ती है। आखिर स्त्रियों को जातिगत, लिंगगत, शोषण के दर्द से कब मुक्ति मिलेगी। जाति व्यवस्था और पितृसत्ता के शिकंजे में तड़पती सुशीला इसके खिलाफ संघर्ष करती है। उनके जीवन का सच आत्मकथा में उपस्थित है, बिना बनावट-बुनावट के 'शिकंजे का दर्द' सुशीला टाकभौरे द्वारा लिखित एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली दलित स्त्री आत्मकथा है। इस आत्मकथा में लेखिका शोषण, अत्याचार और भेदभाव आदि के खिलाफ तन कर खड़ी है। इसमें दलित जीवन संघर्ष के यथार्थ का चित्रण है।

संदर्भ

1. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, मनोगत
2. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, मनोगत
3. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ 17
4. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ 17
5. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ 107
6. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ 29
7. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ 51
8. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ 25
9. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ 119
10. शिकंजे का दर्द, सुशीला टाकभौरे, पृष्ठ 205

****

कीर्ति शर्मा की कहानियों में व्यक्त आधुनिक स्त्री जीवन और सामाजिक समस्याओं की विवेचना

-सुनीता सेरावत
शोधार्थी, हिंदी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

कीर्ति शर्मा की कहानियाँ भावनात्मकता के उच्च शिखर को तो छूती ही है साथ ही पारिवारिक यथार्थ और सामाजिक जीवन में तालमेल भी बिठाती है।उनके पहले कहानी संग्रह 'पिघलते लम्हों की ओट से' प्राचीन और आधुनिक जीवन के द्वन्द्वों को उकेरने वाली कहानियाँ है।स्त्रियों की आधुनिक सोच समाज के पिछड़ेपन के बीच के जीवन के अकेलेपन की समस्या तथा इसी के बीच रास्ता बनाती स्त्री की यथार्थ जिंदगी को दिखाती ये कहानियाँ आधुनिक हिंदी कहानी में अपना स्थान तय करती हैं। इनका दूसरा कहानी संग्रह 'बूँद भर सावन' में सामाजिक समस्याओं के उन तमाम रूपों को छू लेती हैं जो आधुनिक समाज में आज अनिवार्य सी हो गई है।इसमें प्रेम, बेरोजगारी, महँगाई, रोजमर्रा का संघर्ष, बाल श्रम, वृद्धावस्था की समस्या, बाल श्रम, खोखले रिश्ते जैसे अनेक पहलूओं को एक सशक्त कथ्य के माध्यम से दिखाया गया है।

पहले कहानी संग्रह की एक मजबूत कहानी है – जोहरा आपा। एक मुस्लिम पात्र जोहरा तमाम सामाजिक दबावों को झेलकर भी अपने दारूबाज पति का अहसान न लेकर सब्जी बेचकर अपना जीवन यापन करती है और अपने स्वाभिमान के साथ किसी को खेलने नहीं देती। जोहरा का चरित्र इस कहानी मेश्रम और संघर्ष की भूमि में तपकर इतना निखर आया है कि जोहरा जैसी स्त्रियों पर कोई भी समाज गर्व ही करेगा।इसी प्रकार एक कहानी 'विरासत' है जिसमें नई पीढ़ी की पुरानी पीढ़ी की सकारात्मक भावना और उनके स्वाभिमान के सम्मान में खड़ी आधुनिक लड़की की कहानी को दिखाया गया है।मीना नामक लड़की अपने पिता को विश्वास दिलाती है कि वह उनकी विरासत की किसी भी हालत में रक्षा करेगी क्योंकि यह उसका न केवल दायित्व है बल्कि उसके साथ पुरखों का स्वाभिमान जुदा हुआ है और वह किसी भी कीमत पर मकान तो क्या कुछ भी नहीं बेचेगी।उसके उसी आत्मविश्वास को देखकर उसे पिता बोलते हैं – "मीना यह घर नहीं यह मेरे दादाजी का सपना है जो तुम्हारे दादाजी ने पूरा किया है, मैंने भी निभाया है।इस विरासत में पुरखों की आत्मा बसती है।यह ईट गारे से बने महज इमारत नहीं बल्कि जीता जागता वह अहसास है जिसने इतने बड़े परिवार को अपने आंचल में पाला है।इसे हरा – भरा फलता फूलता देखकर पूरखों की आत्मा को शांति मिलती है।यह हमारे अतीत की जीती जागती निशानी है।अब सब अपनी – अपनी राह हो लिए पर मैं मीना इसे खंडहर होते, बिकते नहीं देख सकता बेटा तू इसे संभालना, आबाद रखना।" यह कहानी युवा पीढ़ी को एक सबक तो देती ही है साथ ही हमें हमारी परम्परा और संस्कृति के महत्व की भी सीख देती है। अगर मीना जैसी सब बेटियाँ हो तो किसी बुजुर्ग को बुढ़ापे में जाकर आत्मपीडा की घुटन महसूस न हो और वे अकेलापन व परायापन महसूस न करें।

'पिघलते लम्हों की ओट से' कहानी में प्रेम के उस पवित्र और शारीरिक रूप को दिखाया गया है जो दैहिक और भौगोलिकता से दूर एक आत्मिक आनंद का स्रोत है।जूनुन और जज्बें के साथ जब संघर्ष भी हो तो प्रेम की सामाजिक स्वीकार्यता अपने आप मिलती जाती है। "प्रेम के जुनून भरे जज्बें में मैंने तुम्हें पा लिया है। तुम मुझसे दूर कहाँ हो।साथ रहने से क्या दूरियाँ मिटती है ? जहाँ प्रेम है वहाँ दूरियाँ कोई मायने नहीं रखती। मन का एकत्व इन्हें भौगोलिक, शारीरिक दूरियों से परे एक करता है। इसी अहसास का नाम प्रेम है।" यह कहानी शिल्प की दृष्टि से भी काफी आगे बढ़ी हुई नजर आती है लेकिन इसका कथ्य रोमानी और मांसल प्रेम से आगे मानसिक प्रेम की उन अवस्थाओं का दर्शन करवाता है जो जिसको मनुष्य जीना चाहकर भी जी नहीं पाता और जिंदगी भर इसी घुटन के साथ बीता कुढ़ता रहता है कि काश मैंने सही समय पर अपने साथी के अहसासों के साथ अपने अहसास मिला लिए होते ?

'फैसला' कहानी भी दो पीढ़ियों में प्रेम सम्बन्धों की समझ के द्वद्व को दिखाती है। एक जिद्दी बाप के अहंकार के चलते पुत्र का निश्छल प्रेम बहुत पीड़ित होता है लेकिन अंत में पुत्र की जीत होती है। कहानी में प्रेम के संघर्षमय रूप और अंत में उसकी जीत की संवेदनशील ऊर्जा की विवेचना है।इसी तरह एक बालिका जगनी के छोटी उम्र के संघर्ष को 'कचरा बीनने वाली लड़की' के माध्यम से दिखाया गया है। चाहे जगनी को स्वयंसेवी संस्था की सहायता मिल गई हो लेकिन उससे उसके जीवन का व्यक्तिगत संघर्ष कम नहीं हो जाता और बचपन की कटु यादें भी नहीं मिट जाती है। "बारह तेरह साल की लडकी कचरा बीन रही थी।यूँ तो कोई विशेष बात नहीं थी कि मेरी नजर उस पर ठहरे लेकिन वह नाली के एक और फँसे प्लास्टिक निकाल रही थी।साथ ही उन्हें उस बहते पानी से धोकर अपने थैले में डाल रही थी।" कहानी में जगनी जागरूक, संघर्षरत, दृढ निश्चयी, साहसी, पितृसत्तात्मक समाज को मुँहतोड़ जबाव देनी वाली तथा आत्मरक्षा के प्रति अत्यंत जागरूक दिखाया गया है।गजनी जब अपनी स्वयंसेवी संस्था में उन लोगों का प्रवेश देखती है जो स्वयं महिलाओं के शोषण में शामिल है तो भड़क जाती है।कहती है – " इसका संचालन उन लोगों के हाथ में थोड़े हैं जो एयरकंडिशनर कमरों में बैठकर बिना किसी अनुभव के बड़ी – बड़ी बातें करते हैं, उनके पास न था।जो महिला उत्पीडन के कई दिन बाद हवाई यात्रा करके पहुँचते हैं। और हँस – हँसकर काला चश्मा लगाये फोटो खिंचवाते हैं। यह जताते हुए कि हम पीड़ित महिला को इंसाफ दिलाने आये हैं। उन्हें कहाँ पता होता है मिट्टी से जुड़ा हुआ दर्द, उत्पीडित महिला की दर्द भरी सिसकियों का सबब। उस संस्था का संचालन तो एक जांबाज कचरा बीनने वाली लड़की के हाथों में था जिसने हर दरद को जिया झेला।" हालाँकि स्वयसेवी संस्था के कहानी में घुसेड देने से जगनी के संघर्ष की चमक थोड़ी फीकी पड़ती नजर आती है लेकिन फिर भी वह कहानी में जगनी

का स्वाभिमान उससे मजबूत बनाये रखता है । 'मौन' कहानी भागदौड़ भरी जिंदगी में समय के अभाव और उससे उत्पन्न समस्याओं को अचला और विनय नामक पात्रों के माध्यम से दिखाती है । 'स्वीकार' कहानी यौन हिंसा की शिकार हुई किशोरी के जीवन की उन कठिन स्थितियों को हमारे सामने रखती है जिसके कारण उसके व्यक्तित्व में कुंठा, डर, अकेलपान, चिडचिडापन और अंत में निराशा के गर्त में चली जाती है । उसके व्यक्तित्व का चित्रण कहानी में बड़ा ही दुखद बन पड़ा है – "तुम खफा सी क्यों रहती थी पता नहीं । तुम्हारा मन भी पढ़ाई में नहीं लगता था । जो कुछ क्लास में पढ़ाया जाता उसे भी शायद ही ध्यान से सुनती थी । क्लास रूम में भी तुम खोई- खोई सी लगती । किसी अनंत गहराई की ख़ामोश उदासी में डूब तुम बाहर निकलना नहीं चाहती |" यह यौन शोषण उस बच्ची के साथ किसी पारिवारिक रिश्तेदार द्वारा ही किया गया था । इस वजह से न तो वह अपनी पीड़ा किसी से कह पाती है और न ही उस अवसाद से निकल ही पाती है । इसी प्रकार कहानी 'रौशनी', 'गुरु दक्षिणा' और 'भूख' में क्रमश: युवा पीढ़ी का गलत संगत में पड़ते जाना, गुरु शिष्यों के सकारात्मक रिश्तों और माँ विहीन बच्चें के बचपन के मार्मिक उद्धरणों को उकेरा गया है |

कीर्ति शर्मा का दूसरा कहानी संग्रह 'बूँद भर सावन' की पहली कहानी अत्यंत मार्मिक बन पड़ी है क्योंकि वह आधुनिकता बोध की कारण संवेदन हीन होते जा रहे समाज में माँ के असम्मान और उपयोगितावादी दृष्टिकोण से रिश्तों के आकलन को मजबूत तरीके से उठाती है । सामाजिक जीवन में माँ के प्रति दायित्व को बोध समझना और संस्कारों को बाजारी वस्तु बना देना ही इस कहानी की मूल संवेदना है ।'आकाश और पतंग कहानी' पुरूष के शारीरिक आकर्षण से रहित प्रेम के रोमानी सौन्दर्य और अपनत्व के सकारात्मक जीवन शैली के उदाहरणों से भरी पड़ी है ।'रिक्शावाला' कहानी उन पढ़े लिखे युवाओं की कहानी है जो अपनी नौकरी से छुटकारा मिलने पर "रात में केवल इसलिए रिक्शा चलाते हैं ताकि महिलाओं को असमाजिक तत्वों से बचाया जा सके और उनकी सुरक्षित घर वापसी हो जाए।कहानी का एक पात्र कहता है कि "जॉब के बाद रोज दौ ढाई घंटे रिक्शा चलाएंगे । रिक्शा चलाने का मकसद सिर्फ और सिर्फ महिलाओं या लडकियों को सुरक्षित उनके घर पहुंचाना, उनकी हिफाजत करना है |"

'बूँद भर सावन' कहानी बचपन के अपने प्रेमी साथी को खो देने की पीड़ा और उससे उपजे अवसाद से निकलने की कहानी है । कीर्ति शर्मा की कहानियों की स्त्री पात्र हमेशा पाठक के सामने एक मजबूत लक्ष्य छोड़कर जाती है।कलाएँ किस तरह इंसान के भीतर के अवसाद का विरेचन करती है और पुन: व्यक्ति के जीवन को सही ढर्रे पर ले आती है, उसी की अभिव्यक्ति इस कहानी में हुई है । नैना नामक पात्र जब अपने प्रेमी को खो देती है और जीवन को एक लाश की तरह ढो रही होती है उन्हीं क्षणों में एक चित्रकार एक नई उर्जा और उत्साह के साथ उसके जीवन में प्रवेश करता है और अपनी कला से उसको ऐसा मोहित कर लेता है । जो नैना अपने प्रेमी की मृत्यु के बाद गूँगी- बाहरी हो गई थी, परिवेश जिसके लिए एक मुर्दा शांति के समान था, वही नैना एक कलाकर के प्रयासों से फिर से हरी भरी हो जाती है और जीवन को पुन: उल्लास के साथ जीने लगती है |

'गंगाजल' कहानी मित्रता की पवित्र आस्था को समेटे हुए हिन्दू – मुस्लिक द्वंदों को अभिव्यक्त करती है । यासमीन और खूशबू नामक पात्र इस कहानी में न केवल साम्प्रदायिक द्वेष को परे धकेल देते अपितु स्त्री जीवन की आत्मनिर्भरता और स्वतंत्र विचार शैली के साथ स्त्रियों को किसी भी कट्टर समाज में जीने की आस्था देते हैं । यासमीन कहती है कि जो चीज बेकार हो जाए उसको बहार कर देना चाहिए वरना सड़ने लगती है । धार्मिक रूढ़ियाँ चाहे वे कितनी ही प्यारी हो आगे वे समाज के लिए किसी काम की नहीं है तो उनको धर्म से बाहर कर देना चाहिए । वह अपनी मित्र खुशबु से कहती है कि मेरा पुराणी रूढ़ियों का विरोध करना धर्म के खिलाफ कैसे हो गया – "खूशबू क्या मैं विद्रोही हूँ, क्या मैं खुले विचारों की हूँ, खुले विचार के क्या मायने हैं ? घर की लड़कियों, औरतों को तालीम देना, उन्हें जीवन जीने का सलीका बताना, अपना अस्तित्व पहचनाना क्या यह विद्रोह की निशानी है?" कीर्ति शर्मा की कहानियों का फलक अत्यंत विस्तृत तो है ही साथ ही अत्यंत मार्मिक और गहरा भी हैं । वे अनेक विषयों को एक साथ लेकर चलती है और कहानी के शिल्प में उन्हें बाँधते चलती है |

निष्कर्षत: कीर्ति शर्मा की कहानियों के पात्र हमारे आसपास के परिवेश से जुड़े हुए हैं और वे हमें बार – बार इधर – उधर भटकते नजर भी आ जाते हैं । कीर्ति शर्मा के कहानी लेखन की एक ख़ास बात यह है कि वे कहानी को एक आदर्श स्थिति पर ले जाकर छोडती हैं और समाधान की ओर अग्रसर करती दिखती है । इनकी कहानियों की भाषा बेहद ही सहज और सरल नजर आती है।साथ ही कई कहानियाँ तो काव्यात्मक शैली में लिखी गई है जो पढने का एक अलग ही आनंद देती है।

संदर्भ सूची

1. कीर्ति शर्मा, पिघलते लम्हों की ओट से, बोधि प्रकाशन, 2013, पृष्ठ 42
2. वही, पृष्ठ 52
3. वही पृष्ठ 62
4. वही पृष्ठ 70
5. वही पृष्ठ 91
6. कीर्ति शर्मा, बूँद भर सावन, बोधि प्रकाशन, 2017, पृष्ठ 56
7. वही, पृष्ठ 124

299

किन्नर विमर्श

हिंदी कहानियों में किन्नर अस्मिता

डॉ.दादासाहेब सु. खांडेकर
संगमेश्वर कॉलेज, सोलापुर

शोध सारांश :

अस्मितामूलक विमर्श के अंतर्गत वे सभी विषय आते हैं जिन्हें मनुष्य की अस्मिता से जोड़कर देखा जाता है अतः जिन्हें हाशिए पर लाकर छोड़ दिया गया। भाषा, धर्म, लिंग, वर्ण, जाति इत्यादि विषय अस्मितामूलक विमर्श के आधार हैं। हिन्दी कहानी साहित्य में किन्नर या थर्ड जेंडर विमर्श भी अस्मितमूलक विमर्श का एक उदाहरण है। इस आलेख में किन्नर समुदाय का अस्तित्वबोध तथा संघर्ष पर विचार किया गया है। हिन्दी कहानी साहित्य में इस विषय को कितना न्याय मिला है इस पर इस आलेख में चर्चा की गई है।

बीजशब्द : अस्मिता, विमर्श, किन्नर, किन्नर विमर्श, हिन्दी कहानी साहित्य।

आमुख :

हिन्दी कहानी साहित्य वैविध्यपूर्ण है। इसमें नारी विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, वृद्ध विमर्श आदि अस्मितमूलक विमर्श पर बहुत कुछ लिखा गया है। हिन्दी कहानियों में थर्ड जेंडर पर भी कुछ साहित्य लिखा गया है। हालांकि इसकी संख्या अत्यल्प है। विशेषतः थर्ड जेंडर खुद लिखे-पढे न होने के कारण इनके जीवन पर अन्य लेखकोने प्रकाश डालने का काम किया है।

किन्नर या थर्ड जेंडर विमर्श पर विचार करने से पहले 'अस्मिता' और 'विमर्श' शब्द के अर्थ एवं उसके विविध आयामों का एक सामान्य परिचय आवश्यक है।

अस्मिता या अस्मिता बोध :

हिन्दी में 'अस्मिता'शब्द से 'आयडेन्टिटी' (identity) की अवधारणा को अभिव्यक्त किया जाता है और इसकी व्यंजना मूलशब्द से अधिक सटीक है। 'अस्मिता' शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ के विषय में वामन शिवराम आपटे लिखते हैं-'अस्मिता शब्द की निर्मिति अस्मि+तल्+टाप से हुई है जिसका अर्थ है-अहंकार[1]। आदर्श हिन्दी शब्द कोश में भी 'अस्मिता' शब्द के लिए आत्मश्लाघा, अहंकार मोह आदि अर्थ दिए गए है।[2] 'अस्मि' शब्द अस्+मिन् से बना है। अस्मि अर्थात मैं हूँ। अस्मि की भाववाचक संज्ञा 'अस्मिता' है। इस शब्द से स्वत्व का बोध होता है।[3]

उपर्युक्त अर्थो के आधार पर हम कह सकते हैं कि 'अस्मिता' शब्द निजत्व का बोध करवाता है वहीं जीवन के अन्य पहलुओं से भी इसका संबंध रहता है जो समय-समय पर अपना रूप बदलते रहते हैं। अस्मिता के दो पहलू होते हैं। एक वैयक्तिक अस्मिता और दूसरी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता। वैयक्तिक अस्मिता में निजता निहित रहती है तो सामाजिक या सांस्कृतिक अस्मिता में सामाजिक हित। अस्मिता प्राप्ति का संघर्ष प्रताड़ना झेलने और अपमान होने पर उभरता है। कभी-कभी अपनी पहचान को प्राप्त करने के लिए उग्र रूप धरण कर लेता है।

विमर्श :

अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश में 'विमर्श' का अर्थ भाषण, प्रवचन, प्रबंध दिया गया है।[4] अभय कुमार दुबे लिखते हैं- " इसका निपट अर्थ है दो वक्ताओं के बीच संवाद,बहस या सार्वजनिक चर्चा।"[5] अन्य स्थानों पर भी विमर्श का अर्थ किसी न किसी प्रकार बातचीत या विचार विवेचन से ही जुड़ा है।

अस्मितामूलक विमर्श :

अस्मितामूलक विमर्श से तात्पर्य है अपनी पहचान प्राप्त करने केलिए की गई चर्चा। या कीसी वर्ग की स्पष्ट पहचान के लिए किए गए प्रयास। या जो वर्ग या व्यक्ति हासिए पर डाला गया है उसको प्रकाश में लाने के लिए की गई परिचर्चा। उपेक्षित नारी, दलित, वृद्ध, किन्नर वर्ग को सही पहचान देने का प्रयास इन विमर्श के माध्यम से किया जाता है।

अस्मिता -विमर्श जब संयुक्त रूप में आता है तो हम कह सकते हैं कि जब हम किसी व्यक्ति, जाति ,वर्ग,क्षेत्र इत्यादि की अस्मिता को प्राप्त करवाने या करने के लिए विमर्श करेंगे तो वह अस्मिता-विमर्श का द्योतक होगा। इस संदर्भ में अर्चना वर्मा कहती है- "अस्मिता-विमर्श आज के राजनैतिक, सामाजिक दृश्य का सबसे अधिक मुखर और प्रमुख स्वर है।"[6]

किन्नर या थर्ड जेंडर :

पिछले कुछ दशकों में विचारधारा और चिन्तन की दुनिया में आए वैचारिक और अवधारणात्मक बदलावों ने अस्मिता के प्रश्न को जन्म दिया। अस्मिता की व्याख्या विभिन्न सामाजिक संरचनाओं के द्वारा भिन्न-भिन्न है। जब कोई समुदाय अपनी अस्मिता तलाशने की कोशिश करता है तो उसके सम्मुख कई सवाल सहज ही खड़े हो जाते हैं कि हम कौन हैं ? समाज में हमारा स्थान क्या है ? इन सवालों से रू-ब-रू होकर ही व्यक्ति या समुदाय अपनी अस्मिता निर्माण की प्रक्रिया की शुरुआत करता है और उनके सम्मुख स्थित सभी चुनौतियों से लड़ता है। आज भारत ही नहीं विश्व भर में मानव अपनी पहचान को पाने के लिए पहले की अपेक्षा अधिक सक्रिय है। यह बौद्धिक सचेतनता का ही सुफल है कि आज भारत में भी तमाम वंचित वर्ग अपने अधिकारों की बात उठाने लगे हैं। लेकिन एक वर्ग अभी भी उपेक्षित है जिसे हम तृतीय लिंगी वर्ग कहते हैं।

" तृतीय लिंगी वर्ग आज भी सभ्य समाज के लिए रहस्य है। इन्हें समाज भिन्न-भिन्न नामों से संबोधित करता है किन्नर, हिजड़ा, उभयलिंगी, ख्वाजासरा, छक्का, शिरूसान गाई, अनरावनी, जनखा, पावैया, मेहला, कोती, यूनक आदि।"[7] लेकिन इनके सिर्फ नाम बदलते जाते हैं लेकिन सभ्य समाज का नज़रिया अपमानजनक ही रह जाता है। विसंगति यह है कि इन्हें

हाशिये में भी कोई हाशिया नहीं मिला। समाज में हमेशा से ही उनके अस्तित्व को नकारा है बल्कि यूँ कहें कि उन्हें पशु समकक्ष खड़ा किया गया है।

" हिजडा उर्द शब्द है जो अरबी के हिज्र शब्द से लिया गया है। जिसका आशय अपने चीले को छोड़ना है। अर्थात् घर-परिवार एवं समाज से अलग होना । उर्दू अथवा हिन्दी प्रपक्त हिजड़ा शब्द को अन्य शब्दों जैसे हिजिरा, हिजदा, हिजादा, हिजारा और दिजराह शब्द से भी सम्बोधित किया जाता है। उर्दू का ख्वाजा सरा शब्द हिजड़ा का समानार्थी है। दूसरे अन्य शब्द खसुआ और खुसरा है। अंग्रेज़ी में इसे यनक अथवा हर्मा फोडाइट से जोड़ा जाता है। बंगाली में इन्हें हिजरा, हिजला, हिजरी से सम्बोधित किया जाता है। तेलगू में उन्हें नपुंसुकडू, खोजा अथवा मादा, तमिलनाडु में अली, अरावनी। पंजाबी में खुसरा, जंखा, सिंधी में खदरा, गुजराती में पवैया, मराठी में हिजड़ा आदि नाम से जाना जाता है।" [8]

हिन्दी कहानियों में थर्ड जेंडर :

लोग थर्ड जेंडर के पारिवारिक जीवन के बारे में भी जानने को इच्छुक रहते हैं। सन् 2018 में प्रकाशित सं.डॉ.विमल सूर्यवंशी का 'थर्ड जेंडर : चर्चित कहानियां' और सं.पुरोबी भण्डारी का 'दास्तान-ए-किन्नर' इन कहानी संग्रहो में किन्नर जीवन की त्रासदी, अकेलेपन, परिवार से परित्यक्त होने का दर्द और समाज के तिरस्कार को सहते किन्नरों के जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है। इन किताबों में इस विषय पर विभिन्न लेखकों की कृतियों का संकलन होने के नाते किन्नरों के विषय में बहुकोणीय दृष्टीकोण परिलक्षित होता है।

समाज में किन्नरों की स्थिति अत्यंत दयनीय है। इनकी ओर देखने का दृष्टिकोण अत्यंत नकारात्मक और हेय है। लोग इनसे घृणा करते हैं। सामान्य लोग उनसे संपर्क रखना नहीं चाहते हैं। 'माई' कहानी की वृद्ध माई अपनी व्यथा कहती है-"बेटा ! मैं वक्त की मारी एक किन्नर हूँ। होश संभालने से लेकर आज तक ऊँगलियों में गिने जाने वाले तुम जैसे कुछ परोपकारियों को छोड़ मुझे कहीं इज्जत-सम्मान तो दूर की बात हमेशा अपमान और दुत्कार मिला। घर परिवार और समाज से शोषित, प्रताड़ित, तिरस्कृत और बहिष्कृत रही हूँ। हमेश उपेक्षा ही मिली।" [9]

घर में हिजड़ा पैदा होना एक भयानक घटना मानी जाती है। समाज में मान-मर्यादा की भयंकर हानी हो जाती है। समाज हँसता है, मजाक उड़ाता है, घृणा करता है। राकेश शंकर भारती की 'मेरी बेटी' कहानी में राधिका के माता-पिता बहुत परेशान रहते थे। " यह उनके लिए सबसे बड़ी बे-इज्जती थी। अगर लोग जान जाते की उनके घर में हिजड़ा पैदा हुआ है तो गाँव का हर शख्स उन पर थूकता, हँसता, उनकी तरफ हैरतंगेज निगाह से देखता। " [10]

किन्नर वर्ग के प्रति समाज दो तरह की दृष्टि रखता है। एक धार्मिक सम्मान तो दूसरी ओर अत्यंत घृणा। 'रवीना बरिहा' ने अपने एक साक्षात्कार में कहा है कि, " थर्ड जेंडर के प्रति हम लोग समाज की मिली-जुली प्रतिक्रिया देखते हैं। समाज के जिन लोगों का थर्ड जेंडर किन्नरों के साथ पहले कभी अथवा लगातार मेलजोल रहा है, वे बहुत ही जल्द हम लोगों का स्वीकार करते हैं। हमसे अच्छा व्यवहार करते हैं। कई बार हम लोगों को एक दैवीय रूप में देखा जाता है, लेकिन समाज का एक बड़ा तबका ऐसा है, जो अपने कुछ पूर्वग्रहों के कारण हमसे दूर भागता है। किन्नर भी घर-परिवार और समाज से प्रेम और स्नेह चाहता है। लेकिन सारे उनसे दूरी बनाए रखते हैं। उसे इस बात का दुख होता है इसमें उसका क्या दोष है। उसका परिवार या इस बात को छुपाना चाहता है या उससे पिंड छुड़ाना चाहता है।" 'मेरी बेटी' कहानी की राधिका को उसके माँ -बाप बेच देते हैं।

'तराजू' कहानी में जमुना अपने बेटे को लेकर एक किराये के कमरे में रहती है। उसका बेटा थर्ड जेंडर है इसका पता जब लग जाता है तो मकान मालिक मकान खाली करने के लिए दबाव डालता है। हिजड़े का घर में रहना परिवार के लिए अच्छा नहीं माना जाता। थर्ड जेंडर को अत्यंत घृणित नजरों से देखा जाता है। " यहाँ के लोग क्या कहेंगे कि हमारे घर में हिजड़ा रहता है। लोग थू-थू करेंगे हम पर। दो दिन में फैसला कर लो या तो इसे हिजड़ों को सौंप दो या फिर मेरा घर छोड़कर जाओ। "[11]

थर्ड जेंडर के साथ शारीरक और मानसिक हिंसा तो सामान्य बात है। उपेक्षित और अकेले वर्ग के साथ सभी अमानवीय हो जाते हैं। 'नीलोफर'कहानी में नीलोफर के पिता को जब पता चलता है कि अपना बेटा किन्नर है तब उन्हें बहुत गुसा आता है। "मुहल्ले वालों के ताने और रिश्तेदारों के तंज से जब पापा बेकाबू हो जाते थे तो गए दुहने में काम आनेवाली रस्सी से मेरी चमड़ी पर कई निशान बना देते थे।"[12] इनके साथ लैंगिक अत्याचार किए जाते हैं।

निष्कर्ष:

आधुनिक हिन्दी साहित्य में थर्ड जेंडर की सामाजिक स्थिति अत्यंत भयावह है। समाज आज भी इनको अपनाने में झिजकता है। घर में इनके साथ दुर्भाग्यपूर्ण व्यवहार किया जाता है। परिवार के लोग जैसे माता-पिता थर्ड जेंडर बच्चों के साथ अच्छा व्यवहार करते हुए नहीं दिखाई देते। घर की खोखली प्रतिष्ठा के नाम इन बच्चों को सताया जाता है। बच्चों की मानस्थिति की परवाह किए बिना उनको किन्नर लोगों के पास सौंप दिया जाता है। इन बच्चों पर शारीरिक, लैंगिक अत्याचार होते हैं। किन्नर समाज में जागृति नहीं है। कुछ इनकी सामाजिक उन्नति के लिए पढ़ाई की ओर ध्यान आकृष्ट करने का प्रयास करते हैं।

संदर्भ :

1. वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ.132
2. सं.पं.रामचन्द्र पाठक, आदर्श हिन्दी शब्द कोश, पृ.64
3. अर्चना वर्मा, अस्मिता-विमर्श का स्त्री स्वर, पृ.31
4. अंग्रेजी हिन्दी शब्द कोश, पृ.218
5. सं.अभय कुमार दुबे, भारत का भूमंडलीकारण, पृ.444
6. अर्चना वर्मा, अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, पृ. 33
7. सं.पुरोबी ए.भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, भूमिका
8. सं.डॉ.विमल ग्यानोबाराव सूर्यवंशी, थर्ड जेंडर चर्चित कहानियाँ, दो शब्द
9. सं.पुरोबी भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, महेंद्र भीष्म,माई -पृ. 27
10. सं.पुरोबी भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, राकेश शंकर भारती, मेरी बेटी पृ. 36
11. सं.पुरोबी भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, डॉ.लवलेश दत्त, तराज़ू, पृ. 45
12. सं.पुरोबी भण्डारी, दास्तान-ए-किन्नर, डॉ. ललित राजपुरोहित, निलोफर, पृ. 63

English

Sight and Insight of Belonging: A Poetic Evaluation of A. K. Ramanujan's Poems

Dr. Santosh Kumar Mishra
Assistant Professor (English)
Kashi Naresh Government Post
Graduate College Gyanpur,Bhadohi U.P.
Email. Arsalonga84@gmail.com

"English and my disciplines (linguistics, anthropology) give me my outer forms: linguistic, material, logical and other such ways of shaping experiences… Kannada, Tamil, the classics and folk lore give me my substance, my inner forms, images and symbols." (Ramanujan 5)

Belongingness is an essential quality of human nature; but it acquires added significance with reference to Diaspora. Consideration of Diaspora inevitably recalls the postcolonial discourse, in which marginalized people get their voices. The beliefs and traditions that the marginalized people carry are very crucial in defining a sense of belonging. Here, human life becomes a kind of musing over the past that has been lost concretely by the process of time. Culture becomes an important factor around which the mind revolves. Recollection and assimilation are the two dimensions along which the mind works. The mind returns to the past, and the past becomes living reality. There is a kind of synthesis of two times that create something new which ignites the creativity, emblematic of two cultures. Even though A. K. Ramanujan spent a large part of his literary career in America, he continued to write about his native country, India, which had made a significant contribution to his identity. In the words of a critic, Ramanujan 'devoted his life to South Asian studies, wrote primarily about India, drew inspiration from Dravidian literatures, and often seemed clinically detached from the English language he worked in' (Ramazani 33). Ramanujan weaved Indian myths as well as the social reality in his poetry. The search for location and identity was a recurrent theme in his work. Undoubtedly, the poet's cultural and linguistic background was the fulcrum of his writing.

An anthropologist and linguist by profession, Ramanujan came from a staunch Brahmin family of South India. His father was a mathematician and his mother a housewife who was deeply interested in religion and culture. As a child Ramanujan witnessed the fusion of science and belief represented by his parents. After establishing himself as a scholar he shifted to the U.S.A. But his Indian past and cultural heritage kept on haunting his poetic craft. His childhood and formative years were spent in a South Indian middle-class family and his later life in the U.S.A. He had a thorough knowledge of several languages and literatures, Indian as well as Western. The resulting fusion of cultures, languages, and sensibilities shaped his poetic art. Jasbir Jain maintains that 'A.K. Ramanujan is a first-generation immigrant who carried his Indianness with him and created a space for it in the world of adoption… for him Indian culture is live culture, (x-xi).

India's rich culture, its heritage of interesting and diverse traditions, continued to preoccupy Ramanujan throughout his career. After his migration to America, another dimension was added to his experiences. As Akshaya Kumar says, Ramanujan's 'past is not to be wished away; the present works through it… spatially he has to flit across his motherland and his father land, America; temporally he has to jostle with his ancient Tamil and Kannada past, colonial present along with host of other local and national and international temporalities' (x-2).

Most of the critics have acknowledged the skillfulness with which Ramanujan 'achieves a rare blending of the ancient and the modern, the Indian and the American idioms. As in T. S. Eliot, in Ramanujan too there is continuity from tradition to modernity, continuity between his poetry, translations and scholarship' (Ramakrishna 7). He shows a keen awareness of the relationship of the past—the cultural and social as well as the individual past—with the present. In one of his essays, 'Classics Lost and Found', he writes: 'Just as our biological past lives in the physical body, our social and cultural past live in the many cultural bodies we inherit- our languages, arts, religions and life cycle rites' (quoted in King, *Three Indian Poets*, 90). Elsewhere, in an interview, he says, 'The past never passes. Either the individual past or historical past or cultural past. It is *with* us…the disconnection is as much an understanding of the past as making the connection. And people living in the present have to see both…' (Jha 7-8). His four volumes of English poems are transcreations of Indian culture and records of Indian consciousness. Parthasarathy comments that-

'Ramanujan's works are the heir of an anterior tradition, a tradition very much of the subcontinent, the deposits of which are in Kannada and Tamil and which have been assimilated into English. Ramanujan's deepest roots are in the Kannada and Tamil past, and he has repossessed that past, in fact, made it available, in the English language' (44).

Human life can be considered as a 'series of influences' or 'series of associations.' These influences, situations and associations begin with the smallest unit of society i.e. the family. The family stands pivotal in the shaping of an individual life and its impact becomes more significant in terms of culture and ethnicity. Institutions like the family not only bring a poet into contact with the world, but also shape the sensibility and personality of the author. The family is a major source of the characters and motifs found in A.K. Ramanujan's writings. This argument can be easily substantiated by the fact that he has given titles to his poems which are closely related to the institution of family.

'The importance of the domestic sphere as a meditating factor may indicate why family life serves as a primary theme in many Ramanujan's early poems, and as the main metaphor for society even in his later work' (Dharwadker xxxii). From Ramanujan's response towards the institution called family, one can easily draw the conclusion that his attitudes toward women are not conventional, even though he was himself brought up in a traditional atmosphere. Ramanujan has written about women in different roles. The significant thing about his portrayal of the different hues of a woman's life is that even when he finds himself unable to understand the female character's psychology or consciousness, he tries to justify the position taken by her.

The poem where Ramanujan portrays female sensibility is "On the Very Possible Jaundice of an Unborn Daughter". This poem is unique in its own way as it portrays and justifies the possibility of the falling ill of an unborn daughter. Ramanujan prepares the ground in the first three stanzas of the poem and finally justifies her susceptibility to falling ill. He writes—

And plunges in a parallax of several eclipses
to our earth where we pull
grasshoppers' wings
and feed red ink and lemon
-peel
to dragonflies. (14).

The family has always worked as a backdrop for Ramanujan's canvas; in fact, family operates as a store house of symbols, metaphors and images for his poems. One poem which illustrates this is 'Extended family'. In this short piece Ramanujan recalls different members of the family and associates them with various aspects of human life. In fact, these aspects of human life remind him about the members of the family. He talks about the qualities that his family bequeathed him at the time of childhood. His various activities follow the example of different family members. His pious Ganges is 'chlorine water'. He correlates his past with the present reality of his children. Somewhere, he is carrying the inheritance given by his parents and again bequeathing it to his children.

Yet like grandfather
I bathe before the village crow
the dry chlorine water
my only Ganges
the naked Chicago bulb
a consign of the Vedic sun (70)

This poem describes the 'samskara' that he has got from his family. We also see differences between his past and present. However, it is not simply that the author associates family members with certain habits and activities; his real intention is far more serious and relevant, especially in the present scenario. The poet shows the significance of traditions, which are generally associated with different family members.

In the 'Opposable Thumb' Ramanujan returns to a familial memory from the past that is ingrained in his mind. The poem is very sympathetic to the women and critical of the male world. Traditionally, in Indian families, women are required to be submissive before men. In the description of the granny, the poet's empathy can be sensed, and he shows disapproval of male domination. As A. N. Dwivedi says, 'from the image of fingers the poet is led to narrate this old women's plight' (19).

We always looked to find on her paw
Just one finger left of five: a real thumb
No longer usual, casual, or opposable

after her husband's
Knifing temper one Sunday morning
half a century ago. (6)

Like the granny, the blind boy and the muslin-weaver are also objects of sympathy, but it is in the portrayal of the old woman that patriarchal violence is questioned. The poet has a sense of belonging to his background, as proved by his return to the past, but he is also capable of condemning what is wrong with it.

He refers the folk tales told in the families. Those tales remain pillars of behaviors of youngsters. Such stories are the 'collective unconscious' of his present self because they echo in his mind with understanding and wisdom.

Granny
Tell me again in the dark
About the wandering prince;
And his steed, with a Neem-leaf mark…
The parrot in the cage
Will shout his name
To the gossip of the kitchen's blowzy flame. (17)

The poem 'Self Portrait' shows 'a personality conscious of change, enjoying its vitality, freedom, and contradictions but also aware of memories which form his inner self, memories of an unconscious namelessness, which are still alive, at the foundation of self' (King 212). It is a poem which explores the dimensions of the alienated self. However, at the same time he also writes that his portrait is:

Often signed in a corner
By my father. (23)

Thus, he is created or shaped by his 'father' (who can literally mean his actual parent or a symbol for the past). In the poem 'Obituary' the poet remembers his father with a mixture of irony and realism. 'Sometimes, his portrayal of his father approximates to sardonic sarcasm' (Shinde 109) and this is a poem that follows such a point of view.

Father, when he passed on,
Left dust
On a table full of papers
And he left us
A changed mother
and more than one
one annual ritual. (111-112)

In the poem 'Of Mothers, Among Other Things' he recollects the ideal image of his mother. He 'describes his mother always with love, admiration and adoration' (Shinde 109) and this poem is the best example. He wants to show her as 'the epitome of endurance; women busy in the household of chorus, women as the embodiment of self sacrifice; women as the epitome of love and compassion' (Ghose 154).

His love poems to his wife are 'anti-romantic' (Ghose 157). In 'Love Poem for a Wife I' he shows that a strong relationship should have some understanding about the past.

Really what keeps us apart
At the end of the years is unshared
Childhood (65).

This poem is a comparative study of his and his wife's families. He describes certain things that differentiate between the families. Both the husband and the wife try to know about each other's childhood memories and family traditions; and sometimes they find themselves alienated from each other. Ramanujan is always obsessed with the past that symbolizes his culture; this poem is a study of two pasts which are living together.

You suddenly grow
Nostalgic for my past and I
Envy you your village dog-ride
And the mythologies. (65)

In the next 'Love Poem for Wife II' he describes the unsatisfactory condition of the relationship. He always shows himself as far from his wife when he talks about his past. He shows the 'night of rage and quarrels in the forest' but at the same time he dwells on the 'changing syriac face of his wife'. He feels the mix-up of his self with his wife's, but that mix-up can not bring their pasts together, and one thing is always the same, that is 'insatiable envy'.

In one of his interviews, A.K. Ramanujan says, 'myth which is considered as telling the truth about the world in some sense which is sacred' (95). Even while he was staying in the United States, he made frequent trips to India in order to collect folklore, proverbs and riddles. Ramanujan was a specialist on these things. He was interested in the proverbial truths that educate society in implicit ways. In A K Ramanujan's poems myth and culture are part and parcel of the poetic fabric. He explores both the culture in which he is living and the culture that he left.

In the poem 'Conventions of Despair', for example, he shows his attitude towards his cultural values as a Hindu. The poem traces the poet's own difficulties and his desire to find a shelter in his Hindu

past. As a critic says that "the poet tells us explicitly that he rejects the demands of the modern such as marrying again or becoming the outsider" (Ghose 79) so we can understand the mind of poet and attitude regarding the Indian tradition. He chooses to follow the traditional path. His sense of belonging to his culture is so deeply rooted that, at any cost, he does not want to forget the 'conventions' that he got through his Hindu religion:

But, sorry, I cannot unlearn
Conventions of despair
They have their pride
I must seek and find
My particular hell only in my
hindu mind (34)

The word 'only' shows that the 'Hindu mind' is the only pivot that attracts the poet. In spite of living in a very different cultural environment at present, he has a permanent sense of intimacy with his native culture and values. Thus, 'it is impossible for him to shun his roots completely and step into the shoes of modernity whole-heartedly' (Dwivedi 105). When the poet comes back to his culture, it soothes his heart, though he talks of 'conventions of despair'. In 'A River', the poet 'places himself in a Tamil cultural and poetic tradition by criticizing it' (King, *Three Indian Poets*, 82). The poem explores a tragedy that has happened but not been reported properly. It talks about the river Vaiki that runs through Madurai, a hub of Tamil culture. The poem discloses the precarious attitude to reality prevailing in the local culture and literature. The poet contrasts 'the traditional praise for the river… with what is actually experienced by people during the flood' (Parthasarathy 95).

The poets sang only of the floods. (38)
… … …
The new poets still quoted
the old poets, but no one spoke
in verse
of the pregnant woman
drowned, with perhaps twins in her… (39)

In this way Ramanujan implicitly wishes for 'contemporary poets, modern as well as postmodern, to be true their experience' (Bhatnagar 74). He is critical of the 'contemporary poets' who 'do not see poetic possibility in human situations. Instead, they seek stock poetic subjects or sing the past glories' (Singh 52). The poet himself visits the place, and writes in verse about what really took place. He reports how the flood carries away-

… one pregnant woman
Expecting identical twins
with no moles on their bodies
with different-colored diapers
to tell them apart. (39)

Thus, in spite of his realism, he takes advantage of poetic license, like the traditional poets. In the poem 'A Hindu to His Body' he seeks to create a balance between body and soul. Traditionally, in Hindu religion, the soul is more important than the body but the poet wants to give equal importance to both. W. B. Yeats gives more importance to the soul, because when body will decay, the soul will come to power. It is the soul that gives him solace to live in this mortal world; otherwise, the body is merely a 'tattered coat upon a stick'.

He revisits the conservative Hindu thought related to the soul and body. For him bodily passion is also as important as the calmness of the soul. This is realistic because, on the conscious or unconscious level, everybody wants to live with his body and everybody is fearful of death. So, he is close to the reality of what a man demands at every stage of his life. Yet, in spite of this, he describes himself as a 'Hindu'. It shows his awareness of how his religious tradition has influenced him, but he is also able to modify it. In the poem 'THE HINDOO: he doesn't hurt a fly or a spider either' Ramanujan returns to the scriptural truth that is a cornerstone of Hindu belief. In this poem he muses over the birth and rebirth theory found in Hindu religious philosophy. The speaker explains that he accepts other creatures as possible reincarnations of his dead ancestors. So, the Hindu gentleness lies in not hurting any creature.

For who can tell who's who?
Can you? Maybe it's once again my
Great swinging grandmother, (62)

Ramanujan's poetry shows the lasting influence of Indian thought and its originality at the practical level. He does not take instances directly from religious scriptures but instead paints daily life with the colors and concepts of religion. In the poem 'One, Two, Maybe Three, Arguments against Suicide' he shows the two dimensions of soul and body between which desire travels. He takes the example of Kamdeva (God of desire and love) who was burnt by Shiva's third eye in Hindu mythology. He says that after suicide the 'good name will go to hell' but it will be a formal death because after this the 'self' will work like an 'odorless soul'.

Ramanujan is a poet of Indian rituals

and lore, and his subjects are often drawn from that tradition. In the poem 'Prayers to Lord Murugan' he addresses the 'ancient Dravidian god of fertility, joy, youth, war, and love', a 'six faced god with twelve hands'. The poem is based on South Indian mythology. He is like a devotee who wants to secure his lost senses as well as those of others. In the first part of the poem the poet describes Murugan as the god of all people. Murugan is a god of nature. So, the poet requests the god to provide him with all kinds of natural beauty as well as grains to feed. Murugan is also god of animals and superstitious 'witches'. He is lord of the six senses, so the poet prays to him:

Lord of six senses,
Give us back
Our five senses.
Lord of solutions,
Teach us to dissolve
And not to drown. (116)

In the poem 'Second Sight' Ramanujan refers to the common stereotype held by many non-Hindus (especially in the West) that a Hindu has visionary powers or 'second sight'. A question is asked….

you are Hindoo, aren't you?
You must have second sight. (191)

The questioner infers that second sight is something that a Hindu always possesses. However, the speaker reaches the conclusion that he has only one sight. Perhaps this is acceptance of the concept that the first sight, the natural sight of the senses, is the one that gives the clearest vision. Thus, he challenges the Western stereotype and shows that Hindus have only one way of looking at reality, the same as all other races or communities, and that is through the five senses. So, in his poems the mythical world always comes with its instructions. He is like T.S. Eliot and other writers who bring mythical allusions to instruct and cure society. He, as a diasporic writer, does both things: on the one hand, he recollects his past, and on the other, he instructs the present.

Works Cited

Amaga, H. L. *Indo-English Poetry.* Jaipur: Surabhi Publication, 2000.

Banerjee, Santanu. *A.K. Ramanujan's Poetic Theory and Practice.* New Delhi: Sunrise, 2009.

Bhatnagar, M.K., ed. *The Poetry of A.K. Ramanujan*. New Delhi: Atlantic Publishers & Distributors, 2002.

Chindhade, Shirish. *Five Indian English Poets*. New Delhi: Atlantic Publishers & Distributors, 1996.

Dwivedi, A. N. *The Poetic Art of A.K. Ramanujan*. Indian Writers Series. Delhi: B.R. Publishing Corporation, 1995.

Ghose, Suman. *A.K. Ramanujan As A Poet*. Jaipur: Book Enclave, 2004.

Jasbir, Jain. *Writers of Indian Diaspora.* Jaipur: Rawat Publication 2004.

King, Bruce. *Modern Indian Poetry in English*. 1987. Delhi: O.U.P., 1989.

Kumar, Akshaya. *A.K. Ramanujan: In Profile and Fragment*. Series Ed. Jasbir Jain. Writers of The Indian Diaspora. Jaipur: Rawat Publications, 2004.

Mehrotra, Arvinda Krishna, Chosen and ed. *The Oxford India Anthology of Twelve Modern Indian Poets*. 1992. New Delhi: O.U.P., 2003.

Naik, M.K. *A History of Indian English Literature*. Delhi: Sahitya Academy, 1982.

Pandey, Birendra, Ed. *Indian Poetry in English*. New Delhi: Atlantic Pub. & Dist., 2001.

Parthasarathy, R., chosen and ed. *Ten Twentieth-Century Indian Poets*. 1976. Delhi: O.U.P., rpt.

Prasad, Madhusudan, ed. *Living Indian English Poets: An Anthology of Critical Essays*. New Delhi: Sterling Publishers Private Limited, 1989.

Prasad, G.J.V. *Continuities in Indian English Poetry: Nation Language Form*. Delhi: Pencraft International, 1999.

Ramanujan, A.K. *The Collected Poems of A.K. Ramanujan*. 1995. New Delhi: O.U.P., 2000.

Ramazani, Jahan. "Metaphor and Postcoloniality: The Poetry of A.K. Ramanujan". *Contemporary Literature:* 39, 1 (spring) 1998. pp. 27-53.

Singh, Kirpal. A.K. Ramanujan: The Poet. Gen. Ed. Som P. Ranchan. *Literature Series*-6. Delhi: Vrinda Publications (P) Limited, 1999.

****

Portrayal of Myth, Tradition and Female Objectification in R K Narayan's *The Guide*

-Dr. Ashish Kumar Gupta
Assistant Professor
Department of English
Government Degree College Muwani,
Pithoragarh, Uttarakhand.

R.K. Narayan is considered to be the harbinger of portraying Indian mythology, Indian tradition and the objectification of women in his oeuvre. He introduced various female characters in his works who were shackled through the chain of patriarchal ideology. The socioeconomic reality and the issue of women in the Indian social structure are reflected in his works. "Feminism in India is not a singular theoretical orientation; it has changed over time in relation to historical and cultural realities, levels of consciousness, perceptions and actions of individual women and women as a group. Historical circumstances and values in India make women's issues different from the Western feminist rhetoric" (Tewari & Tewari, 2009). Keeping with Narayan's writing, it can be shown that even a male author could comprehend and discuss women and their psychological demands in his works. His books explore the psychology of women. A rapid social transformation occurred in Indian society after independence, and a new kind of woman developed as a force in many walks of life. Women's issues continue to rule the literary world today. Narayan discusses women's position in the home, society, and the workplace in his works. His books follow Indian women as they transition from a traditional society to a modern, enlightened one. He has written extensively about the personalities of women. He is a novelist who deals with traditional Indian ideas about women, especially in his novels and provides them a larger canvas to move on freely to represent their larger life. In Indian culture, a woman's traditional role is defined in relation to those of her husband, daughter, sister, mother, daughter-in-law, mother-in-law, and grandmother. In each of these roles, women play a significant part in Indian society. If we see pre-independent and just-after-independence India through a bird's eye view, we find that the most disadvantaged individuals reside in downtown districts but work in the industrialization-affected regions, therefore the effects of economic rebuilding on black communities have long been felt. Urban ghettoes have fewer prospects or jobs, trapping their residents in poverty. In addition to the rise of biological and social emergencies, women's positions in society and their perceptions have improved as a result of a sharper focus on myths, folklore, and traditional religion. Since the beginning of time, women have assumed the position of wife naturally and appropriately in home and community activities. Kanta Grover's motto is "Women are regarded as the highest gift of God to man." She is the very essence of a relationship with others. The high psychological and social facts about a woman's life are divided into three categories. First, she is her parents' daughter; then she is her husband's wife together with the daughter-in-law of his parents, then she is a mother to her children. A woman, not her father, her son, or her mother, her friends or herself, but the husband in this world and the next is her only means of salvation. But Rosie expressed her grief that "[…] I followed him, day after day, like a dog—waiting on his grace. He ignored me totally. I could never have imagined that one human being could ignore the presence of another human being so completely" (134).

A few female characters in this literary analysis are represented as literate. A study on how exposure to women affects the student image of women in historical myths is required, together with the studies that portrayed women in myths are historically accurate. Information gathered from studies will help the authors to articulate real characters in real scenarios. Understanding how the reader interprets the pictures of a female character will help analysts and researchers in order to understand how these pieces get fit into the puzzle of how a young woman's emotions develop. Initially starting in the West, the women's movement that battled for women's liberation rapidly spread to India and other nations. Ellen Jordan writes, "The feminist woman who gave young women her hatred for men, her inquiries about marriage, her determination to escape the boundaries of home life, and her belief that education can enable a woman to lead a financially, single, but fulfilling life" (1999). In his entirely fictitious narrative, Narayan shows how indolent, lowly, destitute women become educated, diligent, and independent individuals. Her personalities are all genuine and yet contemporary and conventional. They are all obstinate individuals with a desire to advance in life. National identity, such as gender and sexuality, has become political and for some people, it has become very politically focused. There is an intensification of racism, arising from feelings of disrespect or lack of access to public space, which contain 'good' contradictory images against traditional or prominent beliefs. It is the politics of self-disclosure with the in-

tention of challenging the existing power relations; of seeking not just racial tolerance difference but also public consent, resources, and representation.

However, the symbolic level of diversity sometimes seems to reflect racial diversity as if it had nothing to do with material experience and a decline in social relations altogether. This can be seen in the public domain accounts which emphasize their symbolic status. An analysis of the text or content of the role of women in historical fiction of a particular group of culture may be enticing. Continuous learning can also be commended for any themes that have emerged from this literary analysis as women in informal relationships with women receiving certified education. The culmination of the release of a new woman for the first time was widespread and genuine concern and the improvement of the sad image of women became a social problem at the beginning of the 20th century. It was the knowledge of all English writers including RK Narayan. Narayan with the character, Rosie, in *The Guide* shows the appearance of a new woman. For Rosie, Narayan has portrayed a woman facing a dispute between traditional practices and a strong desire for individual fulfilment. Narayan portrays an Indian culture that is deeply rooted in culture, where women have been the primary victims of endless situations and meetings. Rosie is also a victim of conditions and societal norms but with her obstinate attitude, she makes her way with a feeling of dignity, reflecting a woman who was recently liberated from post-independence Indian society. The exploration shows how a woman strengthens herself by breaking the old chains of tradition and meeting and ultimately bringing about a new woman's era. Raju once said, "My mother was amazed. 'Girls today! How courageous you are! In our day we wouldn't go to the street corner without an escort. And I have been to the market only once in my life, when Raju's father was alive" (141).

If Raju can physically encourage Rosie that she needs, then why is their union so inconsistent? Because Raju, without proper education, will never give Rosie the creative encouragement she needs. The bluffs on the left and in the middle of his appreciation for his talent because that's the open thread where their relationship survives. Raju has given her a 'new life' but cannot continue falling in association with intoxication and vaulting ambition to keep her under his mastery. As soon as Rosie enters her world, then Raju slowly fires because she cannot really be a part of that pure art form. Narayan's concern for humanity has been expressed in relation to the huge increase in the need to increase the area of women's liberation. His world of imagination is surrounded by a society of Hindu in which men occupy a higher position than women. Women are often confined to all sorts of restrictions that are imposed on them and everyday problems, but the situation has changed from a strict system to a system of sustainable, liberated civilization, and women have gradually begun to become socially independent. The female characters who go in search of freedom by minimizing their applied process, face social conflict and ultimately gain a lot. Rosie is an appropriate example of a woman's status like this in Indian society. She utters,

> 'I belong to a family traditionally dedicated to the temples as dancers; my mother, grandmother, and, before her, her mother. Even as a young girl, I danced in our village temple. You know how our caste is viewed?' […] 'We are viewed as public women ', she said plainly, and I was thrilled to hear the word. 'We are considered respectable; we are not considered civilized.' (75)

In addition to marital relations, Narayan deals with other important themes of a family such as relationships between father and son, the love of parents, and the communication gap between older and younger generations in his novels. For instance, in *The Vendor of Sweets*, Jagan, the sweet seller always loves and takes care of his son. But being influenced by Western culture Balu is almost impossible for a convert. As a result, the relationship between father and son has become so strained that there is a complete communication gap between the father and the son. Just because of his uncle Jagan knows how to find out more about what his son is doing. However, for Rosie to leave her husband without trial, the boring archaeologist of Narayan's book must have been undeniably evil. So, Marco in this story is powerless and treats strange prostitutes on a regular basis. And after leaving Marco, Rosie is carefully shown keeping a separate bedroom from Raju. Dating was permitted, but sexual relations were not permitted until marriage. In addition to encouraging women to consider living out of wedlock, Rosie's first wish when she was asked to marry Raju was to give up her lucrative career. The Hindu community is divided into castes and sub-castes and weddings are usually started organizing within the caste as it is seen in today's era. Rosie was not acceptable to Raju's mother as her daughter-in-law. In *The Painter of Signs* Raman's aunt opposes his marriage to Daisy; in *The Vendor of Sweets*, Jagan, who was a Gandhian fan, was shocked to see his son's relationship with an American girl had brought with him from the United States. Meanwhile, in *The Bachelor of Arts* Chandran's parents are also against him who wants to marry the girl he loves, and he sounds reasonable: He wants the waterless sections of society to be eradicated. There are so many people like Marco who don't fit in with their class, as he welcomes Rosie as his wife. However, Marco and Rosie's marriage

ends on a very sad note. Narayan novels represent the middle-class category of Indian society where life is steeped in fasting (Sarkar 2011). This statement helps to underscore the importance of fasting in Narayan's novels to depict the life or behaviour of ordinary Indian society, very especially features of the middle class. In this reference, fasting is related to traditional cultural and spiritual practices of India. The author may or may not intended to depict Indian society with this portrayal, but it emphasizes cultural values and spiritual life in the middle-class day-to-day.

India is entirely dependent on agriculture. In the book *The Guide,* R. K. Narayan describes a global problem. In terms of agriculture, agriculture depends on the monsoon. When it is severe or meagre than expected, it makes the agricultural situation worse which leads to unavoidable flood, famine, water shortages, disappearing cattle, protesters trade, reforms, pujas, and sacrifices to please the rain god.

From Rosie, we know that in modern Indian culture systems such as 'Devadasis' they still exist today. She only marries Marco in order to escape the constraints of Indian society. According to custom, Raju's mother intended him to wed her brother's daughter. Raju's father desired that Raju should manage his store next to the train station. Rosie also wanted to dance, but her husband disallowed her. This shows that Indians who adhere to their old beliefs do not accept new beliefs before other people. Those Indians of Indo-English become their victims with a simple understanding of the language's functioning. Neo-colonialism is a form of government in which the old power structures subordinate to the new monarchy, where the Indian subcontinent, were nationalist politicians who continued to rule the country. In other words, what is India affected, first in the form of Orientalism, next in the form of neo-colonialism? Thus, the regional claim "in the Indian language only where the understanding of the Indian can be explained" assumes that the use of the Indian language reflects a pure Indian identity. But Indo-Anglian, the national claim, ignores the types of obligations that may arise from the system of symbols used which are the product of translation.

Through Raju, Narayan invites us to share the infinite freedom of the universe. He shows his journey in the mist and the fulfilment of the truth of the universe. Using the hypothesis of moksha or liberation, mentioned by the Hindu savant and Shankara, a theologian stated that existence was a challenge for '*Atman*' which means the man himself to become 'Brahman,' a pure being when restricted to Brahman's vision. Ignorance or 'avidya' which means incorrect knowledge puts us in the shield of the *Maya* (deception) for seeking them with own eyes. However, with the appropriate knowledge of the *Vedanta*, each soul sees an infinite truth that exists forever behind the Maya veil, recognizes that its true nature is similar to that of the Brahman, and with this understanding reaches the moksha.

R.K. Narayan's *The Guide* is a good example of the realistic portraits of the Indian state as this technology was used in the catastrophe of Shakespeare's King Lear artfully revealing the complexity, illness, and chaos of Lear's reign with the unmistakable authenticity of his art (Ramanan, 2014). In a similar vein, RK Narayan portrays Raju's journey through various stages of life as a food salesman at the Railway station, a tour guide, emotional adultery, Rosie's manager, a prison inmate, a martyred martyr as he portrays Raju's transformation from Railway Raju to the spiritually revived Raju. Narayan prioritizes social and economic aspects prevalent in Indian society. He also focuses on the breakdown of familial ties, Indian society's religion, and different social issues including the drought, the blind confidence in sadhus, and Indians' superstitions. Interestingly, Narayan's all female characters who broke the common patterns of South Indian society were given English names. They have been translated into English so that, on the other hand, their discriminatory identity can be defined by Western standards (adultery, premarital sex, unexplained social origin, etc.) and, on the other hand, that identity can be smoothly removed from the Indian records.

References:

Jordan, E. (1999). *The Women's Movement and Women's Employment in Nineteenth Century Britain* (1st ed.). Routledge. https://doi.org/10.4324/9780203021101

Narayan, R. K. (1951). *The Bachelor of Arts*. Indian Thought Publications.

Narayan, R. K. (1964). *The Vendor of Sweets*. Indian Thought Publications.

Narayan, R. K. (1967). *The Painter of Signs*. Indian Thought Publications.

Narayan, R. K. *The Guide*. (1958). Indian Thought Publications.

Ramanan, M. Introduction in *R. K. Narayan: An Introduction*, Foundation Books. 2014. pp. 1-53. doi:10.1017/9789382993834.002

Sarkar, Leena. "R.K. Narayan's *The Guide*: A Socio-Economic Discourse," *The Criterion: An International Journal in English*, Vol. II. Issue III, September 2011.

Tewari, B., & Tewari, S. (2009). The history of Indian women: Hinduism at crossroads with gender. *Politikologija Religije*, *3*(1), 25–47. https://doi.org/10.54561/prj0301025t

****

Cultural Displacement and Identity in Amitav Ghosh's *Gun Island*

-Dr. Naveen Kumar Vishwakarma

Assistant Professor
Department of English
Baiswara Degree College, Lalganj, Raebareli, Uttar Pradesh.

Amitav Ghosh is a critically acclaimed Indian author, both for his fiction and non-fiction works who was born on July 11, 1956, at Calcutta (now Kolkata) in India. Born into a family of broad intellectual culture (his father was a diplomat), Ghosh lived an itinerant childhood, and the constantly changing scenarios fed his later work thoroughly. He completed his studies at the University of Oxford (BA in History), and was enthroned as a Rhodes Scholar; later he earned a D. Phil in Social Anthropology. With a solid scholarly and historical grounding in history and anthropology, Ghosh has continued to delve into the nuances of cultural clashes set against real events. Ghosh is well-known for his one of the major projects that is The Ibis Trilogy which examines the complex entanglement between history, colonialism and human movement during the 19th century. The trilogy comprises *Sea of Poppies*, *River of Smoke* and *Flood of Fire*.

Sea of Poppies (2008): This first part of the trilogy is set against the backdrop of the Opium Wars and explores life on a ship (the Ibis en route to Mauritius) through diverse characters. A novel exploring narratives of people from India, China and other places where exploitation is found in an unforgettable way which even includes profound elements as freedom and identity by Ghosh when he talks about the chemistry between them. *River of Smoke* (2011) is the next in line, detailing what happens after all this opium gets to Canton (current-day Guangzhou) and revisiting certain characters from Book 1. Ghosh's careful detailed historical research together with his imaginative storytelling brings the intricate economic, and cultural transactions of that epoch into concrete existences. The final instalment, *Flood of Fire* (2015), follows the story onwards into the First Opium War and its influence on drawn figures from before. Weaving history with personal stories in his characteristically rich narrative, Ghosh gives us a sweeping account of war and responsibility born from the very origins of colonialism.

Apart from the trilogy there are other famous novels. *The Circle of Reason* (1986) is his first novel in which he tells the story of a young Bengali Muslim named Alu, and his wanderings across Bengal to Turkey. The book deals with such universal themes as logic versus emotion, faith and reason, and the quest for understanding in a world of political unrest amid rapid cultural change. *The Shadow Lines* (1988) is a work of imagination with roots in two very different cultures. This novel is a meditation not just on borders and identity but also on memory. Set over multiple generations and continents, the story follows a Bengali family from Calcutta to Berlin through World War II; it is an exploration of what happens when liberated women marry into male power. True to his signature style of non-linear narrative and lyrical prose, Ghosh crafts yet another captivating tale that traces the ways in which personal history is indelibly linked with national history. Liberally salted with anecdotes about a nearly vanished colonial Southeast Asian way of life, *The Glass Palace* (2000) is largely set during the heyday and senility both of British imperialism in Burma (now known as Myanmar) from which novelist Amitav Ghosh has evolved, spanning generations to continents. A multi-generational, multilayered narrative about the social and political turbulence of the 20th century, it paints a dazzling kaleidoscope in veritable prose. Located in the Sundarbans - a sprawling and remarkable mangrove forest area that is shared by India and Bangladesh, *The Hungry Tide* (2004) examines the performance of nature as well as its relationship to society. The lives of an American marine biologist, an Indian-American translator, and a small-time Goan fisherman are entwined in this novel that ad-

dresses climate change, the devastation left by cyclones.

The postcolonial experience and its resonance within individuals, different societies or cultures is a recurrent theme of Ghosh's works. Ghosh examines the workings of power and exploitation through that history in novels like *The Calcutta Chromosome*, with its navels connecting modern-day research on malaria to British imperialist practices), as well as his explorations into historical events (the Opium Wars; Britain's colonization efforts throughout Asia). His novels frequently explore the Byzantine relationship between colonizer and flower that have haunted our pasts into its present.

Ghosh is deeply interested in environmental issues, especially the ways human behaviour intersects with and shapes natural environments; his novels as well as his notable essays like 2008's *The Great Derangement* focus on these subjects as thus:

> The great mangrove forest of the Bengal Delta, the Sundarbans, where the flow of water and silt is such that geological processes that usually unfold in deep time appear to occur at a speed where they can be followed from week to week and month to month. Overnight, a stretch of riverbank will disappear, sometimes taking houses and people with it, but elsewhere a shallow mudbank will arise and within weeks the shore will have broadened by several feet. For the most part, these processes are, of course, cyclical. But even back then, in the first years of the twenty-first century, portents of accumulative and irreversible change could also be seen, in receding shorelines and a steady intrusion of saltwater on lands that had previously been cultivated. (Ghosh, 2016, p. 7)

Dipesh Chakrabarty in his essay, *The Climate of History* (2009), terms humans as 'geological agents' and attributes them to alter "the most basic physical processes of the earth" (Chakrabarty, 2009, p. 206). In *The Hungry Tide*, Ghosh illustrates the fragile ecosystem of the Sundarbans and explores how climate change is affecting local communities. In *The Great Derangement*, he broadens this analysis to the global scale of human history and explores how elements of culture and political economy can have a direct role in environmental degradation that leads directly or indirectly into trend lines toward climate crisis. His narratives often assume the themes of identity, displacement and migration-embodying his own experiences in cultural mobility and mobilizing global communities together. Ghosh populates his novels, as characters or allusions, with figures who inhabit numerous identities - created by geography (India-England), history (colonial-settler-native) and individual experience. Using these stories, Ghosh examines how migration influences personal lives and public identities, ending notions of hegemony beyond heritage.

His novels grapple with the relationship between personal memory and collective history, interrogating where these two planes intersect or are cleaved apart all as part of an intricate mosaic quest to piece together individual fables against national histories from sundry antiquated shards. *The Shadow Lines* was reviewed in the context of how these moments are lived or inherited across generations, for example by employing non-linear narratives and shifting viewpoints, Ghosh captures the slippery nature of memory as a form of history that should give us pause when we wonder what actually happened in this country. Writer Amitav Ghosh excelled in meticulous research and historical detail, so that these fictive texts resemble reality. This historical commitment also gives Ghosh the ability to create places that are far from both era and distance without verging into nostalgia or prosaism.

One of the hallmarks of Ghosh's novels is multiple narrative arcs overlapping each other, bringing in a variety of points of view, plotlines and thematic foci. In the Ibis Trilogy, Ghosh weaves together stories of fictional characters from India and China with those as far away as Britain in addition to history set on a global stage. Gosh is able to do so by adopting a complex narrative, that asks questions about globalization, imperialism and cultural exchange from several angles which brings the lives of many different people regardless of how disconnected they are altogether.

Ghosh writes with a world-centric vision that transcends geographical and cultural borders. His novels take us across continents and oceans, through the recent past and deep into the heart of memory as it is lived by his characters. As Ghosh centres the narrative around characters who come to roam from very different parts of this world - places whose cultures and demographics have scripted a fiction, influence that wisely sums up in creating connections otherwise left invisible under strained contexts - he does so to allude none other than human exceptionalism as (re)invented against each other hand-in-hand with political interstation. Ghosh is praised for his descriptive and lyrical prose, which often sets an evocative tone. His language immerses us in landscapes, cities and seascapes with their sensory details, virtually sending readers to the ends of the earth. Yet Ghosh wields such a profoundly intellectual, sophisticated tool that his writing also reflects the impressive life work behind it - he is approaching The Great Unwinding from both angles. Ghosh is that rare writer in whom volatile artistry and a capacious intellect come together to produce bracing ideas inside the medium of glorious imagination.

Amitav Ghosh's novel *Gun Island* deals with history and myths of the past it also formulates an environmentally-aware story that braves ideas on cultural displacement and identity amidst contemporary migratory movements. While the novel is set against a backdrop of climate change and an unfolding global refugee crisis, it also serves as a powerful exploration of what happens to people - in both individual character and larger-scale society - when constant flux becomes conflated with personal identity. There is an exploration of the nuanced construction of cultural displacement and identity in *Gun Island* along with its emphasis on how human lives connect to one another in unison with their environment. In the heart of *Gun Island*, cultural displacement unfolds in multiple directions at once - a note-perfect elegy for how it takes shape on an individual and collective level. This displacement is embodied by the protagonist, Dinanath Datta (his muted name 'Deen' for Americans) - a rare book dealer from Brooklyn whose family hails from Kolkata. Through his travels from the US to the Sundarbans and later Venice, Sinha outlines a path towards understanding historical migrations that are constantly -re affecting identities of selves.

The displacement of Deen is both geographical and cultural. The distance that he draws from his Bengali lineage and the myth of the Gun Merchant (a story to him just told by the kids) comes in strong contrast with modernity against tradition. Through Deen, Ghosh demonstrates that cultural narratives and myths are integral to identity formation even when they have long been dismissed in our supposedly secular contemporary discourse. Instead, the more Deen researches into myth and legend, the further he isolates himself from his surroundings one could say emphasizes cultural displacement as a means of reconnecting with an identity that is otherwise being suffocated. According to Cinta, the Merchant's "homeland, in eastern India, is struck by drought and floods brought on by the climatic disturbances of the Little Ice Age; he loses everything including his family, and decides to go overseas to recoup his fortune" (Ghosh, 2019, p. 141). In Venice, Deen meets Bangladeshi and North African migrants - their stories of dispossession parallel to his own. Ghosh in a conversation (2019) with Sukanta Chaudhuri covered by Sudeshna Banerjee (*The Telegraph*), manifests: "The Venetian lagoon looks startlingly like the Sunderbans from the sky" and during this conversation, Chaudhuri terms Venice as 'urban Sunderban' (Banerjee, 2019). Ghosh depicts these migrants as existing in liminal states, trying to come to terms with the loss of their homeland and adaptation displacement. Rafi, a migrant Bengali teen who has paid his own way through Europe in the hope of finding asylum and eventually sending for family members back home. Through Rafi and the other migrant characters, Ghosh depicts a brutal reality of cultural displacement that amounts to xenophobia, exploitation, and wiping away one's identity.

There are several factors that lead to the implementation of immigration policies aimed at curbing 'illegal immigration,' including political, racial, terrorism, and economic factors. However, economic crisis

and financial instability can lead governments to respond with stricter immigration laws, and oftentimes, undocumented immigrants are invoked as the scapegoats for these economic and financial crises. (Martinez et al., 2015, p. 948)

In *Gun Island*, the identity crisis is as oblique a journey through environmental crises bound to man and nature become disconnected. Ghosh's storyline indicates that identification is intrinsic and not a set thing but diversifies from place to location. This is expressed in the novel also through the myth of Gun Merchant, which becomes central to its narrative and a metaphor for that fluidity. Also, the other world of Manasa, which in this narrative takes on the role of a cursed merchant around whose story we navigate through environmental collapse in the Sundarbans. The merchant contemplates these events as he endures the natural disasters, which ring true of our climate crisis today. Yet, Ghosh equates these mythic floods with the inundation of global warming on the Sundarbans, demonstrating his claim that environmental shifts displace as many humans and wildlife. Nilima Bose who runs the Badabon trust in the Sundarbans rightly observes that "the islands of the Sundarbans are constantly being swallowed up by the sea; they're disappearing before our eyes" (Ghosh, 2019, p. 18).

Tipu (the new generation youth from Kolkata who is a tech-savvy person) This paradox of Tipu's engagement with digital platforms and his return to India for a short while before going back to Los Angeles mirrors the globalized world we are living in. In order to investigate how technological progress affects identity formation and cultural ties, Ghosh employs the character of Tipu. An equally complicated narrative, shaped by a global history between two individuals from the same village in Tipu's correspondence with his cousin Cinta, a historian living out her life as normal as possible on some canal. For Ghosh's characters, myth and memory are crucial to their identities. The tale of the Gun Merchant once believed to be part of history, comes alive and shapes our world. Ghosh's vision of the myth as a living force emphasizes how much cultural memory is needed in order to keep one's identity consistent while being uprooted from its original position.

Here in the character of Cinta, an academic with a penchant for history sits perfectly on top this union between myth and memory. Where his research into the Gun Merchant's story and oft-even prescient insights about migration historically, provide a perfect melody note linking then with now. Cinta shows how respecting cultural memory can provide solace and strength to individuals and communities grappling with forced displacement. Ghosh also looks at oral traditions and culture to preserve specific identity. The oral recounting of the Gun Merchant's tale by characters like Kanai and Nilima in Sundarbans exemplifies the power of storytelling as they forge cultural continuity. These stories are ancestral, and being told them is a method of resistance against cultural erasure and displacement.

With *Gun Island*, he attempts to address the global forces that coalesce around individual identity, pointing out how transnational experiences flow into cultural identities and then again back. Ghosh takes his characters all over the world, defining for them modern identities that slip back and forth across national boundaries. This symbolism provides countertops to the novel with the incorporation of Venice as a crossroads between cultures and histories. They are the croquis grandstands of globalization, Venice becoming in some ways all but ubiquitous: as the country city that every summer millions visit in search of ever more distant memories and a dose of Italian excitement. So, the way in which transnational identities are formed through dislocations and adaptations is pictured in Venice at being where Deen rubs up against migrant communities. Ghosh provides a nuance narrative of globalization as both boon and bane. Tipu and Rafi are leaving so that they can have the best possible, but also barriers to their culture. Migrant exploitation, and the rise of xenophobic forces in Europe merely scratch the surface for a couple of ills that globalization tends to cover up with wrapping paper — reminding us what those repercussions are through this novel.

Gun Island is a novel based on the current

state of migrants and identity in an era where species are disappearing this simple description does not do justice to Amitav Ghosh's writing. A larger motif of cultural displacement and identity is brought home in the novel, *Gun Island* by the author through a journey that traces back to broader global realities. Ghosh weaves together myths, history and contemporary dilemmas to demonstrate the layered difficulties of individuals who constantly exist in more than one cultural sphere. In Deen's self-reflection and encounters, Ghosh emphasizes the togetherness of the world which is only a web that can leave identity open or even in pieces. After all, *Gun Island* disrupts fixed ideas of belonging as a form of loose living politics that can open up an aureole around the imaginary border and put on display possibilities for transformation in fanfare. Ghosh's tale paints a powerful image of how individuals continue to navigate the dance between tradition and modernity, lending an important perspective on human identity in times when culture shifts beneath our feet. The novel is thick in its storytelling, presenting the seminal association between humanity and place that invariably assumes a new name over generations. The myth, memory and globalization of Ghosh help uncover the complex reality of cultural diaspora as well as personal and group resilience in preserving their identities. In this way, *Gun Island* distances us from the safe shores of conventional storytelling to remind us how entrenched in their own ambiguities so much of a contemporary world are we wading through. Speaking to this sense of displacement in Ghosh's characters, he moves swiftly over the span of their experiences saying they represent what all people desire — a chance for us together inhabit a new world and re-invent ourselves.

References

Banerjee, S. (2019, June 21). Sunderbans to Venice, saga of a sinking world. *The Telegraph*. https://www.telegraphindia.com/west-bengal/sunderbans-to-venice-saga-of-a-sinking-world/cid/1692910#

Chakrabarty, D. (2009). The climate of history: Four theses. *Critical Inquiry*, 35(2), 197-222.

Ghosh, A. (1986). *The circle of reason: A novel*. Viking Penguin.

Ghosh, A. (1988). *The shadow lines*. Penguin Books.

Ghosh, A. (1995). *The Calcutta chromosome: A novel of fevers, delirium & discovery*. HarperCollins Publishers.

Ghosh, A. (2000). *The glass palace: A novel*. Random House.

Ghosh, A. (2004). *The hungry tide: A novel*. Houghton Mifflin.

Ghosh, A. (2008). *Sea of poppies: A novel*. Farrar, Straus and Giroux.

Ghosh, A. (2011). *River of smoke: A novel*. Farrar, Straus and Giroux.

Ghosh, A. (2015). *Flood of fire: A novel*. Farrar, Straus and Giroux.

Ghosh, A. (2016). *The great derangement: Climate change and the unthinkable*. Gurgaon: Penguin Random House.

Ghosh, A. (2019). *Gun island*. India: Penguin.

Martinez, et al. (2015). Evaluating the impact of immigration policies on health status among undocumented immigrants: a systematic review. *Journal of Immigrant and Minority Health*, *17*(3), 947-970. doi.org/10.1007

****

Care Ethics and Rational Ethics: A Comparative Discussion

-Sarbajit Mitra
PhD Research Scholar,
Department of Philosophy, Jadavpur University,Kolkata,

A longstanding debate in Western philosophy centres around the comparative importance of reason and moral emotions in ethical judgment. Among those who advocate for reason, Immanuel Kant's arguments are particularly strong. Therefore, we will focus on his views in this context. Kant believed that ethical judgment and debate are possible if the foundation of morality is based on universality and necessity. Otherwise, emotions and feelings in moral matters might render the entire discussion fluid and uncertain. Our experiences show that emotions vary depending on time and place; the same individual may feel differently about the same issue at different times and under different circumstances.

Furthermore, if the significance of moral propriety depends on like-mindedness or culture, then we may get a psychological explanation for the sense of moral obligation. However, the objection arises that this does not explain the inherent necessity claimed by moral concepts. On the other hand, opponents argue that the universality we achieve in moral matters through reason has no practical applicability in real life. Even Kant himself acknowledged that although a behaviour might be flawless according to the logical standards of pure morality, in reality, it might not be executed according to those standards.

How can we be satisfied with universality and necessity even if they are theoretically achieved?

Even when theoretically achieved, universality and necessity cannot be satisfactorily proven, even in the judge's own behaviour. Thus, while universality and necessity might be theoretically attained, how can we consider them satisfactory? In ethical judgment, merely gathering information about behaviour and its surrounding circumstances is not sufficient. Evaluating this information is an essential condition for applying moral principles; not only through the standards of justice but also through tendencies of compassion and prudence, which are always necessary in ethical judgment. Therefore, the role of emotion in subtle judgment must be acknowledged. While reason can determine overall rules, understanding certain elements of a situation is possible only through emotions. However, there is a concern that emotions can make human judgment biased, thus not creating an ideal impartial judge.

The question arises: What does impartiality mean? Is fair judgment possible if we consider only the logical standards? Can a judge who lacks compassion thoroughly understand the situation under judgment?

It is noteworthy in this context that even Kant could not deny the necessity of virtue. He acknowledged the value of our mutual sense of dependency and social emotions. Yet, he found contradictions and ambiguities among these emotions. Our self-interest often mixes with these benevolent feelings. Thus, Kant sought the ideal of morality solely through reason. Although humans are biological beings, their unique characteristic is freedom. By the virtue of reason inherent in them, they can transcend biological cause-and-effect rules to achieve pure morality. Here lies the grandeur of human identity.

The theoretical form of the feminist stance in

moral philosophy has undergone various debates. Liberals believe that reason is gender-neutral, although it is sometimes obscured in patriarchal society through fallacious arguments. On the other hand, radical feminists deny the importance of reason in moral discussion and any dialogue. Observing the nature of conversations or discussions in everyday life can help understand this viewpoint.

Due to the scope of this short essay, we will not delve into this debate. Instead, we will discuss two viewpoints that emerge from feminist philosophical thought:

1. The duality and comparative valuation of reason and emotion are biased.
2. The importance of care in moral judgment is immense.

Trust in the higher position of reason and intellect over the body and biology is a distinctive mark of philosophy, particularly Western philosophy. This dichotomous division not only shapes the field of description but also implicitly involves an evaluation. The body and physical actions are not only different from the mind, thought, or intellect but are also considered inferior. Thus, the transcendence of these leads to the triumph of humanity. Feminists do not accept this theory. Some feminist philosophers argue that acknowledging the importance of reason in moral judgment is not difficult if we remember that certain subtle feelings need to arise before thought or judgment.

Rational philosophy does not recognize the importance of the subtlety of feelings because, in that case, each ethical judgment must be understood and judged individually with sensitivity. But the question arises: does this maintain the universality required by moral standards? For a sensitive person, two instances of behaviour might differ in moral significance, although generally, these might be considered the same. However, no universal rule of sensitivity can be prescribed to make specific moral judgments sensitive. All that can be said is that the indispensable condition for this is care. But we cannot assert that all people possess care or that those who do will feel it equally in every moral judgment. Therefore, even if the directive to be caring can be broadly given, it must be remembered that this is a lesson that one (the judge) must master throughout life. Additionally, sensitivity to understand the contexts of application must also be acquired. For this reason, it can be questioned whether care ethics can ever achieve the clarity and universality of rational ethics.

Many philosophers who are not feminists, such as Shaftesbury and Hume, also recognize the importance of emotions and feelings in moral judgment.

The difference between their views and those of feminists lies in the feminist perspective that rationality in philosophy is male-centric. Men and women may be biologically different, but when we identify them as male and female in society, gender discrimination is at play. This process of dividing human beings into two entirely different categories is accepted as a natural process by philosophers and society alike. However, this dichotomy not only signifies difference but also creates a hierarchy where the superior position is attributed to men. Simultaneously, it is accepted that body and mind, extension and consciousness, emotion and reason are opposites. In this dichotomy, the attributes associated with men created by patriarchy are considered superior.

At first glance, it might seem that regardless of how men and women are identified, there is a gender-neutral identity that humans are rational beings. Yet feminists argue that a hierarchy persists here too; they show that women are placed in an inferior category

because they are deemed less rational than men—driven more by emotions than pure wisdom. Women create and nurture life, making their connection to the body and biological nature more intimate than that of men. This tendency to establish women and men in opposite and unequal qualities is noticeable in all patriarchal societies.

In this context, it is said that emotions are essential for maintaining relationships and this is considered a woman's natural vocation. However, if emotions are not controlled by reason, the outcome may not be good, because human identity lies not in biological nature but in rational restraint. Hence, the glory of women is confined to the domestic sphere, while men's work is to improve the larger society. To achieve this, men must take an impartial stance, guided by their inherent rationality.

Many feminists believe that this is where the seeds of discrimination against women are hidden. As a result of this characterization of humans, two things occur: first, it becomes eviden that the gender-specific attributes created by men align with the ideals of humanity, whereas the gender-specific attributes created for women do not.

Women are nurturing, compassionate, and do not seek independence; they desire to remain connected with others (Maitra, 2003, p. 88). This creates a disparity suggesting that men, being superior, are self-reliant. The dependence men have on women in personal and family life is not given respectful recognition. Women are seen as obstacles to spiritual advancement when viewed as wives. This tendency is known as unacknowledged-dependence, where mutual dependence between two categories exists but is not expressed in language or behaviour—gratitude towards the inferior is not acknowledged (Maitra, 2003, p. 84).

Earlier, we discussed the biological differences between men and women and the social construction of male and female identities—the former being nature-given and the latter socially created. However, many feminists, particularly feminist biologists, have questioned this as well. They argue that those who support the biological difference based solely on physical markers, and emphasize chromosomes, glands, and hormones, also rely on causality theories to understand biological differences. Yet, what is called a causal relationship is, in reality, a constant companion relationship.

Thus, it is truly challenging to determine how much of gender identity is natural and how much is social. Many feminists express deep skepticism towards the theory of gender differences through essence and duality, finding support in postmodernism. Others reapply modern philosophical views, such as Sara Heinamaa, who broadly accepts Maurice Merleau-Ponty's theory of intentionality. Merleau-Ponty adopted this theory from Husserl. Merleau-Ponty rejects the conventional philosophical habit of drawing a dividing line between the body of the knower and the known, the former being subjective and the latter objective.

This perspective, along with other feminist views, suggests that ethical judgments must consider the role of care and the intricate interplay between reason and emotion, challenging the male-centric bias that has traditionally dominated philosophical discourse.

On the close relationship between body and mind, Merleau-Ponty argues that the body is not merely an object of knowledge or perception.

The body is an indispensable condition for all object knowledge and intentionality. The relationship

between the perceiver's body and the object of perception is not like the relationship between two objective things. The body's utility for objects, determined by its structure and various causal relationships, is only a relationship between two objects. Conversely, intentionality is not merely a characteristic of human consciousness but of all its actions. Thus, the body is distinct from other external objects. Hence, gender identity cannot be identified solely by physical signs or attributes. Whether a person is male, female, or transgender should be understood in the context of the intentionality of their actions. This is not a search for a specific attribute; it provides a meaningful framework that is free and incomplete. When we listen to music, it initially spreads from a particular sense to the entire body and even to surrounding objects. Sexuality, similarly, is an intentionality that shapes all our actions, much like an atmosphere or mood shades the whole world (Heinamaa, 1993, p. 301).

It is incorrect to identify an individual's unique style—such as their smile, walk, dress, etc.—as a physical or conscious attribute. Nor is it merely a collection of specific actions. Similarly, if sexuality is a style, then femininity cannot be identified through certain actions like childbirth. We can say that sexuality is like a tune that resonates throughout a person's entire life and cannot be reduced to the repetition of a single simple attribute. Heinamaa argues that biological structure and meaning construction cannot be viewed separately. In biology, the simple rules we follow based on structure are limited in their applicability to specific cases. Conversely, when we look at the body from the perspective of its significance, we must remember that its styles and relationships do not express any inevitability—they depend solely on pre-imposed meanings.

In conclusion, while many philosophers recognize the importance of emotions in moral judgment, feminists highlight the male-centric bias in prioritizing rationality over emotion. Feminist perspectives challenge this bias by emphasizing the role of care and the complex interplay between reason and emotion, suggesting that ethical judgments must account for these factors to be truly just.

Of course, this does not mean that an individual can create their own style at will; new styles are formed based on pre-imposed meanings.

Here we find a certain inevitability, but this inevitability is merely the result of previous habits, which continuously change through exceptions and misuse. According to the phenomenological understanding, the words 'female,' 'feminine,' and 'woman' do not refer to objects or attributes described in biological, social, or psychological sciences. Rather, they characterize ways of handling objects and modes of combining attributes, that is, styles of being.

If we look at it this way, we cannot identify the difference between men and women or the ideal human character by any essential attribute. Postmodernists also notice that the dichotomous division of qualities maintains a violent hierarchy through power, such as intellectual/physical, male/female, good/bad, etc. However, they also state that meaning is not stable or unchanging. Meaning constantly evolves through the tensions of the past, present, and future. This is true for our actions as well.

Generally, in the realm of ethics, especially in the context of care ethics, we questioned universality. Postmodern feminists object to the rules of thought accepted as marks of universality in philosophy. For instance, Val Plumwood dismisses the traditional di-

chotomous logic (true/false) and advocates for 'relevant logic.' In essence, postmodern feminists believe that no object in the world has an essential nature. Therefore, discussions about the general nature of any subject cannot lead to any universal truth. On the other hand, rationality is primarily accepted as an ethical ideal in the hope that it can provide a universal, impartial moral standard.

In this context, Shefali Maitra states, "To the postmodernists... the actual situation is much more complex, and cannot be judged in such clear black-and-white terms. When multiple interpretations simultaneously demand attention, there remains a tension among them, yet a decision must be made. In such uncertain situations,...or when making decisions in an undecided state, one must certainly consider the moral and political dimensions of the issue. (Maitra, 2003, p. 90). Here, many raise the distinction between theory and its application—the moral standard is universal and abstract, but its application is extremely complex. It is necessary to ensure that personal or 'social/political' opinions do not influence reason. However, not everyone accepts this explanation. Many object that the realm of perception is much broader than that of rational explanation. Thus, relying solely on rational standards excludes subtle perception or moral understanding—without which moral judgment becomes hollow. Even the most ardent rationalist must acknowledge that there is no universal framework for moral sensitivity, yet it is (even according to Kant) an aid to moral judgment and behaviour.

Carol Gilligan emphasizes the importance of 'care ethics' over the traditional 'justice-based' or 'rights-based' ethics. She does not believe that humans have an essential nature independent of experience. Nor does she believe that the different perspectives of men and women are based on biological differences. Instead, she draws our attention to history, where gender inequality between men and women is almost always based on women's significant role in reproduction. Because women are primarily entrusted with care and nurturing responsibilities, they do not usually assert claims of individual autonomy, competition, and rights. This is not a sign of weakness but rather a long-acquired social habit. Conversely, as women continuously fulfil this expected role, men have been able to focus on their rights and the autonomy of the groups they belong to.

In fulfilling the role that society has given them, women have come to understand the mutual relationship between social relationships, responsibilities, and nurturing, and have placed the moral value of this understanding above the claims of individual rights or impartial judgment.

Human self-identity is not formed through the manifestation of some inherent, pre-existing general characteristic, as there is no such experience-independent general characteristic.

The practice of identifying humans based on the trait of rationality is a creation of patriarchal society. Only if both women and men can adopt a perspective of mutual dialogue can moral elevation be achieved.

...the central metaphor for identity formation becomes dialogue rather than mirroring; the self is defined by gaining voice and perspective and known in the experience of engagement with others.

We depend on each other in various ways. This dependence increases with age, in the helplessness of illness, and the inevitability of death. Yet, at the same time, instead of cooperating, we often engage in competition for self-interest or out of a sense of insecurity.

This is where the relevance of care ethics comes into play. According to Gilligan, care ethics provides the opportunity for individuals to become mature and sensitive, regardless of gender, creating a space where balance between self and others can be maintained ethically. However, Gilligan does not consider the potential for power abuse and oppression within the moral ideal of care ethics that she describes.

A person committed to caregiving might, if unresponsive to those they try to help, forcibly exercise power under the guise of so-called assistance. This is a dangerous tendency contrary to feminist goals. In patriarchal society, the practices of violence and domination in the name of spiritual, physical, and mental improvement are still prevalent. To eliminate various injustices and inequalities in society, the careful application of care ethics is crucial; otherwise, under the guise of care, oppression may ensue. Furthermore, determining how to extend the caring relationships possible within the family to the broader social sphere should also be a primary objective for proponents of care ethics.

It is noteworthy that Kant, a proponent of rational ethics, was aware of the potential for interference and oppression in the name of benevolence.

Kant mentioned two types of goals in the context of duty: one is the perfection of oneself, and the other is the happiness of others. It is not one's duty to increase one's own happiness because there is prudential reason within the knower that drives them toward the goal of happiness. Therefore, no further moral regulation is needed in this case. However, perfection cannot be our goal either because we cannot selflessly consider others' improvement as our own improvement. This conclusion is derived from Kant's anthropology and the structure of the human mind. We will return to this discussion at the end of the essay.

For now, let us focus on the question: if the standard of moral rules is determined by pure reason, do moral feelings (moral feeling), care, etc., have any contribution to moral judgment? Kant is one of those who set the standard of morality using pure reason. Thus, the question arises whether, according to Kant, emotions are entirely worthless from a moral standpoint. To answer this question, we need to examine some of the common criticisms against him, such as his formalism and the belief that he sees the moral standard as a rule that can be applied universally to determine moral duties easily.

In this context, it is essential to remember that Kant's views on morality are typically sought in two of his works: "Groundwork of the Metaphysics of Morals" and "Critique of Practical Reason." However, his views on this subject are also spread across other works, including his writings on politics and religion. His discussions on specific duties and virtues often go unnoticed. Kant himself is partly responsible for this; his positions on several moral questions sometimes seem not only unacceptable but also inhumane. For example, his stance on lying is wrong'—he considers this moral rule to be universally applicable, even in cases where lying could save an innocent person's life.

Here, Kant is criticized for explaining duty through the lens of unconditional imperatives. This criticism assumes that, according to Kant, if a rule is an unconditional imperative, then its validity is universally applicable; however, upon closer examination, a kind of error becomes apparent. According to Kant, intellectual ideal imperatives are unconditionally applicable to our actions because the validity of these principles is not judged by any goal. In other words, whether the action is acceptable as a means to achieve

a particular goal is irrelevant here.

Kant did not say that a specific moral rule, accepted as an unconditional imperative, cannot have any specific exceptions. For instance, the imperative against lying can be valid only if exceptions are clearly identified, thereby being accepted as an unconditional and universal imperative. These exceptions cannot be determined with a specific goal in mind, as that would make the imperative conditional; however, this does not mean that exceptions cannot be considered in particular contexts. These exceptions depend on the different formulations of Kant's unconditional imperative, such as the principle that every rational being should be regarded as an end in itself.

In the "Critique of Practical Reason," one of the twelve fundamental aspects discussed is the exception to moral rules. Many critics argue that Kant presents the unconditional imperative as a moral compass or universal decision procedure to help individuals find their moral duties. Yet, they often overlook that when Kant discusses the unconditional imperative in specific situations (such as borrowing money without intending to repay it), his aim is to examine whether commonly considered instances of moral duty or transgression...

In conclusion, while Kant's moral philosophy emphasizes the importance of universal and unconditional imperatives, it also allows for the careful consideration of exceptions within specific contexts, guided by rational principles rather than specific goals. This nuanced understanding highlights the complexity and depth of Kant's ethical framework, which aims to balance the universality of moral laws with the practical realities of human behaviour and moral judgment.

Kant explores whether moral duties and rules can be explained through the framework of unconditional imperatives. He aims to demonstrate that when moral duty is violated, we still feel obligated to universal moral rules, yet we decide to act against them due to inclinations.

Kant holds a negative view regarding human inclinations and emotions. He acknowledges that certain emotions can aid in forming good will, but he believes they are unreliable. Kant asserts that rationality, which he considers the essence of humanity, is revealed through evolution and history. According to him, humans have primarily manifested rationality through competition, as each person seeks to distinguish themselves from others, whom they cannot tolerate yet cannot abandon either.

Kant perceives this natural human tendency as an opposing force to morality. However, he is aware that rationality itself can also harbour anti-moral forces. He believes that these forces are much more powerful than general emotions and manifest through self-conceit. Emotions and feelings are not morally reliable because they are expressions of uncontrolled natural inclinations, but they are easy to identify. On the other hand, self-conceit hides behind reason in such a way that it requires much more caution to detect.

Through the evolution of reason, humans have accepted a moral rule whose fundamental basis is the belief in the equal dignity of every person. Thus, rationality begins its struggle against the very biological inclinations that are its source. Kant believed that one day natural inclinations and the demands of reason would be reconciled, though he recognized the path would be long and arduous. The question arises whether Kant suggested that controlling all biological inclinations and becoming indifferent to all matters is

a condition of good behaviour. This is commonly assumed to be Kant's view. However, he believed that certain emotions are expressions of reason itself. Consequently, without these rational emotions, a person cannot behave morally or rationally.

In conclusion, Kant's ethical framework acknowledges the complexity and challenges of integrating emotions and reason in moral judgment. While he emphasizes the importance of rationality and universal moral laws, he also recognizes the significant role of certain rational emotions in ethical behaviour. This nuanced understanding highlights the delicate balance needed between reason and emotion to achieve true moral conduct.

In his work "Metaphysics of Morals," Kant discusses four types of feelings that are necessary conditions for forming a sense of duty in an individual. These are:

1. Moral feeling
2. Conscience
3. Love for humanity
4. Respect

Each of these feelings is distinct from biological emotions because they arise when practical reason exerts influence over sensory inclinations. Among these, love for humanity is particularly relevant to our discussion. In both "Groundwork of the Metaphysics of Morals" and "Metaphysics of Morals," Kant differentiates between pathological love and practical love. The former is entirely emotion-based, while the latter is a rational inclination to selflessly benefit others under the command of duty. Clearly, practical love is more relevant to moral behaviour.

However, in "Metaphysics of Morals," Kant also states that to feel the duty of beneficence towards others, one must have a pre-existing rational tendency of love for humanity. It must be noted that when we act out of love for humanity, it is driven by a sense of duty, not by any biological emotion. Philanthropy, or love for humanity, is a tendency produced by the command of duty but is not duty itself; it is not practical love because practical love is not a feeling but rather recognized as duty by Kant. Thus, the love whose source is biological emotion (pathological love) can never be a prerequisite for fulfilling duty. Therefore, Kant's notion of 'love for humanity' does not fall within either category of his dichotomy regarding love.

The question then arises: if an action performed out of a sense of moral duty also has an emotional motivator, can it still be said to originate from 'good will' or duty? Can we act out of both duty and emotions like sympathy or compassion? If so, how do we determine whether the intention or will behind such an action is good, and if it is, to what extent it is good? Kant's discussions often leave us without a clear answer to these questions.

In summary, while Kant acknowledges the role of emotions in supporting moral behaviour, he emphasizes that genuine moral actions must primarily stem from duty and rational inclinations, not from natural emotions. This nuanced view of the interplay between reason and emotion in ethical conduct highlights the complexity of Kant's moral philosophy instead, in "Groundwork," we find an example suggesting that if we perform our duty grudgingly, without compassion or love, it represents the pinnacle of morality.

Sidgwick's objection here is highly relevant. He argues that when a benefactor is motivated by love and compassion, the beneficiary finds the benefit much more acceptable. Conversely, if the beneficiary knows that the benefit was given purely out of a sense of duty without any positive feeling, they may still appreciate

it but are likely to perceive the act as dry and harsh.

However, it can be shown that Kant does not consider such dry and unpleasant duty fulfilment as the pinnacle of morality. This is because, according to Kant, the ultimate goal of all moral behaviour is the dignity of all humanity as beings of intrinsic worth. When a person helps another despite reluctance, even without emotional love or the desire to do the task, there remains at least a rational love driven by the recognition of the other's dignity as a rational being. Here, moral love arises from rational grounds. Nevertheless, distinguishing which is the cause of moral action—emotional love or rational love—is challenging.

Returning to the question of why Kant denies any role for compassion, sympathy, or care in morality, we have seen that he believes the sense of inevitability and universality in the moral field can only be achieved through reason. He also holds that freedom means the possibility of rejecting biological causation. However, his negative attitude towards emotions for the sake of theory alone is not entirely acceptable. We find the answer in Kant's anthropology and psychology. He posits that there is a profound inconsistency in human behaviour, which he calls "unsociable sociability." Even the most caring emotions towards others are intertwined with pride and competitiveness; this is so deep-seated that...

Kant perceives this natural human tendency as a significant obstacle to moral behaviour. He argues that while emotional tendencies and feelings are expressions of uncontrolled natural inclinations and are not reliable for moral behaviour, they are easy to identify. Conversely, self-conceit hides behind reason and requires much more vigilance to detect. Through the evolution of reason, humans have come to accept a moral rule based on the belief in the equal dignity of every person. Hence, rationality begins its struggle against the very biological inclinations that are its source. Kant believed that one day natural inclinations and the demands of reason would be reconciled, although he recognized that the path would be long and arduous.

In summary, Kant's ethical framework acknowledges the complexity and challenges of integrating emotions and reason in moral judgment. While he emphasizes the importance of rationality and universal moral laws, he also recognizes the significant role of certain rational emotions in ethical behaviour. This nuanced understanding highlights the delicate balance needed between reason and emotion to achieve true moral conduct.

One cannot determine the standards of morality based on human nature alone; humans can act freely only through the application of practical reason. According to Kant, this is the only path to moral elevation. This evaluation of human character might appear narrow and anarchistic to many. Perhaps, we should view Kant's philosophy within the context of the Enlightenment, where the triumph of reason and the quest for human fulfilment were primary goals. Kant believed that to transcend our natural narrowness and create a peaceful, mutually dependent society, we must place our trust in rationality.

This is where feminist and postmodernist objections come in; they argue that Kant's philosophy assumes that solidarity with others can only emerge in the absence of self-interest. Shefali Maitra states, "According to this view, a person sometimes shows care and sometimes thinks of self-interest. Or they show care in the context of self-interest or think of self -interest in the context of care" (Maitra, 2003, p. 134). Postmodern feminists argue that this belief is rooted in a metaphysical conception of individuality, treating

each person as a separate entity. However, there are many arguments supporting the idea that what we call individuality is gradually shaped through various relationships and consciousness about others.

Where Kant views freedom as intrinsic to human nature, some feminists, who do not believe in an inherent human nature within each individual, argue differently. They believe that freedom is acquired; embodied individuals constantly come into contact with one another in real situations. The decisions they make for themselves also affect others. Therefore, the benefits of one person's acquired freedom can be enjoyed by others, and the same applies to its detriments. Men cannot attain true freedom by constraining women's lives. When a woman dear to a man is oppressed by another man, he also becomes oppressed.

The appeal of care ethics lies here. While there may not yet be clear theoretical guidelines for its application outside the family to the broader society, it teaches us that dividing body and mind, knower and known, or emotion and reason creates confusion in self-identity. To understand independent moral behaviour with this awareness, emotions are necessary. Tolerance, empathy, and care can guide reason and help expand the boundaries of self-identity.

What, then, is the role of reason in moral judgment? Is there always self-interest and a desire for power hidden within what is presented as impartial investigation? It must be remembered that philosophers like Aristotle and many others have considered emotions like compassion and anger essential for structuring reason. For example, getting angry at someone partially means believing that an injustice has been done to them. Moreover, Hume considered rationality as a natural trait of embodied humans, even suggesting that animals capable of learning from experience possess rationality. Therefore, the opposition between emotion and reason is not just rejected in postmodern philosophy; it has been questioned in both ancient and modern philosophy.

We must acknowledge that justice, especially in terms of equitable distribution, is necessary to create the ground for care ethics. Reason must be applied to identify the various gaps of injustice in society. While there will always be hidden agendas and attempts to fulfil them, if society gradually recognizes the contributions of women and exposes the flaws in the narrow moral theories constructed by patriarchy through complex, abstract reasoning, then the ground for care ethics can gradually become fertile.

References

Gatens, Moira, "Feminism and Philosophy: Perspectives on Difference and Equality," Polity Press, Cambridge, 1991.

Gilligan, Carol, "Hearing the Difference: Theorizing Connection," Hypatia, Vol. 10, Issue 2, 1995.

Kant, Immanuel, "Critique of Practical Reason," edited by Mary J. Gregor, Cambridge University Press (Revised Edition), Cambridge, 1997.

Kant, Immanuel, "Groundwork of the Metaphysics of Morals," translated by H. J. Paton, Hutchinson of London, London, 1948.

Kant, Immanuel, "Idea for a Universal History with a Cosmopolitan Aim," edited by Rorty and Schmidt, Cambridge Critical Guides, 2012.

Kant, Immanuel, "The Metaphysics of Morals," edited by Mary J. Gregor, Cambridge University Press, Cambridge, 1996.

Maitra, Shefali, "Ethics and Feminism: Various Dimensions of Philosophical Perspective," New Age Publishers Private Limited, Kolkata, 2003.

****

Impact of Sports on Social adjustment & Mental ability of Soccer Players

-Samir Kumar
Research Scholar,
Department of Physical Education, MATS University,
Raipur, C.G

-Dr. Ayaz A. Khan
Associate Professor,
Department of Physical Education, MATS
University, Raipur, C.G.

Abstract –

Football is one of the most popular games in sports it is also known as soccer and is widely spread among 210 countries. soccer is popular because it has the minimum infrastructure needed. can also be played by youngsters, adults, men, women and children. Football may be played competitively or for fun, as a means of keeping fit, as a career or simply as a recreational pursuit.

All over the globe, people are attached to this game in deep and passionate cultural way. Soccer or football, as it called in most part of the world. There is just something about soccer, which over the years has earned nick names including the beautiful game, the simplest game, the world's game and the people's game. (Roberts, 2010). Soccer is the most popular sport in the world because it is performed by men and women, children and adults with different levels of expertise. The popularity of the game is reflected in the millions who participate in Soccer in lower levels of play. Soccer is now being played in more than 210 countries throughout the world. Soccer is popular because of the fact it is a simple game requiring very minimum infrastructure and equipment.

Key words – Football or Soccer, mental health, social adjustment

Introduction –

Football is played at a professional level all over the world. Millions of people regularly go to football stadiums to follow their favorite teams, while billions more watch the game on television. A very large number of people also play football at an amateur level. (Vijay Asthana, 2009). Football is a popular, complex strategically game of physical and mental challenges. At least 200 million licensed players participate in football and 20 million football games are arranged each year in the world. Football is a team game the object of which is to advance an inflated round ball towards the opponents' goal posts by kicking, passing, dribbling, and playing with any part of the body except arms and hands. (Witvrouw, 2003). Playing any sports offers the opportunity for players to develop qualities that will help them as they strive for excellence in their lives. It is the sports that demand its players take on a lot of responsibility for what happens in the game. There are no time outs. The game runs uninterrupted. Much responsibility for team's success and excellence rests with each individual player. (Roberts, 2010). To define success in soccer one must have the right knowledge of the game and different factors such as Physical characteristics and physiological capacities, skills and sources of motivation. Some of these can’t be measured but others can be through the help of their couches (Mosher, 1985).

In soccer, speed plays an important role; the accelerated pace of the game calls for rapid execution of typical movements by every member in a team. In many instances, successful implementation of certain technical or tactical maneuvers by different team members is directly related with the degree of velocity deployed (Kollath and Quade, 1991). A successful game is achieved by contribution from every member of the team. Velocity fiddles an important role in this the perfect momentum of the team members leads to a perfect equation. Their tactical and strategic moves lead to winning. Football features is important, mental, and physiological coordination features and conditional features that are important as well. Peak conditional features in soccer players provide an advantage. Much of what affects the results of a match occurs during or after the high intensity sprint. Analysis of the specific movements and activities per-

formed by football players during games can provide much relevant information on which suitable training programs can be designed (Dawson, 2003). Conditional features provide an upper hand and the sprints help to warm the performer's body the more perfect the sprints are the more their chances of winning and conditional features are important to improve. According to coaches the large majority of sprints performed in soccer take 6 seconds or less to complete over a distance of only 10-30 m and many of the sprints are involved in this one. Change of direction in the distance of the swing face involves greater reflection and hip extension and greater hip flexion in the later part of the face (Hove, 1996).

Football was introduced in India by Britain during the colonial rule but off late football has lost out to its Illustrious cousin cricket in the popular stakes the Durand cup tournament is the world's 3rd oldest tournament started in Shimla in 1898 despite football being a highly popular game in India major victories as the international stage are few and far between all India football federation has done precious city to raise the standard of the game Bengal is known as the home of football. During the colonial rule the British introduced the game of football in India and it rapidly caught the fancy of the native masses. Football is one of the most popular games in India. The game commands a massive fan following across the length and breadth of the country. But of late football has lost out to its more illustrious cousin cricket in the popularity stakes. The game found a strong foothold in Bengal with the mohun bagan club coming up in 1889. The Durand cup tournament is the world's third oldest tournament which was started in Shimla in 1898 by India's foreign secretary sir Mortimer Durand. The all-India football federation (AIFF), the governing body in football, introduced the national football league in 1996, in a bid to raise the standard of the game in India. Kolkata in the state of west bengal is considered to be the home of Indian football. Despite football being a highly popular game in India, major victories at the international stage are few and far between. While the national team languishes at the rock bottom of the rankings, the all-India football federation has done precious little to raise the standard of the game of India. (Subhash K, Goyal,2009).

Literature of Review –

Reeves et al. (1999) conducted to compare the anthropometric measurements and body composition of football teams in the UK and Malaysia. A total of 32 footballers from two teams were studied. The teams were the St Mary's University team (UK) and the Selangor Reserved League team. The height and body weight of the subjects were measured using a SECA digital balance with height attachment. Skin fold thickness measurements were taken using Harpenden skin fold calipers at four sites (biceps, triceps, subscapular and suprailiac) and the VO2 max of the subjects was estimated by participation in a multistage 20m shuttle run test. The results showed the UK team was significantly heavier ($p<0.05$), taller ($p<0.05$) and had a higher body fat content ($p<0.05$) than their Malaysian counterpart. There was no significant difference in VO2 max between the two teams, with the Malaysians recording a slightly higher VO2 max. With regard to playing position, the defenders were found to be the most physically robust and yet had the highest VO2 max, whilst the midfielders had the lightest body weights. They concluded that more data on the body composition and nutritional status of Malaysian footballers would allow adjustments to be

made to dietary intakes and training levels in order to obtain maximum performance throughout the football season.

Mental Health –

Mental health includes our emotional, psychological, and social well-being. It affects how we think, feel, and act. It also helps determine how we handle stress, relate to others, and make healthy choices. Mental health is important at every stage of life, from childhood and adolescence through adulthood.

Mental health encompasses emotional, psychological, and social well-being, influencing cognition, perception, and behavior. According to World Health Organization (WHO), it is a "state of well-being in which the individual realizes his or her abilities, can cope with the normal stresses of life, can work productively and fruitfully, and can contribute to his or her community". It likewise determines how an individual handles stress, interpersonal relationships, and decision-making. Mental health includes subjective well-being, perceived self-efficacy, autonomy, competence, intergenerational dependence, and self-actualization of one's intellectual and emotional potential, among others. From the perspectives of positive psychology or holism, mental health may include an individual's ability to enjoy life and to create a balance between life activities and efforts to achieve psychological resilience. Cultural differences, personal philosophy, subjective assessments, and competing professional theories all affect how one defines "mental health". Some early signs related to mental health difficulties are sleep irritation, lack of energy, lack of appetite, thinking of harming oneself or others, self-isolating (though introversion and isolation aren't necessarily unhealthy), and frequently zoning out.

When we talk about mental abilities, we refer to both the abilities of cognitive abilities, and perceiving stimuli (visual, sound) that implies a process more integrated for forming of the patterns resulting from those stimuli. the football player's mind processes a large number of stimuli and situations. A great deal of their overall performance is depended on how the response to these by the players is, thus the best footballers are those who not only have the tactical knowledge and skill needed in the game, but those that also have sufficient mental ability in order to outplay the other opponents. These abilities, however have not fully appreciated yet, but they are already recognized as a component of performance that relevant.

Social Adjustment –

Social adjustment is a condition of individual when he can meet the different social circumstances in which he winds up without going amiss from the essential standard of conduct. Another way to describe social adjustment is an effort made by an individual in order to adjust to the guidelines, qualities and necessities of a society to be recognized. It tends to be categorized as a mental procedure. It includes adaptation to new esteem and standard. In the specialized language of psychology "coexisting with the individuals from society as well as can be expected" is called adjustment. It is regularly eluded as a mental strategy. It includes managing new benchmarks and qualities. In the logical language utilized in psychology, ' coexisting with the individuals from society as well as can be expected' is named as adjustment this is an essential part of that football as football is a team game and social adjustment is required to work in harmony with other team members to achieve victory.

Methodology –

Mental ability – The general mental ability (GMA) psychological construct, created by C. Spearman (1904) will be used to assess the mental ability of subjects.

The basis of this experiment was the primary data collected from 300 football players where 100 were from Centeral University of Jarkhand in jharkand, 100 from Goenka College in Bihar and another 100 from Kalinga University in Chhattisgarh. General Mental Ability was calculated by application of the General Mental Ability group test created by C. Spearman (1904). In order to find out the difference between players from difference universities the researcher applied One way Analysis of Variance (ANOVA). Where to find out the significance and direction of differences they applied post-hoc test i.e., Least Significant Difference (LSD) discovering the F-value to be significant. to further find out the significant differences between players the 't' test was applied and for the testing of hypotheses, 0.05 was set as the level of significance.

Social Adjustment – To evaluate the "Social Adjustment Scale (WSAS)", the WSAS was prepared by Mundt et.al. 2018 will be adopted. The reliability of test found was ranged from 0.70 to 0.94. "The Work and Social Adjustment Scale" (WSAS; Mundt et al. 2002) is a self-reporting tool of measuring for functional impairment related to social and work. Items were rated on a 9-point Likert scale which is ranging from 0 (*not at all*) to 8 (*very severely*). Good psychometric properties were exhibited by WSAS in previous works (Mundt et al. 2002;).

All of the procedures had approval of the Central University of Jarkhand Goenka College and Kalinga University where the study was conducted. The participants were recruited through the universities by advertising the survery. An initial screening was completed by the parents over the phone for eligibility of the subject and then was scheduled to the completion of assessment at the university. After gaining the consent of the adolescent and the parents for participating in the research, the researcher participated in an in-person assessment and by utilizing the Qualtrics Survey data collection software completed a counter balanced battery of the survey measures independently. The subject also took part in a series of tasks with social interaction. After it they debriefed the families on activities of study which includes study deception (e.g., that research personnel involved in the social interaction tasks were trained to act as same-age peers). To address the goal of our research a multi-informant survey battery was administered, as a factor of the battery, a demographic form for collection of the demographic information of subject, parents and family that has been previously described. A battery of the survey measured was completed by the subject. Surveys assessing the family functioning and subject were in parallel in such a way that the content of item fits more to the perspective of the informant. As described previously utilizing the WSAS (Mundt et al., 2018) the impairments of the subjects was assessed. Ratings were provided the subjects for their respective WSAS versions on the scale of "0" (Not at all impaired) to "8" (Very severely impaired). The total scores can range from 0-40, with greater impairments being indicated by higher scores. Measure instructions was created by the researcher that prompts the informants to rate the impairment of the subject which results from the behavior of adolescent, without the mental health concerns being mention. In this way, self-reports on WSAS could be provided by the subject in the sample, regardless of their mental health status.

Statistical Techniques & Analysis – To draw the meaningful conclusion descriptive (measure of central tendencies such as median, mode, and mean, measure of dispersion namely the standard deviation, quartile deviation, and range, kurtosis, and skewness) and inferential (ANOVA followed by post hoc, correlation) will be adopted.

The relationship between playing ability and other variables were established, for each parameter by computing Pearson's product moment coefficient of correlation i.e.

$$r = \frac{n(\sum xy) - (\sum x)(\sum y)}{\sqrt{[n\sum x^2 - (\sum x)^2][n\sum y^2 - (y)^2]}}$$

Where X and Y are raw sources for independent and dependent variable, N is the number of Subjects, by analyzing the data through computer. For accepting the results of this study, the significance level of 95% accuracy, i.e. $P< 0.05$ was fixed.

Mental Ability – Statistical analysis was done on the data obtained from footballers with Criterion variables that were selected by "Analysis of Variance" which was utilized for determining the differences, if there are any amongst the selected Criterion variable's means separately. The Scheffe's test as post hoc test was done whenever the researched found a significant f-ratio value for determination of the paired mean differences, there are any. In every case the fixed significance was 0.5 level of confidence. The ANOVA test chose Socio –Psychological factors for example social adjustment, Aggression and Self Esteem.

Social Adjustment – A three steps data-analytical plan was followed by the researcher. First if the data met the assumptions of the parametric tests (i.e., skewness/kurtosis in range of + 2.0) the researcher's preliminary analysis was determined. In order to test the internal consistencies of all survey measures the Cronbach's alpha (α) estimates was also computed. In the preliminary analysis of this research, for the player's WSAS report the focus on computation of descriptive statistics and computing α estimate. Second, by computing Pearson r correlations amongst every informant's WSAS total score and the score from various impairment and mental health concern domains the researcher tested the convergent validity. After which the correlations between totals scores from player's mental health self-report and the WSAS total scores was computed Third, the researcher adopted a multi-method approach for examining the validity of criterion. The researcher also considered examination of the links between continuous scales of mental health concerns and the WSAS scores due to the links between co-occurring mental health concerns and WSAS scores. Although in the nature of co-occurring concerns wide variability was displayed by the sample. While the co-occurring concerns in the form of social anxiety along with additional domain that are clinically elevated (i.e., depressive or ADHD symptoms) was displayed by majority of the players. The researcher also attempted test the links between co-occurring concerns and the WSAS by utilizing analytic models that matched closely the most on how an individual might use the measures of impairment in assessment context. Hence a two different "analysis of variant" (ANOVA) analysis was done by the researcher, one per informant. Where the differences in levels of psychological impairment (i.e., WSAS total scores) was examined. Follow-up univariate comparisons test

was conducted for both of the tests. In the comparisons the researcher's interest was comparing the players elevated on two or more surveys which are relative to the two other groups. Hence, in each comparison, the researcher expected the reference group to displayer higher levels of impairment relative to the other two groups due to the directional nature of the test. The utilized the Dunnett t test statistic the researcher performed directional univariate tests.

The reliability of coefficient for competency of the tester has been shown in Table-I.

Significant at 0.05 level

Sr. No.	Variables	Questionnaire	Score
3	Mental ability	Mental ability questionnaire	80
4	Social adjustment	Social adjustment scale	92

The Work and Social Adjustment Scale for Youth: A

S. No.	Variables	coefficient
	Physiological Variables	
1	Vital capacity	**93***
2	Heart Rate	**94***
3	Peak flow rate	**92***
	Physical Fitness Variables	
4	Speed	**88***
5	Power	**93***
6	Agility	**90***
7	Reaction Ability	**89***
8	Quickness	**92***
	Anthropometric Variables	
9	Body composition	**95***
10	Body Mass Index	**93***
	Psychological Variables	
11	Team cohesion	**95***
12	Aggression	**94***

Measure for Assessing Youth Psychosocial Impairment Regardless of Mental Health Status

We examined normality distributions of all of our continuous measures. With the exception of the BDI-II, the distributional properties of all of our continuous measures fell within acceptable skewness and kurtosis thresholds (i.e., range of +/− 2.0). We addressed normality concerns for the BDI-II reports by applying a square root transformation to all BDI-II reports, which brought them all underneath the thresholds reported previously. All analyses reported below use these transformed scores. Tables 7 and 8 include the means, standard deviations, and internal consistency estimates for all continuous measures.

Table 2- Means (M), Standard Deviations (SD), and Internal Consistency (α) Estimates of Survey Measures of Adolescent Psychosocial Functioning

Variable	*M*	*SD*	α
Social Phobia and Anxiety Inventory for Children			
Adolescent Self-Report	16.62	10.65	.95
Beck Depression Inventory-II about Adolescent			
Adolescent Self-Report, Raw	12.64	11.06	.92
Adolescent Self-Report, Square Root	3.23	1.49	
ADHD Self-Report Scale, Six-Item Version			
Adolescent Self-Report, Raw	11.05	4.03	68
Adolescent Self-Report, Clinical	60	59	
Inventory of Callous-unemotional Traits			
Adolescent Self-Report	0.36	.20	79
Issues Checklist			
Adolescent Self-Report	1.20	9.50	81

In terms of the WSAS, adolescent reports displayed high internal consistency estimates. WSAS reports showcased a wide range in scores, which suggests the absence of ceiling or floor effects in the scoring. As observed among the subgroups of adolescents which was reported in Table 8 who displayed survey scores above clinical cut scores (i.e., 0, 1, 2 or more), we saw a considerable differentiation in scores, including the adolescents who displayed a certain degree of psychosocial impairments even though no clinically elevated concerns was evident among the externalizing and internalizing domains assessed. Consistent with prior work on multi-informant assessments of youth mental health (De Los Reyes et al., 2013, 2015), adolescent correspondence on WSAS reports was in the low-to-moderate range, $r = .22$; $p < .05$.

Conclusion – Based on the findings of this study, it can be safely concluded that: Football players were found to be morning type predominantly. The footballer's playing ability was discovered to be high although the inter university group had superior playing ability. For general mental ability it was discovered to be low for players while not having any significant difference between them. The significance for social adjustment of the players was high. There was no variation of between players to significant difference was discovered between playing ability, social adjustment, and mental ability.

REFERENCES –

Aloa, K.O. and Adeniyi, W.O, (2008), "Psychology of Learning", National Open University of Nigeria, P.1

Arnheim, Daniel D. (1985), "Modern Principles of Athletics Training", Saint Louis: Mirror and Mosby College Publishing.

Barrow, Harold M. and Rosemary McGee (1979), "A Practical Approach to Measurement in Physical Education", Philadelphia: Lea and Febiger, PP.112113.

Blanchard, K. and Taylor Cheska, A. (1985), "The Anthropology of Sport", South Hadley, MA: Bergin and Garvey Publishers. P.193.

Burton, D., & Raedeke, T. (2008). "Sport psychology for coaches", Champaign, IL: Human Kinetics.

Carvalko, C.Roriz-De-Oliveira, P, Carvalho, A. (2004): - Analysis of different parameters of physical condition for footballers in relation to their positional role‖- Physiology and Kinanthropometry (Soccer); Journal of Sports Sciences-June,2004.

Gammage, K. Hardy, J. & Hall, C. (2001), "A description of self-talk in exercise. Psychology of Sport and Exercise", 2(4): 233-247.

Gareth Stratton, Thomas Reilly, A. Mark Williams and Dave Richardson (2004), "Youth Soccer: From Science to Performance" Taylor & Francis e-Library, PP-80-82.

Greg Gatz, (2009), "Complete Conditioning for Soccer", Human Kinetics, USA, P.25.

Gupta A.K. (2003), "Test and Measurement in Physical Education", Sports Publications, Ashok Vihar, Delhi, PP. 156-162.

****

Unravelling the 'Infodemic': A Thematic Analysis of Misinformation Published by Indian Mainstream Media during COVID-19

-Ms. Akanksha Singh
M.Phil, Research Scholar,
Babasaheb Bhimrao Ambedkar University (Central University),
Lucknow.

Mr. Monu Singh Rajawat,
PhD Research Scholar,
Department of Journalism and Mass Communication,
Banaras Hindu University

Mr. Rajiv Pratap Singh,
PhD Research Scholar,
Guru Ghasidas Central University,
Bilaspur, Chhattisgarh

Abstract:
The global issue of disinformation has prompted scholars, educators, and others to stress the importance of news literacy for developing more discerning news consumers. Like many other countries, India faced a surge of misinformation in the mainstream media during the COVID-19 pandemic, with the country's increasing internet usage significantly contributing to this problem. Given the substantial negative impact of misinformation on Indian society and public health, this study examines 40 pieces of fake news that were fact-checked by the PIB from April 2020 to August 2021. Through thematic analysis, seven major themes of misinformation are explored: health, vaccines, politics, death counts, the virus, lockdowns, and miscellaneous topics. Health-related misinformation directly affects the country's healthcare system and services, leading to fake prescriptions, remedies, statistics, and predictions. The analysis also delves into other issues that threaten social coherence. Results indicate that the majority of fake news is published by the leading newspapers and their highly viewed websites.

Keywords: Fake News, Disinformation, Mainstream Media, Misinformation, Indian Media

1. INTRODUCTION

1.1 GENERAL

Mark Twain, an American humorist, writer, and lecturer famously remarked, "Only the sun in the heavens and the Associated Press down here can bring light to all the corners of the globe." The media has always demonstrated to society that nice words spoken by wonderful people have a powerful influence on people.

In December 2019, Wuhan, China, reported the first human infection with the novel coronavirus, SARS-CoV-2 (COVID-19). Within three months, the virus had spread globally, leading to a worldwide public health emergency. By September 2020, around 25 million cases were reported globally, with over 800,000 deaths. Researchers continually emphasize the importance of insights from social and behavioral sciences in controlling the virus's transmission, particularly regarding the spread of misinformation about the infection.

Misinformation about COVID-19 poses a serious threat to public health and international relations. It includes dangerous health advice, such as ingesting bleach, and politically driven conspiracy theories about the virus's origin. The World Health Organization has cautioned about an ongoing 'infodemic' caused by the spread of false and misleading information regarding the virus, its transmission, treatment, and origins. The percentage of people using fact-checking websites grew from 10% in the first week of the lockdown to 18% the following week before dropping to 15% in the third week. Additionally, the number of people who found it difficult to discern real information online decreased from 40% to 32%, while 97% continued to read COVID-19 news at least once daily.

The term "infodemic," derived from "information" and "epidemic," describes the rapid and extensive spread of both factual and false information about a disease. When facts, rumors, and fears intermingle and spread, it becomes challenging to obtain crucial information. The term "infodemic" was coined in 2003 and has recently resurfaced in relation to COVID-19.

1.2 COVID-19 'INFODEMIC'

An infodemic is characterized by an abundance of information, including erroneous or misleading information, in both digital and physical environments during a disease outbreak. It causes confusion and risk-taking behaviors that might be hazardous to one's health and creates a climate of distrust among health officials, weakening the public health response. An infodemic can exacerbate or prolong epidemics when people are unsure what they need to do to protect their health and the health of others. Increasing digitalization, such as the use of social media and the internet, can accelerate information flow, closing knowledge gaps faster but also reinforcing negative messages.

The United Nations and the World Health Organization started using the term "infodemic" to describe the COVID-19 pandemic as early as March 31, 2020.

UNESCO has referred to misinformation techniques related to COVID-19 as a "disinfodemic." At the 2020 Munich Security Conference, WHO Director-General Tedros Adhanom Ghebreyesus remarked, "We're not only battling a pandemic; we're fighting an infodemic." In the age of social media, fake news, misinformation, and conspiracy theories have become more common, especially after the emergence of COVID-19. This situation is especially troubling as it erodes public trust in healthcare organizations and initiatives.

The World Health Organization (WHO) hosted its first Infodemiology Conference on June 29, bringing together international experts from various scientific and political backgrounds to examine the global implications and control of infodemics. Medical information should be shared as quickly and widely as possible. However, medical and other scientific material that is widely disseminated outside expert circles before thorough evaluation (e.g., preprints) can be dangerous, particularly in a pandemic.

Claire Wardle, co-founder and director of First Draft, asserts that misinformation muddles understanding by reducing the pool of accurate knowledge. Conspiracy theories flourish because they provide a sense of certainty and explanation during times of uncertainty and stress. Their messaging is based on basic emotions and ideas, exploiting the mental cues we use to assess whether a source is credible. The anti-vaccination industry is an example: according to the Centre for Countering Digital Hate, wellness and nutritional supplement companies are significant supporters of anti-vaccination initiatives and directly benefit from them. Worse, anti-vaccination misinformation reaches up to 58 million online followers and is preserved by social media giants on purpose, generating $1 billion in advertising revenue. Unfortunately, resistance to one vaccine can quickly spread to all vaccines, as seen in the UNICEF report on the so-called Peshawar incident on April 22, 2019. This does not bode well for COVID-19 vaccination acceptance.

A situation where the presence of the COVID-19 pandemic is disregarded cannot continue. To restore public trust and protect the integrity and credibility of professional expertise, the global political, corporate, and scientific communities must act quickly and cooperatively. According to a UK Ofcom survey, nearly half of the British public (46%) has been exposed to false information about the coronavirus. Over two-thirds (66%) of those exposed said they see it regularly, which is concerning because frequent exposure is known to increase faith in false news.

1.3 INFODEMIC IN INDIA

Fake news is a global menace, and India is no exception. In this era of social media and India's expanding internet usage, the issue of fake news is growing more severe. Often perceived as harmless, fake news or misinformation has led to real-world human costs and fatal consequences, both historically and currently.

In 2014, the World Economic Forum published a report that identified online fake news or misinformation as one of the top 10 growing global challenges. India's Information and Broadcasting Minister, Prakash Javadekar, stated that "fake news is more dangerous than paid news," emphasizing its potential to disrupt societal peace and advocating for self-regulation to combat this threat.

In India, numerous instances of fake news or misinformation, such as WhatsApp rumors and social media posts, have incited violence across the country, resulting in fatalities. During the pandemic, the surge of fake news has not only polluted the information environment but also fueled communal discord and political instability.

India experienced a severe impact from the second wave of the COVID-19 pandemic, with daily cases and deaths reaching over 400,000 cases and 4,000 deaths, respectively. These numbers were four to five times higher than those seen during the first wave. The second wave was widely attributed to governmental complacency. However, it is essential to analyze the media's role during this pandemic period.

The news media plays a crucial role in a democracy by disseminating information to the public and highlighting issues of importance to the government. During a pandemic, the media's role becomes even more vital, serving as a key source for identifying early outbreaks and educating the public about non-pharmaceutical interventions (NPIs) aimed at controlling the spread of the disease.

Research on epidemics has shown a cyclical behavioral response to disease. More disease leads to more self-protection demand, which reduces disease prevalence. However, this leads to less self-protection, causing the disease to resurge. Thus, it is imperative for the media and government to convey NPI messages repeatedly, especially when the disease prevalence is declining.

False and misleading information from non-health ac-

tors has been the most harmful component of the infodemic. As the virus causing COVID-19 was recently discovered, scientific knowledge is still developing. New evidence can change recommendations, and if not communicated clearly, it can lead to ambiguity and mistrust.

1.4 FAKE NEWS AND MEDIA

The term "fake news" surged in popularity around the time of the 2017 US Election, largely due to its frequent use by US President Donald Trump. There were significant controversies regarding how fake news spread through social media platforms influenced both the US elections and the Brexit referendum. The Ethical Journalism Network defines fake news as information perceived as news but deliberately fabricated to deceive others. The Press Council of India recognizes that fake news is a global menace, defining it as wholly or partly false news, stories, information, data, or reports.

Justice Sanjay Kishan Kaul of the Supreme Court expressed concern over fake news and misinformation dissemination, stating that it is more dangerous than the coronavirus itself. He emphasized the role of mainstream media in maintaining accountability and pulling out fake news.

Samar Halarnkar, editor of Indiaspend.com, observed that the dissemination of fake news or misinformation by mainstream media has become a significant concern, particularly on television. Research indicates that in India, not only social media platforms but also mainstream media are extensively utilized to propagate fake news and misinformation.

1.5 FAKE NEWS IN MAINSTREAM MEDIA

The problem of fake news in India became more severe during the pandemic, with reports suggesting exponential growth in fake news or misinformation. This is a serious concern as the country battles both a health emergency and the spread of fake news, which is equally dangerous. Social media platforms such as Facebook, Twitter, YouTube, and WhatsApp have become convenient channels for spreading fake news, often without rigorous content scrutiny measures in place.

The coronavirus pandemic will be a testing time for the media to prove its credibility. During the lockdown, media consumption increased, and people turned to traditional media like TV and newspapers for information. The media's role in democracy is to provide verified information as it influences public perception. Nevertheless, the mainstream media's tendency towards sensationalism and promoting news driven by agendas has contributed to the spread of inaccurate information, eroding public trust and confidence in the media.

A study conducted by the Non-profit and Mobile Association of India (IAMAI) along with a data journalism portal revealed that fake news propagated through traditional media can profoundly impact public opinion. Despite the digital age, newspapers continue to be one of the primary sources of information for people across different age groups.

As the media landscape has become more fragmented, political polarization and media skepticism have increased. The spread of fake news and disinformation has further weakened trust in political and government institutions. According to a Gallup study conducted in September 2020, 33% of Americans have little to no trust in mass media, a historical low. This trend indicates a severe issue of credibility and the need for media reform.

Research Question

H1. How has the media, news sources, influenced public perception and behavior during the COVID-19 pandemic in India, and what role has misinformation played in shaping these perceptions and behaviors?

Statement of the Problem

The COVID-19 pandemic has been accompanied by an unprecedented infodemic, characterized by an overwhelming amount of information, including a significant portion of misinformation. In India, a country with diverse socio-political and cultural dynamics, the media has played a crucial role in shaping public perception and behavior during the pandemic. However, the spread of misinformation has posed significant challenges, undermining public health efforts and creating confusion and fear among the population.

Despite the efforts of fact-checking organizations and official bodies like the World Health Organization (WHO) and the Press Information Bureau (PIB) to combat misinformation, its impact on public health behaviors and attitudes remains a pressing concern. There is a need for a comprehensive analysis of how different media outlets, including social media handels, traditional news sources, and official channels, have influenced public understanding and reactions to COVID-19.

This study aims to fill this gap by examining the impact of media on public perception during the COVID-19 pandemic, investigating the spread and influence of misinformation, evaluating the role of fact-checking

and information verification, and exploring the socio -political and cultural factors contributing to the infodemic in India.

Research Objectives:

1. Examine how various media outlets, traditional news sources, and official channels, influenced public understanding and reactions to the COVID-19 pandemic.
2. Assess the types and sources of misinformation related to COVID-19, its transmission, treatment, and origins.
3. Study the effectiveness and reach of fact-checking initiatives and the role of institution Press Information Bureau (PIB) in debunking misinformation during the pandemic.

2. LITERATURE REVIEW: RISE OF FAKE NEWS

Gunther (1998) and Tsao et al. (2021) state that the media's significant influence on public health responses is well-documented, with mass media reaching vast audiences and social media enabling not only the dissemination but also the generation of information. Chapman (2007) and Martinson & Hindman (2005) indicate that public health professionals have long recognized the persuasive power of mass media. Berman (2021) mentions that recently, experts from the University of Pennsylvania recommended using online platforms to share accurate information with the public.

Fake news isn't a new phenomenon; It has persisted since news began circulating widely after Johannes Gutenberg's invention of the printing press in 1439. Early news sources included official publications and eyewitness accounts, but the lack of journalistic ethics made verification challenging. In the 16th century, leaked government reports were considered reliable, but fake leaks soon followed. By the 17th century, historians began publishing verifiable sources, and the desire for scientifically verifiable news grew, as seen with Galileo's trial in 1610.

The spread of fake news expanded with the printing press, from tales of sea monsters to claims of divine retribution for natural disasters, like the Lisbon Earthquake of 1755. Religious explanations for the earthquake led to the rise of fake news pamphlets in Portugal, prompting Enlightenment philosopher Voltaire to criticize such accounts and advocate against fake religious news.

Even during the Enlightenment and the French Revolution, fake news persisted. For instance, conflicting pamphlets about France's budget deficit circulated, each blaming different ministers. Readers had to discern the truth from these conflicting reports. Similarly, in America, revolutionary leaders like Ben Franklin used fake news to incite support for independence, such as fabricating stories about Native Americans allied with the British.

The Evolution of Fake News

By the 1800s, fake news continued to flourish, particularly around issues of race. Sensational stories, such as African-Americans spontaneously turning white, and false reports of slave uprisings, led to violence. Sensationalism sold well, and newspapers like the New York Sun used hoaxes like the "Great Moon Hoax" of 1835 to boost circulation. Anti-Catholic newspapers in Philadelphia incited riots with false claims about Irishmen stealing Bibles.

Yellow journalism in the Gilded Age saw the use of fake interviews and bogus stories to provoke public reaction. Joseph Pulitzer's New York World and William Randolph Hearst's Morning Journal employed exaggeration and fabricated news stories to provoke events such as the Spanish-American War. Hearst's sensational stories about Cuban officials and the war effort exemplified the era's fake news tactics.

The backlash against yellow journalism led to the rise of objective journalism in early 20th-century America. Newspapers began hiring reporters to cover local and state news, creating a chain of trust with the public. Adolph Ochs's New York Times exemplified a profitable, fact-based newspaper, though it faced accusations of bias.

The ideal of objective journalism faced challenges, such as during World War II and the McCarthy era. Nonetheless, a new generation of reporters in the 1960s continued to adhere to principles of verifiable reporting, despite questioning objectivity.

Fake News in Modern Times

According to Politifact, fake news involves made-up content designed to manipulate and mislead people, often spread via social media and word-of-mouth (Stroud, n.d.). Fake news growth was notably prominent during the 2016 U.S. presidential elections, where social media platforms like Facebook and Twitter played significant roles. Studies found that bots on Twitter targeted influential users to disseminate fake news (Shao et al., 2018).

In response to the 2016 election chaos, social media networks took steps to curb fake news. Facebook implemented third-party fact-checkers, flagged question-

able stories, and provided tips to help users identify fake news. The focus has since shifted to platforms like WhatsApp, widely used in countries like India.

Fake News in India

Research by the BBC found that nationalism drives the spread of fake news in India, where emotional appeals often outweigh facts (Chakrabarti, 2018). Fake news in India has led to violence, with false rumors causing public lynchings and religious tensions (Thomas, 2018). The rise of ethnonationalism and political polarization contributes to political and religious misinformation (Rodrigues, 2019; Udupa, 2017).

During the COVID-19 pandemic, health-related misinformation surged globally, including in India (Islam et al., 2020). Studies identified various themes of misinformation, such as nationalism, religion, and gender (Banaji et al., 2019). The complexity of misinformation in India highlights the need for inclusive typologies that consider multiple contexts and topics.

Themes and Elements of Fake News

Several studies have categorized fake news themes. Higdon (2020) identified nationalism, hate, celebrity gossip, and fear. Wu and Liu (2018) highlighted business, science and technology, entertainment, and medical themes. Banaji et al. (2019) proposed themes like nationalism, religion, and gender, emphasizing the need for comprehensive analyses.

Content analysis reveals that public health issues are often underrepresented in media, with newspapers focusing more on factual information and less on preventive measures (Westwood & Westwood, 1999b; Kato et al., 2016). The interaction between health and economy in news coverage reflects global concerns (McKee et al., 2017). Media framing and agenda-setting theories explain how newspapers influence public perception and policy (Linsky, 1986; McCombs & Ghanem, 2001).

Misinformation During the COVID-19 Pandemic

A study on misinformation in India during the COVID-19 pandemic found a rise in false stories, especially after the nationwide lockdown in March 2020. The study categorized misinformation into seven themes, with cultural and government-related fake news being the most prevalent. India emerged as a significant producer of COVID-19 misinformation due to high internet penetration and low digital literacy.

Mainstream media outlets and notable figures have contributed to misinformation spread. Competitive media environments and inadequate editorial standards may drive some of this behavior. The rapid spread of misinformation underscores the need for better editorial practices and public awareness to combat fake news effectively.

3. METHODOLOGY

This study employs content analysis as its primary research instrument, incorporating both qualitative and quantitative analyses. Content analysis interprets media texts to assess their impact on audiences, with a focus on media messaging (Stacks, Hocking, & McDermott, 2003; McQuail, 2000). This method can be qualitative, focusing on the meaning of media texts, or quantitative, categorizing and quantifying content (Burnham et al., 2008). This study primarily uses a qualitative technique, supplemented by quantitative validation. Qualitative content analysis emphasizes the communicative attributes of language within media texts (Budd, Thorp, & Donohew, 1967; Lindkvist, 1981). Media text can include print media, electronic media, verbal communication, surveys, interviews, observations, or narrative responses (Kondracki & Wellman, 2002). This approach dissects media texts into classifications that convey similar meanings, going beyond mere word counts (Weber, 1990). The analysis aims to uncover the true picture conveyed by media texts about the situation under study (Downe-Wamboldt, 1992). This method involves a structured procedure of coding, identifying themes, and repeated elements, guided by existing theories and research (Hickey & Kipping, 1996; Potter & Levine-Donnerstein, 1999).

The sample size is crucial in quantitative research, but in qualitative research, it is determined by data saturation. To understand the parameters in news reports, the study considers selected news reports, the study period, and the sampling pattern. This study used purposive sampling to select media reports for qualitative analysis, focusing on fake news related to COVID-19. The primary questions addressed the popular COVID-19 themes in fake news and the medium (newspaper, TV, websites) frequently circulating misleading information.

The sample size for this study includes 40 media reports fact-checked by the Press Information Bureau (PIB) of

India, chosen based on the research questions. The study used purposive sampling, selecting all 40 fact-checked media reports by PIB from the launch of the PIB Fact Checking unit to the end of the second pandemic wave. The researcher collected primary data, which is firsthand data. The researcher employed a quantitative analysis design, coding data into numbers and calculating percentages for each question.

The research is based on the Social Responsibility Theory of the Media, which emphasizes media freedom and accountability (Sibert, Peterson, & Schramm). The theory mandates a code of conduct for the press, improving journalism standards, safeguarding journalists' interests, and penalizing violations. The researcher faced no major difficulties during data collection, as all fact-checked reports were available on PIB's Twitter handle. However, the study is limited to 40 media reports fact-checked by PIB, potentially missing other fake news in mainstream media.

In the context of this thematic content analysis, 40 fact-checked media reports were scrutinized to explore the prevalence of fake news disseminated by mainstream media during the COVID-19 pandemic. The hypothesis underlying this study posited that despite possessing robust fact-checking tools and trained journalists, mainstream media often fails to meet public expectations in reporting pandemic-related news accurately.

The selected news reports for this study underwent rigorous fact-checking by the Press Information Bureau (PIB), a credible government agency tasked with verifying and debunking misleading information. Given the research's reliance on PIB's fact-checking division, which was established in December 2019 across major social media platforms, the study ensures the credibility of its data sources.

4. DATA INTERPRITATIONS AND ANALYSIS

Qualitative Content Analysis of Mainstream Media Reports

Misleading and fake news have profound implications, polarizing public opinion and potentially inciting hate speech or extremism, thereby undermining democratic processes. As the media serves as the fourth pillar of democracy, it bears significant responsibility to uphold journalistic standards by disseminating only verified news. However, instances of misinformation often arise due to misinterpretations or unclear communication between reporters and readers, exacerbated during crises like the pandemic.

Integrity in reporting and high-quality journalism are crucial for informing the public accurately. Yet, numerous media outlets, particularly during crises like pandemics, have been found disseminating misinformation, either inadvertently or with intent. This has led to a decline in public trust in media institutions, as highlighted by studies indicating traditional media's greater influence in spreading misinformation compared to social media platforms like Facebook or WhatsApp.

Figure 1: Screenshot of *<u>PIB Fact Check</u>* *'X' (twitter) handle*

The analysis includes a critical review of specific news reports that exemplify the spread of misinformation during the COVID-19 pandemic:
Table 1: Analysis of Selected Media Reports

Media Outlet	Misleading Report	PIB Fact check
Dainik Bhaskar	AYUSH Ministry recommended NICE protocol for COVID treatment	Debunked as factually incorrect by PIB
The Telegraph	Misinterpreted AYUSH-64 study as conclusive evidence	Misleading interpretation of pilot study
Outlook	False statement on oxygen-related deaths during second wave	Refuted by PIB's fact-check
News18	Incorrect headline on Biological E's vaccine trials	Clarified as misleading by PIB
MailOnline	Misreported arrests under NSA related to COVID-19 treatments	Misinterpreted context
The Lallantop	Misrepresented government data on COVID-19 orphans	Leading to misleading conclusions
India Today	Speculative report on vaccine impact on international travel	Criticized by PIB for lack of factual basis
Dainik Bhaskar	Alleged central government pressured states on COVID-19 data	Debunked as fake news by PIB
NDTV	Incorrectly reported vaccine shortages in Rajasthan	Clarified as inaccurate by PIB
Livemint	Misleading report on India's 'double mutation' COVID variant	Similar mutations found globally, according to PIB
NewIndianXpress	False claim on non-extension of healthcare worker insurance	Clarified scheme extended by Union Health Ministry
Lokmat	Falsely reported prospective statewide lockdown	Denied by government, labeled as fake
Indiatoday.in	Incorrectly labeled Kumbh Mela as super-spreader event	Refuted by low infection rates data
NDTV	Misreported UK returnees testing positive for mutant strain	No such strains sequenced in India, clarified by PIB
Dainik Bhaskar	Misleading report on social media posts penalties	Clarified by PIB, misinterpretation

News18.com	False claim on resumed train services	Denied by PIB, no such announcement by Indian Railways
BusinessLine	Incorrect report on UK returnees testing positive	PIB clarified no sequenced strain
Deccan Chronicle	Incorrect report on new coronavirus strain case	Refuted by PIB due to absence of genome sequence
Rajasthan Patrika	Misleading headline on UK returnees testing positive	PIB clarification on genome sequencing
NDTV	Alleged rejection of vaccine emergency use authorization	Refuted by Ministry of Health
Hindustan	Misreported UPSC exam COVID-19 testing requirement	Denounced by PIB, no such guidelines
Various Media	Speculative report on school reopening under 'Unlock 3.0'	Dismissed by PIB, no decision taken
Huffington Post	Claimed substandard ventilators for COVID-19 treatment	PIB confirmed proper technical approvals
PTI via The Hindu	Misreported mid-November COVID-19 peak	ICMR criticized as misleading
NewIndianXpress.com	Alleged negligence at AIIMS Delhi	PIB refuted, compliance with safety standards
IndiaToday.in	Speculated on Lockdown 5.0 announcement	Dismissed by Ministry of Home Affairs
Dainik Bhaskar	Misreported deaths on Shramik Express trains	Disputed by Indian Railways
TheWire.in	Alleged corruption in ventilator procurement	Clarified as donations meeting standards
Gujarat Samachar	Misreported COVID-19 infection rates	Corrected by PIB for factual inaccuracies
The Asian Age	False claim on religious-based COVID-19 mapping	Refuted by Health Ministry
Uttarakhand Transport Secy.	Incorrect report on Shramik Special trains	PIB dismissed as fake news
DY365	Incorrect COVID-19 death toll report	Corrected by Ministry of Information

The Times of India	Misreported COVID-19 deaths figure	Clarified by Prasar Bharati News Services
Hindustan	Claimed cuts in Central Government employee allowances	PIB and Finance Ministry refuted
India News	Alleged permission for school opening by Home Ministry	PIB denied, educational institutions remained closed
Navbharat Times	Alleged missing Shramik Special trains	PIB clarified routine operational adjustments
Hindustan Times	Misreported child's death on Shramik Special train	Refuted by Ministry of Railways
Jansatta	Incorrect claim on UGC NET 2020 negative marking	PIB debunked as false information

This table encapsulates instances where major Indian media outlets published misleading information during the COVID-19 pandemic, subsequently corrected or refuted by authoritative sources like the Press Information Bureau (PIB). These examples illustrate how misinformation spreads through mainstream media channels during crises, underscoring the importance of stringent journalistic standards and fact-checking protocols. The findings suggest a critical need for media accountability and transparency to restore public trust and mitigate the detrimental effects of misinformation on public health and democratic discourse.

Quantitative Content Analysis of Mainstream Media Reports during the COVID-19 Pandemic

The COVID-19 pandemic presented unprecedented challenges for media outlets worldwide, navigating a rapidly evolving crisis with varying degrees of accuracy and responsibility in reporting. This study employs a mixed qualitative and quantitative content analysis approach to examine 40 media reports across different platforms.

Themes Based on Subject:

The analysis reveals that a significant portion of fake news, amounting to 30%, focused on political subjects or parties. Vaccine-related reports constituted 15%, while announcements about lockdowns, healthcare updates, and death counts each accounted for 5-7%. Reports directly related to the virus itself comprised 10%, with the remaining 20% covering miscellaneous topics such as special train announcements or social media regulations.

Presentation Elements Used in News Reports:

Examining the presentation elements used, textual content was predominant, appearing in over 77% of the analyzed reports. Around 10% included video content, and approximately 12% utilized a combination of text, photos, and videos. These elements play crucial roles in influencing audience perception and emotional engagement, thereby amplifying the impact of misinformation.

Types of Mass Medium:

Fake news spread across various mass media platforms during the pandemic, with newspapers contributing 40% of the analyzed fake news reports, followed by mainstream media websites at 60%. Television broadcasts accounted for 10% of the disseminated misinformation. This dispersion across different media underscores the widespread nature of fake news during crises.

Themes Based on Types of Fake News:

The study identified that 60% of the analyzed fake news reports were entirely false, lacking any factual basis. Another 25% were misleading, containing partially false or suspicious information. Additionally, 15% were factually incorrect, presenting inaccurate data or interpretations. Such misinformation poses significant risks, potentially influencing public health behaviors and policy responses negatively.

In conclusion, this quantitative content analysis underscores the critical need for media literacy and stringent editorial standards during crises like the COVID-19 pandemic. By understanding the prevalent themes, presentation elements, types of fake news, and their dissemination across media platforms, stakeholders can develop strategies to mitigate the impact of misinformation on public health and societal stability.

5. LIMITATIONS OF THE STUDY:

While the study benefited from access to PIB fact-checked reports, limitations include reliance on available data and potential omission of other instances of fake news not covered by PIB. Future research could expand on this by incorporating broader datasets and employing more advanced analytical techniques.

In conclusion, addressing the challenges posed by misinformation in mainstream media demands concerted efforts from media organizations, regulatory bodies, and society at large. By upholding journalistic integrity and ethical standards, the media can fulfill its critical role as a reliable source of information, especially in times of crisis like the COVID-19 pandemic.

References:

1. Zumla, A., Chan, J. F. W., Azhar, E. I., Hui, D. S. C., & Yuen, K.Y. (2016). Coronaviruses — drug discovery and therapeutic options. Nature Reviews Drug Discovery, 15(5), 327347. https://doi.org/10.1038/nrd.2015.37
2. Allen, M., Titsworth, S., & Hunt, S. K. (2009). Quantitative research in communication. Los Angeles: SAGE.
3. AlZaman, M. S. (2019). Digital disinformation and communalism in Bangladesh. China Media Research, 15(2).
4. Arun, C. (2019). On WhatsApp, rumours, and lynchings. Economic and Political Weekly, 54 (6), 30–36. https://www.epw.in/journal/2019/6/insight/whatsapprumoursandlynchings.html
5. Atton, C. (2002). News cultures and new social movements: Radical journalism and the mainstream media. Journalism Studies, 3, 491–505. https://doi.org/10.1080/14616700220000019209
6. Avaaz. (2019). US 2020: Another Facebook disinformation election? In Facebook Uncovered: Vol 01. Avaaz. https://avaazimages.avaaz.org/US_2020_report_1105_v04
7. Banaji, S., Bhat, R., Agarwal, A., Passanha, N., & Pravin, M. S. (2019). WhatsApp vigilantes: An exploration of citizen reception and circulation of WhatsApp misinformation linked to mob violence in India. London: Department of Media and Communications, London School of Economics and Political Science. http://eprints.lse.ac.uk/104316/
8. BBC News. (2020). Ofcom: Covid19 5G theories are 'most common' misinformation. 21 April. Retrieved from https://www.bbc.co.uk/news/technology52370616
9. Berger, A. A. (2011). Media and communication research methods: An introduction to qualitative and quantitative approaches (2nd ed.). New Delhi: SAGE Publications.
10. Bish, A., & Michie, S. (2010). Demographic and attitudinal determinants of protective behaviours during a pandemic: A review. British Journal of Health Psychology, 15, 797–824. https://doi.org/10.1348/135910710X485826
11. Brennen, J. S., Simon, F. M., Howard, P. N., & Nielsen, R. K. (2020). Types, sources, and claims of COVID19 misinformation. UK: University of Oxford.
12. Cowper, A. (2020). Covid19: Are we getting the communications right? BMJ, 368, m919. https://doi.org/10.1136/bmj.m919
13. D'Angelo, P., & Kuypers, J. A. (2010). Doing news framing analysis: Empirical and theoretical perspectives.
14. Dosen, D. O., & Brkljacic, L. (2018). Key design elements of daily newspapers: Impact on the reader's perception and visual impression. KOME − An International Journal of Pure Communication Inquiry.
15. Dyer, O. (2020). Trump claims public health warnings on covid19 are a conspiracy against him. BMJ, 368, m941. https://doi.org/10.1136/bmj.m941
16. Gamson, W. A., & Modigliani, A. (1989). Media discourse and public opinion on nuclear power: A constructionist approach. American Journal of Sociology, 95(1), 137.
17. Halfpenny, P., Lin, Y., & Pieri, E. (2009). Using text mining for frame analysis of media content. Manchester: Report, JISC EInfrastructure Programme.
18. Higdon, N. (2020). What is fake news? A foundational question for developing effective critical news literacy education. Democratic Communiqué, 29, 1–18.
19. Soll, J. (2016). The long and brutal history of fake news. POLITICO Magazine. Retrieved from http://politi.co/2FaV5W9
20. Lacy, S., Riffe, D., & Fico, F. (1995). Analyzing media messages: Using quantitative content analysis in research. Mahwah, NJ: Lawrence Erlbaum Associates.
21. Legler, J. M., & Crouse, E. J. (2010). Beyond the ink: Newspaper publishers look to the web for future. International Journal on Media Management, 12(2), 8192.
22. McCombs, M. E., & Reynolds, A. (2009). How the news shapes our civic agenda. In M. Ferguson (Ed.), PressParty Media Power (pp. 127147). London: Routledge.
23. McQuail, D. (1994). Mass communication theory: An introduction. Thousand Oaks, CA: SAGE Pub lications.

24.Mukherjee, S., Shah, P., & Mohapatra, P. (2019). A survey on fake news and its detection techniques. ACM Computing Surveys (CSUR), 52(4), 136.
25.Natarajan, A., & Avcu, S. (2020). Fake news detection using naive bayes classifiers. Procedia Computer Science, 167, 926934.
26.Özkaya, H. E., & Custers, B. (2018). Understanding fake news: Information disorder and the phenomenology of deception. Philosophy & Technology, 31(2), 229254.
27.Pál, J., & TóthKirály, I. (2020). COVID19 risk perception and protective behavior: A metaanalysis. Available at SSRN 3606192.
28.Rajgopal, S. (2019). Journalism ethics: A casebook of professional conduct for news media. New Delhi: Oxford University Press.
29.Rathod, S., Panchal, N., & Patel, R. (2017). A survey on detection of fake news using natural language processing. In 2017 International Conference on Inventive Communication and Computational Technologies (ICICCT) (pp. 646651). IEEE.
30.Reber, B. H., & Berger, B. K. (2005). Media and conflict: Framing issues, making policy, shaping opinions. New York: Rowman & Littlefield.
31.Riffe, D., Aust, C. F., & Lacy, S. R. (1993). The effectiveness of random, consecutive day and constructed week sampling in newspaper content analysis. Journalism Quarterly, 70(1), 133139.
32.Riffe, D., Lacy, S., & Fico, F. (2005). Analyzing media messages: Using quantitative content analysis in research (2nd ed.). Mahwah, NJ: Lawrence Erlbaum Associates.
33.Riffe, D., Lacy, S., Fico, F., & Watson, B. (2019). Analyzing media messages: Using quantitative content analysis in research (4th ed.). New York: Routledge.
34.Romer, D., & Jamieson, K. H. (2006). The role of perceived susceptibility in risk communication. In R. C. R. C. (Ed.), Risk communication: A mental models approach (pp. 6578). Cambridge University Press.
35.Salmon, C. T., & Atkin, C. K. (2003). Information campaign effects: A comprehensive review of the evidence. In R. P. C. Rice & C. K. Atkin (Eds.), Public communication campaigns (3rd ed., pp. 4457). Thousand Oaks, CA: SAGE Publications.
36.Semetko, H. A., & Valkenburg, P. M. (2000). Framing European politics: A content analysis of press and television news. Journal of Communication, 50(2), 93109.
37.Singer, E., & Endreny, P. M. (1993). Reporting on risk: How the mass media portray accidents, diseases, other hazards. New York: Russell Sage Foundation.
38.Steuernagel, G. (2011). Decoding media coverage: How to spot bias and propaganda in the news. New York: AMACOM.
39.Tandoc, E. C., Jr., & Lee, C. E. (2016). Defining “fake news”: A typology of scholarly definitions. Digital Journalism, 6(2), 137153.
40.Tulloch, J. (2000). Watching television audiences: Cultural theories and methods. London: Arnold.
41.Tunstall, J. (1996). Newspaper power: The new national press in Britain. Oxford: Clarendon Press.
42.Vosoughi, S., Roy, D., & Aral, S. (2018). The spread of true and false news online. Science, 359(6380), 11461151.
43.Williams, A. (2015). Reporting disasters: Famine, aid, politics and the media. London: Hurst.
44.Zelizer, B. (2004). Taking journalism seriously: News and the academy. Thousand Oaks, CA: SAGE Publications.

****

New Education Policy 2020 and the Future of India

-Joyti Alune,
Assistant Professor,
Govt. Girls College, Sidhi (MP)

Dr. Rajesh Kumar Sahu
Assistant professor
Govt. Girls College Sidhi (MP)

Kiran alone
Research scholar
Vikram University Ujjain (MP)

Abstract

The New Education Policy announced by the Government of India (NEP 2020) was a welcoming change and fresh news amidst all the world's negativities. The announcement of NEP 2020 was purely unexpected by many.

The National Education Policy 2020, introduced on July 29, 2020, is the first education policy of the twenty-first century. To ensure continuous learning, NEP 2020 strongly emphasises on five pillars: access, affordability, equity, quality and accountability. It is designed for the needs of people who regularly seek new information and skills to succeed in society and economy. According to the policy, all dimensions of the educational system, including its governance and regulation, will be re-examined and restructured. The new education policy brings new things and so there are new innovations, skill courses, practical courses. So the entire policy has a futuristic approach. This paper also outlines the salient features of NEP and analyses how they affect the existing education system.

Keywords: New Education Policy, Higher Education

I. Introduction

The New Education Policy (NEP) 2020 of India represents a significant overhaul of the country's education system, aiming to make it more holistic, flexible, multidisciplinary, aligned with the needs of the 21st century, and geared towards bringing out the unique capabilities of each student. Here's an overview of how the NEP might shape the future of India.

The National Policy on Education (NPE) is a policy formulated by the Government of India to promote education among India's people. The policy covers elementary education to colleges in both rural and urban India. The first NPE was promulgated by the Government of India by Prime Minister Indira Gandhi in 1968, the second by Prime Minister Rajiv Gandhi in 1986, and the third by Prime Minister Narendra Modi in 2020.

II. Salient Features of NEP related to Higher Education

The concern for improvement of education has been at the top of India's development (Saxena & Anu, 2019). The New Education Policy seeks to positively upgrades the present education system. It is bundled with some very innovative and contemporary proposals. The policy foresees an immersive, consistent, and appealing model of all-inclusive learning.

NEP-2020 seeks to implement both informal and formal education models. Formal learning in the classroom is through the teacher's instructions and books. The new policy endeavors to take learning beyond the classroom and inspire students to learn from practical experience. Students will be exposed to multilingualism from the preliminary stages of education, which will have a tremendous cognitive advantage. A concerted effort will be put into promoting contemporary subjects such as data analytics, artificial intelligence, and machine learning, which are being touted as future careers. A student-centric approach will be developed to replace the current teacher-centric approach, in which the students can select the subjects they want to learn. Considering the reputation of India's rich culture and languages, Sanskrit can be offered at all levels of School and higher education. Rather than compartmentalization of humanities, art, and sciences and between 1academic and vocation, education is indeed a revolutionary shift. The salient recommendations of NEP 2020 are-

1-The multidisciplinary system wherein subjects from different streams, i.e., Science, Humanities, and Commerce, can be chosen, which will focus on the innovativeness, creativity, and ingenuity of students.

2- The policy emphasizes skill development, notably vocational crafts and life skills training.

3-Flexibility in choosing a learning trajectory is essential for subjects from all the streams so that students can choose subjects based on their aptitude and interest.

4-inclusive & Equitable Education System by 2030.

5-Board Exams to test core concepts and application of knowledge.

6-Every Child will come out of School adept in at least one Skill.

7-Common Standards of Learning in Public & Private Schools.

III. Impact of New Education Policy 2020 on Higher Education

A Transforming the Regulatory System of Higher Education

The regulatory framework must be revamped entirely to re-energize the higher education sector and allow its success. The higher education regulatory framework assures that different, autonomous, and empowered authorities will carry out the various duties of regulation, accreditation, financing, and academic standard setting. This is crucial for establishing checks and balances inside the system. To ensure that the four institutional organizations performing these crucial tasks operate separately while collaborating to achieve their shared objectives. These organizations are to be established as separate verticals under the control of the Higher Education Commission of India.

Internationalization at Home

NEP 2020 also enables international universities and faculties to return to Asian countries, which challenges local institutions to raise the level of education they provide. The possibility of paving the way for foreign universities to establish campuses within the nation is causing the Indian education sector to boom everywhere. The Asian country has one of the world's largest networks of higher education systems, with over 900 universities and 40.000 colleges. However, the GER (Gross Entering Ratio) of Asian countries in education is only 26.3%, which is significantly lower when compared to other BRICS nations like China (51%), Brazil (50%) and other countries in the region. It is also significantly lower when compared to European and North American countries, where the GER may be higher than 80%. Asian countries should experience substantial development in the field of global education in order to develop a new economic mechanism that is not based on natural resources but rather on knowledge resources. According to reports, Asian countries may need another 1,500 new higher education facilities by 2030 to accommodate a significant increase in students.

National Education Policy 2020: Current Issues and Reimagining the Future of Higher Education

For this reason, the Indian government must encourage FDI (Foreign Direct Investments) and make the ECB (External) industrial Borrowing) route available to strengthen capital investment in the education sector. Because more than seven lakh Indian students are already studying overseas, the ministry strives to improve India's reputation as a hub for education. This program aims to drastically reduce the amount of human capital that migrates to other nations for study and employment opportunities by enabling overseas universities to provide the finest education available locally at a much-reduced cost while remaining in place.

According to several international studies, cross-border education benefits the economy and fosters a greater sense of global awareness, cultural sensitivity, and combat. Foreign partnerships provide educational institutions with an additional way to hone their curriculum in line with global pedagogy and offer students a wide range of specializations and topic options (Gupta, 2020).

Towards a More Holistic and Multidisciplinary Education

A holistic and interdisciplinary education would combine the development of a person's moral, social, physical, emotional, and intellectual faculties. Even engineering Institutions like the IITs would transition to a more comprehensive, interdisciplinary curriculum emphasizing the arts and humanities. Arts and humanities students aim to study more science, including vocational and soft skill disciplines. The curriculum of all HEIS should contain credit-based courses and projects in community participation and service, environmental education, and value-based education to achieve such a comprehensive and interdisciplinary education. The undergraduate degree would take three or four years to complete, and there would be many opportunities to graduate with the proper credentials throughout this time (Yadav & Yadav, 2023).

On the other hand, the 4-year interdisciplinary Bachelor's program should be the recommended choice. The Indian government will also set up an academic bank of credit to assist in digitally storing academic results. This will make it much easier for the schools to add credit to the student's degree. A solid proposal for storing the academic credits students earn from attending classes at several reputable higher education institutions is establishing an Academic Bank of Credit (ABC) (Nithish, 2023). If a person wishes to change colleges, credits may be transferred.

Motivated, Energetic and Capable Faculty

The quality and dedication of a faculty member are critical components of a higher education Institution's success. The teachers should have access to opportunities for professional growth. Faculty who fail to uphold fundamental standards will be held responsible. To hire faculty, HEIS would have independently determined, transparent, and well-specified procedures (Batra, 2020).

Optimal Learning Environments and Support for Students

The foundations of high-quality learning include the curriculum, pedagogy, ongoing assessment, and student assistance. In order to ensure that every student has a stimulating and engaging learning experience, institutions and motivated professors will construct curricula and pedagogy, and ongoing formative evaluation will be employed to advance the objectives of each program. The HEI should also make decisions on all assessment processes, including those that result in

final certification. Changes will be made to the Choice-Based Credit System (CBCS) to encourage creativity and adaptability (Govinda, 2020).

National Education Policy 2020: Current Issues and Reimagining the Future of Higher Education

Furthermore, each institution will include its academic plans, from curriculum enhancement to the effectiveness of classroom interactions, into its comprehensive Institutional Development Plan (IDP). Teachers would be trained with the skills and knowledge necessary to interact with students as instructors, mentors, and advisors. On the other hand, students from socioeconomically challenged families need help and encouragement to move to higher education successfully. As a result, universities and colleges would compelled to establish top-notch support centers and be provided with sufficient funding and academic resources to do so successfully (Panditrao & Panditrao, 2020; Das & Barman, 2023).

The Structure Lengths of Degree Programs

Each college degree at any institution lasts three or four years in the framework of the National Education Policy 2020 theme. Any institution may be required to provide the code with a certificate after two years, a degree after three years, and a certificate for those students. United Nations agency finishes a year of study in any chosen profession or career course. The government of an Asian country will also assist in constructing a tutorial Bank of Credit for electronically keeping the educational results. This may change the establishments to count the credit at the tip and include it in the degree of code. This might be helpful for students who might need to drop out of the course in the middle. Even if students restart the course from the beginning, they will pick up where they left off in the future. According to NEP 2020, educational institutions are free to start PG programs; there might be a planning issue with A One-year PG Degree for college students.

Financial Support for Students

Financial and economic assistance may help students achieve their objectives. NEP 2020 has made the following suggestions in this regard:

- The HEIs should provide financial aid to needy students so that no student is denied the opportunity to pursue higher education (Gupta, 2020).
- To ensure students' financial assistance, the "National Scholarship Portal" will be enlarged to include publicly funded institutions' stipends, board, and lodging (Banerjee et al., 2021).

Access Equality

Entrance into a top-notch university opens doors to opportunities that may help lift people out of vicious cycles of disadvantage and help communities. Hence, one of the top priorities must be making a platform for high-quality higher education available to everyone. All pupils will have equal access to high-quality education by the year 2020, with a focus on socioeconomically disadvantaged groups (SEDGs) (Majhi, 2021).

Evaluation System

The institutions and faculty can determine the curriculum and pedagogy to ensure every student has an exciting and engaging learning experience. The HEI must also approve any evaluation programs that result in final certification. The Choice-Based Credit System (CBCS) will redesigned to provide flexibility and change. A more constant and thorough review process will replace high-stakes exams (Banerjee et al., 2021).

Vocational Education

There is a perception that vocational education is inferior to general education and intended primarily for pupils who cannot succeed. This unfavorable perception heavily influences the decisions that students make. That is a significant issue; thus, the best approach to handle it is to reconsider how students will be provided with vocational education in the future (Wankhade, 2021).

Research and Innovation in Higher Education

Encouraging substantial research and development investments from the public and commercial sectors is one of NEP 2020's main focus areas. This will promote creativity and imaginative thinking. For industry -led skilling, upskilling, and reskilling to be possible, there has to be a strong industry commitment and close academic engagement. Also, developing the skills necessary to promote an understanding of "Intellectual Property Rights (IPR)" and their protection is essential to reap their advantages.

The National Education Technology Forum (NETF)

The NETF that NEP 2020 intends to create is a step in the right direction. Institutions of higher learning would be able to respond fast if quality Ed-tech tools were hosted across all delivery dimensions for teaching and learning. The focus should be on hosting local Ed Tech products on "open-source development platforms" with integrated cyber security resilience to assure "privacy & security" in addition to adherence to cyber security standards, adoption of firewalls, and Intrusion Detection Systems (IDS) against external threats and vulnerabilities. This will protect each student's "personal privacy".

IV. Conclusion

Higher education has a significant role in determining a nation's economy, social standing, level of technological adoption and healthy human behavior. The responsibility of the country's education department is to increase the Gross Enrolment Ratio (GER) so that all citizens have access to higher education opportunities. The National Education Policy of 2020 is working to-

wards this goal by implementing creative policies to raise higher education quality, affordability, and supply while opening it up to the private sector and enforcing tight quality controls in all higher education institutions (Aithal & Aithal, 2020). The National Education Policy has a favorable and long-lasting influence on India's higher education system. The government's decision to let international colleges establish campuses in India is laudable. This would enable students to get a high standard of education in their nation. Establishing interdisciplinary institutions would result in a revitalized emphasis on every discipline, such as the arts and humanities. This kind of education would allow students to study and develop holistically. Hence, learners would possess a strong knowledge basis (Das & Barman, 2021). The goal of NEP 2020 is to modernize higher education in India. Overall, the NEP 2020 tackles the need to train experts in various fields, from agriculture to artificial intelligence. India needs to prepared for the future. NEP 2020 provides the door for many young aspirant pupils to have the appropriate skill set. The NEP 2020 is a crucial turning point for higher education. It will only be revolutionary with effective and constrained implementation.

References

Aithal, P.S., & Aithal, S. (2019). Analysis of higher education in Indian National Education Policy proposal 2019 and its implementation challenges. International Journal of 2581.7000.0039.

Banerjee, N., Das, A., & Ghosh, S. (2021). National Education Policy (2020): A critical analysis. Towards Excellence, 13(3), 406–420.

Das, A.K. (2020). Understanding the changing perspectives of higher education in India. In The Future of Higher Education in India (pp. 226–228). https://doi.org/10.5530/jscir es.9.2.28

Das, K., & Barman, A. (2021). Posts of workplace competencies in management education research- A review triangulation for discerning NEP-2020 (India)'s relevance. PSYCHOLOGY AND EDUCATION, 58(5), 2271–2308

Goel, M.M. (2020). New Education Policy 2020: Perceptions on higher education. Voice of

Govinda, R. (2020). NEP 2020: A critical examination. Social Change, 50(4), 603–607. https://doi.org/10.1177/0049085720958804

Gupta, B. (2020). Strategies for promoting and sustaining autonomy in higher education institutions in the context of National Education Policy 2020. International Journal of Educational Research and Studies, 2(1), 23–27.

Gupta, B.L., & Choubey, A.K. (2021). Higher education institutions- Some guidelines for obtaining and sustaining autonomy in the context of Nep 2020. International Journal of All Research Education and Scientific Methods (IJARESM), 9(1), 2455–6211.

Gupta, P.B., & Gupta, B.L. (2021). Strategic mentoring program for higher education institutions in the context of National Education Policy 2020. University News, Association of Indian Universities, pp. 22, 8–16.

Gupta, P.B., Dubey, P., Dave, T., & Gupta, B.L. (2021). Reforms-oriented strategic human resource management in higher education institutions in the context of NEP 2020.

Inamdar, S., & Parveen, S. (2020). The National Education Policy (NEP) 2020- Galvanising the rusting higher education in India. Vidyawarta Interdisciplinary Multilingual Peer Reviewed Journal, September (9).

Kakodkar, P. (2022). Future Higher Education. Journal of Scientific Dentistry, 12(1).

Kalyani, P. (2020) An Empirical Study on NEP 2020 [National Education Policy] with Special Reference to the Future of Indian Education System and Its effects on the Stakeholders. Journal of Management Engineering and Information Technology (JMEIT), 7 (October), pp. 2394–8124.

Menon, S. (2020). NEP 2020: Some searching questions. Social Change, 50(4), 599–602.

Panditrao, M.M., & Panditrao, M.M. (2020). National Education Policy 2020: What is in it for a student, a parent, a teacher, or us, as a higher education Institution/University? Adesh University Journal of Medical Sciences & Research, 2(2), 70–79. https://doi.org/10.25259/aujmsr_32_2020.

Saxena, S. (2020), Innovative teaching technology for optimum skill development; The paradigm shift towards quality education as per NEP. International Journal of Engineering and Management Research, 10 (2), 164–169.

****

Role of Cyanobacteria in Ecology and Food Problem

Dr. Sarvajeet Singh
Asst. Professor ,
Botany
Rajakiya Mahila Mahavidyalaya,
Shahganj, Jaunpur, U.P.

Abstract :-

Cyanobacteria are lives in various habitats as fence loving, epitophytic symbiotic or parasitic plant. They are component of the base of the equate food chain and their photosynthetic activity by aerates the habitat. Hence, they are of great importance in aquaculture, Spiraling and Nostoc commune are sources of single cell proteins edible to man. Nitrogen fixing forms (Anabaena and Nostoc etc) increases the nitrogen content of habitat and supply nitrates in symbiotic relationship where they enhance the hifuitive quawly of the host plant, which could be used as a green manures, fodders and fist feeds.

Keywords: *Cyanabacteria, Ecology, Habitat and food problem.*

Introduction :-

Cyanobacteria are found worldwide in diverse habitat. Cyanobacteria are found in fresh water, terrestrial, bearish and marine habitat. Occasionally they form blooms, symbionts and some parasite of man and some animals.

Cyanobacteria are photosynthetic many are phototrophic anaerobes. Many Cyanobacteria are capable of photosynthesizing under both aerobes and anaerobes condition. Cyanobacteria are found diverse habitat for this season. Under anaerobic in the presence of sulphur, the photo autotrophic 136A derive electron by reduction of Sulphur. Dissolved carbon dioxide react with Hydrogen sulphide in the presence of light and Chlorophyll to produce sugar, water and sulphur. For this season sulphur rich ecosystem contain high number of Cyanobacteria.

They are capable of tubing ammonia through passive diffusion or as ammonium ion by specific up tube system and fixing atmosphere H_2 using nitrogenase enzyme.

Affect reducing food production. symptoms such as skin irradiation, eye irradiation, rashes stomach cramp etc.

Also a wide range of unicellular and filamentous genre- Microcystic, Anabaena Nostoc, Oscilataria, Neurotoxin- A phonic zomenon and oscilataria.

Phor modium Bloom is known to spoil salt by imparting seed column zed urine resulting in inability of brone solution to crystalline into salts.

Bloom Control :-

The control of bloom is expensive Algaecides such as copper sulphate may be used. Biological control using cyan phages are effect excepts Microcystic. The use of ultrasonic, L.G. sonic algal control Cyanobacteria as Biological agents.

Now a days Anabaena used an biological control agents agents for killing the mosquitoes.

These qualities have been employed extensively in Asia to enhance agricultural production.

Material and Methods :-

An in depth literature seaioh was made from the internet and serial materials of Rajkiya Mahila Mahavidyalaya, Shahganj literary various journals, articles, proceedings of learned societies of Botany and Phycology and FAO document and textbooks were consulted with regards to the ecological impaction and roles of Cyanobacteria in food security.

For the photosynthetic activity of Algae they tabe up Co_2 and aerate their habitat. The B6A thus participate activity in aeration of ponds. Fish piping air at the surface may be observed by when dissolved oxygen falls below 2mg/L.

Discussion

Role in Food Security Food For Fauna :-

Non-toxic form are source of food for many aquatic organisms. Ex- Oscillatory, Anabaena, Spirulina, Spirulina is such in amino inland fatly and vitamins. Some group of B6A are source of lipids.

Lyingbya used in fish culture as feed for fry. **Phirmidium** used as complete food source for aquaculture in India Single Cell Protein.

Blue green algae are sources of single cell protein. Nostoc and Aphanothece, Spiculina now days used for single cell protein. Spiruluna contain 60 to 70% protein, 20% carbohydrates, 7% mineral and 6% mois-

ture. Moreover it is a such source of B-carotene, thiamine and riboflavin and is one of the richest slime of Vit. B12.

Fixing of nitrogen is boost agriculture production :-

Complex linter casting factor such as low soil fertility, condition favoring a wide range of pests, prevalence of low performance crop/animal verities, economic restrains and cultural factors severely contain agricultural outputs in the tropic. Biological system that contributed to improve.

Land Acclamation :-

Blue-green algae are useful in land acclamation as the first colonizers of mash lands. They hold soil and dust particles as they dry up. Thus they are important in ecological succession also, saline-alkali soils are generally in suitable for raising crops bust linegrcenclage help in reclamation of soil. They reduce the salinity of soils.

Effect of soil particle :-

Cyanobacteria Scytonema, The ebolot of scillataria to bind sand and soil help present the soil erosion. Blue-green algae growth increases the water-stable aggregation and the soil aggregation and arrangement influence infiltration rate, exertion and soil temperature etc.

Blue-green algae blooms :-

Blue-green algae usually account far as much as 50 to 75% to blooms in the summer time. Excessive growth some spices (Blooms) especially those of (Microcystis). The algae have a shading effect on the lower resulting in more respiratory activities below the surface and suffocation of fauna. They also lead to unpleasant odor in watch produced by substance such as a geosmin. Some species of blue green algae produces toxin that affect for animals, fish, bines, humans negatively.

Antibiotics :-

Nostoc is known to secrete and antibiotic known as bacteria in that can kill related strain known algae. Scytonema is a secrete Cyanobacteria, a chlorine containing gamma lactone. These antibiotics play role in hitting the growth of organism Microcystis inhibiting the growth of fraction.

Yields are essential in the economy of zone some Cyanobacteria especially those with encapsulated with heterocyst are involved in nitrogen fixation. Ex- Anabaena, Nostoc, Cylindrospermum, Colecapsa, Rivularia.

Some non-heterocystus spices also fix the N_2. Ex- Oscillutaric, Colecapsa, Trichodesimium, Diastrophic heterocystous Cyanobacteria are known to possess the ability to form such as rice and form the ehizosphero of what there by producing growth promoting solo stances.

Alkalization of rice crop that gave been found to soluble, insoluble phosphate and supplemented nitrogenous fertilizers to the extent of 30-40 kg Nha/ seasons.

Also, Anabaena growing symbictizallyon Azolla sps enriches the symbiotic relationship with nitrogen. The Azolla plant contains about zoto 30%. Crude protein and high amino acid contents and as such agued fodder for cattle increases the milky fields, fish, polo try and pugs far an organic nitrogen, phosphate and potassium fertilizer source informal.

Source of growth hormones :-

It has been found that rice seeds pre-seabed in Phormidium, Cyalindrospermon Scytoneml they secrete acetic acid cystsbiennia.

Conclusion :-

Cyanobacteria may sometimes be a nuisance but they are of great ecological and agricultural significance. High impact technologies have resulted in high agricultural productivity but there is concern about adverse effects of indiscriminate fertile few application on soil productivity are environmental quality. They after an economically attractive and ecologically sound alternatively to chemical fertilizer for improved cropped production.

Some act as bio fertilizer, enhance the plant nutrition value, especially in rice and wheat production. As producers of growth hormone they improve yield of rice they are essential for the rice based economics. Some are capable of producing antibiotics. Cyanobacteria

References-

1. Anonymous, 2006. Off-flavour in Fish. Aquaculture in Utah. Newsletter of Current trends in Aquaculture. Utah Department of Agriculture and Food, Division of Animal Husbandry, 8 pp.
2. Al-Jassabi, S. and A.M. Khalil, 2006. Initial report on identification and toxicity of Microcystis in King Talal Reservoir, Jordan. Lakes and Reservoirs: Research and Management. 11(2): 125-129.
3. Ahluwalia, K. B., 1999. Culture of the organism

that causes rhinosporidiosis. Journal of Laryngology and Otology. 113: 523-528.

4. Becker, E.W., 1986. Nutritional properties of microalgae: Potentials and Constraints. In: CRC handbook on micrological mass culture. Richmond A. (Ed.) pp 339-420.
5. Boussiba, S; X-Q Wu, E. Ben-Dov, A. Zarka and A. Zarisky, 2000. Nitrogen-fixing cyanobacteria as gene delivery system for expressing mosquitocidal toxins of Bacillus thuringiensis ssp isralensis, Journal of Applied Phycology, 12:461-467.
6. Biswas, S. and N. O. Newze, 1990, Phytoplankton of ogelube lake Opl, Anambra State, Nigeria. Hydrobiology 199: 110-119.
7. Brunson, M. W; C. Greg Lutz and R, M. Durborow, 1994. Alage blooms in commercial fish production ponds. Southern Regional Aquaculture Center (SRAC) Publication No. 466 http://aquanic.org/publicat/usda_rac/efs/srac/466ff.pdf.
8. Codd, G. A., 2000. Cyanobacterial toxins, the perception of water quality and the prioritization of eutrophication controls. Ecological Engineering. 16: 51-60.
9. Colman, J.A. & P. Edwards, 1987, Feeding pathways and environmental constraints in waste-fed aquaculture: balance and ecology in aquaculture, Moriarty, D.J.W. & R.S.V. Pullin (eds), ICLARM Conference Proceedings 14, pp. 240-281.
10. Cyanosite, 2007. Cyanobacterial image gallery. http://www-
11. Diara, H. F; H. Van Brandt; A. M. Diop and C. Van Hove, 1987. Azolla and its use in agriculture in West Afrcia In; IRRI (Ed) Workshop on Azolla Use, Los Banos, Phillipines pp. 147-153.
12. Diara, H. F.; and C. Van Howe, 1984, Azolla a water saver in irrigated ricr fields ? In: Silver, W.S. and E.C. Schroeder (Eds) Development in Plant and Soil Sciences: Practical application of Azolla for rice production. Dordrecht, the Netherlands; Nijhoff/Junk. pp. 115-118.
13. Esiobu, N. and C. Van Howe, 1992, The sustenance of tropical agriculture with multipurpose Azolla. In: Biological nitrogen fixation and sustainbility of tropical agriculture. (Eds Mulongy, K; M. Gueya and D.S.C. Spencer) Proceedings of the Fourth International for Biological Nitrogen Fixation (AABNF), International Institute of Tropical Agriculture (IITA), Ibadam, Nigeria, 24-28 September, 1990, pp. 49-55.
14. Francis Floyd, R. 2003 Dissolved oxygen for fish production Fact Sheet 27, Department of Fisheries and Aquaculture Institute of Food and Agricultural Science, University of Florida. http://edis.ifas.ufl.edu.
15. Indiaagronet.com Undated. Blue green algae (Parts A-D) Algalization and crop yield. Agricultural Technologies (Manures and Fertilizers) https://www.indiaagronet.com/indiaagronet/manures-fertilizers/Blue%20%20alga.htm//top.
16. Kadiri, M.O., 2000. Limmological studies of two contrasting but closely related springs in Nigeria, West Africa, Plant Biosystems 134 (2): 123-131.
17. Kaushik, B, D. 1987, Blue green algal biofertilizers. Indian Agricultural Institute, New Delhi, http://www.ipl.nic.in/scon/conservation_of_nature/Kaushik,BD pdf.
18. Lee, R.E., 2007. Phycology. 2nd Ed. Cambridge University Press, New Work, 645pp.
19. LG SONIC, 2007, Ultrasonic algae control. http://www.lgsonic.com/LG%20SONIC%20EN/EN%20home.html.
20. Maxur, H. and M. Plinski, 2003. Stability of cyanotoxins, microcystin-LR microcystin-RR and nodularin in sea water and BG-11 medium of different salinity. Oceanologia 43: 329-339.

****

Impact of Motor Skill Learning Aptitude on Fielding Skills of Junior National Cricket Players Playing as Specialist Batsmen

Md Shabab Baksh Qureshi
Research Scholar,
Department of Physical Education,
MATS University, Raipur, C.G.

Dr. Alok Kumar Singh
Assistant Professor ,
Department of Physical Education,
MATS University, Raipur, C.G.

ABSTRACT

This study aims to assess the fielding skills of junior national cricket players who are specialist batsmen based on their motor skill learning aptitude. To achieve the study's objectives, a sample of 100 junior national male cricket players was selected. Only specialist batsmen were selected. These players were chosen from various cricket academies in Chhattisgarh, Maharashtra, and Orissa. The age range for the participants was 16-18 years. The fielding skills of selected male U-19 cricket players were assessed by a standardized version of the test battery. It includes (1) Catching: stationary, diving, moving catches and high catches; (2) Ground fielding: Overarm throw and underarm throw. The motor skill learning aptitude of the selected U-19 male cricket players was assessed using a modified version of the motor educability test, initially developed by Metheny-Johnson. This test is suitable for individuals aged 11 to 19 years. To classify the subjects into high, average, and low levels of motor skill learning aptitude, the Q_1 and Q_3 statistical process was employed. The F=0.79 revealed a non-significant effect of motor skill learning aptitude on the fielding skills of specialist batsmen. However, the fielding skills of specialist batsmen with high motor skill learning aptitude are better than specialist batsmen with average and low levels of motor skill learning aptitude. This indicates that while the overall effect is not strong enough to be statistically significant, there are still noticeable differences in performance levels based on motor skill learning aptitude, with those having higher aptitude showing better fielding skills. This could suggest that motor skill learning aptitude may have some practical importance in improving fielding skills, even if the effect is not strong enough to be conclusively proven in this study.

Keywords: Motor skill learning aptitude, fielding skills, specialist batsmen

INTRODUCTION

Modern cricket demands good fielding skills without which it is difficult to represent at the highest level. Good fielding skills are essential in modern cricket for many reasons. The effective fielding restricts the number of runs scored by the batting team. Quick and accurate fielding can turn potential boundaries into singles and cut down scoring opportunities. Catching is a primary way to dismiss batsmen. High catches, diving catches, and moving catches all require agility, hand-eye coordination, and concentration. Good catching can change the course of a match by removing key batsmen. Sharp fielding can lead to run-outs, another key method of dismissing batsmen. Accurate throws, especially from the outfield, can catch batsmen short of their crease, adding pressure and reducing scoring. Consistent, sharp fielding builds pressure on the batting side, forcing errors and risky shots. This can lead to wickets and slow down the scoring

rate. Good fielding supports bowlers by taking catches, stopping runs, and maintaining high energy levels. This can lift the overall performance of the bowling unit and the team. Spectacular fielding efforts, like diving stops and direct hits, can boost team morale and shift momentum. It energizes the team and demoralizes the opposition. A strong fielding unit enhances the overall performance of the team, contributing to winning matches and tournaments. Fielding is often the difference between closely contested games. Hence the fielding skills are integral to cricket, playing a key role in both defensive and offensive strategies. They contribute to taking wickets, saving runs, and maintaining pressure on the batting side, making them essential for success in the sport. In this context motor skill learning aptitude may have a role in fielding skills. Motor skill learning aptitude refers to an individual's ability to acquire and improve motor skills, which are movements and actions that involve the coordination of muscles and limbs. High motor skill learning aptitude means an individual can learn and refine motor skills more effectively and efficiently. This can lead to better performance in physical activities and sports, where complex and precise movements are required. Assessing motor skill learning aptitude helps in identifying strengths and areas for improvement, tailoring training programs, and predicting future performance potential. Gire and Espensehade (1942) emphasized that understanding motor educability is crucial for a comprehensive physical education program. Similarly, Larson and Yocom (1951) asserted that including motor educability in such programs is essential for accurately assessing an individual's motor capacity.

REVIEW OF LITERATURE:

The motor ability of batsmen from the provincial tournament was assessed by Nunes (2006) and they also determined the contribution of motor ability to the performance of batsmen. The authors suggested that physical-motor ability contributes immensely to batsmen's success and must be included in the conditioning program run by the academy for batsmen. The psycho-physical unity among cricket players was assessed by Dalia (2015) for which they calculated the correlation between motor fitness capacity and intelligence. The researcher concluded that the probability of superior intelligence is high in cricketers possessing greater motor fitness capacity. Is there a difference in the motor fitness capacity of batsmen and bowlers? This problem was addressed by Das and Mitra (2016). The researcher concludes that in modern-day cricket motor fitness of bowlers is no less than the batsmen. Prakash (2018) selected 20 cricket players between the age of 16-20 in this study and computed the correlation between motor fitness and playing ability. A correlation of 0.37 was observed which although non-significant suggests a possible linkage of motor fitness variables namely speed, agility etc. with playing ability. The impact of anaerobic power on agility has been explored by Ghosalkar et al. (2020) on state-level cricket players with a normal level of body mass index. The authors concluded that to improve the agility of cricket players, their anaerobic needs to be worked on during training sessions.

OBJECTIVE

The objective of this study was to examine the effect of motor skill learning aptitude on the fielding skills of U-19 national male cricket players who are specialist batsmen.

HYPOTHESIS

The present study hypothesised that the level of motor skill learning aptitude would have a signifi-

cant impact on the fielding skills of U-19 national male cricket players who are specialist batsmen.

METHODOLOGY

The following methodological steps were taken to conduct the present study.

Sample

To achieve the study's objectives, a sample of 100 junior national male cricket players was selected. Only specialist batsmen were selected. These players were chosen from various cricket academies in Chhattisgarh, Maharashtra, and Orissa. The age range for the participants was 16-18 years.

Tools

Fielding Skills: The fielding skills of selected male U-19 cricket players were assessed by a standardized version of the test battery. It includes (1) Catching: stationary, diving, moving catches and high catches; (2) Ground fielding: Over-arm throw and underarm throw. The marking system is different for each skill set and is given below :

(a) Catches :

Stationary catches: A total of 04 catches are given with the bat to a fielder who is standing 10' in front of the tester.

Diving catches: A total of 03 catches is given with the bat to a fielder who is standing 10' in front of the tester.

Moving catches: A total of 03 catches is given with the bat to a fielder who is standing 10' in front of the tester.

High catches: A total of 04 catches are given with the bat to a fielder who is standing 30 meters deep.

(b) Ground Fielding :

The details about ground fielding drills and their marking system are given below:

Over arm throw	Under arm throw	Total Marks
Hitting the target i.e. stumps or keeper 05 over arm throw (01 mark for one throw)	Hitting the target i.e. base of the stumps or keeper 05 over arm throw (01 mark for one throw)	10

Reliability and Validity : To determine the reliability of this test, 20 U-19 male cricket players were subjected to fielding drills as above and their scores were recorded. After 2 weeks same procedure was adopted and the test-retest reliability coefficient was computed which met the criteria of statistical significance (p<.01) with r=0.781. Again LawShe (1975) method was applied and content validity was statistically proven with CVR being .812.

Metheny-Johnson Motor Educability Test: Motor skill learning aptitude among the selected U-19 male cricket players who are specialist batsmen was assessed using an adapted version of the Metheny-Johnson motor educability test, suitable for individuals aged 11 to 19 years. This test includes four components: front and back rolls, as well as jumping with half and full turns. It comprehensively evaluates motor educability across various aspects of motor skill learning aptitude. The Metheny-Johnson motor educability test is renowned for its high validity and has demonstrated reliability through repeated validation studies.

Procedure:

100 U-19 national male cricket players with proficiency in batting skills were selected. All the subjects were asked to perform on Metheny-Johnson motor educability battery test. The fielding skills of U-19 national male cricket players were assessed by a stand-

Reliability and Validity : To determine the reliability of this test, 20 U-19 male cricket players were subjected to fielding drills as above and their scores were recorded. After 2 weeks same procedure was adopted and the test-retest reliability coefficient was computed which met the criteria of statistical significance (p<.01) with r=0.781. Again LawShe (1975) method was applied and content validity was statistically proven with CVR being .812.

Metheny-Johnson Motor Educability Test: Motor skill learning aptitude among the selected U-19 male cricket players who are specialist batsmen was assessed using an adapted version of the Metheny-Johnson motor educability test, suitable for individuals aged 11 to 19 years. This test includes four components: front and back rolls, as well as jumping with half and full turns. It comprehensively evaluates motor educability across various aspects of motor skill learning aptitude. The Metheny-Johnson motor educability test is renowned for its high validity and has demonstrated reliability through repeated validation studies.

Procedure:

100 U-19 national male cricket players with proficiency in batting skills were selected. All the subjects were asked to perform on Metheny-Johnson motor educability battery test. The fielding skills of U-19 national male cricket players were assessed by a standardized version of the test battery. The data on motor educability and fielding skills was tabulated. To distribute subjects into the high, average and low degrees of motor skill learning aptitude, percentiles were used. Scores below the 25th percentile on motor skill learning aptitude measure denote low motor skill learning aptitude, scores above 75th percentile denotes high motor skill learning aptitude and scores between 25th and 75th percentile denote the average level of motor skill learning aptitude. In this way, 100 U-19 national male cricket players playing as specialist batsmen were distributed into three categories consisting of high, average and low levels of motor skill learning aptitude.

The scores about fielding skills in these three groups were analysed through One Way ANOVA and the analysed data is presented in Tables 1 and 2 respectively.

RESULT AND DISCUSSION

Table 1

Basic Statistics for Fielding Skills of Batsman Based on Motor Skill Learning Aptitude

Motor Skill Learning Aptitude	N	Fielding Skills	
		Mean	Std.
High	36	15.83	0.372
Average	43	15.27	.349
Low	21	15.09	.632
F=0.79, p>.05			

The F=0.79 calculated and presented in Table 1 revealed a non-significant effect of motor skill learning aptitude on the fielding skills of specialist batsmen. This result is more minutely classified as per the Least Significant Difference Method given in Table 2.

Table 2

LSD - Least Significant Difference Test

Mean (I)	Mean (J)	Mean Difference (I-J)
High Motor Skill Learning Aptitude	Average Motor Skill Learning Aptitude	0.55, p>.05
	Low Motor Skill Learning Aptitude	0.73, p<.05
Average Motor Skill Learning Aptitude	Low Motor Skill Learning Aptitude	0.18, p>.05

A perusal of the mean difference (I-J) shown in Table 2 can be summarised according to mean differences -

-The mean difference of 0.55 shows that the fielding skills of specialist batsmen with high motor skill learning aptitude (Mean = 15.83) were better than the fielding skills of specialist batsmen with average motor skill learning aptitude (Mean = 15.27) but the mean difference did not satisfy the criteria of significance at .05 level.

-The mean difference of 0.73 shows that the fielding skills of specialist batsmen with high motor skill learning aptitude (Mean = 15.83) were better than to fielding skills of specialist batsmen with low motor skill learning aptitude (Mean = 15.09). The mean difference did not satisfy the criteria of significance at .05 level.

-The mean difference of 0.18 shows that the fielding skills of specialist batsmen with an average level of motor skill learning aptitude (Mean = 15.27) were better than the fielding skills of specialist batsmen with low motor skill learning aptitude (Mean = 15.09) but the mean difference did not satisfy the criteria of significance at .05 level.

Figure 1

Basic Statistics for Fielding Skills of Specialist Batsmen Based on Motor Learning Aptitude among in Bar Diagram

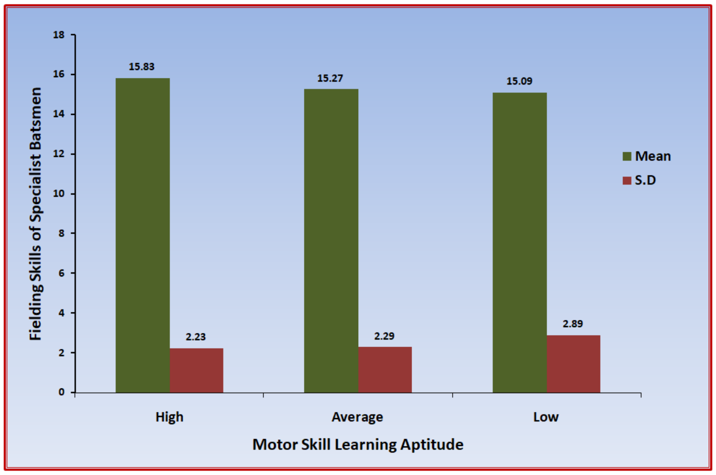

Lutan (1988) suggested that motor educability can be seen as a general ability to quickly and accurately learn new skills. Therefore, it is logical to expect that batting skills improve with higher motor skill learning aptitude. Activities in cricket such as bowling, fielding, and batting involve movements like jumping and maneuvering, which rely on good motor skills. Additionally, balance, agility, and coordination are fundamental to cricket skills, all of which are assessed by the motor educability test used in this study. Thus, it's unsurprising that cricket players who perform well in this test battery possess greater motor skill learning aptitude, facilitating their mastery of cricketing skills more effectively. Although results do not have support of statistical significance, the trend is according to the theory.

CONCLUSION

It was concluded that while the overall effect is not strong enough to be statistically significant, there are still noticeable differences in performance levels based on motor skill learning aptitude, with those U-19 specialist batsmen having higher aptitude showing better fielding skills. This could suggest that motor skill learning aptitude may have some practical importance in improving fielding skills of U-19 male cricket players, even if the effect is not strong enough to be conclusively proven in this study.

REFERENCES

1. Dalia, B. (2015). A study on relationship between intelligence and motor fitness between school level cricketers and footballers. International Journal of Scientific and Research Publications, Volume 5, Issue 7, 1-4.
2. Das, M.K. and Mitra, S. (2016). Comparative Analysis On The Selected Motor Fitness Variables Between Batsman and Bowlers in Cricket. Indian Journal of Research, Vol. 5, Issue 5, 202-203.
3. Ghosalkar, A., Nigam, S. and Saini, P. (2020). Association of Explosive Power and Agility among Cricketers of State Level. Medico-legal Update, Vol. 20, No. 4, 45-50.
4. Gire, E. and Espenschade, A. (1942). The relationship between measures of motor educability and the learning of specific motor skills. Research Quarterly, 13:43.
5. Larson, L.A. and Yocum, R.D. (1951). Measurement and evaluation in Health, Physical Education and Recreation, C.V. Mosby Company, p. 24..
6. Lutan, R. (1998). Belajar Keterampilan Motorik Teori dan Metode. Jakarta: Dikti, P2LPTK.
7. Nunes, Terence (2006). The contribution of certain physical and motor ability parameters to the match performance of provincial academy cricket batsmen. Thesis (M.Sc. (Human Movement Science))--North-West University, Potchefstroom Campus.
8. Prakash (2018). Need of motor fitness components for junior level cricket players. International Journal of Physical Education, Sports and Health; 5(5): 65-66.

Policy Implications of Integrating MGNREGA, PMAY, and PMGSY for Sustainable Rural Transformation

-Arun Kumar
Research Scholar
Department of Social Work, Mahatma Gandhi Central University, Motihari
Email: arundubey139@gmail.com

Abstract:

This research paper attempts to explore the policy implications of integrating three significant initiatives in India's rural development landscape: Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA), Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY), and Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY). By examining the synergistic effects of these programs, the study aims to provide insights into achieving sustainable rural transformation. Through a comprehensive analysis of policy frameworks, implementation strategies, and outcome assessment, the paper underlines the critical role of integrating MGNREGA, PMAY, and PMGSY in addressing rural poverty, housing, and infrastructure challenges. The findings of the research will significantly impact the discourse on effective policy formulation and implementation for sustainable rural development.

Keyword: Rural Development, MGNREGA, PMAY, PMGSY, Sustainable Transformation

Introduction

In the realm of India's rural development, three significant initiatives have played pivotal roles in shaping the socio-economic landscape: the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA), the Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY), and the Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY). MGNREGA, enacted in 2005, guarantees 100 days of wage employment to every rural household seeking employment, thereby addressing the issue of rural unemployment and poverty (Government of India, 2005). PMAY, launched in 2015, aimed to provide affordable housing to all urban and rural poor by 2022 through various schemes such as affordable housing in partnership and beneficiary-led individual house construction (Ministry of Housing and Urban Affairs, 2015). PMGSY, initiated in 2000, focuses on providing all-weather road connectivity to unconnected rural habitations, thereby improving access to markets, healthcare, and education (Ministry of Rural Development, 2000).

Extensive literature exists on the individual impacts of MGNREGA, PMAY, and PMGSY on rural transformation. Studies have highlighted the positive outcomes of MGNREGA in terms of enhancing livelihood security, reducing distress migration, and empowering rural women (Dutta & Narayana, 2018; Khera, 2011). Similarly, research studies on PMAY have emphasized its role in addressing the housing needs of the rural poor, improving living conditions, and promoting inclusive growth (Puri & Ravi, 2017; Soni, 2019). PMGSY, through its focus on rural road connectivity, has been credited with facilitating agricultural development, enhancing access to social services, and stimulating economic growth in rural areas (Fan, Hu, & Zhao, 2014; Kumar & Chakrabarti, 2019). However, despite the individual successes of these initiatives, there remains a need to explore their collective impact on rural development and identify potential synergies for more effective outcomes. This research aims to address this gap by investigating the policy implications of integrating MGNREGA, PMAY, and PMGSY for sustainable rural transformation.

The research problem lies in the individual approach to the rural development policies and programs, which often operate in silos without considering the interconnections and associations among them. This fragmented approach limits the potential synergies that could be explored by integrating such initiatives. Therefore, the primary objective of this study is to analyze the policy frameworks, implementation strategies, and outcomes of integrating the aforementioned rural development initiatives to achieve sustainable rural development in India.

Thus, the research aims to find how the integration of MGNREGA, PMAY, and PMGSY can be leveraged to address multifaceted challenges in rural areas that hinder the inclusive and sustainable development. The study, thereby, will also provide valuable insights for policymakers, practitioners, and researchers working in the field of rural development.

Policy Framework Analysis

The policy frameworks governing the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA), the Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY), and the Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY) play a crucial role in shaping the implementation and effectiveness of these initiatives in India's

rural development landscape. Thus, it becomes important to examine these policy frameworks, focusing on their objectives, target beneficiaries, funding mechanisms, implementation structures, and identify the overlaps, gaps, and synergies.

The MGNREGA was introduced in 2005 with the aim to enhance the livelihood security of rural households by guaranteeing 100 days of wage employment per year to every rural household seeking work. The policy objectives of MGNREGA revolve around providing employment opportunities, strengthening rural infrastructure, and promoting inclusive growth (Government of India, 2005). The target beneficiaries of MGNREGA are the rural households living below the poverty line, with a special emphasis on marginalized communities such as women, Scheduled Castes (SCs), and Scheduled Tribes (STs). The funding mechanism for MGNREGA involves a combination of central and state government funds, with the central government bearing the entire cost of unskilled manual labour and 75% of the material cost (Government of India, 2005). The PMAY was launched in 2015 with the objective of providing affordable housing to all urban and rural poor households by 2022. The policy objectives of PMAY include promoting affordable housing, slum rehabilitation, and affordable housing in partnership with the private sector (Ministry of Housing and Urban Affairs, 2015). The target beneficiaries of PMAY encompass economically weaker sections (EWS), low-income groups (LIG), and others as identified by the state governments. The funding mechanism for PMAY involves central government grants, state government contributions, beneficiary contributions, and loans from financial institutions. The PMGSY, initiated in 2000, focuses on providing all-weather road connectivity to unconnected rural habitations with a population of 500 or more in plain areas and 250 or more in hilly areas. The objectives of PMGSY are improving access to markets, healthcare, education, and other social services, thereby enhancing rural connectivity and stimulating economic growth (Ministry of Rural Development, 2000). The target beneficiaries of PMGSY are rural communities residing in remote and inaccessible areas without proper road connectivity. The funding mechanism for PMGSY involves central government grants, with contributions from state governments and external funding agencies.

A comparative analysis of the policy frameworks of MGNREGA, PMAY, and PMGSY reveals several overlaps, gaps, and synergies. While each initiative has its unique objectives and target beneficiaries, there are areas of convergence, particularly in addressing rural poverty, housing needs, and infrastructure development. For example, MGNREGA and PMAY both aim to uplift economically disadvantaged rural households by providing employment opportunities and affordable housing. Similarly, PMAY and PMGSY complement each other by addressing housing and infrastructural needs in rural areas where road connectivity is crucial for accessing housing facilities and essential services. Despite these commonalities, there are also gaps and overlaps in the implementation structures and coordination mechanisms in these initiatives. For instance, there is a need for better coordination between MGNREGA and PMAY to ensure that rural households benefiting from employment under MGNREGA also have access to affordable housing under PMAY. Similarly, PMGSY could be integrated more effectively with MGNREGA to enhance the productivity of rural employment by improving road connectivity to worksites.

Thus, the policy framework analysis highlights the importance of aligning the objectives, target beneficiaries, funding mechanisms, and implementation structures of MGNREGA, PMAY, and PMGSY to achieve collaborative outcomes for sustainable rural development in India. By identifying overlaps, gaps, and associations, policymakers can formulate integrated strategies that maximize the impact of these initiatives and address the multifaceted challenges faced by the rural communities.

Implementation Strategies

The successful implementation of initiatives such as the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA), the Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY), and the Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY) depends upon the effective strategies deployed at the national, state, and local levels. A detailed exploration of implementation strategies will reveal the challenges encountered by these initiatives on various levels.

At the national level, the implementation of MGNREGA, PMAY, and PMGSY is guided by policies and guidelines formulated by the respective ministries. These policies provide a framework for states to design their implementation strategies tailored to local needs and priorities. For instance, the MGNREGA implementation strategies focus on decentralized planning, community participation, and transparency in wage payments (Government of India, 2005). The PMAY implementation strategies emphasize the use of technology for beneficiary selection, financial inclusion, and monitoring of housing construction progress (Ministry of Housing and Urban Affairs, 2015). The PMGSY implementation strategies prioritize the identification of rural habitations lacking road connectivity, efficient project management, and quality assurance measures (Ministry of Rural Devel-

opment, 2000). However, despite the well-defined implementation strategies, various challenges hamper the smooth execution of these initiatives at various levels. Administrative bottlenecks, including delays in fund disbursement, bureaucratic hurdles, and capacity constraints, often hinder the timely completion of projects under MGNREGA, PMAY, and PMGSY (Narayanan, 2019; Swamy, 2018). Resource constraints, such as inadequate budget allocations, limited technical expertise, and dependency on external funding sources, pose significant challenges to the scale and scope of implementation efforts (Srinivasan, 2017; Khan, 2020). Governance issues, such as corruption, leakages, and lack of accountability, undermine the effectiveness and credibility of these initiatives, eroding public trust and confidence (Roy, 2016; Chaudhury, 2019).

Despite these challenges, several states and local authorities have successfully implemented MGNREGA, PMAY, and PMGSY, demonstrating innovative approaches and best practices. Case studies from states like Kerala, Tamil Nadu, and Rajasthan highlight the importance of strong political will, effective institutional mechanisms, and community engagement in ensuring the success of these initiatives (Narayanan & Sen, 2018; Thakur & Sharma, 2020). For example, Kerala's decentralized planning process under MGNREGA has led to improved transparency, accountability, and outcomes, with significant reductions in poverty and unemployment (Narayanan & Sen, 2018). Tamil Nadu's proactive approach to PMAY implementation, including the use of technology for beneficiary selection and project monitoring, has resulted in accelerated housing construction and enhanced housing quality (Thakur & Sharma, 2020). Rajasthan's innovative strategies for PMGSY implementation, such as community participation in road maintenance and innovative financing mechanisms, have improved rural connectivity and stimulated economic development (Gupta & Kumar, 2019). Therefore, the effective implementation strategies are essential for realizing the objectives of MGNREGA, PMAY, and PMGSY at the grassroots level. Despite various challenges, successful implementation models and best practices demonstrate that with political commitment, institutional capacity, and community engagement, these initiatives can make significant contributions to sustainable rural development in India.

Assessing Synergistic Effects

The integration of the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA), the Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY), and the Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY) holds the potential to generate synergistic effects that can significantly impact and address various dimensions of rural development. By combining the employment generation focus of MGNREGA with the housing provision and infrastructure development goals of PMAY and PMGSY, synergies can be realized that result in improved livelihoods, enhanced living conditions, and increased economic opportunities for rural communities. For example, MGNREGA can provide labour for the construction of houses and rural roads under PMAY and PMGSY, thereby leveraging resources and maximizing outcomes. The quantitative analysis of key performance indicators provides insights into the tangible impacts of integration. Employment generation, a primary objective of MGNREGA, can be measured through indicators such as the number of person-days of employment generated, wages disbursed, and labour intensity of projects. Similarly, housing provision under PMAY can be assessed based on the number of houses constructed, beneficiaries served, and housing quality parameters. Rural connectivity, a focus area of PMGSY, can be evaluated through indicators such as the length of new roads constructed, connectivity improvements, and travel time reductions. The qualitative analysis complements quantitative data by capturing the nuanced aspects of integration outcomes. Stakeholder perceptions, community empowerment, and social inclusion considerations are crucial qualitative dimensions that contribute to assessing synergistic effects. For instance, qualitative data can shed light on how integrated approaches enhance community participation in project planning and implementation, foster social cohesion, and promote gender equity.

Comparing integrated approach outcomes with individual initiative outcomes provides insights into the added value of integration. While individual initiatives have demonstrated positive impacts on rural development, integrating them can yield outcomes that surpass the sum of their individual contributions. For example, integrating MGNREGA with PMAY and PMGSY can result in holistic development outcomes, where employment generated under MGNREGA supports housing construction and road building, leading to improved living standards and economic opportunities for rural households. Moreover, integration can enhance efficiency and effectiveness by reducing duplication, optimizing resource utilization, and promoting synergy among stakeholders. For instance, coordinated planning and implementation of MGNREGA, PMAY, and PMGSY projects can lead to cost savings, time efficiencies, and improved project quality. Assessing the synergistic effects of integrating MGNREGA, PMAY, and PMGSY requires a comprehensive evaluation of quantitative and qualitative indicators. By examining employment generation, housing

provision, rural connectivity, and other development outcomes, policymakers and practitioners can gauge the holistic impact of integration and identify areas for further improvement. Ultimately, leveraging synergies among these initiatives is essential for achieving sustainable rural development and enhancing the well-being of rural communities in India.

Impact on Rural Poverty Alleviation

The integrated approach of the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA), the Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY), and the Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY) plays a significant role in alleviating rural poverty by addressing the root causes of poverty and empowering rural households. MGNREGA, through its employment guarantee, provides a safety net for the rural poor by offering income opportunities during lean agricultural seasons and other periods of economic distress (Government of India, 2005). By guaranteeing 100 days of wage employment per year to rural households, MGNREGA enhances income security and reduces dependency on precarious livelihoods such as agricultural labor (Dutta & Narayana, 2018). Additionally, MGNREGA projects focus on asset creation in rural areas, including water conservation, soil conservation, and infrastructure development, which contribute to long-term poverty reduction by enhancing agricultural productivity and livelihood opportunities.

PMAY focuses on addressing the housing needs of the economically weaker sections and low-income groups, thereby improving living conditions and reducing vulnerabilities associated with inadequate housing (Ministry of Housing and Urban Affairs, 2015). PMAY's emphasis on housing provision also contributes to poverty alleviation by improving the living conditions and social status of rural households. Access to safe and secure housing not only provides shelter but also enhances human dignity, health outcomes, and overall well-being (Puri & Ravi, 2017). Moreover, PMAY's focus on inclusive housing schemes ensures that marginalized communities, including women, Scheduled Castes (SCs), Scheduled Tribes (STs), and other vulnerable groups, benefit from housing subsidies and support.

PMGSY enhances rural accessibility and connectivity, facilitating market access, healthcare services, and educational opportunities, which are essential for poverty reduction (Ministry of Rural Development, 2000). By providing all-weather road connectivity to unconnected rural habitations, PMGSY improves access to markets, healthcare services, education, and other essential amenities, thereby reducing isolation and enhancing economic opportunities for rural communities (Fan, Hu, & Zhao, 2014). Improved connectivity also promotes entrepreneurship, tourism, and rural enterprise development, which are essential for poverty reduction and inclusive growth.

Assessment of the inclusivity and equity aspects of poverty alleviation efforts reveals the importance of targeting vulnerable and marginalized groups. Integrated approaches ensure that the benefits of MGNREGA, PMAY, and PMGSY reach those most in need, including women, SCs, STs, persons with disabilities, and other socially excluded groups. Moreover, efforts to strengthen social protection mechanisms, enhance access to financial services, and promote women's empowerment are integral to ensuring that poverty alleviation efforts are inclusive and equitable (Khera, 2011). By addressing the multidimensional aspects of poverty, these initiatives contribute to sustainable rural development and the well-being of rural communities.

Housing and Infrastructure Development

The Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY) and the Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY) are instrumental in addressing housing and infrastructure development challenges in rural areas of India. These initiatives have significantly contributed to the housing and infrastructure development, examining housing quality, affordability, accessibility, road connectivity, transportation access, and their impact on rural economy and social development. PMAY does so by providing affordable housing options to economically weaker sections and low-income groups. Through various schemes such as affordable housing in partnership and beneficiary-led individual house construction, PMAY has facilitated the construction of millions of houses across rural India (Ministry of Housing and Urban Affairs, 2015). Evaluation of PMAY's contributions reveals improvements in housing quality, with beneficiaries gaining access to durable and disaster-resistant housing units. Additionally, PMAY emphasizes the affordability aspect by providing financial assistance in the form of housing subsidies and loans, making homeownership more accessible to rural households (Puri & Ravi, 2017). Accessibility to housing has also been enhanced through PMAY's focus on inclusive housing schemes, ensuring that marginalized communities such as women, Scheduled Castes (SCs), and Scheduled Tribes (STs) benefit from housing subsidies and support.

PMGSY, on the other hand, focuses on enhancing road connectivity and transportation access in rural areas, thereby stimulating economic growth and social development. Analysis of PMGSY's impact reveals positive outcomes in terms of reduced travel time, increased mobility, and enhanced connectivity, which are critical for rural economic activities such as

agriculture, trade, and tourism (Fan, Hu, & Zhao, 2014). Moreover, PMGSY's emphasis on road infrastructure development has led to increased investments, job creation, and income generation opportunities in rural areas, contributing to poverty reduction and inclusive growth.

A comparative study of the contributions of PMAY and PMGSY highlights their complementary roles in addressing housing and infrastructure development challenges in rural India. While PMAY focuses on housing provision and quality improvement, PMGSY emphasizes road connectivity and transportation access. However, both initiatives intersect in their objectives of improving living conditions, enhancing economic opportunities, and fostering social development in rural areas. For example, improved road connectivity under PMGSY enhances access to housing sites, construction materials, and labor for PMAY beneficiaries, thereby synergizing efforts and maximizing outcomes. Furthermore, the impact of PMAY and PMGSY extends beyond housing and infrastructure development to broader socio-economic dimensions. Enhanced housing and infrastructure contribute to improved living standards, health outcomes, and educational attainment in rural communities. Additionally, better connectivity and accessibility under PMGSY facilitate market access, trade expansion, and income diversification, stimulating economic growth and reducing rural-urban disparities (Gupta & Kumar, 2019). Moreover, investments in housing and infrastructure create employment opportunities, boost local economies, and enhance resilience to climate change and natural disasters. By focusing on housing quality, affordability, accessibility, road connectivity, and transportation access, these initiatives contribute to improved living standards, economic opportunities, and social development in rural areas. However, continued investments, effective implementation, and inclusive approaches are essential to sustain the momentum and maximize the impact of PMAY and PMGSY on rural development.

Policy Recommendations

Based on the research findings and analysis conducted on the integration of the Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA), the Pradhan Mantri Awas Yojana (PMAY), and the Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana (PMGSY), the following policy recommendations are proposed to enhance synergy, improve implementation efficiency, governance structures, and resource allocation mechanisms.

Integrated Planning and Coordination Mechanisms: It is important to establish an integrated planning and coordination mechanisms at the national, state, and local levels as it is crucial for maximizing synergies among MGNREGA, PMAY, and PMGSY. This requires creating platforms for inter-ministerial coordination, multi-stakeholder engagement, and participatory decision-making processes. By bringing together relevant stakeholders, including central and state government departments, local authorities, civil society organizations, and community representatives, integrated planning mechanisms can facilitate the fulfillment of objectives, strategies, and resources across initiatives.

Convergence of Program Implementation: It is essential to promote convergence of programme implementation through joint project planning, implementation, and monitoring for optimizing resource utilization for positive outcomes. Thus, there is a need to find the convergence points between MGNREGA, PMAY, and PMGSY projects at the grassroots level and leverage synergies through integrated project design and implementation. For example, MGNREGA worksites can be utilized for housing construction and road building activities under PMAY and PMGSY, thereby maximizing the impact of investments and addressing multiple development needs at the same time.

Capacity Building and Institutional Strengthening: It is also important to strengthen the capacity of implementing agencies, frontline workers, and community institutions for effective delivery of MGNREGA, PMAY, and PMGSY interventions. For this purpose, proper training and technical assistance should be provided to government officials, local leaders, and community members on integrated project management, participatory planning, and monitoring and evaluation techniques. Additionally, institutional mechanisms such as Village Development Committees (VDCs) and Gram Panchayats should be empowered to facilitate coordination, and accountability of integrated development initiatives at the grassroots level.

Enhanced Monitoring and Evaluation Framework: It is the need of the time to develop a robust monitoring and evaluation framework for tracking progress, assessing outcomes, and identifying areas for improvement in integrated MGNREGA, PMAY, and PMGSY implementation. This requires establishing performance indicators, data collection mechanisms, and reporting systems to measure the effectiveness, efficiency, and equity of interventions. Conducting regular evaluations, impact assessments, and beneficiary feedback surveys can also provide valuable insights for refining policies, strategies, and practices to meet the requirements of rural communities.

Resource Mobilization and Financial Management: Ensuring adequate resource mobilization, transparent financial management, and equitable resource allocation is critical for sustaining MGNREGA, PMAY, and

PMGSY initiatives. This requires enhancing budgetary allocations, exploring innovative financing mechanisms, and leveraging public-private partnerships to bridge funding gaps and promote inclusive growth. Moreover, promoting fiscal decentralization, community financing models, and social investment funds can empower local communities to mobilize resources and prioritize development interventions based on their needs and priorities.

Thus, implementing the proposed policy recommendations can contribute to enhancing synergy among MGNREGA, PMAY, and PMGSY, improving implementation efficiency, governance structures, and resource allocation mechanisms. By adopting an integrated approach to rural development and addressing the multidimensional challenges facing rural communities, policymakers can facilitate progress towards sustainable and inclusive rural transformation in India.

Key Findings and Conclusion

This research highlights the potential of integrating rural development initiatives like MGNREGA, PMAY, and PMGSY to achieve holistic rural development outcomes, including poverty alleviation, housing provision, infrastructure development, and livelihood enhancement. The analysis unfolds the importance of aligning policy objectives, enhancing coordination mechanisms, strengthening implementation capacity, and promoting convergence of program activities to maximize the impact of integrated initiatives. Also, the study sheds light on the significance of inclusive and participatory approaches in addressing the diverse needs and priorities of rural communities.

The findings of this research have important implications for policy makers, practitioners, and researchers in the field of rural development. Policy makers can use the insights gained from this study to inform policy formulation, strategic planning, and resource allocation for integrated rural development initiatives. Practitioners can use the proposed policy recommendations and best practices to improve program design, implementation, and monitoring mechanisms. Researchers can build upon the findings of this study to conduct further research on the effectiveness of integrated approaches, explore innovative solutions, and advocate for policy reforms that enhance the integration and effectiveness of MGNREGA, PMAY, and PMGSY. The future research efforts can focus on addressing the remaining challenges and gaps in integrated rural development, including governance issues, resource constraints, and equity considerations. Research is needed to explore the long-term impacts of integrated initiatives on rural livelihoods, social inclusion, and environmental sustainability. Furthermore, policy advocacy efforts should aim to raise awareness, mobilize support, and advocate for policy reforms that promote the integration and effectiveness of MGNREGA, PMAY, and PMGSY. By collaborating with stakeholders, engaging in evidence-based advocacy, and fostering partnerships, policymakers, practitioners, and researchers can contribute to the realization of sustainable rural transformation and inclusive development in India.

References

Dutta, P., & Narayana, D. (2018). Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) and Its Impact on Rural Poverty and Agricultural Productivity in India. Indian Journal of Agricultural Economics, 73(3), 335-348.

Fan, S., Hu, J., & Zhao, X. (2014). Public Expenditures, Spatial Distribution, and Regional Inequality in Rural China. Agricultural Economics, 45(2), 139-153.

Government of India. (2005). Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act, 2005. Retrieved from http://nrega.nic.in/netnrega/mgnrega_new/Nrega_home.aspx

Khera, R. (2011). Employment Guarantee Act: A Right to Work. Oxford University Press.

Kumar, P., & Chakrabarti, D. (2019). Role of PMGSY in Rural Development of India: A Review. International Journal of Engineering Research and Technology, 12(7), 1014-1020.

Ministry of Housing and Urban Affairs. (2015). Pradhan Mantri Awas Yojana (Gramin). Retrieved from http://pmayg.nic.in/netiay/home.aspx

Ministry of Rural Development. (2000). Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana. Retrieved from http://pmgsy.nic.in/pmgsy/home.aspx

Puri, M., & Ravi, S. (2017). Pradhan Mantri Awas Yojana—A Promise Half Fulfilled. Economic & Political Weekly, 52(40), 23-25.

Soni, P. (2019). Affordable Housing for Urban and Rural Poor in India: A Study of PMAY-G in Rajasthan. The International Journal of Social Sciences and Humanities Invention, 6(2), 5757-5763.

Government of India. (2005). Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act, 2005. Retrieved from http://nrega.nic.in/netnrega/mgnrega_new/Nrega_home.aspx

Ministry of Housing and Urban Affairs. (2015). Pradhan Mantri Awas Yojana (Gramin). Retrieved from http://pmayg.nic.in/netiay/home.aspx

Ministry of Rural Development. (2000). Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana. Retrieved from http://pmgsy.nic.in/pmgsy/home.aspx

Chaudhury, N. (2019). Corruption and MGNREGA: A case study of five Indian states. The Indian Journal of Political Science, 80(3), 413-424.

Government of India. (2005). Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act, 2005. Retrieved from http://nrega.nic.in/netnrega/mgnrega_new/Nrega_home.aspx

Gupta, R., & Kumar, A. (2019). Innovative Approaches to PMGSY Implementation: Case Study of Rajasthan. Economic & Political Weekly, 54(45), 40-48.

Khan, S. (2020). Challenges of Implementation of PMAY- Pradhan Mantri Awas Yojana. International Journal of Advanced Science and Technology, 29(8), 595-602.

Ministry of Housing and Urban Affairs. (2015). Pradhan Mantri Awas Yojana (Gramin). Retrieved from http://pmayg.nic.in/netiay/home.aspx

Ministry of Rural Development. (2000). Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana. Retrieved from http://pmgsy.nic.in/pmgsy/home.aspx

Narayanan, S. (2019). Implementation of MGNREGA: Issues and Challenges. Economic & Political Weekly, 54(39), 44-50.

Narayanan, S., & Sen, A. (2018). Decentralised Planning in Kerala: Some Reflections on the People's Planning Process. Economic & Political Weekly, 53(20), 34-41.

Roy, D. (2016). Challenges of governance in PMGSY: A study of four Indian states. Public Administration and Policy: An Asia-Pacific Journal, 19(2), 173-191.

Srinivasan, N. (2017). Resource Allocation in PMAY: A Case Study of Karnataka. Economic & Political Weekly, 52(27), 58-64.

Swamy, N. (2018). PMGSY in India: A Case Study of Karnataka. International Journal of Humanities and Social Sciences, 8(6), 60-68.

Thakur, A., & Sharma, A. (2020). Housing for All in Tamil Nadu: A Case Study of PMAY Implementation. The Indian Journal of Political Science, 81(1), 33-44.

Dutta, P., & Narayana, D. (2018). Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act (MGNREGA) and Its Impact on Rural Poverty and Agricultural Productivity in India. Indian Journal of Agricultural Economics, 73 (3), 335-348.

Fan, S., Hu, J., & Zhao, X. (2014). Public Expenditures, Spatial Distribution, and Regional Inequality in Rural China. Agricultural Economics, 45(2), 139-153.

Government of India. (2005). Mahatma Gandhi National Rural Employment Guarantee Act, 2005. Retrieved from http://nrega.nic.in/netnrega/mgnrega_new/Nrega_home.aspx

Khera, R. (2011). Employment Guarantee Act: A Right to Work. Oxford University Press.

Ministry of Housing and Urban Affairs. (2015). Pradhan Mantri Awas Yojana (Gramin). Retrieved from http://pmayg.nic.in/netiay/home.aspx

Ministry of Rural Development. (2000). Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana. Retrieved from http://pmgsy.nic.in/pmgsy/home.aspx

Puri, M., & Ravi, S. (2017). Pradhan Mantri Awas Yojana—A Promise Half Fulfilled. Economic & Political Weekly, 52(40), 23-25.

Fan, S., Hu, J., & Zhao, X. (2014). Public Expenditures, Spatial Distribution, and Regional Inequality in Rural China. Agricultural Economics, 45(2), 139-153.

Gupta, R., & Kumar, A. (2019). Innovative Approaches to PMGSY Implementation: Case Study of Rajasthan. Economic & Political Weekly, 54 (45), 40-48.

Ministry of Housing and Urban Affairs. (2015). Pradhan Mantri Awas Yojana (Gramin). Retrieved from http://pmayg.nic.in/netiay/home.aspx

Ministry of Rural Development. (2000). Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana. Retrieved from http://pmgsy.nic.in/pmgsy/home.aspx

Puri, M., & Ravi, S. (2017). Pradhan Mantri Awas Yojana—A Promise Half Fulfilled. Economic & Political Weekly, 52(40), 23-25.

****

Effect on Aerobic Capacity and Body Mass of Soccer Players during the COVID-19 Pandemic

-Samir Kumar
Research Scholar,
Department of Physical Education,
MATS University, Raipur, C.G.

-Dr. Ayaz A. Khan
Associate Professor
Department of Physical Education,
MATS University, Raipur, C.G.

Abstract –

Purpose: Due to increasing prevalence of the COVID-19 virus, athletes were unable to train optimally. This study aimed to determine the differences in aerobic capacity, body mass, and body mass index in soccer players as the effect of lockdown due to the COVID-19 pandemic.

Methodology: Fourteen male participants were recruited from the university soccer team. Anthropometric characteristics were as follows: age = 20.75 ± 1.48 years, height = 174.35 ± 5.59 cm, body mass = 68.95 ± 6.17 kg, and body mass index = 21.92 ± 0.94 kg/m2. Single-group pretest and posttest designs were selected to conduct this study. A multistage fitness test determined aerobic capacity. ANOVA test was used to identify aerobic capacity, body mass, and body mass index differences between pretest and posttest on university soccer players. Results: The pretest and posttest were similar in anthropometric characteristics, and there were no significant differences in age ($P = 0.382$), height ($P = 0.106$), and body mass ($P = 0.068$). Our findings showed significant differences between pretest and posttest for aerobic capacity ($P = 0.042$) and body mass index ($P = 0.037$) in soccer players.

Conclusion: We conclude that there was a significant effect of the COVID-19 pandemic on the soccer player's aerobic capacity and body mass index. These findings may have implications, namely, as functional test's organization, administration, and outcomes while testing the players. Team coaches, trainers, and physiologists must consider the effects of lockdown on the players' performance while preparing players for competition. Further researchers should be established to modify other types of tests, conduct studies with a larger sample and population, and add other variables.

Keywords: Beep test, female players, maximal oxygen uptake, university team, VO2 max.

Introduction –

Due to increasing prevalence of the COVID_19 pandemic, athletes were unable to train optimally. All the running activities stopped in various areas, including athletic activities as the effect of lockdown in the country. The lockdown has resulted in numerous modifications in routine, requiring high-performance athletes to seek out other techniques for staying fit and maintaining their training program by safely improvising both home space and training instruments. Many athletes were not able to actively participate in their regular sports activities in their homes. Under such conditions, many tend to be less physically active and have an irregular sleep, longer screen time, and unbalanced diets, resulting in weight gain, increased body mass index, and deterioration in aerobic capacity. The traditional off-season values were compared to the COVID-19 quarantine. They reported that the fat and body mass increased, but they decreased sprint and countermovement jump abilities in Brazilian professional soccer athletes.

The examination of a sportsmen's physical and functional performance is a series of investigative tests carried out over some time. The rapid assessment method is one of the most valuable and appropriate methods from the practical application perspective, while the level of performance is determined by quantitative indicators. There are many fitness tests available to measure aerobic fitness for many team sports. The most common field test to predict aerobic capacity is the 20-m multistage fitness test (MSFT). This test is being used by many teams, especially in English Premier League. In this test, players run forward and backward in a movement resembling the pattern of soccer games. Aerobic capacity can predict the performance in a competitive match. Aerobic fitness evaluated by laboratory-based tests correlates highly ($r = 0.78–0.87$) with both MSFT and the YO-Yo intermittent recovery test. The MSFT offers high accuracy and repeatability compared to the aerobic capacity measured directly under laboratory

conduction.

Many sports scientists and scholars have been focused on performance assessment. However, there is a lack of research investigation to determine the differences in the soccer players' aerobic capacity, body mass, and body mass index due to the COVID-19 pandemic. Therefore, this study aimed to determine the effect on aerobic capacity, body mass, and body mass index in soccer players during the COVID-19 pandemic. We hypothesized that the aerobic capacity, body mass, and body mass index had been affected among soccer players during the COVID-19 pandemic. Using aerobic capacity independently or in tandem may assist coaches, physical therapists, sports medicine, strength, and conditioning professionals in identifying the performance barrier or injury risks during sports participation by identifying physical and functional deficiencies in movement.

Methodology –

Study design:

This study used a quantitative approach; the pretest–posttest research design was used to conduct this study.

Ethical consideration:

All the participants taken part in this study signed written consent form.

Participants:

Fourteen male participants were recruited, who represented in the interuniversity competition at least two times. Anthropometric characteristics were as follows: age = 20.75 ± 1.48 years, height = 174.35 ± 5.59 cm, body mass = 68.95 ± 6.17 kg, and body mass index = 21.92 ± 0.94 kg/m2.

Eligibility criteria:

All the participants were healthy males. Participants participated at least two times in an interuniversity competition. They do not have any record of musculoskeletal injury since the last 6 months.

Test:

A weighing scale cum stadiometer was used to determine the height and body mass of participants. The body mass index was calculated by dividing the participants' weight in kilogram by height in meters. The aerobic capacity was measured using the MSFT. The MSFT to measure aerobic capacity in children, adolescents, and adults was developed in the early 1980s. The test was created to provide a practical and cost-effective prediction of aerobic capacity in a field setting. Research has indicated that the MSFT is a valid predictor of aerobic capacity.[9] To conduct the MSFT, standardized equipment such as 20-m shuttle run space, cones, metronome, and performance recording sheets were used.

Procedure:

The data collection process begins with explaining the test implementation and 15 min warming up, followed by stretching exercises. Data were collected two times, namely at the beginning of the study (pretest) after 3 weeks of the first lockdown and the end (posttest) after 3 weeks of lockdown and the end (posttest) after 3 weeks of lockdown open. Measurements (pretest and posttest) were carried out using a weighing scale cum stadiometer, metronome, 20-m open space, cones, and data score sheet. The MSFT was performed as participants were asked to run toward opposite 20-m sections in a shuttle format in response to an audible signal (beep) produced by a metronome (audio player). The speed was 8.5 km/h in the 1st min and increased by 0.5 km/h every minute after that. Before the next beep sounded, participants had to finish a level. Participants were expected to complete as many shuttles as possible. If a participant fails to maintain the prescribed pace for two consecutive shuttles or withdraws from the test due to exhaustion, the test will be terminated. The following formula was used given by flourish et al. to calculate aerobic capacity. Aerobic capacity (mL/min/kg) = (maximum attained speed [km/h] × 6.65 − 35.8) × 0.95 + 0.182.

All the tests were conducted using standard procedures and instructions.

Statistical analysis:

All the statistical analysis were performed using the Statistical Package for the Social Sciences (SPSS) software for Windows (IBM SPSS version 20.0, New York, NY, USA). Before analysis, the data were checked for outliers and normality with the Shapiro–Wilk test. One way analysis of variance (ANOVA) test was performed to determine the differences in aerobic capacity, body mass, and body mass index for university soccer players. The P = 0.05 was used to determine statistical significance.

Table 1: Descriptive statistics of pretest and posttest between body mass and body mass index for university soccer players.

	Body mass		BMI	
	Pretest	Posttest	Pretest	Posttest
Mean	66.84	71.07	21.56	22.30
SD	6.68	4.99	1.09	0.60
Minimum	55	62	19.03	21.3
Maximum	78	79	23.05	23.59
The difference in mean	4.23		0.74	
Percentage of increase	5.95		3.31	

BMI: Body mass index, SD: Standard deviation

Table 2: Descriptive statistics of pretest and posttest aerobic capacity for university soccer players.

	Pretest	Posttest
Mean	64.33	56.80
SD	10.83	7.51
Minimum	49.81	49.81
Maximum	79.92	72.39
The difference in mean	−7.53	
Percentage of Decrease	1.55	

Aerobic capacity, SD - Standard Deviation

Table 3: Statistical comparison between pretest and posttest for body mass, body mass index, and aerobic capacity of university soccer players.

	Sum of Square	Mean Square	f	significant
Body mass				
Between groups	125.58	125.59	3.61	0.068
Within groups	903.90	34.76		
BMI				
Between groups	3.76	3.77	4.84	0.037*
Within groups	20.21	0.77		
Aerobic capacity				
Between groups	396.68	396.68	4.57	0.042*
Within groups	2257.86	86.84		

*Significant at .05 level. BMI: Body mass index

Results –

Table 1 shows descriptive statistics of pretest and posttest results and reveals increases in body mass (Diff. = 4.23, Per.= 5.95) and body mass index (Diff. = 0.74, Per. = 3.31) as the result of lockdown during the COVID-19 pandemic.

Table 2 shows descriptive statistics of pretest and posttest results and reveals a decrease in aerobic capacity (Diff. =−7.53, Per. = 1.55) (ml/kg/min) as the result of lockdown during the COVID-19 pandemic.

Table 3 shows the one-way ANOVA for pretest and posttest results and reveals an insignificant difference for body mass (F = 3.61, P = 0.068). In contrast, significant differences were found in body mass index (F = 4.84, P = 0.037) and aerobic capacity (F = 4.57, P = 0.042) for university soccer players as the result of lockdown during the COVID-19 pandemic.

Discussion –

The results showed that lockdown significantly impacted the aerobic capacity, body mass, and body mass

index among soccer players during the COVID-19 pandemic. There were changes in aerobic capacity, body mass, and body mass index as 1.55%, 5.95%, and 3.31%, respectively, because of lockdown during the COVID-19 pandemic among soccer players.

The result of the study was taken in June 2020 (pretest) and September 2020 (posttest) during the COVID-19 pandemic. The findings of this study showed that there were statistically significant differences in aerobic capacity and body mass index. These findings are supported by the study results conducted in normal conditions by Sliwowski et al. They used the Multistage Shuttle Run Test to measure the aerobic capacity of junior male soccer players from Lech Pozna. In their study, the authors demonstrated favorable adaptive changes in the studied physiological indicators, such as aerobic capacity and anaerobic threshold, between two dates of measurements – before the preparatory period and after the end of the preparatory period – in their study on two dates over 8 weeks of the preparatory period. Ali et al. reported a significant difference in aerobic capacity among athletes. Using modified Bruce protocol, they measure aerobic capacity in the laboratory setting with a graded exercise test performed on a treadmill. According to one of the study findings, a group of semi-professional male football players had their hamstring muscle strength lowered after 25 days of house confinement due to the COVID-19 lockdown. These results are not directly comparable because the muscles, training modality, and muscular contraction used in the study were all different. While drawing conclusions, keep in mind that the COVID19 situation was unique and cannot be easily compared to any other instance.

Rampinini et al. showed that changes in between and within periods were observed using a mixed model during the lockdown. Within-period changes in aerobic fitness showed a significant change ($P < 0.001$) after COVID-19 lockdown and a significant reduction ($P < 0.001$) during summer break. When comparing the COVID-19 closure to the 2019–2020 competitive season ($P < 0.01$) and the summer holiday ($P < 0.001$), there were significant differences between periods. Earlier studies established scientific evidence that short-distance periods could negatively influence body composition, aerobic capacity, muscle power, and sprint ability in soccer players. Koundourakis et al. revealed that 6 weeks of detraining could significantly decrease aerobic capacity, muscle strength, and speed for professional soccer players. García-Aliaga et al. analyzed physical match activity in Spanish LaLiga™ during two blocks of 11 matches (first 11 games of the season 2019/2020 and 11 games after the COVID-19 lockdown). Distance, high-speed running, sprinting, and the quantity of high-intensity movements were all reported to have decreased significantly. Changes in physical fitness and body composition have been linked to decreased match performance. Grazioli et al. evaluated changes in neuromuscular, body composition, and cardiorespiratory indices in Brazilian professional soccer players after regular off-season intervals (24 days) and COVID-19 quarantine (63 days); these players' body mass and fat mass increased significantly. Our findings match an earlier study that found that the COVID-19 quarantine period has a stronger negative impact on body composition than the off-season period. Furthermore, the findings of Korkmaz et al. demonstrated that semi-professional soccer players experienced significant losses in anaerobic power and body muscle mass after 89 days of lockdown.

As the COVID-19 epidemic may spread periodically and outbreaks may recur in large cities in the future, all this information will be useful not only for understanding the impact of COVID-19 on current soccer performance but also for anticipating and minimizing the impact of future disruptions to any sports competitions due to this pandemic. Furthermore, comparing the results of physical capacity and body composition tests conducted before and after the lockdown could yield intriguing results and address the question of whether decreased match performance was associated with a decline in physical fitness.

Conclusion –

We conclude that there was a significant effect of the COVID-19 pandemic on the soccer player's aerobic capacity, body mass, and body mass index. These

findings may have implications, namely, functional test's organization, administration, and outcomes while testing the players. Team coaches, trainers, and physiologists must consider the effects of lockdown on the players' performance while preparing players for competition. Further researchers should be established to modify other types of tests, conduct studies with a larger sample and population, and add other variables.

References –

1. Barbosa BT, de Lima-Junior D, da Silva Filho EM. The impact of COVID-19 on sporting events and high-performance athletes. J Sports Med Phys Fit 2020;60:1507-8.
2. United Nations Policy Brief. The Impact of COVID-19 on Sport, Physical Activity and Well-Being and Its Effects on Social Development. Policy Br. No 73 1; 2020. https://www.un.org/development/desa/ dspd/2020/05/covid-19-sport/ [Last access on 2021 Aug 21].
3. Grazioli R, Loturco I, Baroni BM, Oliveira GS, Saciura V, Vanoni E, et al. Coronavirus disease-19 quarantine is more detrimental than traditional off-season on physical conditioning of professional soccer players. J Strength Cond Res 2020;34:3316-20.
4. Mozolev O, Polishchuk O, Kravchuk L, Tatarin O, Zharovska O, Kazymir V. Results of monitoring the physical health of female students during the COVID-19 pandemic, J Phys Educ Sport 2020;20:3280-7.
5. Chaouachi A, Manzi V, Wong del P, Chaalali A, Laurencelle L, Chamari K, et al. Intermittent endurance and repeated sprint ability in soccer players. J Strength Cond Res 2010;24:2663-9.
6. Gabbett TJ, Jenkins DG, Abernethy B. Relationships between physiological, anthropometric, and skill qualities and playing performance in professional rugby league players. J Sports Sci 2011;29:1655-64.
7. Svensson M, Drust B. Testing soccer players. J Sports Sci 2005;23:601-18.
8. Thomas A, Dawson B, Goodman C. The yo-yo test: Reliability and association with a 20-m shuttle run and VO)2 max(. Int J Sports Physiol Perform 2006;1:137-49.
9. Aziz AR, Tan FH, Teh KC. A pilot study comparing two field tests with the treadmill run test in soccer players. J Sports Sci Med 2005;4:105-12.
10. Flouris AD, Metsios GS, Koutedakis Y. Enhancing the efficacy of the 20 m multistage shuttle run test. Br J Sports Med 2005;39:166-70.
11. Ahsan M, Ali MF. Relationship between maximal oxygen uptake and dynamic stability in university rugby and soccer players. Int J Hum Mov Sport Sci 2021;9:704-11.

****

Association of Motor Skill Learning Aptitude and Neuroticism in U-19 National Male Cricket Players Playing as Specialist Bowlers

-Md Shabab Baksh Qureshi
Research Scholar,
Department of Physical Education,
MATS University, Raipur, C.G.

-Dr. Alok Kumar Singh
Assistant Professor ,
Department of Physical Education,
MATS University, Raipur, C.G.

ABSTRACT

The present study aimed to see the effect of motor skill learning aptitude on neuroticism in Junior national male cricket players playing as specialist bowlers. To conduct the study, 100 U-19 junior national male cricket players playing as specialist bowlers were selected purposively. Neuroticism was assessed through the Hindi version of Eysenck's inventory prepared by Helode (1985). A modified test of Metheny-Johnson was used to assess the motor skill learning aptitude of junior national male cricket players. Q_1 i.e. 25th percentile and Q_3 i.e. 75th percentile was used to classify subjects into high, low and average motor skill learning aptitude. The F=3.22 revealed a significant effect of motor skill learning aptitude on the neuroticism dimension of specialist bowlers with a significance level being .05. It was concluded that motor skill learning aptitude significantly influences the neuroticism levels among U-19 junior national male cricket players who specialize as bowlers. Therefore, enhancing motor skill learning aptitude through tailored training and development programs could potentially contribute to reducing neurotic tendencies and improving overall psychological resilience among specialist bowlers in cricket.

Keywords: Motor skill learning aptitude, U-19 cricket, bowlers, neuroticism

INTRODUCTION

Bowling skills in cricket are essential for the success of a bowling team and play a critical role in determining match outcomes. Overall, bowling skills encompass technical proficiency, tactical awareness, physical fitness, and mental resilience. Mastering these aspects allows bowlers to excel at all levels of cricket, from grassroots to international competitions. With the nature of bowling skills, motor skills are front runners as far as proficiency in bowling skills are concerned. A simple definition of motor educability can be framed as the ease of learning new motor skills without having to practice for hours. A similar definition has been put forward by Matthews (1983). Along similar lines as the previous definition, Baumgartner and Jackson (1995) defined motor educability as the ability of an individual to become skilled at a motor task with ease and without putting in extra effort. Learning a new task related to motor movements with precision is also called motor educability by Lutan (1988). Various researchers in the past have extensively discussed motor behaviour, capacities, and movements, often linking them with personality traits. It is widely acknowledged that participation in sports can influence both personality development and motor skills (Tusak and Tusak, 1997). Proficiency in motor tasks like jumping and turning hinges on motor abilities, which are in turn influenced by psychosomatic factors. It has been noted that motor abilities and personality have a complex relationship. Since focus and concentration, handling pressure, resilience to set-

backs, team dynamics, and decision-making are part of the psychological factors that are required to excel in sports, the neuroticism personality dimension becomes important. Neuroticism, as a personality trait, is characterized by a lack of self-assurance stemming from concentration and emotional calmness. It has been observed that individuals lacking these qualities, who are anxious or tense, may experience negative outcomes when performing motor tasks. Eysenck (1970) explained this phenomenon by highlighting the overstimulation of subcortical centres due to high arousal and anxiety levels. According to Eysenck, heightened arousal can disrupt motor performance, which necessitates equanimity, concentration, and coordination during motor skill execution. Ismail (1976) similarly noted that neuroticism impacts the execution of motor tasks, although these findings have not been specifically tested in team sports such as cricket.

REVIEW OF LITERATURE:

Researchers namely Nunes (2006), Merriman (2013), Dalia (2015), Das and Mitra (2016), Prakash (2018), Singh (2018), Suresh Kumar et al. (2019), Suresh and Sundar (2020) conducted studies on motor educability, association of motor abilities with personality in cricket and other games but so far impact of motor skill learning aptitude on neuroticism in U-19 national male cricket players who are specialist bowlers has not been assessed.

OBJECTIVE

The objective of this study was to examine the effect of motor skill learning aptitude on the neuroticism of U-19 national male cricket players who are specialist bowlers.

HYPOTHESIS

The present study hypothesised that the level of motor skill learning aptitude would have a significant impact on neuroticism in U-19 national male cricket players who are specialist bowlers.

METHODOLOGY

The following methodological steps were taken to conduct the present study.

Sample

The study involved the selection of 100 U-19 national male cricket players from multiple cricket academies in Chhattisgarh, Maharashtra, and Orissa. Specifically, the sample comprised specialist bowlers within the age range of 16-18 years. Random sampling was employed to ensure the selection of subjects.

Tools

Metheny-Johnson Motor Educability Test: Motor skill learning aptitude in selected U-19 male cricket players, specializing as bowlers, was evaluated using a modified Metheny-Johnson motor educability test designed for individuals aged 11 to 19 years. This test assesses skills such as front and back rolls, along with jumping incorporating half and full turns, providing a comprehensive evaluation of motor educability across different facets of motor skill learning. The Metheny-Johnson test is well-regarded for its validity and reliability, established through multiple validation studies.

Eysenck's Junior Personality Inventory: The neuroticism dimension of personality was assessed with the help of Eysenck's inventory named JEPI. Since this inventory was in English, its Hindi version prepared by Helode (1985) was used in the present study. This inventory is highly reliable and valid.

Procedure:

100 U-19 national male cricket players with proficiency in bowling skills were selected. All the

subjects were asked to perform on Metheny-Johnson motor educability battery test. JEPI was administered to each subject and only the N dimension was scored off. The data on motor educability and neuroticism dimension of personality was tabulated. To distribute subjects into the high, average and low degrees of motor skill learning aptitude, percentiles were used. Scores below the 25th percentile on motor skill learning aptitude measure denote low motor skill learning aptitude, scores above 75th percentile denotes high motor skill learning aptitude and scores between 25th and 75th percentile denote the average level of motor skill learning aptitude. In this way, 100 U-19 national male cricket players playing as specialist bowlers were distributed into three categories consisting of high, average and low levels of motor skill learning aptitude.

The scores about neuroticism personality traits in these three groups were analysed through One Way ANOVA and the analysed data is presented in Tables 1 and 2 respectively.

RESULT AND DISCUSSION

Table 1
Basic Statistics for Personality as Neuroticism Dimension in a Group of Bowlers

Motor Skill Learning Aptitude	N	Neuroticism	
		Mean	Std. Error
High	24	6.50	0.521
Average	53	6.94	0.417
Low	23	8.65	0.804

Table 1 **(a)**

ANOVA Summary

Source	df	Sum of Squares	Mean Squares	F	Sig.
Between Groups	02	63.662	31.831	3.22	p<.05
Within Groups	97	958.048	9.877		
Error	99	1021.710			

The F=3.22 calculated and presented in table 1(a) revealed a significant effect of motor skill learning aptitude on the neuroticism dimension of specialist bowlers with a significance level being .05. This result is further classified as per the Least Significant Difference Method given in table 4.2.

Table 2

LSD - Least Significant Difference Test

Mean (I)	Mean (J)	Mean Difference (I-J) (Neuroticism)
High Motor Skill Learning Aptitude	Average Motor Skill Learning Aptitude	0.44, p>.05
	Low Motor Skill Learning Aptitude	-2.15, p<.05
Average Motor Skill Learning Aptitude	Low Motor Skill Learning Aptitude	-1.70, p<.05

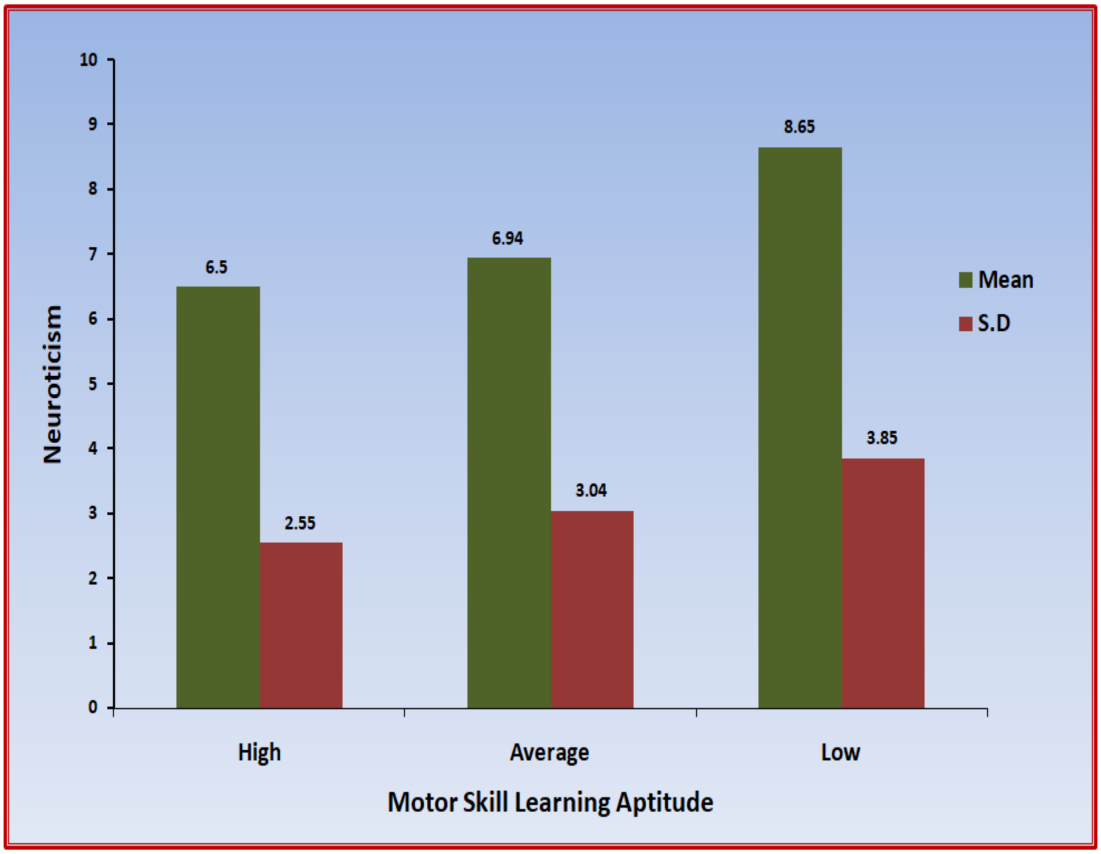

.A perusal of the mean difference (I-J) shown in table 2 can be summarised while keeping in mind with scoring pattern of the neuroticism dimension in which it is clearly stated that a lower score means better emotional stability.

- The mean difference of 0.44 shows that neuroticism in specialist bowlers grouped in as high (Mean = 6.50) and average motor skill learning aptitude (Mean = 6.94) did not differ significantly from each other.

- The mean difference of -2.15 shows that specialist bowlers with high motor skill learning aptitude (Mean = 6.50) are emotionally more stable than specialist bowlers with low motor skill learning aptitude (Mean = 8.65). The mean difference satisfies the criteria of significance at .05 level.
- The mean difference of -1.70 shows that specialist bowlers with average motor skill learning aptitude (Mean = 6.50) are emotionally more stable than specialist bowlers with low motor skill learning aptitude (Mean = 8.65). The mean difference satisfies the criteria of significance at .05 level.

When a motor task is performed in an anxious or tense state an athlete is bound to make mistakes. Apart from this Eysenck (1970) also stated that high arousal or anxiety leads to a lack of balance while performing the motor task. Ismail (1976) also reported that emotional stability comes with concentration and an adequate level of focus with a calm head, when this is lacking execution of motor tasks becomes difficult. Hence the result of the present study is in the expected direction.

CONCLUSION

It was concluded that U-19 male national cricket players playing as bowlers with higher motor skill learning aptitude tend to display lower neuroticism scores, highlighting the potential psychological benefits of enhanced motor skill learning in bowling performance in cricket.

REFERENCES

1. Baumgartner, T.A. and Jackson, A.S. (1995) Measurement for Evaluation in Education and Exercise Science. Dubuque: Brown.
2. Dalia, B. (2015). A study on relationship between intelligence and motor fitness between school level cricketers and footballers. International Journal of Scientific and Research Publications, Volume 5, Issue 7, 1-4.
3. Das, M.K. and Mitra, S. (2016). Comparative Analysis On The Selected Motor Fitness Variables Between Batsman and Bowlers in Cricket. Indian Journal of Research, Vol. 5, Issue 5, 202-203.
4. Eysenck, H.J. (1970-71). Readings and extraversion- introversion, 1,2,3. London: Stamples Press.
5. Ismail, A. H. (1976). Povezanost između kognitivnih, motoričkih i konativnih karakteristika. [Correlation between cognitive, motor and conative characteristics.] Zagreb: Kineziologija, 6 (1-2), 47-58.
6. Lutan, R. (1998). Belajar Keterampilan Motorik Teori dan Metode. Jakarta: Dikti, P2LPTK.
7. Mathews, D. K. (1983). Measurements in physical education. Philadelphia: Saunders.
8. Merriman, J.B. (2013). Relationship of Personality Traits to Motor Ability. Research Quarterly. American Association for Health, Physical Education and Recreation, Volume 31, pages 163-173.
9. Nunes, Terence (2006). The contribution of certain physical and motor ability parameters to the match performance of provincial academy cricket batsmen. Thesis (M.Sc. (Human Movement Science))--North-West University, Potchefstroom Campus.
10. Prakash (2018). Need of motor fitness components for junior level cricket players. International Journal of Physical Education, Sports and Health; 5(5): 65-66.
11. Singh, T. (2018). Motor educability among school level male athletes. International Journal of Yogic, Human Movement and Sports Sciences 2018; 3(2): 1018-1020.
12. Suresh Kumar, Singh, D. and Dolly (2019). Analysis of relationship between motor fitness and sports performance among high performer cricketers. International Journal of Physiology, Nutrition and Physical Education; 4(1): 1043-104.
13. Suresh, M. and Sundar, K. (2020). Effect of resistance training on selected bio motor variables among engineering college men cricket players. Journal of Xi'an University of Architecture & Technology, Vol. XII, Issue VI, 1263-1268.
14. Tušak, M., & Tušak, M. (1997). Psihologija športa [Sport Psychology]. Ljubljana: Znanstveni inštitut filozofske fakultete.

****

Yoga: An Ancient Practice's Evolution, Global Spread, and Modern Impact on Health and Well-being

-Mr. Sunil Kumar Singh
Research Scholar
Department of Physical Education
Shri Gandhi P.G. College, Maltari, Azamgarh

-Dr. Prashant Kumar Rai
Supervisor
Department of Physical Education
Shri Gandhi P.G. College, Maltari, Azamgarh

Abstract

Yoga, an ancient practice from India, has become globally acclaimed for its holistic approach to physical, mental, and spiritual well-being. Initially a path to spiritual enlightenment, yoga is now recognized for its health benefits, enhancing physical fitness, mental clarity, and emotional stability. This literature review explores yoga's historical evolution, scientific foundations, extensive benefits, global spread, and cultural integration. It also examines the growing yoga industry, providing a comprehensive understanding of yoga's multifaceted nature and its impact on modern society, emphasizing its adaptability and significant role in contemporary health and wellness practices.

Keywords: Holistic Well-being, Historical Evolution, Scientific Foundations, Global Integration and Therapeutic Benefits

Introduction

Yoga, an ancient practice originating in India, has evolved into a global phenomenon revered for its holistic approach to physical, mental, and spiritual well-being. Traditionally seen as a pathway to enlightenment and spiritual growth, yoga today is widely recognized for its significant health benefits, contributing to physical fitness, mental clarity, and emotional stability. This extensive literature review delves into the historical evolution of yoga, its scientific foundations, the breadth of its benefits, the global spread and cultural integration, and the burgeoning industry it has become. The aim is to provide a comprehensive understanding of yoga's multifaceted nature and its impact on modern society.

Historical Evolution of Yoga

Yoga's roots can be traced back over 5,000 years to ancient India, where it was first mentioned in sacred texts known as the Rig Veda. These texts comprise hymns and mantras used by Vedic priests (Nagarhalli, 2021). The development of yoga can be categorized into several historical phases:

Pre-Vedic and Vedic Period (5000 – 1500 BCE): This period saw the earliest mentions of yoga practices. The Rig Veda, the oldest known Vedic scripture, contains references to yogic practices and meditation techniques used by Vedic priests (Putcha, 2020).

Upanishadic Period (1500 – 500 BCE): The Upanishads, a collection of texts that form the philosophical basis of Hinduism, further elaborate on the concepts of yoga. The Katha Upanishad and the Shvetashvatara Upanishad discuss yoga as a means to attain a higher state of consciousness and spiritual liberation.

Classical Period (500 BCE – 800 CE): The classical period is marked by the composition of the Yoga Sutras by the sage Patanjali, around the 2nd century BCE. The Yoga Sutras outline the eightfold path of yoga (Ashtanga Yoga), which includes ethical precepts (Yamas and Niyamas), physical postures (Asanas), breath control (Pranayama), withdrawal of senses (Pratyahara), concentration (Dharana), meditation (Dhyana), and states of absorption (Samadhi).

Post-Classical Period (800 CE – 1700 CE): This era witnessed the evolution of Hatha Yoga, which emphasizes physical postures and breathing techniques to prepare the body and mind for meditation. The Hatha Yoga Pradipika, written by Swami Swatmarama in the 15th century, is a key text from this period that outlines the practice of Hatha Yoga (Campeau-Bouthillier, 2021).

Modern Period (1700 CE – Present): The modern period has seen the global spread of yoga, largely due to the efforts of influential yoga masters such as Swami Vivekananda, who introduced yoga to the Western world in the late 19th century. In the 20th century, figures like T. Krishnamacharya, B.K.S. Iyengar, and Pattabhi Jois played pivotal roles in popularizing yoga worldwide.

Scientific Foundations and Benefits of Yoga

Modern scientific research has validated many of the traditional claims regarding the health benefits of yoga. The practice is known to offer comprehensive benefits that encompass physical, mental, and emotional health:

Physical Health Benefits: Yoga has been shown to improve flexibility, strength, and balance. It enhances cardiovascular health by lowering blood pressure, reducing heart rate, and improving circulation. Regular practice can also help manage chronic conditions such as arthritis, back pain, and diabetes. Studies have demonstrated that yoga can boost the immune system, aiding the body in fighting off illnesses (Hauser, 2021).

Mental Health Benefits: Yoga is effective in reducing stress and anxiety. The practice of mindfulness and meditation, integral components of yoga, helps calm the mind and reduce the symptoms of depression and anxiety disorders. Yoga promotes mental clarity, improves focus and concentration, and enhances overall cognitive function (Shaw & Kaytaz, 2021).

Emotional Health Benefits: Yoga encourages self-awareness and emotional regulation. It fosters a sense of inner peace, promotes positive thinking, and enhances emotional resilience. Practitioners often report improved mood and a greater sense of well-being.

Spiritual Health Benefits: Beyond its physical and mental health benefits, yoga is deeply rooted in spirituality. It provides a path for self-discovery and spiritual growth, helping individuals connect with their inner selves and achieve a sense of oneness with the universe (Reeves, 2021).

Global Spread and Cultural Integration of Yoga

The global spread of yoga has been nothing short of phenomenal. From its origins in ancient India, yoga has transcended cultural and geographical boundaries to become a worldwide practice. This section explores the journey of yoga's globalization, the factors contributing to its widespread acceptance, and its integration into various cultural contexts.

Introduction to the West: The introduction of yoga to the Western world is often attributed to Swami Vivekananda, who delivered a series of lectures on yoga and Hindu philosophy in the late 19th century. His work laid the foundation for the Western world's fascination with yoga. In the 20th century, teachers like B.K.S. Iyengar, T.K.V. Desikachar, and Pattabhi Jois further popularized yoga through their teachings and writings.

Yoga in the United States: Yoga's popularity in the United States surged in the 1960s and 1970s, partly due to the counterculture movement, which embraced Eastern philosophies and spiritual practices.

Today, yoga is practiced by millions of Americans, with an estimated 36 million practitioners as of 2016. Yoga studios, retreats, and teacher training programs are widely available, and yoga has been integrated into fitness regimes, schools, workplaces, and healthcare settings.

Yoga in Europe and Other Parts of the World: Similar to the United States, yoga has gained significant traction in Europe, Australia, and other parts of the world. Countries like the United Kingdom, Germany, and Australia have seen a rise in yoga studios and practitioners. The global appeal of yoga is evident from the celebration of International Yoga Day on June 21st, recognized by the United Nations in 2014, which sees participation from people across the globe.

Cultural Integration: Yoga's integration into various cultures has been facilitated by its adaptability and inclusivity. While maintaining its core principles, yoga has been adapted to suit different cultural contexts and lifestyles. For instance, Power Yoga, a more vigorous form of yoga, has gained popularity in the West, while traditional forms like Hatha and Ashtanga continue to be practiced. Yoga's emphasis on holistic health and wellness resonates with contemporary societal values, further aiding its integration.

Therapeutic and Health Benefits of Yoga

The therapeutic applications of yoga are vast and well-documented. This section delves deeper into the specific health benefits of yoga, supported by scientific studies and clinical trials.

Management of Chronic Conditions: Yoga has been found to be beneficial in managing various chronic conditions. For instance, studies have shown that yoga can help reduce pain and improve function in individuals with osteoarthritis and rheumatoid arthritis. It can also aid in the management of chronic back pain by improving flexibility and strengthening the muscles supporting the spine (Góralczyk & Łozinska, 2021).

Cardiovascular Health: Yoga contributes to cardiovascular health by reducing risk factors such as high blood pressure, high cholesterol, and high blood sugar levels. A study published in the Journal of the American College of Cardiology found that yoga, combined with other lifestyle modifications, can significantly reduce the risk of cardiovascular events in patients with heart disease (Tsopanidou et al., 2020).

Mental Health: Yoga is increasingly being used as an adjunct therapy for mental health conditions such as depression, anxiety, and post-traumatic stress disorder (PTSD). Research published in the Journal of Psychiatric Practice indicates that yoga can reduce symptoms of anxiety and depression, enhance mood, and improve overall quality of life.

Stress Reduction: One of the most well-known benefits of yoga is its ability to reduce stress. Yoga practices such as meditation and deep breathing activate the parasympathetic nervous system, promoting relaxation and reducing the stress response. A study in the journal Frontiers in Human Neuroscience found that yoga practitioners had lower levels of cortisol, the stress hormone, compared to non-practitioners (Marie & Magladry, 2020).

Immune System Enhancement: Regular yoga practice can enhance the immune system. Research suggests that yoga can improve immune function by reducing inflammation and enhancing the body's ability to respond to infections. A study published in the Journal of Behavioral Medicine found that yoga

practitioners had higher levels of antibodies in response to flu vaccinations compared to non-practitioners.

Improved Sleep Quality: Yoga can improve sleep quality by promoting relaxation and reducing stress. A study in the journal Alternative Therapies in Health and Medicine found that yoga improved sleep quality and reduced the use of sleep medications in older adults with insomnia (Jeitler et al., 2020).

Educational and Career Opportunities in Yoga

The rising popularity of yoga has created numerous educational and career opportunities. This section explores the various pathways for individuals interested in pursuing a career in yoga.

Educational Programs: Various educational programs are available for those interested in studying yoga. These range from short-term certificate courses to bachelor's and master's degrees in yogic sciences and yoga philosophy. Institutions such as the Morarji Desai National Institute of Yoga in India offer comprehensive programs that cover the theoretical and practical aspects of yoga (Karlekar et al., 2024).

Career Paths: Career opportunities in yoga are diverse. Individuals can work as yoga therapists, instructors, teachers, research officers, or yoga aerobic instructors. Yoga therapists use yoga techniques to help individuals manage health conditions, while yoga instructors and teachers conduct classes and workshops. Research officers study the effects of yoga on health and well-being, contributing to the scientific understanding of the practice (Huang et al., 2023).

Yoga in Healthcare: The integration of yoga into healthcare settings is becoming increasingly common. Hospitals and clinics are incorporating yoga into their wellness programs, recognizing its benefits for patient care. Yoga therapy is being used as a complementary treatment for various health conditions, from chronic pain to mental health disorders.

Yoga Entrepreneurship: The growth of the yoga industry has opened up opportunities for entrepreneurship. Yoga studios, retreats, and wellness centers are thriving businesses. Additionally, the demand for yoga-related products, such as mats, clothing, and accessories, has created a lucrative market for entrepreneurs.

Cultural and Spiritual Dimensions of Yoga

Yoga is not just a physical practice but a spiritual and cultural phenomenon. This section explores the cultural significance of yoga and its role in spiritual development (Chang et al., 2023).

Philosophical Foundations: Yoga is rooted in ancient Indian philosophy and spiritual traditions. The practice is based on the concept of the union of the individual self (Atman) with the universal consciousness (Brahman). The Bhagavad Gita, a key philosophical text, discusses the path of yoga as a means to attain spiritual enlightenment.

Spiritual Growth: Yoga provides a path for self-discovery and spiritual growth. Through practices such as meditation and mindfulness, individuals can achieve a higher state of consciousness and connect with their inner selves. This spiritual aspect of yoga is integral to its practice and distinguishes it from other forms of physical exercise.

Ethical Principles: The ethical principles of yoga, known as Yamas and Niyamas, form the foundation of the practice. These principles include non-violence (Ahimsa), truthfulness (Satya), non-stealing (Asteya), self-discipline (Tapas), and contentment (Santosha). By adhering to these principles, practitioners cultivate a virtuous and ethical

lifestyle.

Yoga and Religion: While yoga has its roots in Hinduism, it is practiced by individuals of various religious backgrounds. Yoga's emphasis on universal principles such as peace, compassion, and self-awareness makes it accessible to people of all faiths. The practice of yoga transcends religious boundaries, promoting spiritual growth and unity.

Yoga and Modern Society

Yoga's relevance in modern society cannot be overstated. This section explores the ways in which yoga addresses contemporary societal challenges and its role in promoting a healthier and more harmonious world (Morris et al., 2023).

Addressing Lifestyle-Related Diseases: Modern society is grappling with lifestyle-related diseases such as obesity, diabetes, and cardiovascular diseases. The sedentary lifestyle, poor dietary habits, and high-stress levels contribute to these conditions. Yoga offers a holistic approach to managing and preventing these diseases by promoting physical activity, healthy eating, stress management, and mindfulness.

Mental Health Crisis: The prevalence of mental health disorders is rising globally. Factors such as urbanization, social isolation, and economic pressures contribute to this crisis. Yoga, with its emphasis on mental and emotional well-being, provides a valuable tool for managing stress, anxiety, and depression. The practice of yoga fosters resilience, improves mood, and enhances overall mental health.

Promoting Social Harmony: In a world characterized by division and conflict, yoga promotes social harmony and unity. The practice encourages compassion, empathy, and understanding, fostering positive relationships and community cohesion. Yoga's emphasis on non-violence and ethical living provides a framework for addressing social issues and promoting peace.

Environmental Sustainability: The theme for the fifth International Yoga Day in 2019 was "Climate Action," highlighting yoga's role in promoting environmental sustainability. Yoga teaches respect for nature and encourages a lifestyle that minimizes environmental impact. The practice of mindfulness fosters an awareness of one's actions and their consequences, promoting sustainable living.

Scientific Research and Evidence-Based Benefits of Yoga

The scientific study of yoga has provided robust evidence supporting its health benefits. This section reviews key research findings that validate the therapeutic effects of yoga.

Cardiovascular Health: Research published in the Journal of the American College of Cardiology found that yoga, combined with lifestyle modifications, significantly reduced the risk of cardiovascular events in patients with heart disease. The study demonstrated improvements in blood pressure, cholesterol levels, and overall cardiovascular health.

Mental Health: A meta-analysis published in the Journal of Psychiatric Practice reviewed studies on yoga's effects on mental health. The analysis concluded that yoga is effective in reducing symptoms of depression and anxiety, improving mood, and enhancing overall quality of life. Yoga practices such as mindfulness and meditation were found to be particularly beneficial.

Immune System: A study published in the Journal of Behavioral Medicine examined the effects of yoga on immune function. The researchers found that yoga practitioners had higher levels of antibodies

in response to flu vaccinations compared to non-practitioners. This suggests that yoga can enhance immune function and improve the body's ability to respond to infections.

Chronic Pain Management: Yoga has been shown to be effective in managing chronic pain conditions. A study published in the Journal of Pain Research found that yoga improved pain levels, physical function, and overall quality of life in individuals with chronic low back pain. The study highlighted the role of yoga in reducing pain perception and enhancing physical well-being.

Sleep Quality: Research published in the journal Alternative Therapies in Health and Medicine found that yoga improved sleep quality in older adults with insomnia. The study demonstrated that yoga practice led to significant improvements in sleep duration, sleep efficiency, and overall sleep quality, reducing the reliance on sleep medications.

Yoga and Technology

The advent of technology has transformed the way yoga is practiced and accessed. This section explores the intersection of yoga and technology, highlighting the opportunities and challenges (Chakravorty, 2023).

Online Yoga Classes: The rise of online platforms has made yoga more accessible than ever. Online yoga classes and tutorials allow individuals to practice yoga from the comfort of their homes. This has been particularly beneficial during the COVID-19 pandemic, enabling people to maintain their yoga practice despite social distancing measures.

Yoga Apps: Numerous yoga apps are available, offering guided sessions, tutorials, and personalized practice plans. These apps cater to various skill levels and preferences, providing a convenient way for individuals to integrate yoga into their daily routines. Popular apps such as Yoga Studio, Daily Yoga, and Asana Rebel have millions of users worldwide.

Wearable Technology: Wearable devices such as fitness trackers and smartwatches have integrated yoga features. These devices can track yoga sessions, monitor heart rate, and provide feedback on performance. The use of wearable technology enhances the yoga experience by providing data-driven insights and encouraging consistency.

Virtual Reality (VR) Yoga: Virtual reality technology is being explored as a tool for yoga practice. VR yoga offers immersive experiences, allowing practitioners to engage in virtual yoga sessions in various environments. This technology has the potential to revolutionize yoga practice, making it more engaging and interactive.

Challenges and Future Directions

While yoga has gained widespread acceptance and popularity, it also faces several challenges. This section discusses the challenges in the field of yoga and potential future directions.

Commercialization: The commercialization of yoga has led to concerns about the dilution of its traditional values and principles. The emphasis on physical fitness and aesthetic appeal in some modern yoga practices may overshadow the holistic and spiritual aspects of yoga. There is a need to balance commercialization with the preservation of yoga's core values.

Standardization and Quality Control: With the proliferation of yoga studios and teacher training programs, ensuring the quality and authenticity of yoga instruction is crucial. Standardization of training programs and certification processes can help maintain high standards and protect the integrity of the

practice. Initiatives such as the "Scheme for Voluntary Certification of Yoga Professionals" by the Indian government aim to address this issue.

Accessibility and Inclusivity: Making yoga accessible and inclusive for all individuals, regardless of age, ability, or socioeconomic status, is essential. Efforts should be made to promote yoga in underserved communities and provide adaptations for individuals with disabilities. Inclusivity in yoga can be enhanced through community outreach, scholarships, and accessible class formats.

Integration with Healthcare: Integrating yoga into mainstream healthcare requires collaboration between yoga practitioners and healthcare professionals. Research on the therapeutic benefits of yoga should be disseminated to healthcare providers, and yoga should be included in wellness programs and clinical practice guidelines. This integration can enhance the holistic care of patients.

Research and Evidence-Based Practice: Continued research on the health benefits of yoga is necessary to build a robust evidence base. Studies should explore the long-term effects of yoga practice, the mechanisms underlying its benefits, and its impact on various health conditions. Evidence-based practice will support the acceptance of yoga in healthcare and wellness settings.

Conclusion

Yoga, with its rich historical heritage and multifaceted benefits, has become a global phenomenon that transcends cultural boundaries. Its holistic approach to health and well-being addresses the physical, mental, and spiritual dimensions of human life. The scientific validation of yoga's benefits, its integration into modern society, and the growing industry surrounding it underscore its enduring relevance and impact. As yoga continues to evolve, it is essential to preserve its core principles and values while embracing innovation and inclusivity. By doing so, yoga can continue to contribute to the health and well-being of individuals and communities worldwide, promoting a harmonious and balanced way of life.

References

Campeau-Bouthillier, C. (2021). Bodies in yoga: tangled discourses in Canadian studios. *Anthropology and Medicine*, *28*(3), 359 – 373. https://doi.org/10.1080/13648470.2021.1949961

Chakravorty, P. (2023). The body and the contagion: a symbiosis of yoga, dance, health and spirituality. *South Asian History and Culture*, *14*(2), 250 – 262. https://doi.org/10.1080/19472498.2022.2144329

Chang, H.-C., Cheng, Y.-C., Yang, C.-H., Tzeng, Y.-L., & Chen, C.-H. (2023). Effects of Yoga for Coping with Premenstrual Symptoms in Taiwan—A Cluster Randomized Study. *Healthcare (Switzerland)*, *11*(8). https://doi.org/10.3390/healthcare11081193

Góralczyk, I., & Łozinska, J. (2021). Yoga instructions in Polish and Russian as directive speech acts: A cognitive linguistic perspective. *Language and Cognition*. https://doi.org/10.1017/langcog.2021.15

Hauser, B. (2021). The health imaginary of postural yoga. *Anthropology and Medicine*, *28*(3), 297 – 319. https://doi.org/10.1080/13648470.2021.1949962

Huang, X., Sun, T., Han, D., Lin, H., Zhang, H., & Hou, X. (2023). The effect of yoga classes on the mental health of female college students. *Journal of Sports Medicine and Physical Fitness*, *63*(11), 1244 – 1250. https://doi.org/10.23736/S0022-4707.23.15104-8

Jeitler, M., Kessler, C. S., Zillgen, H., Högl, M., Stöckigt, B., Peters, A., Schumann, D., Stritter, W., Seifert, G., Michalsen, A., & Steckhan, N. (2020). Yoga in school sport – A non-randomized controlled pilot study in Germany. *Complementary Therapies in Medicine*, *48*. https://doi.org/10.1016/j.ctim.2019.102243

Karlekar, S., Chandrasekar, S. J. A., Elayaraja, M., Gogoi, H., & Govindasamy, K. (2024). Effect of Yoga Practice on Pulmonary Function in Healthy Young Adults with Intellectual Disability. *Fizicna Reabilitacia Ta Rekreacijno-Ozdorovci Tehnologii*, *9*(1), 36 – 42. https://doi.org/10.15391/prrht.2024-9(1).05

Marie, L., & Magladry, M. (2020). Hip hop as decoration: theorizing the hybridity of hip hop and yoga in Perth, Western Australia. *Continuum*, *34*(5), 703 – 719. https://doi.org/10.1080/10304312.2020.1782836

Morris, B., Jackson, J., & Roberts III, A. (2023). Effects of long-term Ashtanga Yoga practice on psychological well-being. *Mental Health and Social Inclusion*. https://doi.org/10.1108/MHSI-03-2023-0033

Nagarhalli, M. (2021). Yoga for the primary prevention of cardiovascular disease: Summary of a Cochrane review. *Explore*, *17*(1), 96. https://doi.org/10.1016/j.explore.2020.10.009

Putcha, R. S. (2020). Yoga and white public space. *Religions*, *11*(12), 1 – 14. https://doi.org/10.3390/rel11120669

Reeves, A. (2021). Yoga for veterans and military personnel: in conversation with David Venus. *Critical Military Studies*, *7*(1), 100 – 105. https://doi.org/10.1080/23337486.2019.1678324

Shaw, A., & Kaytaz, E. S. (2021). Yoga bodies, yoga minds: contextualising the health discourses and practices of modern postural yoga. *Anthropology and Medicine*, *28*(3), 279 – 296. https://doi.org/10.1080/13648470.2021.1949943

Tsopanidou, A. Á., Venetsanou, F. D., Stavridis, I. S., Paradisis, G. P., & Zacharogiannis, E. G. (2020). Energy expenditure during a Vinyasa yoga session. *Journal of Sports Medicine and Physical Fitness*, *60*(8), 1110 – 1117. https://doi.org/10.23736/S0022-4707.20.10821-1

****

Unveiling the Socio-Cultural Dynamics and Communicative Behaviour of Tribal Communities in East Singhbhum District, Jharkhand: A Comprehensive Exploration.

-Puja Pathak,
Ph.D. Research Scholar,
Department of Mass Communication,
Central University of Jharkhand, Ranchi- 835205
E-mail: pujapathak1747@gmail.com

-Dr. Amrit Kumar,
Assistant Professor,
Department of Mass Communication,
Central University of Jharkhand, Ranchi.

Abstract

Jharkhand, a state in eastern India, is home to distinct indigenous culture that have endured for millennia. This study explores the rich legacy of Jharkhand's indigenous groups, including their traditions, beliefs, rituals, arts, and socioeconomic structures. This research seeks to shed light on the tremendous contributions these indigenous cultures have on India and the world's cultural mosaic. This study will explore and describe the indigenous culture and communicative behaviour of the tribals in the East Singhbhum district of Jharkhand. The researcher has used secondary data as well as observation as a tool for primary data for exploring the indigenous culture and non-verbal communicative behaviour of the tribals.

Keywords: *Indigenous culture, Jharkhand, Communicative Behaviour, Tradition, Cultural preservation.*

Introduction

Jharkhand, often referred to as the "Land of Forests," is renowned not only for its natural beauty but also for its cultural wealth, which is deeply rooted in the traditions of its indigenous communities. Jharkhand is a state in the central east part of India that was carved out from Bihar as an independent state on 15th November 2000. Presently, 24 districts of Jharkhand are grouped into 5 divisions. According to the 2011 census, the population of the state is 32 million with 8.6 million schedule tribe population constituting 26.2 percent of the total population of the state (Census, 2011). The state of Jharkhand consists of 32 different tribes, eight of which are classified as primitive tribal groups. Most of the state lies on the Chota Nagpur Plateau, which is the source of the Koel, Damodar, Brahmani, Kharkai, and Subarnarekha rivers, whose upper watersheds lie within Jharkhand. Much of the state is still covered by forest. (jharkhand.gov.in, n.d.) Jharkhand is an ancient land with a distinct history. It has been inhabited by humans since prehistoric times. This state has an area of 79714 sq. km. (Sharma, 2014) Geologically, it is a subdivision of the very ancient Gondwana Land, where there is a huge deposit of various minerals that have been deposited over many eras. Almost all important minerals can be found here, except mineral oil. It contributes 32% in value and 40% in production to India's total minerals. There is a huge potential for industrial development due to the immense mineral reserves. Jharkhand has two social culture levels: tribal and non-tribal. Both the tribal and non-tribal communities have been living together for a long time and therefore, there is harmony between them, but cultural difference still prevails. Jharkhand has long

been in contact with people from different states and religions. Jainism, Buddhism, Shaivism, and Vaishnavism were later developed. Islam and Christianity also came here. Odiya, Bengali, and Punjabi people continued to come and settle. Jharkhand is therefore an amalgamation of different societies, religions, and cultures. This study is conducted in East Singhbhum district of Jharkhand that is situated at the extreme corner of the southeast of Bihar, now Jharkhand. The district is bounded on the east by Jhargram district, on the north by Purulia district, both of West Bengal, on the west by Seraikela-Kharsawan district of Jharkhand and on the South by Mayurbhanj district of Odisha. Total area of the district is 3533 kms. According to the 2011 census, East Singhbhum district has a population of 2,293,919. Scheduled castes and scheduled tribes made up 4.9 per cent and 28.5 per cent of the population respectively. The scheduled tribes population in the district is 6,53,923 where 5,15,214 people belonging to scheduled tribe live in rural area while 1,38,709 people belonging to scheduled tribe live in urban area (Census, 2011). This study explores the indigenous culture and non-verbal communicative behaviour of the tribals in the East Singhbhum district of Jharkhand.

Historical Overview

The indigenous peoples of Jharkhand have inhabited the region since time immemorial, forming close-knit societies based on kinship, communal land ownership, and subsistence agriculture. Their spiritual beliefs, expressed through rituals, folklore, and oral traditions, were deeply intertwined with the natural environment. In the early historical period of India, the aboriginals either went into the deep forests or compromised with their Hindu neighbours. The tribes inhabiting middle India and adjoining western India are found in large numbers and constitute four-fifths of the tribal population (Vidyarthi & Rai, 1985). During the medieval period, the tribal people inhabiting different parts of India were either disturbed by the then-Mughal rulers, the regional rulers, or by both. Indigenous life was severely disrupted by the entry of British colonists in the 18th century, including forced labour, land confiscation, and cultural marginalization. However, resistance activities like the Santhal Rebellion in 1854, the Birsa movement in 1895, the Tana Bhagat movement in 1914, etc., demonstrated how determined the indigenous people were to defend their independence and way of life. In the pre-independence period, tribals were studied to be governed. The post-independent era attracted more and more scholars like S.C. Roy, D.N. Majumdar, G.S. Ghurye, and L.P. Vidyarthi to study the tribes while surveying the research on anthropology in India. Studies on two levels i.e., the historical phases of the tribal studies and the regional basis of studies on tribals have been found (Vidyarthi & Rai, 1985). Every tribe included here has been classified as "Proto-Australoid" based on racial elements. These tribes can be classified as Austric (speaking Munda language) or Dravidian based on language. The Dravidian language group includes the languages of Kurukh (Uraon) and Malto (Mal Paharia and Sauria Paharia). The "Munda language" sub-branch of the Austric language family now includes the languages and dialects of all surviving tribes. (Sharma, 2014)

Communicative Behaviour

While communication is a dynamic process that involves the transmission of information, ideas, emotions or intentions from one individual or group to another, communicative behaviour represents the visi-

ble behaviours and words people use to communicate their intentions. This might involve non-verbal communication such as gestures, body language, facial expressions as well as verbal communication such as spoken words. Communicative behaviour according to (Sternina & Sternin, 2003) is a set of communicative norms and traditions that are generally accepted (and followed) by a particular group of people. Description of communicative behaviour includes verbal behaviour, nonverbal behaviour, and social symbolism. In this study, non-verbal communicative behaviour of the tribals in the East Singhbhum district is studied. Non-verbal behaviour is a type of communicative behaviour that includes unspoken dialogues that are a part of communication. It encompasses a wide range of cues and signals that people use to convey information, emotions, and intentions in social interactions. For successful communication to take place, it is important to focus on nonverbal behaviour too. Non-verbal communication conveys a message beyond words. (Burgoon, Buller, & Woodall, 1995) This factor focuses on parameters like smiling in everyday life, gestures, emotions in gestures, facial expressions, loudness of speech, proxemics, shyness, confidence and different aspects of non-verbal communication. (Sternina & Sternin, 2003).

Research Methodology

The study has followed the descriptive research design using a qualitative research approach. Observation is used as a method for data collection. According to (Goode & Hatt, 1952), 'Carrying out both roles is simpler than attempting to disguise oneself completely.' So, quasi-participant observation is used in this study. The study is conducted in two blocks of the East Singhbhum district, Golmuri-cum-Jugsalai and Chakulia block. Observation of the tribals was done across one months of the pilot study for data collection. The researcher visited different urban as well as rural areas and interacted with tribals of the selected area of study.

Objectives of the study

To explore the indigenous culture of the East Singhbhum district of Jharkhand.

To study the non-verbal communicative behaviour patterns of the tribals in the East Singhbhum district of Jharkhand.

Findings

Cultural Heritage

The tribes of East Singhbhum district of Jharkhand can be divided mostly into three groups according to their religion: Sarna, Hindu and Christians. The tribes here are influenced by Hinduism, and as a result, Hindu festivals, their gods and goddesses have become part of tribal life. Nonetheless, it was decided by the state's five largest tribal communities- Santal, Oraon, Munda, Ho, and Kharia that the tribes are not Hindu.

Tribal culture and environment are closely intertwined. The forest has provided them with food. Even though they have few means and abilities, they prefer to live the most beautiful lives possible. Tribal villages can be divided into two categories: fully tribal and mixed. It is difficult to come across pure tribal villages. Santal villages are regarded as the most beautiful tribal village. Gorgeous artwork adorns the homes in the Santal settlements. Mud and cow-dung-covered houses radiate a particular kind of cleanliness and attractiveness. Tribal villages offer distinctiveness due to a few peculiar institutions. In the middle of the village is an open space for entertainment and community gathering called an Akhra. It is a place of socio-cultural gatherings of the tribals which is located in natural surroundings with large

trees all around and a platform for sitting made up of rocks. The village panchayat is also called up here. Every tribal village has a *sarna sthal* or a place of worship surrounded by groves of trees. The forest had to be cleared for farming and to establish the village, but in return, the groves of trees were preserved and worshipped as *Sarna sthal*. This represents the enduring and interactive relationship between humans and the natural world.

Social Life

In a patriarchal tribal community, a son receives an equal portion of his father's possessions. The tribal economy is not unilateral. Numerous enterprises operate concurrently. Although agriculture is the backbone of the economy, other sources of income are also used, including labour, hunting, fishing, animal husbandry, collecting forest products, poultry, and crafts. In tribal society, both genders have equal and respected roles. Discrimination based on gender is not tolerated in their culture. The dowry system does not exist. Instead, there's a custom of "bride value." Women have complete freedom. Not only do they manage households but their contributions in various fields are on par with those of men. They help men in agriculture and cultivation. Women also work as daily wage workers, while some women also work in the *Aganbadi* centres of the village.

Food & Clothing

The tribes prefer simple cuisine. The majority don't follow a vegetarian diet. However, Tana Bhagat and Safa Hod groups abstain from meat and liquor. The favourite drink of the tribals is liquor derived from rice (*Hadiya, Illi, Botha, Pochai, etc*). Everyone prefers consuming *Hadiya*. They include it in their ceremonies and as a mainstay of their diet. The Hadiya is also offered to god and later consumed as *bonga prasad*. Some guests at home are greeted by *Hadiya* as a drink. The indigenous people of East Singhbhum prefer extremely basic clothing. It's normal to wear fewer, less expensive clothes. Men typically wear *dhoti* and *gamcha*. However, when heading outside the house they wear a shirt or kurta. Most women dress in a saree and blouse. People living in urban areas prefer contemporary clothing. Office going people wear shirts, pants, coats, ties, etc. However, on major tribal festivals, everyone is seen in their traditional attire. Women from tribes have a strong love for jewellery. Because of their poverty, they wear jewellery made of cowry shells, grass seeds, and inexpensive metal. There is less jewellery made of silver and gold. It is customary to embellish with flowers and bird feathers, particularly those of the peacock.

Political Life

Politics is not the pivot of tribal life. The primary issues of tribals are mostly social and cultural. Social cohesion has always been the priority of tribal societies. In tribal societies, the Panchayat system is prevalent whether it is *'Gram Panchayat'*, *'Parha,'* *'Pir'*, or *'Pargana'*. At the village level, caste panchayat is the sole organization found in many small and underdeveloped tribes. Oraon, Munda, Ho, and Santal tribes have a well-developed, efficient panchayat government structure. This governing structure resolves all of their disagreements with punishments like the imposition of monetary fines, physical punishments, or social exclusion.

Religious Life

'Sarna dharm' is the traditional religion practiced by the tribes of Jharkhand. Nature worship is prevalent in *Sarna dharm*. During the middle ages, the tribes were also impacted by *Sanatan dharm*, and subsequently by Islam and Christianity. (Sharma, 2014)

Since the Atharva Veda era, it is said that Aryan individuals who came to give religious initiation gave the Aryan gods and goddesses a position among the tribes. Because of this, worshiping trees are common practices. With Chaitanya Mahaprabhu's visit to Jharkhand, Vaishnavism flourished in this region. Shakta religion came here because it was the area under Pal-Sen's rule. The introduction of Islam to the tribes during the Mughal era had minimal effect on them. The spread of Christianity, which started in 1844, had a significant impact on them. The '*Safa Hod*' sect, the '*Tana Bhagat Panth*,' of *Jatra Oraon* and the new religion *Birsait* of Birsa Munda all had an impact on tribal life at this time. (Sharma, 2014)

The majority of tribes consider Surya to be their greatest deity; Munda, Bhumij, and other tribes refer to him as *Singbonga*, Ho as *Singi,* Mal Paharia as *Beru*, and Mahali as *Surji Devi*. The tribes have a wide variety of gods and goddesses, but village deities like *Hatu Bonga*, *Des Uli*, *Chaal*, and *Kando*, as well as home deities like *Oda Bonga* and ancestors, are particularly significant. (Sharma, 2014) Nature is a sacred place for tribals. However, there are still some established places of worship, such as *Manjhi Than*, *Jaher*, and *Sarna*. Superstition, exorcism, ghosts, and witchcraft are common among nearly all of the tribes. Majority of the tribal festivals are associated with farming. Every tribe celebrates the festival in a unique way. *Sarhul, Karma,* and *Sohrai* are the three major tribal festivals. The tribals have rich folk cultural heritage. Their rich folk literature repository is full of folk songs, folk tales, proverbs, riddles, etc. The place of folk songs is paramount. The narratives of the folk songs depict tribal life. Their songs are lyrical and melodious which provide an insight into various aspects of life. Songs and dances are performed in accordance with festivals and seasons. *Jadur, Sarhul, Karam, Jatra, Jhoomar, Sohrai, Beja, Damkach*, are some of the popular song dances. Tribal people are very fond of music and dance. It is customary to participate in the dance decked up in traditional attire, flowers, leaves, feathers, and jewellery on festivals and different religious occassions. Additionally, a wide variety of musical instruments are utilized, including the *Mandar*, *Nagada*, *Dhol-Dhak, Heska, Manjeer*, and *Bansuri*. The tribes possess excellent skills in handicrafts. Beautiful and constructive art examples include the plastering, painting, and mural paintings on the walls of the home, handicraft mats, cots, artistically crafted *machiya* weaving, *kohbar* and *sohrai* paintings, bamboo baskets, brooms, etc., and metal*dhibris.* The tribal community has an admirable and excellent greeting and hospitality culture. In an effort to extend hospitality, they bow to visitors and wash their feet. They have a unique greeting style for every relative. This greeting style gives insight into their connection with their relatives.

Non-verbal Communicative Behaviour of the Tribals

Non-verbal communication is a complex and multifaceted phenomenon that plays a crucial role in social interaction (Hall, Horgan, & Murphy, 2019). Most of the conversation between people depends on the non-verbal communication. Non-verbal communicative behaviour impacts the social relationships of people. Different aspects of non-verbal communicative behaviour like smiling in everyday life, shyness, eye contact, facial expressions, attention while listening and politeness towards others was studied. It was found out that the tribals in the East Singhbhum district smile while greeting each other. They smile at people who smiles at them. Smile is considered a way of polite behaviour. Not smiling when the person greets you with a smile is considered rude and that the person is angry or sad.

They are shy in front of people they don't know. They shy away to express themselves in front of strangers. However, with their acquaintances and relatives, they are very confident and also involve in humor. These acquaintances may or may not belong to their community, that is, they can be tribal or non-tribal. The tribal living in urban areas are also seen confident in front of their group of people. They maintain eye contact with people around them. They talk and express their emotions confidently while maintaining eye contact. However, with elderly people and strangers they do not maintain eye contact. The tribals of East Singhbhum are not very loud. They talk very softly maintaining polite behavior with everyone, including their acquaintance and strangers.

The facial expression of the tribals in the East Singhbhum depends mainly on the situation they are in. They behave and express according to the situation. In a situation, where it requires to be happy, they express it by smiling and laughing and feeling joyful. The tribal of rural as well as urban areas are expressive and express their emotions according to the situation. Tribals are good listeners. They pay attention to what is being said to them. They let the speaker finish their talk and then only respond to it. They also ask question after listening to the speaker. However, some people mostly elderly people don't listen attentively. The tribals are polite with people around them. They are polite with their elders and respect them. They are polite with women and also to the strangers.

Conclusion

Tribals of East Singhbhum district of Jharkhand has distinct cultural values. They live a very simple life in a close connection with nature. Community participation and social life has a huge influence on the tribals. They are very particular about their tradition, rituals and cultural heritage. They put in efforts to preserve their culture and tradition. Women are empowered and enjoy freedom. Tribals of East Singhbhum are shy, hesitant and less-expressive in front of strangers. However, with their acquaintance they are very confident, involve in humour, maintain eye contact and express their emotions according to the situation.

References

Burgoon, J. K., Buller, D. B., & Woodall, W. G. (1995). Nonverbal Communication: The Unspoken Dialogue. New York: McGraw-Hill.

Census. (2011). Retrieved from jharkhand.gov.in.

Goode, W. J., & Hatt, P. K. (1952). Methods in Social Research. New York: McGraw- Hill Book Co.

Hall, J. A., Horgan, T. G., & Murphy, N. A. (2019). Non-Verbal Communication. Annual Review of Psychology, 271-294.

Roy Burman, B. K. (1978). Tribal India-New Frontiers in the study of population and society. Indian Anthropologist, 73-88.

Roy, S. (1912). The Mundas and their Country. Calcutta: City Bar Library.

Roy, S. (1915). A Note on Some Remains of the Ancient Asuras in Ranchi District. Journal of Bihar and Orissa Research Society.

Sharma, B. C. (2014). Jharkhand ki Janjatiyaan. Jharkhand: Jharkhand Jharokha.

Sternina, M., & Sternin, I. (2003). Russian and American Communicative Behavior. Voronezh.

Tribal Atlas of Jharkhand. (n.d.). Department of Scheduled Tribe, Scheduled Caste, Minority and Backward Class Welfare, Government of Jharkhand.

Vidyarthi, L. P., & Rai, B. K. (1985). The Tribal Culture of India. Concept Publishing Company Pvt. Ltd.

****

Role of Media Literacy in Combating Communal Violence

-Abhijit Singh,
PhD Research Scholar,
Mahatma Gandhi Central University,
Motihari, Bihar.

-Rajiv Pratap Singh,
PhD Research Scholar,
Guru Ghasidas Central University ,
Bilaspur, Chhattisgarh

Abstract

Communal violence is a significant issue in India, often triggered by rumours and misinformation spread through the media. Media literacy can play a crucial role in combating communal violence by empowering individuals to critically evaluate media messages, challenge stereotypes, and promote understanding. This research paper aims to examine the existing literature on communal violence and its relationship with media literacy, explore the concept and components of media literacy and investigate its potential in addressing communal violence. The paper adopts a systematic review approach, analysing relevant studies on the role of media literacy in combating communal violence. Theoretical frameworks such as Social Identity Theory and Social Cognitive Theory provide a foundation for understanding the relationships between media, communication and intergroup conflicts. The findings highlight the importance of media literacy, critical thinking, contextual understanding, and media creation in promoting peace and reducing the risk of communal violence.

Keywords: Communal violence, Media literacy, Social Identity Theory, Social Cognitive Theory.

Introduction

Communal violence is a serious problem in India. It is often triggered by rumours and misinformation spread through the media. Media literacy can be a powerful tool for combating communal violence. It can help people to critically evaluate media messages and to identify and challenge stereotypes and prejudices.

In India, Communal violence is often triggered by rumours and misinformation spread through the media; specially through social media. There are many factors that contribute to communal violence in India. India is a multi -religious country with a population of over 1.3 billion people. There are significant populations of Hindu, Muslims, Christians, Sikhs, and Jains in India. This diversity has often been a source of conflict, particularly in the wake of partition in 1947, when India and Pakistan were created as separate countries.

Another factor that contributes to communal violence in India is the country's poverty, inequality and illiteracy. This poverty, inequality and illiteracy can create a sense of resentment and frustration, which can be exploited by those who seek to incite communal violence.

The media can also play a role in spreading rumours and misinformation that can lead to communal violence. With the advent of Social-Media, rumours and misinformation have proliferated with the advent of social media. In India, many times we feel that even the mainstream media is often divided into two factions. This can lead to the spread of biased and inflammatory reporting that can fuel communal tensions.

The media can play a powerful role in shaping public opinion. In India, the media is often divided along religious lines. This can lead to the spread of biased and inflammatory reporting that can fuel communal tensions. The media can also play a role in perpetuating stereotypes and prejudices. For example, the media portrayal can lead to a climate of fear and suspicion, which can make it more likely that violence will erupt.

In this paper, we will discuss the role of media literacy in combating communal violence in India. We will first provide a brief overview of the problem of communal violence in India. We will then discuss the role of the media in spreading rumours and misinformation that can lead to communal violence. Finally, we will discuss how media literacy can be used to combat communal violence.

Media literacy can be a powerful tool for combating communal violence. It can help people to critically evaluate media messages and to identify and challenge stereotypes and prejudices. Media literacy education can teach people to:

1. Identify bias and propaganda in media messages
2. Analyse the purpose of a media message
3. Evaluate the credibility of a media source
4. Identify stereotypes and prejudices in media messages

Media literacy education can also help people to develop critical thinking skills. These skills can be used to evaluate media messages and to make informed decisions about the information that they consume. Media literacy education can also help people to develop critical thinking skills. These skills can be used to evaluate media messages and to make informed decisions about the information that they consume.

In order to be effective, media literacy education must be comprehensive and ongoing. It must be taught in schools, in the community, and in the workplace. It must also be tailored to the specific needs of different communities. Media literacy is not a magic bullet. It will not solve the problem of communal violence in India overnight. However, it can play a role in reducing the risk of violence and in promoting peace and understanding.

Research Objectives:

1. To examine the existing literature on communal violence and its relationship with media influence.
2. To explore the concept and components of media literacy and its potential in addressing communal violence.

Research Methodology:

This review research paper aims to examine the role of media literacy in combating communal violence. To achieve this objective, a systematic review of relevant literature was conducted. The methodology for this review paper is outlined below.

1. Systematic Review: A systematic review approach was adopted to identify, select, and critically evaluate rele-

vant studies on the role of media literacy in combating communal violence. This approach ensures a comprehensive and rigorous synthesis of existing literature.

2. Databases: Several academic databases, including Scopus, and Google Scholar, were systematically searched to identify relevant articles using keywords such as "media literacy," "communal violence," "intergroup conflicts," "media impact," and "media interventions."

3. Study Selection: The initial search results were screened based on titles and abstracts to identify potentially relevant articles. The selected articles were further assessed based on their full texts to determine their relevance and eligibility for inclusion in the review.

4. Data Analysis: The findings and key themes extracted from the selected studies were synthesised and organised thematically. The review paper presents a comprehensive overview and analysis of the literature, highlighting the main findings, theoretical frameworks, and methodologies employed in the studies.

Theoretical Framework:

The theoretical framework for understanding the role of media literacy in combating communal violence draws upon several key theories and concepts that provide a foundation for exploring the relationships between media, communication, and intergroup conflicts.

1. Social Identity Theory: Social identity theory **(Tajfel & Turner, 1979)** is a central framework in understanding communal violence and intergroup dynamics. This theory posits that individuals derive a sense of self and belonging from their membership in social groups. Media plays a significant role in shaping and reinforcing social identities, potentially exacerbating tensions between different groups **(Esses et al., 2018)**. Media literacy interventions can empower individuals to critically examine media representations and challenge stereotypes that contribute to intergroup divisions.

2. Social Cognitive Theory: Social cognitive theory **(Bandura, 1986)** emphasizes the role of observational learning and modelling in shaping individuals' behaviour and attitudes. Media literacy programs draw upon this theory by providing individuals with opportunities to observe and analyse media content, critically evaluate its impact, and develop the skills to resist harmful messages related to communal violence **(Hobbs & Jensen, 2009)**.

Communal Violence:

Communal Violence is a complex and multidimensional phenomenon that has been widely studied in social science literature. According to **(Chandra, 2010),** communal violence "refers to conflicts that occur between different religious or ethnic communities, where the primary motivation for violence is often rooted in communal identities and perceptions of threat". It is characterised by the targeting of individuals or groups based on their religious or ethnic affiliations, leading to widespread fear, destruction, and loss of life. Communal violence refers to acts of violence, conflict, or hostility that occur between different religious, ethnic, or communal groups within a society **(Jones, 2017)**. It involves the deliberate targeting and victimisation of individuals or communities based on their religious or ethnic identity **(Smith, 2015)**. Communal violence can take various forms, such as riots, mob attacks, arson, and destruction of property **(Kumar, 2019)**.

The causes of communal violence are complex and multifaceted. They can stem from historical grievances, socio-political tensions, economic disparities, and religious or ideological differences **(Singh, 2018)**. Moreover, the role of the media in shaping and exacerbating communal violence cannot be overlooked. Research suggests that media representations and narratives can influence public perceptions, reinforce stereotypes, and contribute to the escalation of intergroup tensions **(Rajagopal, 2020)**.

Background of Communal Violence:

Communal violence refers to conflicts and hostilities that arise between different religious, ethnic, or social groups within a society **(Sikri, 2018)**. Such violence often leads to severe consequences, including loss of life, displacement, and social unrest **(Ahmad & Mandeep, 2020)**. Communal violence has been a persistent issue worldwide, with numerous examples throughout history, such as the ethnic conflicts in Rwanda and the religious tensions in India (Ferguson & Burgess, 2017; Sharma, 2019).

Understanding the causes and dynamics of communal violence is essential for developing effective strategies to prevent and mitigate its occurrence. Various factors contribute to the emergence of communal violence, including political and economic inequalities, religious or ethnic intolerance, and historical grievances **(Bhavnani et al., 2011; Varshney, 2002).** Moreover, the role of media in shaping public perceptions and exacerbating communal tensions cannot be overlooked.

Historical overview of Communal Violence:

Communal violence has been a recurring phenomenon throughout history, with numerous instances occurring in different parts of the world. These incidents have had significant social, political, and economic implications, leaving a lasting impact on affected communities. One notable historical example of communal violence is the partition of India in 1947, which resulted in widespread violence and displacement between religious communities **(Menon, 2019).** The communal tensions between Hindus, Muslims, and Sikhs escalated during the partition, leading to large-scale riots, massacres, and forced migrations **(Gupta, 2018)**. The aftermath of partition still echoes in the collective memory and socio-political landscape of the Indian subcontinent.

Similarly, the ethnic conflicts in Rwanda in 1994 stand as a grim reminder of the devastating consequences of communal violence. The conflict between the Hutu and Tutsi communities resulted in the genocide of hundreds of thousands of Tutsis **(Straus, 2006)**. The media played a crucial role in fuelling hate speech and spreading propaganda, contributing to the escalation of violence **(Chalk & Jonassohn, 1990)**. Other instances of communal violence can be found in various regions, including the former Yugoslavia, Northern Ireland, and Sudan, among others **(Kuperman, 2001; McEvoy, 2016; Verwimp, 2003).** These historical events highlight the complex interplay of factors such as political tensions, ethnic or religious divisions, economic disparities, and the role of media in propagating hate and misinformation. Understanding the historical context and dynamics of communal violence is essential for developing

effective strategies to prevent its recurrence and promote peacebuilding efforts.

Media Literacy:

Media literacy, on the other hand, refers to the ability to critically analyse, evaluate, and interpret media messages **(Sharma, 2016)**. It involves the development of skills and competencies that enable individuals to navigate through the vast amount of information disseminated by the media, discern between reliable and biased sources, and understand the underlying ideologies and agendas **(Gupta, 2019)**. Media literacy plays a crucial role in promoting a more informed and discerning audience, thereby reducing the potential impact of media on communal violence **(Verma, 2020)**. By understanding the dynamics of communal violence and enhancing media literacy, it is possible to address the underlying factors and mitigate the risks associated with intergroup conflicts **(Chatterjee, 2017)**. Promoting media literacy can empower individuals to critically engage with media content, challenge stereotypes, and foster more inclusive and tolerant societies **(Patel, 2021)**.

Definition and Scope of Media Literacy:

Media literacy can be defined as the ability to critically analyse, evaluate, and understand various forms of media messages, including print, broadcast, and digital media **(Kubey & Baker, 2018; UNESCO, 2013).** It encompasses a range of skills and competencies that enable individuals to navigate and engage with media effectively.

The scope of media literacy extends beyond basic media consumption. It involves developing skills to decipher the intended meaning, identify bias and manipulation, and interpret the social, cultural, and political influences embedded within media content **(Livingstone et al., 2019).** Media literacy also encompasses the capacity to create media content ethically and responsibly, promoting active and constructive participation in the media landscape **(Hobbs, 2017)**.

In today's digital age, where information is abundant and readily accessible, media literacy plays a crucial role in empowering individuals to critically engage with media messages, discern accurate information from misinformation, and understand the broader implications of media on society **(Tyner, 2018)**. It enables individuals to become informed and responsible media consumers, capable of making informed decisions and actively contributing to a media-rich society.

Role of Media in Shaping Public Opinion during Communal Violence:

Media plays a significant role in shaping public opinion and perceptions during instances of communal violence. The portrayal of events, dissemination of information, and the narratives presented by the media can have a profound impact on how the public understands and responds to communal conflicts.

During communal violence, media outlets become primary sources of information for the general public. News coverage, both print and broadcast, often focuses on the sensational and dramatic aspects of the conflicts, amplifying the emotions and tensions involved (Patterson, 2013). This selective framing of events can contribute to the polarisation of different religious or ethnic groups, reinforcing existing biases and stereotypes (Entman, 2012).

Furthermore, the role of media in disseminating information during communal violence can shape public perception and influence the formation of opinions. Biased reporting, misinformation, and propaganda can exacerbate communal tensions and fuel hatred between communities (Hafez, 2014; Tsfati & Ariely, 2014). Inaccurate or inflammatory content, including hate speech and incitement, can manipulate public sentiments and contribute to the escalation of violence **(Karim, 2016)**.

The media's choice of language, visuals, and framing can also influence how events are interpreted by the audience. The use of inflammatory language, graphic images, and stereotypical depictions can reinforce existing prejudices and create an environment of hostility **(Entman, 2012; Iyengar, 1991)**.

Understanding the role of media in shaping public opinion during communal violence is crucial for recognizing the responsibility of media organizations in promoting accurate, unbiased reporting, and for developing media literacy programs that empower individuals to critically analyse media messages.

Media Literacy and Communal Violence:

Media literacy serves as a valuable framework for addressing communal violence by empowering individuals to critically engage with media messages and navigate the complex information landscape. The conceptual framework of media literacy in the context of communal violence encompasses key elements and processes that contribute to combating the negative impact of media on intergroup relations.

1. Media analysis and critical thinking: Media literacy involves developing the skills to analyse and critically evaluate media messages related to communal violence. This includes recognizing bias, identifying propaganda or misinformation, and understanding the underlying motives behind media content **(Livingstone et al., 2020).** By engaging in critical thinking, individuals can question dominant narratives and develop a more nuanced understanding of communal conflicts.

2. Contextual Understanding: Media literacy emphasizes the importance of understanding the broader social, cultural, and historical contexts in which communal violence occurs. This involves examining the root causes, historical grievances, and socio-political dynamics that contribute to tensions between different religious or ethnic groups **(Tulloch, 2018)**. By contextualizing media representations, individuals can develop a more comprehensive understanding of the complexities involved in communal violence.

3. Empathy and Perspective-taking: Media literacy encourages the cultivation of empathy and perspective-taking skills. By engaging with diverse media content and narratives, individuals can develop a broader perspective and empathise with the experiences and viewpoints of different communities affected by communal violence **(Hobbs, 2018)**. This helps foster mutual understanding and bridge the divide between communities.

4. Media Creation and Activism: Media literacy extends beyond consumption to include the active creation of media content. By empowering individuals to create their own

media messages, media literacy promotes alternative narratives, counter-narratives, and voices of peace and reconciliation **(Buckingham, 2019)**. This can contribute to fostering dialogue, challenging stereotypes, and promoting positive intergroup interactions.

Existing Research on the impact of Media Literacy on Communal Violence:

A growing body of research has explored the impact of media literacy interventions on addressing communal violence and promoting peaceful coexistence among diverse communities. These studies provide valuable insights into the effectiveness of media literacy in countering the negative effects of media on intergroup relations.

Several studies have demonstrated the positive outcomes of media literacy programs in fostering critical thinking and empowering individuals to analyse media messages related to communal violence. For example, a study by **Dutta and Pal (2019)** assessed the impact of a media literacy intervention among college students and found that it led to increased awareness of media biases and improved critical evaluation skills, enabling participants to challenge stereotypes and misinformation.

Research has also highlighted the role of media literacy in promoting empathy and understanding among different religious or ethnic groups. In a study by **Ramaprasad (2017),** participants who engaged in a media literacy program showed enhanced empathy towards other communities affected by communal violence, indicating the potential of media literacy interventions in bridging social divides.

Furthermore, media literacy interventions have been effective in countering the spread of hate speech and misinformation that contribute to communal violence. A study by **Malik and Anis (2020)** examined the impact of a media literacy intervention on reducing the acceptance of hate speech among young adults. The results demonstrated a significant decrease in the endorsement of hate speech after the intervention, suggesting the potential of media literacy in mitigating the negative influence of media on intergroup relations.

While these studies provide valuable insights, it is important to note that the effectiveness of media literacy interventions in combating communal violence may vary based on contextual factors and program design. Further research is needed to explore the long-term effects of media literacy interventions, assess the scalability of such programs, and identify best practices for implementation.

Conclusion:

In conclusion, communal violence is a significant issue in countries like India, often fueled by rumours, misinformation, and biased reporting spread through the media. Media literacy has the potential to play a crucial role in combating communal violence by empowering individuals to critically evaluate media messages, challenge stereotypes, and make informed decisions about the information they consume. Through media literacy education, individuals can develop skills such as identifying bias and propaganda, analysing the purpose of media messages, evaluating the credibility of sources, and recognizing stereotypes and prejudices. These skills enable individuals to navigate the media landscape more effectively, discern accurate information from misinformation, and resist harmful messages that contribute to intergroup tensions.

Media literacy interventions draw upon theoretical frameworks like Social Identity Theory and Social Cognitive Theory to address the underlying factors that contribute to communal violence. By promoting critical thinking, contextual understanding, empathy, perspective-taking, and media creation, media literacy programs can help foster a more informed and discerning audience. This, in turn, reduces the potential impact of media on communal violence and promotes peace, understanding, and tolerance among diverse communities.

While media literacy is not a quick solution to the problem of communal violence, it is a long-term strategy that requires comprehensive and ongoing education. Media literacy should be integrated into school curricula, community programs, and workplace training to reach a wide range of individuals. Tailoring media literacy education to the specific needs and contexts of different communities is essential for its effectiveness. Research on the impact of media literacy interventions in addressing communal violence is growing, providing valuable insights into the effectiveness of these programs. This research underscores the importance of media literacy in countering the negative influence of media on intergroup relations and promoting more inclusive and peaceful societies.

In summary, media literacy has a significant role to play in combating communal violence by empowering individuals to critically engage with media messages, challenge biases and stereotypes, and make informed choices. By promoting media literacy education and fostering a more discerning and responsible audience, we can contribute to reducing the risk of communal violence and fostering a culture of peace, understanding, and harmony.

References:

Ahmad, A., & Mandeep, R. (2020). Communal violence: Causes, impact, and prevention. International Journal of Research and Analytical Reviews.

Bhavnani, R., Miodownik, D., & Choi, H. J. (2011). Ethnic polarization, ethnic salience and civil war. Annual Review of Political Science.

Ferguson, N., & Burgess, A. (2017). The war of the world: Twentieth-century conflict and the descent of the West. Penguin.

Sharma, V. (2019). Communal violence in India: Perspectives on modern conflicts. SAGE Publications.

Sikri, R. (2018). Communal violence and the dynamics of terrorism in India. South Asian Survey.

Varshney, A. (2002). Ethnic conflict and civic life: Hindus and Muslims in India. Yale University Press.

Chalk, F., & Jonassohn, K. (1990). The history and sociology of genocide: Analyses and case studies. Yale University Press.

Kuperman, A. J. (2001). The limits of ethnic conflict: Lessons from Darfur. World Policy Journal.

McEvoy, K. (2016). Commemoration and conflict transformation in Northern Ireland: The Omagh bombing and the role of memorialization. Journal of Peace Research.

Menon, R. (2019). Partition and its aftermath: Violence,

migration, and the prospects for resettlement and integration. India Review.

Straus, S. (2006). The order of genocide: Race, power, and war in Rwanda. Cornell University Press. Verwimp, P. (2003). The political economy of ethnic conflict in Rwanda. Journal of Peace Research.

Kubey, R., & Baker, F. (2018). Media literacy education. In A. Jordan & J. Hartley (Eds.), Oxford research encyclopaedia of communication. Oxford University Press.

Livingstone, S., Cabello-Hutt, T., & Carrasco, P (2019). How can we research young people's internet use in a globalised world? Some suggestions from comparative research. Journal of Children and Media.

Tyner, K. (2018). Media literacy: new agendas in communication. Routledge.

UNESCO. (2013). Media and information literacy: Curriculum for teachers. Retrieved from https://unesdoc.unesco.org/ark:/48223/pf0000221159

Entman, R. M. (2012). Scandal and silence: Media responses to presidential misconduct. Wiley.

Hafez, K. (2014). Opinion climates and contentious politics in the Arab world. International Journal of Press/Politics.

Karim, K. H. (2016). The role of social media in promoting peaceful coexistence and communal harmony. Journal of Media Studies.

Patterson, T. E. (2013). Informing the news: The need for knowledge-based journalism. Vintage Books.

Tsfati, Y., & Ariely, G. (2014). The role of trust in the online media's coverage of the Israeli-Palestinian conflict. Journal of Conflict Resolution.

Buckingham, D. (2019). Media education and media literacy: Reconsidering the aims of media education in the age of 'fake news' Journal of Media Literacy Education.

Hobbs, R. (2018). Create to learn: Introduction to media literacy education. Routledge.

Tulloch, J. (2018). Media and communal conflict: The complexities of reporting ethnicity. Palgrave Macmillan.

Bandura, A. (1986). Social foundations of thought and action: A social cognitive theory. Prentice-Hall.

Buckingham, D. (2019). Media education and media literacy: Reconsidering the aims of media education in the age of 'fake news'. Journal of Media Literacy Education.

Esses, V. M., et al. (2018). Media and intergroup relations: Examining the impact of media use and media literacy on intergroup attitudes. Journal of Social Issues.

Gerbner, G., & Gross, L. (1976). Living with television: The violence profile. Journal of Communication.

Potter, W. J. (2019). Media literacy. SAGE Publications.

Dutta, M. J., & Pal, M. (2019). Media literacy interventions among college students: Evaluating the impact on critical thinking and media behaviour. Journal of Media Literacy Education.

Malik, S. A., & Anis, R. (2020). Impact of media literacy on reducing the acceptance of hate speech among young adults. Journal of Media Literacy Education.

Ramaprasad, J. (2017). Empathy development through media literacy: The role of empathy in mitigating intergroup conflict. Journal of Media Literacy Education.

****

Gift of a pig is a novel of science fiction. It eradicates blind faith and hypocrisy from the society.

-Dr. Shelly Sonkar Shah
M. A. English, B.Ed.
Jagnandini Palace, Danda lakhaund Sahstra dhara
Road Dehradun U.K.

Roop Narayan Sonkar is a veteran Dalit author. He writes in hindi and English both. His books are being taught in various universities of India and abroad. His book 'Pousonous Roots' is a collection of English stories which is based on the atrocities inflicted over Dalits by some upper cates people in rural India.This book is being taught in Indira Gandhi National Tribal University Amarkanta M. P., Bombay University Mumbai, Dr. Homi Bhabha Stste University Mumbai, Maharashtra and Torino University Torino Itlay.

World known English writer Ruskin Bond has praised writer Roop Narayan Sonkar. " Being a civil servant Sonkar is writing superb continously. " Professor Namvar Singh had said-" Sonkar is a topmost Dalit writer. " Ex-Prime Minister of India Sri V. P. Singh had remarked -" Sonkar is a young Dalit writer he writes for establishing communal harmony, love and brotherhood in the society."

Honourable Governors and Chief Ministers of the states have honoured him.

Gift Of A Pig (Suardaan) is a very famous novel. A famous film producer of Bollywood Rakesh Roshan produced a superhit film Krrish3. Author of this novel had claimed that the story of this novel stollen by him. Legal litigation was started between writer and film producer. At last author got success in High Cort and Supreme Court of India. Settlement was done between the parties before Supreme Court if India.

The begining of the novel reveals the future of the novel. This is a very interesting -"From time to time, the war between religionand action goes on. The religion always overshadows the action. Now the action is overshadowing the religion. The religion is a fanciful thing whearas the action is real. Often there is genocide due to fundamental approach to religion. There is no problem till the universe comes to end. The true action makes and saves the universe. "

Really novelist believes in action. Action can build the society, Nation and World. The action is that chant which can reform the society. It can remove the hunger and illiteracy from the World. According author the blind faith can destroy the society. This is an era of science and technology. Science and technology is that weapon which can destroy all the burning problems.

The novelist has described the attitude of some upper caste people of India towards professon. Some professon have been considered very mean by them. In foreign countries such thinking does not exist. They honour every professon.

" The natives of America, England, Russia and other western countries sweep the streets with brooms bearing suit with tie. But there is no looking down to their social reputation. In India, if an individual of general caste does any frivolous work, his social prestige goes down drastically. It seems that he has put the the Ganges in revese direction.RamchandraTrivedy has revelled agains all the Brahmins of the village. None of Brahmins of the village touch him. They have stopped eating food with him or his family members. Whenever he walked through the streets, the Brahmins used to see him with disdain. "(Page 4,Gift of apig)

The Brahmins of the Village were behaving badly because RamchandraTrivedy was doing the business of Pigeryfarm with the Dalits and backward people. Ranchabdra Trivedy explained his views after esting the pork -"The cooked meat of that small pig was tastier than all the dishes of the World.... The Brahmins have kept us away from such delicious foodbfor thousands of years by bringing the orthodox religion in the social milieu. The sane way the Hindus are kept away from eating

beef and Muslims consider eating pork against their religion."

Ramchandra Trivedy, Sajjan Khatik, Ghasitey Chamar and Salwant Yadav were highly qualified from the university of London. They were getting good jobs there. They all denied it. They returned from London to their village Singhasankheda and started the business of Pigeryfarm after getting the loan from the bank. They wanted to remove the poverty from rural India. They were interested to give the job to the unemployed youths of the villages. They tried to remove casteism and inequality from the society. They believed in the progress of rural india.

Munshi Premchand was a great novelist and a storey writer. He had been titled as 'Katha Samraat'. His novel Godaan (Gift of a cow) was very famous that time. The author raised the problems of farmers. He was much worried about their pitable condition. The casteism and untouchability was prevailing in the society much in that era. He tried to remove the social evils. The credit goes to Premchand for establishing the concept of living in relationship. A upper caste character of the novel was living in relstionship with a Dalit girl. He was dening to get mary with that Dalit girl. The people of Chamar cate objected it and made pressure on him to get marry with that girl. After his denial they held him and put an animal bone into his mouth forcibly.

In novel of Gift Of A Pig Miss Hary Silva had been living in relationship with four partners of the Pigeryfarm in London during their studies. She was English and came to India to live with them. She wanted to become the wife of four parteners jointly as Paanchali became the wife of five Pandav brothers. Hary Silva took keen interest for the women education of the village. He had a laptop with him and gave education to women through it. She also taught the lesson of cleanliness of their houses. She used to make bath the poor children of the village. She had soap tablets with him. She became much familiar in the village.

Pigeryfarm describes the functioning of Panchayat Raj system in rural India. Author has created a new word titled 'Pradhan Pati', this word was created by author in his collection of plays titled 'Samajdrohi' and his novel 'Dank' in 2003.Pradhan Pati became too famous throughout India. Pradhan Pati means the husband of an elected lady as Gram Pradhan. The elected lady as Village Head is not allowed to function but on behalf of her , her husband functions all the activities of Panchayat.The author has drawn the attention of the government towards these malpractices.

The author has also described the reality of the functioning of the Panchayat Raj system .If any village is reserved for the people scheduled caste. Then the upper caste people opposed it. Satynarayan Tripathi Village Head opposed it. How the scheduled caste man can rule over us. Satynarayan Tripathi put Bhagtu pasi as his dumy candied againdt Sanktaprasad Khatik to cotest the election for Village Headship.
(Page 36,37 Gift of a Pig,,)

In this novel intercaste and international marriages have been promoted. Three girs of Pujari Dayashankar got married with Sajjan Khatik, Ghasitey Chamar and Salwant Yadav. These three youths belong to Dalit and backward classes.Ramchandra Trivedy became the life partner of Miss Harry Silwa. Brahmins of the village opposed the marriage of Brahmins girls with lower caste people. The administration helped and put the Brahmins into jails who were protesting.
(Page 86 Gift Of A Pig)

This novel is a science fiction. The imagination of author is praisworthy. The author thinks scientifically -"If the offsprings are produced from the female animal and human semen and offsprings born should be named Maanwar then the Maanwar will be able to speak like a man. The only scientists can tell about it.When a clone of a man can be made to look like his. Then the scientistswill be able to make an animal to speak like a man. Then the dogs will show their faithfulness in a man' voice to their masters."
(Page 141 The Gift of A pig

Another a new creation can be watched in this novel-

"With the help of Indian, British and American scientists they built up labotaries and started new inventions on cows and pigs. The partners of Pigeryfarm started cross breed 'Sugaay' from the cross fertilization of cows with pigs. Sugaay was amazing for the people.

(Page 135 The Gift Of A pig)

The author has suggested to the government to solve the problems of desperate people. The condition of these people are very worst. They are suffering of hunger. There are no schools for their children. There are no medical facilities for them. The partners of pigryfarm suggested the government to remove these problems of these desperate people. They will not indulge themselves in committing violence. They will come in the main stream of the Nation. They will certainly surrender before the partners of pigryfarm. The government should recruit these people in army and police force. They can face the enemies with valour.

This novel attracts the intellectuals because they have read Godaan (The Gift Of A Cow). Suardaan (The Gift Of A Pig) is a new myth. In the Gift of a cow a man donates a cow at the end of his life. Munshi premchand did not break this blind faith. He rooted it firmly in his novel. But Sonkar rooted out this blind faith in his novel. He had broken this ill concept that a man should donate a cow at the last breath of his life.After doing so he can cross the river of troubles. He may approach to heaven.

The Gift of a pig talks about this misconception which is prevailing in the society. When a Brahmin Pujari Dayashankar was dying. Then some Brahmins brought a cow near his bed and said-

"Pujari Dayashankar this cow will take you to the heaven. It is heard that there is fierce sea, you will hold the tail of it and cross the ocean of worldly existence. You donate the cow now."

"I will not donate the cow. The heaven and hell are things of imagination. After dying a man gets dissolved in soil. After stopping the breath of a man, he does not have any knowledge. All his activities get stopped. He becomes absolutely soil. The soil can never hold a cow's tail."

"Then how will you cross such a sea of troubles."

" For him after the death of a person talking to imaginary whirlpool is deceit. If I had to donate, I would donate love, brotherhood, communal harmony and attachment to humans and animals. I 'll donate the teachings of non-violence so that the peace would prevail in the whole World. I would like to donate this message that the whole World be free from pollution. I'll donate this resolution that every citizen of India be ready to sacrifice his life for the defence of our pious Nation. "

He always loved the pigs when he was serving pigs. A pig came near Pujari Dayashankar. After putting his hand on the pig he said-

"I love it too much..."

The Brahmis were surprised to see the Priest Dayashankar 's hand placed on the pig and took the last breath of his life. Markandey Agnihotri cried-

"The disaster has happened. The priest Dayashankar has donated a pig in the place of a cow."

****

India's Soft Power in International Organizations: UNESCO, WHO, and Beyond

-Dr. Arvind Verma
HOD, Department of Political Science
Ram Krishna College, Madhubani

Abstract
Power is the measure of influence exerted by nations over other nations. Power falls on the spectrum from hard to soft power. Soft power is the ability of a nation to exert control by political, moral, cultural, or subtle economic means. In Diplomacy or International relations Soft Power a key strategy described by Joseph Nye in the original description of the increasing influence of the Nation. Hard and soft power exists along the same spectrum of competition and conflict to persuasion and attraction. The future world faces many issues that could result in high tensions, including global warming, outer space and cyberspace. Soft power seems more likely to solve future geopolitical problems, whereas military force would be inefficient or insufficient.

Key Words – Soft Power, Hard Power, Geopolitics, Global Warming, Cultural Diplomacy

Introduction

Power is the measure of influence exerted by nations over nations. Power falls on the spectrum form hard to soft power. Soft power refers to ability to achieve goals by attraction through political moral or cultural influence; and, at times, by subtle economic means. There is no physical enforcement on other nations, but as a consequence of an increasingly globalised world, we trade and enjoy goods and services from other countries.

The notion of soft power, which is associated with the work of Harvard Political Scientist Joseph Nye, describe as "the ability to fascinate to our side without constrain". In 1990 Nye coined this word in their article published in the journal Foreign Policy. Nye contrasted this "co-optive power," which occurs when one country gets other countries to want what it wants," with "the hard or command power of ordering others to do what it wants."[1] Joseph Nye suggested three kye sources for a country's soft power.

- Culture – Participatory culture is attractive to others.
- Political Values – When it comes down to them at home and abroad.
- Foreign Policies – When world seen as legitimate and having moral authority. [2]

Let we find the basic hypotheses of Hard power, is domination over nation by nation. Power in International relations has traditionally been understood in the context of military and economic might. It is knowing as hard power which is quantifiable for nations. Hard power is deployed in the form of coercion by using force, the threat of force, economic sanctions and much more things. In 1948 Hans Morgenthau presented classical realist approach in his book *Politics Among Nations*. In this work, Morgenthau maintained that politics is governed by distinct immutable laws of nature and that states could deduce rational and objectively correct actions from an understanding of these laws. Central to Morgenthau's theory was the concept of power as the dominant goal in international politics and the definition of national interest in terms of power.

In the 21st century we see that soft power appears to be creating a different kind of relationship between different countries of the world. After the end of the second world war, a different kind of power monism was prevailing in the world, as a result of which a bipolar world was being formed.

During the world war, many international organizations were formed to stop the dark age of the world and to establish peace between different nations. For this, different countries got connected with each other through bilateral and multilateral agreements. The decade from 1970 to 1980 is known as the decade of nuclear power in the world, when different countries of the world like America, Soviet Union, France, Britain, China had P5 UN permanent member with nuclear weapons, while on the other hand, countries like India, Pakistan and Isarel were in a race to acquire nuclear weapons to strengthen the security policy in their hemisphere. At the end of cold war or after the collapse of Soviet Union, globalization emerged in the world which broken the boundaries between different countries and stated increasing people contact. Now the concept of soft power is developing very fast among the countries of the world. Different countries are getting connected culturally and, in this context, issues like cinema, cricket, yoga, tourism and diaspora have deepened the relation between

the countries.

India's soft power tools

Soft power has been a major tool of diplomacy in India since ancient times and we have seen many examples of its use in history. India's first Prime Minister Pt. Jawaharlal Nehru believed that India was bound to play a growing and beneficial role in world affairs. He developed a diplomacy that was not supported by the military and economic factors of hard power, which was known in the world as Non – alignment. The main reason for this was that he and the entire country were proud of Gandhi's path of non-violence, through which we had achieved independence. Former prime minister of India Inder Kumar Gujral, as foreign minister in 1996 has propounded the 'Gujral Doctrine' which is considered a major example of 'soft power' in India's foreign policy. Today, many things like Bollywood, Sufi music and Yoga, which are part of Indian culture, have reached different countries of the world. India's spirituality, yoga, philosophy, religion along with non – violence, democratic ideas etc, have also attracted the global community. India 'Soft Power' diplomacy includes: Ayurveda, Buddhism, Cricket, Indian diaspora, Bollywood, Indian food and Gandhian ideals etc. [3]

Importance of International organizations in global diplomacy

"More than ever before in human history, we share a common destiny. We can master it only if we face it together. And that is why we have the United Nations." (Former Secretary-General Kofi Annan). These words are of the former secretary General of the United Nations, who told that world about the usefulness of international organizations and that these organizations play an important role in maintaining international peace and stability in country at economic, social and political levels. International organizations draw attention to the relationship between the structure and the agency, as well as the construction of state and institutional interests. The role of international organizations is to uphold their carefully constructed values and ideologies to state, determining their behaviour.[5]

International organizations now play a crucial role in global diplomacy in the 21st century by helping nations collaborate on shared issues and address global challenges. They can help with setting the international agenda in world politics, and mediating political negotiations. Environmental issues, countering terrorism, atomic energy, sustainable development, climate change, decolonization, disarmament, poverty, gender equality, human rights, international migration some are the relevance issues on which various types of international organizations of the world are working.[6]

UNESCO (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization)

UNESCO is a specialized agency of the United Nation. UNESCO strengthens international cooperation among nations for peace and security in the world through education, art, science and culture. UNESCO was founded in 1945 which is governed by the general conference composed of member state and associate members, which meets biannually to set the agency's programs and budget. UNESCO pursues this objective through five major programme areas: education, natural sciences social sciences, culture and communication / information. UNESCO sponsors projects that improve literacy, provide technical training and education, advance science, protect independent media and press freedom, preserve regional and cultural history and promote cultural diversity. UNESCO world heritage sites is a site recognized by UNESCO as having a distinctive cultural or physical significance and which is considered of outstanding value to humanity.

India and UNESCO

UNESCO is the United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization. It seeks to build peace through international corporation in Education, the Science and Culture. India has been a member of the UNESCO since its inception in 1946. UNESCO constitution requires that each member state should have a principal body that shall work with the organization. Thus, in India Indian National Commission for Cooperation with UNESCO (INCCU) was commissioned. India has served as a member of the ICH Committee twice from 2006 to 2010 and from 2024 to 2018. Intangible cultural heritage is the practice, expressions, knowledge and skills that communities, group and sometimes individuals recognise as part of their cultural heritage. In India oral traditions, performing arts, social practices, rituals and festive events kept happening from time to time. India has been elected to the intergovernmental committee of UNESCO's 2003 convention. UNESCO Madanjeet Singh prize for the promotion of tolerance and non-violence and UNESCO Kalinga prize for the popularization of science. India makes huge contribution to the organisation in the form of funds every year. A UNESCO category 1 Institute dedicated to education

for peace and sustainable development was established in 2012 and is called the Mahatma Gandhi Institute of Education for Peace and Sustainable Development (MGIEP). The UNESCO has played an important role in the development of human rights education in India.[7] It encourages education among children, because it believes in education being a basic human right. It has provided assistance and internation cooperation among artists, scientists and scholars in India. India Collaborates on scientific projects, contributing to UNESCO's mission of promoting scientific cooperation and knowledge-sharing. India has participated in many UNESCO programs and will continue to do so as India considers the world as a global village. It follows the concept of *Vasudhaiva Kutumbakam* and see the whole as one family.

WHO (World Health Organization)

World Health Organization, is a specialized agency for Health was founded in 1948. WHO has 194-member state, 150 offices and 6 regional offices. It is an inter-governmental organization and work in collaboration with its member states usually through the ministers of health. It provides leadership on global health matters, shaping the health research agenda, setting norms and standards, articulating evidence-based policy options, providing technical support to countries and monitoring and assessing health trends. On 7th April, 1948 it began functioning a date now being celebrated every year as World Health Day.

The objectives of this organization are to established and maintain effective collaboration with the United Nations, specialized agencies, governmental health administration and professional groups. It provides assistance to the governments, upon request in strengthening health services and promote cooperation among scientific and professional groups which contribute to the advancement of health.

In Geneva, Switzerland has a headquarter of WHO. World Health Assembly (WHA) is WHO's decision-making body attended by delegation's form all of WHO's member states. A specific health agenda prepared by the executive board remains the focus of this assembly. Since the start of the Covid-19 pandemic, 2020's assembly is the first in-person assembly.

The country offices are WHO's primary contact points with governments. They provide technical support on health matters, share relevant global standards and guidelines, and relay government request and requirements to other levels of WHO. They provide advice and guidance on public health to other UN agency offices in country. WHO believes that immunization, which prevents the six major communicable diseases of childhood – diphtheria, measles, poliomyelitis, tetanus, tuberculosis and whooping cough should be available to all children who need it. WHO is leading worldwide campaign to provide effective immunization for all children in cooperation with the United Nations Children's Fund (UNICEF). The world health organisation (WHO) characterised Covid -19 as a pandemic in 2021. According to the WHO, a pandemic is declared when a new disease for which people do not have immunity spreads around the world beyond expectations. On the other hand, an epidemic is a large outbreak, one that spreads among a population or region. It is less severe than pandemic due to a limited area of spread.[8]

INDIA and WHO

India became a member of WHO on 12 January 1948. The regional office of WHO for South East Asia is located in New Delhi. The first session of the WHO regional committee for South East Asia was held on 4-5 October 1948 in the office of the Indian Minister of Health. It was inaugurated by Pandit Jawaharlal Nehru, Prime Minister of India was addressed by the WHO Director-General, Dr Brock Chisholm. India is a Member State of the WHO South East Asia Region. India has been helped from time to time by the World Health Organization. In 1967 the total number of smallpox cases recorded in India accounted for nearly 65 % of all cases in the world. Of these 26225 cases died giving a grim picture of the relentless fight that lay ahead. In 1967 the WHO launched the intensified Smallpox Eradication Programme. India began the battel against the disease in response to the WHO's 1988 Global Polio Eradication Initiative with financial and technical help form World Bank. The Indian government in partnership with UNICEF, the World Health Organization (WHO), the Bill and Melinda Gates Foundation, Rotary international and the Centres for disease control and prevention contributed to almost universal awareness of the need to vaccinate all children under five against polio. As a result of these efforts, India was removed form the list endemic countries in 2014. The Prime minister of India Narendra Modi addressed the Second Global Covid Virtual Summit of the World Health Organisation (WHO), where he emphasized WHO reforms. India suggests that strengthening the public health emergency of International Concern

(PHEIC) declaration process. India suggest the PHEIC implies a situation that is-

Serious, sudden, unusual or unexpected.

Carries implication for public health beyond the affected state's national border

May require immediate international action.

Now after COVID-19 India can use global health leadership to counterbalance China's growing regional and global influence. A famous Hindu philosophical tenet from sacred Sanskrit scriptures, *Vasudhaiva Kutumbakam*, articulates the concept of the world as one family and informs India's global outlook. The theme of India's G-20 presidency in 2023 "One Earth, One Family, One Future" encapsulates Hindu philosophy's emphasis on the importance of every form of life on earth. During the pandemic, India provided vaccines to nearly 100 countries through its VACCINE MAITRI program and participated in multilateral initiatives, including the COVID-10 vaccines global access (COVAX) facility. The Covid-19 crisis has provided India with an opportunity to transform its leadership in global health. India seeks to become a global, nonaligned power. It has used diplomatic platforms, including the G20 and climate change negotiations at the twenty-eighth conference of the parties (COP 28), to promote a development agenda for low-and middle-income countries that focuses on global health issues, such as pandemic preparedness and climate change adaptation. The approach resonates with India's long-standing support for fellow developing nations, but also represents a shift because India can use global health leadership to counterbalance China's growing regional and global influence.

Now India's ascent as a global leader economically and diplomatically is increasingly evident. Its economy, already the world's fifth largest is projected to become the third largest by the end of the decade with a GDP of more than $5 trillion. Its nonalignment diplomacy has strengthened its relationships with global power- including the United States, Japan and Russia and has been recognized in Chinese media as an effective strategy. India is now well position to play a transformative role in shaping the future of global health by strengthening global health governance, sharing its expertise in pharmaceutical and health systems innovation and research and making countries more climate resilient. Such outcomes would bring the world closer to being one family.

Byond UNESCO and WHO

India has influenced other organization of the world through its soft tool diplomacy. Indian media and its freedom are a challenge for those countries where the fourth pillar of democracy is ruined in the guise of democratic values. Parliamentary democracy has been adopted in India in which inclusive policy is given prominence. Today, instead of excluded India, inclusive India is talked about by the leaders of other countries of the world. Byond UNESCO and WHO India's soft power diplomacy play a crucial role to establishing India as a global leader.

United Nations (UN)

India has been a primary member of the United Nations and a significant contributor to UN peacekeeping missions and advocates for reforms in the UN security Council to reflect contemporary global realities.

World Trade Organization (WTO)

India was a founding member of GATT and due to its high stakes, it has been one of the most active members of the WTO since its creation in 1995. More so after 1991 when the Indian economy underwent a reform, form being an inward-looking economy to liberalization, privatization and globalization. India is an active participant in WTO negotiations, advocating for the interests of developing countries and seeking fair trade practices. This synchronization between opening of global economies is benefited for India. Rise in exports, growth in exports of software services, employment generation, poverty alleviation are some benefits. Now after 2014 Modi era the national actors resolve the persistent dichotomy of choosing between national priorities and international commitments. *Atmanirbhar Bharat* should be accompanied with additional focus comparative advantage areas like the labour-intensive sectors.[9]

G-20

India as a member of the G-20, engages in discussions on global economic governance, climate change, and sustainable development. India has held the presidency of the G-20 form December 1, 2022 to November 30, 2023. The G-20 is an internation forum for governments and central bank governors to cooperate on economic issues and shape global governance. India's presidency theme is *Vasudhaiva Kutumbakam* or "One earth. One family. One future." India's leadership has focused on integrating social outcomes with economic growth and environmental development, while emphasizing inclusivity and sustainability. India's spirituality, yoga, philosophy, religion along with non – violence, democratic ideas, Ayurveda, Buddhism, Cricket, Indian diaspora, Bollywood,

Indian food and Gandhian ideals are such soft power tools which India is closely connected with the countries of G20. In future the relation between G20 and India continuously raises international security. Global warming, climate security and other humanitarian issues from this platform.

BRICS

BRIC was an acronym for the four emerging countries that are expected to be the world's major providers of manufactured products, services and raw resources by the year 2050: Brazil, Russia, India and China. South Africa became a member of the BRICS groups in 2010 and the acronym BRICS now refer to the entire organisation. India is considered as a strong voice in the BRICS and the UN, speaking out against policies or actions that may harm the interests of any member. For trade to thrive, the BRICS must be peaceful, which is why peacekeeping in trade regions such as the Mediterranean, North Africa and the India Ocean is critical. India is closely linked with BRICS nations through Bollywood, Cricket, Yoga, Indian Cuisine, Indian Culture, Buddhism, and the Indian diaspora, and relation between the countries are becoming increasingly close.

Conclusion

India's soft power is evident through its cultural diplomacy, contributions to global health, educational initiatives, and active participation in international organizations, enhancing its influence on the global stage. India's role in international organizations extends beyond UNESCO and WHO. As a member or United Nations, G20, BRICS and other international forums, India advocates for sustainable development, Climate action and equitable economic growth. India's leadership in the International solar alliance (ISA) and the coalition for disaster resilient infrastructure (CDRI) are prime example of its proactive stance in global environmental and infrastructural.

References

1)Nye, Joseph S. "Soft Power," *Foreign Policy* 80 (Autumn) (1990): 153–171.

2)Nye, Joseph S. *Soft Power: The Means to Success in World Politics.* New York: Public Affairs, 2004.

3)Pant, Harsh V. "India's Soft-Power Strategy." *Outlook*, August 31, 2015. Accessed May 3, 2016. http://outlookindia.com/website/story/indias-soft-power-strategy/295206.

4)Ramachandran, Sudha. "India's soft power potential." *The Diplomat*, May 29, 2015. Accessed May 2, 2016. http://thediplomat.com/2015/05/indias-soft-power-potential.

5)Blarel, Nicolas. "India: the next superpower? — India's soft power: from potential to reality?" In *IDEAS reports- special reports*, edited by Kitchen, Nicholas. London: LSE, 2012. Accessed August 2

6)Hymans, Jacques E.C. "India's Soft Power and Vulnerability." *India Review* 8(3) (2009): 234-265.

7)Sivakumar, D & Ganai, Towseef. UNESCO's World Heritage Sites in India. *Third Concept* (Jan 2017). 20-32.

8)https://d19k0hz679a7ts.cloudfront.net/value_added_material/efc74-india-and-world-trade-organization.pdf.

9)https://www.india-briefing.com/doing-business-guide/india/trade-relationships/india-s-trade-and-development-with-brics-analysis-and-opportunities.

****

Role of tourism development schemes like VCSGPSY in tourism development in the state of Uttarakhand

-Rohit Joshi,
Research Scholar,
Department of Commerce,
DSB Campus,
Kumaun University, Nainital

Prof. B. D. Kavidayal ,
Ex. Dean & Head ,
Department of Commerce,
DSB Campus,
Kumaun University, Nainital

Abstract

Tourism is an industry that has helped in creation of wealth for masses directly and indirectly throughout the world. Uttarakhand being a tourist hotspot is enviably dependent on tourism related activities for generation of income and employment in the state. In the current paper an attempt was made to critically evaluate of one such tourism development scheme (VCSGPSY). The study was based on the list of 598 beneficiaries of the Nainital district of the Kumaun region, to which subsidy under various heads under the tourism development scheme were provided on the loan taken by them. The collected data is tabulated, frequency tables are prepared and charts are drawn and presented. The following were the important observations; the scheme has helped in employment generation but is concentrated towards disbursement of vehicular loans only. The study also reflects that major beneficiaries are of the upper caste and majority of them are male applicants. Further the distribution of loans is observed to be done more in urban blocks. Reverse migration can be assured by making the scheme focused more on skilled workers working in tourism sector outside the state.

Keywords: Tourism development, Employment, Subsidy, Reverse Migration

Introduction

Tourism in Uttarakhand has played a vital role in shaping up the landscape of the state and has also helped the state in attaining widespread growth and economic development for all. These have been many efforts made from time to time by the government to give a boost to the tourism industry in the state. One such attempt to promote tourism in the state was done through introduction of the Veer Chandra Singh Garhwali Paryatan Swarojgar Yojna with the objective of providing employment opportunities to the youth for development of various tourism facilities in the state. Under the scheme various opportunities for development of Hotels, Guest houses, Tourist Information Centres, & purchase of Vehicle, Trek equipment etc. were given by the government. Loans were given to the beneficiaries under various heads along with a subsidy of 20%, 25% and 33% depending on the times and the head that one applied for.

Objective of the study

- To evaluate the level of quality, accessibility, and sustainability of the infrastructure and amenities for tourism created under the scheme.
- To provide the detailed analysis of the benefit derived under the scheme
- To know about employment generation done under the scheme
- To analyse the disbursement of loan under various heads under the scheme

Review of Literature

Tourism has been one of the most fascinating topics for the researcher's worldwide. It contributes not only in employment generation but also helps in economic development through empowerment of man and resources in the areas that tourism activities takes

place. Tourism has long been recognized as a key driver of economic growth, particularly in developing countries (Ardahaey, 2011). The tourism industry can create new jobs, both directly and indirectly, while also generating foreign exchange income and increasing tax revenues. Additionally, tourism can lead to the development of infrastructure and have positive spill over effects on other sectors of the economy (Castro et al., 2020).

However, the relationship between tourism and economic growth is not always straightforward. Empirical studies have found inconsistent results, with some studies demonstrating a positive impact of tourism on growth, while others have found either a negative or unclear effect (Castro et al., 2020). One review of 346 papers found that around 69% confirmed a positive impact, 9% a negative impact, and 11% a weak or unclear impact, with the results varying across different income groups (Castro et al., 2020).

Some of the potential negative economic impacts of tourism development include the crowding out of local businesses, the leakage of tourism-related expenditure out of the host country, the high costs of tourism-related infrastructure, and the instability of tourism-related employment (Dwyer et al., 2009). Furthermore, tourism can sometimes lead to inflation and the prioritization of tourism over other economic activities (Ardahaey, 2011) (Dwyer et al., 2009). Tourism is recognized as a significant driver of economic growth and development, with its ability to generate employment opportunities and alleviate poverty (Odhiambo & Nyasha, 2019). According to the United Nations World Tourism Organization, tourism can account for up to 40% of the GDP and jobs in the least developed countries and more than 70% of their total service trade revenue (Wang & Liu, 2020).

The development of the tourism industry can be particularly important for less developed countries facing high unemployment rates, foreign exchange resource constraints, and a single-product economy (Godara et al., 2020). Tourism can create job opportunities for both unskilled and skilled workers, with estimates suggesting that every six tourists entering a country creates one job opportunity (Godara et al., 2020).

In India, for instance, it is estimated that every one million dollars invested in tourism creates 47.5 jobs directly and around 85–90 jobs indirectly (Agrawal, 2016). Tourism is not only a growth engine but also an employment generator, with the capacity to create large-scale employment both directly and indirectly through the multiplier effect (Agrawal, 2016).

Moreover, tourism development is seen as a key to many countries' economies and livelihoods, as well as a poverty alleviation agent (Odhiambo & Nyasha, 2019). Tourism features in three of the 17 Sustainable Development Goals, which set the tone for global development until 2030, underscoring its importance in promoting economic growth, decent employment, and sustainable production and consumption (Odhiambo & Nyasha, 2019).

Given the significance of tourism for economic and social development, many developing countries have utilized their resource advantages to enhance tourism's competitiveness and boost economic growth (Wang & Liu, 2020). Tourism development has the potential to translate to poverty reduction through the promotion of sustainable economic growth and development, decent employment, and the sustainable use of natural resources (Odhiambo & Nyasha, 2019).

The tourism industry in India has experienced signif-

icant growth and development over the past few decades, becoming a crucial driver of the country's economic and social progress. Research on the dynamics of tourism in India has gained considerable attention from both academics and practitioners, with a growing body of literature examining various aspects of the industry. One such study is a comprehensive review of Indian tourism and hospitality research publications, which analysed 182 academic papers published between 1981 and 2012 (Singh, 2016). The findings of this review indicate that research themes have become increasingly diversified, reflecting the evolving nature of the tourism industry in India. The review also notes the continuous increase in research productivity of universities and institutes located within India, underscoring the growing importance of the topic.

The rapid growth of the tourism sector in India can be attributed to a range of factors, including the country's rich cultural heritage, diverse natural landscapes, and expanding middle-class population with an increasing disposable income (Singh, 2016). The potential for further tourism development in India has also been recognized, with projections suggesting that the country will become the third-fastest-growing tourism nation by 2023 (Kaur & Kansra, 2018).

Nestled in the majestic Himalayan region of northern India, the state of Uttarakhand has long been a beloved destination for both domestic and international travellers, who are drawn to its breath-taking natural landscapes, charming hill towns, and rich cultural heritage. In recent years, the Uttarakhand government has implemented various tourism development schemes in an effort to harness the state's immense potential as a tourist hub and drive sustainable economic growth. However, the development of the tourism industry in Uttarakhand has not been without its challenges.

A comprehensive analysis of the existing literature reveals both the problems and prospects of tourism development in Uttarakhand. Researchers have highlighted the state's immense potential for tourism, citing its natural attractions such as the Himalayas, valleys, lakes, and wildlife sanctuaries (Chandra & Kumar, 2021). Furthermore, the state's cultural and spiritual offerings, including the four world-famous shrines, traditional lifestyles, and local products, have been identified as significant tourism draws (Chandra & Kumar, 2021).

Despite this potential, the tourism industry in Uttarakhand faces a range of challenges, as identified by various studies. These include infrastructural deficiencies, environmental degradation, lack of skilled workforce, and unplanned development (Joveriya & Mariya, 2019). The overcrowding of popular tourist destinations and the resulting strain on resources and amenities have also been noted as concerns (Joveriya & Mariya, 2019).

The literature on tourism development in Uttarakhand highlights the state's immense potential for tourism as a growing industry, there is also a need to adopt a comprehensive and sustainable approach to address the challenges facing the industry. Many researches have been carried out highlighting the importance and development of tourism in India and Uttarakhand, the researches have also focused on the potential of tourism sector in the state, the role of tourism development in employment generation, the problem caused to the people by over tourism, providing suggesting & solutions to it. But no attempt has been made specifically in evaluating of tourism development schemes that were adopted by the government for tourism expansion in the state.

The current study is an attempt in providing the insights on evaluating one such tourism development scheme (VCSGPSY) in creations of employment and expansion of tourism resources in the state.

Data Analysis

The data presented here is based on the secondary data collected from various district tourism development offices. For the study the data of Nainital district is taken for the analysis. The study period in taken from the inception of the scheme in 2002-03 till 2017-18. There were around 598 beneficiaries of the scheme, who have been granted loan under various heads for development of tourism resources. The major finding of the data collected are tabulated and further presented with the help of frequency tables, Graphs & Pie-Charts.

Table 1 Table showing the no of beneficiaries block wise and average plan cost and Grant

NAME OF THE BLOCKS	NO OF BENEFICIARIES	AVERAGE OF PLAN COSTS	AVERAGE OF GRANT
BHIMTAL	243	655146	142309
HALDWANI	150	1158493	249445
RAMNAGAR	72	865696	181219
BETALGHAT	47	759353	187498
RAMGARH	37	725379	158682
KOTABAGH	21	1223343	285427
DHARI	20	1094740	240556
OKLKANDA	8	832602	175719
GRAND TOTAL	**598**	**856319**	**187191**

The above table shows that maximum beneficiaries of the scheme 243 are from the Bhimtal block followed up by Haldwani & Ramnagar block, which are having greater urban settelments. The rural block only have a handful of beneficiaries Betalghat 47, Ramgarh has 37, kotabagh 21, Dhari 20 and Oklkanda just have 8 beneficiaries. So it can be concluded that the scheme is much more popular in the urban pockets and not much awareness about the scheme has reached to the rural areas. Further it can also be observed that the Average grant received under the scheme is maximum in Kotabagh & Haldwani block and the lowest is in the Ramgarh and Bhimtal block. This can be attributed to the large number of beneficiaries applying for the loan from the Bhimtal district under diversified schemes involving lower project cost and only 62% applying for loans under motel and vehicular loan involving higher project cost, whereas the out of 21 beneficiaries in Kotabagh district 90% have applied under the motel and vehicular loan.

Table 2: *Table showing caste wise average distribution of loans and grants*

Caste Category	No of beneficiaries	Percentage of Total	Average of Plan costs	Average of Grant
General (Ex-Army)	**1**	0.17%	**4000000**	**1000000**
Motel	1	0.17%	4000000	1000000
General (female)	**17**	2.84%	**1225971**	**336654**
Motel	11	1.84%	1488773	430011
Souvenir Shop	2	0.33%	100000	20000
Vehicle	3	0.50%	755000	151000
Yoga Meditation Centre	1	0.17%	2000000	500000
OBC (female)	**4**	0.67%	**899706**	**219302**
Camping Site	1	0.17%	450000	90000
Motel	2	0.33%	1231250	307813
Souvenir Shop	1	0.17%	686325	171581
General	**435**	72.74%	**920356**	**199721**
Adventure Equipment	2	0.33%	285909	71477
Adventure Boat	1	0.17%	750000	150000
Adventure Equipment	1	0.17%	1188000	392040
Adventure Tourism	1	0.17%	600000	150000
Boat Purchase	5	0.84%	88345	23625
Camel Purchase	1	0.17%	100000	20000
Camping Site	4	0.67%	1290500	239038
Fast Food Centre	11	1.84%	674182	149155
Meditation Centre	3	0.50%	1833333	458333
Motel	108	18.06%	1682119	379254
Motor Garage	4	0.67%	843750	207188
Motor Work Shop	1	0.17%	1000000	250000
Motor workshop	3	0.50%	2912500	316667
Paraglider purchasing	1	0.17%	300000	75000
PCO	1	0.17%	50000	10000
PCO Construction	1	0.17%	250000	62500
PCO Restaurant	5	0.84%	453900	90780
Photography Equipment	3	0.50%	192660	48165
Raft Purchase	5	0.84%	373870	106277
Restaurant	28	4.68%	1087920	223011
Souvenir	1	0.17%	300000	99000
Souvenir Shop	10	1.67%	363963	83771
Vehicle	235	39.30%	613302	129732
ST	**6**	1.00%	**1029419**	**192977**
Adventure Equipment	1	0.17%	1150000	287500
Motel	2	0.33%	1256250	314063
Vehicle	3	0.50%	838005	80746
SC	**35**	5.85%	**812887**	**156988**
Fast Food Centre	1	0.17%	225000	45000
Motel	5	0.84%	3065000	527831
Motor workshop	1	0.17%	500000	41250
Photography Equipment	7	1.17%	219000	57036
Vehicle	21	3.51%	517525	112854

OBC	**100**	16.72%	**486561**	**108087**
Amusement Park	1	0.17%	2000000	500000
Boat Purchase	4	0.67%	46450	11613
Bus Purchase	1	0.17%	3500000	875000
Fast Food Centre	3	0.50%	283333	59167
Horse Purchase	19	3.18%	54474	13618
Motel	6	1.00%	1075000	335833
PCO Restaurant	1	0.17%	200000	40000
Photography Equipment	8	1.34%	78750	19688
Restaurant	1	0.17%	1000000	250000
Souvenir Shop	3	0.50%	166667	41667
Vehicle	53	8.86%	609533	120067
Grand Total	**598**	100.00%	**856319**	**187191**

From the above table it is evident that maximum of the loan disbursement is done to the beneficiaries belonging to the General Caste i.e. 76% of the total loan given. Loan given to OBC's is around 17%, followed by 6% to SC and 1% to the ST category. Which shows a clear caste divide among the recipients of the loan. Also it is evident that only 3.51% of the loan has been given to the women entrepreneurs showing a very low women entrepreneurial participation under the scheme. Among general category the most preferred loan is Vehicular loan, followed by Motel and Restaurant. Among SC, ST and OBC too vehicular loan is the highest a negligible amount of loans have been applied under other heads. So the most loans disbursed under the Nainital district is under the vehicular head covering over 52.67% of the total loans given. The lower amount of loans taken by the OBC, SC & ST's under various other heads shows lower awareness and risk taking capacity of these entrepreneurs. General category applicants have applied for the most diverse heads showing higher level of awareness among them in comparison to others. As the loan applicants are less under other heads and most loan disbursed are for Vehicles, Motels & Restaurant, the government needs to promote the other heads covered under the scheme.

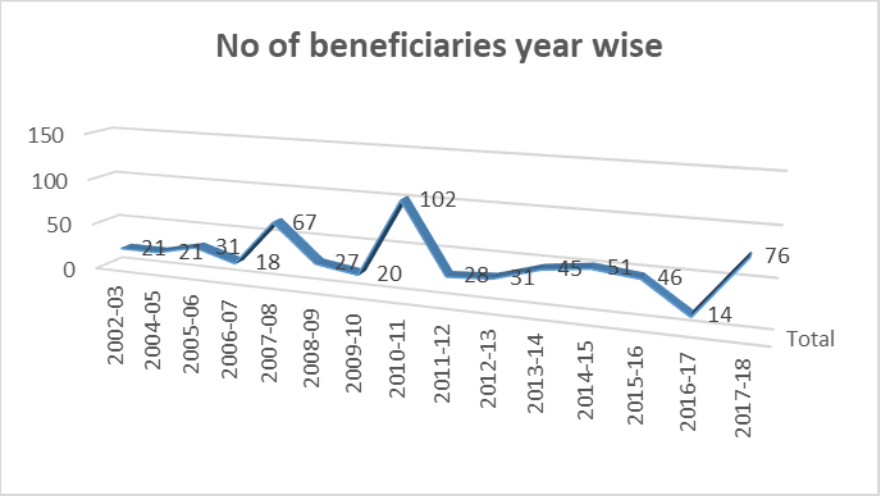

The graph made using the frequency of loans taken in various years show a moderate trend of loans taken in various years, the peak applicants 102 were in the year 2010-11 and a minimum of 14 loan applications were received in the year 2016-17. The trend is increasing in the coming year shows a positive sign and more and more entrepreneurs can be attracted through promotion of schemes at the school and college level by creating awareness among the masses.

Figure 2: *Pie-Chart showing the no of loans under various heads*

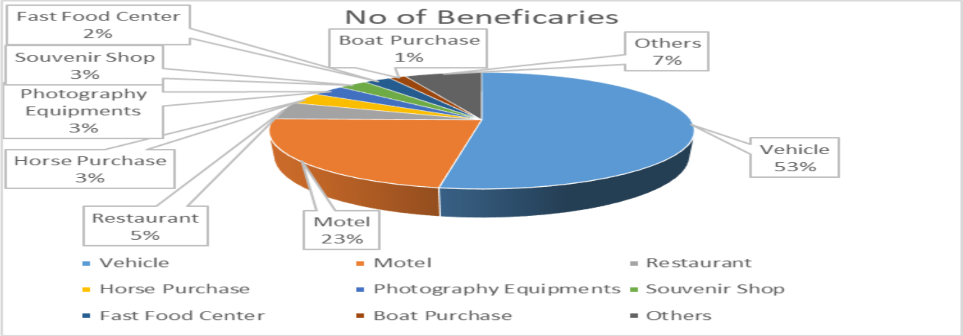

As the above figure demonstrate; most loans 53% have been distributed under the Vehicular loan head, followed by Motel 23%, Restaurant 5%, also a 3% distribution under Horse Purchase, Photography Equipment and Souvenir Shop each is being observed, Loans taken under the Fast Food Centres and Boat Purchases are 2% and 1% respectively. Loans under various other miscellaneous heads were 7%. It is clear from the above description that the maximum loans taken are under Vehicular and Motel heads contribution of other heads a very negligible and can see improvements only if there is either restrictions of applicants under the vehicular head or widespread promotion of all other heads are insured through means of print, electronic and internet media.

Table 3: ANOVA table showing the difference between various Blocks

Anova: Single Factor

SUMMARY

Groups	*Count*	*Sum*	*Average*	*Variance*
Betalghat	47	8812391	187497.6809	11831849676
Bhimtal	243	34580991	142308.6049	21541062249
Dhari	20	4811128	240556.4	110354647177.83
Haldwani	150	37416757	249445.0467	43472004316
Kotabagh	21	5993957	285426.5238	60393048440
Oklkanda	8	1405751	175718.875	15349418507
Ramgarh	37	5871232	158681.9459	10396358698
Ramnagar	72	13047751	181218.7639	33303113004

ANOVA

Source of Variation	*SS*	*df*	*MS*	*F*	*P-value*	*F crit*
Between Groups	1364150902248.18	7	194878700321.17	6.253801728	4.34E-07	2.025085
Within Groups	18385365923406.80	590	31161637158			
Total	19749516825654.90	597				

Interpretation: The summary table provides descriptive statistics for each group (location):

- **Betalghat**: 47 observations, sum = 8,812,391, average = 187,497.68, variance = 11,831,849,676
- **Bhimtal**: 243 observations, sum = 34,580,991, average = 142,308.60, variance = 21,541,062,249
- **Dhari**: 20 observations, sum = 4,811,128, average = 240,556.4, variance = 110,355,000,000
- **Haldwani**: 150 observations, sum = 37,416,757, average = 249,445.05, variance = 43,472,004,316
- **Kotabagh**: 21 observations, sum = 5,993,957, average = 285,426.52, variance = 60,393,048,440
- **Oklkanda**: 8 observations, sum = 1,405,751, average = 175,718.88, variance = 15,349,418,507
- **Ramgarh**: 37 observations, sum = 5,871,232, average = 158,681.95, variance = 10,396,358,698

Ramnagar: 72 observations, sum = 13,047,751, average = 181,218.76, variance = 33,303,113,004

ANOVA Table

The ANOVA table provides the results of the analysis of variance:

- **Source of Variation**:

o **Between Groups**:

✦ Sum of Squares (SS): 1,364,150,902,248.18

✦ Degrees of Freedom (df): 7

✦ Mean Square (MS): 194,878,700,321.17

✦ F-value: 6.253801728

✦ P-value: 4.34231E-07

✦ F critical value (F crit): 2.025084588

✦ **Within Groups**:

✦ Sum of Squares (SS): 18,385,365,923,406.80

✦ Degrees of Freedom (df): 590

✦ Mean Square (MS): 31,161,637,158

✦ **Total**:

✦ Sum of Squares (SS): 19,749,516,825,654.90

Degrees of Freedom (df): 597

Interpretation

1. **Between Groups Analysis**:

o The F-value (6.253801728) is much greater than the critical value (2.025084588).

o The P-value (4.34231E-07) is significantly lower than the common significance level (0.05).

o **Within Groups Analysis**:

o The within-group variation is captured by the sum of squares (SS) within groups, which is much larger compared to between groups.

o **Statistical Significance**:

o Since the F-value is greater than the F critical value and the P-value is less than 0.05, we reject the null hypothesis.

This indicates that there are statistically significant differences between the means of the different groups (locations).

The ANOVA test indicates that at least one of the locations has a significantly different average value compared to the others. This suggests that the factor being studied varies significantly across these locations, and further post-hoc tests may be required to identify which specific groups differ from each other.

Findings and Suggestions

The scheme under consideration has generated employment for around 598 beneficiaries over a period of 15 years taking it to the average of around 40 entrepreneurs each year. As tourism is a field dependent on various ancillary services so providing loans given to these 40 entrepreneurs will help in further enhancing scope of employment generation and help the youth by providing jobs in the unorganised sector. As giving loans to more and more applicants can have a multiplier effect on employment generation. So, the government should target to disburse loans to at least 100 entrepreneurs every year.

The loan disbursement is skewed towards the general caste applicants as the maximum amount of loan given under the schemes are given to the general caste, The loans given under the schemes can be a good opportunities for social empowerment, government can make reservations for SC, ST & OBC so that more and more benefit of the schemes can be given to the masses setting at the lower strata of the society.

The loans distributed are majorly given to the Male entrepreneurs, the quantum of loan given to the Women entrepreneurs are very low i.e. less than 5% of the total loans availed. Reservations for the women's under the scheme can ensure better women participation which will help in providing empowerment and better opportunities for the women.

It was also observed that the loan were not uniformly distributed among all the blocks, the urban blocks of Bhimtal and Haldwani where cities like Nainital and Haldwani are situated has the higher concentration of beneficiaries, the rural blocks have lower number of beneficiaries. Although, for encouraging the rural population, greater subsidies of 33% is given on non-vehicular loans. More such efforts will be required for increasing community participations of the blocks were the number is beneficiaries is significantly low.

The loans given under the scheme is majorly concentrated on vehicular loans only, more than 50% loans availed by the beneficiaries in under only one head, rest of the heads do not attract higher number of applicants. To encourage more and more applicants to apply under the other heads 33% subsidy is given under the rural areas on non-vehicular head. The government can either further increase the subsidy or can put more promotional efforts to encourage the applicants towards applying under the other heads as well. This will help in diversification and ensure equitable development of all the tourism related resources.

There are so many skilled workers in the tourism sector who have migrated from the hill in search of jobs to big metro cities. A Drive to identify and attract such skilled workers serving outside the state can be launched by the Tourism department. It can help in providing them employment with in the state and can lead towards reverse migration to the hills, helping in curtailing migration from the state.

A one-way ANOVA was performed to test the difference between grants received under various blocks. The test showed that at least one of the block has significant difference in the amount of grants received under the scheme.

Conclusions

Tourism is a major contributor to the GDP of Uttarakhand state. The state is expected to higher inflow of tourist in the decade to come as the projects like the Char Dham Priyojana is expected to give a boost to the road and railway infrastructure in the state. With the upsurge that the tourism industry in expected to have after the completion of the project, there will be greater demand of backend tourism services in the state. So for creation of these tourism related activities schemes like VCSGPSY would be extremely beneficial. The loans granted under the schemes not only helps in creation of self-employment for the residents, but also helps in creation of new jobs for people living in the area under

with these benefits are received. The scheme has already helped in betterment of tourism related services in the state. But further efforts can be made for better administration of the loans disbursed and equitable distribution of loans and tourism resources among the applicants.

References

Ardahaey, F T. (2011, August 1). Economic Impacts of Tourism Industry. Canadian Center of Science and Education, 6(8). https://doi.org/10.5539/ijbm.v6n8p206

Castro, C., Ferreira, F A., & Nunes, P. (2020, November 20). Digital Technologies and Tourism as Drivers of Economic Growth in Europe and Central Asia. Springer Nature, 341-350. https://doi.org/10.1007/978-981-33-4260-6_30

Dwyer, L., Forsyth, P., & Dwyer, W. (2009, January 1). Tourism and Economic Development Three Tools of Analysis. Taylor & Francis, 34(3), 307-318. https://doi.org/10.1080/02508281.2009.11081605

Agrawal, V. (2016, January 1). A Review of Indian Tourism Industry with SWOT Analysis. OMICS Publishing Group, 05(01). https://doi.org/10.4172/2167-0269.1000196

Godara, R S., Fetrat, D J., & Nazari, A. (2020, March 30). Contribution of Tourism Industry in Indian Economy: an Analysis. , 8(6), 1994-2000. https://doi.org/10.35940/ijrte.f8091.038620

Odhiambo, N M., & Nyasha, S. (2019, January 1). Tourism development and poverty reduction in Kenya: a dynamic causal linkage. Inderscience Publishers, 9(3), 222-222. https://doi.org/10.1504/ijtp.2019.10026651

Wang, X., & Liu, D. (2020, March 17). The Coupling Coordination Relationship between Tourism Competitiveness and Economic Growth of Developing Countries. Multidisciplinary Digital Publishing Institute, 12(6), 2350-2350. https://doi.org/10.3390/su12062350

Kaur, T P., & Kansra, P. (2018, January 1). Tourism led economic growth in India: an application of vector error correction model. Inderscience Publishers, 21(4), 517-517. https://doi.org/10.1504/ijbg.2018.095771

Singh, R. (2016, January 1). The state of Indian tourism and hospitality research: A review and analysis of journal publications. Elsevier BV, 17, 90-99. https://doi.org/10.1016/j.tmp.2015.07.002

Chandra, P., & Kumar, J. (2021, March 1). Strategies for developing sustainable tourism business in the Indian Himalayan Region: Insights from Uttarakhand, the Northern Himalayan State of India. Elsevier BV, 19, 100546-100546. https://doi.org/10.1016/j.jdmm.2020.100546

Joveriya, J., & Mariya. (2019, July 1). Problems and prospects of tourism industry in Uttarakhand. , 1(1), 10-16. https://doi.org/10.22271/27067483.2019.v1.i1a.2

****

Uncovering The Secrets Of Clear Writing

Dr. Sushant Chaturvedi
Assistant Professor of English
Department of Applied Science and Humanities
Rajkiya Engineering College, Ambedkar Nagar
Uttar Pradesh

There are some things that stay with a person from the time of their birth but there are also things which comes on the basis of expertise as we grow, we learn and acquire those skills. One of them is clear writing. Clear writing is essential for effective communication. At its core, clarity in writing ensures that the intended message is easily understood by the reader. Achieving this requires attention to several key principles. Firstly, simplicity is crucial. Using plain language avoids unnecessary complexity that can obscure the message. George Orwell famously advised, "Never use a long word where a short one will do" (Orwell). By choosing simpler words, writers can prevent confusion and maintain reader engagement.

Secondly, organization is a vital component of clear writing. Logical structure and coherence guide readers through the text smoothly. Each paragraph should have a clear main idea, with supporting sentences that reinforce this idea. Transition words and phrases can further aid in maintaining flow and connecting thoughts effectively.

Thirdly, conciseness helps in avoiding redundancy and verbosity. Writers should aim to express their ideas in as few words as necessary. William Zinsser, in his book "On Writing Well," emphasizes that "Clutter is the disease of American writing" (Zinsser, 2006). By eliminating superfluous words, writers can enhance the impact of their message.

Clear writing means expressing your words in such a way that the other person can understand them clearly. Some people have the misapprehension that clear writing means no spelling or grammar mistakes, but it just simple means convey your words in certain way that the person in front can understand them comfortably and well. Let's go ahead and try to know more about it. Firstly let's know about do's and don'ts for clear writing:

Dos and Don'ts for Clear Writing:

Dos –

Use Simple Words: Simple words are easier to understand use it.

Compact Sentence: Make them short and clear.

Make it look real: Make sure it sounds so natural.

Remove nonessential figure of speech: Make it uncomplicated.

Define your point of view: Represent effectively what you are trying to say.

Don'ts –

Don't make paragraphs: Paragraphs makes it boring and divert your point of view so make it concise.

Avoid old fashioned style: Make it new and fancy.

Don't Assume: Start it from the basics and don't think like everyone must be know about it.

Foreign words: Try to minimise the use of foreign words.

Repeating your words: Don't repeat something it will make it unnecessary disturbing.

Composing strong sentences:

Sentences are the most crucial component of writing talents; when we utilize powerful, formal language, our work begins to look excellent and effective. The most crucial word in a sentence is the subject, which might refer to people, places, objects, or animals. The verb follows and describes the action; every sentence has an action, and the verb serves to define it.

Once we eliminate all grammatical errors and simple terms from each sentence, the tone, in which we want to convey our message in the formal way and in the formal way that tone defines it—becomes the most important factor. To improve the tone in our own way, we should avoid using long, complicated words and instead stick to the point. So this was the conclusion of all about composing strong sentences.

Crucial Components:

Make your sentences succinct and clear: Ten to twenty-five words would be simpler to understand than lengthy paragraphs. For this reason, you must write your sentences clearly and properly so that the person reading them finds them intriguing rather than boring.

Employ straightforward, basic language: You should be clear about your point of view and know what you are attempting to express before you speak. Writing clearly conveys your ideas as well; for maximum understanding, use

straightforward language.

Give your sentence more variation: If every line in your writing is just a series of straightforward assertions, it will become repetitive and dull after a while. Thus, to enhance interest, you might include questions, an exclamation point command, and other thought-provoking topics.

Crafting Powerful Paragraphs:

Business paragraphs often start with a clear statement of the main idea, provide information to support it, and conclude with a closing statement.

Subject statement: A succinct statement that introduces the major concept should come first in every paragraph. The tone and goal of the remainder of the paragraph are established by this sentence.

Supporting Sentences: Place a supporting sentence after the subject sentence. These sentences support the main argument by offering clarifications, illustrations, or evidence. Ensure that each of the supporting sentences advances the paragraph's main idea.

Final Thought: If necessary, conclude the paragraph with a sentence. The primary idea of the paragraph can be summed up here, or it can be linked to the larger argument.

Comprehending Observation:

Comma (,): Commas are a flexible type of punctuation. They break up big sentences into manageable chunks, introduce sentences, and divide list items.

The semicolon (;): It is used to connect similar sentences. They don't seem that scary once you know how to utilize them.

En dashes (–) and Em dashes (—): En dashes denote ranges (for example, "pages 10–15"), but em dashes highlight ideas or highlight specific facts.

Quote marks (""): to denote direct speech, the names of brief works, and terms that you want to draw attention to.

Colon (:): Direct quotations, lists, and explanations are introduced with colons (:).

Apostrophes: It denotes contraction or possession.

Question Mark (?) and Exclamation Point (!): Exclamation points indicate great passion or, while question marks terminate direct questions.

Parentheses ( ): Parentheses encapsulate other details or provide context.

So, we can use all this to increase the sense of clear writing.

Precision in language is another essential element. Specificity helps to convey exact meanings, reducing the chances of misinterpretation. For instance, instead of writing "many people," specifying "hundreds of people" provides a clearer picture.

Additionally, active voice tends to produce clearer and more direct sentences than passive voice. For example, "The manager approved the project" is more straightforward than "The project was approved by the manager." Active voice puts the subject at the forefront, making the sentence more dynamic and easier to understand.

Organising your paperwork:

The beauty of clear writing is not only hidden in beautiful words but also depends on many other factors such as how it looks, how fluent it is on reading, what is its design, etc. As we go on writing, we start seeing problems such as what layout to choose, what font size to keep, where and how much space to give. If we do some things right, then we will see all these in more organized format.

For example - Restraint in the design of the page, select your font size perfectly, choose different font for your heading subheading and body text, Give proper space between your paragraphs and lines and give it proper alignment etc. As we are talking about alignment I must include in that it is very much important for the organising our layout, left or right or middle each have its own importance in different themes and its own significant meaning. So it is important to take care of it. A brand's personality and professionalism may be established, the content's tone or feeling can be affected, and text can be made easier to read with the correct font.

Displaying Data:

Use a graph or chart to provide an illustration while comparing data. Data that is graphically presented is easier to comprehend and retain. Visual aids such as graphics help simplify intricate relationships, highlight trends or patterns, give numerical data context, and give your work more visual appeal. Learn about the most common chart kinds, their advantages and disadvantages, and the situations in which they are useful.

Editing And Revising:

You should thoroughly go over and edit your writing if you want to leave a good impression. Proofreading involves checking your writing for flaws, such as typographical and grammatical ones, before sending it to a reader.

There are some points you can use in it:-

It's important to provide enough time for errors to be understood when writing and editing.

When people rush through the writing process, they usually end up making mistakes. If you speed through the proofreading, you run the danger of missing these mistakes. Go carefully and gently through your writing.

As you gain more experience editing your own writing, you'll be able to identify the mistakes you

frequently make. So know what your typical errors are.

Check the spelling of any suspicious or unfamiliar word with a dictionary.

Errors in other people's work are more easily found than in your own.So make sure to check with others too.

Working with Technology:
An interactive journal is what a blog is. Typically, a single individual creates blog posts on a website, which are then viewed and discussed by others. Blogs might be internal or external to a business. Internal blogs are intended for use by staff members and other members of the organization. They are frequently used in place of meetings and email exchanges, particularly for regular business or project-related topics like announcements, policies, and procedures. External blogs are accessible to the public and allow firm workers or spokespersons to express their opinions. External blogs are commonly used by businesses to introduce new products and services, explain policy, and conduct other public relations activities.

Conclusion:
To summarize, the route to mastering clear writing entails more than simply avoiding grammatical errors and employing advanced vocabulary. It requires taking a purposeful approach to writing phrases and paragraphs that are not only clear, but also entertaining and instructive.

By following the essential rules of clear writing, such as utilizing simple words, keeping sentences succinct, and maintaining natural flow, we may successfully communicate our thoughts to readers with clarity and impact.

Furthermore, knowing the complexities of sentence construction, such as the role of subjects and verbs in describing actions and tones, helps us write more coherently and readably. By avoiding superfluous figures of speech and adopting clear language, we ensure that our message is accessible and understandable to a large audience. Clear writing requires strong organizational abilities as well. From constructing paragraphs with clear subject sentences, supporting facts, and closing ideas to presenting content in visually appealing forms with proper font sizes, spacing, and alignments, every aspect adds to our written work's overall readability and professionalism.

Furthermore, visual aids such as charts, graphs, and diagrams may significantly improve the clarity and understanding of complicated material or connections in our writing. These graphic features help readers understand numerical facts, trends, and comparisons, complementing the written information and emphasizing crucial themes. Finally, the importance of editing and revising in achieving clear writing cannot be emphasized. Taking the time to check and revise our work guarantees that mistakes in language, spelling, and clarity are corrected, improving the overall quality and effectiveness of our writing. Seeking input from others can also give helpful views and assist reveal blind spots or areas for growth that were previously ignored.

In essence, clear writing is a purposeful undertaking that needs meticulous attention to detail, deliberate arrangement, and ongoing refining. By practicing and continuously utilizing these abilities, we empower ourselves to express ideas with clarity, impact, and professionalism in a variety of situations and audiences. This enlarged conclusion incorporates the essential components of clear writing mentioned in your book and gives a thorough overview of its significance and strategies.

Lastly, revision and proofreading are indispensable. Even the best writers need to review their work to catch errors and improve clarity. As Stephen King succinctly puts it, "To write is human, to edit is divine" (King, 2000). Meticulous editing can significantly enhance the quality of writing. In conclusion, clear writing is achieved through simplicity, organization, conciseness, precision, active voice, and thorough revision. By adhering to these principles, writers can ensure their message is effectively communicated and easily understood by their audience.

Works Cited

King, Stephen. *On Writing: A Memoir of the Craft*. Scribner, 2000. Print.

Orwell, George. "Politics and the English Language". 1946. Web.

Zinsser, William. *On Writing Well: The Classic Guide to Writing Nonfiction*. New York: Harper Perennial, 2006. Print.

****

Self Seeking In Fiction

Dr. Chhaya Singh
Assistant Professor, Department of English
T.D.P.G. College, Jaunpur, Uttar Pradesh

"All the characters that we create are but copies of ourselves."
William Somerset Maugham
"Every writer consciously or unconsciously puts himself into his novels and exhibits his own character even more distinctly than that of his heroes."
"Novel" to quote the admirable words of Jane Austen in *Northanger Abbey*, ''is that form of work in which the most thorough knowledge of human nature, the happiest delineation of its varieties, the liveliest effusions of wit and humour are conveyed to the world in the best chosen language" (49). The novelist seeks inspiration from both his observation of life and his personal experiences. Mr. Belgion regards the novelist as a propagandist interested in propagating his own particular point of view. The title of the creative artist is denied to the novelist because to create means 'to bring into existence out of nothing.' Characters in fiction have never been made out of nothing but always out of some fragments of the personal experience of the novelist. The experiences and personal attitude of the novelist invariably count a lot in any work of fiction, though in digging all the matter out of one's own intimate shreds of experience, one might run the risk of not being recognised as a creative artist. However, some form of self-expression is the imperative urge of the novelist, and he cannot help but keep himself away from his work of art. "A novel", says Lord David Cecil, ''is a work of art in so far as it introduces us into a living world, in some respects resembling the world we live in, but with an individuality of its own. Now this world owes its character to the fact that is begotten by the artist's creative faculty on his experience. His imagination apprehends reality in such a way as to present us with a new vision of it. But in any one artist, only some aspect of experience fertilizes his imagination and strikes sufficiently deep down into the fundamentals of his personality to kindle his creative spark. His achievement, therefore, is limited to the part of his work which deals with these aspects of his experience.' The novelist brings forth his imagination to give a new form and shape to his experiences and his personal life in the work which he held dearer to his heart. The novelist does not need to be a biographer. 'The author of a great novel must pass his material through his imagination and then reexperience it. He must become one with his characters in a way that he was not one with in real life. And since people in life, at Miss Compton-Burnett says, "hardly seem to be definite enough to appear in print," their definition has to be increased. To take a metaphor from the kitchen, they must be 'reduced' as soup is 'reduced' to a sufficient strength by boiling away superfluous water. 'This 'reduction' of a character is one of the processes it goes through in the imagination, before a re-formed and retouched copy of the character is presented. Thus, in doing all this work of transforming himself into reducible parts for the purpose of self-expression in fiction, the novelist should be regarded as a creative artist. A novelist should not feel that he had done less creative work in thus recreating a person whom he had known in real life, than in drawing a character from 'a face in the fire. This view of Mr. Belgion that the novelist is merely a propagandist and not a creative artist, because he propagates his own point of view, cannot be accepted since in adjusting, transforming and reducing his vital personal experiences for purposes of novel wilting, the novelist undergoes all that imaginative and creative work which the creative artist has to perform in the creation of a great work of art.

In order for a work of fiction to have a deep and abiding popularity, it is necessary that the novelist

should present characters in the novel with whom he has been familiar in life and introduce experiences which he might himself have undergone. A kind of subjectivity becomes an inevitable necessity for the novelist if he means to win applause and a permanent place in the heart of his readers. A purely objective attitude towards his art, wherein the novelist will present a detached picture of life without personal attachment and does not ultimately go forward with the readers. A novelist cannot say it in the language of Mr. Christopher Isherwood, "I am a camera with its shutter open, quite passive, recording not thinking." This attitude is not possible for a novelist. Even Flaubert, the high priest of art for art's sake who once said, "Let us shut our door. Let us climb to the top of our ivory tower to the last step, the nearest to heaven", has to come down from the high tower to experience personally the feelings and characters that he sought to present in Madam Bovary. In one of his letters, Flaubert wrote, "Do you know I passed a whole afternoon the day before yesterday? Looking at the countryside through coloured glasses, I needed it for a page of Bovary, which I think will not be one of the worst pages." Flaubert took pride in the early stages of writing 'Bovary' and keeping himself away, as he wrote to one of his friends, "I have always forbidden myself to put anything of myself into my work." But the same Flaubert wrote at a later stage, "It is difficult to express well that one has never felt." When he presented the death of Madam Bovary, he himself had undergone those painful tortures of the heroine that he had described. He suffered the physical symptoms of arsenic poisoning when he was writing about her suicide.

Novelists invariably and involuntarily write about others apropos of themselves. Some novelists are aware of it. They know that although the "good novelist has many models, "he is himself his most versatile model and can serve as a giant or dwarf; he samples all the portions of himself, puts on all the costumes, and tries on all the wigs. Line by line, he asks questions and answers them, loves and hates himself, and attacks and defends himself (George Duhame). E.M. Forster says that a novel is based upon 'evidence plus an unknown quantity', which is the temperament of a novelist that 'unknown quantity always modifies the evidence, and sometimes transforms it entirely.' Once we admit a temperament with the power to transform the evidence, autobiographical action becomes inevitable. There is always something behind the story. A writer's attitude towards life born of his own beliefs and experiences is as much apart of his work as the story itself. Whether admitted or not, a novel is composed of what an author has felt or experienced. He cannot make bricks without straw and the idea that the imagination can supply him with the raw materials of his fiction is an illusion. Imagination can do more than help him to select and weld his impressions into novels and stories.

It is not easy to say exactly when readers first began to understand that fiction had an egoistic basis, but it is certain that familiarity with the Russian novel accelerated the process. Dostoevsky, the Russian novelist, was the first to make fiction autobiographical. The processes of what ultimately became a more or less open use of fiction for personal expression were gradual up to Turgenev whose delicate artistry wore a carefully designed mask, and Tolstoy who used the novel and the short story openly to express his own inner conflicts and their torments, as well as to propagate the prophylactic ideas which he endeavoured to practise. Coming to the English novel, we have the first glimpses of autobiographical fiction in Bunyan and Goldsmith. In *Grace Abounding* (1666) Bunyan gave to his flock the story of his own conversion told with a compelling simplicity and sincerity. As a child, Bunyan had been affected by strong fears of hell, and his visions were those of a mind darkened by the more mystical and apocalyptic aspects of the Bible. Nowhere before had more anguish been so powerfully and objectively portrayed as in *Grace Abounding*. Here in the following lines from *Grace Abounding*, the self-seeking of Bunyan through the agency of fiction:

> I could have enlarged much in this my discourse, of my temptations and troubles of sin; as also of the merciful kindness and working

of God with my soul. I could also have stepped into a style much higher than this in which I have here discoursed, and could have adorned all things more than here I have seemed to do, but I dare not. God did not play in convincing of me, the devil did not play in tempting of me, neither did I play when I sunk as into a bottomless pit, when the pangs of hell caught hold upon me; wherefore I may not play in my favourity of them, but be plain and simple, and lay down the thing as it was.

The habit of self-revelation in fiction is not confined to professional writers skilled in expressing themselves openly or furtively, still less to exhibitionists who are impelled to self-display by stronger motives. There are idealists, like the author of John Inglesant, who uses fiction, often unconsciously, to console themselves from conditions which they like.

Self-seeking and self-revelation in fiction have always been recognised as a form of art in which success depends on the richness of experience. The reader, on his own part, is not so much influenced by the story or the narrative but by the motives which impelled the author to express. In fact, it is subjective rather than objective fiction that has commanded greater appreciation in the present-day world, where people are more interested in studying the inner conflicts and motives of characters than in the mere objective representation of adventures. The reader has begun to feel that the real elements of any work of fiction are the elements of the author's personality; since his personages are personifications of the author's various impulses and emotions. Hence from the reader's point of view also the author's life and experiences become more important than the characters he has produced.

Let us conclude what we have stated in defence of subjective fiction in the words of Henry James. He set out the principles of writing fiction in the essay The Art of Fiction published in *Longman's Magazine* in September 1884. He came to the conclusion that-

A novel is in its broadest impression of life, that to begin with constitutes its value, which is greater or less according to the intensity of the impression of life. But there will be no intensity at all, and therefore no value, unless there is freedom to feel and say. The execution belongs to the author alone; it is what is more personal to him, and we measure him by that. The advantage, the luxury as well as the torment and responsibility of the novelist is that there is no limit to what he may attempt as an executant - no limit to his possible experiments, efforts, discoveries and success.

References

Austen, J. (1818). *Northanger Abbey* (Vol. I, Ch. 5, p. 49). Retrieved from https://www.gutenberg.org/ebooks/121

Bryant, J. A. (1985). L. C. Knights and "Explorations." *The Sewanee Review*, *93*(3), 446–456. http://www.jstor.org/stable/27544483

Bunyan, J. (1666). *Grace abounding to the chief of sinners*. Retrieved from web

Cecil, D. (1934). *Early Victorian novelists*. London: Constable & Company Ltd.

Flaubert, G. (1857). *Madame Bovary*. Retrieved from web. https://www.gutenberg.org/files/2413/2413-h/2413-h.htm

Forster, E. M. (1927). *Aspects of the novel*. Harcourt, Brace and Company.

James, H. (1884). The art of fiction. *Longman's Magazine, 4*(10), 437-449.

Liddell, R. (1957). *A treatise on the novel*. London: Faber and Faber.

Muir, E. (1928). *The structure of the novel*. London: Hogarth Press.

Victor, Marsh. (2010). Mr Isherwood Changes Trains: Christopher Isherwood and the search for the 'home self'.

****

Yoga – A Therapy for Mental Peace &World Betterment

Dr. Girish Kumar Vats
(Principal)
Shri Dronacharya Post Graduate College,
Dankaur (Gautam Buddha Nagar)

Abstract
In the present era, the technological advancements have made our life easier but somewhere they have led to an increase in our problems which ultimately affect our physical and mental health as we are running blindly after them and are ready to acquire them at any cost. Everyone is facing stress in one's life. The lifestyle of a person is a blend of physical ability along with psychological structures which is displayed in the form of eating habits, living pattern behavior which a person adopts from his parents, pears, siblings etc. Lifestyle disorders like cardiovascular diseases ,obesity, liver problems ,diabetes etc. resulted from inadequate diet (rich mostly in sugar and fat content),lack of exercisedue to some bad habits like smoking, alcoholism, late night sleep etc. A review was made to study an association between faulty lifestyle and the disorders resulted therefrom. Yoga has been found to be effective in the prevention and management of lifestyle disorders through various yoga practices like proper exercises, proper diet, meditation and positive thinking etc..

Key Words: Yoga, lifestyle Disorders, Yogic Diet, Yog Asana

INTRODUCTION:

The state of complete emotional and physical well-being can be referred to health.In the words of World Health Organization the concept of health can be defined as "The state of complete physical,mental and social well- being and not merely absence of disease or infirmity".We can attain the state of health through yogic way of living which can be considered as vital to healthy living.It is very essential for us to be healthy not just in the sense of being healthy but we should also feel healthy. Thus yoga and other Indian systems of medicines have contributed much in improving the qualitative aspect of our health.

Yoga can be described as a physical, mental and spiritual practice which had its origin in ancient India. It was firstly confined by sage Patanjali in his yoga sutras around 400 C.E..The word yoga can be said to be derived from Sanskrit word 'Yuj' which means 'to Yoke' or 'to unite'. It aims to create uniformity between body, mind and soul and also between individual self and universal consciousness.Such a union helps to create a sense of spiritual awareness and it tends to neutralize our egoistic thoughts and behaviour. Since thousands of years we have been practicing yoga and its many styles and interpretations have been developed but the ultimate goal of yoga is the 'Liberation of body, mind and spirit from suffering'.

In the opinion of Aurobindo, yoga is a practical discipline which incorporates a wide range of activities and whose objective is the development of a state of mental and Physical health, wellbeing and inner harmony and believe that its ultimate goal is the union of human individuals (Atma) meets the universal and transcendent existence (Parramatta).

In the present scenario globalisation, Technical Advancement, inflation, recession, intermixing of work cultures and accordingly subsequent changes are occurring at a fast pace. As a result of it everyone is facing stress at the workplace whether rich or poor, male or female, young or old and it is not possible to save oneself from it. In today's world it is Only the stress which is mainly responsible for illness and premature deaths.

It has been observed that most of the chronic disorders like hypertension, diabetes, chronic liver disease, psoriasis, obesity, arthritis, coronary artery disease, cancer etc. have been caused due to our faulty lifestyle. The disorders associated with the lifestyle though are non- infectious and non- transmissible but are likely to affect our life adversely unless they are intervened.These types of disorders can be prevented and cured only through the modification of our Lifestyle habits.

Amidst such problems we can look towards holistic art and science of yoga for the solution of our problems as it can be said to be the best Lifestyle ever designed and is considered as an effective measure in managing our prevalent lifestyle disorders. Apart from merely considering yoga as a form of physical exercise, modern researchers have begun focusing on psychophysiological beneficial effects of yoga. (Innes, Bourguignon and Taylor, 2005, Innes and Vincent, 2007).For enabling the humans to combat stress and strengthen themselves various practices like yogic diet, yogic attitude, yogic Lifestyle have been developed to……….the Feeling of positive health in humans.

Meaning and Goals of Yoga

The ultimate goal of Yoga is liberation and free

from stress, although exact Form this takes depends on the philosophical or theological system with which it is conjugated. Jacobsen has given the five principle traditional meanings of yoga

a) A disciplined method for attaining a goal.
b) Techniques of controlling the body and the mind.
c) A name of a school or system of philosophy.
d) With prefixes such as "hatha-mantra-, and laya, traditions specializing in particular techniques of yoga.
e) Then goal of Yoga practice.

ROLE OF YOGA TOWARDS PREVENTION AND MANAGEMENT OF LIFESTYLE DISORDERS:

Lifestyle is basically regarded as an indicator of an overall well being of an individual. Lifestyle of Indians is generally affected by western influence which has aroused the problems like low activity levels ,sedentary lifestyle etc .Ultimately leading to metabolic syndrome and other Lifestyle related problems. We can rectify Lifestyle disorders by modifying our Lifestyles and adopting yoga practices. In Indian classics These are four major streams of yoga -

Karma yoga (The path of adopting selfless deeds by applying wisdom, power and prosperity)

Bhakti Yog (The path of devotion)

Gyana Yog (The path that gives importance to rational thinking than knowledge)

Raj Yog is composed of eight limbs.

◊ Yama (Universal ethics /social code)
◊ Niyama (Individual ethics or rules)
◊ Asana (physical posture)
◊ Pranayam (Control of breath)
◊ Pratyahara (Sense control)
◊ Dharana (Concentration)
◊ Dhyan (meditation)
◊ Samadhi (bliss)

Through yoga, Spiritual, emotional, creative and rational, the four human intellects can be acquired by individuals which govern our feelings , thinking process and behavior which can be regarded as the determinants of personality and excellence.

Regular Yoga practices can help us to maintain optimal physical, mental, social and emotional health .Regular meditation not only increases our energy level but also provides us with several benefits like positive metabolic changes, improvement in motor functions, improvement in intelligence level, positive cardiovascular changes, reduction of negativity caused by stress and proneness to diseases etc. It also improves learning and academic performance of students.

Yogic principles used in the management of lifestyle: The following yogic principles are used in the management of lifestyle disorders. (Giri, 1976, Bhavanani, 2005)

- Reconditioning of psychology and formation of appropriate attitudes like Yamaha-Niyama, Chaturbahvana and ………………………
- Management of stress using different techniques like counseling ,Asana(posture), Jathes(loosening technique) , Kriya(systematic and rational breadth body coordination movements) and Pranayama (breath energy harmonizing technique).
- Helpful in normalizing metabolic activity through Physical activity like Surya Namaskar Asana, kriya and Pranayama.
- For inducing a sense of inner calmness and well-being in humans, activities like relaxation visualization and contemplation are promoted.
- Therefore yogic education inculcate self discipline and self control which would result in enormous amount of awareness, concentration and consciousness of high level .These can be summarized as:
- Enable an individual to have good health
- To promote mental hygiene
- To attain high levels of emotional stability and consciousness
- To equip an individual with moral values.

YOGIC DIET:

Yoga Lays Emphasis not only on eating right type of food but also suggested that it should be in right amount with right. Yogic scheme suggests that the food should also be prepared and served with love and belongingness .The improper dietary patterns need to be taken care of in order to find out a permanent solution for our health problems, as most of the disorders are directly or indirectly linked to it.

Yogic Diet categorizes the food as follows-

- Satvik-Which is pure, nourishing, agreeable and easily digestible.
- Rajsik- Which is rich in proteins and fats and which are difficult to digest.
- Tamsik- Food which can includes basically processed and tinned foods .

Out of the above three categories of food the most recommended is Satvik food as it built in a strength of the body and it conducive for higher thinking and intelligence helps to keep mind at peace and body healthy .Yoga suggests a balanced diet for the body which should include pure, light and nutritious food.

YOGA: A SCIENCE OF LIFE

Yoga can be considered as a scientific and a spiritual discipline of India and can be regarded as a best

method of training of the mind and body for unfolding the spiritual truth. Yoga can be best described as a science of life which suggests easy and simple methods of maintaining health and hygiene of our body and keeping us fit mentally with a minimum of time, effort and cost.Yoga is a technique of attaining self-awareness.Yoga has simple body movements which not only strengthen our physical body but also relaxes our mind which hence the way of achieving self awareness. The Yoga Asana as if done in a proper way relaxes our nerves and glands and strengthens our ligaments and muscles.The results of doing yoga Aasan become more effective when mind is in perfect harmony with the body movements . Solutionofstressthrough Yoga

1. Yoga can have a positive effect on the parasympatheticnervous system and aid in lowering heartbeat and bloodpressure.
2. This reduces the demand of the body for oxygen. Yogacan also improve digestion, strengthen immunity, help in effective elimination of toxic wastes and also increase lung capacity.
3. Effective use of this practice can also reduce the chances of stress culminating in anxiety and depression.
4. Yoga provides a unique way of managing stress throughpranayama (A birthing technique), in this technique anindividual doslow andsteady breathingsteady- likeinhaling through his one nostril and exhaling throughother. Besides there are fast breathing movements like intake of air through nostrils and exhaling through mouth at fast pace, this way air is passed properly through blood capillaries and the person feels himself /herself in light mode.
5. Meditation is also a good method of controlling stress, in this part of Yoga a person sit comfortably and think of a favorite place. Imagine yourself in a successful situation. Than after breathe deeply and slowly. Continue for five or six breaths. It is calming and the extra dose of oxygen increases the brain's thinking ability.
6. Finally, Yoga has and is proving itself as "Stress Management Tool" and now a day it is being used in Western world too as a major alternative to the offensive allopathic drugs.

ROLE OF YOGA TOWARDS PREVENTION AND MANAGEMENT OF LIFESTYLE DISORDERS:

Lifestyle is basically regarded as an indicator of an overall well being of an individual. Lifestyle of Indians is generally affected by western influence which has aroused the problems like low activity levels ,sedentary lifestyle etc.Ultimately leading to metabolic syndrome and other Lifestyle related problems. We can rectify Lifestyle disorders by modifying our Lifestyles and adopting yoga practices. In Indian classics these are four major streams of yoga-

Karma yoga (The path of adopting selfless deeds by applying wisdom, power and prosperity)

Bhakti Yog (The path of devotion)

Gyana Yog (The path that gives importance to rational thinking than knowledge)

Raj Yog is composed of eight limbs.

* Yama (Universal ethics /social code)
* Niyama (Individual ethics or rules)
* Asana (physical posture)
* Pranayam (Control of breath)
* Pratyahara (Sense control)
* Dharana (Concentration)
* Dhyan (meditation)
* Samadhi (bliss)

Through yoga, Spiritual, emotional, creative and rational, the four human intellects can be acquired by individuals which govern our feelings , thinking process and behavior which can be regarded as the determinants of personality and excellence.

Regular Yoga practices can help us to maintain optimal physical, mental, social and emotional health .Regular meditation not only increases our energy level but also provides us with several benefits like positive metabolic changes, improvement in motor functions, improvement in intelligence level, positive cardiovascular changes, reduction of negativity caused by stress and proneness to diseases etc. It also improves learning and academic performance of students.

Yogic principles used in the management of lifestyle: The following yogic principles are used in the management of lifestyle disorders. (Giri, 1976, Bhavanani, 2005)

- Reconditioning of psychology and formation of appropriate attitudes like Yamaha-Niyama, Chaturbahvana etc.
- Management of stress using different techniques like counseling, Asana (posture), Jathes (loosening technique) , Kriya(systematic and rational breadth body coordination movements) and Pranayama (breath energy harmonizing technique).
- Helpful in normalizing metabolic activity through Physical activity like Surya Namaskar Asana, kriya and Pranayama.
- For inducing a sense of inner calmness and well-being in humans, activities like relaxation visualization and contemplation are promoted.

Therefore yogic education inculcate self discipline and self control which would result in enormous amount of awareness, concentration and consciousness of high level .These can be summarized as:

⇒ Enable an individual to have good health
⇒ To promote mental hygiene
⇒ To attain high levels of emotional stability and consciousness
⇒ To equip an individual with moral values.

YOGIC DIET:

Yoga Lays Emphasis not only on eating right type of food but also suggested that it should be in right amount with right .Yogic scheme suggests that the food should also be prepared and served with love and belongingness .The improper dietary patterns need to be taken care of in order to find out a permanent solution for our health problems, as most of the disorders are directly or indirectly linked to it.

Yogic Diet categorizes the food as follows-

◊ Satvik-Which is pure, nourishing, agreeable and easily digestible.
◊ Rajsik- Which is rich in proteins and fats and which are difficult to digest.
◊ Tamsik- food which can includes basically processed and tinned foods.

Out of the above three categories of food the most recommended is Satvik food as it built in a strength of the body and it conducive for higher thinking and intelligence helps to keep mind at peace and body healthy .Yoga suggests a balanced diet for the body which should include pure, light and nutritious food.

YOGA : A SCIENCE OF LIFE Yoga can be considered as a scientific and a spiritual discipline of India and can be regarded as a best method of training of the mind and body for unfolding the spiritual truth. Yoga can be best described as a science of life which suggests easy and simple methods of maintaining health and hygiene of our body and keeping us fit mentally with a minimum of time, effort and cost.Yoga is a technique of attaining self awareness. Yoga has simple body movements which not only strengthen our physical body but also relaxes our mind which hence the way of achieving self awareness. The Yoga Asana as if done in a proper way relaxes our nerves and glands and strengthens our ligaments and muscles.The results of doing yoga Aasan become more effective when mind is in perfect harmony with the body movements .

Conclusion

The problems which are being faced by modern mankind can be resolved by the art and science of yoga. By adopting yoga as a way of life we can come over our stress and psychosomatic diseases and other lifestyle disorders and it will enable us to attain our birth right of proper health and happiness in life. Yoga trains us in all the aspects of life like cleanliness, self hygiene, good eating habits ,self-management etc. which leads to physical, mental ,social ,emotional and spiritual well being of an individual and ultimately lays the path of personality development and brightens our future.

References:

♦ Acharya Agnivesha Mar 25, 2011, Charaka Samhita. Ayurveda Dipika commentary by chakrapanidatta. Varanasi: Choukamba Surabharati Prakashan; edition 2008, Chapter 1, verse 15, 6pp. Official Records of WHO, no. 2, p. 100.
♦ Sushruta Sutra Sthana, 15/41 Choukamba Publications, Varanasi.
♦ Siddappa, Naragatti, Management of Hypertension through Yogic practices, International Journal of Ayush 2018:7(4)19- 32
♦ Naragatti S, Yoga and Health, Journal of advanced research in ayurveda yoga unani siddhant and homeopathy-2018;S(I):11- 14
♦ Kuryattadasanam sthairyamarogyam cangalaghavam" [Hatha Pradeepika Chapter:I.19] Bihar Yoga Trust Publications kapāla-bhātiś ca-itāni ṣaṭ-karmāṇi pracakṣate || Hatha Pradeepika Chapter:II.22] Bihar Yoga Trust Publications
♦ Siddappa Naragatti, Effects of Brahma Kumaris Sahaja Raja Yoga meditation on health, International journal of science and research, 7-12-2018, 314-319.

****

Indian Knowledge Traditions And National Education Policy 2020

Dr. Sachin Kumar
Assistant Professor (Department of Education)
Shri Madhav College of Education and Technology, Hapur

Abstract
The New National Education Policy (NEP) of 2020 marks a significant reform in India's educational landscape, aiming to revitalize the country's knowledge traditions while embracing modern pedagogical methods. This research paper provides an overview of the intricate relationship between the NEP 2020 and India's rich knowledge tradition, highlighting the policy's key objectives and implications. It emphasizes the NEP's commitment to holistic, multidisciplinary education, promoting research and innovation, and fostering a sense of cultural and historical awareness. By acknowledging the symbiosis between India's ancient wisdom and contemporary educational aspirations, the NEP 2020 envisions a more inclusive, dynamic, and globally competitive education system that draws from the depths of its cultural heritage while preparing students for the challenges of the 21st century. This research paper offers a glimpse into the NEP's potential to bridge the gap between traditional wisdom and modern learning, ultimately shaping the educational landscape of India in the years to come.

Key Words: Indian Knowledge Tradition, NEP2020, Traditional Knowledge

Introduction

Education, as the cornerstone of a nation's progress, continually evolves to meet the changing needs and aspirations of its society. In the case of India, a country steeped in rich and diverse knowledge traditions, the recent unveiling of the New Education Policy (NEP) in 2020 has ignited a renewed interest in the preservation and propagation of its ancient wisdom. This policy represents a significant departure from the conventional paradigms of education and has sparked debates and discussions at both national and international levels.

India's knowledge traditions, rooted in texts like the Vedas, Upanishads, and treatises on mathematics, astronomy, and medicine, have made profound contributions to the world's intellectual heritage. These traditions have thrived for millennia, emphasizing holistic and experiential learning, which is in stark contrast to the rote-based modern education systems that have predominated for decades.

The New Education Policy of 2020 asserts a vision that seeks to bridge this gap. It envisions an educational framework that not only embraces the ancient wisdom of India but also harmonizes it with contemporary global learning paradigms. It advocates a shift from the conventional examination-centric approach to an inclusive, multidisciplinary, and skill-based model of education, emphasizing a more holistic and culturally grounded learning experience.

Objective

The aim of Research paper is to delve into the intricate relationship between India's knowledge tradition and the New Education Policy 2020. It will explore the implications, challenges, and opportunities that this policy presents for reviving and integrating the rich tapestry of Indian knowledge into the modern education system. Furthermore, it will examine the potential impact of this policy on India's future generations and its role in shaping the nation's global standing. This paper will mark the complex interplay between tradition and transformation, where age-old wisdom meets the demands of the 21st century, with a focus on how the New Education Policy 2020 paves the way for this convergence.

Indian Knowledge Tradition in Education

Indian knowledge tradition in education is deeply rooted in the country's history and philosophy. It encompasses various aspects that have influenced educational practices in India over centuries:

1. Gurukul System: The ancient Indian education system was centered around the Gurukul system, where students lived with their gurus (teachers) in ashrams. This system emphasized holistic education, including subjects like philosophy, arts, sciences, and ethics.

2. Vedas and Upanishads: Indian knowledge tradition places great importance on the Vedas and Upanishads, which contain a wealth of knowledge on various subjects, including spirituality, mathematics, astronomy, and more. These texts have had a profound influence on education.

3. Sanskrit Literature: The study of Sanskrit and its literature is an integral part of Indian education. Many classical Indian texts, such as the Mahabharata, Ramayana, and various Puranas, are written in Sanskrit.

4. Yoga and Meditation: The Indian tradition of yoga and meditation is increasingly incorporated into modern education systems, promoting mental and physical well-being.

5. Classical Arts and Culture: Indian education traditionally encompasses classical arts like music, dance, drama, and sculpture, which are seen as essential for a well-rounded education.

6. Ancient Sciences: Indian knowledge tradition has made significant contributions to fields like mathematics, astronomy, and medicine, with concepts like zero and the decimal system originating in India.

7. Ethical and Moral Values: Education in India traditionally emphasizes ethical and moral values, as reflected in texts like the *Bhagavad Gita.*

8. Diversity and Inclusivity: The tradition recognizes the importance of diversity and inclusivity, fostering a pluralistic approach to learning.

Today, the Indian education system is evolving, and efforts are being made to integrate elements of this traditional knowledge into contemporary education. This may involve teaching traditional wisdom, such as Ayurveda, alongside modern medicine, or incorporating ancient philosophical ideas into the curriculum. The goal is to create a balanced and comprehensive education system that draws from India's rich knowledge heritage while preparing students for the challenges of the modern world.

NEP 2020 and Traditional Knowledge

The New Education Policy (NEP) 2020 recognizes the importance of traditional knowledge systems in India and aims to integrate them into the education system in several ways:

1. Promotion of Indigenous Languages: The policy emphasizes the use of mother tongue or local languages as the medium of instruction in schools. This supports the preservation and propagation of traditional knowledge that often exists in local languages.

2. Cultural and Heritage Education: NEP 2020 encourages the teaching of Indian culture, heritage, and traditional knowledge in the curriculum. It recognizes that traditional knowledge is an integral part of India's rich cultural heritage.

3. Integration of Local Knowledge: The policy advocates for the integration of local and indigenous knowledge, particularly in subjects like environmental science, agriculture, and traditional medicine. This can help students appreciate and learn from the traditional wisdom passed down through generations.

4. Interdisciplinary Approach: NEP 2020 promotes an interdisciplinary approach to education, which can help students explore the connections between modern knowledge and traditional wisdom. This allows for a more holistic understanding of various subjects.

5. Research and Documentation: The policy encourages research and documentation of traditional knowledge systems, especially those related to indigenous medicine, handicrafts, and traditional practices. This can help in preserving and promoting traditional knowledge.

6. Cultural Exchange Programs: NEP 2020 suggests facilitating cultural exchange programs, which can provide students with opportunities to learn from indigenous communities and gain first-hand experience of traditional knowledge.

The inclusion of traditional knowledge in the education system is intended to make education more culturally relevant and connect students with their roots. It acknowledges that traditional knowledge systems hold valuable insights and can complement modern education by providing a holistic and context-specific understanding of various subjects. The successful implementation of these provisions will depend on the efforts of educational institutions and policymakers to integrate traditional knowledge effectively into the curriculum.

Impact of NEP2020 on Indian Education System

The New Education Policy (NEP) 2020 has the potential to bring significant changes to the Indian education system. Some of the key impacts and changes it aims to make include:

1. Restructuring of School Education: NEP 2020

proposes a 5+3+3+4 structure for school education, replacing the older 10+2 structure. This aims to provide a more holistic and flexible education system for students.

2. Early Childhood Education: The policy emphasizes the importance of early childhood care and education, which can have a lasting impact on a child's development.

3. Multilingualism: Encouraging multilingualism and promoting the use of local languages as the medium of instruction to preserve and promote linguistic diversity.

4. Holistic Learning: A move towards holistic education, including a focus on critical thinking, problem -solving, and experiential learning rather than rote memorization.

5. Higher Education Reforms: NEP 2020 aims to overhaul higher education with a focus on flexibility, autonomy, and interdisciplinary. It also introduces the Academic Bank of Credit, which allows students to accumulate credits across multiple institutions.

6. Research and Innovation: A focus on research and innovation through initiatives like the National Research Foundation and increased funding for research.

7. Teacher Training: The policy emphasizes the importance of continuous teacher training and professional development.

8. Assessment Reforms: A move towards continuous and comprehensive evaluation rather than high-stakes exams.

9. Digital Education: Encouragement of digital education and the use of technology for learning.

10. Gender Inclusivity: A focus on gender inclusivity and equitable access to education.

11. Cultural and Ethical Values: An emphasis on inculcating cultural and ethical values in education.

The full impact of NEP 2020 on the Indian education system will depend on how effectively it is implemented and how it adapts to the diverse educational landscape of India. It represents a significant shift towards a more flexible and holistic education system, with a focus on preparing students for the demands of the 21st century.

Indigenous Knowledge in Indian Education Policy

The incorporation of indigenous knowledge into the Indian education system is gaining recognition for its cultural, environmental, and holistic value. Here are ways in which indigenous knowledge is being integrated into the Indian education system:

1. Local Language and Culture: Emphasizing the use of local languages and cultures as mediums of instruction to preserve and promote indigenous knowledge.

2. Curriculum Development: Integrating indigenous knowledge and practices into the school curriculum, particularly in subjects like environmental science, agriculture, and traditional medicine.

3. Cultural and Heritage Education: Teaching traditional cultural practices, art forms, and indigenous history to promote an understanding of indigenous cultures.

4. Environmental and Ecological Knowledge: Recognizing the traditional ecological knowledge of indigenous communities and incorporating it into environmental science and conservation studies.

5. Agricultural Practices: Incorporating traditional and sustainable agricultural practices used by indigenous communities into agricultural education.

6. Traditional Medicine: Integrating indigenous medical knowledge into the curriculum, including the study of Ayurveda, Unani, and other traditional healing systems.

7. Ethical Values and Sustainability: Promoting ethical values and sustainable practices from indigenous cultures to foster a sense of responsibility towards the environment and society.

8. Interdisciplinary Approach: Encouraging an interdisciplinary approach to education that acknowledges the interconnectedness of various knowledge systems.

9. Collaboration with Indigenous Communities: Involving indigenous communities in educational processes to ensure that their knowledge and practices are respected and preserved.

10. Research and Documentation: Supporting research and documentation of indigenous knowledge to maintain a record of traditional practices and wisdom.

The integration of indigenous knowledge into the Indian education system helps students appreciate the rich cultural and environmental heritage of the country while offering valuable insights into sustainable and holistic practices. It also promotes inclusivity and a deeper understanding of indigenous communities and their contributions to society. Successful im-

plementation of these initiatives involves collaboration between educational institutions, policymakers, and indigenous communities to ensure that indigenous knowledge is respected, preserved, and appropriately integrated into the curriculum.

Intersection of Indian Knowledge Tradition and NEP2020

The New Education Policy (NEP) 2020 aims to intersect with India's rich knowledge tradition in several ways:

1. Multilingualism and Mother Tongue: NEP 2020 encourages the use of mother tongueor local languages as the medium of instruction in schools. This aligns with the Indian knowledge tradition, which emphasizes preserving and promoting knowledge in local languages.

2. Holistic Education: The policy emphasizes holistic and multidisciplinary education, which resonates with India's traditional Gurukul system, where students received comprehensive education in various subjects, including philosophy, arts, and sciences.

3. Cultural and Heritage Education: NEP 2020 advocates for the inclusion of Indian culture, heritage, and traditional knowledge in the curriculum, acknowledging the importance of traditional wisdom and values.

4. Interdisciplinary Approach: The policy promotes an interdisciplinary approach, allowing students to explore the connections between modern knowledge and traditional Indian wisdom. This enables a more holistic understanding of subjects.

5. Research and Documentation of Traditional Knowledge: NEP 2020 encourages the research and documentation of traditional knowledge systems, especially in fields like Ayurveda and yoga, bringing traditional knowledge into the mainstream.

6. Promotion of Ethical Values: The policy emphasizes the inculcation of ethical and moral values in education, drawing from Indian knowledge traditions that often emphasize ethics and spirituality.

7. Promotion of Critical Thinking: NEP 2020 encourages critical thinking and problem-solving, which complements traditional Indian education's emphasis on inquiry and philosophical exploration.

8. Cultural Exchange Programs: The policy supports cultural exchange programs, which provide students with opportunities to learn from indigenous communities and gain insights into traditional knowledge.

The intersection of NEP 2020 and India's knowledge tradition is aimed at creating a modern education system that preserves and integrates the rich heritage of traditional knowledge while equipping students with the skills and knowledge necessary for the 21st century. It seeks to strike a balance between traditional wisdom and contemporary education, fostering a holistic and culturally relevant learning experience. Successful implementation of these aspects will be crucial for achieving these goals.

Conclusion

The New Education Policy 2020 in India aims to revitalize the Indian knowledge tradition by focusing on holistic and multidisciplinary education. It emphasizes the importance of preserving and promoting indigenous knowledge systems, languages, and cultures while fostering critical thinking and creativity. The policy encourages a flexible and student-centric approach, promoting a well-rounded and practical education system. Ultimately, the success of this policy will depend on its effective implementation and adaptability to the evolving needs of the Indian society.

References

1. Government of India 1986, National Education Policy 2020.
2. https://www.researchgate.net/publication/346654722_Impact_of_New_Education_Policy_2020_on_Higher_Education
3. https://www.researchgate.net/publication/355365803_New_Education_Policy_2020_of_India_A_Theoretical_Analysis

****

Tripitaka: A critical Study

-Awadhesh Kumar Sah

Delhi College oj Atrs & Commerce

akdelhi2002@gmail.com

Introduction

The Tripitaka, also known as the Pali Canon, is the earliest and most authoritative collection of Buddhist scriptures. It serves as the foundation for the Theravada Buddhist tradition, which is widely practiced in countries such as Sri Lanka, Thailand, Burma, Cambodia, and Laos. The term "Tripitaka" means "Three Baskets," referring to its division into three main sections: the Vinaya Pitaka, the Sutta Pitaka, and the Abhidhamma Pitaka. These texts encompass a comprehensive range of teachings and guidelines attributed to the Buddha and his immediate disciples, offering a window into the early Buddhist community's religious, ethical, and philosophical landscape.

The Tripitaka's historical significance cannot be overstated. It is a critical resource for understanding not only the teachings of the Buddha but also the cultural, social, and religious milieu of ancient India. Its preservation and transmission over centuries underscore the dedication of the Buddhist monastic community to safeguarding their spiritual heritage.

Key Words- Tripitak, Vinay Pitak, Sutta Pitak, Abhiddham Pitak, Council(Sangiti), Nirvan, Four Noble Truths, Middle Path,

Historical Context

The Tripitaka was orally transmitted for several centuries before being committed to writing. This transmission process began during the Buddha's lifetime and continued through successive generations of monks. The first written compilation of the Tripitaka is believed to have taken place during the Fourth Buddhist Council in Sri Lanka in the 1st century BCE. The need to preserve the teachings in a more permanent form arose due to threats such as invasions and natural calamities, which jeopardized the oral tradition.

The oral tradition of the Tripitaka relied heavily on the mnemonic skills of the monastic community. Monks memorized extensive portions of the texts, ensuring their accurate transmission. This practice highlights the importance of communal recitation and repetition in preserving the teachings. The eventual transcription of the Tripitaka onto palm leaves was a monumental undertaking, reflecting a significant shift from an oral to a written culture within the Buddhist community.

The historical context of the Tripitaka also includes the socio-political environment of ancient India. The Buddha's teachings emerged during a period of significant intellectual and religious ferment, with various philosophical schools and ascetic movements vying for influence. The Tripitaka provides valuable insights into this dynamic landscape, documenting the Buddha's engagements with contemporary thinkers and his efforts to establish a distinct spiritual path.

The Three Baskets (Pitakas)

Vinaya Pitaka: The Vinaya Pitaka primarily contains rules and guidelines for monastic discipline. It is divided into three parts: the Suttavibhanga, which includes the Patimokkha rules and their explanations; the Khandhaka, which details various procedures and regulations; and the Parivara, a supplementary collection of summaries and analyses. The Vinaya Pitaka outlines the code of conduct for monks (bhikkhus) and nuns (bhikkhunis), addressing matters such as ordination, communal living, and the handling of disputes. It reflects the Buddha's pragmatic approach to creating a harmonious monastic community.

The Vinaya Pitaka's emphasis on discipline and ethical conduct is foundational to the monastic life. The Patimokkha, consisting of 227 rules for monks and 311 rules for nuns, serves as a comprehensive code governing monastic behavior. These rules cover a wide range of issues, from interactions with laypeople to the management of monastic resources. The Khandhaka supplements the Patimokkha by providing detailed procedures for ceremonies, such as ordination and confession, and regulations on issues like medical treatment and the use of personal possessions.

The Parivara, the third component of the Vinaya Pitaka, offers a systematic analysis and summary of the rules, aiding monks in their study and application. Its structure facilitates a deeper understanding of the Vinaya, reinforcing the importance of discipline and ethical conduct in the monastic path. The Vinaya Pitaka not only preserves the Buddha's teachings on discipline but also offers insights into the social and

organizational aspects of the early Buddhist community.

Sutta Pitaka: The Sutta Pitaka is a compilation of the Buddha's discourses, encompassing a wide range of subjects, from ethical teachings to philosophical inquiries. It is divided into five Nikayas (collections): the Digha Nikaya (Long Discourses), the Majjhima Nikaya (Middle-Length Discourses), the Samyutta Nikaya (Connected Discourses), the Anguttara Nikaya (Numerical Discourses), and the Khuddaka Nikaya (Minor Collection). The Sutta Pitaka provides insights into the Buddha's teachings on topics such as suffering (dukkha), the Four Noble Truths, the Eightfold Path, and the nature of reality. It also includes narratives about the Buddha's life and interactions with various individuals.

The Digha Nikaya comprises 34 long discourses, which often address complex philosophical and ethical issues. These discourses are notable for their detailed expositions and narrative richness. For example, the Brahmajala Sutta (The Supreme Net) provides a comprehensive critique of various philosophical views, while the Mahaparinibbana Sutta (The Great Passing) offers a moving account of the Buddha's final days.

The Majjhima Nikaya, with its 152 middle-length discourses, presents a more diverse range of topics and settings. It includes teachings on meditation, ethical conduct, and practical advice for laypeople. The Anapanasati Sutta (Discourse on Mindfulness of Breathing) is particularly significant for its detailed instructions on meditation practice, while the Cula-Malunkyovada Sutta (The Shorter Instructions to Malunkyaputta) addresses existential questions about the nature of reality.

The Samyutta Nikaya, or Connected Discourses, consists of over 2,800 shorter suttas grouped thematically. This collection is valuable for its systematic arrangement, facilitating the study of specific themes, such as the Five Aggregates (khandhas) or the Four Noble Truths. The Devadaha Sutta, for example, explores the doctrine of dependent origination (paticcasamuppada) in detail.

The Anguttara Nikaya, or Numerical Discourses, arranges the teachings numerically, from one to eleven items, making it easier to memorize and reference. This structure reflects the oral tradition's emphasis on mnemonic aids. The Kalama Sutta, found in this collection, is renowned for its encouragement of critical inquiry and personal verification of teachings.

The Khuddaka Nikaya, or Minor Collection, is the most diverse, containing texts of varying lengths and styles. It includes popular texts such as the Dhammapada, a collection of verses summarizing the Buddha's teachings, and the Jataka tales, which recount the Buddha's previous lives. The Khuddakapatha, another component of this collection, serves as an introductory text for novice monks, emphasizing basic principles and practices.

Abhidhamma Pitaka: The Abhidhamma Pitaka presents a systematic and detailed analysis of the Buddha's teachings, focusing on the nature of mind and phenomena. It is often considered more abstract and philosophical than the other two Pitakas. The Abhidhamma Pitaka is divided into seven books: the Dhammasangani (Enumeration of Phenomena), the Vibhanga (Book of Analysis), the Dhatukatha (Discourse on Elements), the Puggalapannatti (Descriptions of Individuals), the Kathavatthu (Points of Controversy), the Yamaka (The Book of Pairs), and the Patthana (The Book of Relations). This Pitaka delves into the classification of mental states, the theory of conditional relations (paticcasamuppada), and the analysis of ultimate realities (paramattha).

The Dhammasangani provides a comprehensive enumeration and classification of mental and physical phenomena. It categorizes these phenomena into various dhammas (elements), offering a detailed taxonomy of consciousness and its associated factors. The Vibhanga expands on this classification by providing analytical expositions of key concepts, such as the Five Aggregates and the Four Noble Truths.

The Dhatukatha examines the elements (dhatus) and their interrelations, exploring how various components of existence interact. The Puggalapannatti, on the other hand, categorizes individuals based on their spiritual development, offering insights into the diversity of practitioners and their progress on the path.

The Kathavatthu addresses doctrinal controversies, presenting arguments and counterarguments on various points of doctrine. This text reflects the dynamic and evolving nature of early Buddhist thought, highlighting the diversity of views within the community.

The Yamaka, or Book of Pairs, employs a unique method of analysis by presenting pairs of propositions and exploring their logical implications. This text is particularly valuable for its rigorous approach to understanding the nature of reality.

The Patthana, the final and most extensive book of the Abhidhamma Pitaka, examines the intricate web of causal relationships that underlie all phenomena. This text delves into the principles of conditionality and dependent origination, offering a detailed analysis of how various conditions give rise to specific outcomes.

Literary and Philosophical Aspects

The Tripitaka's literary richness is evident in its diverse styles and genres, ranging from verse and prose to dialogues and parables. The texts often employ metaphorical language and allegory to convey complex ideas, making the teachings accessible and engaging.

Philosophically, the Tripitaka addresses fundamental questions about existence, suffering, and the path to liberation. Central to the Buddha's teachings is the concept of impermanence (anicca), the understanding that all conditioned phenomena are transient and subject to change. This insight leads to the realization of non-self (anatta), the notion that there is no permanent, unchanging self or soul. The doctrine of dependent origination (paticcasamuppada) further elucidates the interconnectedness of all phenomena, highlighting how suffering arises and can be overcome through a chain of causally linked factors.

The Tripitaka also explores the nature of consciousness and the process of perception. The analysis of mind and mental states in the Abhidhamma Pitaka, for example, provides a detailed framework for understanding the functioning of consciousness. This analysis is complemented by the practical teachings on mindfulness and meditation found in the Sutta Pitaka, offering a comprehensive approach to mental cultivation.

The literary qualities of the Tripitaka enhance its philosophical depth. The use of parables and analogies, such as the famous simile of the raft in the Alagaddupama Sutta, makes abstract concepts more tangible and relatable. The dialogues between the Buddha and his disciples, as well as with various interlocutors, showcase the Buddha's skill in adapting his teachings to the needs and capacities of his audience.

Ethical and Social Dimensions

The ethical teachings in the Tripitaka emphasize the importance of morality (sila) as the foundation for spiritual progress. The Buddha advocated a code of conduct based on the Five Precepts for laypeople and more stringent rules for monastics. These precepts encourage abstaining from harming living beings, stealing, sexual misconduct, false speech, and intoxicants that cloud the mind.

The ethical dimension of the Tripitaka extends beyond individual conduct to encompass social and communal relationships. The Buddha's teachings on right speech, right action, and right livelihood (three factors of the Noble Eightfold Path) provide guidelines for ethical interactions and social harmony. The emphasis on compassion (karuna) and loving-kindness (metta) promotes a vision of a just and equitable society.

The Vinaya Pitaka's detailed rules for monastic conduct reflect the Buddha's concern for creating a disciplined and harmonious community. The guidelines for resolving disputes, managing resources, and interacting with lay supporters underscore the importance of ethical behavior in maintaining the integrity and stability of the monastic order.

The Sutta Pitaka contains numerous discourses that address social issues and relationships. The Sigalovada Sutta, for example, offers practical advice for laypeople on fulfilling their duties and responsibilities within the family and society. The Buddha's teachings on generosity (dana), patience (khanti), and humility (nivata) further emphasize the cultivation of virtuous qualities in social interactions.

Interpretative Approaches

Over the centuries, different Buddhist traditions have developed various interpretative approaches to the Tripitaka. Theravada Buddhism, which regards the Pali Canon as its primary scripture, emphasizes a literal and historical understanding of the texts. Mahayana Buddhism, on the other hand, often incorporates the Tripitaka within a broader canon, interpreting its teachings through the lens of additional scriptures and commentaries.

Scholarly interpretations of the Tripitaka involve linguistic, historical, and comparative analyses. Linguistic studies focus on the Pali language and its nuances, while historical research examines the context in which the texts were composed and transmitted. Comparative studies explore the parallels and differences between the Tripitaka and other religious and philosophical traditions.

Theravada exegesis often involves the use of commentaries (atthakatha) and sub-commentaries (tika), which provide detailed explanations and interpretations of the texts. These commentaries, attributed to ancient scholars like Buddhaghosa, offer valuable insights into the traditional understanding of the Tripitaka.

Mahayana interpretations of the Tripitaka often integrate its teachings with those of other canonical texts, such as the Mahayana sutras. This approach reflects the Mahayana emphasis on the expansive and inclusive nature of the Dharma, accommodating a diversity of perspectives and practices.

Modern scholarship on the Tripitaka has benefited from advances in textual criticism, archaeology, and comparative religious studies. The critical edition of the Pali Canon by the Pali Text Society has provided a reliable textual basis for scholarly research. Comparative studies with other early Buddhist texts, such as the Gandhari manuscripts and the Chinese Agamas, have enriched our understanding of the historical development of Buddhist thought.

Contemporary Relevance

In the modern world, the Tripitaka continues to be a source of inspiration and guidance for Buddhists and non-Buddhists alike. Its teachings on mindfulness (sati), meditation (bhavana), and ethical conduct have gained widespread recognition for their applicability to contemporary challenges, such as stress, mental health, and social justice.

Mindfulness, in particular, has been embraced by various secular and therapeutic contexts, demonstrating the universal relevance of the Buddha's teachings. Programs such as Mindfulness-Based Stress Reduction (MBSR) and Mindfulness-Based Cognitive Therapy (MBCT) have their roots in the principles articulated in the Tripitaka, particularly the Satipatthana Sutta.

The ethical teachings of the Tripitaka, with their emphasis on compassion, non-violence, and social responsibility, offer valuable insights for addressing global issues such as environmental sustainability and human rights. The principles of right livelihood and ethical consumption, for example, resonate with contemporary concerns about ethical business practices and sustainability.

The global spread of Buddhism has also led to the translation and dissemination of the Tripitaka in numerous languages, making its wisdom accessible to a diverse audience. Digital platforms and online resources have further facilitated the study and exploration of these ancient texts. Initiatives such as the SuttaCentral project have made the Pali Canon available online, providing valuable resources for scholars and practitioners worldwide.

The Tripitaka's relevance in contemporary society is also reflected in the continued vitality of the Theravada monastic tradition. Monasteries and meditation centers around the world offer opportunities for individuals to engage deeply with the teachings and practices preserved in the Tripitaka. The monastic community's commitment to ethical conduct, meditation, and teaching serves as a living embodiment of the Buddha's path.

Conclusion

The Tripitaka stands as a monumental testament to the Buddha's teachings and the early Buddhist community's efforts to preserve and transmit his message. Its comprehensive scope, encompassing rules for monastic discipline, profound philosophical discourses, and intricate psychological analyses, offers a rich tapestry of spiritual insights. A critical study of the Tripitaka not only deepens our understanding of Buddhism but also sheds light on the universal human quest for meaning, ethical living, and inner peace.

The Tripitaka's enduring relevance lies in its capacity to address fundamental questions about existence and provide practical guidance for ethical and mindful living. Its teachings on impermanence, non-self, and dependent origination challenge us to reconsider our assumptions about reality and cultivate a deeper awareness of the interconnectedness of all life.

As we continue to explore and engage with the Tripitaka, we uncover layers of wisdom that speak to the complexities of the human condition. The Buddha's insights, preserved in these ancient texts, offer timeless guidance for navigating the challenges and uncertainties of modern life. Through a critical study of the Tripitaka, we connect with a rich spiritual heritage that has the power to transform our understanding and inspire our practice.

References

- Gethin, Rupert. "The Foundations of Buddhism." Oxford University Press, 1998.
- Harvey, Peter. "An Introduction to Buddhism: Teachings, History and Practices." Cambridge University Press, 1990.
- Rhys Davids, T.W. and Rhys Davids, C.A.F. "Dialogues of the Buddha." Pali Text Society, 1899-1921.
- Wijayaratna, Mohan. "Buddhist Monastic Life: According to the Texts of the Theravada Tradition." Cambridge University Press, 1990.
- Norman, K.R. "Pali Literature." Harrassowitz Verlag, 1983.
- Cousins, Lance S. "The Dating of the Historical Buddha: A Review Article." Journal of the Royal Asiatic Society, 1996.
- Analayo, Bhikkhu. "Satipatthana: The Direct Path to Realization." Windhorse Publications, 2003.
- Wynne, Alexander. "The Origin of Buddhist Meditation." Routledge, 2007.
- Hamilton, Sue. "Early Buddhism: A New Approach: The I of the Beholder." Routledge, 2000.
- Skilling, Peter. "Mahasutras: Great Discourses of the Buddha." Pali Text Society, 1997.

****

Presentation of Women in Girish Karnad's Mythical and Folk Plays: A Case Study

-Dr. Satish Kumar Prajapati
Assistant Professor
Department of English and MEL
University of Allahabad, Prayagraj, UP.

Girish Karnad is one among the multifaceted personalities and who occupies a special position among Indian playwrights. It cannot be false to say that the real Renaissance in Indian theatre, after a long gap, begins with the plays of Karnad. The deep influence of Indian and Western dramaturgy can be seen on his writing. By mixing these two worlds of theatre, he has presented a new type of theatre (can be called hybrid theatre) which appeals both rural as well as urban audience. Among Indian theatres, he has experimented with classical Sanskrit theatre, folk theatre, Parsi theatre; and in Western theatre he has experimented with Proscenium theatre and Epic theatre. In the matter of selection of the themes of the plays, Karnad had a very wide range. He selects themes from classical literature (epic like *Mahabharata*), Indian history, oral narratives and contemporary social problems and many more.

Karnad has portrayed the female characters, in his earlier plays, in accordance with the traditional, typical and stereotype believes of Indian society, but in his later plays he has tried to present the modern women who struggle to get their identity and tries to get important position in the family as well as society. The present paper studies the portrayal of female by karnad in his plays.

The female characters, in Karnad's plays, present the true picture of the position of women in Indian families. He has presented both the perspectives of society about women and women's perspectives about society. He is presented inner psyche, feelings and emotions of female characters in his plays. The most interesting part is that, except few plays, he has mostly presented the second half of the lives of women (after marriage) in his plays. He explains that the real problem in love and other aspects of life begins after the marriage of a girl. His portrayal of female characters in his plays is governed by his personal experiences of life. The female characters are married women and they have extra-marital affairs (either consciously or unconsciously). Karnad gives a bold statement about the extra marital affair. He says, "I used to know a married woman once who positively blossomed after she had an extra marital affair. If womanhood finds fulfilment in love that happens to be outside marriage, why should that be considered wrong? Radha's love for Krishna was such." (Mukherjee, 43) The story behind the acceptance of extra-marital relationship is related to his personal life. His mother was a widow and she had fallen in love with his doctor father. He himself counts that this relation had affected his portrayal of female characters. He says:

> Perhaps the second reason is the way I grow up. I was an adolescent when I learnt that both my parents were married before they married each other. In fact, my mother was a widow when she was nineteen but instead of being confined within her home, she showed extraordinary courage and became a nurse. And that is how my mother met my father. Father had an ailing wife who required nursing. They must have lived together before they finally got married. That made me realise that my mother was human and had human desire. (Mukherjee, 43)

Another point he said that he had got lots of understanding about the experience, feeling and emotions of women from the ladies staying around him. As a playwright he uses all those experience in his plays. In this regard Karnad says:

> There was yet another dimension that may have contributed to my sensitivity to the matter [about woman]. I had several cousins, all girls who lived close to us. The relationship between cousins in south Indian family is quite ambiguous. My cousins were like sisters to me yet they were also potential wives. We played together as children; they shared their confidences with me as adolescents; we become aware of the ambiguity in our relationship as we grew older. This not only made the entire growing up experience extremely intriguing, it also made me understand their emotions and feelings. (Mukherjee, 43)

The richness in the portrayal of female characters comes from there. He had overheard the conversation of ladies around him and got the knowledge of inner feelings and desires of them. In traditional Indian society, male can say anything openly but females are not allowed to do so. Men can have extra marital affair but female can't do so. The one thing, for which the audience likes his plays, is that he has successfully presented that untold or unexplored world of female. The male audience desires to know what a woman thinks when she lives in her own world. On

the other hand female audience gets satisfaction because it explores those desires and feelings to which they cannot state openly.

Biographers, critics and other friends of Karnad have presented lots of similarity among the characters created by Karnad and his personal life. He himself feels that the female characters created by him are complex. They have a lot of similarity with the women around him. He himself says, "And yes, the women in my plays are complex. The plots often derive from their stories. Even a character like Kurudavva in *Nagamandala* is a challenging role to essay. B. V. Karanth once remarked that Kappanna and Kurudavva reminded him of me and my mother." (Mukherjee, 44) Thus the portrayal of women in the plays of Karnad is governed by his personal experience of life. He has presented them rationally and artistically in his plays. Karnad has borrowed the stories from different sources and manipulated the characters according to the need of the plays. He has presented them according to the cultural society but at the same time he has presented their hidden violating desires and ambitions.

Karnad himself, at many times, accepts that he is not good in creating a story. That is why he borrows the themes from other sources. In the plays *Yayati* and *The Fire and the Rain,* Karnad has borrowed the themes from *Mahabharata*. The portrayal of women in these plays is the same**.** In *Yayati*, Karnad has introduced four female characters Devayani, Sharmistha, Chitralekha and Swarnalata. Yayati easily handles Davayani, Sharmistha and Swarlata because they believe in the traditional Indian concept of patriarchal norms and the role of women in typical Indian society. They behave according to Yayati's command and fight each other for Yayati's love. Swarnlatha blames patriarchal concept of the society. About the full lecture of Swarnalatha, B. Yadava Raju comments, "Swarnlatha's narrative once again emphasises the patriarchal norms of the society that expects a woman to prove her innocence. She is never taken on her own worth. (Raju, 86)

Among all these four characters Karnad has presented Chitralekha as a new woman who fights for herself till she dies. She feels cheated by Puru and Yayati. She blames Puru for not consulting her and giving his youth to his father. She says:

> CHITRALEKHA. Cry? Why should I cry
> Swarna, I should laugh. I should cheer . . .
> except that I have been so unfair to him.
> So cruelly unjust. I thought he was an extra ordinary man. What a fool I have been!
> How utterly blind! I am the chosen one and I . . . Which other woman has been so blessed?
> Why should I shed tears? (55-56)

She blames Yayati for ruining the life. Unlike traditional Indian woman she directly asks for physical relations to Yayati and says, "I did not know Prince Pooru when I married him. I married him for his youth. For his potential to plant the seed of the Bharatas in my womb. He has lost that potency now. He doesn't possess any of the quality for which I married him. But you do." (65-66) Thus Chitralekha shows the rebellious mind and the quality of a modern woman. She rebels against imposition forced on her and blames Yayati for her plight.

In *The Fire and the Rain*, there are two women characters, one is Vishakha and the other Nitilai. Vishakha is a character borrowed from the great epic *Mahabharata* while the character of Nitililai is created by Karnad. In the play Vishakha is related to upper class of society and Nittilai is related to lower class tribal woman. In the play caste, class and patriarchal concept of the society becomes the cause of suffering of women. India is a male dominated society and male does not offer equal right to women in family and society. Every woman in India has to listen to their parents before their marriage and husband after marriage. Vishakha is a twenty six year old woman married in a Brahmin family. She is the sufferer of male dominance and forced to marry Paravasu not with Yavkri to whom she loves. Although Yavakri was also a Brahmin but the consent or choice of a girl in family is not considered when her marriage fixes up. Vishakha does not want to marry Paravasu but married him against her wish. Vishakha blames Paravasu for using her body and playing with her feeling and emotions. Although she acknowledges that the first year of her marriage was happier and suddenly the first day of the second year the tragedy begins in her life. Vishakha explains her pathetic part of her life to Yavakri:

> VISHAKHA. Yes father was happy. I was married off to Paravasu. I didn't want to, but that didn't matter. The night of the wedding, my husband said to me: 'I know you didn't want to marry me. But don't worry. I'll make you happy for a year.' And he did. Exactly for one year. He plunged me into a kind of bliss didn't know existed. It was heaven –here and now –at the tip of all my senses. Then on the first day of the second year of our marriage, he said: 'Enough of that. We now start on our search.' And then –it wasn't that I was not happy. But the question of happiness receded into the background. He used my body, and his own body, like an experimenter, an explorer. As instruments in a search. Search for what? I never knew. But I knew he knew. Nothing was too shameful, too degrading, even too painful. Shame died in me. And I yield . . . the site

> of the fire sacrifice is only a couple of hours away from here. But in all these seven years he hasn't come back. (122-123)

Unlike traditional wives, Vishakha blames Paravasu for using her body for sexual satisfaction for one year. Later on as he got the opportunity of being the main priest in *yajna* and he forgets his wife. Vihskha represents the true problem of traditional woman who lives under the patriarchal dominancy. In patriarchal society emotion, feelings and love of woman do not play very significant role. Through the character of Vishakha, Karnad has presented the problem of a woman before and after the marriage.

In our society the relationship between father-in-law and daughter-in-law is very pious but some time the father-in-law feels their daughter-in-law as property and they can be used by anyone. Raibhya, in the play, feels like that and molests Vishakha in the absence of his son Paravasu. She feels psychological tortured by her father-in-law Raibhya. She says:

> VISHAKHA. . . . On the other hand, there's his sense of being humiliated by you. On the other, there is lust. It consumes him. An old man's curdled lust. And there is no one else here to take his rage out on but me . . . (*Raibhya's steps are heard in a distance, as he returns.*) Here it comes. The curb! Scuttling back to make sure I don't defile the Chief Priest as I did Yavakri. Grant me this favour, please. Kill me. (142)

Thus Vishakha explains how lusty and cruel her father-in-law Raibhya is. The humiliation of Vishakha can be seen in the dialogue of Raibhya. He says, "You whore – you roving whore! I could reduce you to ashes –turn you into a fistful of dust – with simple curse." (127). It can also be seen that Yavakri uses Vishakha to defeat Raibhaya and Paravashu. Yavakri feels that he has more knowledge than Paravashu and he hasn't been appointed as chief priest for the *Yajna.* It is in our old tradition that women were used to satisfy men's ego. The examples can be traced in the text like *Ramayana* and *Mahabharata.*

At certain level Vishakha breaks the Indian tradition of virtuous woman and meets Yavakri. Indian tradition does not allow a woman to express her sexual desire to a person who is not her husband. She explains that she is inclined towards him in search of physical as well as emotional satisfaction. She expresses her desire to Yavakri freely. She says, "(*Quietly*) I was so happy this morning. You were so good. So warm. I wanted to envelope you in everything I could give. It was more as a mother that I offered my breasts to you." (132) Vishakha does not fear to show her extra marital relationship with Yavakri to her father-in-law Raibhya. She says directly to Raibhya, "Let him go Arvasu. (*Calmly*)Yes, there was somebody else there. Yavakri! And he had come to see me alone. (127) Thus, unlike typical traditional Indian woman she revolts against the torture she faces in family and society.

Nittilai is another woman in Karnad's *The Fire and the Rain.* She is illiterate but well behaved beautiful girl belongs to hunter tribe. Though she belongs to tribal class of the society, she does not believe in stereotype traditional believes and she does not fear to say that she loves Arvasu, a Brahmin. Unlike Paravasu and Vishakha, they deeply love each other and they are ready to sacrifice anything. Arvasu says, "I'll tell him: I can't give up Nittilai. She is my life. I can't live without her –I would rather be an outcaste –." (113) She explains the true condition of tribal or lower caste woman and explains how higher class people use them. She says, "So father's to blame? Do you know why Father called the elders in such haste? He always says: 'These high-caste men are glad enough to bed our women but not to wed them.'" (114) Thus, one can see that Karnad has presented the caste and class struggle in the play. He presents how low caste women are used by high caste people. He also explains that the intercaste marriage is not allowed in our society and that is why the marriage between Nittilai and Arvasu cannot take place. She marries with a boy of his own caste and tries to be happy. But the love for Arvasu remains in her heart and that becomes the cause of her death. In short, through the character of Nittilai, Karnad has presented a number of social problems of women like the tragic condition of women in patriarchal society, problem of caste, and false nature of Yavakri that he has got universal knowledge etc.

Nagamandala is another play by Karnad based on the folktale that transmits the folk culture of theatre. Like folk theatre it has Chinese box structure (multiple narratives into one story). In main plot, it is a story of two females Rani and Kurudeva. The names of the characters in the play are named in Brechtian manner. The names of the characters represent their traits.

> STORY. A young girl. her name . . . it doesn't matter. But she was an only daughter, so her parents called her Rani. Queen. Queen of the whole wide world. Queen of the long tresses . . . Rani continued to live with her parents until she reached womanhood. Soon, her husband came and took her with him to his village. His name was –well, any common will do –
>
> MAN. Appanna?
>
> STORY. Appanna. (253)

Thus Karnad has given universal appeal by naming his

characters common name based on their traits.

A girl, in India, is called Laxmi of the house. Men touch their feet to get blessings. But after the marriage man becomes God Vishnu to whom goddess serves. The role of women changes after marriage and the problem begins after marriage. If we see the play, primarily it is the story of the suffering Rani (before marriage parents treated her as queen). It explores the marginalisation, humiliation, violence and torture of Rani. About the role of Rani and the theme of the play, G. Sunita and M. Ravichand quote Krishanamayi:

> In the dramatic world of Karnad, women, within and without wedlock, are subjected to various forms of deprivation, humiliation, violence and torture in almost every walk of life in one way or the other. The playwright not only exposes the arbitrariness of the system where women are considered as "second sex," "other," "non-persona" but also questions the way women are socialized to internalize the reigning hegemonic ideology and degrade their own position to perpetuate the on-going subordination and subjugation. Man who is ruled by the mastery-motive has imposed her limits on her. She [Rani] accepts it because of biosocial reasons. (1)

In the play Rani is presented as a typical Indian Woman who carries the tradition value and believes of family as well as society. She gets married as she comes at the age of adolescence and the actual problem begins. She becomes the victim of social disorders and values. In India the concept of patriarchal society runs. The patriarchal society uses marriage as a tool to oppress and exploit woman in various ways. It creates hurdle for a woman in getting their self-actualization, self-identity, self-discovery, etc. Feminist critics have paid much attention at this issue and explained that this is the major issue which subjugate woman at multiple levels like social, physical, mental, etc.

The character of Rani is portrayed by Karnad around the patriarchal concept of the society. Woman in our Indian society is always considered as a second sex. She is always considers as an dependent being on others. In his earlier part of his life as a daughter she depends on her father. In the middle part of her life she depends on her husband as a wife and in the end part she depends on her son as a mother. Rani before marriage depends on her father and post marriage depends on her husband Appanna. She was badly treated by her husband and he locks her in his own house as a prisoner. She also missed the love and physical pleasure (which a woman desires after marriage) because her husband was in love with another lady.

Karnad has given mythical treatment to the story. Rani falls in love with a King Cobra. King Cobra falls in love with her due to the effect of the medicine provided by Kurudavva to her. He assumes the form of her husband and visits her in the night. Rani is unable to understand the mystery of the behaviour of her husband. In ancient days this kind of mythical stories were popular. Rani enjoys love with him and gets physical pleasure. It becomes very surprising element that Rani was ignorant about sex and the birth of a child. Few critics raise the questions regarding these things. Rani not only fulfils her physical desire but also completes her romantic desire. She dreams at nighty in the absence of Naga in the night. The real problem begins when Rani becomes pregnant and Appanna raises questions about her chastity. Naga solves the problem by suggesting her to say that she has never touched any other person apart from the two persons – Appanna and Naga. In the story Rani becomes the puppet in the hand of both Appanna and Naga. She is not allowed to ask question to both Naga and Appanna.

Karnad has presented the real condition of Indian society. In patriarchal society, man is known for his strength and intellect while female is known for his submissiveness, passiveness, obedience, etc. He has portrayed the character of Rani and Appanna around this concept. Apart from realistic part of the life of woman, Karnad has presented romantic part of the life of woman through the story of Naga and Rani. During the visit of Naga at night, Rani forgets each and every thing and enjoys the company of Naga. Rani says, "Let it. I don't feel afraid any more, with you beside me." (124) Rani might have experienced the difference between Appanna and Naga but she never explores her inner conflict to them. In this regard, A. Jaganmohana Chari is quoted by G. Sunita who says: "The dichotomy of lover and husband is in the tradition she has inherited. When she discovers in her experience in the end the difference between Naga's love and that of her husband the feeling of experience hardly crosses the threshold of her consciousness because her experience of her head or her conscience hardly matters in the world of patriarchal hegemony."(3) Karnad has used the communication through the body of Rani. He has used body as language.

Karnad has also presented the relation of mother and son through the character of Kappanna and Kurudavva. The beginning part of the play shows that the relationship between mother and son was very nice but in the last part of the play Kurudavva behaves like a mad woman because her son has gone off after falling in love with a *yaksha* (snake) woman. The pathetic part of the life of Kurudavva can be seen in this dialogue:

KURUDAVVA. Now I wonder about calling him.

They tell me he is not in the village. They think I am mad. I know he is not here. I know he won't come back. But what can I do? How can I sit in the house doing nothing? I must do something for him . . . I must go. Look for my son. Can't waste time like this. Kappanna. Son it's your mother. Don't torment me now, child . . . . (291)

Thus Karnad has not only presented husband-wife and lover-beloved relations but also the relation between mother-son.

Karnad's *Hayavadana* is a play which presents the existential theme of fundamental ambiguity of human being. It also contains some other themes like "search for completeness" or "the mad dance of incompleteness". Karnad in "The Introduction" of Three Plays says about the play, "The play is based on a story from a collection of tales called the *Kathasaritsagara* and the further development of this story by Thomas Mann in '*The Transposed Heads*'" (12). The central figure in this play is Padmini. The character of Padmini is portrayed around the concepts of traditional value, myth and historical believes. Karnad has given priority to the female characters over male characters. Both Kapila and Devadatta try to get the love of Padmini. Padmini is presented as a strong woman who tries her level bet to fulfil the desire to get complete man but she does not say anything openly. In the play, Karnad has explored the psychological part of all the characters and presented the significance of the play in modern age.

In the play, Padmini is a beautiful female character who contains the qualities like attractive, clever, energetic, and more dominant than male characters in the play. About the beauty of Padmini, Devadatta says:

DEVADATTA. The Shyam Nayika –born of Kalidasa's magic description –as Vatsyayana had dreamt her. Kapila, in a single appearance, she has become my guru in the poetry of love. . . .(119-120)

On the other hand, having seen the sparkle beauty of Padmini, Kapila describes:

KAPILA. (*gapes at her. Aside.*)I give up, Devadatta. I surrender to your judgement. I hadn't thought anyone could be more beautiful than the wench Ragini who acts Rambha in our village troupe. But this one you are right –she is Yakshini, Shakuntala, Urvasi, Indumati –all rolled into one.

. . .

Devadatta, my friend, I confess to you I'm feeling uneasy. You are a gentle soul. You can't bear a bitter word or an evil thought. But this one is fast as lightning –and as sharp. She is not for the likes of you. What she needs is a man of steel. But what can one do? You'll never listen to me. And I can't withdraw now. I'll have to talk to her family. (123-126)

The name of Padmini is named after a type of women described in Hindu mythology. It describes Padmini as

Rare sort of women.Most beautiful,pious, graceful. Serves her parents and emits 'lotus' like smell. She has round body and face. Her nose, ear lips are small. They walk like goose. Such women are impressive and can mesmerize Gandharv, Kinnar and even enemies. Rani Padmavati was the perfect example of Padmini women. No wonder Allaudin Khilji lusted after Padmavati so badly. (Web)

In the play Devdatta describes her in the same way. She has that much spark in her eyes and personality that Kapil cannot resist it but on the contrary he also accepts that she need a macho man who can give her physical pleasure.

The play presents the love triangle among Devadatta-Padmini-Kapila. She is a beautiful woman gifted with charming body. She gets married with Devadatta, the rewarded Brahmin of Dharampura. Having married with Devadatta, Padmini enjoys the intellect of Devadatta but she missed the muscular body of Kapila.

Padmini always tries to get a complete man with brain and body. After getting married with Dwevadatta she gets brain but missed the steel body of a man. In order to search for completeness, she shows her attraction towards Kapila. Although she gets completeness by attaching the body of Kapila and the head of Devadatta but it vanishes after some time. The Kali episode shows how she was attracted towards Kapila's body. After getting the perfect man, she feels that she has the best of both world, and happily goes home with Devadatta (after the change of heads). Kapila says, "I know what you want, Padmini. Devadatta's cleaver head and Kapila's strong body . . . ." (148) Karnad mocks on the situation and presents that to find completeness and perfection in life is romantic part of the life and it is next to impossible. Through the character of Padmini, Karnad has presented that a woman always dreams about a perfect man and if she doesn't get, she tries to find someone who is perfect and indulge herself in extra marital affair.

Karnad has used Dolls as a part of dramatic technique. He has used two Dolls to present the inner psyche of Padmini. They see and narrate the dreams of Padmini about Kapila. They reveal the illicit desire of Padmini to which a married woman in Indian society is not supposed to think.

DOLL I. There he is again.

DOLL II. In the middle of the day?

DOLL I (*doubtful*). I'm not sure this is the usual visitor. This one looks rougher and darker.
DOLL II. It's him all right. Look at his face.
DOLL I. he goes to her. . .
DOLL II. . . .very near her . . .
DOLL I (*in a whisper*). What's he going to do now?
DOLL II (even more anxious). What?
(*They Watch*.)
DOLL I (*baffled*). But he is climbing a tree.
DOLL II (*almost a wail of disappointment*). He is dived into a river!
DOLL I. is that all he came for?
DOLL II. It's going . . .
DOLL I. . . . going . . .
DOLL II. Gone! Wrenched dreams! They just tickle and fade away. (161-162)

Dolls are also used by Karnad to present the voices of society in the play. Technically, Karnad has used them at the place where a playwright often uses soliloquy or aside. Karnad has also used them as the chorus in the play they comment and present social point of view on the action of all the three characters (Devadatta-Padamini-Kapila) of the play. About the role of Dolls in the play, Erine B. Mee says' "The dolls are not of all "necessary" to the plot, which can move forward without them, but they are important because they remain spectators of the presence of society –and of propriety. Their attitudes provide some of the motivating force for Padmini's behaviour in that she does some of what she does because of what society will say, and some of what she does *in spite* of what society will say" (151). On the other hand Chorus in the play expresses their sympathetic view of her. They judge the character of Padmini as more mature and sympathetic. So Karnad has used Dolls and Chorus to show the social point of view in the play.

In the end, one can say that Karnad has presented so many facets of woman in his plays. He has not only presented social point of view but also presented psychological, emotional, etc. parts of the woman. In his play *The Fire and the Rain* he has presented the condition of woman how they are suppressed by the social norms of the society. In his folk plays like *Hayavadana* and *Naga-Mandala*, he has presented the psychological and emotional part of a woman with the character like Padmini and Rani. He explains that the patriarchal society restricts the life of woman and provides them limited things to do in their life. They are puppet in the hand of men. Karnad breaks his own believes in his latest play *Wedding Album* and presents the concept of new woman with the help of character like Vidula. With the passage of time he realised that the time has changed now and woman has started to behave independently. The play presents the equality between men and woman. Thus, Karnad has presented multiple facets of woman in his plays.

Works-Cited

Karnad, Girish. *Collected Plays: Vol. One:Tughlaq, Hayavadana, Bali: the Sacrifice, Naga-Mandela.* New Delhi: Oxford University Press, 2005. Print.

- - - . *Collected Plays: Vol. Two:Tale-Danda, The Fire and the Rain, The dream of Tipu Sultan, Two Monologues: Flowers, Broken Images.* New Delhi: Oxford University Press, 2005. Print.

- - - . Three Plays, Naga-Mandala, Hayavadana, Tughlaq. New Delhi: Oxford University Press, 2009. Print.

- - - . *Wedding Album*. New Delhi: Oxford University Press, 2009. Print.

- - -. Yayati. New Delhi: Oxford University Press, 2008. Print.

Mee, Erin B. "*Hayavadana*: Model of Complexity". *Girish Karnad's Plays: Performance and Critical Perspectives*. Ed. Tutun Mukherjee. Delhi: Pencraft International, 2006. Print.

Mukherjee, Tutun, "A Conversation with Girish Karnad". *Girish Karnad's Plays: Performance and Critical Perspectives*. Ed. Tutun Mukherjee. Delhi: Pencraft International, 2006. Print.

Srinivasan, Amrit. "Forward". Wedding Album. New Delhi: Oxford University Press, 2009. Print.

Sunitha, G. & Dr. M. Ravichand. "Feminism in Girish Karnad's Nagamandala." Web.< http://www.academia.edu/4425082/Feminism_in_Girish_Karnad_s_Nagamandala_>

Types of Women as Hindu Mythology. https://girlandworld.com/2016/04/18/types-of-women-as-hindu-mythology/ (Web).

****

अन्य विमर्श

शिक्षा में आई. सी. टी., ई-कामर्स का नया आयाम, विकास और जागरूकता

डॉ. अरुण कुमार चतुर्वेदी,
असि. प्रो. बी.एड्.
एल.एस.एम.राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय पिथौरागढ़ 262502
Email- chaturvedidrak@gmail.com
Mo. No. 9450608657

शोध सार-

मानव जीवन में शिक्षा की भूमिका बहुत महत्वपूर्णं है। जन्म से बालक पशुवत व्यवहार करता रहता है। उसके व्यवहार में सौन्दर्य लाने का कार्य शिक्षा करती है। शिक्षा के द्वारा ही समाज अपनी संस्कृति की रक्षा करता है और सभ्यता के रथ को आगे बढ़ाता है। जीवन की उदारता उच्चता सौन्दर्य एवं उत्कृष्टता शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। बालक की वैयक्तिक प्रगति उसका शारीरिक मानसिक एवं भावात्मक विकास तब तक भली प्रकार नहीं हो पाता जब तक वह शिक्षा न ग्रहण करे। शिक्षा को सदैव से ही समाज तथा राष्ट्र की प्रगति के एक महत्वपूर्णं तथा शक्तिशाली साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है। यही कारण है कि प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सदैव ही शिक्षा को सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से एक सम्मान जनक स्थान दिया जाता रहा है। इस शोधपत्र में ई-कामर्स के नये-नये आयामों और विधि के विकास और इसके प्रति लोगो के जागरूकता को उजागर करने का प्रयास किया गया है। ई-कामर्स व्यवसाय करने का एक उभरता हुआ माडल है। यह एक प्रकार खरीद-बिक्री करने का माडल है जिसमें इंटरनेट का उपयोग किया जाता है । इसके दो बुनियादी प्रकार है: व्यवसाय से व्यवसाय और व्यवसाय से उपभोक्ता जिसमें कम्पनियां अपने आपूर्तिकर्ताओं, वितरको एवं दूसरे सहयोगियों के साथ इलेक्ट्रानिक नेटवर्क के माध्यम से व्यापार करती है। इसके बाद भी कई दूसरे तरह के ई-कामर्स माडल भी चर्चा में है जैसे कि उपभोक्ता से उपभोक्ता , उपभोक्ता से व्यापार आदि। ई-कामर्स की अवधरणा का आशय इंटरनेट अर्थव्यवस्था एवं डिजिटल अर्थव्यवस्था से है। इसमें राजस्व उत्पन्न करने के लिए इंटरनेट का उपयोग किया जाता है। ई-कामर्स का विकास इलेक्ट्रानिक डाटा इंटरचेंज के बाद हुआ। पहले कम्पनियां इसका उपयोग व्यवसायिक दस्तावेजों के आदान प्रदान के लिए करती थी। धीरे-धीरे इसका प्रारूप बदला और कम्पनियों में इसका उपयोग सामान खरीदने एवं बेचने के लिए करना आरम्भ कर दिया। फलस्वरूप यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया।

मूलशब्द- शिक्षा जागरूकता , ई-कामर्स , उपभोक्ता, इंटरनेट, आनॅलाइन और खुदरा खरीददारी

प्रस्तावना-

आज के आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में विद्यार्थियों को विभिन्न समस्याओं एवं प्रतियोगी परीक्षाओं का सामना करना पड़ता है। अतः विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को ध्यान मे रखकर विभिन्न क्षेत्रों मे शोध कार्य हुए एवं इसके बाद भी शिक्षा के विभिन्न क्षेत्र अभी भी अछूते रह गये है। ई-कामर्स या ई- व्यवसाय इंटरनेट के माध्यम से व्यापार का संचालन है। न केवल खरीदना और बेचना,बल्कि ग्राहको के लिए सेवाए और व्यापार के भागीदारों के साथ सहयोग भी इसमें शामिल है। बुनियादी ढ़ाचे,उपभोक्ता और मूल्य वर्धित प्रकार के व्यापारों के लिए इंटरनेट कई अवसर प्रस्तुत करता है। वर्तमान में कंम्प्यूटर, दूरसंचार और केबल टेलिविजन व्यवसायों में बड़े पैमाने पर विश्वव्यापी परिवर्तन हो रहे है। 21वीं सदी ने आनलाइन व्यापारों के लिए असीम अवसर एवं प्रतिस्पर्धा का वातावरण प्रदान किया है। अनेक आनलाइन व्यापारिक कंपनियो की स्थापना हुई है और अनेक मौजूदा कंपनिया आनलाइन शाखाएं खोल रखी है। आमतौर पर ई-कामर्स के रूप में इलेक्ट्रानिक वाणिज्य, इंटरनेट जैसे कंम्प्यूटर नेटवर्क का उपयोग,उत्पादों या सेवाओं में कारोबार कर रहा है। मौजूदा समय में आनलाइन शापिंग दुनियाभर के लोगो का मन पसंद काम बन गया है। इस प्रकार ई-कामर्स ने लोगो की जीवन शैली को और भी आसान और सुविधापूर्ण बना दिया है। जहॉ उपभोक्ता किसी भी समय किसी भी जगह से शापिंग कर सकता है। साथ ही धनराशि जमा करने को भी सुविधाजनक व उपभोक्ता के अनुरूप विकल्प होते है। इसमें उपभोक्ता अपनी आवश्यकता के अनुरूप उत्पादों को खोजकर आनलाइन शॉपिंग करते हुए अपने समय व धन को बचा सकता है।

ई-कामर्स के साथ यह बहुत ही अच्छी बात है कि यह खुदरा विक्रेताओं व उपभोक्ताओं की खरीदने की आदतों पर निरंतर नजर रख सकता है। इतना ही नही यह उपभोक्ताओं की आवश्यकता के हिसाब से ऑफर पर भी ध्यान बनाये रखता है। ग्राहको की आवश्यकताओं को लगातार संतुष्ट करके उनके साथ संबन्धों को बेहतर बनाया जा सकता है, जो कि बाद में दीर्धकालीन संबधों में बदल सकते है। नये ग्राहको को आकर्षित करने के लिए पुराने ग्राहको द्वारा किसी उत्पाद की रेटिंग तथा उसकी समीक्षा उस उत्पाद की बिक्र्री की और ज्यादा बढ़ा सकती है। इससे यह भरोसा बढ़ता है कि उत्पाद बढ़िया तथा प्रभावी है।

अध्ययन का उद्देश्य-

इस प्रपत्र का मुख्य उद्देश्य आधुनिक युग में शिक्षा के क्षेत्र में ई-कामर्स का नया आयाम एवं विकास और जागरूकता के विषय को उजागर करना है जिसमें प्राथमिक और गौण ऑकड़ो का गुणात्मक तथा मात्रात्मक रूप से विश्लेषण किया गया जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस अध्ययन से संबधित है। इसका प्रमुख उद्देश्य निम्न प्रकार है-

विद्यार्थियों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास।
ई-कामर्स की परिभाषा एवं वर्तमान में इसका महत्व।
ई-कामर्स की विभिन्न श्रेणियों का परिचय एवं वर्णन।
ई-कामर्स के लाभों की व्याख्या किया जा सकें।
ऑनलाइन खरीददारी एवं खुदरा खरीददारी तुलनात्मक अध्ययन।

इंटरनेट, **ई-कामर्स की परिभाषा एवं वर्तमान में इसका महत्व-**

इंटरनेट का उपयोग करते हुए हम सोशल नेटवर्क फेसबुक, माईस्पेस, ट्विटर ब्लाग्स,विक्किस, टैक्सट मैसेजिंग इत्यादि का उपयोग करते हुए पारस्परिक संवाद स्थापित करते हैं। यह संवाद माध्यम बहु-संचार संवाद का रूप धारण कर लेता है जिसमें पाठक, दर्शक, श्रोता तुरंत अपनी

टिप्पणी न केवल लेखक/प्रकाशक से साझा कर सकते हैं, बल्कि अन्य लोग भी प्रकाशित/प्रसारित/संचारित विषय-वस्तु पर अपनी टिप्पणी दे सकते हैं। यह टिप्पणियां एक से अधिक भी हो सकती हैं अर्थात् बहुधा सशक्त टिप्पणियां परिचर्चा में परिवर्तित हो जाती हैं। उदाहरणतः आप फेसबुक को ही लें - यदि आप कोई संदेश प्रकाशित करते हैं और बहुत से लोग आपकी विषय-वस्तु पर टिप्पणी देते हैं तो कई बार पाठक-वर्ग परस्पर परिचर्चा आरम्भ कर देते हैं और लेखक एक से अधिक टिप्पणियों का उत्तर देता है। सोशल मीडिया वास्तव में परम्परागत मीडिया का संशोधित रूप है जिसमें तकनीकी क्रांतिकारी परिवर्तन व इसका नया रूप सम्मलित है। सोशल मीडिया का प्रयोग करने हेतु कम्प्यूटर, मोबाइल जैसे उपकरण जिनमें इंटरनेट की सुविधा हो, की आवश्यकता होती है। सोशल मीडिया प्रत्येक व्यक्ति को विषय-वस्तु का सृजन, परिवर्धन, विषय-वस्तु का अन्य लोगों से साझा करने का अवसर समान रूप से प्रदान करता है।

ई-कामर्स एक ऐसी कार्यप्रणाली है जिसके द्वारा इंटरनेट का प्रयोग कर के सामान खरीदा और बेचा जाता है। ई-कामर्स का प्रारम्भ 1990 का दशक माना जाता है और आज इसका चलन तेजी से बढ़ गया है। इस समय लगभग हर कम्पनी की अपनी अलग आनलाइन उपस्थित है तथा वह अपनी दमदार पहचान बनाने में जुटी है। देखा जाय तो ई-कामर्स एक अवश्यकता भी बन गयी है। घरेलू सामान से लेकर कपड़ा, किताबें, फर्निचर, बिल्स, फोन चार्ज, यात्रा टिकट,मनोरंजन सब कुछ आनलाईन है। आज बड़ी-बड़ी कम्पनियां जैसे-पेटीयम, अमेजन, फ्लिपकार्ट आदि इस प्रकार की सेवायें प्रदान कर रही है। जिसमें केवल एक क्लिक से जहॉ चाहे वहॉ सामान मगाया जा सकता है। ओ.एल.एक्स के द्वारा तो हम अपने सामानों की निलामी भी कर सकते है। उपभोक्ता किस प्रकार अपने सामानों का भुगतान करें इसका भी विकल्प दिया होता है। उपभोक्ता अपने पसंद की भुगतान सुविधा का चयन कर सकता है। वर्तमान में किसी भी देश के नागरिको को बेहतर जीवन स्तर यापन करने तथा अन्य देशो के साथ व्यावसायिक सम्बन्धों को मधुर बनाने में भी महत्वपूर्ण योगदान करता है।

ई-कामर्स की श्रेणियों का परिचय एवं वर्णन- उद्योगो द्वारा उत्पादन की गयी सामाग्री को समय-समय पर उचित बाजार में वितरित करना तथा माल के वितरण का सम्पूर्ण प्रबन्धन वाणिज्य के अन्तर्गत आता है। इन सभी कार्यो को देखते हुए ई-कामर्स की निम्न श्रेणियां बनायी गयी है-

व्यापार से व्यापार- (बी0 2 बी0) -जब दो या दो से अधिक कम्पनियां आपस में सामान या सेवाओं का लेन-देन इलेक्ट्रानिक तरिके से करती है तो इस तरह के ई-कामर्स को बी0 2 बी0 कहते है। उत्पादक और थोक व्यापारी इस तरह के ई-कामर्स में शामिल होते है।

व्यापार से उपभोक्ता (बी0 2 सी0)-यह ई-कामर्स खुदरा व्यापार की तरह होता है। इसमें परम्परागत खुदरा कारोबारी अपने उत्पाद को सीधे उपभोक्ताओं को इलेक्ट्रानिक माध्यम से बेचते है। वर्तमान में इस ई-कामर्स का चलन बहुत ही अधिक है। दैनिक उपयोग से लेकर जरूरत की लगभग सभी बस्तुएं आज ई-कामर्स के बहुत से प्लेटफार्म पर उपलब्ध है।

उपभोक्ता से व्यापार (सी0 2 बी0)-इसे रिवर्स नीलामी या मॉग संग्रह माडल भी कहते है। इस माडल में अलग-अलग ग्राहक अपनी सेवाओं और सामाग्री को उन कम्पनियों को बेचने की पेशकश करते है जो उन्हे खरीदने के लिए तैयार होते है। इस प्रकार का ई-कामर्स बहुत आम है।

व्यापार से प्रशासन (बी0 2 ए0)- सभी प्रकार के आनलाईन लेन-देन जो कि कम्पनियों और सार्वजनिक प्रशासन के मध्य होते है इसके अन्तर्गत आते है। इस माडल में विभिन्न प्रकार की सेवाएं आती है। जैसे कि वित्तिय, सामाजिक सुरक्षा रोजगार, कानूनी दस्तावेज आदि क्षेत्र।

उपभोक्ता से प्रशासन (सी0 2 ए0)- व्यक्तियों और लोक प्रशासन के मध्य किए गये सभी इलेक्ट्रानिक लेन-देन इस प्रकार के ई-कामर्स में शामिल होते है। जैसे-शिक्षा, कर, स्वास्थ्य सेवाएं।

इंटरनेट एक ऐसी तकनीकी है, जिससे कम्प्यूटर्स के नेटवर्क का प्रयोग किया जाता है जिससे कि लोगों को विभिन्न प्रकार की सूचनायें प्राप्त होती है। इंटरनेट के माध्यम से विभिन्न प्रकार के डाक्यूमेंट्स, वैज्ञानिक ऑकड़े, रूचि सूची तथा विभिन्न प्रकार का विज्ञापन एवं संस्थानों के विषय में सूचनायें उपलब्ध होती है। ये सूचनायें विश्व के किसी भी कोने से प्राप्त की जा सकती है, ये सूचनायें बड़ी सरलता से और त्वरित गति से प्राप्त हो जाती है। यदि घर में टेलीविजन और निजी कम्प्यूटर हो तो अति आधुनिक प्रौद्योगिकी की मदद से हम भली भॉति जानकारी प्राप्त कर सकते है, भरपूर मनोरंजन कर सकते हैं और शिक्षा प्राप्त कर सकते है। सूचनाओं के मुक्त प्रवाह और ज्ञान में भागीदारी के फलस्वरूप हमारे सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक जीवन में गुणात्मक परिवर्तन हो रहे है। नवीन संचार और कम्प्यूटर प्रौद्योगिकी के जरिये स्थापित नेटवर्क से उपलब्ध ज्ञान एवं कौशल तक पहॅुचाने के असीम अवसर पैदा हो रहे हैं। इंटरनेट को मोटे तौर पर कम्प्यूटरों के विश्वव्यापी नेटवर्क के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो एक प्रोटोकाल सूचना के आदान.प्रदान सम्बन्धी नियम के जरिये संचार करते है। इंटरनेट के माध्यम से सर्वाधिक विविध श्रोतों से सूचनाओं तक पहुचा जाता है, जिसमें व्यक्तियों और विश्व भर के संगठनों का योगदान होता है, उन्हें नेटवर्क ऑफ सर्वर्स कहा जाता है। इंटरनेट का एक वर्ल्ड वाइड वेब है, जिसे मात्र बेब भी कहा जाता है। जो विभिन्न संगठनों, वाणिज्यक प्रतिष्ठानों, आम अथवा खास हितों से सम्बद्ध समूहों अथवा निजी व्यक्तियों द्वारा बनाये गये वेब पृष्ठों में विभिन्न प्रकार की जानकारी उपलब्ध होती है, जैसे पाठ्य-सामग्री, तस्वीर, एनीमेशन, मल्टीमीडिया आदि। इसे हासिल करने के लिये सामान्य शुल्क अदा करना पड़ता है और कभी.कभी बिना किसी लागत के यह जानकारी उपलब्ध हो जाती है। वेबपृष्ठों से ईमेल, कान्फ्रेसिंग, इलेक्ट्रानिक पब्लिकेशन्स जैसी सेवायें और अन्य व्यवसायिक सुविधायें उपलब्ध होती है, इंटरनेट पाठ्य सामग्री अथवा सूचना को विश्व में एक स्थान से दूसरे स्थान पहुचाने का एक नया माध्यम है, जो अत्यन्त शीघ्र सस्ते में और आसानी से संचार करता है, हलांकि यह स्वयं अन्तरक्रिया नहीं करता किन्तु उपयोगकर्ता कम्प्यूटरों की बदौलत इस पर नियंत्रण रखते है, जो उन्हें नेटवर्क पर सूचना भेजने और प्राप्त करने में मदद पहुचाते है।

ई-कामर्स के लाभ-ई-कामर्स के महत्वपूर्ण लाभों में से एक यह है कि बिना ज्यादा निवेश किये अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में पहुच आसानी से हो जाती है। ई-कामर्स के माध्यम से व्यापार की सीमाओं को तय नहीं किया जाता है बिना किसी रोक टोक के किसी भी देश के आपूर्तिकर्ता से उत्पाद या सेवाऔं के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकते है या उसे खरीद सकते है। इस माध्यम से अन्तिम उपभोक्ता सीधे ही लेन-देन कर उत्पाद वितरण श्रृखला को कम करता है या यह भी कहा जा सकता है कि कहीं-कहीं पूरी तरह से ही समाप्त कर देता है।इस तरह सेवा प्रदाता या आपूर्तिकर्ता एवं अन्तिम उपभोक्ता के मध्य सीधा सम्बन्ध होने से उपभोक्ता के पसन्द और रूचि को समझने में आसानी होता है। व्यापार के दृष्टिकोण से ई-कामर्स विपणन ,ग्राहक सेवा , सूचना भंडारण, वस्तु सूची प्रबन्धन की कीमतो में कटौती के लिए बहुत उपयोगी है। इसके माध्यम से सस्ते तथा

गुणवत्तापूर्ण उत्पाद देखने को मिलते है। ई-कामर्स संगठनों को सूचनाओं का डिजिटलीकरण करके कागज आधारित जानकारी को सीमीत बनाने तथा लागतो को कम करने में मदद करता है।

मौजूदा समय में आनलाइन शॉपिंग दुनिया भर के लोगो का मन-पसंद काम बन गया है।इस प्रकार ई-कामर्स ने लोगो की जीवनशैली को और भी आसान और सुविधाजनक बना दिया है। जहॉं उपभोक्ता किसी भी समय, किसी भी जगह से आसानी से शॉपिंग कर सकता है।

ऑनलाइन खरीददारी एवं खुदरा खरीददारीः तुलनात्मक अध्ययन- आनलाईन शॉपिंग कई लाभ और फायदे देती है। लेकिन यह खुदरा शापिंग को कभी भी प्रतिस्थापित नही करेगी। एक उपभोक्ता जिसे पता है कि उसे क्या खरीदना है वह आनलाइन उन वस्तुओं को विभिन्न साइटों में देखकर उनकी तुलना कर सर्वोत्तम वस्तु या सेवा को क्रय करता हैं। खुदरा स्टोर में वस्तुएं बहुत सजावटी तरीको से लगाई गयी होती है। जहॉं विभिन्न उत्पाद एक के बाद एक लगे होते है। साथ ही ए.सी. और संगीत एक बहुआयामी खरीददारी वातावरण वनाती है, इसी वजह से कई लोग माल या डिपार्टमेंन्टल स्टोर पर मनोरंजन के लिए भी जाते है। बहुत से लोग कम्प्यूटर से पूर्ण रूप से सहज ना हो पाने के कारण खुदरा खरीददारी को ही पसंद करते है। साथ ही साथ कई लोग भौतिक खरीददारी को व्यायाम से भी जोड़ कर देखते है कि कुछ चहलकदमी करते हुए सामान भी खरीद कर ले आये।

आनलाईन स्टोरों में टेक्स्ट, मल्टीमीडिया फाइल तथा फोटो के साथ उत्पाद का पूर्ण विवरण होना चाहिए,जबकि एक खुदरा स्टोर में वास्तविक उत्पाद प्रत्यक्ष होने पर ग्राहक उससे सम्बन्धित जानकारी दुकानदार से पूछ कर संतुष्ट हो सकता है। ये सब सुविधा आनलाईन शॉपिंग में नही मिल पाती।

परिकल्पना-

- इसके लिए कम्प्यूटर तथा इंटरनेट माध्यम को और अधिक सुरक्षित करना होगा।
- नियमो और कानूनों को अनदेखा न करके उनका पालन करना-कराना होगा।
- भ्रामक विज्ञापनों के संचालको पर कठोर कार्यवाही होना भी आवश्यक है।
- ऐसे मामलो में पारदर्शिता और स्पष्टता का होना आवश्यक है

अध्ययन की विधि-

प्रस्तुत शोधपत्र द्वितीयक समंको पर आधारित है जिसमें समग्र रूप से सम्पूर्ण विश्व को एक बाजार मान कर अध्ययन किया गया है। विश्लेषण,व्याख्या एवं तुलनात्मक अध्ययन विधि द्वारा उद्देश्यों का अध्ययन कर निष्कर्ष निकाला गया है।

निष्कर्ष एवं सुझाव-

भारत में राष्ट्रीय स्तर पर इंटरनेट के उपयोग सामुदायिक सूचना केन्द्र, ई-प्रशासन योजना तथा ई-शिक्षा के रूप में महत्व दिया जा रहा है। वर्तमान में देश मे इंटरनेट के ग्राहको की संख्या अत्यधिक ऊपर पहुॅंच गयी है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में इंटरनेट कैके लोकप्रिय होने लगे हैं। हम सूचना प्रौद्योगिकी के युग में रह रहे है। धीरे-धीरे इंटरनेट ने हमारे जीवन यापन के तरीके को बदल दिया है। आज हम इंटरनेट का उपयोग अपने दैनिक कार्यो में करने लगे है, जैसे की बिलो का भुगतान करना हो या बैकिंग से सम्बन्धित कार्य हो या कोई अन्य सामान खरीदना हो या बेचना हो बीमा कराना हो, होटल की बुकिंग इत्यादि सभी कार्यो में इंटरनेट उपयोग होने लगा है। पिछले कुछ समय से ई-कामर्स व्यवसाय करने का मुख्य अंग गन गया है। यदि यह कहा जाय कि ई-कामर्स के बिना व्यवसाय सम्भव नही है,तो कोई अतिशयोक्ति नही होगा। ई-कामर्स केवल बी.-टू-बी. या बी.-टू-सी. व्यवसाय ही नही करता बल्कि इसने आनलाइन ट्रेडिग,शेयर बाजार, वित्तिय बाजार एवं कमोडिटी एक्सचेंज के तरीको को बदल दिया है। ई-कामर्स सिर्फ संगठनों को ही फायदा नहीं पहुॅंचाता बल्कि ग्राहको को भी इससे बहुत फायदा है। आज ग्राहक के पास समय नही है। यह दुकान में जाकर सामान खरीदने में समय बर्बाद नहीं करना चाहता। ऑनलाइन शॉपिंग से लेकर, ऑनलाइन डेटिंग,जीवन साथी की खोज, खेल आदि सभी जरूरतो को इंटरनेट के माध्यम से पूरा किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

1. भारतीय संस्कृति एवं युवा लोकमंगल, इन्टरनेट पत्रिका, वर्ष 2008
2. सांस्कृत्यायन राहुल, जून 2018 तक भारत में हो जाएंगे 50 करोड़ इंटरनेट यूजर्स
3. अप्रैल 2016 कम्प्यूटर संचार सूचना पेज नं. 9 पत्रिका
4. कम्प्यूटर संचार सूचना/अप्रैल 2016 पेज नं. 10
5. सुखिया एस0पी0- शैक्षिक नेतृत्व एवं प्रबन्धन- अग्रवाल पब्लिकेषन्स, पृष्ठ संख्या-154।
6. अग्रवाल जे0सी0- शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्ध-, अग्रवाल पब्लिकेषन्स, आगरा-2, पृष्ठ संख्या-95।

7. E-commerce, Ritendra Goel, New Age International (P) Limited
Publishers.

8. Business Expert Systems, C. W. Holsapple and A. B. Whinston,
Irwin,, Homewood, IL, 1987.

9. Albert H., Judd, Rivers, (2006) "Creating a winning E-Business",
Wagner Course Technology Thomson Learning, pp. 37-255.

10. Alawneh A., and Hattab E, (2007) "E-Business Value Creation:
An Exploratory Study.

Web References:

1. http://www.uat.edu/online-business-technology-degree
2.https://www.arpatech.com/blog/technologies-required-forecommerce-store/
guides/usinginternet/connecting-internet/what-internet

****

औपनिवेशिक बनारस : धार्मिक सांस्कृतिक स्वरूप और हिन्दू पुनर्जागरण

-डॉ. शिव नारायण
सहायक प्रो. इतिहास विभाग
डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, बी.एच.यू., वाराणसी

शोध सारांश

काशी का समग्र सांस्कृतिक परिवेश काशी के धार्मिक और आध्यात्मिक स्थिति के इर्द-गिर्द ही घूमता है। या यूँ कहें कि काशी के धार्मिक-आध्यात्मिक स्थिति से इतर कोई संस्कृति है ही नहीं। यह नगर हिंदुओं के लिए अटूट धार्मिक पवित्रता, पुण्य एवं प्रज्ञा का प्रतीक रहा है। यहाँ न केवल हिन्दू धर्म अपने सभी संप्रदायों के साथ पल्लवित एवं पुष्पित होता रहा है अपितु बौद्ध और जैन धर्मों के सिद्धांत भी यही उद्घोषित हुये थे। वास्तव में यहाँ धार्मिक-आध्यात्मिक स्वरूप आस्था और मान्यता पर आश्रित है। औपनिवेशिक शासन के दौरान बनारस राष्ट्रवादी आन्दोलनों के एक केन्द्र के रूप में उभरा, साथ ही इसने अपनी धार्मिक सांस्कृतिक अस्मिता को अक्षुण्ण रखा। औपनिवेशिक काल में हिन्दू परम्परा और संस्कृति को मजबूत बनाने में किन लोगों ने योगदान दिया ? जैसे प्रश्न मुझे सोचने के लिए विवश किये और मुझे बनारस के धार्मिक एवं सांस्कृतिक अतीत और उसमें रहने वाले लोगों के सामूहिक गतिविधियों पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता पड़ी। प्रस्तुत शोध पत्र 18वीं और 19वीं शताब्दी में बनारस में हिन्दू पुनर्जागरण के केन्द्र के रूप में धार्मिक सांस्कृतिक प्रणाली की खोज पर केन्द्रित है।

बीज शब्द: काशी, बनारस, आध्यात्मिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पुनर्जागरण, हिन्दुत्व।

बनारस से संबन्धित महत्त्वपूर्ण कार्य एम.ए. शेरिंग (बनारस पास्ट एंड प्रेजेंट), ई.बी हैवल (बनारस : दि सेक्रेड सिटी), एडविन ग्रिव्स (काशी : द सिटी इलुस्ट्रियस बनारस), ए.एस. अल्तेकर (हिस्ट्री ऑफ बनारस), के. एन. सुकूल (बनारस डाउन द एजेज़), डाइना एल.एक. (बनारस द सिटी ऑफ लाइट), सैंड्रिया, बी. फ्रिटैग (कल्चर एंड पावर इन बनारस : कम्यूनिटी, परफ़ार्मेंस एंड एनवायरमेंट), नीता कुमार (द आर्टिसन्स ऑफ बनारस : पॉपुलर कल्चर एंड आइडेंटिटी), मोतीचंद (काशी का इतिहास) द्वारा किए गए हैं। उपर्युक्त पुस्तकों में बनारस के सांस्कृतिक जीवन, धार्मिक रीति-रिवाज, अर्थव्यवस्था तथा बनारस के सामान्य इतिहास पर प्रकाश डाला गया है।

धर्म एवं अध्यात्म की नगरी काशी या बनारस भक्ति, संगीत, कला, साहित्य, शिल्प, शिक्षा आदि का अद्भुत संयोग है। यह नगर भारतीय संस्कृति का सजीव केंद्र है क्योंकि इसने संस्कृति के विभिन्न रंगों को अपने आँचल में समाहित कर रखा है। यद्यपि इस नगर के उत्पत्ति का कोई निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है फिर भी यह दुनिया के प्राचीनतम नगरों में से एक है। इसकी प्राचीनता के बारे में कहा गया कि "जब एथेंस की कल्पना भी नहीं की गयी थी, तब भी काशी थी। जब इजिप्ट नहीं था तब भी काशी थी।" प्राचीन समय में काशी वाराणसी की राजधानी थी। बौद्ध साहित्य में इस नगर को प्राचीन काशी राज का केंद्र माना गया है। बनारस विश्व के प्राचीन नगरों में धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वप्रमुख होने के साथ ही साथ प्राचीन नगरों के समान ही नदी घाटी में स्थित है। गंगा नदी के किनारे बसा यह शहर अपने घाटों, मंदिरों, ब्रह्मपुरियों, हवेलियों एवं महलों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। हिन्दू धर्म में ऐसी मान्यता है कि काशी की भूमि पर मरने से जीव को माया के बंधनों से मुक्ति मिलती है एवं उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

बनारस परम्परा और इतिहास दोनों ही दृष्टियों से विश्व की प्राचीनतम नगरियों में से एक है। इस नगर का महत्व धर्म एवं संस्कृति के समन्वयमूलक अजस्त्र प्रवाह के कारण विश्व के किसी भी प्राचीन नगर के तुलना में अधिक है। औपनिवेशिक काल में जब भारत के समस्त नगरों में पश्चिम के भौतिकवादी संस्कृति का प्रभाव दृष्टिगोचर हो रहा था और नवीन परिवर्तन के दौर से ये नगर गुजर रहे थे। ऐसी स्थिति में बनारस ने अपनी हिन्दू अस्मिता और संस्कृति को अपरिवर्तनीय रखने में सफलता अर्जित की। वास्तव में बनारस को सम्मिश्र भारतीय संस्कृति का एक प्रतिनिधि ऐतिहासिक नगर माना जा सकता है। डा. मोतीचन्द्र ने *काशी के इतिहास* में लिखा है कि- 'सुदूर प्राचीन काल में वाराणसी की स्थापना का आधार धार्मिक न था। इतिहास से हमें पता चलता है कि हिन्दू धर्म से बनारस का सम्बन्ध बहुत बाद की घटना है।'[1] वे लिखते हैं कि वास्तव में उस प्राचीन युग में काशी का सनातन आर्य धर्म से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था।[2]

बनारस अपनी भौगोलिक एवं ऐतिहासिक स्थिति के कारण एक व्यापारिक केन्द्र के रूप में विकसित हुआ जिसने उसे न केवल व्यापारिक

समृद्धि प्रदान की बल्कि धार्मिक तीर्थ के रूप में भी उसका विशेष उत्थान किया। बौद्ध ओर जैन धर्म के संस्थापकों के जीवन सम्बन्ध होने की वजह से इस दौर में काशी धर्म एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। मध्यकाल में इस्लाम के आक्रमण के फलस्वरूप हिन्दू धर्म में प्रत्यक्ष कोई परिवर्तन नहीं हुआ, परन्तु 1194 ई0 से 1708 ई0 तक के पाँच सौ वर्ष हिन्दुओं के लिए बहुत कठिनाई के थे। इन दिनों काशी के मन्दिरों के नष्ट होने की कथा-व्यथा से इतिहास अनजान नहीं है। लेकिन इस स्थिति में परिवर्तन 18वीं शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन और मराठों के उत्कर्ष से शुरू हुआ। बनारस में महाराज बलवन्त सिंह का अधिकार भी इसी के थोड़े दिन बाद हुआ। सोलहवीं सदी से ही मराठी विद्वान काशीवास के निमित्त काशी आकर बसने लगे थे।[3] इनके आगमन के फलस्वरूप नष्ट हुए मन्दिरों का जीर्णोद्धार एवं पुनः नवनिर्माण की प्रक्रिया बनारस में बलवती हुई। इस काल में इन्दौर की रानी अहिल्याबाई और मराठा सरदारों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। बनारस और उसके आस-पास के क्षेत्रों में जिन मूल लोक मान्यताओं और देवी-देवताओं का प्रचार था उसे प्रधान देवता 'रुद्र शिव' के अन्तर्गत बहुत कुछ समावेश करते हुए शिव को महादेव के रूप में ब्राह्मण भक्तिधर्म के त्रिदेव में प्रमुख स्थान मिला। फलस्वरूप औपनिवेशिक दौर में विश्वेश्वर, अन्नपूर्णा, कालभैरव, त्रिलोचन तथा साक्षी विनायक के मन्दिर मराठा लोगों ने बनवाये। उस समय के सरकारी आंकड़ों से पता चलता है कि मराठों और बंगालियों ने यहाँ धार्मिक उन्नति के लिए बहुत दान दिया है। औपनिवेशिक हिन्दू धर्म ईसाइत के प्रचार-प्रसार के बावजूद भी निरन्तर प्रगति की ओर उन्मुख था।

18वीं और 19वीं शताब्दी में क्षेत्रीय शक्तियों का जब विस्तार हो रहा था, ठीक उसी समय बनारस में मर्चेन्ट, बैंकरों, और भिक्षुक व्यापारी (गोसाईं) की बढ़ती हुई सांस्कृतिक और व्यापारिक रूचि ने न केवल बनारस शहर का सांस्कृतिक परिवर्तन किया बल्कि 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक हिन्दू परम्परावादी वर्चस्व पूरी तरह स्थापित हो गया था।[4] इस दौर में बनारस ने न केवल हिन्दू परम्परा और धर्म को शिखर पर पहुँचाया अपितु हिन्दुओं ने अपने धार्मिक मूल्यों, रीति-रिवाजों, संस्कारों एवं धारणाओं के साथ साँझी हिन्दू-संस्कृति और परम्परा की रक्षा करने में सफल रहा। इस दौर में मराठों ने बनारस में हिन्दू धर्म उत्थान के लिए बहुत सी ब्रह्मपुरियाँ, आश्रित ब्राह्मणों के लिए आवास एवं घाटों के किनारे बहुत से हिन्दू मंदिरों का निर्माण कराया।[5] इसके साथ ही यहाँ का हिन्दू व्यापारी वर्ग जिसका शहरी जनसंख्या का अनुपात करीब 20% से 30% तक था, इन लोगों द्वारा भी हिन्दुओं के व्रत, त्योहार तथा सार्वजनिक वाद-विवाद, शास्त्रार्थ आदि को संरक्षित कर हिन्दू संस्कृति और परम्परा को मजबूत करने में इस वर्ग ने प्रमुख भूमिका निभाई।

हिन्दू संस्कृति और रीति-रिवाजों को संरक्षण देने के अलावा यह समुदाय अपनी हिन्दूवादी विशिष्ट परम्परा और चरित्र के बल पर औपनिवेशिक चरित्र को हिन्दू परम्परा के अधीन होने के लिए विवश कर दिया। शहर के अमीर गुजराती समुदाय और अग्रवाल व्यापारियों के बीच वैष्णव पंथ की लोकप्रियता बढ़ गई।[6] यहाँ तक कि खत्री, व्यापारी भी इस पंथ की ओर आकर्षित हुए। बनारस की सामाजिक एवं सांस्कृतिक संरचना को मजबूत करने में 18वीं शती में हिन्दू राजाओं ने भी 'धर्म संरक्षक' के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अभिजात व्यापारी वर्ग के साथ मिलकर शहर की हिन्दू संस्कृति को पुनर्निर्मित किया। राजा चेतसिंह से लेकर ईश्वरी नारायण सिंह तक बनारस के हिन्दू राजाओं ने अपने शासन विस्तार के साथ-साथ हिन्दू संस्कृति को संरक्षित किया। उन्होंने मंदिर, तालाब, रीति-रिवाज, परम्पराओं और अनुष्ठानों को भी संरक्षण दिया साथ ही वैष्णव लीला और रामलीला जैसी धार्मिक परम्पराओं को संरक्षित किया।[7] राजा चेतसिंह ने दुर्गा मंदिर की नींव रखी और गोपालजी का मंदिर बनवाया जो कि आगे चलकर प्रतिष्ठित वल्लभ सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र बन गया। राजा उदित नारायण सिंह (1795-1835) ने दुर्गा सप्तशती और रामलीला की शुरूआत करके हिन्दू जागरण के प्रमुख केन्द्र के रूप में बनारस को स्थान दिलाया। राजा ईश्वरी नारायण (1835-89) काशी धर्म सभा को संरक्षण दिया और सनातनधर्म के नाम पर हिन्दू परम्परा की रक्षा की।

कुल मिलाकर राजा, व्यापारी और गोसाई इन तीनों ने मिलकर हिन्दू संस्कृति और परम्परा को ऐसा आकार दिया कि यहाँ पर 'हिन्दुत्व के बीज' पूर्णतः विकसित हो गये। बनारस कर्मकाण्ड और पारम्परिक संस्कृत शिक्षा का अग्रणी केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। इस सम्बन्ध में *सी.ए. बेली* लिखते हैं- हिन्दू दार्शनिकों के लिए बनारस एक ऐसा केन्द्र था जहाँ धर्म और कर्मकाण्ड की रक्षा के लिए कर्मकाण्ड विशेषज्ञ और जजमान मौजूद होते हैं।[8] ठीक इसी तरह के विचार शेरिंग ने अपनी पुस्तक *बनारस दि सिक्रेड सिटी सिटी आफ हिन्दूज* में व्यक्त किया है।[9] इस दौर में बनारस को एक बात और अद्वितीय बनाती है कि यह नगर भारत के तीर्थों का ज्योतिस्थल था। बनारस की प्रसिद्धि तीर्थ-यात्रियों के परिक्रमा पथों, श्रेणीबद्ध देवालयों और मंदिरों के कारण है। यहाँ न केवल भारत से बल्कि नेपाल, वर्मा और तिब्बत जैसी जगहों से भी लोग प्रतिवर्ष आते हैं।[10] गंगा घाटों पर 220 जलतीर्थ है जिनमें 98 तीर्थ गंगातट पर असि और वरूणा के मध्य स्थित है। बनारस में

लोग विश्वनाथ और अन्नपूर्णा के आस्था से सरकार को कर देकर भी यात्रा करते थे। आधुनिक विचारधारा इस बात को स्वीकार करती है है कि जहाँ-जहाँ मानव के बहुमुख उत्कर्ष के साधन लभ्य हुए, वहीं-वहीं तीर्थो की परिकल्पना हुई।[11]

19वीं शती के प्राथमिक स्रोतों का अवलोकन करने पर ये तथ्य उभरकर सामने आते हैं कि साँझा हिन्दू सांस्कृतिक मान्यताओं और मूल्यों को अभिव्यक्त करने वाली तमाम धार्मिक क्रिया-कलाप यहाँ किये जा रहे थे, जिनका विषय धर्म था। विशेषरूप से भारत के विभिन्न स्थानों में होने वाली रामलीला का मंचन जो बनारस की सांस्कृतिक एकता और धार्मिक पहचान को सबसे अच्छी तरह से व्यक्त करता है। यही नहीं 1819 में जब बनारस में गृहकर लगाया गया तथा यहाँ के लोगों ने ब्रिटिश नियमों के विरूद्ध शास्त्रों, प्राचीन रीति-रिवाजों और मूल्यों की प्रमुखता पर जोर दिया था। औपनिवेशिक काल में हिन्दू धर्म पर एक नये संकट के रूप में ईसाईत का आगमन होना है लेकिन अगर देखा जाय तो कितने हिन्दू ईसाई धर्म स्वीकार किये इसके आंकड़ें बहुत कम मिलते हैं। लगभग सौ वर्षों तक कार्य करने के पश्चात् ईसाई मिशनरियाँ केवल 800 हिन्दुओं का धर्मान्तरण करा पाई थी।[12] बनारस जैसे हिन्दूत्व के गढ़ में एक औपनिवेशिक धर्म के असफल होने के कई कारण गिनाये जा सकते हैं। यहाँ की सामाजिक धार्मिक संरचना, आध्यात्मिकता का दर्शन, धार्मिक संस्थाएँ, आस्था की सार्वभौमिकता के सम्मुख ईसाई धर्म कहीं नहीं टिक पाया। ई.बी. हैवेल ने लिखा है कि- 'बनारस जैसे शहर में हिन्दू धर्म के अलावा ईसाईयत का प्रचार करना अपनी ऊर्जा को समाप्त करना है।'[13]

इस प्रकार 19वीं सदी में ब्रिटिश शासन के खिलाफ राष्ट्रवादी संघर्ष के दौरान, बनारस उपनिवेशवाद के खिलाफ हिन्दू राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। यह प्रक्रिया 18वीं सदी के दशकों में शुरू हुई और बाद के दशकों में समेकित और मजबूत हुई जो हिन्दू धर्म और संस्कृति की रक्षा और संरक्षण देने की एक ऐसी प्रक्रिया है जो अब तक निरन्तर जारी है।

सन्दर्भ-

1. डा. मोतीचन्द्र, *काशी का इतिहास*, विश्वविद्यालय प्रकाशन, द्वितीय संस्करण, 1985, पृ01
2. डा0 मोतीचन्द्र, उपरोक्त, पृ0 1
3. सुकुल, कुबेरनाथ, *वाराणसी वैभव*, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी, 1979, पृ0 33, 34
4. बेली, सी.ए. रूलर्स, *टाउन्समैन एण्ड बाजार-नार्थ इंडियन सोसाइटी इन दि एज आफ ब्रिटिश एक्सपेंन्सन*, 1770-1870, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983, पृ013
5. डा0 मोतीचन्द्र, उपरोक्त, पृ0 312
6. डालमिया, वसुधा, *दि नेशनलाइजेशन आफ हिन्दू ट्रेडिशन, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एंड नाइन्टीन सेन्चुरी बनारस*, नई दिल्ली, 1996, पृ0 92
7. डालमिया, वसुधा, उपरोक्त, 1996, पृ0 70
8. बेली, सी.ए.: *इंडियन सोसाइटी एण्ड दि मेकिंग आफ ब्रिटिश एम्पायर*, वाल्यूम-21, न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया (सम्पादन) गार्डन जानसन, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983, पृ0 223
9. शेरिंग, एम.ए., *बनारस: दि सिक्रेड सिटी आफ हिन्दुज इन एंशियन्ट एण्ड मार्डन टाइम*, लो प्राइस पब्लिकेशन, दिल्ली, 1999, पृ0 05
10. हेबर, बिशप, *नरेटिव आफ जर्नी थ्रू द अपर प्राविन्स आफ इंडिया फ्राम कलकत्ता टू बाम्बे*, लन्दन (1824-25), पृ0 374
11. सुकूल, कुबेरनाथ, *वाराणसी वैभव*, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी, 1979, पृ0 73
12. हेबर, विशप, उपरोक्त, भाग-71, पृ0 347
13. हैवेल, ई.वी., *बनारस: दि सिक्रेड सिटी, स्केच आफ हिन्दू लाइफ एण्ड रिलीजन*, बुकफेथ इण्डिया, दिल्ली, 2000, पृ0 51

****

माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

डा. अनिल कुमार
विभागाध्यक्ष,
शिक्षक-शिक्षा विभाग, आर.एस.एम. (पी.जी.) कॉलेज, धामपुर- (बिजनौर) उ.प्र.

सारांश

शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है । इसके द्वारा मानव की जन्मजात शक्तियों का विकास करके उसके ज्ञान, कला, कौशल में वृद्धि तथा व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और उसे सक्षम सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है । यह प्रक्रिया मनुष्य के जन्म से प्रारंभ होकर मृत्युपर्यंत तक चलती रहती है तथा समाजीकरण की इस शैक्षिक प्रक्रिया में परिवार के वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती, पारिवारिक वातावरण का बच्चो के संपूर्ण विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है । परिवार वह प्रथम स्थान है । जहा बच्चा दूसरों के साथ संबंध स्थापित करना सीखता है । सामाजिक संस्थाओं में परिवार एक आधारभूत और सर्वव्यापी सामाजिक संस्था है तथा बच्चे के शैक्षिक एवं सामाजिक विकास की प्रथम पाठशाला भी है

कुंजी शब्द- शिक्षा, परिवार, संस्था, पाठशाला, वातावरण

शिक्षा समाज में सदैव चलने वाली सोदेश्य सामाजिक प्रक्रिया है । जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार मानव को सक्षम, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों निरंतर विकास करते हैं । इस संपूर्ण शैक्षिक एवं सामाजिक विकास में पारिवारिक वातावरण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है । परिवार को बालक की प्रथम पाठशाला तथा मां को बालक की प्रथम शिक्षिका कहा जाता है । पारिवारिक वातावरण का बच्चों के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है । बालक जन्मोपरांत जब धीरे-धीरे बाल्यावस्था की सीढ़ी पर चरण रखता है । तो उसका सम्बन्ध परिवार के अन्य सदस्यों के साथ बढ़ता है । इसी संबंध को संज्ञानात्मक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण समझा जाता है ।

पारिवारिक संबंध पूर्णत: पारिवारिक वातावरण पर निर्भर करते हैं । जैसा पारिवारिक
वातावरण होगा । उसी प्रकार का पारिवारिक संबंध परिवार के सदस्यों के मध्य देखा जा सकता है । जहां से बालक का सर्वांगीण विकास संभव है यदि परिवार का वातावरण विघटित है । तो बच्चे का शैक्षिक एवं सामाजिक विकास अवरुद्ध हो जाता है ।

अत: यह आवश्यक है कि बच्चों के उचित विकास हेतु पारिवारिक वातावरण सौहार्दपूर्ण तथा अनुकूल होना चाहिए । क्योंकि बच्चों में वातावरण के प्रति समायोजन करने की क्षमता परिवार से ही प्रारंभ होती है । तथा परिवार ही बच्चे का सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक तंत्र है ।

मुरे (1963) परिवार की शिक्षा का उद्देश्य अपने सदस्यों को सांस्कृतिक व्यवहारो की सीख देना तथा सामाजिक नियमों को स्वीकार करने की प्रेरणा देना है । परिवार शिक्षा देने वाली संस्था के रूप में किसी भी समाज की सर्वव्यापी तथा सर्वमान्य संस्था है । जिसकी कार्यकुशलता पर ही संपूर्ण समाज की व्यवस्था टिकी है । परिवार की शिक्षा ही बालक में देशभक्ति ईमानदारी आदि की मनोवृत्ति पैदा करती है । परिवार ही व्यक्ति को उचित-अनुचित एवं नैतिकता का ज्ञान कराता है। परिवार ही बच्चों में विभिन्न प्रकार के सामाजिक गुणों, आदर्शों एवं नैतिकता का विकास करता है । जिसके परिणाम स्वरुप वह समाज का आदर्श नागरिक बनता है तथा राज्य एवं समाज के नियमों का पालन करके समाज व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में सहयोग देता है । परिवार के वातावरण में रहकर ही बालक प्रेम, सहयोग, दया, सहानुभूति, अनुकूलन, कर्तव्य पालन, परोपकार एवं अनुशासन आदि गुणों को सीखता है ।

परंतु आधुनिक युग में परिवार में अनेक परिवर्तन घटित हो रहे हैं तथा पारिवारिक वातावरण पर भौतिक परिवर्तनों का तेजी से प्रभाव हो रहा है । पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति, नगरीकरण, औद्योगीकरण, व्यक्तिवाद परिवार एवं विवाह से संबंधित नवीन विधानो आदि के कारण परिवार की संरचना एवं प्रकार्यों में परिवर्तन हुआ है और यह भी आशंका व्यक्त की जाने लगी है कि भविष्य में परिवार रूपी संस्था सामाजिक नियंत्रण में अपनी कोई भूमिका निभा पायेगी । वास्तव में परिवर्तन की विभिन्न शक्तियों के कारण परिवार व्यवस्था तथा उसके वातावरण में परिवर्तन हुये हैं ।

परिवार का अस्तित्व सार्वभौमिक है । यह किसी भी समाज की मौलिक एवं सार्वभौमिक संस्था है । समाज के संचालन एवं नियंत्रण में इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है । परिवार के परिवेश में आये परिवर्तन सार्वभौमिक है । तथा निश्चित रूप से परिवार शहरी हो या ग्रामीण अपनी बदलती हुयी परिस्थिति और परिवेश के बीच बच्चों के व्यक्तित्व, नैतिकता के प्रतिमानो और शैक्षिक विकासात्मक उपलब्धियों पर प्रभाव डालते हैं ।

मिश्रा, एस. (2001) सामान्य बच्चों और अधिगम असमर्थ बच्चों के भाषायी लाभ पर घरेलू वातावरण संबंधी चरो क़ा अध्ययन, प्रभा, शैल (2013) प्राथमिक स्तर पर बालकों की शैक्षिक क्रियाओं में माता-पिता की सहभागिता का अध्ययन, पाठक, लक्ष्मी (2013) शैक्षिक रूप से असफल किशोरों पर पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन, मायाराम (2014) माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उपलब्धि अभिप्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन, श्रीवास्तव, महेंद्र (2018) माता-पिता द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन एवं पाल्यो की शैक्षिक उपलब्धि का

अध्ययन, गंगवार, सारिका (2018) उच्च प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के पारिवारिक समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन, ऋतु, चौहान (2018) माध्यमिक स्तर के छात्रों की पारिवारिक समस्याओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन, किए गये हैं I

समस्या कथन- माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन I

प्रयुक्त मुख्य शब्द-

माध्यमिक स्तर- माध्यमिक शिक्षा परिषद उ.प्र. द्वारा मान्यता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत कक्षा 9-10 के विद्यार्थियों का माध्यमिक स्तर I

शहरी एवं ग्रामीण- उ.प्र. के जनपद बिजनौर के शहरी एवं ग्रामीण परिक्षेत्र में स्थित माध्यमिक विद्यालय I

पारिवारिक वातावरण - विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण से आशय माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के परिवार के आंतरिक वातावरण से हैं I जिसमे वह परिवार के साथ निवास करते है I

अध्ययन के उद्देश्य-

1. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण की स्थिति का अध्ययन करना I
2. माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना I
3. माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करना I

अध्ययन की परिकल्पनाये-

1. माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है I
2. माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण क्षेत्र के सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है I
3. माध्यमिक स्तर पर शहरी क्षेत्र के सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है I

शोध विधि- प्रस्तुत शोध अध्ययन में वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया है I

अध्ययन क्षेत्र एवं समग्र- प्रस्तुत शोध अध्ययन में बिजनौर जिले के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत 100 विद्यार्थियों (कक्षा 9 एवं कक्षा 10) को ही समग्र में शामिल किया गया है I जिन्हें ग्रामीण (50) एवं शहरी (50) विद्यार्थियों के रूप में वर्गीकृत किया गया है तथा आरक्षित एवं सामान्य वर्गों में विभाजित किया गया है I

शोध कार्य में प्रस्तुत उपकरण- प्रस्तुत शोध कार्य में आलिया (कश्मीर) एवं शैल वाला सक्सेना (रायसेन) द्वारा निर्मित मानकीकृत परीक्षण होम एनवायरनमेंट स्केल (HES) का प्रयोग दत्त संकलन हेतु किया गया है I

प्रयुक्त सांख्यिकीय विधियां- परीक्षण से प्राप्त प्रदत्तो के विश्लेषण एवं निष्कर्ष हेतु शोध कार्य में मध्यमान, मानक विचलन टी-परीक्षण का प्रयोग किया गया है I

प्रदत्तो का विवेचन एवं विश्लेषण- शोध कार्य के सर्वेक्षण से प्राप्त प्रदत्तो की गणना, प्रयुक्त साख्यिकीय विधियों द्वारा की गयी है तथा प्रदत्तो का विश्लेषण एवं विवेचन परिकल्पनाओ में प्रयुक्त चरो के आधार पर किया गया है I जो निम्न प्रकार :-

परिकल्पना परीक्षण- शोध कार्य में निर्मित परिकल्पनाओ के परीक्षण से प्राप्त परिणाम निम्न प्रकार हैं-

परिकल्पना- 1 माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है I

तालिका -1

माध्यमिक स्तर	प्रतिदर्श	मध्यमान	मानक विचलन	टी मूल्य
शहरी विद्यार्थी	50	166.54	30.875	7.321*
शहरी विद्यार्थी	50	131.75	16.61	

0.01 सार्थकता स्तर = 2.58*

0.05 सार्थकता स्तर = 1.96*

उपरोक्त तालिका - 1 में माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 166.54 एंव ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 131.75 है तथा प्राप्त टी मूल्य 7.321 है I जो सार्थकता के दोनों स्तरों पर 0.01 पर 2.58 एवं 0.05 स्तर पर 1.96 से अधिक है I अत: शून्य परिकल्पना माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है अस्वीकृत होती है I तालिका में माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान 166.54 एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का मध्यमान 131.75 है I निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यार्थियों का मध्यमान अधिक है अत: माध्यमिक स्तर के शहरी विद्यार्थियों का पारिवारिक वातावरण ग्रामीण क्षेत्रों के माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की अपेक्षा बेहतर स्थिति में है I

परिकल्पना- 2 माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों के सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है I

तालिका -2

ग्रामीण विद्यार्थी समूह	प्रतिदर्श	मध्यमान	मानक विचलन	टी मूल्य
सामान्य वर्ग विद्यार्थी	30	130.71	11.157	0.0103
आरक्षित वर्ग विद्यार्थी	30	132.39	19.159	

0.01 सार्थकता स्तर = 2.58
0.05 सार्थकता स्तर = 1.96

उपरोक्त तालिका- 2 मे ग्रामीण क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों का मध्यमान 130.71 तथा माध्यमिक स्तर के आरक्षित वर्ग विद्यार्थी समूह का मध्यमान 132.39 है तथा प्राप्त टी मूल्य 0.0103 है I जो कि सार्थकता के दोनों स्तरों से कम हैं I अतः परिकल्पना परीक्षण के विवेचन के आधार पर कहां जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों के सामान्य एवं आरक्षित वर्गों के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है I

परिकल्पना- 3 माध्यमिक स्तर पर शहरी क्षेत्रों के सामान्य तथा आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है I

तालिका -3

शहरी विद्यार्थी समूह	प्रतिदर्श	मध्यमान	मानक विचलन	टी मूल्य
सामान्य वर्ग विद्यार्थी	30	165	21.151	0.28
आरक्षित वर्ग विद्यार्थी	30	166.42	12.116	

0.01 सार्थकता स्तर = 2.58
0.01 सार्थकता स्तर = 1.96

उपरोक्त तालिका- 3 मे शहरी क्षेत्र के माध्यमिक स्तर के सामान्य वर्ग विद्यार्थी समूह का मध्यमान 165 तथा आरक्षित वर्ग का मध्यमान 166.42 है तथा प्राप्त टी मूल्य 0.28 जो सार्थकता के दोनों स्तरों के मान से कम हैं I

अत: उपरोक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर पर शहरी क्षेत्रों के सामान्य एवं आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है किंतु आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों का प्राप्त मध्यमान सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों से अधिक है I अत: कहा जा सकता है कि माध्यमिक स्तर के शहरी क्षेत्र के आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति सामान्य वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण स्थिति से बेहतर है I प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर परिकल्पना माध्यमिक स्तर पर शहरी क्षेत्र के सामान्य तथा आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं है को स्वीकार किया जाता है I

निष्कर्ष- प्रदत्तो के विश्लेषण एवं विवेचन तथा परिकल्पनाओ के परीक्षण से प्राप्त निष्कर्ष निम्न प्रकार है -

1. माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में सार्थक अंतर पाया गया है I
2. माध्यमिक स्तर पर ग्रामीण क्षेत्रों के सामान्य एंव आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया है I

माध्यमिक स्तर पर शहरी क्षेत्रों के सामान्य एंव आरक्षित वर्ग के विद्यार्थियों की पारिवारिक वातावरण की स्थिति में कोई सार्थक अंतर नहीं पाया गया है I

अध्ययन से प्राप्त विद्यार्थियों की समस्याये:-

1. पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों ने पारिवारिक सहयोग का आभाव प्रकट किया है I
2. आत्मीयता के अभाव की समस्या भी परिवारों में पायी गयी है I
3. मनुष्य की व्यस्तता भरी जिंदगी और आपाधापी के बीच परिवार के स्नेह और समर्पण की डोर ढीली पड़ती दिखाई पड़ रही है I
4. पारिवारिक वातावरण की अनुपयुक्ता कहीं-कहीं अध्ययन की एकाग्रता में बाधा उत्पन्न करती है I

भौतिक संस्कृति ने पारिवारिक वातावरण को कहीं ना कहीं प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है।

शैक्षिक निहितार्थ:- प्रस्तुत शोध के संबंध में शैक्षिक निहितार्थ निम्न प्रकार है-

प्रस्तुत शोध में माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण की स्थिति में सार्थक अंतर पाया गया है I विद्यार्थियों के पारिवारिक वातावरण की स्थिति का प्रभाव उनके शैक्षिक विकास एवं उपलब्धि को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है I यदि विद्यार्थियों का पारिवारिक वातावरण उत्तम होगा I तो उनका सर्वांगीण विकास भी उत्तम होगा। यदि पारिवारिक वातावरण ही ठीक नहीं है तो उनके संपूर्ण विकास पर उसका प्रभाव पड़ेगा I

1. विद्यार्थियों के लिए निहितार्थ- विद्यार्थियों को चाहिए कि वह तनाव भरे माहौल से अपने को दूर रखें I हमेशा प्रसन्नचित्त रहें I असफलताओं से निराश ना हो I अपने लक्ष्य की ओर निरंतर प्रयासरत रहे I अपने आसपास का वातावरण अच्छा बनाए रखें I नकारात्मक सोच रखने वाले लोगों से दूर रहें I भौतिक संस्कृति को अपने ऊपर हावी ना होने दें I भारतीय संस्कृति एवं सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़े रहे I

2. अभिभावकों के लिए निहितार्थ- अभिभावक अपने बच्चों को अच्छी सोच एंव संस्कार दें। जिससे उनका मनोबल बढ़े समाज के गंदे एवं नकारात्मक माहौल से बच्चों को बचाएं, बच्चों के लिए घर-परिवार का अच्छा वातावरण उपलब्ध कराये तथा उनके सर्वांगीण विकास में सहयोग करें I तथा देश की प्राचीन ज्ञान परंपरा से बच्चो को अवगत कराये I

3. विद्यालयों के लिए निहितार्थ- विद्यालय सामाजिक समायोजन के लिए महत्वपूर्ण स्थान है। जो छात्रों के संपूर्ण विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है I विद्यालय में ही बालक का शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं चारित्रिक विकास होता है I अत: विद्यालय का उत्तरदायित्व है कि वह

अपने विद्यार्थियों को स्वस्थ शैक्षिक वातावरण उपलब्ध कराये I तथा समय-समय पर विद्यार्थियों को मनोवैज्ञानिक परामर्श भी प्रदान करे I

4. शिक्षकों के लिए निहितार्थ- शिक्षकों एवं छात्रों के मध्य अच्छे एवं मधुर संबंध होने चाहिए। शिक्षकों का व्यवहार अपने विद्यार्थियों के प्रति हमेशा सकारात्मक, लोकतांत्रिक, सहज मागदर्शी होना चाहिए I शिक्षको को विद्यार्थियों मे स्वास्थ ऊर्जा का संचार करना चाहिए I शिक्षको को अपने विद्यार्थियों की पारिवारिक स्थिति एवं पृष्ठभूमि का ज्ञान होना आवश्यक है I समय-समय पर शिक्षक अभिभावक गोष्ठी होना आवश्यक है I समय-समय पर शिक्षकों को विद्यार्थी से समस्या विमर्श करना चाहिए I

संदर्भ सूची-

1. Agarwal, Rekha. Kapoor, Mala (1998); "*Parents Participation In Children Academy Activities At Primary Level,*" Journal of Indian Education vol XXlll 4

2. Agarwal, Kusum (1999); "*Student Of Parental Attitude And Socio Economic Background Of The Education Field Adolesents*," Journal of Education Research vol 18 1

3. मिश्रा, पी.सी. (2002); *आज का विकासात्मक मनोविज्ञान*, आगरा: साहित्य प्रकाशन

4. राजपूत, जे.एस. (2002); *पाठ्यक्रम परिवर्तन के आयाम*, नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी.

5. ज्ञानी, टी.सी, देवगन, प्रवीन (2003); "*माता-पिता द्वारा प्रदत्त प्रोत्साहन एवं पाल्यो की शैक्षिक उपलब्धि,*" भारतीय आधुनिक शिक्षा, नई दिल्ली: एन.सीई.आर.टी. जुलाई (2003)

6. त्रिपाठी, कुमुद (2004) "*माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उपलब्धि प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव; एक अध्ययन,*" भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका जनवरी-जून (2004)

7. अग्रवाल, रीना (2007); "*परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों की शैक्षिक सम्प्राप्ति: एक अवलोकन,*" शिक्षा शोध पत्रिका जुलाई-दिसंबर (2007)

8. भार्गव, लक्ष्मी (2007); *शिक्षा के सामाजिक परिप्रेक्षय,* नई दिल्ली: वंदना प्रकाशन

9. पंवार, एस. उनियाल, एन.पी. (2008); "*प्राथमिक स्तर के बालक-बालिकाओं के माता-पिता का उनके प्रति व्यवहार का तुलनात्मक अध्ययन:*" भारतीय आधुनिक शिक्षा, नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी. जनवरी (2008)

10. NCF (2009); *National Curriculum Framework,* New Delhi: NCERT

11. गुप्ता, एस.पी. (2012); *आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन*, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन

12. सिंह, अरुण कुमार (2017); *मनोविज्ञान समाजशास्त्र शिक्षा में शोध प्रविधियां,* नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन

13. सिंह, अरुण कुमार (2017); *आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान*, नई दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन

14. गंगवार, सारिका (2018); "*उच्च प्राथमिक स्तर के बालक बालिकाओं के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन,*" लघु शोध प्रबंध

15. चौहान (2018); "*माध्यमिक स्तर के छात्रों की समस्याओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन लखीमपुर खीरी के संदर्भ में,*" लघु शोध प्रबंध

16. NEP (2020); *National Education Policy*, New Delhi: MHRD

****

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय : अन्त्योदय की अवधारणा

-कृष्ण बहादुर यादव
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग
श्री महंथ रामाश्रय दास पी.जी. कॉलेज, भुड़कुड़ा गाजीपुर उ.प्र.

सारांश:

दीनदयाल उपाध्याय का दृष्टिकोण अंत्योदय पर केंद्रित है, जिसका अर्थ है समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति का उत्थान। उनकी "दरिद्र नारायण" की अवधारणा महात्मा गांधी से प्रेरित थी, जो गरीब व्यक्ति को भगवान के समान समझने और उसकी सेवा करने पर जोर देती है। उपाध्याय ने यह मानते हुए कि समाज का वास्तविक विकास तभी संभव है जब सबसे गरीब व्यक्ति का भी उत्थान हो, अपनी सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा को विकसित किया। उपाध्याय ने भारतीय समाज की समस्याओं का समाधान भारतीय संस्कृति और परंपराओं में ढूंढने का प्रयास किया। उनका मानना था कि पश्चिमी विचारधारा और नीतियों से भारतीय समाज की समस्याओं का समाधान संभव नहीं है। उन्होंने अंत्योदय को अपनी राजनीति और सामाजिक कार्यों का केंद्र बिंदु बनाया, यह मानते हुए कि समाज का वास्तविक विकास तब तक संभव नहीं है जब तक कि समाज के सबसे अंतिम व्यक्ति का भी विकास न हो। उपाध्याय ने दरिद्र नारायण की सेवा के लिए विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों का निर्माण किया, जिनमें ग्रामीण विकास, कृषि सुधार, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार शामिल था। उन्होंने आत्मनिर्भरता पर जोर दिया और समाज के सबसे निचले स्तर के व्यक्ति को सशक्त बनाने का प्रयास किया। उनकी आर्थिक नीतियों का केंद्र बिंदु दरिद्र नारायण की अवधारणा थी, जिसमें समाज के सभी वर्गों का समग्र विकास सुनिश्चित करना था।

बीजशब्द: दीनदयाल उपाध्याय, दरिद्र नारायण, अन्त्योदय, महात्मा गांधी और राजनीतिक विचारधारा

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन परम्परा को आगे बढ़ाने में दीनदयाल उपाध्याय ने बहुमूल्य योगदान दिया है। दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितंबर, 1916 (आश्विन कृष्ण त्रयोदशी, संवत् 1973) को हुआ था। दीनदयाल के प्रारंभिक वर्ष नगला चंद्रभान गाँव में बीते, जहाँ उनका परिचय पारंपरिक हिंदू मान्यताओं और मूल्यों से हुआ। उनके पिता श्री राम प्रसाद एक किसान थे और उन्होंने दीनदयाल को कड़ी मेहनत और आत्मनिर्भरता का महत्व बताया। दीनदयाल की माता श्रीमती रामप्यारी एक धार्मिक विचारधारा वाली महिला थीं, जिन्होंने दीनदयाल के आध्यात्मिक और बौद्धिक विकास को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दीनदयाल के परदादा, पंडित हरिराम उपाध्याय, एक प्रसिद्ध ज्योतिषी थे, जिनका दीनदयाल के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव था। पंडित हरिराम उपाध्याय ने ज्योतिष और वैदिक ग्रन्थों का ज्ञान दीनदयाल को दिया, जिससे उनमें प्राचीन ज्ञान और आध्यात्मिकता के प्रति प्रेम जागृत हुआ।

उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक विरासत की रक्षा के लिए अपने आर्थिक एवं राजनीतिक चिंतन द्वारा समाजवाद व उदारवाद की कमियों को उजाकर करके धर्म एवं आदर्श पर आधारित भारतीय परम्परा का एक मॉडल प्रस्तुत किया, जो एकात्म मानववाद, आध्यात्मिक राष्ट्रवाद एवं अन्त्योदय की अवधारणा पर आधारित है। मानवतावाद एक दर्शन है जो मनुष्य के मूल्य और महत्व पर जोर देता है। यह मनुष्य की गरिमा और स्वायत्तता पर जोर देता है, और उनकी जरूरतों और इच्छाओं को संबोधित करने का प्रयास करता है।

दीनदयाल उपाध्याय के चिंतन में अन्त्योदय की अवधारणा महत्वपूर्ण है। दीनदयाल उपाध्याय का दृष्टिकोण अंत्योदय पर केंद्रित है। अन्त्योदय का अर्थ है कि समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति का उत्थान। इस दृष्टिकोण के केंद्र में उनकी दरिद्र नारायण की अवधारणा है, जिसका अर्थ है गरीब व्यक्ति को भगवान के समान समझना और उसकी सेवा करना। दीनदयाल का दृष्टिकोण एक ऐसे समाज का निर्माण करना था, जो वास्तव में मानव व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को महत्व देता हो और उनके विकास को बढ़ावा देता हो। उनका मानना था कि इस लक्ष्य को प्राप्त करने की कुंजी प्रत्येक व्यक्ति के भीतर मौजूद अंतर्निहित क्षमताओं और संभावनाओं को फिर से जागृत करना और उनका दोहन करना है।

दीनदयाल उपाध्याय की अन्त्योदय की अवधारणा महात्मा गांधी[1] के दरिद्र नारायण की अवधारणा से प्रेरित है। गांधीजी का मानना था कि गरीबों की सेवा ही सही अर्थों में ईश्वर की सेवा है। इसी सिद्धांत को दीनदयाल उपाध्याय ने अपनी सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा का हिस्सा बनाया। उनका मानना था कि समाज का वास्तविक विकास तभी संभव है, जब समाज के सबसे गरीब और उपेक्षित व्यक्ति का भी उत्थान हो।

दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय समाज की समस्याओं को गहराई से समझा और उनका समाधान भारतीय संस्कृति और परंपराओं में ढूंढने का प्रयास किया। उनका मानना था कि पश्चिमी विचारधारा और नीतियों से भारतीय समाज की समस्याओं का समाधान संभव नहीं है। उन्होंने भारतीय समाज की मूलभूत संरचना को समझते हुए नीतियों और कार्यक्रमों का निर्माण किया, जो समाज के सबसे निचले स्तर के व्यक्ति को ध्यान में रखते हुए बनाए गए थे।

अंत्योदय का शाब्दिक अर्थ है- अंतिम व्यक्ति का उदय। दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि समाज का वास्तविक विकास तब तक संभव नहीं है, जब तक कि समाज के सबसे अंतिम व्यक्ति का भी विकास न हो। उन्होंने अंत्योदय की अवधारणा को अपनी राजनीति और सामाजिक कार्यों का केंद्र बिंदु बनाया। उनका मानना था कि जब तक समाज के सभी वर्गों का समान रूप से विकास नहीं होगा, तब तक समाज में संतुलन और न्याय की स्थापना संभव नहीं है[2]।

दीनदयाल उपाध्याय ने दरिद्र नारायण की सेवा के लिए विभिन्न नीतियों और कार्यक्रमों का निर्माण किया। उन्होंने ग्रामीण विकास, कृषि सुधार, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार पर जोर दिया। उनका मानना था कि जब तक गांवों और गरीबों का विकास नहीं होगा, तब तक देश का समग्र विकास संभव नहीं है। उन्होंने स्थानीय संसाधनों का उपयोग करते हुए आत्मनिर्भरता पर जोर दिया। साथ ही समाज के सबसे निचले स्तर के व्यक्ति को सशक्त बनाने का प्रयास किया। दीनदयाल श्रमिकों को बेरोजगारी, बीमारी या बुढ़ापे जैसी अप्रत्याशित परिस्थितियों से बचाने के लिए सामाजिक सुरक्षा उपायों के कार्यान्वयन की वकालत करते हैं। काम के महत्व और समाज के प्रत्येक सक्षम सदस्य के लिए काम की गारंटी पर जोर देकर दीनदयाल ऐसी अर्थव्यवस्था स्थापित करना चाहते हैं, जिसमें सभी व्यक्तियों के लिए सामाजिक न्याय और समान अवसरों को बढ़ावा मिले। उनका दृढ़ विश्वास है कि अधिक न्यायसंगत और समृद्ध समाज बनाने के लिए यह आर्थिक ढांचा आवश्यक है।

दीनदयाल उपाध्याय की आर्थिक नीतियों का केंद्र बिंदु अन्त्योदय की अवधारणा है। उनका मानना था कि आर्थिक विकास का उद्देश्य है कि समाज के सभी वर्गों का समग्र विकास होना चाहिए, न कि केवल कुछ विशेष वर्गों तक सीमित हो। उन्होंने समतामूलक समाज की स्थापना के लिए योजनाएं बनाईं; जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसके योगदान और आवश्यकताओं के अनुसार संसाधनों का वितरण सुनिश्चित हो सके। उनका मानना था कि गरीब व्यक्ति को समाज की मुख्यधारा में लाने के लिए उसे रोजगार के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए और उसकी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए[3]। उनका मानना था कि प्रत्येक समाज को लोक-कल्याण सुनिश्चित करने की जिम्मेदारी है। बच्चे जो किसी भी समाज का भविष्य हैं, पर्याप्त पोषण तक पहुंच के हकदार हैं। उपाध्याय ने इस जिम्मेदारी को पूरा करने के महत्व पर जोर दिया, क्योंकि यह मानव जाति की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रगति को दर्शाता है।

दीनदयाल उपाध्याय ने सामाजिक न्याय और समानता की स्थापना के लिए अन्त्योदय की अवधारणा पर बल दिया । लोकतंत्र और सामाजिक न्याय का एक मूलभूत पहलू स्वामित्व है। उनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्तियों की अपने कार्यस्थल में उचित हिस्सेदारी हो और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में उनकी कुछ हिस्सेदारी हो। श्रमिकों को स्वामित्व अधिकार प्रदान करके, हम कर्मचारियों के बीच स्वामित्व और जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा दे सकते हैं। जिससे उत्पादकता में वृद्धि, नौकरी से संतुष्टि और श्रमिकों और कंपनी के बीच एक मजबूत बंधन हो सकता है। श्रमिकों को स्वामित्व अधिकार देने का प्राथमिक लक्ष्य कंपनी की सफलता और विकास में उनके योगदान को पहचानना है। इसके लिए उन्होंने बहुत से कार्यक्रमों और नीतियों का प्रस्ताव बनाया। उनका मानना था कि समाज में समानता और न्याय की स्थापना तभी संभव है, जब सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान किए जायेंगे। उन्होंने जाति, धर्म और लिंग के भेदभाव को समाप्त करने पर जोर दिया और समाज के सभी वर्गों को समान रूप से सशक्त बनाने का प्रयास किया।

दीनदयाल उपाध्याय ने शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार पर विशेष बल दिया। उनका मानना था कि शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का विकास समाज के समग्र विकास के लिए आवश्यक है। उन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार के लिए विभिन्न योजनाओं का प्रस्ताव रखा और इन सेवाओं को समाज के सभी वर्गों तक पहुंचाने का प्रयास किया।

दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि भारत की अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है। इसलिए कृषि सुधार और ग्रामीण विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्होंने किसानों के लिए नई तकनीकों और साधनों का उपयोग करके कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिए विभिन्न योजनाओं का प्रस्ताव रखा। उनका मानना था कि ग्रामीण क्षेत्रों का विकास देश के समग्र विकास के लिए आवश्यक है और इसके लिए स्थानीय संसाधनों का सही उपयोग किया जाना चाहिए।

दीनदयाल उपाध्याय ने आत्मनिर्भरता और स्वदेशी पर विशेष बल दिया। उनका मानना था कि भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए स्वदेशी संसाधनों और तकनीकों का उपयोग किया जाना चाहिए। उन्होंने विदेशी तकनीकों और उत्पादों पर निर्भरता को कम करने पर जोर दिया और देश के अंदर ही संसाधनों का सही उपयोग करके आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का प्रयास किया[4]।

दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि भारतीय संस्कृति और परंपराओं का पुनर्जागरण समाज के विकास के लिए आवश्यक है। उन्होंने भारतीय संस्कृति व मूल्यों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया और समाज में भारतीयता के प्रति गर्व की भावना को जागृत किया। उनका मानना था कि भारतीय संस्कृति व परंपराओं में समाज की समस्याओं का समाधान छिपा हुआ है और इनका सही उपयोग करके समाज का समग्र विकास संभव है[5]।

निष्कर्ष:

अवधारणाओं और तत्वों के अन्वेषण से स्पष्ट होता है कि दीनदयाल उपाध्याय का अंत्योदय दृष्टिकोण व्यापक सामाजिक और आर्थिक निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी अन्त्योदय की अवधारणा ने समाज के सबसे निचले स्तर पर खड़े व्यक्तियों के उत्थान पर बल दिया है। वह गांधीजी की विचारधारा से प्रेरित हैं। उनका योगदान भारतीय समाज में समाजिक न्याय, समरसता और सामूहिक उत्थान के लिए महत्वपूर्ण रहा है। उनकी दृष्टि में समाज का वास्तविक विकास तभी संभव है, जब विकास और समृद्धि में समाज के सबसे निचले एवं गरीब वर्ग भी सम्मिलित हो। इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय के अंत्योदय के सिद्धांत ने भारतीय समाज को नई दिशा दी है और उसे समृद्धि की ओर प्रेरित किया है।

सन्दर्भ सूची

1. गांधी, एम. (1968). दरिद्र नारायण. अहमदाबाद: नवजीवन ट्रस्ट.
2. शर्मा, ए. (2015). दीनदयाल उपाध्याय: अंत्योदय के प्रणेता. नई दिल्ली: प्रकाशन विभाग.
3. कुमार, एस. (2010). भारतीय राजनीतिक विचारक: दीनदयाल उपाध्याय. पटना: समृद्धि प्रकाशन.
4. त्रिपाठी, आर. (2008). भारत के सामाजिक सुधारक. वाराणसी: ज्ञान मंडल लिमिटेड.
5. यादव,पी. (2019). अंत्योदय और समकालीन भारतीय राजनीति. लखनऊ: विश्वविद्यालय प्रकाशन.

****

योगपरक शिक्षा का सार्वभौमिक शैक्षिक महत्व - एक विवेचनात्मक अध्ययन

-राघव कुमार वर्मा
शोध छात्र,
शारीरिक शिक्षा व योग विभाग,
मैट्स विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

डॉ. सुनील कुमार मिश्र
सहायक प्राध्यापक,
शारीरिक शिक्षा व योग विभाग, मैट्स
विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

शोध सारांश-

प्रस्तुत शोध के उद्देश्यानुसार सैद्धांतिक रूप से योगपरक शिक्षा के सार्वभौमिक शैक्षिक महत्व का आकलन करने हेतु इस शोध अध्ययन के तहत शारीरिक विकास में योगशिक्षा का महत्व, रीढ़ की हड्डी और मांसपेशियों के उचित गठन एवं नियन्त्रण में योग, मानसिक विकास में महत्व, नैतिक विकास में महत्व, सामाजिक विकास में महत्व, आध्यात्मिक विकास में महत्व, भावनात्मक स्वास्थ्य में महत्व, योग शिक्षा एवं स्वाध्याय, योग शिक्षा एवं चरित्र निर्माण तथा बुद्धि विकास, तथा योग शिक्षा एवं एकाग्रता की सम्यक् विवेचना की गयी। प्रस्तुत विवेचनात्मक अध्ययन में योगपरक शिक्षा के सार्वभौमिक शैक्षिक महत्व का आकलन सैद्धांतिक रूप से किया गया। इस हेतु गुणात्मक दृष्टिकोण का उपयोग किया गया है व वर्णनात्मक अनुसंधान पद्धति उपयुक्त करते हुए प्रमुख यौगिक ग्रंथों एवं वर्तमान में राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय शोधजर्नल्स में प्रकाशित उच्च गुणवत्ता वाले शोधअध्ययनों के आधार पर द्वितीयक ऑकड़ों का संग्रहण किया गया। परिणामतः योगशिक्षा तक सार्वभौमिक पहुंच प्रत्येक व्यक्ति हेतु योग तकनीकों के अभ्यास हेतु स्वयं के शारीरिक व मानसिक सामर्थ्य अनुरूप समान अवसर पाने की क्षमता है, चाहे उनका लिंग, सामाजिक वर्ग, नस्ल, और जातीय पृष्ठभूमि कुछ भी हो। क्योंकि योग तकनीकों का नियमित अनुसरण करने से व्यक्ति मानसिक व शारीरिक रूप से निरोगी एवं स्वस्थ जीवन जीता है। अतः योग अभ्यास की जानकारी सार्वभौमिक स्तर पर बहुत ही महत्वपूर्ण है। योग शिक्षा को छात्रों के शैक्षिक जीवन में लाकर उसके शरीर, मन व आत्मा की नींव को प्रारम्भ से ही मजबूत बना सकते हैं। इस प्रकार योग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक व भावनात्मक ऊँचाइयों को छूने में बहुत अधिक मददगार साबित होता है।

कूट शब्द - शिक्षा, योग, छात्रजीवन, स्वास्थ्य, कल्याण।

प्रस्तावना -

योगशिक्षा तक सार्वभौमिक पहुंच प्रत्येक व्यक्ति हेतु योग तकनीकों के अभ्यास हेतु स्वयं के शारीरिक व मानसिक सामर्थ्य अनुरूप समान अवसर पाने की क्षमता है, चाहे उनका लिंग, सामाजिक वर्ग, नस्ल, और जातीय पृष्ठभूमि कुछ भी हो। क्योंकि योग तकनीकों का नियमित अनुसरण करने से व्यक्ति मानसिक व शारीरिक रूप से निरोगी एवं स्वस्थ जीवन जीता है। अतः योग अभ्यास की जानकारी सार्वभौमिक स्तर पर बहुत ही महत्वपूर्ण है (कृष्णानन्द, 1983) । शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नही रहा है। योग को शिक्षा के साथ एकीकृत करने पर मनुष्य के शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है एवं छात्रों को बौद्धिक रुप से सक्रिय बनाने में सहायक है, योग द्वारा छात्रों मे शारीरिक सुधार भी होता है (मनिकानदन, 2018) । योग अभ्यास के द्वारा छात्रों में स्वयं को जानने स्वयं को नियंत्रित करने व देखभाल करने योग्य बना सकते हैं। योग के लाभों को सामाजिक परिवर्तन के व्यापक संदर्भ में देखा जा सकता है क्योंकि स्व-परिवर्तन ने पारस्परिक संबंधो को बदल दिया है। अतः ऐसी मानसिकता वाले व्यक्ति नियमित योगाभ्यास के द्वारा सकारात्मक ढ़ंग से समाज को बदल सकते हैं। योग को विद्यालयीन शिक्षा प्रणाली में लागू कर समाज में योग के द्वारा कांतिकारी बदलाव लाए जा सकते हैं । समस्याओं का सकारात्मक तरीके से दोहन करने में सक्षम होने से छात्रों को उत्कृष्टता प्राप्त करने में मदद मिलेगी एवं उन्हे देश व समुदाय हेतु स्वस्थ और खुशहाल व्यक्ति भी बनाया जा सकता है (सावे, 2019; सरकार, 2023; रैना, और बालोदी, 2014; महाजन, और जाधव, 2020)।

योग दर्शन की मान्यताओं के अनुसार, यह संसार दुःखों का सागर है जिससे व्यक्ति छुटकारा पाने के लिए मोक्ष का सहारा लेता है जो कि योगसाधना के द्वारा ही सम्भव है। अतः हृदय की शुद्धता, मन की शांति, व आत्मा के मोक्ष हेतु योग साधना परम आवश्यक है योग शिक्षा को वेद, उपनिषद्, स्मृति, गीता, तथा वर्तमान में अत्यन्त ही आसानी से उपलब्ध प्रमाणिक यौगिक ग्रंथों आदि के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। योग शिक्षा का उद्देश्य पाँच प्रकार के क्लेशों एवं विभिन्न प्रकार के कर्मफलों से अलग होकर आत्मा को मुक्त करना है (मल्होत्रा, 2017 ; माइहले, 2007)। यौगिक अवधारणा में मन का परिसर इन्द्रियों, मन, बुद्धि ,अहंकार से बना होता है। योगाभ्यास के द्वारा चित्त एवं बुद्धि को अलग कर दिया जाता है। मन को भेदभावपूर्ण शक्ति से रहित विचारों का पुल कहा जाता है । मन इन्द्रियों के द्वारा भेजे गए संकेतों को दिमाग तक पहुंचाने का कार्य करता है तथा दिमाग में विवेक की शक्ति होती है। अतः वह सोच समझकर निर्णय ले सकता है। मन का परिसर अचेतन पदार्थ से बना होता है। व्यक्ति में निवास करने वाली चेतना सार्वभौमिक चेतना से खींची जाती है (स्टोन, 2018) । इन्द्रियों और बाहरी उत्तेजनाओं के बीच निरंतर संपर्क मन के परिसर में विचार तरंगो के आवागमन को सुनिश्चित करता है । अतः तार्किक व्याख्या यह प्राप्त होती है कि मन क्यों अशांत है। जब व्यक्ति इन्द्रियों पर नियंत्रण नही करता तो विचार गतिविधि तेजी से होती है और मन अशांत हो जाता है। यदि इन्द्रियां वश में होती हैं तो मन शांत व खुश रहता है (सरकार, 2023; रैना, और बालोदी, 2014)। योग शिक्षा को छात्रों के शैक्षिक जीवन में लाकर उसके शरीर, मन व आत्मा की नींव को प्रारम्भ से ही मजबूत बना सकते हैं। इस प्रकार योग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक व भावनात्मक ऊँचाइयों को छूने में बहुत अधिक मददगार साबित होता है (नागपुरकर, 2023) । योग शिक्षा को भारत देश के साथ ही अन्य देश भी वैज्ञानिक रूप से स्वीकार चुके हैं और अपनी आधुनिक शिक्षा प्रणाली में पाठयक्रम के रूप में

योग को शामिल किया है। अतएव, प्रस्तुत शोध के उद्देश्यानुरूप योग के शैक्षिक महत्व को निम्न बिन्दुओं द्वारा अग्रानुसार समझाया जा रहा है।

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य-

प्रस्तुत शोधकार्य का प्रमुख उद्देश्य "योगपरक शिक्षा के सार्वभौमिक महत्व पर प्रकाश डालते हुए स्वास्थ्य संवर्धन में इसकी भूमिका का विवेचनात्मक अध्ययन" करना है।

प्रस्तुत शोध हेतु प्रयुक्त शोधविधि-

प्रस्तुत विवेचनात्मक अध्ययन में योगपरक शिक्षा के सार्वभौमिक शैक्षिक महत्व का आकलन सैद्धांतिक रूप से किया गया। प्रस्तुत सैद्धांतिक अनुसंधान के लिए गुणात्मक दृष्टिकोण का उपयोग किया गया है व प्रस्तुत शोध विषय के विवेचनात्मक अध्ययन हेतु प्रमुख यौगिक ग्रंथों एवं वर्तमान में राष्ट्रीय व अंर्तराष्ट्रीय शोधजर्नल्स में प्रकाशित उच्च गुणवत्ता वाले शोधअध्ययनों के आधार पर द्वितीयक ऑकड़ों के संग्रहण के लिए वर्णनात्मक अनुसंधान पद्धति उपयुक्त की गयी है।

योगपरक शिक्षा का सार्वभौमिक शैक्षिक महत्व-

सैद्धांतिक रूप से योगपरक शिक्षा के सार्वभौमिक शैक्षिक महत्व का आकलन करने हेतु यहा शारीरिक विकास में योगशिक्षा का महत्व, रीढ़ की हड्डी और मांसपेशियों के उचित गठन एवं नियन्त्रण में योग, मानसिक विकास में महत्व, नैतिक विकास में महत्व, सामाजिक विकास में महत्व, आध्यात्मिक विकास में महत्व, भावनात्मक स्वास्थ्य में महत्व, योग शिक्षा एवं स्वाध्याय, योग शिक्षा एवं चरित्र निर्माण तथा बुद्धि विकास, तथा योग शिक्षा एवं एकाग्रता की सम्यक् विवेचना अग्रानुसार हैं-

शारीरिक विकास में योगशिक्षा का महत्व – योग पर किए गए आधुनिक शोधकार्यो से ज्ञात हुआ कि योग अभ्यास शारीरिक अंगों एवं उनके कार्यो को सुचारू करने में सहायता करते है। आसन को श्वास तकनीकों के साथ करने पर यह शरीर को अधिक स्वस्थ बनाती है। प्राणायाम एवं आसनों से आंतरिक अंगो का भी अभ्यास होता है। यह अभ्यास फेफड़े एवं रक्त को आक्सीजन प्रदान करते है। एवं सामान्य रुप से सुस्त, बेचैन शरीर को दुरूस्त, मजबूत, व लचीला बनाते हैं। अच्छा मेटाबालिज्म सुस्ती को दूर कर शरीर को स्फूर्ति प्रदान करता है (जोशी, और युसुफ, 2018) । व्यक्ति की रोजमर्रा की जिन्दगी में प्रणायाम एवं आसनों की युग्मित खुराक शरीर व मन को हल्का करने मनोवैज्ञानिक संतुलन शारीरिक स्वास्थ्य आदि में सहायक है। प्राणायाम एवं आसनों को योग हस्तक्षेप के रुप में रक्त परिसंचरण तंत्र की शुद्धि, मोटर नियंत्रण, जोड़ों की गतिवृद्धि, ताकत, एवं मांसापेशियों की मजबूती के उपचार हेतु अत्यन्त ही प्रभावकारी जाने जाते हैं (बुजींग, एवं अन्य साथी, 2012; तिवारी, और टिर्के, 2024) |

रीढ़ की हड्डी और मांसपेशियों के उचित गठन एवं नियन्त्रण में योग – योग का अभ्यास शरीर में हानिकारक बैक्टीरिया से लड़ने की क्षमता में वृद्धि करता है। इसके अतिरिक्त योग के नियमित के अभ्यास से शरीर में रोगजनक कीटाणु या पदार्थ उत्पन्न नही हो पाते और शरीर स्वस्थ रहता है (शर्मा, एवं अन्य साथी, 2024)। रीढ़ की हड्डी और मांसपेशियों के उचित गठन एवं नियन्त्रण में योग साधना शरीर को लचीला व तन्दरूस्त बनाए रखने में मदद करती है। योग का अभ्यास नियमित रूप से किया जाए तो मांसपेशियों में कड़ापन नही आने पाता और यह लचीली व शक्तिशाली बनी रहती हैं (शाइन, 2021)। इसके अतिरिक्त योग या व्यायाम के द्वारा शरीर का तापमान सामान्य बना रहता है और व्यायाम से शरीर में अनावश्यक पदार्थ पसीना व मल-मूत्र के द्वारा बाहर निकल जाते हैं। योग शरीर में रस व द्रव्यों का निर्माण करने वाली ग्रन्थियों को नियंत्रित कर उनके कार्य को सुचारू बनाता है और शरीर के आन्तरिक अंग प्रणालियों, पाचन व श्वसन तंत्रों की सफाई कर उनको क्रियाशील बनाए रखता है (श्रीराइशी, और बेजेर्गी, 2016)।

मानसिक विकास में महत्व –

योग साधना समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति का एक उत्तम साधन है। योग मानसिक स्वास्थ्य के अतिरिक्त मानसिक शक्तियों के समूचित पोषण और विकास हेतु उपयुक्त चेतना व शक्ति प्रदान करती है। यौगिक अवधारणा में मन का परिसर इन्द्रियों मन, बुद्धि, अहंकार से बना होता है। योगाभ्यास के द्वारा चित्त एवं बुद्धि को अलग कर दिया जाता है (वल्सल कुमार, श्रीधर, और नागेन्द्र, 2024)। मन को भेदभावपूर्ण शक्ति से रहित विचारों का पुल कहा जाता है। मन इन्द्रियों के द्वारा भेजे गए संकेतों को दिमाग तक पहुंचाने का कार्य करता है तथा दिमाग में विवेक की शक्ति होती है। अतः वह सोच समझकर निर्णय ले सकता है। योग साधना के तहत प्रत्याहार एवं मुद्रा - बन्ध के अभ्यास के परितणामतः व्यक्ति के मन की चंचलता व चित्त की वृत्तियों पर नियन्त्रण प्राप्त करने की अद्भुद् क्षमता होती है। ध्यान व धारणा के अभ्यास के द्वारा मन की एकाग्रता, ध्यान व मानसिक स्थिरता में बढ़ावा प्रदान करती है (मेककर्डी, एवं अन्य साथी, 2024; मेककीन्ने, 2024)।

नैतिक विकास में महत्व –

एक अच्छे राष्ट्र के निर्माण हेतु बहुत आवश्यक है कि व्यक्ति शिक्षित व आदर्श चरित्र वाले हों। आजकल भले ही शिक्षा का प्रचार प्रसार सभी देशों में हो रहा है और सभी व्यक्ति शिक्षित हो रहे हैं परन्तु उतना ही नैतिकता का पतन हो रहा है जिसका कारण नकारात्मक दृष्टिकोण व असंतुलित जीवनशैली है। आजकल युवाओं में संस्कार की बहुत ज्यादा कमी देखने को मिलती है वे शालीनता, आदर्शवादिता, उत्कृष्टता को अपने व्यवहार में शामिल नही करते हैं। अतः अपने राष्ट्र को अग्रसर करने के लिए सबसे आवश्यक है कि वहाँ की जनसंख्या को शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य के अतिरिक्त भावनात्मक एवं नैतिक स्वास्थ्य के विकास पर भी अवश्य जोर देना चाहिए। आधुनिक समय में प्रत्येक व्यक्ति में काम, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, मोह, घृणा, चिंता, अवसाद, तिरस्कार, और भय की भावना भरी पड़ी है इसके लिए एक ही कारागर उपाय है वह है योग साधना (बेस्टोस, 2024) । योग नियमवत् पालन करने से व्यक्ति कल्याणमय हो जाता है और स्वस्थ्य व्यवहार, आत्मसम्मान, सभ्यसमाज आदि की नींव बनाने हेतु उपयुक्त होता है। अतएव स्पष्ट है कि यम और नियम का पालन करने से व्यक्ति का सामाजिक व नैतिक विकास सुचारू रूप से संभव है। मन का आवरण विचारो का खुला मैदान है मन आवेगों, इच्छाओं, भावनाओं और मनभावक एवं मन को अच्छा नही लगने वाले में ही घिरा रहता है। परन्तु मन के पास किसी विचार से कार्य करने के पश्चात् परिणाम ज्ञात करने की शक्ति नही है, वह मूल्यांकन नही कर सकता और बुद्धि एवं विवेक की शक्ति द्वारा संचालित होता है। उसमें विचारशीलता की भावना होती है इसका आनन्दमय आवरण अन्तरतम होता है। इसे

आन्तरिक एवं बाह्य जगत का कोई बोध नही होता है। योग व्यक्ति को सात्विक गुणों जैसे उत्साह, प्रफुल्लता, शांति व साहस से भर देता है जो कि यह दर्शाता है कि योग के पालन से व्यक्ति का नैतिक विकास संभव है (मिलेर, 2024; रंगनाथन, 2024)।

सामाजिक विकास में महत्व –

योग साधना के द्वारा सामाजिक विकास अत्यन्त सटीक ढंग से हो पाता है। सामाजिक रूप से स्वस्थ वही व्यक्ति है जो कि अपने परिवार, समुदाय और समाज के लिए महत्वपूर्ण हो जिसका समाज में सकारात्मक योगदान हो (हेगन, और नायर, 2014) । अर्थात् भारतीय परम्परा के अनुसार जो सन्तान माता - पिता से सम्बन्धित उसके उत्तरदायित्वों को बेहतर ढंग से निभाते हैं वे समाज में सम्मान पाते हैं एवं इस विषय में दोषी, लापरवाह या असफल पाये जाते है, उन माताता-पिता को सामाजिक बुराई या अभिशाप समझा जाता है और सामाजिक स्वास्थ्य के मामले में भी वे अस्वस्थ होते है (चौहान, और सक्सेना, 2024) । अतः सामाजिक स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए योग साधना का अभ्यास करना चाहिए। योग साधना से व्यक्ति सामाजिक रूप से स्वस्थ होता है उसमें ईमानदारी, नेकनियती, स्वार्थहीनता, क्षमा भावना, सहयोग की भावना व न्याय भावना जैसे गुणों का विकास होता हैं (कुमार, 2016; फोलेटो, एवं अन्य साथी, 2016) ।

आध्यात्मिक विकास में महत्व –

योग साधना का अभ्यास व्यक्ति के शरीर एवं मन से कहीं परे आध्यात्मिक प्रगति की राह को दर्शाता है। जिसके द्वारा शारीरिक और मानसिक शक्तियों से परे अति सूक्ष्म सुप्त दैविक एवं अलौकिक शक्तियों के जागरण एवं उन्नयन के अवसर प्राप्त होते हैं और योगाभ्यास द्वारा आध्यात्मिक जागृति व वास्तविकता की प्राप्ति हो सकती है। योग साधना का नियमपूर्वक अभ्यास करने के फलस्वरूप व्यक्ति को इस भौतिक संसार की उलझनों से निकलने का मार्ग प्राप्त होता है। और उसे परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होता है (वाराम्बल्ली, और गंगाधर, 2012)। जिस व्यक्ति का आध्यात्मिक स्वास्थ्य अच्छा होता है उनका मन शांत सकारात्मक व स्वस्थ रहता है तथा जीवन में आने वाली समस्याओं व चुनौतियों का सकारात्मक चिंतन करता है और मानसिक व मनोदैहिक रोगों से स्वयं को बचाता है। आध्यात्मिक क्रियाओं का अनुसरण कर इंसान काम, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, मोह, घृणा, चिंता, अवसाद से मुक्त रहता है और मानसिक स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है जो कि शारीरिक स्वस्थता का आधार भी माना जाता है (डुगलास, 2024) ।

भावनात्मक स्वास्थ्य में महत्व –

आधुनिक जीवन दैहिक व मानसिक समस्याओं के साथ ही भावनात्मक रूप से भी बहुत अधिक कमजोर है। योग शिक्षा छात्रों में भावनात्मकता को सकारात्मक रूप से बढ़ाने में सहायक होती है। छात्रों में कई बार बढ़ती उम्र के कारण तनाव, क्रोध, चिन्ता, आवेगों की उत्पत्ति होती है जो कि उसके भावनात्मक स्वास्थ्य को खराब करते हैं (डेली, एवं अन्य साथी, 2015)। अतः इन सभी समस्याओं पर नियंत्रण कर योग शिक्षा इन्द्रियों पर संयम, मन की स्थिरता व एकाग्रता में वृद्धि करता है। भावनात्मक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध होता है। भावनात्मक आयाम सबसे अधिक प्रभावशाली है और योग के कारण व्यक्ति के भावनात्मकता और व्यक्तित्व सकारात्मक परिवर्तन देखने को मिलता है। योग के अभ्यास से दैनिक जीवन में होने वाली चिंता से मुक्ति मिलती है यह भावनात्मक लचीलेपन एवं आंतरिक शांति को बढ़ावा प्रदान करता है (मेनेजेस, एवं अन्य साथी, 2015) ।

योग शिक्षा एवं स्वाध्याय –

स्वाध्याय क्रिया योग का ही महत्वपूर्ण अंग है। स्वाध्याय दो शब्दों स्व + अध्याय से मिलकर बना है जिसका तात्पर्य होता है "स्वयं का अध्ययन" अर्थात् मनुष्य स्वयं को खोजकर स्वाध्याय का पालन करता है और इससे वह अपने व्यवहार में भिन्नता का अनुभव करता है। स्वाध्याय के अन्तर्गत धार्मिक व आध्यात्मिक साहित्यों जैसे- गीता, उपनिषद्, रामायण आदि का पठन भी किया जाता है जो कि मनुष्य को दुर्गुणों से मुक्त होकर नैतिक रास्तों पर चलने के लिए तत्पर करता है। जो कि साधक के जीवन में परिष्कार व आत्मोत्थान हेतु परम आवश्यक है और इसके फलस्वरूप ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति होती है। स्वाध्याय की स्थिति में व्यक्ति को अपने अन्दर के सभी दोष नजर आने लगते हैं जो कि यह स्वाध्याय रूपी प्रकाश के कारण होता है जैसे कि किसी कूड़े के ढेर मे प्रकाश के द्वारा ही विषैले जीवों ढूढ़ा जा सकता है। इस प्रकार अपने अन्दर इस कूड़े रूपी ढ़ेर व इसमें विषैली जीवों को साफ करने के लिए योग शिक्षा का मार्ग अपनाना होगा और इस प्रकार अन्तःकरण की शुद्धि होने से यह जीवन को सुखमय बनाती है (डोग्लास, 2024) ।

योग शिक्षा एवं चरित्र निर्माण तथा बुद्धि विकास –

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में योग का बहुत महत्व है आधुनिक शिक्षा प्रणाली विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर जोर देती है। जिसमें भौतिक प्रगति प्राप्त की जा रही है, लेकिन निर्माण व आध्यात्मिक मूल्यों का हनन हो रहा है। किसी भी व्यक्ति के जीवन में चरित्र का बहुत अधिक महत्व है। चरित्रवान व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ख्याति को प्राप्त करता है और उसके जीवन में आने वाले संकट कम हो जाते हैं। तथा चरित्रवानव्यक्ति एक अच्छे समाज का निर्माण करता है। छात्र किसी भी देश, समुदाय की मूल्यवान सम्पत्ति होते हैं। क्योंकि वह भविष्य के नागरिक होंगे अतः उनके व्यक्तित्व भलाई एवं बुद्धि का अच्छा विकास आज की आवश्यकता है। आधुनिक समय में पाश्चात्य संस्कृति के कारण छात्रों पर टी.वी. जैसे मनोरंजक संसाधनों आदि के कारण पाश्चात्य संस्कृति की कुछ छाप पड़ने लगी है। अतः इन दोषों को दूर करने हेतु नैतिकता व संस्कृति का ज्ञान आवश्यक है। और इस कारण से योग शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। योग के अन्तर्गत यम (सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय व अपरिग्रह) व नियम (शौच संतोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्राणिधान) का पालन कर मन को शांत कर ध्यान एवं एकाग्रता विकसित कर अच्छे लक्ष्यों की प्राप्ति व उच्च नैतिक चरित्र को आकार देने और छात्रों के परिष्कृत व्यक्तित्व को विकसित करने हेतु मानवीय मूल्यों का समर्थन करता है। इसी प्रकार छात्र में यदि बुद्धि का विकास नही होगा तो वह जीवन के बारे में स्पष्ट समझ को विकसित नही कर सकेगा जैसे कि वह सात्विक विचार को महत्व नही देगा, अच्छे बुरे की पहचान नही कर सकेगा, उसमें विवेक की कमीं होगी, वह जल्दी गुस्से का शिकार होगा, और उसका अपनी इन्द्रियों पर कोई संयम नही होगा इत्यादि। इस प्रकार छात्र कई उलझनों का शिकार होते हैं और वह अपने अभिभावक व शिक्षकों को स्पष्ट रूप से समझा नही पाते। अतः इन चरित्र के

निर्माण व बुद्धि के विकास में महापुरूषों के बारे में पढ़ना, गायत्री मंत्र का जप करना, सूर्य नमस्कार, आसन व प्राणायाम व यागनिद्रा का अभ्यास करना चाहिए। प्राचीन योग ग्रंथो में योगाभ्यास को प्राणिक उर्जा को बढ़ाने के संदर्भ में परिचित किया है यह ऊर्जा को मस्तिष्क में ले जाकर बाए एवं दाए मस्तिष्क को संतुलित कर मन को शांत करता है एवं संज्ञानात्मक प्रदर्शन में सुधार होता है। योग के अभ्यास जैसे प्रत्याहार के अभ्यास के फलस्वरूप साधक बाह्य आकर्षण से मुक्त होते हुए जागरूकता का चयन करता है। इसी प्रकार धारणा के अभ्यास से साधक को तनाव से मुक्ति मिलती है तथा स्मृति तीव्र होती है । अष्टांग योग में मानसिक स्वास्थ्य संवर्धन हेतु ध्यान भी उपयोगी है यह अभ्यास साधक को उसके मन पर नियंत्रण रखने जागरूकता एवं भावनात्मक संतुलन में सहायक है। अतएव, योग शिक्षा से चरित्र विकास एवं बौद्धिक विकास में बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ते हैं (फ्रीमेन, 2010; देहघानफरा, अलिचेस्मेलाइब और नूरबख्शक, 2014) । योग शिक्षा एवं एकाग्रता - एकाग्रता से तात्पर्य है मन को किसी एक विषय पर टिकाना। एकाग्रता सभी कार्यो के लिए अत्यन्त आवश्यक है विद्यार्थी जीवन में ध्यान व एकाग्रता की बहुत आवश्यकता होती है क्योंकि एकाग्रता के कारण छात्र का शैक्षिक कार्यो में मन नही लगा पाता है । इस कारण उसका विद्यार्थी जीवन प्रभावित होता है । और उसे मानसिक तनाव होने लगता है। योग में शामिल ध्यान की तकनीक से मन में शांति व मानसिक तनाव में कमी आती है। इसके अभ्यास से मानसिक एकाग्रता, व जागरूकता बढ़ता है । आधुनिक समय में अस्त-व्यस्त जीवनशैली व जीवन में आगे बढ़ने की होड़ में लोगों की एकाग्रता में काफी कमी आई। इस कारण से व्यक्ति को अपनी दिनचर्या में सुधार कर एक नियमित समय पर जल्दी सोना, जल्दी उठना, शाम को जल्दी भोजन करना । प्राणायाम तंत्रिका व शारीरिक तंत्र को स्वस्थ बनाते हैं। मन की स्थिरता व्यक्तित्व के संगठन में सुधार लाती है । प्रत्याहार आंतरिक विकास की प्रक्रिया है । मन को बाहरी विकर्षण और बाहरी वस्तु को नियंत्रित करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। यह इच्छाशक्ति पर निर्भर एक उच्च प्रकार की यौगिक प्रक्रिया है । मन की एकाग्रता व स्थिरता का अभ्यास प्रत्याहार से प्रारम्भ होकर ध्यान की और ले जाता है (काउट्स, और शर्मा, 2012)।

निष्कर्ष -

प्रस्तुत शोधअध्ययन सैद्धांतिक रूप से योगपरक शिक्षा के सार्वभौमिक शैक्षिक महत्व की सम्यक् विवेचना करता हैं। इस विवेचनात्मक अध्ययन से सार्वभौमिक स्तर पर योगपरक शिक्षा की महत्ता ज्ञात होती है। आज के समय में मनुष्य शारीरिक व मानसिक समस्याओं के साथ ही अन्य समस्याओं से भी जूझ रहा है, ऐसे में योग शिक्षा रूपी संजीवनी बूटी के माध्यम से व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक व भावनात्मक संकटों से उबर सकता है और इन सभी स्वास्थ्य के आयामों में सुधार ला सकता है। योग शिक्षा से हम बारम्बार मन को अन्य विषयों से हटाकर एक केन्द्र पर लगाते हैं । एकाग्र व्यक्ति का मन सदैव प्रसन्न रहता है और उसकी वाणी का समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि व्यक्ति नियमित रूप से योगाभ्यास को अपनी दैनिक दिनचर्या में शामिल करते हुए नित्य-प्रतिदिन योगाभ्यास करें तो उसका शारीरिक स्वास्थ्य एवं विकास पूर्णतः सम्भव होता है। साथ ही योगाभ्यास रीढ़ की हड्डी और मांसपेशियों के उचित गठन एवं नियन्त्रण में विशिष्ट भूमिका निभाता है। इसी प्रकार मानसिक, नैतिक, सामाजिकता के साथ-साथ आध्यात्मिक विकास में भी योगशिक्षा सैद्धांतिक व प्रयोगात्मक दोनों ही रूप में अत्यन्त ही प्रभावकारी पायी गयी है। साथ ही योगशिक्षा स्वाध्याय जैसी अच्छी आदतों को बढ़ावा देते हुए भावनात्मक परिपक्वता व चरित्र निर्माण में भी अत्यन्त ही लाभकारी है। विशेषकर छात्रों के बौद्धिक विकास, चरित्र निर्माण व एकाग्रता के विकास में योगशिक्षा की महति भूमिका देखी गयी है।

विशिष्टतः योगशिक्षा तक सार्वभौमिक पहुंच प्रत्येक व्यक्ति हेतु योग तकनीकों के अभ्यास हेतु स्वयं के शारीरिक व मानसिक सामर्थ्य अनुरूप समान अवसर पाने की क्षमता है, चाहे उनका लिंग, सामाजिक वर्ग, नस्ल, और जातीय पृष्ठभूमि कुछ भी हो। क्योंकि योग तकनीकों का नियमित अनुसरण करने से व्यक्ति मानसिक व शारीरिक रूप से निरोगी एवं स्वस्थ जीवन जीता है। अतः योग अभ्यास की जानकारी सार्वभौमिक स्तर पर बहुत ही महत्वपूर्ण है। योग शिक्षा को छात्रों के शैक्षिक जीवन में लाकर उसके शरीर, मन व आत्मा की नींव को प्रारम्भ से ही मजबूत बना सकते हैं। इस प्रकार योग व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक व भावनात्मक ऊँचाइयों को छूने में बहुत अधिक मददगार साबित होता है।

संदर्भ सूची-

[1] Bastos, C. (2024). Yoga, emotion, and behaviour: becoming conscious of habitual social roles. Journal of Contemporary Religion, 1-19.

[2] Büssing, A., Michalsen, A., Khalsa, S. B. S., Telles, S., & Sherman, K. J. (2012). Effects of yoga on mental and physical health: a short summary of reviews. Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine, 2012(1), 165410.

[3] Chauhan, V., & Saxena, M. T. (2024). YOGA AND MINDFULNESS IN EDUCATIONAL SETTINGS: IMPACT ON STUDENT WELL-BEING AND PERFORMANCE. Journal of Research Administration, 6(1).

[4] Daly, L. A., Haden, S. C., Hagins, M., Papouchis, N., & Ramirez, P. M. (2015). Yoga and emotion regulation in high school students: A randomized controlled trial. Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine, 2015(1), 794928.

[5] Dehghanfara, H., Alicheshmealaeeb, M., & Noorbakhshc, M. (2014). The effect of yoga training on stress and self-esteem and Its relation to emotional intelligence. Journal of Research in Applied sciences, 1(5), 109-112.

[6] Douglas, L. (2024). Dissecting the paradox: spirituality and yoga in mental wellbeing. Journal of Spirituality in Mental Health, 1-10.

[7] Folleto, J. C., Pereira, K. R., & Valentini, N. C. (2016). The effects of yoga practice in school physical education on children's motor abilities and social behavior. International journal of yoga, 9(2), 156-162.

[8] Freeman, R. (2010). The mirror of yoga: Awakening the intelligence of body and mind. Shambhala Publications.

[9] Hagen, I., & Nayar, U. S. (2014). Yoga for children and young people's mental health and well-being: research review and reflections on the mental health potentials of yoga. Frontiers in psychiatry, 5, 78607.

[10] Joshi, K., & Yusuf, M. (2018). The Role of Yoga in Modern Education. International Journal of Yoga and Allied Sciences, 7(2), 173-174.

[11] Kauts, A., & Sharma, N. (2012). Effect of yoga on concentration and memory in relation to stress. ZENITH international journal of multidisciplinary research, 2(5), 1-14.

[12] Krishnananda, S. (1983). Yoga as a universal science. Divine Life Society publishe.

[13] Kumar, K. (2016). Approach of Yoga based lifestyle towards Social adjustment among Students. International Journal of Yoga and Allied Sciences, 5(1), 18-23.

[14] Maehle, G. (2007). Ashtanga yoga: Practice and philosophy. New World Library.

[15] Mahajan, N., & Jadhav, V. (2020). Perceived benefits of yoga among students. Innovations in Pharmaceuticals and Pharmacotherapy, 8(2), 21-27.

[16] Malhotra, A. K. (2017). An Introduction to Yoga Philosophy: an annotated translation of the Yoga Sutras. Routledge.

[17] Manikandan, P. (2018). Importance of yoga in daily life. International Journal of Yogic, Human Movement and Sports Sciences, 3(2), 288-290.

[18] McCurdy, B. H., Bradley, T., Matlow, R., Rettger, J. P., Espil, F. M., Weems, C. F., & Carrion, V. G. (2024). Program evaluation of a school-based mental health and wellness curriculum featuring yoga and mindfulness. Plos one, 19(4), e0301028.

[19] McKinney, C. R. (2024). Physical and mental health benefits of an intergenerational yoga intervention on individuals and communities.

[20] Menezes, C. B., Dalpiaz, N. R., Kiesow, L. G., Sperb, W., Hertzberg, J., & Oliveira, A. A. (2015). Yoga and emotion regulation: A review of primary psychological outcomes and their physiological correlates. Psychology & Neuroscience, 8(1), 82.

[21] Miller, N. M. (2024). "Yoga is a way of life": A qualitative study of the experiences of using yoga as a treatment for substance use. Counselling and Psychotherapy Research.

[22] Nagpurkar, K. B. (2023). A Critical Review On Importance Of Yoga In Public Health. World Journal of Pharmaceutical Research; 12(10), 558-564.

[23] Raina, D., & Balodi, G. (2014). Enhancing students' life through stress reduction exercises in yoga. Indian Journal of Positive Psychology, 5(2), 187.

[24] Ranganathan, S. (2024). Yoga-Anticolonial Philosophy: An Action-Focused Guide to Practice. Singing Dragon.

[25] Sarkar, S. S. (2023). Yoga And It's Importance In Our Daily Life. SRISIIM Research Press, Sri Sharada Institute of Indian Management-Research, 125.

[26] Save, K. J. (2019). Importance of Yoga. International Journal of Multidisciplinary Educational Research, 8(8), 113 -21.

[27] Sharma, S. K., Telles, S., Kumar, A., & Balkrishna, A. (2024). Muscle strength and body composition in obese adults following nine months of yoga or nutrition advice: A comparative controlled trial. Journal of Bodywork and Movement Therapies, 39, 311-318.

[28] Shin, S. (2021). Meta-analysis of the effect of yoga practice on physical fitness in the elderly. International journal of environmental research and public health, 18(21), 11663.

[29] Shiraishi, J. C., & Bezerra, L. M. A. (2016). Effects of yoga practice on muscular endurance in young women. Complementary therapies in clinical practice, 22, 69-73.

[30] Stone, M. (2018). The inner tradition of yoga: A guide to yoga philosophy for the contemporary practitioner. Shambhala Publications.

[31] Tiwari, A., & Tirkey, D. (2024). Effects of yoga on physical and physiological variables: A narrative review.

[32] Valsal Kumar, C., Sridhar, M. K., & Nagendra, H. R. (2024). The Role and Impact of Yoga and Taittiriyopanishad in Enhancing Personal Happiness, Mental Health, and Wellbeing. Atomic Spectroscopy-Part C, 45(1), 150-164.

[33] Varambally, S., & Gangadhar, B. N. (2012). Yoga: A spiritual practice with therapeutic value in psychiatry. Asian Journal of Psychiatry, 5(2), 186-189.

सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर: 21वीं सदी में भारत-चीन संबंधों का तुलनात्मक विश्लेषण

-निधि सिंह
शोध छात्रा - राजनीति विज्ञान विभाग
सल्तनत बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बदलापुर जौनपुर

संक्षिप्त सार : यह शोध पत्र 21वीं सदी में भारत-चीन संबंधों के संदर्भ में सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर की भूमिका का एक गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन दो एशियाई महाशक्तियों के बीच जटिल संबंधों की पड़ताल करते हुए उनकी सांस्कृतिक विरासत और मूल्यों के रणनीतिक उपयोग पर प्रकाश डालता है। शोध में भारत और चीन की सॉफ्ट पावर रणनीतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है, जिसमें उनके सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों, शैक्षणिक सहयोग, और मीडिया प्रभाव का विस्तृत विश्लेषण शामिल है। यह शोध पत्र इस बात की भी जांच करता है कि कैसे दोनों देश अपनी सांस्कृतिक शक्ति का उपयोग वैश्विक मंच पर अपने प्रभाव को बढ़ाने और एक-दूसरे के साथ अपने संबंधों को आकार देने के लिए कर रहे हैं। अंत में, यह अध्ययन भारत-चीन संबंधों में सांस्कृतिक कूटनीति की भूमिका के संदर्भ में मौजूदा चुनौतियों और भविष्य के अवसरों का मूल्यांकन करता है, जो इस क्षेत्र में भविष्य के शोध के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करता है।

मुख्य शब्द – भारत-चीन संबंध, सांस्कृतिक कूटनीति, सॉफ्ट पावर, विदेश नीति, तुलनात्मक विश्लेषण

परिचय

सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर वैश्विक राजनीति के अत्यंत महत्वपूर्ण और जटिल पहलू हैं, जो राष्ट्रों को अपने प्रभाव का विस्तार करने और अंतरराष्ट्रीय मंच पर अपनी स्थिति को मजबूत करने में सहायता प्रदान करते हैं।[1] इन अवधारणाओं का महत्व पिछले कुछ दशकों में तेजी से बढ़ा है, क्योंकि देश अब केवल सैन्य शक्ति या आर्थिक प्रभुत्व पर निर्भर नहीं रह सकते हैं। भारत और चीन, दो प्राचीन सभ्यताएं जो आधुनिक युग में वैश्विक महाशक्तियों के रूप में उभरी हैं, इस नए परिदृश्य में अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का रणनीतिक उपयोग कर रही हैं। ये दोनों देश अपने हजारों वर्षों पुराने इतिहास, दार्शनिक परंपराओं, कलाओं, भाषाओं और जीवन शैलियों को अपने राष्ट्रीय हितों को आगे बढ़ाने और वैश्विक मंच पर अपनी छवि को सुधारने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। इन दो एशियाई दिग्गजों के बीच संबंधों का अध्ययन सांस्कृतिक कूटनीति के संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण और रोचक है, क्योंकि यह न केवल उनके जटिल द्विपक्षीय संबंधों को समझने में मदद करता है, बल्कि 21वीं सदी की वैश्विक राजनीति में सॉफ्ट पावर की बढ़ती और बदलती हुई भूमिका पर भी गहरा प्रकाश डालता है।[2]भारत और चीन दोनों ही अपनी सांस्कृतिक शक्ति का उपयोग न केवल एक-दूसरे के साथ अपने संबंधों को प्रभावित करने के लिए कर रहे हैं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए इसका रणनीतिक उपयोग कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, भारत अपनी योग और आयुर्वेद जैसी प्राचीन ज्ञान परंपराओं, बॉलीवुड फिल्मों, और विविध भारतीय व्यंजनों के माध्यम से दुनिया भर में अपनी सांस्कृतिक पहुंच का विस्तार कर रहा है। वहीं चीन अपने कन्फ्यूशियस संस्थानों, पारंपरिक चीनी चिकित्सा, और बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव जैसी महत्वाकांक्षी परियोजनाओं के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक और आर्थिक उपस्थिति को मजबूत कर रहा है।[3] हालांकि, इस प्रक्रिया में दोनों देशों को कई चुनौतियों और जटिलताओं का सामना करना पड़ रहा है, जैसे कि ऐतिहासिक मतभेद, सीमा विवाद, और क्षेत्रीय प्रभुत्व के लिए प्रतिस्पर्धा। इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह जांचना और विश्लेषण करना है कि कैसे भारत और चीन अपनी सांस्कृतिक शक्ति का उपयोग एक-दूसरे के साथ और विश्व स्तर पर अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए करते हैं, इस प्रक्रिया में उनके सामने आने वाली चुनौतियों और अवसरों का मूल्यांकन करना है, और यह समझना है कि कैसे यह रणनीति उनके समग्र विदेश नीति लक्ष्यों और वैश्विक महाशक्ति की आकांक्षाओं के साथ संरेखित होती है। यह अध्ययन न केवल भारत-चीन संबंधों की गतिशीलता को समझने में मदद करेगा, बल्कि यह भी प्रदर्शित करेगा कि कैसे सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर आधुनिक अंतरराष्ट्रीय संबंधों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, और भविष्य में वैश्विक शक्ति संतुलन को कैसे प्रभावित कर सकते हैं।

सांस्कृतिक कूटनीति एक ऐसी रणनीति है जिसमें देश अपनी संस्कृति, मूल्यों और विचारों को अन्य देशों के लोगों तक पहुंचाकर अंतरराष्ट्रीय

संबंधों को मजबूत करते हैं। यह नरम शक्ति का एक महत्वपूर्ण उपकरण है, जो बिना किसी बल या दबाव के दूसरे देशों को प्रभावित करने में सक्षम होता है। सांस्कृतिक कूटनीति की महत्ता इस तथ्य में निहित है कि यह लोगों के बीच प्रत्यक्ष संवाद स्थापित करती है, जिससे आपसी समझ और सहयोग बढ़ता है। विभिन्न देश इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अलग-अलग तरीके अपनाते हैं। उदाहरण के लिए, चीन का कन्फ्यूशियस संस्थान कार्यक्रम दुनिया भर में चीनी भाषा और संस्कृति को बढ़ावा देता है, जबकि भारत का प्रोजेक्ट मौसम हिंद महासागर क्षेत्र में सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत करने पर केंद्रित है।[4] फ्रांस का अलायंस फ्रांसेज नेटवर्क फ्रांसीसी भाषा और संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अंतरराष्ट्रीय संबंधों में सांस्कृतिक कूटनीति की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल देशों के बीच आपसी समझ और सहयोग को बढ़ावा देती है, बल्कि संघर्षों को कम करने और शांति को प्रोत्साहित करने में भी मदद करती है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से, देश एक-दूसरे की परंपराओं, मूल्यों और दृष्टिकोणों को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं, जो अक्सर राजनीतिक और आर्थिक मतभेदों को कम करने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त, सांस्कृतिक कूटनीति व्यापार और आर्थिक सहयोग के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करती है, क्योंकि सांस्कृतिक समझ अक्सर व्यावसायिक संबंधों के लिए एक मजबूत नींव का काम करती है। यह वैश्विक मुद्दों पर सहयोग के लिए एक मंच भी प्रदान करती है, जहां विभिन्न संस्कृतियों के लोग साझा चुनौतियों पर मिलकर काम कर सकते हैं।

21वीं सदी में, विशेष रूप से भारत और चीन जैसी उभरती शक्तियों के संदर्भ में, सांस्कृतिक कूटनीति का महत्व और भी बढ़ गया है। ये देश अपने सॉफ्ट पावर को बढ़ाने के लिए सांस्कृतिक कूटनीति का रणनीतिक उपयोग कर रहे हैं, जिससे न केवल उनके द्विपक्षीय संबंध मजबूत हो रहे हैं, बल्कि वैश्विक मंच पर उनकी स्थिति भी सुदृढ़ हो रही है।[5] भारत और चीन दोनों ही अपनी प्राचीन सभ्यताओं, समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, और आधुनिक उपलब्धियों का लाभ उठाकर दुनिया भर में अपनी छवि को बेहतर बनाने का प्रयास कर रहे हैं। इस प्रकार, सांस्कृतिक कूटनीति न केवल अंतरराष्ट्रीय संबंधों का एक महत्वपूर्ण पहलू बन गई है, बल्कि यह वैश्विक शक्ति संतुलन को आकार देने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स ने इन दोनों देशों को अपनी संस्कृति और मूल्यों को वैश्विक दर्शकों तक पहुंचाने का एक शक्तिशाली माध्यम प्रदान किया है। भारतीय विदेश मंत्रालय की "ट्विटर डिप्लोमेसी" ने विश्व भर में भारत की छवि को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जबकि चीन की "वुल्फ वॉरियर डिप्लोमेसी" रणनीति ने डिजिटल प्रभाव के माध्यम से अपनी सॉफ्ट पावर को बढ़ावा दिया है।[6] ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म्स ने दोनों देशों के बीच सांस्कृतिक उत्पादों के आदान-प्रदान को नए आयाम दिए हैं। अलीबाबा और अमेज़न जैसी वैश्विक ई-कॉमर्स कंपनियों ने भारतीय और चीनी दोनों उत्पादों को विश्व बाजार में पहुंचाया है, जिससे न केवल व्यापार बल्कि सांस्कृतिक समझ भी बढ़ी है।[7] इसके अलावा, डिजिटल प्रौद्योगिकी ने संग्रहालयों और प्रदर्शनियों को वर्चुअल स्पेस में ले जाकर सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और प्रसार को नया रूप दिया है। COVID-19 महामारी के दौरान, भारत और चीन दोनों ने अपने संग्रहालयों और ऐतिहासिक स्थलों को डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर प्रदर्शित किया, जिससे दुनिया भर के लोगों को घर बैठे इन समृद्ध संस्कृतियों का अनुभव करने का अवसर मिला।[8] वर्चुअल रियलिटी और ऑगमेंटेड रियलिटी जैसी उन्नत तकनीकों का उपयोग करके, दोनों देश अपने इतिहास और संस्कृति को अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर रहे हैं, जो न केवल शैक्षिक उद्देश्यों को पूरा करता है बल्कि सांस्कृतिक कूटनीति का एक प्रभावी उपकरण भी बन गया है। इस प्रकार, डिजिटल युग में सांस्कृतिक कूटनीति ने भारत और चीन के बीच संबंधों को एक नया आयाम दिया है, जो परंपरागत राजनयिक चैनलों से परे जाकर, आम जनता के बीच सीधा संवाद और समझ को बढ़ावा दे रहा है।

सॉफ्ट पावर एक ऐसी अवधारणा है जो किसी देश की आकर्षण और प्रभाव की क्षमता को दर्शाती है, जिसके माध्यम से वह अन्य देशों को बिना किसी बल या दबाव के अपने पक्ष में कर सकता है। यह शक्ति मुख्यतः देश की संस्कृति, राजनीतिक मूल्यों और विदेश नीति से उत्पन्न होती है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों में सॉफ्ट पावर की भूमिका तेजी से महत्वपूर्ण होती जा रही है, क्योंकि देश अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए केवल सैन्य या आर्थिक शक्ति (हार्ड पावर) पर निर्भर नहीं रह सकते। सॉफ्ट पावर विदेश नीति को प्रभावित करती है, क्योंकि यह देशों को अपनी छवि सुधारने, मित्र बनाने और वैश्विक मंच पर प्रभाव बढ़ाने में मदद करती है। उदाहरण के लिए, अमेरिका की हॉलीवुड फिल्में और पॉप संगीत, जापान का एनीमे और मंगा, या कोरिया की के-पॉप संस्कृति इन देशों की सॉफ्ट पावर के महत्वपूर्ण स्रोत हैं।[9]

भारत और चीन, दोनों ही अपनी सॉफ्ट पावर रणनीतियों के माध्यम

से वैश्विक प्रभाव बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण अंतर हैं। भारत अपनी सॉफ्ट पावर को बढ़ावा देने के लिए अपनी सांस्कृतिक विविधता, लोकतांत्रिक मूल्यों, बॉलीवुड, योग और आयुर्वेद जैसी विरासत का उपयोग करता है। इसके अलावा, भारत की डायस्पोरा नीति और "वसुधैव कुटुम्बकम" (पूरी दुनिया एक परिवार है) का दर्शन भी उसकी सॉफ्ट पावर रणनीति का हिस्सा है।[10] दूसरी ओर, चीन अपनी प्राचीन सभ्यता, आर्थिक सफलता और तकनीकी प्रगति पर जोर देता है। चीन की बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) और कन्फ्यूशियस इंस्टीट्यूट्स उसकी सॉफ्ट पावर रणनीति के प्रमुख उदाहरण हैं।

दोनों देशों की सॉफ्ट पावर रणनीतियों की प्रभावशीलता अलग-अलग है। भारत की सॉफ्ट पावर का स्रोत मुख्य रूप से उसकी सांस्कृतिक आकर्षण और लोकतांत्रिक मूल्यों में निहित है, जबकि चीन की सॉफ्ट पावर अधिकतर उसकी आर्थिक शक्ति और विकास मॉडल पर आधारित है। हालांकि, दोनों देशों को अपनी सॉफ्ट पावर रणनीतियों में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। भारत को अपनी सॉफ्ट पावर को और अधिक संगठित और रणनीतिक तरीके से प्रोजेक्ट करने की आवश्यकता है, जबकि चीन को अपनी नकारात्मक छवि से निपटने और अपने सॉफ्ट पावर प्रयासों की विश्वसनीयता बढ़ाने की जरूरत है। [11] इन चुनौतियों के बावजूद, दोनों देश 21वीं सदी में अपनी सॉफ्ट पावर को मजबूत करने और वैश्विक मामलों में अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध हैं।

भारत और चीन के संबंधों का इतिहास प्राचीन काल से जुड़ा हुआ है, जहां दोनों सभ्यताओं के बीच व्यापार, धार्मिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा। हालांकि, आधुनिक काल में इन दो एशियाई दिग्गजों के बीच संबंध जटिल और कभी-कभी तनावपूर्ण रहे हैं। 1962 के युद्ध ने दोनों देशों के बीच एक गहरा अविश्वास पैदा किया, जिसके प्रभाव आज भी महसूस किए जाते हैं। फिर भी, 21वीं सदी में दोनों देशों ने अपने संबंधों को सुधारने और आर्थिक सहयोग बढ़ाने का प्रयास किया है। 2000 के दशक में व्यापार में उल्लेखनीय वृद्धि हुई, और दोनों देश ब्रिक्स (BRICS) जैसे बहुपक्षीय मंचों पर सहयोग कर रहे हैं। [12] लेकिन सीमा विवाद, व्यापार असंतुलन और क्षेत्रीय प्रतिस्पर्धा जैसे मुद्दे अभी भी चुनौतियां बने हुए हैं।

वर्तमान में, भारत-चीन संबंधों की प्रकृति जटिल और बहुआयामी है। एक ओर, दोनों देश वैश्विक आर्थिक शक्तियां बनने की दौड़ में हैं और कई क्षेत्रों में सहयोग कर रहे हैं। दूसरी ओर, सीमा पर तनाव, हिंद महासागर क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा और पाकिस्तान के साथ चीन के करीबी संबंध भारत के लिए चिंता का विषय हैं। [13] इस जटिल परिदृश्य में, दोनों देश सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर का उपयोग अपने संबंधों को बेहतर बनाने और एक-दूसरे की बेहतर समझ विकसित करने के लिए कर रहे हैं। उदाहरण के लिए, भारत और चीन के बीच फिल्म सह-निर्माण समझौता, शैक्षणिक आदान-प्रदान कार्यक्रम, और योग तथा चीनी चिकित्सा पद्धतियों का आदान-प्रदान इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

भारत और चीन के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सहयोग की गतिविधियां बढ़ रही हैं, लेकिन इनका प्रभाव अभी तक सीमित रहा है। दोनों देशों के बीच पर्यटन को बढ़ावा देने के प्रयास, भाषा शिक्षण कार्यक्रम, और सांस्कृतिक उत्सवों का आयोजन किया जा रहा है। [14] इन प्रयासों का उद्देश्य दोनों देशों के लोगों के बीच बेहतर समझ विकसित करना और नकारात्मक धारणाओं को कम करना है। हालांकि, राजनीतिक तनाव और मीडिया में नकारात्मक बयानबाजी इन सांस्कृतिक प्रयासों की प्रभावशीलता को सीमित करती है। फिर भी, दोनों देश इस बात को समझते हैं कि उनके बीच सांस्कृतिक और लोगों के बीच संपर्क महत्वपूर्ण हैं, और वे इन्हें बढ़ावा देने के लिए प्रतिबद्ध हैं। चुनौती यह है कि इन सांस्कृतिक पहलों को कैसे व्यापक राजनीतिक और रणनीतिक संबंधों में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए उपयोग किया जाए।

भारत और चीन, दोनों ही अपनी सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर रणनीतियों के माध्यम से वैश्विक प्रभाव बढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं, लेकिन उनके दृष्टिकोण और प्राथमिकताओं में महत्वपूर्ण अंतर हैं। भारत अपनी सांस्कृतिक कूटनीति में 'वसुधैव कुटुम्बकम' (पूरी दुनिया एक परिवार है) के दर्शन, अहिंसा, और लोकतांत्रिक मूल्यों पर जोर देता है। इसके प्रमुख उपकरणों में योग, आयुर्वेद, बॉलीवुड, भारतीय व्यंजन, और प्राचीन सभ्यता की विरासत शामिल हैं। भारत सरकार ने 'प्रोजेक्ट मौसम', 'नॉलेज इकॉनमी इनिशिएटिव', और 'स्टडी इन इंडिया' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक कूटनीति को बढ़ावा दिया है।[15] दूसरी ओर, चीन अपनी सांस्कृतिक कूटनीति में प्राचीन चीनी सभ्यता, कन्फ्यूशियस के विचारों, और आधुनिक विकास मॉडल पर ध्यान केंद्रित करता है। चीन की प्रमुख पहलों में कन्फ्यूशियस इंस्टीट्यूट्स, बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI), और चीनी भाषा और संस्कृति के प्रसार के लिए विभिन्न कार्यक्रम शामिल हैं।

दोनों देशों की सांस्कृतिक कूटनीति पहलों की प्रभावशीलता का आकलन करते हुए, यह देखा जा सकता है कि दोनों ने कुछ महत्वपूर्ण

सफलताएं हासिल की हैं, लेकिन साथ ही चुनौतियों का भी सामना कर रहे हैं। भारत की योग कूटनीति ने दुनिया भर में सकारात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त की है, जिसका एक उदाहरण संयुक्त राष्ट्र द्वारा 21 जून को अंतरराष्ट्रीय योग दिवस घोषित करना है। [16] भारतीय सिनेमा और व्यंजन ने भी वैश्विक स्तर पर लोकप्रियता हासिल की है। हालांकि, भारत को अपनी सांस्कृतिक कूटनीति को और अधिक संगठित और रणनीतिक तरीके से लागू करने की आवश्यकता है। चीन की ओर से, कन्फ्यूशियस इंस्टीट्यूट्स ने दुनिया भर में चीनी भाषा और संस्कृति के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लेकिन इन संस्थानों को कुछ देशों में विवादों और आलोचनाओं का सामना करना पड़ा है, जिससे चीन की सॉफ्ट पावर रणनीति की प्रभावशीलता सीमित हुई है।

सांस्कृतिक कूटनीति का भारत-चीन संबंधों पर प्रभाव मिश्रित रहा है। दोनों देशों ने एक-दूसरे की संस्कृति को समझने और आपसी संबंधों को मजबूत करने के लिए विभिन्न सांस्कृतिक आदान-प्रदान कार्यक्रम शुरू किए हैं। उदाहरण के लिए, भारत-चीन सांस्कृतिक और लोगों के बीच आदान-प्रदान तंत्र की स्थापना, फिल्म सह-निर्माण समझौता, और शैक्षणिक सहयोग बढ़ाने के प्रयास किए गए हैं। हालांकि, इन प्रयासों का प्रभाव अभी तक सीमित रहा है, क्योंकि राजनीतिक तनाव और सीमा विवाद जैसे मुद्दे अक्सर सांस्कृतिक संबंधों पर हावी हो जाते हैं। फिर भी, दोनों देश इस बात को समझते हैं कि सांस्कृतिक कूटनीति उनके संबंधों को सुधारने और आपसी समझ बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण साधन हो सकती है। चुनौती यह है कि इन सांस्कृतिक पहलों को कैसे व्यापक द्विपक्षीय संबंधों में सकारात्मक बदलाव लाने के लिए प्रभावी ढंग से उपयोग किया जाए।

भारत और चीन दोनों को अपनी सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर रणनीतियों के कार्यान्वयन में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। भारत के लिए, एक प्रमुख चुनौती संसाधनों की कमी और सांस्कृतिक कूटनीति के लिए एक समन्वित दृष्टिकोण की अनुपस्थिति है। इसके अलावा, भारत की नकारात्मक छवि, जैसे गरीबी और महिला सुरक्षा के मुद्दे, उसकी सॉफ्ट पावर को कमजोर करते हैं। चीन के लिए, मुख्य चुनौती उसकी राजनीतिक प्रणाली और मानवाधिकारों के मुद्दों से जुड़ी नकारात्मक धारणाओं से है। इसके अतिरिक्त, चीन की आक्रामक विदेश नीति, विशेष रूप से दक्षिण चीन सागर में, उसकी सॉफ्ट पावर प्रयासों को नुकसान पहुंचाती है। दोनों देशों के लिए एक साझा चुनौती यह है कि वे अपनी सांस्कृतिक कूटनीति पहलों को अपने व्यापक विदेश नीति लक्ष्यों के साथ कैसे संरेखित करें।

इन चुनौतियों के बावजूद, भारत और चीन के पास सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सहयोग बढ़ाने के कई अवसर हैं। दोनों देशों की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत और प्राचीन सभ्यताएं आपसी समझ और सम्मान के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करती हैं। [17] शैक्षणिक आदान-प्रदान कार्यक्रमों को बढ़ावा देना, संयुक्त सांस्कृतिक उत्सवों का आयोजन करना, और पर्यटन को प्रोत्साहित करना कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां दोनों देश अपने सांस्कृतिक संबंधों को मजबूत कर सकते हैं। इसके अलावा, डिजिटल प्लेटफॉर्म और सोशल मीडिया का उपयोग करके, दोनों देश अपनी संस्कृतियों को व्यापक दर्शकों तक पहुंचा सकते हैं।[18] साथ ही, कला, संगीत, और साहित्य के क्षेत्र में सहयोग बढ़ाना भी एक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान करता है।

सांस्कृतिक कूटनीति प्रयासों को बेहतर बनाने के लिए, भारत और चीन दोनों को कुछ महत्वपूर्ण कदम उठाने की आवश्यकता है। पहला, दोनों देशों को अपनी सांस्कृतिक कूटनीति रणनीतियों को और अधिक समन्वित और लक्षित बनाना चाहिए। इसमें विभिन्न सरकारी विभागों, गैर-सरकारी संगठनों, और निजी क्षेत्र के बीच बेहतर समन्वय शामिल है।[19] दूसरा, दोनों देशों को अपनी सॉफ्ट पावर पहलों में अधिक पारदर्शिता लानी चाहिए ताकि विश्वसनीयता बढ़े। तीसरा, युवाओं और डिजिटल माध्यमों पर अधिक ध्यान देना चाहिए, क्योंकि ये भविष्य की सांस्कृतिक कूटनीति के महत्वपूर्ण क्षेत्र हैं। अंत में, दोनों देशों को अपनी सांस्कृतिक कूटनीति में विविधता और समावेशिता पर जोर देना चाहिए, ताकि वे अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत की पूरी विविधता को प्रदर्शित कर सकें। इन सुधारों के माध्यम से, भारत और चीन न केवल अपने द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत कर सकते हैं, बल्कि वैश्विक मंच पर अपनी सॉफ्ट पावर को भी बढ़ा सकते हैं।

इस शोध पत्र के माध्यम से हमने 21वीं सदी में भारत-चीन संबंधों के संदर्भ में सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर के महत्व का विश्लेषण किया है। यह स्पष्ट है कि दोनों देश अपने वैश्विक प्रभाव को बढ़ाने और द्विपक्षीय संबंधों को मजबूत करने के लिए सांस्कृतिक कूटनीति का रणनीतिक उपयोग कर रहे हैं। भारत की सांस्कृतिक कूटनीति योग, आयुर्वेद, बॉलीवुड, और अपनी प्राचीन सभ्यता की विरासत पर केंद्रित है, जबकि चीन अपनी प्राचीन सभ्यता, कन्फ्यूशियस के विचारों, और आधुनिक विकास मॉडल पर जोर देता है। दोनों देशों ने अपनी सॉफ्ट पावर को बढ़ाने में कुछ सफलताएं हासिल की हैं, लेकिन उन्हें कई चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है। विशेष रूप से, दोनों देशों को अपनी नकारात्मक छवियों से निपटने और

अपनी सांस्कृतिक कूटनीति प्रयासों को अधिक प्रभावी ढंग से लागू करने की आवश्यकता है।

इस अध्ययन के निहितार्थ महत्वपूर्ण हैं। पहला, यह दर्शाता है कि 21वीं सदी में सॉफ्ट पावर और सांस्कृतिक कूटनीति राष्ट्रीय शक्ति के महत्वपूर्ण तत्व बन गए हैं। दूसरा, यह भारत और चीन जैसी उभरती शक्तियों के लिए अपने वैश्विक प्रभाव को बढ़ाने में सांस्कृतिक कूटनीति के महत्व को रेखांकित करता है। तीसरा, यह इंगित करता है कि सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सहयोग जटिल द्विपक्षीय संबंधों में सकारात्मक प्रभाव डाल सकते हैं, भले ही अन्य क्षेत्रों में तनाव मौजूद हों। अंत में, यह अध्ययन यह भी दर्शाता है कि प्रभावी सांस्कृतिक कूटनीति के लिए दीर्घकालिक दृष्टि, पर्याप्त संसाधन, और सरकार तथा नागरिक समाज के बीच समन्वय की आवश्यकता होती है।

भविष्य के शोध के लिए कई संभावनाएं हैं। पहली, भारत और चीन की सांस्कृतिक कूटनीति पहलों के प्रभाव का मात्रात्मक मूल्यांकन किया जा सकता है। दूसरी, इन दो देशों की सांस्कृतिक कूटनीति रणनीतियों की तुलना अन्य उभरती शक्तियों, जैसे ब्राजील या रूस, से की जा सकती है। तीसरी, डिजिटल प्रौद्योगिकी और सोशल मीडिया के युग में सांस्कृतिक कूटनीति के बदलते स्वरूप का अध्ययन किया जा सकता है। अंत में, सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर के क्षेत्रीय सुरक्षा और आर्थिक सहयोग पर प्रभाव का विश्लेषण एक और संभावित शोध क्षेत्र हो सकता है। इन क्षेत्रों में अनुसंधान न केवल भारत-चीन संबंधों की बेहतर समझ प्रदान करेगा, बल्कि वैश्विक राजनीति में सांस्कृतिक कूटनीति और सॉफ्ट पावर की भूमिका पर भी नए अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. नाय, जोसेफ एस. (2004). सॉफ्ट पावर: द मीन्स टू सक्सेस इन वर्ल्ड पॉलिटिक्स। पब्लिक अफेयर्स।
2. झा, प्रेम शंकर (2017). चाइना-इंडिया रिलेशंस: पॉलिटिक्स ऑफ़ रिसोर्सेस, आइडेंटिटीज़ एंड ऑथोरिटी इन ए मल्टिपोलर वर्ल्ड ऑर्डर। रूटलेज
3. चोपडा, रोहित (2020). द विर्च्युअल हिंद-चीनी भाई-भाई: इंडिया एंड चाइना इन द एज ऑफ़ सोशल मीडिया। ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
4. चौधरी, ए. (2021). "प्रोजेक्ट मौसम: इंडियाज मैरीटाइम डिप्लोमेसी इनिशिएटिव". ओबर्ज़वर रिसर्च फाउंडेशन।
5. किंग, के. (2013). "व्हाट इज कल्चरल डिप्लोमेसी? एंड डज इट हैव ए फ्यूचर?". द वाशिंगटन क्वार्टरली, 36(1), 131-145।
6. गुप्ता, अनुराग (2022). "डिजिटल युग में भारत की सार्वजनिक कूटनीति: चुनौतियाँ और अवसर।" अंतरराष्ट्रीय अध्ययन, 59(3), पृ. 245-260।
7. शर्मा, प्रिया (2022). "ई-कॉमर्स और भारतीय संस्कृति का वैश्विक प्रसार।" भारतीय विदेश व्यापार समीक्षा, 57(1), पृ. 78-95।
8. मेहता, रोहित (2022). "कोविड-19 और भारतीय संग्रहालयों का डिजिटलीकरण: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन।" संग्रहालय प्रबंधन और क्यूरेटरशिप, 37(2), पृ. 180-198।
9. नाय, जोसेफ एस. (2008). "पब्लिक डिप्लोमेसी एंड सॉफ्ट पावर". द एनल्स ऑफ द अमेरिकन एकेडमी ऑफ पॉलिटिकल एंड सोशल साइंस, 616(1), 94-109।
10. थाकुर, एस. (2021). "इंडियाज सॉफ्ट पावर डिप्लोमेसी: अचीवमेंट्स एंड चैलेंजेज". ORF ऑकेजनल पेपर, 326, ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन।
11. किंग, के. (2013). "व्हाट इज कल्चरल डिप्लोमेसी? एंड डज इट हैव ए फ्यूचर?". द वाशिंगटन क्वार्टरली, 36(1), 131-145।
12. पंत, एच. वी. (2018). "इंडिया-चाइना रिलेशंस अंडर मोदी: ए क्रिटिकल एसेसमेंट". इंटरनेशनल पॉलिटिक्स, 55(3-4), 332-343
13. मोहन, सी. राजा (2020). "मैनेजिंग द चाइना चैलेंज: इंडियाज स्ट्रैटेजिक इम्पेरेटिव". इंडिया क्वार्टरली, 76(4), 501-518।
14. अरुणाचलम, वी. एस. (2018). "इंडिया-चाइना कल्चरल इंटरेक्शंस: इम्पैक्ट ऑन कॉन्टेम्पररी रिलेशंस". इंडियन फॉरेन अफेयर्स जर्नल, 13(1), 52-64।
15. हॉल, इयान (2019). "इंडियाज पब्लिक डिप्लोमेसी: प्रॉब्लम्स एंड प्रॉस्पेक्ट्स". एशियन अफेयर्स, 50(2), 216-235।
16. सिंह, एम. (2020). "योगा डिप्लोमेसी: नैरेटिंग इंडियाज सॉफ्ट पावर स्ट्रेटेजी". ग्लोबल पॉलिसी, 11(4), 499-508।
17. मुखर्जी, आर. (2014). "द स्टेट, एकनॉमिक ग्रोथ, एंड डेवलपमेंट इन इंडिया". इंडिया रिव्यू, 13(1), 94-107।
18. ज़ू, एच. (2019). "सोशल मीडिया एंड पब्लिक डिप्लोमेसी: ए कम्पैरेटिव एनालिसिस ऑफ द डिजिटल डिप्लोमेटिक स्ट्रैटेजीज ऑफ द ईयू, यूएस एंड जापान इन चाइना". इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्युनिकेशन, 13, 2984-3003।

पांडे, एन. (2018). "इंडियाज सॉफ्ट पावर: चैलेंजेज एंड ऑपर्चुनिटीज". इंडियन फॉरेन पॉलिसी रिव्यू, 13(2), 136-153

****

क्षेत्रीय पार्टियों का उदय और उनका प्रभाव : भारतीय राजनीति में एक विश्लेषण

-अनिल हनवत
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
जटा शंकर त्रिवेदी शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय बालाघाट (म.प्र.)

डॉ. राजेश कुमार साहू
सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान)
शासकीय कन्या महाविद्यालय, सीधी (म.प्र.)

सारांश-

भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय पार्टियों का उदय और उनका प्रभाव एक महत्वपूर्ण विषय है, जिसे गहराई से विश्लेषित किया गया है। यह शोध पत्र भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय पार्टियों के उदय और उनके प्रभाव का व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। भारत में क्षेत्रीय पार्टियों का उदय विभिन्न सामाजिक, सांस्कृतिक, और आर्थिक कारकों के परिणामस्वरूप हुआ है। ये पार्टियाँ स्थानीय मुद्दों और पहचान की राजनीति पर केंद्रित होती हैं, जिससे उन्हें जनता के बीच व्यापक समर्थन प्राप्त होता है। इस अध्ययन का उद्देश्य क्षेत्रीय पार्टियों के उदय के प्रमुख कारणों, उनके राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक प्रभावों, और संघीय ढांचे पर उनके प्रभाव का मूल्यांकन करना है। शोध में पाया गया कि क्षेत्रीय पार्टियों ने राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, विशेष रूप से गठबंधन सरकारों की स्थिरता और नीति निर्माण में। उन्होंने स्थानीय विकास, सांस्कृतिक पहचान, और सामाजिक न्याय को बढ़ावा दिया है। हालांकि, उन्हें वित्तीय और संगठनात्मक चुनौतियों, राष्ट्रीय दलों के साथ प्रतिस्पर्धा, और आंतरिक कलह का सामना करना पड़ता है।मुख्य सिफारिशें यह हैं कि राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर नीति निर्माण में क्षेत्रीय पार्टियों की भागीदारी को बढ़ावा दिया जाए, स्थानीय विकास और सामाजिक न्याय के लिए अधिक संसाधन प्रदान किए जाएं, और गठबंधन सरकारों में बेहतर तालमेल और सहयोग बनाया जाए।

बीज शब्द: क्षेत्रीय पार्टियां, राजनीतिक दल, राजनीतिक गठबंधन, स्थानीय नेतृत्व ,प्रादेशिक मुद्दे , राजनीतिक दल ।

परिचय-

क्षेत्रीय पार्टियां भारतीय राजनीति में वे संगठन हैं जो मुख्य रूप से राष्ट्रीय मुद्दों की बजाय विशेष राज्यीय या क्षेत्रीय मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हैं। इन पार्टियों का मुख्य लक्ष्य राज्य की विशेषताओं, सांस्कृतिक विविधताओं और सामाजिक पहलुओं पर नीतियों को विकसित करना होता है। ये पार्टियां अक्सर राष्ट्रीय पार्टियों से अलग होती हैं और उनके विचारधारा, नीतियों और समर्थन क्षेत्रीय स्तर पर बुनते हैं।

"क्षेत्रीय पार्टियां उन पार्टियों को कहते हैं जो किसी न किसी विशेष राज्य या क्षेत्र के विकास और विशेष समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करती हैं, और इनकी सभी कार्यक्रम और योजनाएं उन समस्याओं को हल करने के लिए बनाई गई होती हैं।" – डॉ. दुर्गा दास बसु

क्षेत्रीय पार्टियों के उदय के पीछे कई प्रमुख सिद्धांत हैं, जिनमें से कुछ मुख्य हैं: भौगोलिक समानता, स्थानीय समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करना, और स्थानीय स्तर पर राजनीतिक नेतृत्व का महत्व। क्षेत्रीय पार्टियों का उदय कई प्रमुख कारकों पर निर्भर करता है। इन कारकों में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, और राजनीतिक तत्व शामिल हैं। स्वतंत्रता के बाद, भारत में विभिन्न राज्यों की सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता ने क्षेत्रीय पार्टियों के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

क्षेत्रीय पार्टियों के उदय के प्रमुख सिद्धांत और मॉडल:-

क्षेत्रीय पार्टियों के मॉडल विभिन्न प्रकार के होते हैं, जो उनके संगठनात्मक ढांचे, विचारधारा, और कार्यशैली पर निर्भर करते हैं। इन मॉडलों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:-

1. जातीय और सांस्कृतिक आधार पर मॉडल-

ये पार्टियां विशेष जातीय या सांस्कृतिक समूहों का प्रतिनिधित्व करती हैं और उनके हितों की रक्षा के लिए कार्य करती हैं। उदाहरण: तमिलनाडु की डीएमके (Dravida Munnetra Kazhagam) और एआईएडीएमके (All India Anna Dravida Munnetra Kazhagam) तमिल संस्कृति और भाषा को बढ़ावा देने के लिए कार्य करती हैं।

2. आर्थिक और क्षेत्रीय विकास पर आधारित मॉडल-

ये पार्टियां अपने राज्य या क्षेत्र के आर्थिक विकास और समृद्धि के लिए कार्य करती हैं। वे राज्य की आर्थिक असमानताओं को दूर करने और विकास को बढ़ावा देने के लिए नीतियां बनाती हैं।उदाहरण:

बिहार की राष्ट्रीय जनता दल (Rashtriya Janata Dal) और उत्तर प्रदेश की समाजवादी पार्टी (Samajwadi Party) ने आर्थिक सुधार और सामाजिक न्याय के मुद्दों को प्रमुखता दी है।

3. सामाजिक और धार्मिक आधार पर मॉडल-

ये पार्टियां विशेष सामाजिक या धार्मिक समुदायों का प्रतिनिधित्व करती हैं और उनके हितों की रक्षा के लिए कार्य करती हैं।उदाहरण: पंजाब की शिरोमणि अकाली दल (SAD) ने सिख समुदाय के मुद्दों और राज्य के कृषि संकट को प्रमुखता दी है।

4. राजनीतिक असंतोष और स्वायत्तता पर आधारित मॉडल-

ये पार्टियां राष्ट्रीय पार्टियों के प्रति असंतोष और उनकी नीतियों से असहमति के कारण उभरती हैं। वे राज्य की स्वायत्तता और स्थानीय मुद्दों को प्रमुखता देती हैं। उदाहरण: महाराष्ट्र की शिवसेना ने मराठी अस्मिता और स्थानीय मुद्दों को प्रमुखता दी है।

क्षेत्रीय पार्टियों का विकास एवं संचालन:-

क्षेत्रीय पार्टियों का संचालन उनके संगठनात्मक ढांचे और कार्यशैली पर निर्भर करता है। इनके संचालन की प्रक्रिया में निम्नलिखित तत्व शामिल होते हैं: रजनी कोठारी की "Politics in India" ने भारत में क्षेत्रीय पार्टियों के विभिन्न मॉडल और उनके संचालन की प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन किया गया है :-

1. राजनीतिक रणनीतियां : क्षेत्रीय पार्टियों का विकास उनके संगठनात्मक ढांचे और राजनीतिक रणनीतियों पर निर्भर करता है। ये पार्टियां स्थानीय मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करती हैं और राज्य के विकास के लिए विभिन्न योजनाएं और नीतियां प्रस्तुत करती हैं। क्षेत्रीय पार्टियां अपने राज्य के विशेष मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करती हैं और उन्हें राष्ट्रीय मंच पर उठाने के लिए विभिन्न राजनीतिक रणनीतियां अपनाती हैं। ये पार्टियां अक्सर गठबंधन सरकारों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और अपने राज्य के हितों की रक्षा करती हैं। उदाहरण के लिए, पंजाब में शिरोमणि अकाली दल (SAD) ने सिख समुदाय के मुद्दों और राज्य के कृषि संकट को प्रमुखता दी है।

2. केंद्रीय नेतृत्व और स्थानीय नेतृत्व : क्षेत्रीय पार्टियों का संचालन आमतौर पर केंद्रीय और स्थानीय नेतृत्व पर आधारित होता है। केंद्रीय नेतृत्व पार्टी की प्रमुख नीतियों और रणनीतियों का निर्धारण करता है, जबकि स्थानीय नेतृत्व स्थानीय मुद्दों को प्रमुखता देने के लिए कार्य करता है।उदाहरण: पश्चिम बंगाल की तृणमूल कांग्रेस (TMC) में ममता बनर्जी का केंद्रीय नेतृत्व महत्वपूर्ण है, जबकि स्थानीय नेता राज्य के विभिन्न जिलों में पार्टी का समर्थन मजबूत करने के लिए कार्य करते हैं।

3. राजनीतिक गठबंधन और समझौते : क्षेत्रीय पार्टियां राजनीतिक गठबंधनों में शामिल होकर राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे अपने राज्य के हितों की रक्षा के लिए राष्ट्रीय पार्टियों के साथ समझौते करती हैं। उदाहरण: बिहार में जनता दल (यूनाइटेड) ने भारतीय जनता पार्टी के साथ गठबंधन करके राज्य की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

4. नीतियां और कार्यक्रम : क्षेत्रीय पार्टियां अपने राज्य के विकास और स्थानीय मुद्दों के समाधान के लिए विशेष नीतियां और कार्यक्रम बनाती हैं। ये नीतियां आमतौर पर राज्य के विशेष समस्याओं और आवश्यकताओं पर केंद्रित होती हैं। उदाहरण: उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी (BSP) ने दलितों और पिछड़े वर्गों के विकास के लिए विभिन्न नीतियां और कार्यक्रम बनाएं हैं।

5. जनता के साथ सीधा संपर्क : क्षेत्रीय पार्टियां अपने समर्थन को मजबूत बनाने के लिए जनता के साथ सीधे संपर्क में रहती हैं। वे स्थानीय मुद्दों को समझने और समाधान के लिए सक्रिय रूप से कार्य करती हैं। उदाहरण: ओडिशा की बीजू जनता दल (BJD) ने राज्य के विभिन्न जिलों में जनता के साथ सीधा संपर्क बनाए रखने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाएं हैं।

केस स्टडी - भारत में प्रमुख क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों का इतिहास और परिचय निम्नलिखित है :-

1. तमिलनाडु – डीएमके (DMK):

सफलता: डीएमके ने राज्य की राजनीति में एक प्रमुख भूमिका निभाई है, खासकर सामाजिक न्याय और भाषा आंदोलन के मुद्दों पर।

उपलब्धियां: आर्थिक विकास, शिक्षा और स्वास्थ्य क्षेत्र में महत्वपूर्ण सुधार।

चुनौतियां: आंतरिक कलह और भ्रष्टाचार के आरोप।

स्रोत: Pandian, M. S. S. The Image Trap: M.G. Ramachandran in Film and Politics. Sage Publications, 1992.

2. पश्चिम बंगाल – तृणमूल कांग्रेस (TMC):

सफलता: वामपंथी शासन को समाप्त कर सत्ता में आई, और ममता बनर्जी के नेतृत्व में प्रमुख पार्टी बन गई।

उपलब्धियां: ग्रामीण विकास और महिला सशक्तिकरण में प्रगति।

चुनौतियां: राजनीतिक हिंसा और आंतरिक विरोध।

स्रोत: Bhattacharyya, Harihar. Politics in West Bengal: Institutions, Processes, and Problems. Worldview Publications, 2001.

.3 उत्तर प्रदेश – समाजवादी पार्टी (SP):

सफलता: जाति आधारित राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका।

उपलब्धियां: सामाजिक न्याय और पिछड़े वर्गों के लिए नीतियां।

चुनौतियां: परिवारिक विवाद और कमजोर संगठन।

स्रोत: Brass, Paul R. The Politics of India Since Independence. Cambridge University Press, 1990

4. महाराष्ट्र – शिवसेना:

सफलता: मुंबई और आसपास के क्षेत्रों में मजबूत पकड़।

उपलब्धियां: मराठी पहचान और सांस्कृतिक मुद्दों पर ध्यान।

चुनौतियां: हिंसा और साम्प्रदायिक राजनीति के आरोप।

स्रोत: Purandare, Vaibhav. Bal Thackeray and the Rise of the Shiv Sena. Roli Books, 2012.

5. बिहार – राष्ट्रीय जनता दल (RJD):

सफलता: लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में मजबूत सामाजिक न्याय आंदोलन।

उपलब्धियां: पिछड़े वर्गों के लिए नीतियां और राजनीतिक सुधार।

चुनौतियां: भ्रष्टाचार के आरोप और कमजोर प्रशासन।

स्रोत: Kumar, Sanjay. Post-Mandal Politics in Bihar: Changing Electoral Patterns. SAGE Publications, 2018.

6. ओडिशा – बीजू जनता दल (BJD):

सफलता: नवीन पटनायक के नेतृत्व में लगातार शासन।

उपलब्धियां: बुनियादी ढांचे और आपदा प्रबंधन में सुधार।

चुनौतियां: आंतरिक पार्टी संघर्ष और भ्रष्टाचार।

स्रोत: Mahapatra, Biswajit. Regionalism in Odisha: A Study of Biju Janata Dal. Kitab Mahal, 2013

7. तेलंगाना – तेलंगाना राष्ट्र समिति (TRS):

सफलता: राज्य के गठन के बाद महत्वपूर्ण राजनीतिक ताकत।

उपलब्धियां: राज्य के विकास और जल प्रबंधन में सुधार।

चुनौतियां: विरोधी दलों के साथ संघर्ष और आंतरिक असंतोष।

स्रोत: Rao, K. Srinivas. Telangana: The State of Affairs. Oxford University Press, 2018.

निष्कर्षत : स्वतंत्रता के बाद, भारत में विभिन्न राज्यों की सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता के विभिन्न कारकों ने क्षेत्रीय पार्टियों के उदय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, जिसका विश्लेषण निम्नलिखित प्रकार से किया जा है :

1. सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता :

भारत की विविधतापूर्ण संस्कृति और भाषाई विविधता ने क्षेत्रीय पार्टियों को बढ़ावा दिया। विभिन्न राज्यों में अलग-अलग भाषाएं, संस्कृतियां, और परंपराएं हैं, जो राष्ट्रीय पार्टियों द्वारा पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व नहीं की जाती हैं। उदाहरण के लिए, तमिलनाडु में डीएमके (Dravida Munnetra Kazhagam) और एआईएडीएमके (All India Anna Dravida Munnetra Kazhagam) जैसी पार्टियां तमिल संस्कृति और भाषा के संरक्षण के लिए कार्य करती हैं।

2. आर्थिक असमानता :

विभिन्न राज्यों में आर्थिक असमानता और विकास में अंतर ने भी क्षेत्रीय पार्टियों को बढ़ावा दिया। जो राज्य आर्थिक रूप से पिछड़े हुए हैं, वे अपने विशेष मुद्दों को राष्ट्रीय मंच पर उठाने के लिए क्षेत्रीय पार्टियों का समर्थन करते हैं।उदाहरण के लिए, बिहार और उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय पार्टियां जैसे राजद (Rashtriya Janata Dal) और सपा (Samajwadi Party) ने सामाजिक न्याय और आर्थिक सुधार के मुद्दों को प्रमुखता दी है।

3. राजनीतिक असंतोष :

राष्ट्रीय पार्टियों के प्रति असंतोष और उनकी नीतियों से असहमति ने भी क्षेत्रीय पार्टियों के उदय में योगदान दिया। स्थानीय नेता और राजनीतिक संगठन अपने राज्य के मुद्दों को प्रभावी ढंग से उठाने के लिए क्षेत्रीय पार्टियों का गठन करते हैं।उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र में शिवसेना ने मराठी अस्मिता और स्थानीय मुद्दों को प्रमुखता दी है।

4. **धार्मिक पहचान :**

जातीय और धार्मिक पहचान ने भी क्षेत्रीय पार्टियों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ये पार्टियां विशेष जातीय या धार्मिक समूहों का प्रतिनिधित्व करती हैं। उदाहरण: पंजाब में शिरोमणि अकाली दल (SAD) ने सिख समुदाय के मुद्दों और राज्य के कृषि संकट को प्रमुखता दी है।

क्षेत्रीय पार्टियों का राजनीतिक प्रभाव:-

क्षेत्रीय पार्टियों का राजनीतिक प्रभाव भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण है। ये पार्टियां राज्य की राजनीति में प्रमुख भूमिका निभाती हैं और राष्ट्रीय

राजनीति में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

1. **राष्ट्रीय राजनीति पर क्षेत्रीय पार्टियों का प्रभाव :** क्षेत्रीय पार्टियां भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, विशेषतः राष्ट्रीय स्तर पर गठित गठबंधनों में। उनका प्रभाव राज्यों के स्तर पर राजनीतिक दलों की समीक्षा और निर्णयों में दिखाई देता है। क्षेत्रीय पार्टियां अक्सर राष्ट्रीय राजनीतिक मामलों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती हैं। वे केंद्रीय सरकार में अलायंस बनाने या उसकी नीतियों को विपक्ष करने के लिए कुशलता से उपयुक्त होती हैं। इनका समर्थन या विरोध राष्ट्रीय राजनीतिक स्तर पर अहम फैसलों को प्रभावित कर सकता है।

2. गठबंधन सरकारें : क्षेत्रीय पार्टियां अक्सर गठबंधन सरकारों का हिस्सा बनती हैं और उनके समर्थन से सरकारें बनती और गिरती हैं। वे अपने राज्य के हितों की रक्षा के लिए गठबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।क्षेत्रीय पार्टियां अक्सर बड़े राष्ट्रीय पार्टियों के साथ गठबंधन बनाकर राजनीतिक समयसारी करती हैं। ये गठबंधन राजनीतिक समर्थन, सत्ता में हिस्सेदारी, और विशेष राजनीतिक मुद्दों पर सहमति प्राप्त करने में मदद कर सकती हैं। उदाहरण: बिहार में जनता दल (यूनाइटेड) ने भारतीय जनता पार्टी के साथ गठबंधन करके राज्य की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

3. नीतियों पर प्रभाव : क्षेत्रीय पार्टियां अपनी नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर प्रभाव डालती हैं। वे राज्य के विकास और स्थानीय मुद्दों के समाधान के लिए नीतियों का निर्माण करती हैं।क्षेत्रीय पार्टियां अपने क्षेत्रों के विशेष आवश्यकताओं और मांगों को समझती हैं और उन्हें ध्यान में रखकर नीति निर्माण में सक्रिय रहती हैं। इसके परिणामस्वरूप, वे शासन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और स्थानीय विकास को बढ़ावा देने में मदद करती हैं। उदाहरण: ओडिशा की बीजू जनता दल (BJD) ने राज्य के विभिन्न जिलों में जनता के साथ सीधा संपर्क बनाए रखने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाएं हैं।

4. संघीय ढांचे पर क्षेत्रीय पार्टियों का प्रभाव : क्षेत्रीय पार्टियां संघीय ढांचे में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे राज्य सरकारों में शामिल होकर केंद्रीय सरकार की नीतियों को लागू करने में सहायक हो सकती हैं या उनकी रुझानों को बदल सकती हैं। क्षेत्रीय पार्टियां संघीय ढांचे में अपने नियमों और विशेषताओं के साथ आती हैं, जिससे संघीय संरचना में उनका प्रभाव परिपूर्ण होता है। वे विशेष राजनीतिक मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करने में सक्षम होती है।

क्षेत्रीय पार्टियों का सामाजिक और आर्थिक प्रभाव:-

समाज के विभिन्न वर्गों पर क्षेत्रीय पार्टियों का प्रभाव:

1. वंचित और हाशिये पर रह रहे वर्गों का प्रतिनिधित्व: क्षेत्रीय पार्टियां अक्सर समाज के उन वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो मुख्यधारा की राजनीति में नजरअंदाज होते हैं। ये पार्टियां दलित, आदिवासी, पिछड़े वर्ग, और अल्पसंख्यकों के मुद्दों को उठाती हैं और उनके लिए विशेष योजनाएं और नीतियां लाने का प्रयास करती हैं।

2.. महिला सशक्तिकरण: कई क्षेत्रीय पार्टियों ने महिला सशक्तिकरण को अपने एजेंडा का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाया है। उन्होंने महिला आरक्षण, शिक्षा, स्वास्थ्य, और सुरक्षा के मुद्दों पर विशेष ध्यान दिया है।

3. युवा और बेरोजगार वर्ग: क्षेत्रीय पार्टियां अक्सर युवाओं और बेरोजगारों के मुद्दों को उठाती हैं। ये पार्टियां रोजगार योजनाएं, शिक्षा और कौशल विकास के कार्यक्रमों को बढ़ावा देती हैं।

आर्थिक नीतियों और विकास पर क्षेत्रीय पार्टियों का प्रभाव:-

1. स्थानीय विकास: क्षेत्रीय पार्टियां स्थानीय विकास को प्राथमिकता देती हैं। वे अपने क्षेत्र की विशेष जरूरतों को ध्यान में रखते हुए विकास योजनाएं बनाती हैं और उन्हें लागू करती हैं। इनमें बुनियादी ढांचे का विकास, सड़कें, बिजली, पानी और स्वास्थ्य सेवाएं शामिल हैं।

2. कृषि और ग्रामीण विकास: कई क्षेत्रीय पार्टियां कृषि और ग्रामीण विकास पर विशेष ध्यान देती हैं। वे किसानों के लिए लाभकारी योजनाएं, सब्सिडी, ऋण माफी, और सिंचाई सुविधाओं को बढ़ावा देती हैं।

3. उद्योग और व्यापार: क्षेत्रीय पार्टियां स्थानीय उद्योग और व्यापार को बढ़ावा देने के लिए नीतियां बनाती हैं। वे छोटे और मध्यम उद्योगों के विकास के लिए विशेष योजनाएं लागू करती हैं और निवेश को आकर्षित करने का प्रयास करती हैं।

4. वित्तीय विकेंद्रीकरण: क्षेत्रीय पार्टियां वित्तीय संसाधनों के विकेंद्रीकरण का समर्थन करती हैं ताकि राज्य और स्थानीय स्तर पर अधिक आर्थिक स्वायत्तता हो सके। इससे क्षेत्रीय विकास में तेजी आती है और आर्थिक असमानताएं कम होती हैं।

क्षेत्रीय अस्मिता और सांस्कृतिक पहचान को मजबूत करने में क्षेत्रीय पार्टियों की भूमिका:-

1. **भाषाई और सांस्कृतिक संरक्षण:** क्षेत्रीय पार्टियां अपनी भाषा और संस्कृति को संरक्षित और प्रमोट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे स्थानीय भाषाओं को शिक्षा, प्रशासन और मीडिया में अधिक महत्व देने

का प्रयास करती हैं।

2. सांस्कृतिक उत्सव और परंपराओं का समर्थन: ये पार्टियां स्थानीय त्योहारों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों और परंपराओं का समर्थन करती हैं और इन्हें बढ़ावा देती हैं। इससे सांस्कृतिक पहचान मजबूत होती है और समुदाय में एकता और गर्व की भावना बढ़ती है ।

3. स्थानीय इतिहास और धरोहर का संरक्षण: क्षेत्रीय पार्टियां स्थानीय इतिहास और धरोहर को संरक्षित करने के लिए भी प्रयासरत रहती हैं। वे ऐतिहासिक स्मारकों, विरासत स्थलों और पारंपरिक कला एवं शिल्प को संरक्षण देने के लिए नीतियां बनाती हैं।

4. सांस्कृतिक शिक्षा: क्षेत्रीय पार्टियां स्कूलों और कॉलेजों में सांस्कृतिक शिक्षा को बढ़ावा देती हैं ताकि युवा पीढ़ी अपनी संस्कृति और परंपराओं से जुड़े रहें। वे सांस्कृतिक विषयों पर आधारित पाठ्यक्रमों को शामिल करने का प्रयास करती हैं।

क्षेत्रीय पार्टियों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे:-

वित्तीय और संगठनात्मक चुनौतियाँ :

1. वित्तीय संकट : क्षेत्रीय पार्टियां अक्सर वित्तीय संकट से गुजरने का सामना करती हैं, क्योंकि उनके पास बड़े राष्ट्रीय दलों की तुलना में कम वित्तीय संसाधन होते हैं। इसके परिणामस्वरूप, वे चुनाव युद्ध में पर्याप्त पैसा खर्च करने में असमर्थ हो सकती हैं और उन्हें नए संगठनात्मक मशीनरी को स्थापित करने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है।

2. संगठनात्मक विकास : क्षेत्रीय पार्टियां अक्सर अपने क्षेत्रीय स्तर पर मजबूत संगठन नेटवर्क को बढ़ाने में संघर्ष करती हैं। वे अपने कार्यकर्ताओं की ताकत, राजनीतिक विशेषज्ञता और स्थानीय अनुभव को बढ़ाने के लिए प्रयासरत होती हैं।

3. राष्ट्रीय दलों के साथ प्रतिस्पर्धा : राजनीतिक संघर्ष: क्षेत्रीय पार्टियां राष्ट्रीय दलों के साथ राजनीतिक मानवाधिकार, प्रकृति के संरक्षण, विकास आदि क्षेत्रों में संघर्ष करने का सामना करती हैं। ये दल अक्सर राजनीतिक समर्थन, मीडिया कवरेज और वोटर्स के मद्देनजर अपनी पहचान बनाने की कोशिश करती हैं। चुनौतियाँ: ये दल अक्सर राष्ट्रीय दलों के बड़े नेतृत्व और संगठन से प्रतिस्पर्धा करने के लिए होती हैं, जिनके पास अधिक संसाधन और राजनीतिक व्यापकता होती है।

4. आंतरिक कलह और विभाजन: क्षेत्रीय पार्टियां अक्सर अपने भीतर आंतरिक कलह और विभाजन से गुजरती हैं, जो उनकी एकता और अभियांत्रिकी को ध्वस्त कर सकता है। यह बाधाएं उनके प्रदर्शन में नकारात्मक प्रभाव डाल सकती हैं और उनकी राजनीतिक प्रभावशीलता को कमजोर कर सकती है।

क्षेत्रीय पार्टियों की भविष्य की संभावनाएँ:-

1. राजनीतिक मजबूती: अगले कुछ दशकों में क्षेत्रीय पार्टियां अपनी राजनीतिक प्रभावशीलता में सुधार कर सकती हैं। वे अपने स्थानीय मुद्दों पर और अपने क्षेत्रीय समर्थकों के साथ मजबूत जुड़ाव बढ़ा सकती हैं।

2. संगठन विस्तार: क्षेत्रीय पार्टियां अपने संगठनात्मक नेटवर्क को मजबूत करने के लिए प्रयासरत हो सकती हैं। यह उन्हें नए क्षेत्रों में अपनी पहुंच बढ़ाने में मदद करेगा।

3. विकास नीतियाँ: क्षेत्रीय पार्टियां विकास और समाज के लिए सुदृढ़ नीतियों को अपनाकर अपनी पहचान मजबूत कर सकती हैं। इससे वे अपने नेतृत्व में मजबूती प्राप्त कर सकती हैं और अपने चुनावी पक्ष को बढ़ा सकती हैं।

क्षेत्रीय पार्टियों के लिए सुधार के सुझाव: एवं निष्कर्ष-

1. वित्तीय प्रबंधन: क्षेत्रीय पार्टियां अपने वित्तीय संसाधनों को प्रबंधित करने और वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करने में मदद प्राप्त कर सकती हैं। उन्हें अपनी वित्तीय संपत्ति को व्यय करने के लिए विश्वासी स्रोतों की तलाश करनी चाहिए।

2. तकनीकी और संगठनात्मक सुधार: ये पार्टियां अपने संगठनात्मक प्रक्रियाओं को मजबूत बनाने और नई तकनीकी उपायों का उपयोग करके अपनी कार्यशैली को प्रशासनिक और नियंत्रित करने में भी विशेष ध्यान देना चाहिए।

नीति निर्माण के लिए सिफारिशें:

1. समर्थन की बढ़ती आवश्यकता: क्षेत्रीय पार्टियां अपने क्षेत्रीय मुद्दों पर विशेष ध्यान देने और नीतियों को अनुकूलित करने के लिए समर्थन बढ़ाने के लिए प्रयासरत होनी चाहिए।

2. संवेदनशील नीतियाँ: ये पार्टियां विशेष ध्यान देनी चाहिए कि वे उन्हें समर्थन करने वाली नीतियाँ बनाएं जो समाज की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को समझती हों। वे स्थानीय स्तर पर विकास और विविधता को प्रोत्साहित करने वाली नीतियों के पक्ष में होनी चाहिए।

3. सामर्थ्य बढ़ाना: ये पार्टियां अपने कार्यकर्ताओं की प्रशिक्षण,

कौशल विकास और राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाने के लिए नीतियों को विकसित करनी चाहिए, ताकि वे राजनीतिक विवादों और चुनौतियों का सामना करने में सशक्त हो सकें।

संक्षेप में क्षेत्रीय पार्टियां भारतीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, विशेष रूप से स्थानीय मुद्दों और समर्थकों के माध्यम से। ये पार्टियां अक्सर राष्ट्रीय दलों के साथ संघर्ष करती हैं, लेकिन उनके पास अपनी विशेष पहचान और प्राकृतिक संसाधनों का ज्ञान होता है। भविष्य में क्षेत्रीय पार्टियों के विकास और प्रभाव के अध्ययन के लिए और गहराई से विश्लेषण करने के लिए और भी कई नए शोध धाराएँ हो सकती हैं। समर्थन और फंडिंग के स्रोत, राजनीतिक दलों के बीच गठबंधनों का अध्ययन, और यहाँ तक की डिजिटल माध्यमों के उपयोग का प्रभाव भी जांचा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. Brass, Paul R. The Politics of India Since Independence. Cambridge University Press, 1990

2. Sridharan, E. The Political Economy of Regionalism in India: A State-Level Analysis. Oxford University Press, 1994.

3. Kohli, Atul. Democracy and Development in India: From Socialism to Pro-Business. Oxford University Press, 2009.

4. Chhibber, Pradeep, and Ken Kollman. "Party Aggregation and the Number of Parties in India and the United States." Comparative Political Studies, vol. 38, no. 9, 2005, pp. 1068-1090.

5. Kothari, Rajni. Rethinking Democracy. Orient Blackswan, 2009.

6. Kothari Rajni "Politics in India" Orient Blackswan पृष्ठ 266-290

7. Kumar, Sanjay. "Political Parties in India: Their Challenges and Prospects." Journal of Asian and African Studies, vol. 49, no. 1, 2014, pp. 3-18.

8. Singh, M.P. et al. "Regional Parties and State Politics: A Study of Electoral Performance in Tamil Nadu." Indian Journal of Political Science, vol. 67, no. 2, 2006, pp. 345-359.

9. Mitra, Subrata K.The Puzzle of India's Governance: Culture, Context and Comparative Theory. Routledge, 2007.

10. Fadiya ,B.L. "Indian Government and Politics" Sahitya Bhawan Publications 2017 पृष्ठ 321-345.

11. State Election Commission, [Respective State Name]." Official Webite. [URL]

****

गांधी और नेहरू के विकास मॉडल की तुलना

-डॉ प्रशांत कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान
तिलकधारी पी जी कॉलेज, जौनपुर

प्रस्तावना

विकास मॉडल ऐसी रणनीति या परिपेक्ष को संदर्भित करता है, जिसका प्रयोग देश के आर्थिक समृद्धि, सामाजिक विकास और जीवन स्तर में सुधार को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। विकास मॉडल के उदाहरण है पूंजीवादी विकास मॉडल, समाजवादी विकास मॉडल,लोक कल्याणकारी विकास मॉडल आदि।

सामान्यतः यह माना जाता है कि गांधी और नेहरू के विचारों में समानता है।इस पेपर में दोनों के विचारों की तुलना करते हुए,दोनों के विचारों में अंतर स्पष्ट किया गया है। यह इस परिकल्पना के साथ लिखा गया है कि गांधी और नेहरू के विचारों में व्यापक अंतर है। भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी (मोहनदास करमचंद गांधी) (1869–1948) आधुनिक भारत के महान जननायक, समाज सुधारक और नैतिक दार्शनिक थे। गांधी जी ने सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों के आधार पर मानवता को समाज के नवनिर्माण की नई राह दिखाई। नेहरू जी (पंडित जवाहरलाल नेहरू)एक महान देशभक्त, कर्मठ राजनेता, शांति के दूत, स्वतंत्रता और लोकतंत्र के कट्टर समर्थक, इतिहासकार तथा लोकतांत्रिक समाजवादी थे।उनका लक्ष्य भारत में लोकतांत्रिक समाजवाद की स्थापना करना था।महात्मा गांधी और पंडित नेहरू के दृष्टिकोण में काफी अंतर था। गांधी जी जब किसी विषय पर सोचते, तब उनका तरीका आदर्शवादी, आध्यात्मिक एवं पूर्ण नैतिकतावादी होता था, परंतु नेहरू का तरीका वैज्ञानिक, व्यावहारिक,आधुनिक और समयानुकूल होता था।गांधीवादी विकास मॉडलगांधीवादी विकास मॉडल सादगी, अहिंसा और समानता के साथ सहयोग पर आधारित मॉडल है। गांधी जी विकास की ऐसी किसी भी अवधारणा के विरुद्ध थे, जिसका लक्ष्य भौतिक इच्छाओं को बढ़ाना और उनकी पूर्ति के उपाय ढूंढना हो। वे मानव के चरित्र को इतना उन्नत करना चाहते थे कि वह भौतिक इच्छाओं का दामन करके अपने मन को बस में कर ले। उन्होंने तर्क दिया कि पश्चिम में जब लोग जनसाधारण की दशा सुधारने की बात करते थे, तो उनका लक्ष्य उनके भौतिक जीवन स्तर को उन्नयन करना होता है। परंतु मनुष्य का सच्चा जीवन स्तर उसकी अंतरात्मा से निर्धारित होता है। बाह्य परिस्थितियों में कोई भी परिवर्तन करके उसे उन्नत नहीं किया जा सकता है। इसके लिए मनुष्य को अपने कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त करने और उनका पालन करने की प्रेरणा देनी होगी, ताकि वह ईश्वर के निकट पहुंच सके। मनुष्य की भौतिक इच्छाओं को उत्तेजित करने उनकी पूर्ति के साधन जुटाने से हम केवल उसे नैतिक पतन के गर्त में धकेल सकते हैं।

गांधी जी ने यह शिक्षा दी कि मनुष्य को भौतिक वस्तुओं का उतना ही उपभोग करना चाहिए,जितना उसके शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अनिवार्य हो। इससे अधिक की इच्छा मनुष्य को मोह माया और भ्रम के जाल में फंसा देती है। भौतिक इच्छाएं कभी शांत नहीं होती। उनकी तृप्ति का प्रयत्न करने से वह और भी उत्तेजित होती है। तरह-तरह के प्रलोभनों के पीछे दौड़ते हुए मनुष्य की संकल्प शक्ति नष्ट हो जाती है। कुल मिलाकर गांधी जी ने विकास का जो मार्ग दिखाया वह मनुष्य के स्वभाव और चरित्र को नए सांचे में ढालने पर बल देता है। समाज के सदस्यों का चरित्र उन्नत होने पर संपूर्ण समाज एक नए रूप में ढल जाएगा। विकेंद्रीकरण और ग्राम स्वराजगांधीजी राज्य की सत्ता को बढ़ाने बढ़ाए जाने के विरुद्ध थे। क्योंकि उनके अनुसार हालांकि राज्य की सत्ता कई बार शोषण समाप्त करने के उद्देश्य से बढ़ाई जाती है, लेकिन यह प्रगति के मूल तत्व–व्यक्ति के व्यक्तित्व, को नष्ट करके मानवता का बहुत बड़ा अहित करती है। इसलिए गांधी राज्य की सत्ता को कम से कम रखने की और राजनीतिक सत्ता की अधिकतम विकेंद्रीकरण के पक्ष में थे। इसलिए वे विकेंद्रीकृत ग्राम गणराज्य का समर्थन करते थे।उन्होंने यह विचार रखा कि उनके आदर्श राज्य छोटे-छोटे आत्मनिर्भर ग्राम समुदायों का संघ होगा। उनका मानना था कि प्रत्येक गांव जहां तक संभव हो भोजन, कपड़ा, पानी, दूध, सफाई, माध्यमिक शिक्षा और मनोरंजन के मामले में आत्मनिर्भर हो। गांव की सरकार गांव के वयस्क नागरिकों द्वारा निर्वाचित पंचायत के माध्यम से चलाई जाए। ग्राम पंचायत को विधायी,कार्यकारी और न्यायिक शक्तियां प्राप्त होगी।

ग्रामों के समूहों को तालुको के रूप में तालुको के समूह को जनपदों के रूप में और जनपदों के समूह को प्रदेशों के रूप में संगठित किया जाएगा। इनमें से प्रत्येक इकाई अपने से ऊंची इकाई के लिए अपने-अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजेगी। शासन के प्रत्येक स्तर को पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त होगी और वह समुदायिकता की भावना से उत्प्रोत होगा।प्रत्येक प्रदेश अपनी स्थानीय आवश्यकताओं और संपूर्ण देश के हित को ध्यान में रखते हुए अपना-अपना संविधान बनाने को स्वतंत्र होगा। केंद्र के स्तर पर पूरा देश समुदायों का समुदाय प्रतीत होगा। केंद्रीय सरकार को इतनी सत्ता अवश्य प्राप्त होगी कि वह सब प्रदेशों को एकता के सूत्र में पिरो सके, परंतु इतनी नहीं कि वह उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर सके। गांधीजी केंद्रीय विधानसभा

के प्रत्यक्ष चुनाव के विरुद्ध थे क्योंकि उसे उत्तरदायित्व की भावना का ह्रास होगा और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलेगा।

गांधी जी को विश्वास था कि इस तरह की राजव्यवस्था को विस्तृत अधिकारी तंत्र की जरूरत नहीं होगी। क्योंकि उसमें अधिकांश निर्णय प्रक्रिया विकेंद्रीकृत होगी। फिर जिस समाज में कोई भूखा नहीं रहेगा और सब लोग मिलजुल कर रहेंगे, उसमें अपराध बहुत कम होंगे। अतः पुलिस की विशेष जरूरत नहीं रहेगी यदि भूले भटके कोई अपराध कर बैठेगा तो जनमत का नैतिक प्रभाव उसका हृदय परिवर्तन करने के लिए पर्याप्त होगा। यदि जरूरत हो तो नागरिक बारी–बारी से पुलिस की भूमिका संभाल सकते हैं। इस राजव्यवस्था में गृह युद्ध की कोई संभावना नहीं है और सेना की जरूरत भी नहीं रहेगी। जहां लोग अपनी स्वाधीनता के लिए मर मिटने को तैयार रहेंगे वहां विदेशी आक्रमण का कोई खतरा नहीं रहेगा। गांव की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि और छोटे कुटीर उद्योगों पर आधारित हो। इस तरह गांधी के अनुसार हर एक गांव एक आदर्श लोकतंत्र हो, जिसमें नागरिकों को स्वतंत्रता प्राप्त हो और जिसकी सरकार सहयोग और अहिंसा के आधार पर काम करने वाली नागरिकों की अपनी सरकार हो। व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी हो और उसे अपने व्यक्तित्व के विकास का पूरा अवसर प्राप्त हो।गांधी के ग्राम स्वराज के विचार को भारतीय संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्व के भाग में अनुच्छेद 40 में जगह दी गई है। जहां कहा गया है राज्य ग्राम पंचायत का संगठन करने के लिए कदम उठाएगी और उनको ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा, जो उन्हें स्वस्थ शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो। 73वें संविधान संशोधन 1992 द्वारा पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता भी दी गई और उसका व्यवस्थित गठन भी किया गया।

ट्रस्टीशिप

गांधी के अनुसार श्रम पूंजी से श्रेष्ठ है। उनका मानना था कि अगर श्रमिक पूंजीवाद के विरुद्ध खड़े हो जाए तो पूंजीवाद का अंत हो जाएगा। लेकिन वह साम्यवादियों की तरह बलपूर्वक पूंजीवाद को उखाड़ फेंकने के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार यह प्रक्रिया वर्ग द्वेष पर आधारित है, जो अहिंसा या प्रेम के नैतिक मूल्य के विरुद्ध है। गांधी के अनुसार जिस तरह पूंजीपतियों द्वारा श्रमिकों को उनके श्रम के न्याय संगत मूल से वंचित रखना नैतिक दृष्टि से अनुचित है। वैसे ही श्रमिकों द्वारा अतिरंजित मांगों से पूंजीपतियों को परेशान करना और उद्योगों को नष्ट करना भी अनुचित है। वह पूंजीपति और मजदूर वर्ग के बीच संघर्ष नहीं, सहयोग और सह अस्तित्व का समर्थन करते थे। गांधी जी समाज में गैर बराबरी मिटाने के और आर्थिक क्षमता स्थापित किए जाने के पक्ष में थे। लेकिन वह साम्यवादियों की तरह यह नहीं मानते थे कि इसके लिए उत्पादन के साधनों में व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। उनके अनुसार ट्रस्टीशिप के सिद्धांत द्वारा इस लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। गांधी के अनुसार पूंजीपतियों को यह समझना चाहिए कि उनके पास जमा पूंजी श्रमिकों के श्रम का परिणाम है। इसलिए एक पूंजीपति या जमीन मालिक को जिसके पास आवश्यकता से अधिक धन हो, अपने आप को उसे धन का ट्रस्टी मानना चाहिए। उसे समझना चाहिए कि वह धन आम जनता का है, जो उसके पास धरोहर है और इसीलिए उसे धन का इस्तेमाल अपने निजी आराम के लिए करने के बजाय उसे जनकल्याण के कार्यों में लगाना चाहिए।

गांधी के अनुसार अगर संपत्ति वाहन वर्ग समझाने बुझाने से अपने को ट्रस्टी मानने से इनकार करते हैं तो अंतिम विकल्प के रूप में सहयोग या सत्याग्रह का सहारा भी लिया जा सकता है। आजादी के कुछ समय पहले उन्होंने वैधानिक ट्रस्टीशिप का भी समर्थन किया लेकिन उनके अनुसार इस किस्म के कानून को ऊपर से लड़े जाने के की बजाय सामाजिक परिस्थितियों के परिपक्व होने पर जनता द्वारा पंचायत स्तर से लागू किया जाना चाहिए। औद्योगिकरण और मशीन के प्रति दृष्टिकोण गांधी उद्योगवाद के विरुद्ध थे। यह विश्व के औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों की तरह भारत का औद्योगिकरण नहीं चाहते थे। बड़े उद्योगों को वह एक बुराई मानते थे। एक समय तो उन्होंने यह भी कह दिया था कि रेल और टेलीग्राफ मनुष्य के नैतिक विकास के लिए जरूरी नहीं है। हालांकि वे इन सुविधाओं को समाप्त करने की वकालत नहीं करते थे। बाद में उन्होंने स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि वह मशीन के नहीं बल्कि मशीन के दुरुपयोग के विरुद्ध थे। चरखा भी एक मशीन ही है। उनके अनुसार मनुष्य के स्थान पर मशीन का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। गांधी के अनुसार मशीन का ऐसा प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए जिससे–

1.बेरोजगारी बढ़े,

2. अमीर पूंजीपतियों द्वारा गरीब श्रमिकों का और एक देश द्वारा दूसरे देश का शोषण हो,

3.बड़े उद्योगों और बड़े शहरों द्वारा समाज केंद्रीयकारण की दिशा में बढ़े और इसके साथ जुड़ी नैतिक बुराइयां उत्पन्न हो,

4. मशीन पर अतिशयी निर्भरता के कारण मनुष्य अपने शरीर के अंगों से कम ही लेना छोड़ दें।

गांधी जी बुनियादी तौर पर मशीन और उद्योगों के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते थे। गांधी अपरिग्रह या असंग्रह का समर्थन करते थे।

नेहरूवादी विकास मॉडल

मिश्रित अर्थव्यवस्था

नेहरू ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की वकालत की, जहां सरकार द्वारा नियंत्रित उद्योग निजी क्षेत्र के साथ-साथ अस्तित्व में हो। उनका मानना था कि बुनियादी और भारी उद्योग की स्थापना भारतीय अर्थव्यवस्था के आधुनिकीकरण और विकास के लिए मौलिक थे। इसलिए सरकार ने मुख्य रूप से प्रमुख लोक क्षेत्र के उद्योगों में निवेश का निर्देश दिया जैसे स्टील,

लोहा, कोयला, ऊर्जा। जिससे सब्सिडी और संरक्षणवादी नीतियों के साथ विकास को बढ़ावा मिला। 1948 और 1956 के भारतीय औद्योगिक नीति प्रस्तावों में नेहरू की नीतियों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

नेहरू जी का दृढ़ विश्वास था कि गरीबी और देश में आर्थिक पिछड़ापन मिटाने में एक महत्वपूर्ण सीमा तक लोक क्षेत्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। उन्होंने निजी क्षेत्र की भूमिका को भी महत्व दिया।नेहरू ने लोक उद्योगों के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता दी जाने की वकालत की। वह इन उद्योगों के लिए नौकरशाही प्रबंधन शैली के प्रयोग के खिलाफ थे। इसलिए हमें लोक उद्योगों की कार्यप्रणाली के लिए एक व्यवस्था विकसित करनी होगी जहां एक ओर पर्याप्त जांच और संरक्षण हो और दूसरी ओर उद्यम को जल्दी और बिना देरी के काम करने की पर्याप्त स्वतंत्रता प्राप्त हो।

लोकतांत्रिक समाजवाद

नेहरू आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता को एक विडंबना मात्र मानते थे। उन्होंने समाजवाद की व्याख्या करते हुए कहा था कि समाजवाद का अर्थ केवल धन का वितरण या जन कल्याण करना नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि देश में उत्पादन बढ़ाया जाए,धन की वृद्धि हो और फिर अर्जित धन का समुचित ढंग से वितरण किया जाए। 1936 में ही नेहरू जी ने राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष के रूप में औद्योगीकरण द्वारा सुधरे भारत की संकल्पना की थी। जब भी भारत के प्रधानमंत्री बने तो अपनी कल्पना को साकार करने का उन्हें अवसर प्राप्त मिला। औद्योगिक विकास के साथ-साथ कृषि का भी विकास हुआ। साथ में ग्रामों का उत्थान और कुटीर उद्योग धंधों को भी बढ़ावा दिया गया। अतः उन्होंने गांधीजी एवं पश्चात देशों की अर्थव्यवस्था का समन्वय किया।

नेहरूजी ने राष्ट्रीय विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएं चलाई। वे किसानों और मजदूरों का जीवन स्तर ऊंचा करना चाहते थे। वह जमींदारी प्रथा के विरुद्ध थे, क्योंकि उन्हें वह समाज का शोषक मानते थे। वे भूमि के वास्तविक मालिक को जमीन देकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में क्रांतिकारी सुधार चाहते थे। उन्होंने कहा था कि हमारा उद्देश्य एक आर्थिक ढांचे का निर्माण करना है,जो बिना व्यक्तिगत एकाधिकार तथा पूंजी के केंद्रीकरण के अधिकतम उत्पादन प्रदान करते हुए, शहरी व ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रयुक्त संतुलन पैदा करेगा। कांग्रेस के आवाडी अधिवेशन (1955) में उन्होंने समाजवादी समाज की स्थापना का निश्चय किया। उनका कहना था कि समाजवादी समाज में उत्पादन और वितरण के साधनों पर व्यक्तिगत स्वामित्व तो नहीं होना चाहिए। नेहरू जी राज्य को सर्वशक्ति संपन्न बनाने वाले समाजवाद के खिलाफ थे। वह केंद्रीकरण नहीं बल्कि विकेंद्रीकरण के पक्षपाती थे। उनका मानना था कि शांतिपूर्ण और संवैधानिक उपाय से ही जगत में उन्नति हो सकती है। लोकतांत्रिक उपाय के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय अपनाया गया तो वह विनाशकारी सिद्ध होगा। उनका कहना था कि संसार की और भारत की समस्याओं का समाधान केवल समाजवाद द्वारा ही संभव दिखाई पड़ता है। वह पश्चात ढंग का समाजवाद नहीं लाना चाहते थे, बल्कि उसे भारतीय परिस्थितियों के अनुसार डालना चाहते थे। हालाकि वे गांधी जी के समान नेहरू जी स्वशासी ग्रामों का शासन नहीं चाहते थे। वह ग्रामीण सभ्यता को पिछड़ापन कहते थे और विश्व की दृष्टि में वे भारत को पिछड़ा देश कहलाने को तैयार न थे।

नेहरू जी यद्यपि नागरिक सभ्यता के प्रशंसक थे पर ग्रामीण जनसंख्या को नहीं भूलते थे। बड़े पैमाने पर उद्योगों के पक्ष में रहते हुए भी वह कुटीर उद्योगों की अपेक्षा नहीं करना चाहते थे। उन्होंने कुटीर उद्योगों के राष्ट्रीय संरक्षण पर भी पर्याप्त बल दिया। उनका कहना था कि देश की संपूर्ण अर्थव्यवस्था में विशाल और लघु उद्योगों के समन्वय करने की बड़ी आवश्यकता है।

पंडित नेहरू यद्यपि देश का औद्योगिकरण चाहते थे, परंतु कृषि की भी अपेक्षा नहीं करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि भारत औद्योगिक प्रगति तभी कर सकता है जब वह कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भर हो। यह किसके विकास के लिए वैज्ञानिक पद्धति अपनाने का परामर्श देते थे। उन्होंने कहा कि कृषि को देश की विस्तृत अर्थव्यवस्था के अनुकूल बनाना है। उनका विचार था कि कृषि का रूप सहकारी होना चाहिए। क्योंकि यही व्यवस्था देश को समाजवाद की ओर ले जाएगी।

व्यक्ति और राज्य : गांधी और नेहरू

गांधी जी राज्य विहीन समाज को आदर्श मानते थे, लेकिन क्योंकि व्यवहार में इस आदर्श को पूरी तरह प्राप्त करना संभव नहीं है। इसलिए उन्होंने अमेरिका विचारक थोरो की इस उक्ति को अपनाया कि 'वह सरकार सर्वश्रेष्ठ है जो काम से कम शासन करें।' समाज दार्शनिक दृष्टि से गांधी व्यक्तिवादी थे। गांधी के अनुसार मूल्यों और सत्ता की दृष्टि से व्यक्ति का केंद्रीय महत्व है। राज्य और सरकार अपना अस्तित्व और सत्ता व्यक्तियों से प्राप्त करती हैं। राज्य का उद्देश्य होना चाहिए व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहयोग। राज्य को आम जनता के प्रति सेवा की भावना रखनी चाहिए। कभी भी मलिक जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए।

गांधी जी के अनुसार आम नागरिकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि उनके सहयोग के बिना सरकार एक कदम भी नहीं चल सकती। इसलिए उन्हें सरकार के कल्याणकारी कार्यों को लागू करने में, अच्छे कानून का पालन करने में और राज्य की सुरक्षा करने में पूरा सहयोग करना चाहिए। लेकिन दूसरी ओर अगर राज्य जनता का शोषण करें, उनके विकास में बाधा उत्पन्न करें, तो नागरिकों का यह दायित्व हो जाता है कि वह अपना सहयोग वापस ले लें और नैतिक दबाव एवं अहिंसक असहयोग द्वारा सरकार को सुधरने के लिए बाध्य करें। इस तरह नागरिकों को सहयोग और सहयोग द्वारा सरकार को न्याय के रास्ते पर बनाए रखना चाहिए। गांधी जी के अनुसार सच्चा स्वराज कुछ लोगों द्वारा सत्ता प्राप्त करने से नहीं आएगा बल्कि सभी

लोगों द्वारा सत्ता के दुरुपयोग का प्रतिरोध करने की क्षमता को प्राप्त करने से आएगा।

नेहरू का आदर्श राज्य गांधी के समान ना तो अराजकतावादी था, ना ही मार्क्सवाद के समान वर्ग विहीन और राज्य भिन्न समाज चाहते थे। वे राज्य को वास्तविक एवं लाभकारी संस्था मानते थे। वह राज्य को समाज की बुराइयों को दूर करने का अच्छा साधन मानते थे। वह मानवतावादी थे, पर गांधी जी के समान उनका विश्वास यह ना था कि मानव प्रकृति बुरी नहीं होती, ना ही वे हॉब्स के समान मानव प्रकृति को केवल बुरा ही मानते थे। वे मानते थे मनुष्य में अच्छाई और बुराई दोनों है। वे मनुष्य की हिंसा, घृणा, स्वार्थपरता, लोभ इत्यादि पर नियंत्रण रखने के लिए राज्य को आवश्यक मानते थे।

गांधी जी पूर्ण अहिंसक थे और राज्य को हिंसा का आधार मानकर इसे त्याज्य समझते थे, पर नेहरू अहिंसा में तो विश्वास करते थे परंतु उसे सिद्धांत रूप में कभी नहीं मानते थे कि राज्य को हिंसावादी मानकर उसे अस्वीकार कर देना चाहिए। उनका कहना था कि राज्य मानव स्वभाव में और समाज में व्याप्त घृणा, स्वार्थपरता,संघर्ष और हिंसा पर नियंत्रण रखता है। राज्य की बाध्यकारी सत्ता के बिना कर वसूल नहीं हो पाएंगे। व्यक्तिगत संपत्ति लुप्त हो जाएगी।

नेहरू जी व्यक्तिवादी सिद्धांत से सहमत न थे कि राज्य को कम से कम हस्तक्षेप करना चाहिए। वह यह मानते थे कि राज्य समाज का पालन पोषण करता है।

उन्होंने सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए समाजवादी व्यवस्था को एक आदर्श व्यवस्था माना है। समाजवाद में राज्य के कार्य व्यापक होते हैं वह अधिक से अधिक कार्य कर समाज का अधिक से अधिक कल्याण करना चाहता है। नेहरू जी अत्यधिक केंद्रीकरण के विरोधी थे। उनका मानना था कि केंद्रीकरण को उस सीमा तक स्वीकार किया जाना चाहिए जहां तक यह व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाधक न बने। इसी पृष्ठभूमि में उन्होंने सामुदायिक विकास योजना और पंचायती राज व्यवस्था को लागू कर लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण को प्रोत्साहन भी दिया।

निष्कर्ष

नेहरूजी, गांधीजी के शिष्य थे। गांधीजी ने भी नेहरू को अपना उत्तराधिकारी भी माना था। दोनों बहुत अच्छे मित्र भी थे। दोनों महापुरुष स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। दोनों के विचारों में काफी समानताएं भी थी। दोनों ही साधन और साध्य की पवित्रता पर बल देते थे। दोनों ही अहिंसा को मानते थे। दोनों ही सत्य को ईश्वर का रूप मानते थे। दोनों ही लोकतंत्र के प्रबल समर्थक है।

यद्यपि कि नेहरूजी जीवन में कभी भी महात्मा गांधी के विचारों का विरोध नहीं किया। समानता दोनों के विचारों को एक जैसा भी समझ लिया जाता है, लेकिन उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दोनों के विचारों में व्यापक अंतर देखने को मिलता है।

जहां गांधीजी स्वायत्त ग्राम स्वराज की संकल्पना को अपना आदर्श मानते हैं, वहीं नेहरूजी लोकतांत्रिक समाजवाद को अपना आदर्श मानते हैं। गांधी जहां ग्राम विकास पर बल देते हैं,वहीं नेहरूजी शहरी विकास को महत्वपूर्ण मानते हैं। गांधीजी ग्रामीण व कुटीर उद्योगों के समर्थक हैं तो नेहरूजी बड़े उद्योगों के समर्थक हैं। गांधी जी जहां शारीरिक श्रम के समर्थक और मशीनीकरण के विरोध के विरोधी हैं वही नेहरूजी देश के औद्योगिक विकास के लिए मशीनीकरण को प्रमुखता देते हैं।

संक्षेप में कहे तो गांधी जी भारतीय समाज व संस्कृति तथा दर्शन को अपना आदर्श मानते हुए भारत में रामराज्य लाना चाहते हैं जबकि नेहरूजी पाश्चात्य दर्शन, विचार व संस्कृति तथा औद्योगीकरण को आदर्श मानते हुए भारत को एक लोकतांत्रिक समाजवादी देश बनाना चाहते हैं।

नेहरूजी देश के प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने अपने विचार को देश में लागू किया और वर्तमान में नेहरू विकास मॉडल की अनेक कमियां सामने आ गई है जैसे पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन,अति भौतिकवाद, उपभोक्तावाद, व्यक्ति का अमानवीकरण तथा शहरीकरण से उत्पन्न समस्याएं। इसलिए आज गांधी का ग्राम स्वराज काफी प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि यह वर्तमान समस्याओं का सबसे अच्छा समाधान हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गांधी, महात्मा , सत्य के साथ में प्रयोग : एक आत्मकथा 1925
2. गांधी, महात्मा, हिंद स्वराज, 1909
3. नेहरू,जवाहर लाल, भारत की खोज, 1944
4. नेहरू, जवाहर लाल, विश्व इतिहास की झलक, 1934
5. नेहरू, जवाहर लाल,एक आत्मकथा, 1935
6. डॉ वर्मा, वी पी, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2020
7. डॉ रामेंद्र, समाज और राजनीतिक दर्शन, मोतीलाल बनरासीदास , दिल्ली, 2005
8. डॉ अवस्थी, ए पी, भारतीय राजनीतिक विचारक, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2001

भारत में अवैध अप्रवासन – एक सामाजिक समस्या

-श्रीमती साजिदा जमाल

(एम.ए.समाजशास्त्र),

शांती नगर, लैलुँगा, रायगड छत्तीसगड

शोध सारांश– वर्तमान परिदृश्य में अवैध अप्रवासन की समस्या एक महत्वपूर्ण ज्वलंत समस्या के रूप में है मानव आपसी संघर्ष, विवाद या गरीबी के खतरायुक्त जीवन से एक अच्छे जीवन की खोज करता है जिससे वह एक स्थान से दूसरे को गमन करता है। अल्प विकसित देश होने के कारण रोजी–रोटी के लिए चोरी छिपे भारत आना एक मुख्य कारण था। एक अनुमान के मुताबिक करीब 150 ला ख अवैध नागरिक भारत में अवैध रूप से रह रहे है ये शरणार्थी है या घुसपैठीं। अभी हाल में केवल असम में एन.आर.सी. (नेशनल रजिस्टर ऑफ सिटीजन) का अंतिम मसौदा जारी होने के बाद राज्य में 40 लाख अवैध प्रवासियों का पता चला है। भारत में अवैध अप्रवासन पडोसी देशों के संबंधों को प्रभावित करने वाले कारकों में से एक है।

शब्द कुंजी– भारत में अवैध अप्रवासन, भारत में शरणार्थी समस्या

भारत में अवैध अप्रवासन की समस्या सन् 1947 के भारत–पाकिस्तान विभाजन के साथ प्रारंभ होती है। भारत–पाकिस्तान सीमा पर समुचित प्रबंध न होने के कारण एवं तमिलों के अवैध अप्रव. ासन के कारण समस्या बढ़ती चली गई, सन् 1948 से 1952 के समय में वृहद रूप से शरणार्थी को भारतीय सरकार द्वारा वैध मान लिया गया था। अधिकतर शरणार्थियो के आने का मुख्य कारण –

1.भारत के पडोसी देशों में राजनीतिक अस्थिरता ।

2.मुख्यतः हिन्दु परिवारो को युद्ध के समय असुरक्षित होने की भावना।

3.शरणार्थियो को भारतीय सीमा में रह रहे रिश्तेदारो और दोस्तो द्वारा आश्रय देना। 4. पडोसी देशों में आर्थिक अस्थिरता । सन् 1981 में बांग्लादेश में हिन्दुओं का प्रतिशत कुल आबादी का 12.13% थी जो 2011 में घटकर 8.96% हो गई इसी प्रकार सन् 1931 में पाकिस्तान में हिन्दुओं का प्रतिशत कुल आबादी का 15% थी जो 1998 में घटकर 1.8% हो गई इसका कारण मुस्लिम कट्टरपंथी ज्यादा शक्तिशाली हो गये जो हिन्दुओं को डराते धमकाते थे जिससे असुरक्षा से भारतीय सीमा में अवैध अप्रवासन बढ़ गया। सन् 1990 के बाद शरणार्थी आने का मुख्य कारण आर्थिक था । हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही शरणार्थी भारत आये। कट्टरपंथी मुस्लिम शासन काल सरकार में मुस्लिम कट्टरपंथी ज्यादा शक्तिशाली हो गये जो हिन्दुओ को डराते धमकाते थे जिससे भय एवं असुरक्षा से भारतीय सीमा में अवैध प्रवास बढ़ा कुछ प्रवासियों का आना–जाना लगातार होता रहता था जिससें भारतीय सीमा क्षेत्रों में मकान या सम्पत्ति की खरीददारी भी करते थे। भारत से अवैध अप्रवासन सर्वाधिक बांग्लादेश से हुआ है, भारत–बांग्लादेश के बीच सीमा समझौता शर्ते न होने के कारण अवैध बांग्लादेशी लोग भारत में आते गये। बांग्लादेश कहता रहता है कि भारत में कोई बांग्लादेशी नहीं है, लम्बे समय तक बांग्लादेश चकमा शरणार्थियों की बात को इन्कार करता रहा है। जैसे बांग्लादेश के पूर्व राष्ट्रपति जनरल एम. इरशाद के अगस्त 1983 के कथन से स्पष्ट है कि "हमने अपनी आजादी महानतम बलिदानों से प्राप्त की है, हमारे लोग पूरी शान्ति और मजहबी सन्तुलन में जीते है हम पूरी तरह से सुरक्षित होते हुए अपने लोगों की सारी सुविधाओं की अच्छी व्यवस्था करते हैं। इसलिए यह सवाल कि हमारे लोग दूसरे देश में अवैधानिक तरीकों से प्रवास करते हैं, जैसा कि आरोप है, गलत है इस तरह से शुरू से ही बांग्लादेशी नेता इन्कार करते रहे है । ऑकड़ो के अनुसार पश्चिम बंगाल की सरकार के अनुसार अवैध अप्रवासियों कि सख्या लगभग 4.4 मिलियन की है , जो आज लगभग 5 मिलियन के आस–पास है। असम में 2.2 मिलियन और इसी तरह त्रिपुरा, बिहार, मणिपुर, नागालैण्ड के साथ –साथ पूरे भारत में इनका तेजी से विस्तार हो रहा है, जिनकी पूरी संख्या 15 मिलियन आंकी गई है। केन्द्र सरकार ने 12–18 मिलियन अवैध बांग्लादेशी स्वीकार किया है। यद्यपि सामाजिक और शारीरिक समानता के कारण ये लोग स्थ. ानीय लोगों में आसानी से घुल मिल जाते है, जिससे कि इनके चिन्हीकरण की समस्या उत्पन्न हो जाती है। उसी प्रकार भारत में श्रीलंका से बहुत ज्यादा अप्रवासन हुआ है। सन् 1971 के बाद भारत में बहुत अधिक सख्या में अप्रवासन हुआ, बांग्लादेश से भारत में प्रवासन को हम दो समूहों में बाट सकते हैं जिसमें प्रथम समूह में हिन्दू बांग्लादेशी जो मुख्यतः शरणार्थी के रूप में भारत आये क्योंकि मुस्लिम कट्टरपंथी हिन्दुओं को डराते धमकाते थे जिससे असुरक्षा से भारतीय सीमा में अवैध प्रवास हुआ द्वितीय समूह में वे मुस्लिम शरणार्थी जो अपने आर्थिक आवश्यकता हेतु अप्रवासन का सहारा लेते है।

भारतीय सीमा में अवैध प्रवास हिन्दू और मुस्लिम बांग्लादेशी दोनों का हुआ और सभी सरकारो ने दोनों समुदाय के लोगो को प्रवासी माना है पर इस सम्बन्ध में हिन्दु राष्ट्रवादी दल यह बताते है कि कौन शरणार्थी और कौन घुसपैठी, राष्ट्रवादी धर्म एवं जाति के आधार पर घ ुसपैठी और शरणार्थी में भेद करते हैं एक सामान्य दृष्टि से देखा जाये तो यह स्पष्ट है ये दोनों ही घुसपैठी है पर राष्ट्रवादी हिन्दू बांग्लादेशी को शरणार्थी एवं मुस्लिम बांग्लादेशी को घुसपैठी बताते आये हैं। सन् 1990 के बाद राष्ट्रवादी का चेहरा बनी भारतीय जनता पार्टी इन मुस्लिम प्रवासियों को अर्थव्यवस्था के लिए घातक बताकर इन्हें वापस बांग्लादेश भेजने की बात करती रही है और अन्य राजनीतिक दल जैसे टी.एम.सी. कांग्रेस मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी आदि पर यह आरोप लगाती रही है कि ये इनका इस्तेमाल वोट बैक के रूप मे कर रहे है और इन्हें वापस बांग्लादेश भेजने के प्रश्न पर मौन है। राष्ट्रवादी पार्टी मुस्लिम बांग्लादेशियों पर यह आरोप लगाती है कि ये पश्चिम बंगाल, असम, त्रिपुरा आदि सीमावर्ती राज्यों में जनसांख्यिकी असमानता पैदा कर मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्रो का निर्माण कर रहे है और इस काम के लिए आई. एस. आई. भी मदद कर रही है और ये बंगाल का एक और विभाजन हेतु पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं। इसी प्रकार श्रीलंका से बहुत अधिक संख्या में तमिलों का अप्रवासन हुआ है जिसे डी.एम.के. और ए. आई.डी.एम.के. का समर्थन प्राप्त है। सन् 1971 में जब बांग्लादेश का निर्माण हुआ और लाखो बांग्लादेशी अप्रवासी एवं तमिल भारत में आकर बस गये हालाकि भारत सरकार ने कुछ अवैध प्रवासियों को निर्वासित करने का प्रयास किया लेकिन इनकी बढ़ी संख्या और दोनों देशों के बीच खुला बार्डर पर्याप्त चौकसी का अभाव, सरकार के प्रयास को नाकाम कर दिया। केन्द्र सरकार ने असम के पूर्व राज्यपाल अजय सिहं की अध्यक्षता में एक समिति गठित की जिसकी रिपोर्ट में यह स्पष्ट किया कि हर दिन लगभग 6 हजार बांग्लादेशी देश में घुसपैठ कर रहे है दूसरी तरफ संयुक्त राष्ट्र संघ ने कहा कि पिछली जनगणना में बांग्लादेश से 1 करोड लोग गायब हो गये है। इस तरह ये रिपोर्ट यह बताती है कि बांग्लादेश और श्रीलंका से भारत कि ओर लगातार घुसपैठ हो रहे है। 19 जुलाई 2016 को राजनाथ सिहं ने नागरिकता संशोधन विधेयक 2016 पेश किया जो बांग्लादेश, पाकिस्तान, अफगानिस्तान से आने वाले हिन्दु, सिख, जैन, फारसी, ईसाई लोगों को अवैध प्रवासी नही माना जायेगा इसका अर्थ यह हुआ

कि बांग्लादेशियो को नागरिकता प्रदान कि जायेगी इसका विरोध आल असम स्टुडेंट युनियन (आसु) कर रहा है उसने केन्द्र सरकार पर हिन्दू घुसपैठियों को मान्यता देने का विरोध कर रहा है उसका कहना है कि चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम जितने घुसपैठी है सब को बाहर निकाला जाय। इस प्रकार बांग्लादेश से आये प्रवासियों को अपने अनुसार शरणार्थी या घुसपैठी शब्द का प्रयोग होता रहा है।
शरणार्थियों का भारत आना, जिसे अवैधानिक अप्रवास में काफी हद तक समानता दिखती है । कानून के अभाव में शरणार्थियो और अवैध अप्रवासियों में अंतर कर पाना काफी मुश्किल है। ऐसे लोग जो बांग्लादेश से भागकर भारत में आश्रय तलाशते हैं, वो बांग्लादेशी और चकमा शरणार्थी के रूप में जाने जाते है। चकमा चिटगांव जिले के पहाडी आदिवासी हैं। भारत–पाक विभाजन के समय यह क्षेत्र पाकिस्तान के हिस्से में आ गया था । बांग्लादेश की स्वतंत्रता के साथ जब वहॉ आर्थिक समस्यायें बढी , तो यह चकमा आदिवासी क्षेत्र के शोषण का शिकार हो गया । इस क्षेत्र के चकमा आदिवासियों के शोषण के कारण वे मजबूर होकर भारत की सीमा में प्रवेश मणिपुर और त्रिपुरा राज्यों में इन चकमा आदिवासियों की संख्या लगभग 56,000 तक पहुंच गयी । चिटगांव पहाडी समस्या बंटवारे की वैधानिकता की समस्या के साथ–साथ भाषायी ,धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक रूप में भी जानी जाती है। भारत एवं बांग्लादेश के बीच सम्बन्धों में एक मुख्य विवाद चकमा शरणार्थियो का रहा है। चकमा शरणार्थी विगत सैकड़ो वर्षो से चिटगांव पहाडी पर रहते आये है, जहां पर उनकी एक अलग भाषायी और सांस्कृतिक पहचान है ।

सन् 1964 में चकमा शरणार्थी एक बडी संख्या में पूर्वी पाकिस्तान (बांग्लादेश) में आकर बसे हुए हैं । ये चकमा शरणार्थी अस्थायी तौर पर बसेरा करने आये थे उस समय यहॉ के स्थानीय लोगो की धारणा थी कि कुछ समय बाद ये लोग वापस चले जायेंगे , परन्तु इनकी वापसी की संभावनाये समाप्त हो गयी। वास्तव में देखा जाये, तो बांग्लादेश के सेना शासको का मानना था कि बहुत अधिक संख्या में मुस्लिमों को स्थानान्तरित करके चिटगांव पहाडी को मुस्लिम बहुल क्षेत्र बना दिया जाये, ऐसी स्थिति में चकमा जनजाति शरणार्थियो को रणनीति के अन्तर्गत त्रिपुरा तथा मिजोरम में प्रवेश करा दिया जाये। यहॉ तक की प्रारंभ से ही चिटगांव पहाडी क्षेत्र के विस्तार तथा विकास से भारत जुडा रहा है। नियमित अन्तराल पर चकमा शरणार्थी उत्तर–पूर्वी भारत की तरफ गतिशील रहे है। परिणामस्वरूप 1971 में बांग्लादेश के निर्माण से ही अस्थायी शरण दिया जाता रहा है। इन शरणार्थियो की वजह से त्रिपुरा की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति असंतुलित हो गयी है वर्ष 1964 में त्रिपुरा में चकमा शरणार्थियों के मात्र 57 परिवार आये थे। इस समय इनकी संख्या पचास हजार के ऊपर हो गयी है । इस प्रकार इन शरणार्थियो की पत्र संख्या उस क्षेत्र के मूल निवासियो के समकक्ष हो गयी है इससे स्थानीय जनजाति अल्पसंख्यक की स्थिति में पहुंच गयी है 'यद्यपि नई दिल्ली भारत में स्थायी निवास को हमेशा मना करती रही है। चकमा शरणार्थियों को स्वायत्तता की मांग का भारत हमेशा समर्थन करता रहा है, इनके भविष्य के बारे में पूर्व प्रधानमंत्री स्व. नरसिमहाराव ने कहा था कि इन शरणार्थियो को , जो चिटगांव पहाडी क्षेत्र से आये है , उन्हे वापस जाना ही होगा। पूर्व प्रधानमंत्री खालिदा जिया ने शीघ्रता से यह आश्वासन दिया था कि शरणार्थियो को पूरी सुरक्षा की भावना से वापस जाने का उचित वातावरण पैदा किया जायेगा। इसी क्रम में सन् 1994 में भारत–बांग्लादेश वार्ता के परिणामस्वरूप त्रिपुरा से चकमा शरणार्थियो का चिटगांव पर्वतीय क्षेत्र में वापस भेजना तय हुआ । अगस्त, 1994 तक 5200 शरणार्थी भेजे जा चुके थे । शेष 50,000 शरणार्थियो के प्रश्न पर 1996 के अंत तक बात चल रही थी ,उनमें से अधिकांश शरणार्थी के शिविरों में वापसी की प्रतीक्षा कर रहे है । यद्यपि कि वापसी केवल स्वेच्छा के आधार पर थी । दिसम्बर 1997 में चिटगांव पहाडी क्षेत्र में शांति अभियान राजनीतिक अधिवास की ओर भारत की तरफ से शांति वाहिनी के माध्यम से बांग्लादेश पर दबाव बनाया गया। 2 दिसमबर , 1997 में शान्ति अभियान के निष्कर्ष स्वरूप बांग्लादेशी सरकार और चकमा नेतृत्व के बीच सम्पन्न हुआ , जिसमें यह आशा बांधी गई कि त्रिपुरा के शरणार्थी कैम्पों में रह रहे लगभग 50 हजार शरणार्थी अपने घर वापस लौट सकेंगे । जिससे यह समस्या तो कम हुयी , लेकिन पूर्णयता समाप्त नहीं हुयी। समय–समय पर चिटगांव पहाडी क्षेत्र में सामाजिक तनाव चकमा शरणार्थियों का उत्तर–पूर्व भारत की ओर रूझान प्रदान कर देता था। 1997 में शांति स्थापना ने चिटगांव पहाडी क्षेत्र की ओर चकमा शरणार्थियों की वापसी मार्ग प्रशस्त किया , जो 80 के दशक से भारत की ओर पलायन कर रहे थे।

यह समस्या निश्चित रूप से भारत–बांग्लादेश एवं भारत–श्रीलंका के मध्य एक महत्वपूर्ण समस्या रही है। अतः दोनों देशों को सही मन से अवैध अप्रवासन की समस्याओं का वास्तविक हल ढूंढना होगा, ताकि दोनों देशों के बीच बढते तनावों को कम किया जा सके, क्योकि यह व्यापक रूप से अप्रमाणिक शरणार्थी समस्या हमारे राष्ट्रीय सुरक्षा, सामाजिक समरसता और आर्थिक समानता के लिये एक गंभीर खतरा है। अवैध प्रवासियों ने देश की आंतरिक सुरक्षा पर प्रत्यक्ष रूप से खतरा उत्पन्न करने के साथ–साथ भारत के पूर्वोत्तर में सामाजिक निर्माण पर भी असर डाला है।

REFERENCE .

Gujral , I.K., *A Foreign Policy for India : External Publicity Division* . Ministry of External Affairs , Government of India , New Delhi, 1998.

Hazarika , Sanjay . *Rites of Passage : Border Crossings . India ̦s East and Bangladesh* . New Delhi : Penguin Books , 2000.

Ghosh , Partha . *Migrants and Refugees in South Asia : Political and Security Dimensions*. Shillong : North – Eastern Hill University Publications, 2011.

Ray , Jayanta Kumar & Mamoon , Muntassir . *India – Bangladesh Relations Current : Perspectives* . New Delhi : Knowledge World Publication (Pvt) Ltd, 2011.

Singh , K. Deepak . *Stateless In South Asia The Chakmas between Bangladesh and India.* New Delhi : Sage Publications, 2010.

Shamshad,Rizwana. *Bangladeshi Migrants in India.* . New Delhi : Oxford University Press , 2017.

दत्त, बी.पी. *बदलती दुनियां में भारत की विदेश नीति,* नई दिल्ली : दिल्ली विश्वविद्यालय 2011,

पाण्डे ,संजय. कुशवाहा मोनू एवं कुमार अक्षय.*भारत – बांग्लादेश संबंध,* नई दिल्ली : मोहित पब्लिकेशन 2016,

****

भारतीय समाज में डॉ.भीमराव अम्बेडकर का योगदान (राजनीतिक एवं आर्थिक विचारों के विशेष

डॉ.हरिचरण अहिरवार
सहायक प्राध्यापक
राजनीति विज्ञान शासकीय कन्या महाविद्यालय सीधी मध्य प्रदेश

डॉ. कृष्ण बिहारी रॉय
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
राजनीति विज्ञान शासकीय कन्या महाविद्यालय

सारांशः—

भीमराव अम्बेडकर एक महान विचारक, तेजस्वी वक्ता और दलितों के मसीहा थे। अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल , 1891 को मध्यप्रदेश के नगर इंदौर में महू के पास छावनी में हुआ था। अम्बेडकर जी ने सम्पूर्ण जीवन भर समाज में जातिवाद के उन्मूलन के लिए प्रयास किया था। अम्बेडकर ने समाज में जातिवाद व छूआछूत को जड़ से समाप्त करने के लिए प्रयास किया था। सार्वजनिक स्थानों में निम्न जाति के साथ होने वाले भेदभाव को समाप्त करना चाहता था। धर्म के आधार पर किऐ जाने वाले भेदभाव को मिटाने के लिए हिन्दू कोड बिल को पारित करवाया था। अम्बेडकर ने समाज में स्त्रियों की स्वतंत्रता का समर्थन करते हुऐ स्त्री शिक्षा पर बल दिया। इनके अनुसार शिक्षा के माध्यम से ही लोग अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बन सकते है।

मुख्य शब्दः—स्वतंत्रता, समानता, शोषण,दलितोद्धार एवं वर्ण व्यवस्था।

प्रस्तावना :—

अम्बेडकर ने जीवन भर जातिवाद के उन्मूलन के लिए प्रयास किये है। उन्होंने समाज में समानता व स्व. तंत्रता के लिए प्रयास किऐ है। अम्बेडकर ने निम्न जाति के उत्थान के लिए कांग्रेस में महात्मा गाँधी से मतभेद उत्पन्न हो गये थे। जून 1945 में अम्बेडकर ने 'कांग्रेस और गाँधीजी' नामक लेख में दलितों के दृष्टिकोण से गाँधीजी व गाँधीवाद की कटु आलोचना की थी। सन् 1946 में अम्बेडकर ने अपनी पुस्तक 'शुद्र कौन है' प्रकाशित की थी। सत्यशोधक समाज के माध्यम से निम्नवर्ग को उच्च वर्ग द्वारा उन पर किये गऐ शोषण के प्रति जागरूक किया। कानून मंत्री के रुप में उनका सबसे बड़ा कार्य हिन्दू कोड बिल था। इस कानून का उद्देश्य हिन्दूओ के सामाजिक जीवन में सुधार लाना था। स्त्रियों के लिए तलाक व्यवस्था में सुधार और संपत्ति में सुधार करके हिस्सा प्रदान करना था। अम्बेडकर अपने जीवन में महात्माबुद्ध, कबीर व ज्योतिबाफूले के विचारों से प्रभावित थे। अम्बेडकर की कोलंबिया विश्वविद्यालय में भारत के अदंर समाज में मानवधिकारों के लिए किऐ गऐ संघर्षों व सुधारों की सराहना की गई थी।

अम्बेडकर को अपने लंबे जीवन अनुभव से इस पर विश्वास हो गया था कि हिन्दू धर्म में रहकर न तो छुआछूत का निवारण हो सकता है और न अस्पृश्य जातियों का उत्थान इसलिए उन्होंने हिन्दू धर्म को त्यागने का विचार बना लिया था।

अछूत के रूप में समाज में दलितों का अस्तित्व भारत के समाज की चरम विकृति का द्योतक है। भारतीय समाज के इस वर्ग को उनकी उल्लेखनीय संख्या, विश्वव्यापी फैलाव और उपयोगी कार्यकुशलता के बावजूद कब और कैसे देश की मुख्य धारा से अलग कर उन्हें दलित अन्त्यज, अवर्ण अथवा पंचम वर्ण के रूप में दासतापूर्ण जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ भी कह पाना कठिन है, किन्तु एक बात निश्चित रूप से सही है कि चर्मकार, महार, भंगी एवं पेरियार आदि नामों से पहचाने जाने वाले ये लोग अपनी स्वयं की इच्छा से तो समाज की परिधि से बाहर रहने के लिए नहीं गए होंगे। सच्चाई यह लगती है कि इन लोगों को समाज से बाहर धकेल कर वहाँ पहुंचाने वाले लोग वे ही होंगे, जिन्होंने इनके अधिकारों को छीनकर अपने अधिकारों में वृद्धि की होगी तथा धर्म शास्त्र, शस्त्र और संपत्ति के बल पर इस दलित समाज को सदियों पूर्व अपने

समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित एवं बेदखल कर दिया। प्रस्तुत आलेख में दलितों की स्थिति सुधारने के लिए डॉ. अम्बेडकर के योगदान को रेखांकित किया गया है।

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना, अस्पृश्यता उन्मूलन एवं दलितोद्धार के लिए किये गये संघर्ष के इतिहास का अध्याय डॉ. भीमराव अम्बेडकर के योगदान के उल्लेख के बिना अधूरा ही माना जा सकता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर एक क्रांतिकारी विद्रोही थे, जिन्होंने दलितों को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलवाने के लिए संघर्ष किया। वर्तमान युग में न्यायपूर्ण समाज की संरचना के लिए भारत में जिन समाज–सुधारकों ने कार्य किया है, उनमें से अधिकांश को इस कार्य के लिए किसी न किसी की प्रेरणा या सहानुभूति मिली थी। केवल डॉ. अम्बेडकर ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने यह कार्य अपनी स्वयं की प्रेरणा से किया था।

शोध–पत्र के उद्देश्यः–

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के समाज सुधार एवं दलितोद्धार, सामाजिक, दार्शनिक और शैक्षिक विचारों के अध्ययन को परिभाषित करना है। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के भारतीय समाज के प्रति विचारों में उनकी क्या धारण थी, इसका अध्ययन करना, दलितों का उद्धार, उनका सामाजिक विकास एवं शिक्षा के प्रति उनके दृष्टिकोण का अध्ययन करना तथा दार्शनिक विचारों का अध्ययन करना है।

प्रस्तुत शोध–पत्र से निम्न उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया जायेगा –

- डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के समाज सुधार सम्बन्धी अवदान तथा दलित समाज पर उनके प्रभावों का अन्वेषण करना।
- डॉ0 अम्बेडकर के समाज सुधार एवं राजनैतिक चिंतन का स्वतंत्र भारत की राजनैतिक व्यवस्था पर प्रभावों का विश्लेषणात्मक विचार करना।
- दलित योजनाओं के क्रियान्वयन का आर्थिक एवं सामाजिक परिवर्तन में पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना।
- प्राप्त जानकारी के आधार पर दलित वर्गों के उत्थान हेतु संचालित नई योजनाओं/ गतिविधियों से अवगत कराना।

प्रस्तुत शोध–पत्र निम्न बिन्दुओं के अन्वेषण एवं विश्लेषण पर आधारित है –

- डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के भारतीय समाज के प्रति सुधार के कारण दलितों की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति में क्या सुधार हुआ है।
- डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के विचारों का दलितों की सामाजिक आर्थिक राजनैतिक उत्थान एवं सामाजिक परिवर्तन पर क्या प्रभाव पड़ा।
- डॉ. अम्बेडकर के विचार भारतीय समाज सुधार एवं दलितोद्धार की समसामयिक समस्याओं पर उनके दृष्टिकोण कई मायनों में निम्न प्रकार से भिन्न है।
- बदलते समय के अनुरूप समाज में नई जागरूकता तैयार करने एवं दलितोद्धार में डॉ. अम्बेडकर के विचार कितने प्रासंगिक और समीचीन है।

शोध–पत्र की शोध प्रविधिः–

प्रस्तुत शोध–पत्र की प्रविधि का आशय उन सुव्यवस्थित तरीकों, विधियों से है जिनके द्वारा अध्ययन विषय से संबंधित विश्वसनीय एवं यथार्थ तथ्यों का संकलन करता है तथा उन्हें व्यवस्थित करता है। शोध–पत्र को पूरा करने के लिए उपलब्ध समस्त सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाएगा। शोध–पत्र से संबंधित सूचनाओं को संग्रहित करने के लिए द्वितीयक समंक शासकीय एवं अशासकीय

प्रकाशनों, पत्र–पत्रिकाएँ, जर्नल्स, एवं दैनिक समाचार पत्रों का अध्ययन कर जुटाए जाएंगे। समंको का वर्गीकरण सारणीयन एवं विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों द्वारा किया जाएगा तथा प्राप्त परिणाम को वास्तविकता से मिलान किया जाकर विसंगति का पता लगाया जाएगा। शोध–पत्र हेतु क्षेत्र अध्ययन एवं सविचार निदर्शन विधियों का समुचित प्रयोग किया जाएगा, जो शोध–पत्र को मौलिकता प्रदान करेगा एवं प्रत्याशित निष्कर्ष को प्राप्त करने का प्रयास किया जाएगा।

डॉ. भीमराव अम्बेड़कर एवं दलितोद्धार :–

अछूत परिवार में जन्म लेने के कारण सामाजिक भेदभाव, अपमान व तिरस्कार की जो पीड़ा डॉ. अम्बेडकर ने झेली, वैसी पीड़ा किसी अन्य को नही झेलनी पड़ी थी। इस कारण सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष, विशेष रूप से दलितों के उद्धार के लिए संघर्ष को डॉ. अम्बेडकर ने अपने जीवन का उद्देश्य घोषित किया। उन्होंने कहा जिस दलित जाति में मैं पैदा हुआ हूँ, उसे मुक्ति दिलाना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है और यदि मैं इस उद्देश्य की पूर्ति नही कर सका तो गोली मारकर अपना जीवन समाप्त कर लूंगा।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का यह कथन सामाजिक न्याय के विरुद्ध संघर्ष के प्रति उनकी प्रतिबद्धता और समर्पण की भावना को प्रदर्शित करता है। डॉ. अम्बेडकर का दलित मुक्ति मार्ग

डॉ अम्बेडकर सवर्णों के हृदय–परिवर्तन और सामाजिक सुधार संबंधी महात्मा गांधी के कार्यक्रमों पर विश्वास नही करते थे। वे लम्बे समय तक दलितों की मुक्ति के लिए इन्तजार करने के पक्ष में भी नहीं थे। उनका विश्वास था कि स्वतंत्रता और समानता संबंधी जो अधिकार दलितों से अतीत में छीन लिये गये थे, उनको पुनः प्राप्त करना भीख मांगने से नही, अपितु कठोर संघर्ष करने से ही हो सकता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए डॉ. अम्बेडकर ने संघर्ष का मार्ग चुना। दलितों में अपने अधिकारों के प्रति जागृति पैदा करने के लिए उन्होंने 1920 में ''मूक नायक'' और 1927 में बहिष्कृत भारत पाक्षिक समाचार पत्रों के प्रकाशन की पहल की। 1927 से 1930 के बीच उन्होंने दलितों को सार्वजनिक स्थानों के उपयोग के अधिकार दिलाने के लिए संघर्ष किया। इन संघर्षों में चवदार तालाब से पानी लेने संबंधी श्महाड सत्याग्रह सहित अम्बादेवी ठाकुर द्वारा गणपति प्रांगण तथा कालाराम मन्दिरों में प्रवेश के लिए किये गये आन्दोलन मुख्य है।

डॉ. अम्बेडकर और हिन्दू धर्म :–

हिन्दू धर्म में सुधार लाने से दलितों को सामाजिक न्याय मिल सकेगा, इस बात पर डॉ. अम्बेडकर को विश्वास नहीं था। उनका कहना था कि इतिहास इस बात का साक्षी है कि अतीत में महात्माओं ने तेज आंधी की तरह केवल धूल उड़ायी है, उनके द्वारा असमानता वाले स्तरों में समानता नहीं लाई जा सकी। उन्होंने बताया कि भारत में ऐसे अनेक महात्मा हुए हैं जिनका एकमात्र उद्देश्य अस्पृश्यता निवारण और दनिती की स्थिति को समृद्ध करना और उन्हें समाज की मुख्य धारा में लाना था, किन्तु उनमें से प्रत्येक अपने उद्देश्य में असफल रहा। महात्मा आये और चले गये किन्तु अछूत, अछूत ही बने रहे। दलितों से उनका कहना था कि तुलसी की माला जपने अथवा राम भजन करने से कर्ज कम नहीं होता और न ही इससे लगान में कटौती होती है। तीर्थ करने से मासिक वेतन नहीं मिला करता।

दलितोद्धार संतों द्वारा संभव नहीं :–

डॉ. अम्बेडकर का मानना था कि समानता और सामाजिक न्याय की स्थापना का काम सन्तों के बूते का नहीं है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा कि सन्तों ने कभी जाति–प्रथा अथवा अस्पृश्यता के विरुद्ध अभियान नही छेड़ा। इस दुनिया में क्या होता है, विभिन्न समूहों की क्या स्थिति

है और उनके इस लोक में क्या संघर्ष हैं, इन बातों की सन्तों को चिन्ता नही थी। उनकी चिन्ता थी. आत्मा और परमात्मा के बीच सम्बन्ध। सन्तों ने कभी यह नहीं कहा कि सभी मनुष्य समान है। उन्होंने कहा कि सभी मनुष्य ईश्वर की नजरों में समान हैं। यह बहुत भिन्न तथा हानिप्रद प्रस्थापना है। इस बात का उपदेश देना कठिन नहीं है। सन्तों ने कभी जाति को नष्ट करने की, इस दुनिया से ऊँच–नीच के भेद को समाप्त करने की बात नहीं कही।

डॉ. अम्बेडकर का शिक्षा के प्रति रुझान :–

डॉ. भीमराव अम्बेडकर दलितों में शिक्षा के प्रचार–प्रसार को बहुत ज्यादा महत्व देते थे। दलितों में शि क्षा के प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से उन्होंने 1024 में ''बहिष्कृ त हितकारिणी सभा'' 1928 में, डिप्रेस्ड क्लास एज्यूकेशन सोसाइटी तथा 1944 में, ''पीपुल्स एज्यूकेशन सोसायटी की स्थापना की। डॉ. अम्बेडकर की दृष्टि से शिक्षा दलितों के उद्धार का सशक्त माध्यम है। डॉ. अम्बेडकर ने ''पीपुल्स एज्यूकेशन सोसायटी'' के अन्तर्गत मुम्बई में 1946 में सिद्धार्थ कॉलेज तथा 1951 में औरंगाबाद में मिलिंद कॉलेज की स्थापना की। डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि दलित लोगों के गुलाम होने का कारण यही था कि इन लोगों के पास ज्ञान नही था और न शक्ति थी। उनकी दृष्टि में शिक्षा की शक्ति ही एक मात्र माध्यम थी। लोकतांत्रिक व्यवस्था में शिक्षा लोगों को राजनीतिक दृष्टि से जागरूक बनाने तथा अपने हितों की रक्षा के लिए एकजुट होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, किन्तु शिक्षा के लिए एक राजनीतिक मंच तथा कुशल नेतृत्व की आवश्यकता होती है।

डॉ. भीमराव अम्बेड़कर के राजनीतिक विचारः–

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का विचार था कि दलित तब तक न्यायपूर्ण अधिकारों की प्राप्ति और अपने हितों की रक्षा नही कर सकते जब तक कि राजनीतिक शक्ति पर उनका अधिकार नहीं होता, क्योंकि अपनी निर्धन स्थिति के कारण आर्थिक शक्ति पर अधिकार कर पाना उनके लिए सम्भव नहीं है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपनी उल्लेखनीय संख्या के कारण ये लोग राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। राजनीतिक शक्ति पर अधिकार हो जाने से इस वर्ग के लिए आर्थिक व सामाजिक हितों की रक्षा करना कठिन नही होगा। दलित वर्गों में राजनीतिक जागृति लाने की दृष्टि से डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने ''आल इण्डिया शिड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन'' की 1942 में स्थापना की। उन्होंने 1927 में ''समता सैनिक दल'' का गठन किया और इस संगठन के झ्राण्डे के नीचे उन्होंने दलितों को संगठिन किया। दलितों के राजनीतिक धरातल के विस्तार के उद्देश्य से डॉ अम्बेडकर ने दलितों एवं श्रमिकों को एक संयुक्त राजनीतिक इकाई के रूप में संगठित करने का प्रयास किया और 1936 में ''इडिपेंडेन्ट लेबर पार्टी'' के नाम से एक नया राजनीतिक दल गठित किया। आगे चलकर डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों ने उनकी मृत्यु के बाद उनके निर्देश पर ''भारतीय रिपब्लिकन पार्टी'' के झण्डे तले अपना राजनीतिक मोर्चा संभाला।

दलितोद्धार के राजनीतिक प्रतिनिधित्व के विरुद्ध महात्मा गांधी का आमरण अनशन साउथबरो समिति और साइमन कमीशन के सामने मुंबई लेजिस्लेटिव कॉसिल, गोल. मेज सम्मेलन एवं संविधान सभा में जब कभी डॉ अम्बेडकर को बोलने का अवसर मिला, उन्होंने दलित वर्ग के पक्ष को पूरे सशक्त एवं तथ्यों के साथ प्रस्तुत किया। उनकी पहल पर जब अंग्रेजी सरकार ने दलितों को अलग से प्रतिनिधित्व देने की घोषणा की तो महात्मा गांधी ने इसके विरुद्ध आमरण अनशन शुरू कर दिया। महात्मा गांधी के अनशन पर होने वाली राष्ट्रीय प्रतिक्रिया को देखते हुए डॉ अम्बेडकर ने पूना की यरवदा जेल में महात्मा गांधी से मुलाकात की। इस मुलाकात में डॉ. अम्बेडकर, महात्मा गांधी एवं कांग्रेस के

प्रतिनिधियों के बीच 1932 में एक समझौता हुआ, जिसे पूना पेक्ट कहा जाता है।

इस समझौते के परिणामस्वरूप डॉ अम्बेडकर ने पृथक प्रतिनिधित्व की मांग सोड़ दी तथा कांग्रेस ने विध. ानमण्डलों में दलित वर्ग के लिए आरक्षण व अन्य सुविधाएँ देने में अत्याधिक उदारता का परिचय दिया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर का सामाजिक न्याय के क्षेत्र में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के योगदान की चर्चा करते समय उनके इस क्षेत्र में दिये गये वैधानिक एवं संवैधानिक योगदान को नहीं भुलाया जा सकता। 1942 से 1946 तक ब्रिटिश भारत की वायसराय की कौंसिल के लेबर मैम्बर के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने महिला श्रमिकों व पुरुष श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए उस समय के श्रम नियमों में संशोधन किये और उनको सुरक्षा प्रदान करने व उनके कल्याण के लिए कई योजनायें बनायी थी।

श्रमिकों में निम्न व पिछड़ी जातियों की बहुतायत होने के कारण श्रमिकों को मिलने वाले लाभ से इन जातियों के लोगों को लाभ मिला ही, अन्य जातियों के गरीब श्रमिकों को भी भारी लाभ हुआ। इसी बीच उन्होंने ब्रिटिश सरकार से दलित वर्ग के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति तथा सरकारी सेवाओं में आरक्षण का प्रावधान भी करवाया। संविधान सभा में संविधान की मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने महिलाओं, अनुसूचित जातियों अनुसूचित जनजातियों एवं श्रमिकों को न्याय दिलवाने की दृष्टि से संविधान में अनेक प्रावधान किये। भारत के कानून मंत्री के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने हिन्दू कोड बिल की संरचना की जो हिन्दू महिलाओं की मुक्ति व हिन्दू समाज के संबंध में उनका ऐतिहासिक योगदान है।

डॉ. भीमराव अम्बेड़कर के आर्थिक विचारः–

अर्थशास्त्री के रूप में डॉ. अम्बेडकर के योगदान की ओर बहुत कम विद्वानों का ध्यान गया है. प्रायः लोग उन्हें संविध ाान निर्माता के रूप में जानते हैं. यह भी जानते हैं कि दलितों के उद्धार के लिए उन्होंने अनथक संघर्ष किया। उसके लिए अनेक समकालीन नेताओं की आलोचनाएं सहीं। वे अपने समय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मगर विवादित नेताओं में रहे। उनकी विद्वता विरोधियों को पस्त करने वाली थी। वस्तुतः राजनीति और समाज सुधार के क्षेत्र में उनका योगदान इतना महान एवं युगांतरकारी है कि उनके जीवन के बाकी पहलुओं तक लोगों की नजर जा ही नहीं पाती। यहां तक कि दलित विद्वानों का लेखन भी उनके सामाजिक–राजनीतिक क्षेत्रों में योगदान तक सिमटा रहा है। अर्थशास्त्री के रूप में अंबेडकर के योगदान को केवल एक लेख या लेखांश से आंकना असंभव है. अपने एक व्याख्यान में प्रख्यात अर्थशास्त्री श्रीनिवास अंबीराजन ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र से राजनीति और कानून के क्षेत्र में अंतरण को अर्थशास्त्र की भारी क्षति बताया था। उनके अनुसार अगर वे राजनीति और समाज सुधार के क्षेत्र में नहीं आते तो दुनिया–भर में दिग्गज अर्थशास्त्री के रूप में स्थान पाते। इस बात में काफी सचाई भी है। 1947 आते–आते राजनीतिक क्षेत्र में उनकी व्यस्तता काफी बढ़ चुकी थी। लेकिन उन दिनों भी उनका मन अर्थशास्त्र के क्षेत्र में छूटे हुए काम को आगे बढ़ाने का था। उसी वर्ष 'प्रॉब्लम ऑफ रुपी' के संशोधि ात संस्करण की भूमिका में उन्होंने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में 1923 के बाद हुए बदलावों को लेकर पुस्तक का दूसरा खंड यथाशीघ्र तैयार करने का आश्वासन दिया था। मगर आजादी के बाद राजनीतिक जिम्मेदारियां बढ़ने की वजह से वे छूटे हुए कार्य को पूरा नहीं कर सके।

अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अम्बेड़कर के योगदान की चर्चा करने से पहले इस विषय में उनकी प्रतिष्ठा को दर्शाने वाली एक और घटना का उल्लेख प्रासंगिक होगा। 1930 का दशक पूरे विश्व बाजार में भीषण मंदी लेकर आया था। ब्रिटिश सरकार के सामने भी गंभीर चुनौतियां थीं, खासकर उपनिवेशों में जहां आजादी की मांग जोड़ पकड़ती जा रही थी, वहां

औपनिवेशिक सरकार की पकड़ को बनाए रखने के लिए स्थानीय समस्याओं का समाधान आवश्यक था। समस्याओं के मूल में कुछ वैश्विक मंदी का हाथ था और कुछ स्थ. ानीय रोजगारों के उजड़ जाने से उत्पन्न मंदी का। इसलिए अगस्त 1925 में ब्रिटिश सरकार ने भारत की मुद्रा प्रणाली का अध्ययन करने के लिए 'रॉयल कमीशन ऑन इंडियन करेंसी एंड फाइनेंस' का गठन किया था। इस आयोग की बैठक में हिस्सा लेने के लिए जिन 40 विद्वानों को आमंत्रित किया गया था, उनमें अम्बेड़कर भी थे। वे जब आयोग के समक्ष उपस्थित हुए तो वहां मौजूद प्रत्येक सदस्य के हाथों में उनकी लिखी पुस्तक 'इवोल्यूशन ऑफ पब्लिक फाइनेंस इन ब्रिटिश इंडिया' की प्रतियां थीं। बात यहीं खत्म नहीं होती। उस आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1926 में प्रकाशित की थी। उसकी अनुशंसाओं के आधार पर कुछ वर्षों बाद 'भारतीय रिजर्व बैंक' की स्थापना हुई। इस बैंक की अभिकल्पना नियमानुदेश, कार्यशैली और रूपरेखा अम्बेड़कर की शोध पुस्तक 'प्राब्लम ऑफ रुपया' पर आधारित है। उस समय तक उनका मुख्य लेखन अर्थशास्त्र जैसे गंभीर विषय को लेकर ही था। मात्र 27 वर्ष की उम्र में उन्हें मुंबई के एक कॉलिज में राजनीतिक अर्थशास्त्र के प्रोफेसर की नौकरी मिल चुकी थी. अध्यापन के अलावा वे विषय से संबंधित सैकड़ों लेख और व्याख्यान दे चुके थे। एक सभा में विद्यार्थियों के बीच पढ़े गए उनके लेख 'रेस्पांसिबिल्टी ऑफ रेसपांसिबिल गवर्नमेंट' की प्रशंसा उस समय के महान राजनीतिक विज्ञानी, चिंतक हेराल्ड लॉस्की ने भी की थी। लॉस्की का कहना था कि 'लेख में आए अम्बेड़कर के विचार क्रांतिकारी स्वरूप' के हैं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर के सामाजिक व्यवस्था संबंधी विचार :–

अम्बेडकर समाज सुधारक व सामाजिक चिंतक थे। उनके चिन्तन का मुख्य विषय हिन्दू समाज में पाई जाने वाली बुराईयाँ थी। जिनका शिकार हिन्दू समाज में अनुसूचित जातियाँ, जनजातियाँ हो रही थी। इनको समाज में चांडाल, शुद्र, अस्पृश्य और अछूत, हरिजन नाम से संबोधित करते थे। अम्बेडकर इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था को अन्यायपूर्ण, भेदभावपूर्ण मानता था और समाज में सामाजिक व्यवस्था के लिए खतरा मानता था। अम्बेडकर जी के सामाजिक समाज–व्यवस्था संबंधी विचार इस प्रकार से है।

वर्ण–व्यवस्था का विरोध :–

हिन्दू–समाज में पाई जाने वाली वर्ण व्यवस्था जिसमें ब्राह्मण, क्षेत्रीय, वैश्य और शुद्र का विभाजन किया गया है उस व्यवस्था को अम्बेडकर स्वीकार नहीं करते है। प्राचीन काल में मनु, कौटिल्य, शुक्राचार्य ने इन वर्ण व्यवस्था का समर्थन किया है। परंतु अम्बेडकर इस प्रकार की वर्ण व्यवस्था की समाज में असमानता का कारण मानते है।

छुआछूत का विरोध :–

अम्बेडकर छुआछूत को समाज में एक बुराई मानते थे और कहते थे कि यह एक प्रकार से समाज में कलंक है। इनके कारण समाज की अनुसूचित जाति व जनजातियों को समाज से प्राप्त होने वाले लाभ से वंचित रखा जाता है। इनके अनुसार सामाजिक अस्पृश्यता व छुआछूत से सामाजिक एकता व अखण्डता को खतरा पैदा होता है। ब्राह्मणों ने इनको अछूत नाम से पुकारा है और समाज के अन्यवर्गों के साथ संपर्क से प्रतिबंधित किया है।

जाति प्रथा का विरोध :–

अम्बेडकर जाति प्रथा के कट्टर विरोधी थे। जाति प्रथा के विरोधी होने का कारण वे स्वयं इनको भोग चुके थे। उनके अनुसार व्यक्ति को समाज में उनके कार्यों की उपेक्षा सम्मान नहीं मिलता अपितु जाति के आधार पर समाज में सम्मान प्रदान किया जाता है।

उनके अनुसार जाति–व्यवस्था निम्न वर्णों के व्यक्तियों के

गुणों व योग्यता की उपेक्षा की जाती है। जाति–व्यवस्था रूढ़िवादिता को प्रोत्साहित करती है। जाति–व्यवस्था अर्न्तराष्ट्रीय विवाह व संबधों का बहिष्कार करती है। जाति व्यवस्था प्रजातंत्र विरोधी है। अम्बेडकर के अनुसार जाति व्यवस्था मानवीय स्वतंत्रता व समानता विरो. धी है।

हिन्दू–कोड बिल का समर्थन :–

अम्बेडकर सम्पूर्ण जीवन समाज में विद्यमान अस्पृशयता, जातीय भेदभाव को दूर करने के लिए प्रयासरत थे। स्वतंत्र भारत के अम्बेडकर जब प्रथम कानून मंत्री बने तो वह हिन्दू कोड बिल को लाकर समाज में सभी को समान अधिकारों के पक्ष में थे। अम्बेडकर के प्रयास से ही हिन्दू कोड पारित हो पाया।

धर्म निरपेक्षता का समर्थन :–

अम्बेडकर ने समाज के संदर्भ में अपने विचारों में धर्म–निरपेक्षता विचारों को अपनाया गया। अम्बेडकर धर्म में आस्था रखते थे। परंतु इस के साथ–2 राज्य के धर्म–निरपे क्ष स्वरुप पर बल देते थे। वह राज्य का राज धर्म होने की मनाही करते थे। वह मानते थे कि राज्य को समाज में सभी धर्मों का सम्मान व सद्भावनापूर्ण आदर करना चाहिए। इस प्रकार से राज्य में व्यक्ति को किसी भी धर्म की उपासना की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

ब्राह्मणवाद व मनुवाद का विरोध :–

अम्बेडकर ब्राह्मणवाद व मनुवाद के कड़े विरोधी थे। वे मानते थे कि मनुस्मृति में प्रत्येक स्थान पर ब्राह्मणवाद को प्रमुखता दी गई है। ब्राह्मणों की वजह से ही शुद्र को सबसे निम्न वर्ग में शामिल किया गया है। उनके अनुसार मनुस्मृति समाज में ब्राह्मणों का वर्चस्व कायम रखना चाहती है।

समाज में निम्न–जातियों के स्तर में सुधार–सुझाव :–

अम्बेडकर ने निम्न जातियों के लिए सार्वजनिक स्थलों के प्रयोग की स्वतंत्रता की बात की है। अम्बेडकर ने हरिजन शब्द का प्रयोग का विरोध किया है।

अम्बेडकर ने समाज में निम्न के उत्थान के लिए तीन शब्दों के प्रयोग पर बल दिया है। शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो इन तीन शब्दों के माध्यम से अम्बेडकर निम्न जातियों का उत्थान करने का प्रयास करते है।

सामाजिक समानता के पक्षधर :–

अम्बेडकर ने लंबे समय तक उनके साथ होने वाले भेदभाव को सहन किया था। इसलिए वह समाज में समानता के प क्षधर थे और समानता का स्वरूप राजनीतिक कानूनी होने पर बल दिया था। वह राजनीतिक समानता से पहले सामाजिक समानता की बात करते है। अम्बेडकर फ्रांसीसी दार्शनिक रूसो के सामाजिक, समानता, व स्वतंत्रता व बधुंत्व के विचारों से काफी प्रभावित थे और समाज में पाये जाने वाले हर प्रकार के शोषण व असमानता को खत्म करना चाहते थे। अम्बेडकर ने इस बात का अनुभव कर लिया था कि दलित समाज के मुख्य भाग से बाहर रहते है। गंदे वस्त्र पहनते है मुर्दा जानवरों का माँस खाते है इसलिए समाज से बाहर हीनता का जीवन व्यतीत करते है। इसलिए इनको समाज में अधिकार प्राप्त करने के लिए अपनी जीवन–शैली और खान–पान में सुधार करना होगा। इसलिए 20 मार्च, 1927 को अम्बेडकर ने 'दलित जाति परिषद' की अध्यक्षता करते हुऐ कहा कि ऐसे प्रयास करो जिससे तुम्हारे बाल–बच्चे तुमसे अच्छी अवस्था में रह सके। अम्बेडकर महिला अधिकार व शिक्षा पर भी बल देते थे।

दलितों के लिए राजनीतक अधिकारों की माँग :–

अम्बेडकर ने प्रथम गोलमेल सम्मेलन में इस बात पर बल दिया कि जिस तरह से मुस्लिम सप्रंदाय ईसाईयों के लिए

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के अंतगर्त पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया है उसी प्रकार से अनुसूचित जाति, जनजातियाँ समाज में अलपसंख्य है उनको भी अलग से प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। इससे निम्न जाति का विकास संभव हो सकता है।

इस प्रकार से अम्बेडकर ने अपने सामाजिक विचारों में निम्न जातियों के लिए अधिकारों की आवाज उठाई। सार्वजनिक स्थानों के प्रयोग पर बल दिया, स्त्री शिक्षा व अधिकार व समाज में पाई जाने वाली असमानता, शोषण की समाप्ति पर बल दिया।

निष्कर्षः—

शोध—पत्र के द्वारा इस निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया जाएगा कि दलितों के मसीहा एवं उद्धारक के रूप में डॉ. भीमराव अम्बेडकर के योगदान के बिना दलितों की स्थिति में सुधार होना असम्भव था। विपरीत परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप अपने ज्ञान एवं दृढ़ निश्विय से इस महापुरुष ने महापुरुष होने की पूर्ण परिभाषा दी जिसने भजन, भक्ति एवं कीर्तन के मार्ग का खण्डन कर शिक्षा का मार्ग अपनाकर दलितों को अपनी मुक्ति का सशक्त माध्यम दिखाया। सदियों से पीडित, वंचित एवं शोषित वर्ग को अपने अधिकारों के प्रति जाग्रत ही नहीं किया अपितु उन्हें सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक, धा. र्मिक निर्योग्यताओं से मुक्ति दिलाई और समाज में इन पिछड़े और बहिष्कृत लोगों को जीने का नागरिक अधिकार दिया जो भारत देश की अखण्डता और प्रभुसत्ता को बनाये रखने में मील का पत्थर साबित हुई तथा इस अध्ययन के माध्यम से दलितों के उद्धार एवं विकास की सम्भावनाएँ एवं चुनौतियाँ किस प्रकार की है, पहुंचने का प्रयास किया जायेगा ?

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- विजय कुमार पुजारी, डा . अम्बेडकर रू जीवन दर्शन, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, पृ 143
- एम . वी . पायली, कांस्टीट्यूशनल गवर्नमेंट ऑफ़ इंडिया, पृ 138
- धनंजय कीर, डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर रू जीवन चरित', पापुलर प्रकाशन, पुनर्मुद्रण, 2006, पृ 0 8
- अनिता कुमारी (संपादक) 'अम्बेडकर ने कहा', गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, पृ 8—27
- इंडियन लेबर पार्टी का मैनीफैसटो।
- डा . बी . आर . अम्बेडकर, पाकिस्तान और पार्टिशन ऑफ़ इंडिया, पृ 0 332
- खान, ममताज अली (1995) मानवअधिकार और दलित, नई दिल्ली, भारत
- के . अल . शर्मा (1986) जाति वर्ग और सामाजिक आंदोलन, जयपूर, भारतः रावत।
- सिन्हा, राकेश के, गाँधी, अम्बेडकर और दलित, जयपुर, भारत आदि
- जतवा, डी. आर . (1998) भारत में सामाजिक न्याय, जयपूर, भारतः आई. एन. ऐ . श्री, 86
- शकुन्तला धवन, (1991), डॉ. अम्बेडकर अपोस्टल आफ सोशल जस्टिस, योजना, 15 अप्रैल, 1991. 9.—12
- डा. बाबा साहब अम्बेडकर सम्पूर्ण वाड्मय खण्ड—1 वही. पृ. 142
- मधुलिमये, (2000), डा. अम्बेडकर एक चिंतन दिल्ली, आत्मराम एंड संस. पृ. 35.
- नानकचंद रत्नू (2005), डा. अम्बेडकर के अतिम कुछ वर्ष, नई दिल्ली, सम्यक प्रकाशन, पृ. 78

****

यौगिक अभ्यासों का महिलाओं एवं पुरूषों के समायोजन क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन

-कु. श्वेता कुर्रे
शोधार्थी (योग),
शारीरिक शिक्षा एवं योग विभाग, मैट्स
विश्वविद्यालय रायपुर छ.ग.।

-डॉ.सुनील कुमार मिश्रा
शोध निर्देशक, सहायक प्राध्यापक,
शारीरिक शिक्षा एवं योग, विभाग मैट्स
विश्वविद्यालय रायपुर छग.।

सारांश :- वर्तमान समय में शारीरिक से अधिक मानसिक समस्याएं व्याप्त है। वर्तमान समय में कोई भी इस समस्या से बचा नही है। महिला, पुरूष, वृद्ध, बच्चे सभी इससे प्रभावित है। महिला एवं पुरूष समाज की धुरी है। दोनों में समायोजन होने से समाज, परिवार, व्यवसाय एवं जीवन के संचालन में समस्या नही आती है या समस्या कम होती है। वर्तमान समय में समायोजन एक गंभीर समस्या जिसका अभाव आधुनिक जीवनशैली पर अधिक दिखाई देता है। ऐसे में क्या यौगिक अभ्यासों के द्वारा समायोजन क्षमता पर प्रभाव पड़ता है यह जानना इस शोध का उद्देश्य है। शोध प्रविधि में कुल 60 न्यादर्श का चयन यादृच्छिक तरीके से किया गया है। पूर्व एवं पश्चात परीक्षण विधि का उपयोग किया गया। 60 न्यार्दश को दो भागों में विभाजित किया गया नियंत्रित तथा प्रायोगिक। समूह में 30 महिला एवं 30 पुरूष है। दोनों समूह का पूर्व एवं पश्चात परीक्षण के द्वारा आंकडे संग्रहण किया गया। आकड़ों के लिए डॉ. ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह का समायोजन परीक्षण प्रश्नावली का उपयोग किया गया। इस प्रश्नावली कुल 102 प्रश्न है। प्रश्नावली में पांच क्षेत्र है घर, स्वास्थ्य, समाज, भावनात्मक एवं शैक्षणिक। दोनों समूह के मापन के लिए एनकोवा का उपयोग कर परिणाम प्राप्त किया गया। परिणाम में पाया गया महिलाओं एवं पुरूषों से प्राप्त प्रायोगिक समूह के पूर्व एवं पश्चायत परीक्षण में सार्थक अंतर पाया गया। नियंत्रित समूह की तुलना में प्रायोगिक समूह जिसे यौगिक अभ्यास का प्रशिक्षण कराया गया उस समूह के महिला एवं पुरूषों के समायोजन पर सकारात्मक प्रभाव पाया गया। निष्कर्ष नियमित यौगिक अभ्यास से समायोजन में वृद्धि होगी। महिलाओं एवं पुरूषों के समायोजन क्षमता को बढ़ाने में यौगिक अभ्यास महत्वपूर्ण है।

बीज शब्द :- यौगिक अभ्यास, महिलाएं, पुरूषों, समायोजन, प्रयोगिक समूह, नियंत्रित समूह, , आसन, प्राणायाम, क्रिया, मंत्र, जलनेती।

प्रस्तावना:- वर्तमान जीवन अधिक व्यस्त और तनावग्रस्त है। लोग एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा में मशीन के जैसा एक ही समान कार्य करने की कोशिश में जुटे हुए है। प्रकृति के अनुसार सभी व्यक्ति भिन्न होते है। सभी के भीतर कोई विशेष योग्यता होती है। स्वभाव भिन्न होते है। रूचि में भिन्नता होती है। व्यक्ति अपनी विशेषताओं को देखना नही चाहते दूसरे की उपलब्धि पर काफी प्रभावित होते है। उन्ही के समान उपलब्धि पाना चाहते है, किन्तु यह संभव नही है। जो भी स्थिति उनकी रहती है उसे वे स्वीकार नही करना चाहते और न ही उस प्रकार परिश्रम कर पाते है। इसके कारण उन्हें काफी असमंजस्यता होती है। जीवन में कार्य एवं परिस्थितियों को सामंजस्य नही कर पाना एक बढ़ी समस्या है।

वर्तमान समय महिला एवं पुरूष दोनों के लिए संघर्षमय है। लोगों की अपेक्षाएं और स्वार्थ भाव बढ़ते जा रहें है। महिला एवं पुरूष के मध्य संघार्षात्मक व्यवहार के बढ़ने से परिवारिक विवाद, रिश्तों का टूटना जैसी अलग अलग समस्या बनी हुई। इस शोध के द्वारा महिला एवं पुरूषों के समायोजन क्षमता पर यौगिक अभ्यास से पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना है।

शोध कथन:- क्या यौगिक अभ्यासों का महिलाओं एवं पुरूषों के समायोजन क्षमता पर प्रभाव पड़ता है।

शोध की अवश्यकता :- वर्तमान समय में प्रतिस्पर्धा भाव एवं जीवन भौतिक सुख भोग की ओर बढ़ते जा रहा है। जीवन एवं कार्यो को संतुलित करने के लिए समायोजन क्षमता का होना अत्यंत आवश्यक है। समय के अनुसार रहन सहन और व्यवहार में बहुत अधिक परिवर्तन आया। महिला एवं पुरूष दोनों कामकाजी हुए, आर्थिक धन आदि अर्जन की जिम्मेदारी अब केवल पुरूषों की नही रही है। महिलाएं भी अब घर के साथ नौकरी या अन्य आर्थिक लाभ हेतु सतत कार्य कर रही है। आधुनिकता के नाम पर लोगो द्वारा अपनी पारम्परिक संस्कृति, नैतिक शिक्षा को नजरअंदाज किया जा रहा है। जिसका परिणाम लोग भौतिक सुख के पीछे भाग रहें है और अंततः वह आनंद मानसिक शांति से वंचित होते जा रहें है। प्रेम उत्साह और सहयोग आदि में भी कमी होते जा रहा है। जीवन में समायोजन करना कठिन सा लग रहा है। योग एक संतुलन, ज्ञान और विवेक को बढ़ाने वाले विद्या के रूप प्राप्त है। अतः इस शोध के द्वारा महिलाओं एवं पुरूषों की समायोजन क्षमता पर यौगिक अभ्यासों का क्या प्रभाव पड़ता है, ज्ञात करना है।

शोध का उद्देश्य –

महिलाओं एवं पुरूषों के समायोजन क्षमता पर यौगिक अभ्यासों के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना:-

यौगिक अभ्यासों का महिलाओं एवं पुरूषों के समायोजन क्षमता पर कोई सार्थक अंतर नहीं पाया

शोध प्रविधि:-

यह शोध प्रायोगिक है, प्रश्नावली विधि को अपनाया गया है। पूर्व एवं पश्चात परीक्षण का उपयोग किया गया। न्यादर्श का चयन बिलासपुर छत्तीसगढ के शा.जे.पी वर्मा स्नातकोत्तर महाविद्यालय के छात्रों का चयन यादृच्छिक विधि से कुल 60 न्यादर्श (महिला 30 एवं पुरूष 30) का चयन किया गया। कुल साठ न्यादर्श को दो भागों में बांटा गया। नियंत्रित समूह एवं प्रायोगिक समूह। नियंत्रित समूह को यथा स्थिति रखा गया। तथा प्रायोगिक समूह को कुल 01 माह यौगिक अभ्यास का करवाया गया डॉ. ए.के.पी. सिन्हा एवं आर.पी. सिंह का समायोजन परीक्षण प्रश्नावली का उपयोग किया गया। । सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए एनकोवा का उपयोग किया गया।

सीमाएं:-

दैनिक दिनचर्या, मौसमी प्रभाव एवं आनुवंशिकता आदि अनुसंधानकर्ता के

नियंत्रण में नही होने के कारण इसे सीमाएं में रखा गया है।

परिसीमाएं:-

शारीरिक एवं मानसिक रूप से विकलांग छात्रों को नहीं रखा गया है। गर्भवती महिलाओं को नही लिया गया है। नौकरी पेशावाले को नही लिया गया है। आयु 19-25 वर्ष के छात्रों को लिया गया है। केवल छत्तीसगढ़ के बिलासपुर जिले के छात्रों को लिया गया है। अशिक्षित लोगों को नही लिया गया है। किसी भी प्रकार के रोगी को नही लिया गया है।

समायोजन:-

सामान्य शब्दों में समायोजन एक परिस्थिति को अपने अनुकुल बनाने या किसी भी परिस्थिति में अपने आप को एवं कार्य को बाधित न होने देना। उसी स्थिति को अनुकूल बनाना ही समायोजन है।

योग:- श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार:- समत्वं योग उच्यते 2/48 अर्थात योग से सम्यक को प्राप्त किया जा सकता है।

तालिका क्र.1

प्रायोगिक समूह के लिए यौगिक अभ्यास की सूची -

क्र.	अभ्यास	समय	आवृत्ति	संदर्भ ग्रंथ
1	ॐ . का उच्चारण	1 मिनट	3	शब्द नाद श्री राम शर्मा आचार्या
2	गायत्री मंत्र	1 मिनट	2	
3	ताड़ासन	1 मिनट	3	आसन,प्राणायाम,मुद्रा एवं बंध स्वामी सत्यानंद सरस्वती मुंगेर बिहार पब्लिकेंसन
4	तिर्यक ताड़ासन	1 मिनट	3	
5	कटिचकासन	1 मिनट	3	
6	सूर्यनमस्कार	2 मिनट	4	
7	शवासन	1 मिनट		
8	उज्जायी प्राणायाम	1 मिनट	4	
9	भ्रामरी प्राणायाम	1 मिनट	2	
10	ॐ. का उच्चारण	1 मिनट	3	शब्द नाद श्री रामशर्मा आचार्या
11	जल नेति	सप्ताह में एक दिन	2	घेरण्ड़ संहिता के अनुसार
12	भस्त्रिका प्रायाणाम	प्रति दिन	1	घेरण्ड़ संहिता के अनुसार

शोध का सांख्यिकीय विश्लेषण : तालिका क्र.2 समूह के आधार पर प्रभाव का अध्ययन

समूह	लिंग	संख्या	मध्यमान	विचलन
प्रायोगिक समूह	महिला	30	18.86	6.95
	पुरूष	30	24.90	9.66
नियंत्रित समूह	महिला	30	47.20	14.55
	पुरूष	30	38.90	19.07

तालिका क्र.1 में हमने पाया कि (एफ 4,115= 223.070,पी <.001) महत्वपूर्ण प्रभाव पाया गया इसमें सभी माडल (सहसंयोजकों सहित) पश्चात परिणाम में महत्वपूर्ण मात्रा में भिन्नता को देखा गया है।

इसका मुख्य प्रभाव निम्नानुसार है:-

पूर्व कोवेरियंटः महत्वपूर्ण प्रभाव (एफ (1,115)=469.925,,पी<.001) यह दर्शाता है कि पहले प्राप्त परिणाम तथा यौगिक अभ्यास के बाद प्राप्त परिणाम में महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।

समूह में प्राप्त (एफ(11,115)=335.621,पी<.001) प्रभाव से दिखाई देता है कि प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के पश्चात परिणाम में महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।

लिंग समूह के आधार पर (एफ(11,115)= 0.021,पी <.885) महिलाओं एवं पुरूषों के पश्चात परिणाम में कोई महत्वपूर्ण अंतर नही पाया गया।महिलाओं एवं पुरूषों के प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के पश्चात प्राप्त परिणाम (एफ(11,115)=4,<667,पी=>033) के आधार पर प्रायोगात्मक बनाम नियंत्रित समूह के महिलाओं एवं पुरूषों के प्राप्त पश्चात परिणाम में महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।

तालिका क्र. 3 यौगिक अभ्यासों का समूह प्रभाव का अध्ययन

समूह	मध्यमान	मानक विचलन	लोवर बाॅड	अपर बाॅड
प्रायोगिक	22.48	.770	20.99	24.00
नियंत्रित	42.45	.770	40.92	43.97

यौगिक अभ्यास का समग्र प्रभाव समूह पर निम्नानुसार प्राप्त हुआ:-

तालिका क्र. 2 में समूह के अनुसार प्रायोगिक समूह (माध्य=22.48) एवं नियंत्रित समूह (माध्य=42.45) के प्राप्त पश्चात परिणाम में प्राप्त माध्य के आधार पर प्रायोगिक समूह यौगिक अभ्यास के पश्चात प्राप्त माध्य में बहुत कमी पायी गयी। जो कि बताता है कि यौगिक अभ्यास के कारण समायोजन स्कोर में कमी पायी गयी अर्थात योगिक समूह जिसे यौगिक अभ्यास करवाया गया उनके माध्य में नियंत्रित समूह जिसे यौगिक अभ्यास नही कराया गया उनके माध्य से कम पाया गया। प्रायोगिक समूह की तुलना में नियंत्रित समूह का माध्य अधिक होने से नियंत्रित समूह में समायोजन में कमी देखी गयी वही प्रायोगिक समूह के माध्य कम होने से समायोजन में वृद्धि पाया गया।

तालिका क्र. 4 लिंग के आधार पर प्रभाव का अध्ययन

समूह	लिंग	मध्य	एस टी डी त्रुटि	. 95कानफिडेंस इनटरवाल	
				लोवर बाॅड	अपर बाॅड
प्रायोगिक समूह	महिला	23.76	1.090	21.60	25.91
	पुरूष	21.20	1.094	19.03	23.36
नियंत्रित समूह	महिला	41.32	1.095	39.16	43.50
	पुरूष	43.57	1.102	41.39	45.75

तालिका क्र.3 के अनुसार महिलाओं एवं पुरूषों के पश्चात परीक्षण परिणाम के आधार पर महत्वपूर्ण अंतर नही पाया गया।

महत्वपूर्ण अंतःक्रिया प्रभाव से ज्ञात होता है कि समायोजन स्कोर पर यौगिक अभ्यास का प्रभाव लिंगो के पूर्व एवं पश्चात परीक्षण में अधिक अंतर पाया गया।

पुरूषों के नियंत्रित (माध्य 42.45) की तुलना में प्रायोगिक समूह का (माध्य 21.20) स्कोर कम पाया गया। जिससे ज्ञात होता है कि नियंत्रित समूह जिसे यौगिक अभ्यास नही कराया गया उनके स्कोर अधिक पाये गये जो कि समायोजन की कमी को बताता है। प्रायोगिक समूह जिसने यौगिक अभ्यास किया उनके समायोजन स्कोर में कमी पायी गयी जो समायोजन को बढ़ाने में सहायक रहा। पुरूष समूह में (प्रायोगिक और नियंत्रित समूह) के पश्चात परीक्षण में

महत्वपूर्ण अंतर पाया गया।

महिला समूह के नियंत्रित (माध्य 41.33) एवं प्रायोगिक स्कोर (माध्य 23.76) के आधार पर ज्ञात होता है कि यौगिक अभ्यास के अभाव में नियंत्रित समूह का स्कोर अधिक है जो खराब समायोजन को दर्शाता है। प्रायोगिक समूह जिसे यौगिक अभ्यास कराया गया उनके माध्य स्कोर में कमी पायी गयी जो कि समायोजन वृद्धि को दर्शाता है। पुरूषों की तुलना में महिलाओं के बीच का अंतर कम था।

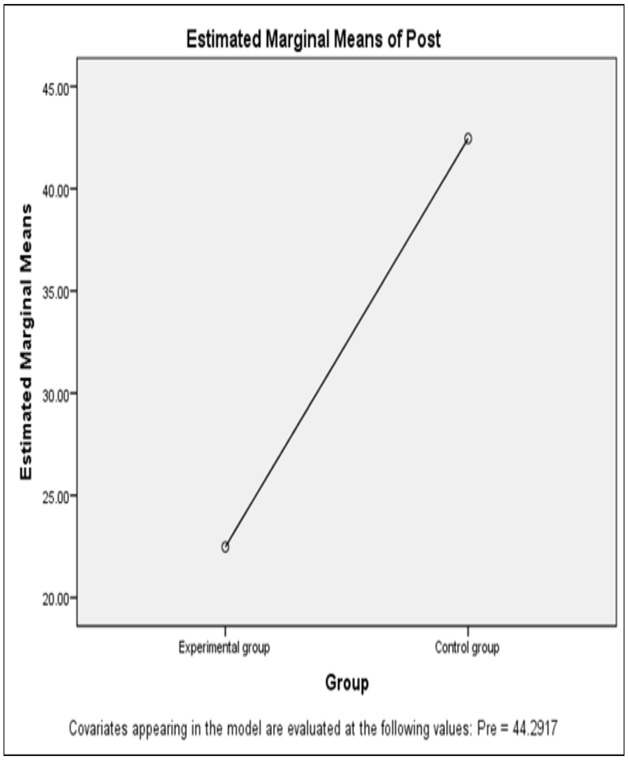

चार्ट के आधार पर यह पाया गया कि स्वतंत्र चर के अलग अलग स्तरों पर आश्रित चर के परिणाम में क्या अंतर पाया गया। स्वंतत्र चर के आधार पर यह चार्ट में समूहों एवं लिंगों पर प्रभाव को दर्शाता है। जैसे प्रायोगिक समूह के महिलाओं एवं पुरूषों के अंक एवं नियंत्रित समूह के महिलाओं एवं पुरूषों के अंक में अंतर पाया गया। आश्रित चर के आधार पर समायोजन क्षमता के अंकों पर अंतर पाया गया जो यह दर्शाता है कि लिंगो के आधार पर प्रभाव को दर्शाता है।

यह चार्ट के द्वारा एनकोवा के सांख्यिकीय प्रभाव को समझने में सहायता मिलती है। जिसमें स्वतंत्र चर का आश्रित चर पर सकारात्मक प्रभाव पाया गया। प्रायोगिक समूह एवं नियंत्रित समूह के अंकों के स्तर को समझने में सहायक है। दोनों सूमह का प्रभाव जो चार्ट यौगिक अभ्यास करने वाले समूह का अंक स्तर नीचे की ओर है तथा नियंत्रित समूह का अंक स्तर अधिक पाया गया। कम अंक अधिक समायोजन को बताता है। समूह एवं लिंगों पर यौगिक अभ्यास करने अथवा नही करने के पश्चात अंक स्तर से समायोजन पर पड़ने वाले प्रभाव का ज्ञात करने में सहायता मिली। यौगिक अभ्यास का समायोजन संबंधी समस्याओं को कम करने में सहायक है तथा महिलाओं की तुलना में पुरूषों पर इसका अधिक प्रभाव पाया गया। महिला एवं पुरूष दोनों के समूह में प्रायोगिक के पश्चात स्कोर में कमी पायी गयी जो कि दर्शाता है कि यौगिक अभ्यास का समायोजन पर सार्थक प्रभाव पड़ता है।

शोध अध्ययन से ज्ञात होता है कि यौगिक अभ्यास हस्तक्षेप के बाद समायोजन क्षमता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। नियंत्रित एवं प्रायोगिक समूह के स्कोर में भिन्नता देखी गई। प्रायोगिक समूह का स्कोर नियंत्रित समूह की तुलना में कम पाया जाना यौगिक अभ्यास के प्रभाव को स्पस्ट करता है। महिला पुरूष के पश्चात परिणाम में अधिक भिन्नता नही पायी गई जिससे ज्ञात होता है कि लिंग के आधार पर अधिक अंतर नही पाया गया। किन्तु अलग अलग लिंग के प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के पूर्व एवं पश्चात स्कोर के आधार पर महिला एवं पुरूष के समायोजन परिणाम में सार्थक अंतर पाया गया।

परिणामों का विश्लेषण :-

पूर्व में शोधों के आधार पर विश्लेषणात्मक अध्ययन करने से प्राप्त होता है कि वर्मा माधव (जनवरी 2022) ने 'जिला बिजनौर के ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के कार्यक्षेत्र में समायोजन की स्थिति का अध्ययन किया अपने अध्ययन में पाया कि शिक्षक के समायोजन क्षमता का केवल शिक्षक पर ही नहीं विद्यार्थियों, समाज पर भी सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।, राय, मुखोपाध्याय एवं घोष 2021 आवासीय महाविद्यालय के विद्यार्थियों के समायोजन पर योग अभ्यास के प्रभाव का तुलानात्मक अध्ययन किया जिसमें योगाभ्यास का सामाजिक, भावनात्मक एवं शैक्षिक समायोजन पर प्रभाव नही पाया गया इसका कारण अलग आयु समूह तथा प्रज्ञा योग की सख्ती जलवायु परिवर्तन को भी कारण बताया है।, कुमार कामख्या (2016) ने अपने शोध 'कामकाजी महिलाओं के समायोजन पर योगप्रथाओं के प्रभाव का एक अध्ययन किया।'इन्होने पाया कि समायोजन पर योगाभ्यास का प्रभाव पड़ता है देव संस्कृति विश्वविद्यालय के छात्रों पर इन्होंने प्रभाव को देखा प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह के द्वारा जिसमें नियंत्रित समूह की तुलना में प्रायोगिक समूह पर योगाभ्यास से उनके समायोजन पर प्रभाव पड़ता है नियमित करने वाली महिलाओं पर अच्छा प्रभाव देखा गया।, नार्के एवं दरयानानी (2015) किशोरों के लिंग और निवास अंतर के संबंध में समायोजन के लिए योग अभ्यास इंडियन जर्नल ऑफ पॉज़िटिव साइकॉलजी 6 (1), 69, 2015 में किशोरों पर अभ्यास, लिंग तथा आवास के साथ व्यक्तिगत रूप से तथा एक दूसरे के साथ समायोजन करने की क्षमता पायी गई।

निष्कर्ष:- महिलाओं एवं पुरुषों दोनों पर यौगिक अभ्यासों का समायोजन क्षमता पर सार्थक प्रभाव पड़ता है। महिला एवं पुरूष दोनों के समायोजन क्षमता को बढ़ाने में यौगिक अभ्यास की महत्वपूर्ण भूमिका है। नियमित यौगिक अभ्यास से समायोजन क्षमता में वृद्धि होगी। शोध में पाया गया कि लिंग के आधार पर अंक स्तर में अधिक अंतर नही पाया गया किन्तु लिंग समूह के प्रायोगिक समूह पर यौगिक अभ्यास के पूर्व एवं पश्चात परीक्षण के अंक स्तर पर स्पष्ट अंतर पाया गया जिससे ज्ञात होता है कि महिलाओं एवं पुरूषों के समायोजन क्षमता पर यौगिक अभ्यास का सार्थक प्रभाव पड़ता है।

सदंर्भ ग्रंथः

1. बार्टोस, पोसादास, व्रप्सन एवं क्रैगेलोह 2023 तत्कालीन परीक्षण के साथ प्रतिक्रिया बदलाव के लिए समायोजन के बाद माइंडफुलनेस और योग-आधारित हस्तक्षेप में प्रभाव आकार में वृद्धि। माइंडफुलनेस 14(4), 953-969.
2. अधिकारी अनसूया 2023 सामाजिक- शैक्षणिक दृष्टिकोणःमानव समायोजन पर एक अध्ययन। ईपीआरए इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड डेवलपमेंट (आईजेआरडी) 8 (1),97-101. ISBN 2455.7838.
3. कुमार कामख्या 2016 विद्यार्थियों में समायोजन के लिए योग आधारित जीवनषैली का दृष्टिकोण (एपरोच ऑफ योगा बेस्ड लाइफस्टाइलवर्ड सोशल एडजेस्टमेंट एमंग स्टुडेंटस) इंटरनेषनल जर्नल ऑफ योगा एण्ड एलाइड सांइस volume:Issue:1: जनवरी से जून 18-23. ISBN 2278.5159.
4. नार्के एवं दरयानानी 2015 किशोरों के लिंग और निवास अंतर के संबंध में समायोजन के लिए योगाभ्यास। इंडियन जर्नल ऑफ पा ॅजिटिव साइकोला ॅजी 6 (1), 69 2015.
5. चौधरी बिनोद 2013 जनजातीय छात्रों के तनाव और सामाजिक समायोजन क्षमता पर योग निद्रा और प्राणायाम का प्रभाव। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ फिजिकल एंड सोशल सांइसेज 3(11),87-95.
6. राय , मुखोपाध्याय एवं घोष 2021 आवासीय छात्रावास विद्यार्थियों में योगिक अभ्यास का समायोजन पर तुलनात्मक अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइकोलाजी न्यूटीशन एंड शारीरिक शिक्षा एंड 2021; 6(1) 32-34. ISBN :2456-0057.
7. माहेश्वरी एवं यादव 2018 महविद्यालय जाने वाली कन्याओं के बीच समायोजन पर योग-प्रेक्षा ध्यान का प्रभाव। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ योगा एंड अलाइड सांइसेज 7(1), 45-51.
8. सरीन एवं सरीन 2015 शैक्षिक अनुसंधान विधियां अग्रवाल पव्लिकेशन्सन ISBN: 978-81-89994-89-1
9. बिहारिया, बिहारिया एवं सिंह योगाभ्यास (सूर्य नमस्कार, योग निद्रा एवं स्वाध्याय) का समायोजन स्तर एवं सांवेगिक बुद्धि पर प्रभाव माइंड एवं सामाजिक ISBN: 2277-6907 vol.2 no.II&III अप्रैल-सिंतम्बर 2013 पेज नं.5-12
10. वर्मा एवं गुरवेन्द्र (2016) शहरी क्षेत्र में महाविद्यालय के सामाजिक समायोजन पर सामूहिक योगिक अभ्यास के प्रभाव पर एक अध्ययन 2(21):36-40
11. वर्मा एवं कामाख्या (2020) व्यस्कों में जीवन संतुष्टि पर समूह और व्यक्तिगत चेतना का साक्ष्य-आधारित तुलानात्मक अध्ययन
12. असियाची, सनातकरन एवं बहारी (2017) बुजुर्ग पुरूषों और महिलाओं के समायोजन पर योग की प्रभावशीलता एजिंग साइकोलाजी 2(4),261-270,2017
13. डॉ. अस्मिता (2019) कामकाजी महिलाओं का बच्चों के साथ समायोजन
14. International journal of Research in Social Sciences Volume 9, Issue 5(May 2019) ISBN: 249-2496
15. स्वामी सरस्वती सत्यानंद ,(2017) आसान,प्राणायाम,मुद्रा एवं बंध मुंगेर बिहार पब्लिकेसन ISBN; 978-8185787527 (2017)
16. सिंह,अरुण एवं सिंह, आशीष (2015) व्यक्तितव का मनोविज्ञान मोतीलाल बनरसीदास जवाहर नगर दिल्ली ISBN: 978-81-208-2198-9 पेज नं 215-220 प्रथम संस्करण 2000

****

पर्यावरण पर मानव व्यवहार का प्रभाव

-डॉ.रश्मि जहाँ
एम.ए.,एम.एड.पीएच.डी,
अस्टिस्टेन्ट प्रोफेसर
श्री द्रोणाचार्य स्नातकोत्तर महाविद्याल,
दनकौर (गौतमबुद्ध नगर) उ.प्र.

-डॉ.बोबिन्द्र
एम.ए.,एम.एड.एम.फिल.,पीएच.डी,
अस्टिस्टेन्ट प्रोफेसर
श्री साँई महाविद्याल,फतेहपुर पुट्टी (बागपत) उ.प्र.

शोध-सारांश :

दुनिया में, हमें ''मानव व्यवहार'' का अर्थ समझना चाहिए। मानव व्यवहार से तात्पर्य मनुष्यों द्वारा अपने पर्यावरण के साथ मिलकर प्रदर्शित की जाने वाली विभिन्न क्रियाओं और दृष्टिकोणों से है। यह स्पष्ट है कि जिस वातावरण में लोग रहते हैं, उसका उनके व्यवहार पर बहुत प्रभाव पड़ता है। दूसरी ओर, प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहार का पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण में सभी जीवित जीव, निर्जीव पदार्थ और ब्रह्माण्ड के रूप में जाना जाने वाला पूरा क्षेत्र शामिल है। जब हम पर्यावरण के बारे में बात करते हैं, तो हम वास्तव में अपने आस-पास के बारे में बात कर रहे होते हैं, जिसमें वे सभी भौतिक, जैविक और सामाजिक स्थितियाँ भी शामिल होती हैं, जिनका किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के विकास पर प्रभाव पड़ता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि व्यक्ति स्कूल में है या काम पर, जेसे कि नर्स, डॉक्टर, वकील इत्यादि, प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार पर्यावरण से प्रभावित होता है। यह स्पष्ट है कि प्रदूषण के कई रूप हैं और पर्यावरण पर इसके प्रभाव हैं। इसी तरह, व्यक्ति के व्यवहार की प्रकृति अक्सर उस सामाजिक और भौतिक सेटिंग के प्रकार से निर्धारित होती है जिसमें वह पला-बढ़ा है।

ग्रह पृथ्वी सबसे बड़ा पारिस्थितिकी तंत्र है जिसका अध्ययन किया जा सकता है और आंशिक रूप से समझा जा सकता है। एक पारिस्थितिकी तंत्र सभी जीवित और निर्जीव जीवों और पर्यावरणों का संयोजन है जो समग्र रूप से प्रणाली के समग्र कार्य और पोषण में योगदान करते हैं। इसमें पौधे, जानवर, भूमि, मिट्टी, पानी, हवा, जीवमण्डल और इसके भीतर की हर चीज शामिल है। पर्यावरण पर मानव प्रभाव उन सभी गति. विधियों और व्यवहारों का योग है जो सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के बदलाव पैदा करते हैं जो पृथ्वी के संवेदनशील पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करते हैं।

मुख्य शब्दः- वातावरण, सामाजिक, उदाहरण, भौतिक, प्राकृतिक, जीवित, मानव, व्यवहार, जागरूकता, नुकसान।

पर्यावरण पर मानव व्यवहार के प्रभाव का अध्ययन करने का महत्वः

पर्यावरणीय मुधों का वैश्विक और बड़ा प्रभाव होने के कारण, इसलिए हमारे लिए अपने व्यवहार के पर्यावरणीय प्रभावों को समझना बहुत महत्वपूर्ण है- चाहे वह हमारे ग्रह पर सीधे प्रभाव हो या हमारे साथ ग्रह को साझा करने वाले तीसरे पक्ष पर प्रभाव हो। मानव व्यवहार और सामाजिक पर्यावरण को अच्छी तरह से समझने से वर्तमान और भविष्य की पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान खोजने में मदद मिलती है। लेकिन क्या हम भूल गए हैं या हमने देखा है कि हम जो कुछ भी करते हैं और उसका पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है, उसके बीच क्या संबंध है? हाँ, ''सामाजिक वातावरण और सामाजिक संदर्भ में पर्यावरण पर मानव व्यवहार के प्रभाव'' के अध्ययन का प्राथमिक ध्यान उन तरीकों और साधनों को खोजने पर है जिनके द्वारा जैव विविधता का नुकसान, वनों की कटाई की रोकथाम, ग्लोबल वार्मिंग और अन्य प्रमुख पर्यावरणीय मुधों को रोका जा सकता है। सामान्य तौर पर, कई लोग मानते हैं कि मानव व्यवहार का अध्ययन करना 'सामान्य ज्ञान' है। यह बात कुछ हद तक सही हो सकती है, फिर भी, स्वास्थ्य को बेहतर बनाने और प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करने के लिए समझ के अनुप्रयोग बहुत महत्वपूर्ण हैं। मानव व्यवहार का अध्ययन करने का मतलब न केवल हमारे कार्यों के पहलुओं और उन कारणों का गहरा ज्ञान होना है जो हमें इस तरह से कार्य करने के लिए मजबूर करते हैं, बल्कि ऐसे तरीके भी तैयार करना है जिनसे हम समाज को बेहतर बना सकें। इसलिए, पर्यावरण पर मानवीय प्रतिक्रियाओं के प्रभावों की गहराई को मापने के लिए, हाल के अध्ययनों से पता चला है कि कई मानवीय गतिविधियाँ हैं जिनके कारण रेगिस्तान का निर्माण हुआ है। जैसे-जैसे रेगिस्तान समय के साथ फैलते जा रहे हैं, अधिक चराई के कारण अधिक पौधे नष्ट हो जाएँगे, और इससे भूस्खलन और मिट्टी का कटाव अधिक होगा। और इसलिए कई शोधकर्ताओं ने तर्क दिया है कि संज्ञ. ानात्मक, भावनात्मक और कभी-कभी न्यूरोबायोलॉजिकल प्रक्रियाओं को समझना महत्वपूर्ण है जो मानव व्यवहार चाहते हैं और उन तरीकों को समझना है जिनके द्वारा ज्ञान के ऐसे स्रोतों को पर्यावरणीय समस्याओं के अध्ययन में उत्पादक रूप में शामिल और उपयोग किया जा सकता है। पर्यावरण संरक्षण के लिए भौतिकता के साथ सामाजिक संबंधों में मौलिक परिवर्तनों की आवश्यकता होगी, जिससे हमारे जैसे सामाजिक वैज्ञानिकों को सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञान के बीच कम प्रतिकूल और अधिक संभावना-समृद्ध संबंध बनाने के अवसरों की खोज जारी रखने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके। खैर, इन्हें राजनीतिक कार्रवाई और कई अन्य प्रकार के

आम और पेशेवर विशेषता को गतिशील और अनुकूल निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में घनिष्ठ एकीकरण द्वारा पूरक करने की आवश्यकता होगी।

पर्यावरण पर मानव व्यवहार का प्रत्यक्ष प्रभ. ाव :

पहला मुख्य क्षेत्र जहाँ मनुष्य पर्यावरण पर सीधा प्रभाव डालता है, वह है प्रदूषण और अपशिष्ट उत्पादन। पर्यावरण पर मानव गतिविधि के हानिकारक प्रभावों के प्रमुख उदाहरणों में से एक प्रशान्त महासागर में स्थित ग्रेअ पैसिफ़िक गार्बेजे पैच में देखा जाता है। यह कचरे और कूड़े का एक विशाल क्षेत्र है, जो मुख्य रूप से बैग, बोतल और माइक्रोबीड्स जैसे गैर-बायोडिग्रेडेबल प्लास्टिक से बना है। कचरा पैच तब बनता है जब अपशिष्ट पदार्थ समुद्री धाराओं द्वारा फँस जाता है, जिससे मलबे का एक केन्द्रित क्षेत्र बन जाता है। इसका स्थानीय समुद्री जीवन पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है-उदाहरण के लिए, समुद्री कछुए अक्सर प्लास्टिक की थैलियों को जेलीफ़िश समझ लेते हैं, जो उनके पसंदीदा भोजन में से एक है, जिससे उनके पाचन तंत्र में रूकावट आती है। इसी तरह, डॉल्फ़िन मछली पकड़ने के छोड़े गए जाल में उलझ सकती हैं, जिससे उनकी तैरने और भोजन की तलाश करने की क्षमता को खतरा हो सकता है। पर्यावरा पर दूसरा सीधा प्रभ. ाव वनों की कटाई और आवास विनाश से आता है। इसका एक प्रमुख उदाहरण ब्राज़ील में अमेज़न वर्षावन का विनाश है। यह वनों की कटाई बढ़ते औद्योगिकरण और विकास का परिणाम है, क्योंकि मवेशियों के पालन और सोयाबीन उत्पादन जैसे व्यावसायिक उपक्रमों के लिए पेड़ों की बढ़ती संख्या को काटा जा रहा है। ये क्रियाएँ न केवल वर्षावन के भीतर जैव विविधता को कम करती हैं, बल्कि जल चक्र को भी बाधित करती हैं और शुष्क परिदृश्य का कारण बन सकती हैं। वन जलवायु परिवर्तन को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि वे कार्बन सिंक के रूप में कार्य करते हैं- एक प्राकृतिक भण्डार जो वातावरण से कार्बन डाइऑक्साइड को अवशोषित करता है।

पर्यावरण पर मानव व्यवहार का एक और प्रमुख प्रत्यक्ष प्रभाव है। पिछली कुछ शताब्दियों में अत्यधिक जनसंख्या और अत्यधिक उपभोग ने पर्यावरण पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला है। इससे व्यापक वायु और जल प्रदूषण, दुनिया के महासागरों का प्रदूषण और विनाश, और ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन हुआ है, जिससे ग्लोबल वार्मिग हुई है। विकासशील देशों में अत्यधिक जनसंख्या, विशेष रूप से, न केवल पर्यावरण को असंतुलित कर रही है, बल्कि दुनिया के प्राकृतिक संसाध ानों को भी कम कर रही है। इस स्थिति के समाधान के बिना, सम्पूर्ण ग्रह आज जीवित लोगों की संख्या को बनाए नहीं रख सकता, और न ही भविष्य में जन्म लेने वाले लोगों को बनाए रख सकता है।

प्रदूषण और अपशिष्ट उत्पादन :

दूसरा प्रत्यक्ष प्रभाव जो खोजा गया है वह अपशिष्ट और प्रदूषण का उत्पादन। अपशिष्ट वह सामग्री है जिसे अब उपयोगी नहीं माना जाता है और जिसे या तो निपटाया जाना है या निपटान के लिए एकत्र किया जाना है। दूसरी ओर, प्रदूषण पर्यावरण में हानिकारक पदा. र्थों का प्रवेश है। अपशिष्ट उत्पादन और प्रदूषण मुख्य रूप से औद्योगिक और वाणिज्यिक गतिविधियों के कारण होता है, लेकिन घरेलू गतिविधियों के कारण भी होता है। प्रदूषित पानी और पर्यावरण क्षरण से प्रतिकूल मानव स्वास्थ्य प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं।

अति उपभोग और संसाधनों का ह्रास :

पर्यावरण पर मानव व्यवहार का एक और महत्वपूर्ण प्रत्यक्ष प्रभाव अति उपभोग है। अति उपभोग तब होता है जब संसाधनों का उपयोग प्रकृति द्वारा उन्हें फिर से भरने की तुलना में तेज़ गति से किया जाता है। इससे प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास हो सकता है। ह्रास किसी क्षेत्र में संसाधनों की कमी है। हमारा समाज अति उपभोग महामारी के बीच में है। अति उपभोग की अमेरिकी संस्कृति संसाधनों की वैश्विक कमी में योगदान दे रही है। यह अति उपभोग पानी, भूमि और ऊर्जा उपयोग सहित कई क्षेत्रों में स्पष्ट है। कुछ समाज जनसं ख्या और संसाधन उपभोग के बीच संतुलन बनाने में कामयाब रहे हैं। उनमें से कई क्षेत्रों में, समुदायों को पारिस्थितिकी तंत्र का दोहन करने के बजाय केवल वही उपयोग करने के लिए एक नैतिक मानक द्वारा निर्देशित किया जाता है जिसकी उन्हें आवश्यकता होती है। इन क्षेत्रों में, जब संसाधन समाप्त हो जाते हैं, तो वे आम तौर पर अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए कोई दूसरा संसाधन या नया तरीका खोज लेते हैं।

जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग :

जलवायु परिवर्तन का मतलब है दुनिया भर में तापमान और मौसम के पैटर्न में दीर्घकालिक बदलाव। यह पृथ्वी के वायुमण्डल में ग्रीनहाऊस गैसों के निर्माण के कारण होता है, जो सूर्य से गर्मी को फँसाते हैं और इसे वापस अंतरिक्ष में जाने से रोकते हैं। इस घटना को अक्सर "ग्रीनहाऊस प्रभाव" के रूप में जाना जाता है। जलवायु परिवर्तन के सबसे महत्वपूर्ण चालकों में से एक ऊर्जा के लिए जीवाश्म ईंधन का जलना है। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से, दुनिया ने बिजली संयंत्रों, कारों और अन्य मशीनों को चलाने के लिए जीवाश्म ईंधन-कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस- के जलने की मात्रा में भारी वृद्धि देखी है। नतीजतन, 19वीं सदी के बाद से वायु मण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता में लगभग 40 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

जैव विविधता की हानि :

इसके बाद, पृथ्वी पर पाई जाने वाली जैव विविधता पर विचार करना महत्वपूर्ण है। जैव विविधता से तात्पर्य किसी विशिष्ट आवास में पाई जाने वाली प्रजातियों की विविधता से है। विभिन्न प्रजातियों ने अलग-अलग पर्यावरणीय परिस्थितियों में जीवित रहने के लिए खुद को अनुकूलित किया है। यह विविधता, वास्तव में, पृथ्वी की जीवन को सहारा देने की क्षमता का प्रमाण है। हालाँकि, जैसे-जैसे मानवीय गतिविधियाँ बढ़ी हैं, वैसे-वैसे विलुप्त होने की दर भी बढ़ी है। विलुप्त होना एक प्राकृतिक प्रक्रिया है। जैसे-जैसे एक प्रजाति लुप्त होती है, यह दूसरी के लिए मार्ग प्रशस्त करती है। हालाँकि, विलुप्त होने की प्राकृतिक दर अब मुख्य रूप से वनों की कटाई, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसी मानवीय गतिविधियों के परिणामस्वरूप तेज हो रही है। प्रजातियों का नुकसान अपरिवर्तनीय है और अब यह न केवल पृथ्वी पर जीवन रूपों की विविधता के लिए बल्कि उन मानवीय गतिविधियों के लिए भी खतरा पैदा कर रहा है जो इस नुकसान के लिए जिम्मेदार हैं। प्रजातियों को विलुप्त करने वाली कई प्रक्रियाएँ मानवीय गतिविधियों के कारण होती है।

पारिस्थितिकी तंत्र का विघटन :

पारिस्थितिकी तंत्र का विघटन मानव व्यवहार और पर्यावरण के अध्ययन के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक है। पारिस्थितिकी तंत्र पौधों और जानवरों का एक समुदाय है जो किसी दिए गए क्षेत्र में एक दूसरे के साथ रहते हैं और बातचीत करते हैं। प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में जीवन का एक सावधानीपूर्वक संतुलन होता है, जहाँ प्रत्येक जीव की एक विशिष्ट भूमिका होती है। जीवन के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहने वाले जीवों की इस प्रक्रिया को वैज्ञानिक शब्दों में ''खाद्य जाल'' के रूप में जाना जाता है। खाद्य जाल को ''कौन किसे खाता है'' आरेख के रूप में वर्णित किया जा सकता है जो किसी दिए गए वातावरण में जीवित चीजों के बीच जटिल संबंधों को दर्शाता है। हालाँकि, मानवीय हस्तक्षेप इस नाजुक संतुलन को बाधिक कर सकता है। जंगलों की कटाई, प्रदूषण और जानवरों की अत्यधिक कटाई पारिस्थितिकी तंत्र के लिए प्रत्यक्ष खतरों के उदाहरण हैं। महासागरों में तेल रिसाव समुद्री और तटीय पारिस्थितिकी तंत्र के लिए बड़ी समस्याएँ पैदा कर सकता है।

पर्यावरण पर मानव व्यवहार का अप्रत्यक्ष प्रभाव:

पर्यावरण पर मानव व्यवहार के अप्रत्यक्ष प्रभावों का निदान करना अक्सर अधिक कठिन होता है। अप्रत्यक्ष नुकसान के सबसे आम उदाहरण भूमि उपयोग से संबंधित हैं, क्योंकि यह सामान्य बात है कि मानव अवकाश और यात्रा गतिविधियों द्वारा विभिन्न तरीकों से आवासों को बदला जाता है। जबकि लम्बी पैदल यात्रा और अन्य बाहरी गतिविधियाँ पर्यावरण के अनुकूल लग सकती हैं, फिर भी वे परिदृश्य को बदल देती हैं, कभी-कभी काफी हद तक, जिसका उन स्थानों पर रहने वाले पौधों और जानवरों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिए, पैदल चलने के लिए किसी विशेष क्षेत्र के उपयोग में मामूली वृद्धि भी उस क्षेत्र में पेड़ की जड़ों की वृद्धि को रोक सकती है, जो कम स्थिरता वाले पेड़ में बदल सकती है और तूफान के दौरान गिर सकती है। मानव गतिविधि और यातायात के कारण होने वाले कटाव से अक्सर पौधों और आवासों को दीर्घकालिक नुकसान हो सकता है। जब बड़ी संख्या में लोग विभिन्न मनोरंजक गतिविधियों के लिए एक ही प्राकृतिक स्थल का उपयोग करते हैं, तो परिदृश्य और आवास में परिवर्तन अपरिहार्य हैं। अप्रत्यक्ष प्रभावों में सामाजिक तनावों के बिगड़ते प्रभाव भी शामिल हैं, जैसे कि राष्ट्रीय उद्यान के माध्यम से एक नई सड़क के निर्माण से उत्पन्न तनाव। जब कोई नई सड़क बनाई जाती है, तो इससे लोगों के लिए प्राकृतिक स्थलों तक नई पहुँच हो सकती है, जो उन क्षेत्रों का उपयोग करने वाले पौधों और जानवरों की मूल, अक्सर दुर्लभ, प्रजातियों को बाहर कर सकती है। ऐसे सामाजिक तनाव वनस्पतियों और जीवों की पहले से ही अलग-थलग आबादी के भीतर मानसिक स्वास्थ्य के मुधों से भी जुड़े हो सकते हैं। अवकाश और यात्रा से जुड़ा मानव व्यवहार अक्सर क्रियाओं के बारे में जागरूकता की कमी से संबंधित होता है। इसलिए व्यक्तियों के लिए पर्यावरण के साथ बातचीत करने के तरीकों के संभावित अप्रत्यक्ष प्रभावों को बेहतर ढ़ंग से समझना महत्वपूर्ण है। शैक्षिक कार्यक्रम केवल तेल रिसाव और रासायनिक प्रदूषा जैसे बड़े स्पष्ट नुकसान को कम करने पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकते हैं, बल्कि रोजमर्रा की, अक्सर अनदेखी की जाने वाली कार्रवाईयों पर भी ध्यान केन्द्रित कर सकते हैं जो अभी भी पर्यावरणीय स्थितियों में महत्वपूर्ण बदलाव लाती है। यह समझकर कि विभिन्न प्रकार के जीवन और भूमि आपस में कैसे जुड़े हुए हैं, मुनष्य भविष्य की पीढ़ियों के लिए हमारे ग्रह को संरक्षित करने में अधिक जानबूझकर और देखभाल करने वाली भूमिका निभा सकते हैं। नए निर्माण, शहर के विस्तार और अन्य मानवीय गतिविधियों के सामने वन्यजीव संरक्षा और पड़ोस के सामुदायिक हितों का समर्थन और प्रचार किया जाना चाहिए। विभिन्न प्र. जातियों की उपस्थिति को महत्व देना महत्वपूर्ण है क्योंकि यह पारिस्थितिकी तंत्र संतुलन और स्थिरता में योगदान देता है। यह देखते हुए कि निर्माण और भवन योजनाओं के परिणामस्वरूप आमतौर पर वन्यजीवों का निवास स्थान नष्ट हो जाता है या उनका विस्थापन होता है, यह मानव समुदायों की जिम्मेदारी होनी चाहिए कि वे विभिन्न प्रजातियों और प्राकृतिक परिवेश के बीच मौजूदा सामंजस्यपूर्ण संबंधों को पहचानें। ऐसी मान्यता का उपयोग पारिस्थितिक और सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण

महत्व वाले स्थलों की सुरक्षा और रख-रखाव के लिए पैरवी करने के लिए किया जा सकता है। अस्थिर व्यवहार आसपास के पारिस्थितिकी तंत्र की आवश्यक विशेषताओं को बदल सकते हैं और, निवास स्थान के नुकसान या देशी प्रजातियों के विस्थापन के नॉक-ऑन प्रभावों के माध्यम से, मनुष्य खुद को ऐसे क्षेत्रों में रह सकते हैं जहाँ स्थिर और विविध पारिस्थितिकी तंत्र द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाएँ कम उपलब्ध होती हैं। इस तथ्य को पहचान कर कि मानव समाज और पर्यावरण के बीच एक सार्थक और स्वस्थ संबंध के लिए पारिस्थितिकीय रूप से सही और वर्तमान को बढ़ावा देने की आवश्यकता है, पर्यावरण के साथ दीघ किालिक सद्भावना और बातचीत को बढ़ावा दिया जा सकता है, जिससे अंतत: अधिक टिकाऊ और जिम्मेदारी पृथ्वी जीवन की ओर अग्रसर हो सकता है।

निष्कर्ष :

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मानवीय गतिविधि यों से पर्यावरण को गम्भीर नुकसान हुए हैं। पर्यावरण की क्षति मनुष्य के स्वास्थ्य को हमेशा से प्रभावित करती आ रही है। इनमें से ज्यादातर स्वास्थ्य समस्याएँ पर्यावरण प्रदूषण से जुड़ी है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पर्यावरण प्रदूषण की गम्भीर समस्या पर्यावरण संसाधनों के अविवेकपूर्ण उपयोग से जुड़ी है। यदि हम संसाधनों को संरक्षण तथा कम से कम उपयोग करते तो विकराल समस्याओं से बचा जा सकता था।

विनाशकारी पर्यावरणीय समस्याओं को हल करने के लिए बहुत सारे नियंत्रण उपायों की आवश्यकता है क्योंकि इसके गम्भीर प्रभाव समस्त मानव जीवन पर पड़ रहे हैं। सार्वजनिक पर्यावरण जागरूकता अभियान तथा पर्यावरण प्रबन्धन हेतु राष्ट्रीय नीतियों के द्वारा लोगों को विभिन्न पर्यावरणीय मुधों के प्रति सजग किया जा सकता है। पर्यावरणीय मुधे समस्त मानव जीवन के व्यवहार तथा जीवन गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इसलिए आवश्यकता है कि मनुष्य अधिक से अधिक संरक्षण की नियत के साथ वातावरण से विवेकपूर्ण सम्बन्ध रखे।

कई पर्यावरणीय समस्याएँ मनुष्य की अनभिज्ञता से उत्पन्न होती है। इसलिए सम्बन्धित सरकारी विभागों तथा संस्थाओं को लोगों की गतिविधियों से होने वाली पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति लोगों को जागरूक करना चाहिए, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को बताना चाहिए कि वातावरण और मानव स्वास्थ्य का सम्बन्ध किस प्रकार है।

सरकार को ऐसे पर्यावरण संरक्षण आयोग की स्थापना करनी चाहिए जो पर्यावरण मंत्रालय के अधीन हो। इस आयोग का मुख्य उधेश्य स्थानीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के लिए लोगों को जागरूक करना तथा पर्यावरण निगरानी करना होना चाहिए।

संदर्भित पुस्तक और वेबसाइट्स :

1.https://timesofindia.indiatimes.com
2.https://en.wikipedia.org
3पर्यावरण शिक्षा- डॉ0 गजेन्द्र सिंह तोमर, पृ0सं0- 1-15
4 प्रज्ञा (पर्यावरण विशेषांक) 2009-10
5 पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी (छठा संस्करण), दृष्टि पब्लिकेशन्स, दिल्ली
6 सिंह, सावेन्द्र (1995), पर्यावरण भूगोल, प्रयाग पुस्तक भवन, इलाहाबाद
7 सक्सेना, डॉ0 हरिमोहन (1994), पर्यावरण एवं प्रदूषण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
8 गर्ग, राजीव (1989), पर्यावरण और हम, राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, प्रथम संस्करण

****

गृहवास्तू निर्माण में भूमि-विचार

डॉ. सर्वेन्द्र कुमार
सहायकाचार्य
संस्कृत विभाग,
देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली

वास्तु का अभिप्राय निवास से है। यह शब्द **"वस् निवासे"** धातु से तुण् प्रत्यय के योग होने पर निष्पन्न होता है। जहाँ मनुष्य वास करते हैं उसे वास्तु कहा जाता है। इसके गृह, देवालय, ग्राम, नगर, पुर, आदि अनेक भेद हैं। **"वसन्ति प्राणिनो यत्र"** अर्थात् प्राणियों के वास–स्थान को वास्तु कहा जाता है। इस दृष्टि से जो प्राणी जहाँ रहता है उसके लिए वही वास्तु है। जलचर जल में रहते हैं, उनके लिए वही वास्तु है। पक्षी अपने नीड में रहते हैं, अतः उनके लिए नीड ही उनका वास्तु है। इस प्रकार सामान्यतया निवास–योग्य भूमि की संज्ञा वास्तु है और वास्तु अर्थात् भवन से सम्बन्धित शास्त्र को 'वास्तुशास्त्र' कहा जाता है।

भारतीय परम्परा में वास्तुशास्त्र अर्थात् निर्माण–अभियान्त्रिकी (Science of Architecture) को ऋषियों अथवा मनीषियों के अद्वितीय ज्ञान–कोष से उद्भूत माना गया है। वास्तु का विस्तृत अर्थ एवं उसका क्षेत्र साधरण एवं सीमित अर्थ में 'निवास–योग्य भूमि' अथवा भवन है परन्तु वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में वास्तु का अभिप्राय व्यापक है। आचार्य मय ने देवों और मनुष्यों के निवास स्थल को 'वास्तु' कहा है –

अमर्त्याश्चैव मर्त्याश्च यत्र यत्र वसन्ति हि।
तद् वस्त्विति मतं तज्ज्ञैस्तदभेदं च वदाम्यहम्।।

'मयमतम्' में वास्तु को चार प्रकार का बताया गया है – भूमि, प्रासाद (देवालय), यान एवं शयन। इनमें प्रधान वास्तु भूमि ही है, क्योंकि शेष इसी से उत्पन्न होते हैं।

प्रासाद आदि वस्तु प्रधान (वास्तु) भूमि से उत्पन्न होने एवं उस पर आश्रित होने के कारण वास्तु ही है। इसी कारण प्राचीन आचार्यों ने इसे वास्तु की संज्ञा प्रदान की है। वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में वास्तु की संज्ञा देते हुए 'भूमि' को ही मुख्य वास्तु बताया गया है, क्योंकि इन वास्तुओं का निर्माण मूलतः जिन वस्तुओं से होता है उनका उत्पत्ति–स्थान 'भूमि' ही है।

सभी वास्तु ग्रन्थ इन चारों वास्तुओं में प्रथमतः प्रधान वास्तु भूमि पर विचार करने के लिए कहते हैं। भवन–प्रासादादि के निर्माण के लिये भूमि की परीक्षा वर्ण, गन्ध, रस, आकृति, दिशा, शब्द एवं स्पर्श के द्वारा ही करनी चाहिये। परीक्षा के पश्चात् ही निर्माण कार्य की आवश्यकता के अनुसार ही भूमि को ग्रहण करना चाहिए।

मनुष्य को वास्तुशास्त्र सम्मत भूमि का चयन करके गृह का निर्माण करना चाहिए क्योंकि शास्त्रों में एक सद् गृहस्थ के लिए अपने गृह का होना आवश्यक बताया गया है 'गृह' उसके पारिवारिक जीवन के सुखभोग का हेतु है और धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति में सहायक है। सर्दी, गर्मी एवं वर्षा तथा शत्रुओं से अभिरक्षा का साधन तथा मांगलिक एवं धार्मिक कृतियों का सम्पादक–स्थल होता है। अतः शास्त्रों में एक सद् गृहस्थ के लिए अपने गृह का होना आवश्यक बताया गया है। क्योंकि एक गृहस्थ के द्वारा किये गये सभी यज्ञ, संस्कार, दान, तप, कृत्य यदि दूसरे किसी के गृह में होते हैं तो उन सभी कृत्यों का फल उस गृह अर्थात् भू के अधिपति को मिलता है –

परगेहे कृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः।
निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।।

गृह निर्माण प्रक्रिया में भूमि–चयन उस निर्माण का आधार है। अतः गृह–निर्माण विनियोजन में भूमि का चयन महत्त्वपूर्ण कार्य है। गृह निवेश हो अथवा पुर–निवेश, प्रत्येक के लिए निवेश्य स्थल का समुचित चयन करना आवश्यक है। गृह–निर्माण के लिए भूमि का चयन करते समय भूमि या मिट्टी की गुणवत्ता का विचार आवश्यक है। भूमि के कुछ गुणधर्म सभी मनुष्यों के लिए समान होते हैं, जबकि कुछ वर्ण–विशेष के अनुसार विचारणीय होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान कृष्ण ने कहा है –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।

अर्थात् भारतीय शास्त्रीय परम्परा में सभी मनुष्य चार भाग में विभक्त हैं, इसी कारण उनके गुणधर्म भी भिन्न हैं उसी के अनुसार वास्तुशास्त्र में सभी वर्णों के लिए निवास हेतु भूमि का चयन उसकी गन्ध, वर्ण, स्वाद, प्लव तथा भूमि पर स्वतः उत्पन्न कुशादि के आधार पर करने का उल्लेख हुआ है तथा उसी के अनुसार उन्हें अपने कर्मों का पूर्ण फल मिलता है।

गृह सभी वर्णों को स्त्री–पुत्रादि भोग, सुख प्रदान करने वाला, धर्म, अर्थ और काम को देने वाला, प्राणियों को सुख प्रदान करने वाला आश्रम स्थल, शीत, वर्षा और ग्रीष्म ऋतुओं से रक्षा करने वाला है, केवल गृहनिर्माण से ही वापी, देवमन्दिरादि के निर्माण का समस्त पुण्यफल प्राप्त हो जाता है। इसीलिए विश्वकर्मा आदि देवों ने सर्वप्रथम गृहनिर्माण के लिए ही कहा है, मनुष्य को घासफूस एवं तिनके से गृह निर्माण करने पर करोड़ गुना, मिट्टी से गृह निर्माण करने पर दस करोड़ गुना, ईंट से गृह निर्माण करने पर सौ करोड़ गुना तथा पर्वत–पत्थर से गृह निर्माण करने पर अनन्त गुना पुण्य फल मिलता है।

भूमिचयन के प्रसङ्ग में वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थों में कहा गया है जिस भूमि पर शुभ मांगलिक जयंती, जया आदि शुभ

औषधियाँ याज्ञिक, यज्ञ सरज, शाल, गुलर, वट, खैर, मवलेसरी आदि वृक्ष हों, मधुर स्वादु, सुष्ठु गंध, स्नेह (देखने मात्र से प्रसन्नता), सम, नीचोच्च विषमता रहित, बिल–प्रस्फुटितादि दोषशून्य हो, वह भूमि मनुष्य के लिए मांगलिक है, इस प्रकार की भूमि पर कुछ समय बैठने मात्र से मार्गजनित श्रम दूर होकर अभूतपूर्व आनन्द–सुखानुभूति होती है, तो वैसी भूमि पर गृह निर्माण कर निवास करने से शाश्वत सुख–शान्ति, आनन्द व लक्ष्मी का निवास रहता है।

भूमिचयन प्रक्रिया में ब्राह्मणों के लिए श्वेत वर्ण वाली भूमि उपयुक्त है, क्षत्रियों के लिए रक्तवर्ण वाली भूमि, वैश्य के लिए पीतवर्ण वाली भूमि, शूद्रों के लिए कृष्णवर्ण वाली भूमि तथा अन्य वर्णों के लिए मिश्रित वर्ण वाली भूमि प्रशस्त बतायी गयी है –

श्वेता ब्राह्मणभूमिका च घृतवद्गन्धा शुभस्वादिनी
रक्ता शोणितगन्धिनी नृपति भूः स्वादे कषाया च सा।
स्वादेऽम्ला तिलतैलगन्धिरुदिता पीता च वैश्या मही
कृष्णा मत्स्यसुगन्धिनी च कटुका शूद्रेति भूलक्षणम्।।

ऋग्वेद के आश्ववलायनगृह्यसूत्र के द्वितीय अध्याय की सप्तमी कण्डिका के वास्तुपरीक्षण में भी भूमिचयन के विषय में भी यही बताया गया है बालू की अधिकता वाली शुभ्र वर्ण वाली भूमि ब्राह्मण के वास्तु निर्माण के लिए उपयुक्त होती है। उसमें उसको मधुर स्वादिष्ट पदार्थ मिलते रहते हैं। क्षत्रियों के गृह–निर्माण के लिए बालू की अधिकता वाली लालवर्ण की भूमि उपयुक्त होती है तथा वैश्य के लिए बालू की अधिकता वाली पीले वर्ण की भूमि गृह–निर्माण के लिए शुभ बताई गयी है।

ऐसी भूमि गृह निर्माण के लिए चारों वर्णों के लिए प्रशस्त होती है जो स्वाद में मधुर एवं श्वेत वर्ण की हो। भूमि इतने स्नेह से युक्त हो जहाँ नकुल एवं सर्प भी प्रेमपूर्वक रहें अथवा भूमि का प्रभाव इतना सौमनस्य युक्त हो कि मूषक एवं विडाल भी दौर्मनस्य त्याग कर प्रेमपूर्वक निवास करें।

भूमि परीक्षण के पश्चात् सुख की कामना से चण्डिका के साथ गणेश, क्षेत्रपाल तथा अष्ट–दिक्पालों की पुष्प, धूप एवं बलि द्वारा पूजा करनी चाहिए।

मधुरा दर्भसंयुक्ता घृतगन्धा च या मही।
उत्तरप्रवणा ज्ञेया ब्राह्मणानां च सा शुभा।।
रक्तगन्धा कषाया च शरवीरेण संयुता।
रक्ता प्राक्प्रवणा ज्ञेया क्षत्रियाणां च सा मही।।
दक्षिणप्रवणा भूमिर्याऽम्ला दूर्वाभिरन्विता।
अन्नगन्धा च वैश्यानां पीतवर्णा प्रशस्यते।।
पश्चिमप्रवणा कृष्णा बैकुण्ठा काशसंयुता।
मद्यगन्धा मही धन्या शूद्राणां कटुका तथा।।

भारतीय वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में प्रायः यह विषय वर्णित है ब्राह्मणों के लिए मधुर, दर्भयुक्त, घृतगन्ध वाली, उत्तर की ओर ढलानयुक्त एवं श्वेत वर्ण वाली भूमि ब्राह्मणों के गृहनिर्माण में श्रेष्ठ बतायी गयी है।

रक्तगन्धवति, कषाय शरपत से युक्त, रक्तवर्ण वाली अम्ल, दूर्वायुक्त अन्नगन्ध वाली भूमि क्षत्रियों के लिए उपयुक्त है व दक्षिण की ओर ढलान वाली, अम्ल व दूर्वायुक्त पीली वर्ण वाली भूमि वैश्यों के लिए उपयुक्त है तथा पश्चिम की ओर ढलाऊ, कृष्ण, कटुरसयुक्त, मद्यगन्ध वाली व काश से युक्त भूमि शूद्रों के लिए प्रशस्त बतायी गयी है।

भूमि परीक्षा के लिए वास्तुशास्त्र में अनेक विधियाँ बताई गयी हैं। वर्णानुसार भूमि चयन के बाद भू–परीक्षा के लिए भूमि में एक हाथ का गड्ढा खोदकर खुदाई से प्राप्त मिट्टी से गड्ढे को भर देना चाहिए। यदि मिट्टी कम पड़े तो भूमि निष्कृष्ट फल देने वाली होती है। पूरी मिट्टी गड्ढे में भर जाय तो भूमि सामान्य फल देने वाली एवं गड्ढा पूर्ण भरने के बाद भी मिट्टी बच जाए तो भूमि उत्कृष्ट होती है। दूसरी खात–परीक्षा विधि इस प्रकार है भूमि में थोड़ा गड्ढा खोदकर वहाँ से सौ पद दूर जाना चाहिए एवं लौटकर गड्ढे के जल को देखना चाहिए। यदि गड्ढे में जल चौ. थाई से कम बच्चे तो भूमि अधम माननी चाहिए, यदि आधा बचे तो भूमि को मध्यम जानना चाहिए और यदि आधे से अधिक बचे तो भूमि को उत्तम कोटि का जानना चाहिए।

दानवराजमय द्वारा विरचित मयमतम् में खात–परीक्षा में यह विधि इस प्रकार बताई गई है सर्वप्रथम चयनित वास्तु (भूमि) के मध्य में एक हाथ गहरा, चौकोर, जिसकी दिशाएँ ठीक हो, दोषरहित गड्ढा खोदना चाहिये। यह गड्ढा सँकरा नहीं होना चाहिए तथा न ही बहुत गहरा होना चाहिये। इसके पश्चात् यथोचित विधि से पूजा करके तथा उस गड्ढे की वन्दना करने के पश्चात् सभी रत्नों से जल को युक्त करके बुद्धिमान मनुष्य को रात्रि के प्रारम्भ में गड्ढे में डालते हुये उसे जल से पूर्ण करना चाहिये। इसके पश्चात् पवित्र होकर सावधान मन से गड्ढे के पास भूमि पर कुछ बिछाकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ जाना चाहिये। उपवास करते हुये **"अस्मिन् वस्तुनि वर्धस्व धनधान्येन मेदिनी!"।।** इस मंत्र का जाप करना चाहिये तथा प्रार्थना करनी चाहिये **हे पृथ्वी, इस भूमि पर उत्तम समृद्धि स्थापित करें इसे धन–धान्य से वृद्धि प्रदान करो।** तत्पश्चात् बुद्धिमान स्थपति को दिन होने पर प्रथमतः उस गड्ढे की परीक्षा करनी चाहिये तथा जल बचा हुआ देख कर सभी प्रकार की सम्पत्तियों के लिये उस भूमि को निर्माण हेतु ग्रहण करना चाहिये।

यदि भूमि गीली रहे तो उस पर निर्मित गृह में विनाश होता है। यदि शुष्क रहे तो उसे गृह में धन–धान्य की हानि होती है। यदि उस गड्ढे के खोदने से निकली मिट्टी से भर जाए एवं पूरी मिट्टी उसमें समा जाय तो भूमि को मध्यम श्रेणी का समझना चाहिए। यदि मिट्टी से गड्ढा भर जाय एवं मिट्टी बच भी जाए अर्थात् मिट्टी अधिक हो तो भूमि उत्तम होती है, यदि गड्ढा बिना भरे एवं मिट्टी समाप्त हो जाए अर्थात् मिट्टी गड्ढा भरने में कम पड़े तो वह भूमि निम्नकोटि की होती है तथा उसे गड्ढे के मध्य में यदि

जल दाहिनी और घूम कर बहे तो इस प्रकार की भूमि सर्वसम्पत्ति को देने वाली होती है तथा इस विधि से परीक्षित भूमि को निर्माण–हेतु ग्रहण करना चाहिये। इस विधि से विविध प्रकार की भूमियों का ज्ञान करके व्यक्ति को ग्राम, अग्रहार, पूर्व, पत्तन, खर्वट, स्थानीय खेत, निगम एवं अन्य की स्थापना के लिये भूमि का ग्रहण करना चाहिए।

स्फुटिता च सशल्या च वाल्मीकारोहिणी तथा।
दूरतः परिहर्तव्या कर्त्तुरायुर्धनापहा।।
स्फुटिता मरणं कुर्यादूषरा धननाशिनी।
सशल्या क्लेशदा नित्यं विषमा शत्रुवर्धिनी।।
चैत्ये भयं गृहकृतो बल्मीके स्वकुले विपत्।
गर्तानां तु विनाशः स्यात्कूर्माकारे धनक्षयः।।

गृह निर्माण के लिए भूमि चयन में भूमि सूखने के कारण फटी हुई, हड्डी अमांगलिक पदार्थ से युक्त, दीमक, चींटी इत्यादि से भरी हुई, असमतल भूमि निवासकर्ता की आयु–धनादि का नाश करने वाली होती है। अतः ऐसी भूमि को दूर से ही त्याग देना चाहिए। फटी भूमि मरणभय देने वाली, ऊसर भूमि धननाश करने वाली होती है, शल्ययुक्त भूमि नित्य दुःख देने वाली होती है। असमतल भूमि शत्रुवर्धिनी, स्मारक या समाधिस्थलादि चैत्य भूमि भयकारिका होती है। दीमक–चींटी आदि से युक्त भूमि, अपने कुल में विपत्तियाँ लाने वाली होती है। गड्ढों वाली भूमि विनाश करने वाली तथा कछुए की आकार वाली भूमि धननाश करने वाली होती है। चयनित भूमि को हल से अनेक बार जोतकर चारों ओर से समतल करना चाहिए पुनः भूमि के चारों कोणों को मापना चाहिए। गृहनिर्माण वाली भूमि आयताकार अथवा वर्गाकार होनी चाहिए –

तत्सहस्रसीतं कृत्वा यथादिक्समचतुरस्त्रं मापयेत्।।
आयतं चतुरस्त्रं वा।।

वास्तुशास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए यह बात भी विचारणीय है कि भूमि–चयन में मन का प्रमाण भी अवश्य मानना चाहिये। जिस भूमि को देखने के लिए मन और नेत्रों को संतोष मिले एवं सुख की अनुभूति हो, वह भूमि उस व्यक्ति के लिए आवासादि के लिए शुभ होती है।

यदि गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश करते समय ज्योतिषशास्त्र के अनुसार शुभाशुभ मास, तिथि, वार, नक्षत्र आदि योगों का विचार भी कर लिया जाय तो ऐसे गृह में निश्चय ही गृहस्वामी को स्वास्थ्यलाभ, आत्मिक शांति, समपन्नता, ऐश्वर्य एवं धनादि की प्राप्ति होती है।

निःसंदेह भारतीय वास्तुशास्त्र अत्यन्त तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक विधि से गृह–निर्माण एवं गृह में निवास करने की विधि प्रस्तुत करता है, जो भारतीय वातावरण, परिस्थितियों एवं जीवन–दर्शन के सर्वथा अनुकूल है। यह शास्त्र मात्र विविध अचेतन सामग्र से संघटित गृह के निर्माण से ही नहीं, अपितु उसमें निवास करने वाले व्यक्ति के उत्तम स्वास्थ्य एवं समुचित जीवन–शैली से भी सम्बद्ध है। आज आवश्यकता इस बात की है कि सरकार प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र के मूलभूत सिद्धान्तों को सिविल इंजिनियरिंग के पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से सम्मिलित करे, जिससे सिविल इंजिनियरिंग के छात्र भारतीय वास्तुशास्त्र पर गौरव कर सकें और इसके अनुसार ही गृह–रचना का प्रारूप तैयार कर मानव कल्याण में अपना योगदान दे सकें।

संदर्भ

1. मयमतम्, द्वितीय अध्याय, श्लोक–1, पृ.सं. 4
2. मयमतम्, द्वितीय अध्याय, श्लोक–2, पृ.सं. 4
3.बृहद्वास्तुमाला, प्रथम प्रकरण, श्लोक–7, पृ.सं. 6
4.भगवद्गीता, अध्याय–4, श्लोक–13
5.बृहद्वास्तुमाला, श्लोक 4–5, प्रथम प्रकरण
6.भूमिपरीक्षणप्रकरणम्, वास्तुसार, श्लोक–1, पृ.सं. 12 अनूषरमविवदिष्णु भूम, ओषधिवनस्पतिवत्। आश्वलायन गृह्यसूत्र, सप्तम् कण्डिका, श्लोक–1–2, पृ.सं. 147
7.राजवल्लभमण्डनम्, प्रथम अध्याय, पृ.सं. 6–7
8.श्वेतं मधुरास्वादं सिकतोत्तरं ब्राह्मणस्य।लोहितं क्षत्रिस्य। मधुरास्वादं सिकतोत्तरमिति वर्तते। (आश्वलायन गृह्यसूत्र, सप्तम् कण्डिका 6–8, द्वितीय अध्याय, श्लोक 6–8, पृ.सं. 150–151
9.राजवल्लभमण्डनम्, श्लोक–15, पृ.सं. 7
10.भूमिपरीक्षणप्रकरणम्, वास्तुसार, श्लोक 4–7, पृ.सं. 13
11.मिश्रकलक्षणम्, प्रथम अध्याय, श्लोक 8–9,वास्तुसार मण्डनम् आयतत्त्वञ्च
12.राजवल्लभमण्डनम्, श्लोक 16–17, पृ.सं. 8
13-भूपरिग्रह, मयमतम्, श्लोक–14, अध्याय–4
14-भूपरिग्रह, मयमतम्, अध्याय चतुर्थ, पृ.सं. 17
15-बृहद्वास्तुमाला, मिश्रप्रकरण, श्लोक 79–81, पृ.सं. 39
16.आश्वलायन गृह्यसूत्र, सप्तम् कण्डिका 9–10, पृ.स. 151

****

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार गृह के उत्पात एवं शांति के उपाय

–सौरभ

शोधार्थी, पीएच.डी.

संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

उत्पात का सम्बन्ध मानव एवं मानव से भिन्न प्राणियों के साथ आदिकाल से ही रहा है। 'उत्पात' शब्द 'उद्' उपसर्गपूर्वक 'पत्' धतु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है, जिसके उछलना, कूदना, अनहोनी, आकस्मिक्–घटना, ग्रहण, भूकम्पादि विविध अर्थ होते हैं। वर्तमान समय में 'उत्पात' शब्द का प्रयोग प्रायः अशुभ घटना अथवा आकस्मिक घटना के लिए ही होता है, जबकि शास्त्रीय ग्रन्थों से यह स्पष्ट होता है कि ये उत्पात किसी आकस्मिक घटना अथवा अनिष्ट के ही सूचक नहीं हैं, अपितु कुछ उत्पात शुभसूचक भी होते हैं। उत्पात होने का कारण बताते हुये वराहमिहिर कहते हैं कि मनुष्यों के दुर्व्यवहार से पाप इकट्ठे होते हैं और उन पापों से उपद्रव (उत्पात) होते हैं।

बृहत्संहिता में दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम – ये तीन प्रकार के उत्पात बताये गये हैं। सूर्यादि ग्रह और नक्षत्रों के विकार से जो अनिष्ट की आशंका होती है, वह 'दिव्य उत्पात' कहलाता है। उल्कापात, दिशाओं का दाह (मण्डलों का उदय, सूर्य–चन्द्रमा के आसपास पड़ने वाले घेरे का दिखायी देना) आकाश में गन्धर्व–नगर तथा इन्द्रधनुषादि का दर्शन, रुक–रुक कर वर्षा का होना, अनावृष्टि (सूखा पड़ना) या अतिवृष्टि (वर्षा का अधिक होना) आदि 'अन्तरिक्षजन्य उत्पात' हैं तथा चलायमान वस्तु के स्थिर तथा स्थिर वस्तु के चलायमान होने का नाम 'भौम उत्पात' है। इनमें से कुछ उत्पात केवल गृह में ही प्रभावी होते हैं ; जबकि कुछ सार्वभौमिक होते हैं। गृह से सम्बंधित प्रमुख उत्पातों का विवेचन इस प्रकार हैं–

विकृत (क्षत–विक्षत) पक्षी, पाण्डुवर्ण कबूतर, सफेद उल्लू, काला कौआ आदि पक्षी यदि किसी के घर में गिरे तो उस घर में महान् उत्पात की संभावना रहती है। यदि गले की मालाएँ आपस में टकराने लगें, पैदा होते ही बाले के दाँत हों, देवताओं की मूर्तियाँ हँसती हुई सी दिखाई दें, मूर्तियों में पसीना दीख पड़े और घड़े में सर्प और मेंढक के बच्चों का जन्म हो जाय तो उस घर की गृहिणी पर छः मास पर विपत्ति आती है। घर पर या वृक्ष पर बिजली कड़कड़ाकर गिरने और आग की ज्वालाएँ दिखाई देने पर भी महान् उत्पात होता है। ये सभी सूर्यजन्य उत्पात माने गये हैं। इन सबकी शांति के लिए गृहस्वामी रविवार के दिन भगवान् सूर्य की प्रसन्नता–हेतू पूजा करे। तिल एवं पायस से **'ऊँ ह्रां ह्रीं ह्रौं सः सूर्याय नमः।'** इस मन्त्र द्वारा सात हजार आहुतियाँ प्रदान करे। वराह ने भी गृह, प्रधान वृक्ष, तोरण (पुरद्वार) या गृहद्वार पर पक्षियों के समुदाय का गिरना अशुभ फलदायी माना है।

यदि गृह में स्त्री–पुरुषों की निरन्तर लड़ाई, कोयल और उल्ले का रोना तथा ताड़ एवं सुपारी के वृक्ष एक साथ उत्पन्न हो जायँ तो उस घर में रहने वालों पर विपत्ति की संभावना होती है। दूसरे वृक्षों में अन्य वृक्षों के फल–फूल का दिखलाई देना भी अशुभ होता है। ये सभी उत्पात सामग्रह–जन्य हैं। इनकी शांति के लिए सोमवार के दिन सोम के निमित्त, दधि, मधु, घृत तथा पलाश आदि से **'ऊँ श्रां श्रीं श्रौं सः सोमाय नमः'** इस मंत्र से ग्यारह हजार आहुतियाँ देनी चाहिए।

यदि गृह में माष एवं जौ की ढेरियाँ अचानक लुप्त हो जायँ, दही, दूध, घी और पकवानों में खून दिखलाई पड़े, अचानक घर में आग जैसा लगना दिखाई दे, बिना बदल के ही बिजली चमकने लगे, घर के सभी पशु तथा मनुष्य रोगी से दिखाई पड़ें तो मंगल ग्रह से उत्पन्न उत्पात समझने चाहिये। इनसे राजा, मन्त्री तथा गृहस्वामी का विनाश होता है। ऐसे भयंकर उपद्रवों को देखकर मंगल की शांति के लिए दही, दूध, मधु घी से युक्त खैर और गूलर की समिधाओं से **'ऊँ क्रां क्रीं क्रौं सः भौमाय नमः'** इस मंत्र द्वारा दस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये।

गृह में यदि गौएं पूँछ उठाकर स्वयं दौड़ने लगें और कुत्ते तथा सूअर गृह पर चढ़ने लगें तो उस गृह की स्त्रियों को

भीषण क्लेश की आशंका होती है। गृहस्वामी का पूर्णतः मिथ्यावादी (झूठा) होना, घर में गौओं का चिल्लाना, पृथ्वी का हिलना, घर में मेंढक साँप का जन्म लेना – ये सभी उत्पात बुधग्रह–जन्य हैं। इनसे गृह के नष्ट होने की सम्भ. ावना होती है। इनकी शांति के लिए बुधवार के दिन दही, मधु, घी तथा अपामार्ग (पुठकडां) की समिधा एवं चरु से **'ऊँ ब्रां ब्रीं ब्रौं सः बुधाय नमः'** इस मंत्र द्वारा उन्नीस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये।

पशुओं का असमय में मिलन और उनसे जुड़वा सन्तान की उत्पत्ति, गृह स्तम्भ का अचानक टूट जाना, घर के आँगन में बिल्ली तथा मेंढक का नाखूनों से भूमि कुरेदना और इनका घर पर चढ़ना – ये सभी दोष जहाँ दिखाई दें, वहाँ छः महीने के भीतर ही घर का विनाश होता है। कोई प्राणी मर जाता है या कुटुम्ब में कलह होती है अथवा अनेक व्याधि ायाँ उत्पन्न होती हैं। ये सभी उत्पात बृहस्पति जनित हैं। इनकी शांति के लिए बृहस्पति के निमित्त **'ऊँ ग्रां ग्रीं ग्रौं सः गुरवे नमः'** इस मंत्र द्वारा शांति होम करना चाहिये।

घर में राक्षस द्वारा घड़े का जल पीने का आभास होना, शेर, शक्कर, तेल, चाँदी, ताण्डव–नृत्य, उड़द–भात, धान आदि का आभास होना तथा ताँबा, काँसा, लोहा, सीसा तथा पीतल आदि का रखा दिखाई देने का आभास होना, ऐसे उत्पात होने पर धननाश की सम्भावना रहती है और परिवार के सदस्यों को अनेक व्याधियाँ होती हैं। दाँतों की पंक्ति को छोड़कर दाँतों के ऊपर दाँत निकलना, घर में यदि बर्तनों में, घड़ों में बादल के गरजने की आवाज सुनाई दे, तो गृहस्वामी पर विपत्ति की सम्भावना होती है। ये सभी उत्पात शुक्र ग्रह जनित हैं। इनकी शांति के लिए शुक्रवार के दिन दही, मधु, घृतयुक्त शमीपत्र से **'ऊँ द्रां द्रीं द्रौं सः शुक्राय नमः'** इस मंत्र द्वारा सोलह हजार आहुतियाँ देनी चाहिये।

यदि आकाश में जलती हुई अग्नि दिखाई दे तो स्त्री–पुरुषों की हानि, सभी औषधियाँ और अन्न एवं शाक आदि रसविहीन हो जायँ; हाथी, घोड़े, मतवाले होकर हिंसक हो जायँ; गाय, भैंस आदि अचानक उत्पात मचाने लगें, गृह–द्वार में गोह और शंखिनी (प्रेतात्मा या कोई अप्सरा) प्रवेश करे तो इससे राजपीड़ा और धनहानि होती है। ये सभी उत्पात शनिग्रह जनित हैं। इनकी शांति के लिए विविध सस्यों तथा समिधाओं से शनिवार के दिन **'ऊँ प्रां प्रीं प्रौं सः शनये नमः'** इस मंत्र से तेईस हजार आहुतियाँ देनी चाहिये।

दक्षिण दिशा में यदि अपनी छाया अपने पैर के एकमद समीप आ जाए और छाया में दो या पाँच सिर दिखलाई दें अथवा छिन्न–भिन्न रूप में सिर दिखाई दे तो देखने वाले की सप्ताह के भीतर ही मृत्यु की आशंका होती है। कौआ, बिल्ली, तोता तथा कबूतर का मैथुन का दिखाई देना – ये राहु–जन्य उत्पात हैं। इनकी शांति के लिए दधि, मधु, घी, दूब, अक्षत आदि से **'ऊँ भ्रां भ्रीं भ्रौं सः राहवे नमः'** इस मंत्र से शनिवार या बुधवार अठारह हजार आहुतियाँ दें, वारुण होम भी करें।

यदि गृह में गीदड़, गृध, कौए आदि भीषण ध्वनि करते हों तथा भयंकर नृत्य करते हों तो भी मृत्यु की आशंका होती है। शाल, ताल, अक्ष (बहेड़े का पौधा), खैर वृक्ष, कमलादि यदि अचानक ही घर के अन्दर उत्पन्न हों तो ये सभी केतुग्रह जनित दोष हैं। इनकी शान्त्यर्थ **'ऊँ स्रां स्रीं स्रौं सः केतवे नमः'** इस मंत्र से दही, मधु, घी से सत्रह हजार आहुतियाँ देनी चाहिये।

यदि शाम के समय मुर्गा और हेमन्त ऋतु के प्रारम्भ में कोयल बोले तथा आकाश में बाज आदि माँस भक्षण करने वाले पक्षी गोलाकार मार्ग में प्रदक्षिणा क्रम से चलें तो ये भय देने वाले होते हैं।

गृह में मधु (शहद) का छत्ता, वल्मी (वमई) और कमलों की उत्पत्ति भी नाश का कारण बनती है। गृहद्वार के किवाड़, दीवार, स्तम्भ एवं ध्वजादि का दृढ़ होते हुये भी अचानक गिर जाना या भूमि का फट जाना भी अशुभ होता है।

गृह के द्वार पर यदि सांप प्रवेश करे तो गृहिणी का विनाश तथा द्वार पर दुर्गा पक्षी के द्वारा घोंसला बनाना अथवा उल्लू का बोलना भी विनाश का कारण होता है।

यदि कुत्ते हड्डी या शव का कोई भी अंग घर में ले आयें तो भी अनिष्ट की आशंका होती है।

गृह में तेल, घी, भात, चर्बी अथवा खून की वर्षा हो तो भी गृहेश को दुःख तथा अचानक गीत व बाजे का शब्द होना भी कल्याणकारक नहीं होता है।

गृह में यदि दूध बार–बार गिरता हो, तो भी उस घर में विवाद होता है। गृह में अकस्मात् बिल्ली का रोना अथवा झगड़ना किसी दुःखद घटना अथवा भारी विपत्ति का सूचक है। यदि कौआ श्मशान भूमि से माँस अथवा हड्डी आदि उठाकर भवन में गिराता है तो घर में अमंगल, विवाद अथवा चोरी की आशंका होती है। प्रातः कौए की वाणी प्रिय–आगमन का संकेत है, मध्याह्न में अतिथि–दर्शन की सूचक, किन्तु रात्रि में अचानक कौए की ध्वनि दुःखदायिनी होती है।

गृह के सामने रात्रि में गदहे का रोना शत्रुओं से भय एवं महादुःख का सूचक तथा मुख्य द्वार पर छिपकलियों का निरंतर घूमना बीमारी एवं विवाद को जन्म देने वाला है। गृह के मुख्य द्वार पर अचानक गाय का रंभाना सौभाग्य प्राप्ति का सूचक है। गृह में छत, दीवार या किसी अन्य स्थान पर लाल चींटियों के समूह का रेंगना सम्पत्ति–हानि का सूचक है। पंख वाली बड़ी काली चींटियों का रेंगना गृह में अचानक क्लेश एवं अशांति की सम्भावना को प्रकट करता है। गृह में सामान्य काली चींटियों का समूह बनाकर रहना या रेंगना गृहस्वामी के निरन्तर विकास का सूचक है। गृह में काले चूहों का होना रोगवृद्धि का सूचक है। यदि जल से भरा हुआ नया घड़ा अकारण हाथ से छूट जाय या फूट जाय तो अचानक आर्थिक कठिनाई आती है। गृह में रात्रि अथवा सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय में अदृश्य ध्वनि सुनाई दे तो वहाँ प्रेतबाध जानकर उसकी शांति करनी चाहिये।

गृह में बार–बार वस्त्रों का जलना कष्टों से संघर्ष का सूचक है तथा यदि गृह में बार–बार बालों के गुच्छे गिरें तो परिवार में त्वचा रोग के संक्रमण की सम्भावना होती है। गृह में बिल्ली की सन्तानोत्पत्ति होना सम्पत्ति–प्राप्ति का सूचक और कुत्ते का रोना सम्पत्ति–हानि का प्रतीक है।

जिस गृह में गाय स्वयं दूध पीने लगे तो उस घर के स्वामी पर ऋण होने की आशंका होती है तथा गृह में अचानक ऊँट का प्रवेश भी निर्धनता का सूचक है। यदि गृह में चिड़ियों का विलाप हो तो वहाँ सर्पादि का प्रवेश अथवा अन्न–पान में विष की आशंका होती है। गृह–द्वार पर यदि गज अपनी सूंड उठाये तो विजय का सूचक, किन्तु गज का चिंघाड़ना महाभय का प्रतीक है।

रात्रि नींद में दाँतों का किटकिटाना भी अशुभ माना गया है। गृहपति द्वारा दाँत किटकिटाने से व्यावसायिक हानि, गृहिणी द्वारा दाँत किटकिटाने से प्राकृतिक–प्रकोप एवं सन्तान द्वारा दाँत बजाने पर घोर कलह की सम्भावना तथा पड़ोसियों से शत्रुता होती है।

यदि किसी गृह में जलते हुए अंगारे गिरें तो शत्रु–प्रेरित तांत्रिक–बाधा समझें। जहाँ अर्ध–रात्रि में स्त्री–रोदन (रोना) सुनाई दे तो उस गृह से लक्ष्मी का पलायन समझना चाहिये। जिस गृह में सहसा परछाइयाँ दिखाई देने लगें तो उस परिवार को नाना व्याधियाँ ग्रस्त करती हैं।

वराहमिहिर का कथन है कि कुछ उत्पात ऋतुओं के अनुसार स्वाभाविक (Natural) होते हैं, अतः वे दोष उत्पन्न करने वाले होते हैं; ऐसे उत्पातों का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि वज्र (बिजली), अशनि (पत्थरों की वर्षा या उल्कापात), भूकम्प, प्रकाशमय सन्ध्या, निर्घात (आकाश में हवा के झोकों के टकराने का शब्द), सूर्य–चन्द्र का परिवेश, धूली, धूम, रक्त वर्ण के रवि का उदयास्त, वृक्षों से भोजन, मधुरादि रस और तेल आदि की उत्पत्ति, गाय और पक्षिओं में काम (sex) की वृद्धि – ये सभी उत्पात चैत्र और वैशाख मास में कल्याणकारी होते हैं।

सदा उल्कापिण्ड के टूटकर गिरने से मलिन आकाश, सूर्य–चन्द्र के पीले मण्डल, अग्नि के बिना ज्वाला का शब्द, ध ूप, धूली और वायु के आहत ला कमल की तरह लोहित वर्ण की सन्ध्या, तरङ्ग युक्त समुद्र की तरह आकाश एवं नदियों में जल का सूखना – ये सब उत्पात ग्रीष्म (ज्येष्ठ और आषाढ़) में शुभ होते हैं।

इन्द्रधनुष सूर्य–चन्द्र का परिवेश, बिजली कड़कना और सूखे वृक्षों में अङ्कुर निकलना, पृथ्वी का काम्पना, उलटना, स्वरूप बदलना, शब्द करना, फटना, सरोवरों, नदियों, बावड़ी, कुओं एवं तालाब आदि में अधिक जल का होना, पर्वत और गृहों का चलायमान होना – ये सभी उत्पात वर्षा ऋतु में हों तो शुभ हैं।

दिव्यस्त्री, गन्धर्व, रथ तथा चकित करने वाली वस्तुओं का दर्शन, दिन के समय ग्रह–नक्षत्र आदि का दर्शन, वन तथा पर्वतों में गीत और वाद्यों की ध्वनि का सुनाई देना, धन आदि अन्न की वृद्धि और जल की हानि – ये सभी उत्पात शरद् ऋतु में होने पर शुभ हैं।

वायु तथा तुषार (ओस) में ठण्डापन, मृग और पक्षियों का शब्द सुनाई देना, राक्षस, यक्ष, आदि प्राणियों का दर्शन होना, मनुष्य के बिना वाणी का आभास होना, अन्धकारयुक्त आकाश, आदि – ये सभी उत्पात हेमन्त ऋतु में हों तो शुभ हैं।

हिमपात, वायु–सम्बंधी उत्पात, भयानक प्राणियों का आश्चर्य कराने वाला दर्शन, काले अञ्जन की तरह रात और उल्क. ापात से पीला आकाश, स्त्रियों के गर्भ से नाना प्रकार के प्राणियों की उत्पत्ति, गाय, बकरी, घोड़ा, मृग और पक्षियों के गर्भ से भिन्न जाति के प्राणियों की उत्पत्ति, वृक्षों के पत्तों, लताओं और अंकुरों में परिवर्तन होना – ये सब उत्पात शिशिर ऋतु में होने पर शुभ होते हैं।

उपर्युक्त ऋतुस्वभाव जनित सभी उत्पात अपने ऋतु में शुभ फल देने वाले होते हैं, परन्तु अन्य ऋतु में दिखलाई देने पर तो अति कष्टकारक होते हैं।

संदर्भ .

1)सं.हि.को.को. (आप्टे), पृ. 189
2)अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसञ्चयाद् भवति। संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्त उत्पाताः।। बृ.सं., 46/2
3)दिव्यं ग्रहक्षैवकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः।
गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदान्तरिक्षं तत्।।
भौमं चरस्थिर भवं .....। बृ.सं., 46/4–5
4)मा.पं., वि.सं. 2050, पृ. 57
5)बृ.सं., 46/70
6) मा.पं., वि.सं. 2050, पृ. 57
7)मा.पं., वि.सं. 2050, पृ. 57–58
8)मा.पं., वि.सं. 2050, पृ. 58
9)कुक्कुटरुतं प्रदोषे हेमन्तादौ च कोकिलापाः।
प्रतिलोममण्डलचराः श्येनाद्याश्चाम्बरे भयदाः।। बृ.सं. 46/69
10)गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु च पक्षिसङ्घसम्पातः।
मधु वल्मीकाम्भोरुहसमुद्भवश्चापि नाशाय।। बृ.सं., श्लोक–70
11)वा.रा.व., 10/20–21
12)द्वारे गृहस्यापि विशेद्भुजंगस्तदा विनाशं कुरुते गृहिण्याः।
तथैव दुर्गा प्रकरोति नीडं रटत्युलूकोऽपि विनाशहेतुः।। वा.रा.व ., 10/22
13)श्वभिरस्थिशवावयवप्रवेशनं मन्दिरेषु मरकाय। बृ.सं. 46/71
14)रोगाय तैलघृतभक्तवसादिधारा दुःखंभवेद्गृहपतेर्यदि रक्तध ाारा।
वादित्र गीतनिनदो भवनेष्वकस्मात् संजायते यदि तदा कथयत्यसौख्यम्। वा.रा.व., 10/23
15)अकस्मात् क्षरति क्षीरं गेहे यदि पुनः पुनः।
विवादो जायते तत्र ह्यचिन्त्यश्च भयंकर।। वा.वि., 9/22
16)विडालो रौति चेद गेहे, घटना स्यात्तु दुःखदा।
मार्जारकलहो यत्र तत्राऽऽनीय काकस्तु पातयेत्
अमंगलं विवादं च स्तेयशंकां हि सूचयेत्।।
प्रातः काकस्य वाणी या, प्रियाऽगमनसूचिका।
मध्याह्नेऽतिथिदर्शिकन्याकस्मिका दुःखदा निशि।। वा.वि., 9/24–26
17)वा.वि., 9/33–39
18)विमुक्तः खण्डितो वा स्याज्जलपूर्णो घटो नवः
धनहानिर्भवेद् गेहे ह्यचिन्त्या दुःखदा तदा।।
अदृश्यः श्रूयते यत्र, ध्वनिः कश्चिद् गृहे यदा।
प्रेतबाधं विजानीयात् शमोपायान् विचारयेत्।। वा.वि. 9/47–48
19)दन्दह्यते च वस्त्राणि भूयो भूयो गृहे यदि।
नानकष्टानि तस्माद्धि निपतन्ति निवासिषु।।
समापतन्ति गेहे चेत्केशगुच्छं कदाचन।
चर्मरोगेण कष्टेन ग्रस्थः स्युश्च निवासिनः।। वा.वि., 9/51–52
20)मार्जारी–प्रसवाद् गेहे, सहसाऽऽयाति सम्पदा।
रोदनात्सारमेयस्य सहसा याति सम्पदा। वा.वि., 9/58
21)वा.वि., 9/60–62
22)वा.वि., 9/65–66
23)वा.वि., 9/71–73
24)बृ.सं., 46/83–96

****

भारतीय परिवेश में लैंगिक असमानता- विवाह, परिवार और समुदाय में महिलाओं पर हिंसा (एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण)

-डॉ संगीता रावल ,
असिस्टेंट प्रोफेसर (समाजशास्त्र)
एम ए एम फिल , पी.एचडी (समाजशास्त्र), एम ए (एजुकेशन) एमड
श्री द्रोणाचार्य पीजी कॉलेज दनकौर उत्तर प्रदेश

सार संक्षेप महिलाओं के विरुद्ध खुलेआम की जाने वाली हिंसा, उनके साथ भेदभाव और इन सबका नकारा जाना जेंडर पर आधारित असमान सम्बन्धों का एक मुख्य हिस्सा हैं। इसमें शोषण, पक्षपात, सामाजिक और आर्थिक ढाँचो को ज्योंका त्यों बनाए रखने का प्रयास और एक आतंक और डर का माहौल बनाना भी शामिल है। इन सभी को अपनी सामाजिक और आर्थिक शक्तियों के आपसी समाज में विवाह्व और परिवार को स्वाभाविक, शाश्वत और पवित्र समझा जाता है। परन्तु इन व्यवस्थाओं के सैद्धान्तिक और भौतिक पहलुओं को समझना आवश्यक है। सैद्धान्तिक तौर पर, विवाह और परिवार की व्यवस्थाओं ने इनमें निहित सम्बन्धों को कुछ खास अर्थ दिए , इन अर्थो ने जेंडर के आपसी सम्बन्धों और शाक्तियों की असमानता को न केवल धुंधला किया बल्कि इन्हें मान्यता प्रदान की। बेटों को प्राथमिकता देने की प्रथा, बेटियों को बोझ और एक समुदाय और परिवार की 'इज्जत' समझने का विचार, श्रम का जेंडर के आधार पर विभाजन, और महिलाओं की पत्नी, माँ और परिवार में सबका ध्यान रखने वाले व्यक्ति की भूमिका ने महिलाओं के स्तर को पुरुषों से नीचे रखा है। इसके अलावा असमान सम्पत्ति अधिकारों और परिवार के संसाधनों के बंटवारे में महिलाओं को न के बराबर एक होने के चलते महिलाएँ परिवार पर आश्रित रहती है। जहाँ अजन्में बच्चे के लिंग निर्धारण का बढ़ता इस्तेमाल समाज में बेटी को बोझ समझने वाली धारणा के कारण है। सामाजिक इसलिए क्योंकि वह एक परिवार की 'इज्जत' होती है जिसकी उसके परिवार को उसका विवाह होने तक रक्षा करनी पड़ती है। पितृसत्तात्मक ढाँचे में यह सुनिश्चित किया जाता है कि महिलाओं की स्थिति नीची बनी रहे। वही भारत में 'जाति' की व्यवस्था को बनाए रखने और उसे आगे बढ़ाने के लिए अपने ही गोत्र में विवाह की प्रथा पर जोर दिया जाता, क़ाबू रखा जाता बड़ी सावधानी से। इस बात पर है कि केवल कुछ ही जाति समूहों के लड़के-लड़कियों के बीच में विवाह किए जाएँ। NCRB के विश्लेषण ने दर्शाया कि पतियों द्वारा मारपीट और दहेज से जुड़ी हिंसा महिलाओं के साथ होने वाले अपराधो का कुल 36 प्रतिशत हिस्सा है। वही NCRB के 2007-2011 के आँकडे यह भी बताते हैं कि हर एक घंटे में दहेज के लिए एक महिला की हत्या होती है। घेरलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम जो 2005 आया उसने न केवल इस बात को स्वीकारा कि महिला पीड़ितों । सरवाइवरों के लिए एक ऐमें क़ानून की आवश्यकता है जो उन्हें हिंसा से सुरक्षा प्रदान करे बल्कि यह सभी ने माना कि उन्हें ऐसे माध्यम भी चाहिए जिसका इस्तेमाल कर सकें। इज्जत बचाने के लिए किए अपराध' इस वाक्य में महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा की एक लम्बी सूची निहित है। इसमें महिलाओं को अपनी मर्जी से विवाह करने या सम्बन्ध बनाने से रोकने के लिए की जाने वाली मारपीट, उत्पीड़न ,कैद करके रखना और हत्याएँ शामिल है। ये अपराध अक्सर परिवार या समुदाय के सदस्यों द्वारा किए जाते हैं। यह विचार बनाकर कि महिलाओं के ऐसा करने से 'इज्जत को खतरा पैदा हुआ है, इन अपराधों को सामाजिक मान्यता दिलाई जाती है।परिवारों में मौजूद लैंगिक भेदभाव के कारण लड़कियों (5) पर हिंसा और उन्हें मारने के चलन को महिला भ्रूणहत्या,और शिशु हत्या की प्रथाओं में देखा जा सकता है2001 और 2011 की जनगणना रिपोर्टों से लिंग अनुपात में गिरावट सामने आई। इससे पहले यह साबित हुआ कि कानून महिला भ्रूण हत्या की प्रथा को रोकने में कुछ ख़ास सफल नहीं रहा। वे राज्य जहाँ पहले महिला भ्रूण और शिशु हत्या का कोई इतिहास नहीं था या जहाँ पितृसत्तात्मक विचारों और लड़कियों के साथ अहम है। साथ-ही-साथ, 'इज्जत' का विचार जो बहुत से समुदायों जैसे हिन्दू, सिख और मुस्लिम समुदायों में बहुत मूल्यवान है हमेशा सम्पत्ति और प्रभुत्व बनाए रखने के काम ही नहीं आता ।यह साबित करता है कि किस तरह एक पितृसत्तात्मक ढाँचा महिलाओं का जीवन नियंत्रित कर उन्हें भी इस हिंसा में भागीदार बना देता है। महिलाओं की आवाजाही औरयौनिकता पर सख़्त और अक्सर हिंसात्मक निगरानी और साथ ही परिवार और समाज की

'पवित्रता' और 'परिवार की इज्जत' जैसी धारणाएँ यह सुनिश्चित करती है कि महिलाएँ घर और परिवार में नियमित तौर पर होने वाली हिंसाको चुपचाप सहन कर सकें। "महिलाओं की यौनिकता का नियमन एक सांस्कृतिक भागीदार है। और जबरन विवाह से लेकर 'इज्जत' बचाने के लिए की जाने वाली हत्याओं जैसी हिंसा इस नियमन को लागू करने का एक ज़रिया है। महिलाओं के विरुद्ध खुलेआम की जाने वाली हिंसा, उनके साथ भेदभाव और इन सबका नकारा जाना जेंडर पर आधारित असमान सम्बन्धों का एक मुख्य हिस्सा हैं। इसमें शोषण, पक्षपात, सामाजिक और आर्थिक दाँचो को ज्यों का त्यों बनाए रखने का प्रयास और एक आतंक, और डर का माहौल बनाना भी शामिल है। इन सभी को अपनी सामाजिक और आर्थिक शक्तियों के आपसी समाज में विवाह्न और परिवार को स्वाभाविक, शाश्वत और पवित्र समझा जाता है। परन्तु इन व्यवस्थाओं के सैद्धान्तिक और भौतिक पहलुओं को समझना आवश्यक है। सैद्धान्तिकतौर पर, विवाह और परिवार की व्यवस्थाओं ने इनमें निहित सम्बन्धों को कुछ खास अर्थ दिए । इन अर्थोंने जेंडर के आपसी सम्बन्धों और शाक्तियों की असमानता को न केवल धुंधला किया बल्कि इन्हें मान्यता भी प्रदान की। बेटों को प्राथमिकता देने की प्रथा, बेटियों को बोझ और एक समुदाय और परिवार की 'इज्जत' समझने का विचार, श्रम का जेंडर के आधार पर विभाजन, और महिलाओं की पत्नी, माँ और परिवार में सबका ध्यान रखने वाले व्यक्ति की भूमिका ने महिलाओं के स्तर को पुरुषों से नीचे रखा है। इसके अलावा असमान सम्पत्ति अधिकारों और परिवार के संसाधनों के बंटवारे में महिलाओं के न के बराबर एक होने के चलते महिलाएँ परिवार पर आश्रित रहती है। जहाँ अजन्में बच्चे के लिंग निर्धारण का बढ़ता इस्तेमाल समाज में बेटी को बोझ समझने वाली धारणा के कारण है। सामाजिक इसलिए क्योंकि वह एक परिवार की 'इज्जत' होती है जिसकी उसके परिवार को उसका विवाह होने तक रक्षा करनी पड़ती है। पितृसत्तात्मक ढाँचे में यह सुनिश्चित किया जाता है कि महिलाओं की स्थिति नीची बनी रहे। वही भारत में 'जाति' की व्यवस्था को बनाए रखने और उसे आगे बढ़ाने के लिए अपने ही गोत्र में विवाह की प्रथा पर जोर दिया जाता, क़ाबू रखा जाता । बड़ी सावधानी से इस बात पर है कि केवल कुछ ही जाति समूहों के लड़के-लड़कियों के बीच में विवाह किए जाएँ

बीज शब्द - घरेलू हिंसा और अनुपात, कानूनऔर समाधान,भ्रूण हत्या, क़ानून का अनुभव,।

घरेलू हिंसा -चूंकि घरेलू हिंसा घरों में होती है इसका अनुपात और इसकी प्रबलता को भापना इसलिए भी मुश्किल रहा है क्योंकि भारतीय परिवेश में महिलाएँ इसके बारे में खुले तौर पर बात करने से हिचकिचाती हैं और पुलिस स्टेशन में इसकी रिपोर्ट करने से भी कतराती है। विधि, न्याय व कॉरपोरेट मामलों के मंत्रालय का अनुमान है कि 70 प्रतिशत से अधिक घरों में घरेलू हिंसा होती है। परन्तु ऐसे मामले शहरी घरों मे से केवल 5 प्रतिशत हैजो पुलिस
मै रिपोर्ट किए जाते है। जहाँ तक बात ग्रामीण क्षेत्रो की है तो वहाँ ऐसे मामला को और कम रिर्पोट किया जाता है। राष्ट्रीय सर्वेक्षणों जैसे कि राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-3) में जो रिपोर्ट किया जाता है उसके राष्ट्रीय रिवारस्वास्थ्य सर्वेक्षण में जो आंकडे अक्सर वे भी मेल नहीं खाते। ऐसे हालात में भारत मे घरेलू हिंसा की असली पूरी जानकारी का अनुमान लगा पाना बहुत मुश्किल हो जाता है। घरेलू हिंसा की व्यापकता पर मौजूद आँकड़े इस विषय को असलियत नहीं बताते। एक राष्ट्रीय स्तर पर किए गए सर्वेक्षण के अनुसार अपने जीवनकान में। एक महिला शारीरिक, शोषण की घटना की शिकार होती है।50 प्रतिशत महिलाएं मानसिक हिंसा, जबकि 15 प्रतिशत महिलाएं जो घरेलू हिंसा की शिकार होती है, परिवार की 'इज्जत को बनाए रखने के लिए इन मामला में मदद नहीं मांगती । एक अन्य अध्ययन ने बताया कि हर एक घंटे में पाँच महिलाएँ घरेलू हिंसा सहती है । ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि भारत में हर पाँच विवाहित महिलाओं। 3 में यह से एक 15 साल की उम्र से घरेलू हिंसा की शिकार होती है। इस रिपोर्ट में यह भी सामने आया कि 56 प्रतिशत महिलाएँ पतियों द्वारा हिंसा को सही मानती है। NCRB के विश्लेषण ने दर्शाया कि पतियों द्वारा मारपीट और दहेज से जुड़ी हिंसा महिलाओं के साथ होने वाले अपराधो का कुल 36 प्रतिशत हिस्सा है। वही NCRB के 2007-2011 के आँकडे यह भी बताते हैं कि हर एक घंटे में दहेज के लिए एक महिला की हत्या होती है।

कानूनों और समाधान प्रदान करने की माँग 1980 के

दशक में परिवार में होने वाली हिंसा से निपटने के लिए दो महत्वपूर्ण कानून लाए गए - दहेज़ निषेध संशोधन कानून, 1984 और भारतीय दंड संहिता में सेक्शन 498ए और 304 बी जोड़ने के लिए किए गए दो संशोधना इन संशोधनों ने पहली बार हिंसा को क़ानून और समाज में पहचान दी जो महिलाएँ अपने घरों में झेलती हैं। सेक्शन 498ए ने एक महिला पर उसके पति और उसके परिवार के सदस्यों द्वारा की गई हिंसा को अपराध के दायरे में डाला। इसका अर्थ यह था कि केवल क़ानूनी तौर पर विवाहित स्त्री की ऐसी कोई शिकायत कर सकती थी। ऐमा मुख्यतः इसीलिए था क्योंकि ये कानून खुद दहेज से जुड़ी हिंसा और हत्याओं पर हुए आन्दोलनों का नतीजा थे। इसीलिए ये अविवाहित, विधवा और पति से अलग रहने वाली महिलाओं पर परिवार में होने वाली हिंसा को नहीं समझ पाए। गीतांजलि गांगुली के अनुसार 1980 के दशक के कानूनी वाद-विवादों में अविवाहित महिलाओं पर परिवार में होने वाली हिंसा पर चर्चा का न होना कोई संयोरा नहीं था। उनके अनुसार यह अन्भाव यह दर्शाता है कि महिलाओं की विवाह के बन्धन में न बंधे होने की छवि एक असुविधा, एक बेचैनी पैदा करती है।"

घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा अधिनियम जो 2005 आया उसने न केवल इस बात को स्वीकारा कि महिला पीड़ितों। सरवाइवरों के लिए एक ऐमें क़ानून की आवश्यकता है जो उन्हें हिंसा से सुरक्षा प्रदान करे बल्कि यह न्भी माना कि उन्हें ऐसे माध्यम भी चाहिए इस्तेमाल कर सकें

जिनसे वे इस कानून का 'इज्जत' बचाने के लिए किए जाने वाले अपराध

इज्जत बचाने के लिए किए अपराध' इस वाक्य में महिलाओं के विरुद्ध होने वाली हिंसा की एक लम्बी सूची निहितहै। इसमें महिलाओं को अपनी मर्जी से विवाह करने या सम्बन्ध बनाने से रोकने के लिए की जाने वाली मारपीट,उत्पीड़न कैद करके रखना और हत्याएँ शामिल है। ये अपराध अक्सर परिवार या समुदाय के सदस्यों द्वारा किए जाते हैं। यह विचार बनाकर कि महिलाओं के ऐसा करने से 'इज्जत को खतरा पैदा हुआ है इन अपराधों को सामाजिक मान्यता दिलाई जाती है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में अपनी मर्जी से विवाह करने और सम्बन्ध बनाने से जुड़ी हिंसा को समझने के लिए जाति प्रन्याके सामाजिक और सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य को न्भी समझना जरूरी है। यह प्रथा जन्म के आधार पर निर्धारित होने समूहों के समाज से ऊँची और नीची जाति में वर्गीकरण पर आधारित है। ऐतिहासिक रूप से इन समूहों की सामाजिक स्थिति और ताकत भूमि और अन्य लाग्भकारी स्त्रोतों पर इनके नियंत्रण में जुड़ी हुई है।

विवाह की ऐसी प्रयाएँ जिनमें केवल कुछ ही जातियों के बीच विवाह होता है, को बड़े ध्यान से आगे बढ़ाया जाता है। इनका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होता है कि जाति प्रथा बनी रहे। और 'इज्जत' का विचार इस अन्तः जातीय सिस्टम में सामाजिक ओहदे और प्रभुत्व के भौतिक ढाँचे को बनाए रखने के लिए

बेटियों की उनके जन्म से पहले हत्या..:-

परिवारों में मौजूद लैंगिक भेदभाव के कारण लड़कियों (5) पर हिंसा और उन्हें मारने के चलन को महिला भ्रूण हत्यऔर शिशु हत्या की प्रथाओं में देखा जा सकता है। बच्चे के जन्म से पहले उसकी लिंग जाँच की तकनीक के आने के बाद से, महिला भूण हत्या यानी, महिलाओं को उनके जन्म से पहले जानबूझकर मार देने में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। इसके कारण विंग अनुपात काफी बिगडा है और समाज में महिलाओं के स्तर व उनके हालात पर बुरा प्रभाव पड़ा है) 6 वर्ष तक के बच्चों में लिंग अनुपात जो 2001 की जनगणना के अनुसार प्रति 1000 लड़को पर 927 था वह 2011 में गिरकर 914 रह गया। हालाँकि बेटियों की उनके घरों में व्यवस्थित तरीके से होने वाली उपेक्षा को अक्सर 5 वर्ष से कम उम्र की लडकियो की ऊँची मृत्यु दर का कारण बताया जाता है; परन्तु महिला भ्रूण हत्या के चलन के बने रहने और इसमें और स्कैन केन्द्रों में हुई बढोतरी पर हुए स्वतंत्र सूक्षम अध्ययन इस ओर इशारा करते हैं कि महिला भ्रूण हत्या की प्रथा के दो चरण है : भ्रूण के लिंग का पता लगाना और यदि भूण मनचाहे लिंग का नहीं हो तो उसे नष्ट कर देना।

क़ानून का अनुभव

2001 और 2011 की जनगणना रिपोर्टों से लिंग अनुपात में गिरावट सामने आई। इससे पहले यह साबित हुआ कि कानून महिला भ्रूण हत्या की प्रथा को रोकने में कुछ ख़ास सफल नहीं रहा। वे राज्य जहाँ पहले महिला भ्रूण और शिशु हत्या का कोई इतिहास नहीं था या जहाँ पितृसत्तात्मक विचारों और लड़कियों के साथअहम है। शाम्य-डी-साथ, 'इज्जत' का विचार जो बहुत से समुदायों जैसे हिन्दू, सिख और मुस्लिम समुदायों में बहुत मूल्यवान है हमेशा सम्पत्ति और प्रभुत्व बनाए रखने के काम ही नहीं आता । गौरव सेनी (25) और मोनिका डागर (21) ने 6 जुलाई, 2009 को एक आर्य समाज मन्दिर में विवाह किया। मोनिका के भाई नितिन कुमार ने पुलिस में शिकायत दर्ज की। पुलिस ने गौरव को अपहरण के इल्ज़ाम में गिरफ्तार करजेल में डाल दिया। गौरव ने इस बात सन्त देने के बावजूदकि वह का पक्का और मोनिका मोना वयस्क थे और कानूनी तौर पर विवाहित थे, 32 दिन खेल में बिताहा मोनिका को उसक परिवार के बारा गौरव के खिलाफ बयान देने घर बजेबर किया गया। बाद में मोनिका की अस्वाभाविक धलात में मौत होने के बावजूद, पुलिस ने मोनिका की अस्वाभाविकहालात में मौत होने के बावजूद। की परिवार की बात मानल पुलिस - मोनिका छाए उन पर सेक्शन 302 के अधीन कोई मामला दर्ज नहीं किया और लड़की की मौत की जांच पड़ताल नहीं की।भारत में हर साल 'इज्जत' बचाने के लिए किए जाने वाले अपराधो के लगभग 1000 मामले रिपोर्ट होते है। अधिकतर मामलों में जाति की शुद्धता और प्रभुत्व बनाए रखने के लिए हिंसा की जाती है। शक्ति वाहिनी ने पंजाब उत्तर प्रदेश और हरियाणा में 'इज्जत 'बचाने के लिए हुए अपराधो के 560 मामलों का अध्ययन किया। इनमे से 83 प्रतिशत अन्तर्जातीय विवाह के मामले थे। इस हिंसा से प्रभावित लोगों में अधिकतर गरीब और निम्न जाति के परिवार थे ।की कोई जगह नहीं थी, वहाँ ये कुप्रथा अब दिखने लगी है। हालांकि एक महिला के गर्भपात करने के (१) अधिकार को समर्थन मिलना चाहिए, परन्तु लिंग जाँच कराके महिला के गर्भपात करने के अधिकार को समर्थन मिलना चाहिए, परन्तु लिंग जाँच कराके महिला भूणों का गर्भपात एक भेदभाव और जेंडर पर आधारित हिंसा से मश कृत्य है। एक आर्थिक धारणा कि महिलाओं की संख्या में कमी समाज में उनका महत्त्व बढ़ा देगी, इस मामलेमें गलत साबित हुई है। ऐसा इसलिए हुआ है क्योंकि समाज के संसाधनो और चलनों पर पुरुषों का सामाजिक,आर्थिक और राजनीतिक नियंत्रण रहा है। ये, बुनियादी शक्तियाँ अन्मी भी पुरुषों के पास हैं और महिलाएँ इनसेवंचित हैं।

आगे के सवाल.. :-

ऊपर दिए गए. आँकड़े महिलाओं पर उनके लिए सुरक्षित समझी जानी वाली जगह यानी धरों में उन पर होने वाली हिंसा के पैमाने और विस्तार की ओर इशारा करते हैं। साथ ही इसका महिलाओं पर सार्वजनिक क्षेत्र में होने वाली हिंसा पर असर भी साफ है जो सार्वजनिक स्थानों को महिलाओं के लिए असुरक्षित कर देता है और उनके जीवन \पर और अधिक नियंत्रण स्थापित कर लेता है। महिलाओं द्वारा अनुभव की जाने वाली जेंडर पर आधारित हिंसा यह भी दर्शाती है कि यह हिंसा घरों, गलियों, जाति, समुदाय और नस्ली हन्छों वाले स्थानों से लेकर देशों की सीमाओं पर होने वाले युद्धों तक में पाई जाती है और हिंसा के ये सभी प्रकार आपस में जुड़े हुए हैं। इसके झलावा, यह सत्य कि महिलाए महिलाओं पर हिंसा भड़काने और करने का ज़रिया भी की हैं। यह साबित करता है कि किस तरह एक पितृसत्तात्मक ढाँचा महिलाओं का जीवन नियंत्रित कर उन्हें भी इस हिंसा में भागीदार बना देता है। महिलाओं की आवाजाही और यौनिकता पर सख़्त और अक्सर हिंसात्मक निगरानी और साथ ही परिवार और समाज की 'पवित्रता' और 'परिवार की इज्जत' जैसी धारणाएँ यह सुनिश्चित करती है कि महिलाएँ घर और परिवार में नियमित तौर पर होने वाली हिंसा को चुपचाप सकें। "महिलाओं की यौनिकता का नियमन एक सांस्कृतिक भागीदार है। और जबरन विवाह से लेकर 'इज्जत' बचाने के लिए की जाने वाली हत्याओं जैसी हिंसा इस नियमन को लागू करने का एक ज़रिया है। ये अपराध इस सोच को बल देते हैं कि समुदायों के लिए परिवार प्रजननात्मक यौनिकता का और कानून और व्यवस्था बनाए रखने का स्थल हैं। परिवार को लेकर यही सोच समाज की संरचना का मूल भी है। इसीलिए

प्रत्यक्ष रूप से भले ही ऐसा लगे कि पुरुष व महिलाएं अपने जीवन, में कुछ चुनाव कर रहें हैं, जैसे महिलाओं का अपने बच्चों की देखभाल के लिए अपने करियर को छोड़ना था अपने न्भाइयों के लिए अपनी पैतृक सम्पत्ति पर अपना अधिकार जाने देना, ये चुनाव साफ़ तौर पर भौजूदा हावी विचारों और दाँचों से निकलकर आए हैं कि बेहतर क़ानूनों की भांग और कड़े संघर्ष के बाद मिले कानूनी प्रावधानों से जुड़े अनुभवों की वजह से अक्सर भहित्लाओं की स्थिति सुधारने में कानूनी बदलाव की रणनीति को शक से देखा जाता है। इसलिए कानून का पालन सुनिश्चित करने वाली इजेंसियो जैसे पुलिस और अफसरशाही और अदालतों की जवाबदेही महिलाओं पर हिंसा के विरुध्द होने वाले अभियानों के केन्द्र में रही है ढांचागत रूप से पुरुषों की तुलना में अधिक महिलाएं गरीबी के हालातों में है। ऐसा इसीलिए है क्योकि उन्हे पैतृक सम्पत्ति में संसाधनो पर मिल्कियत और शिक्षा १ और श्रम बाजार तक उस तरह की पहुँच प्राप्त नहीं है जैसी पुरुषों को है। और दश घरों में उनका वेतनहीन श्रम एक आम बात है। वहेज, लिंग जाँच, लिम चुनाव से जुडे गर्भपात और इज्जत बचाने के लिए की जाने वाली हत्याओं जैसी प्रथाएँ समाज में इसीलिए प्रचलित है क्योंकि महिलाओं को परिवारों में आर्थिक और सामाजिक बोझ समझा जाता है। इससे उनके आत्मसम्मान में कमी आती है और उनका स्वास्थ्य और उनके हित भी प्रभावित होते हैं। अक्सर महिलाएं उन पर होने वाली हिंसा के कारण श्रम बाजार में बराबरी से शामिल नहीं हो पती, उनकी उत्पादक क्षमता कम हो जाती है और कई बार उन्हें अपने वेटन से हाथ धोना पड़ता है। वहीं दूसरी और महिलाओ की वर्कफोर्स में भागीदारी और सम्पति पर मिल्कियत उन पर घरेलूहिंसा होने के खतरे को कम करती है। इसका अर्थ यह है कि महिलाओं पर घरेलू हिंसा होने के खतरे होने वाली इन सभी जेंडर आधारित हिंसाओ को रोकने के लिए और उन्हें एक सम्मान से भरी और सभी तरह की हिंसाओ के भय से मुक्त जिन्दगी देने के लिए कानून, नीति और समुदाय के स्तर पर बहुआयामी कदम उठाने की आवश्यकता है। इसीलिए परिवार और समुदाय के निजी क्षेत्र में होने वाली हिंसता के विरुद्ध संघषों को महिलाओ के समानता, सम्मान और हिंसा मुक्त जीवन के लिए हो रहे संघषों के साथ जुडने की आवश्यकता है। केवल ऐसाजुडाव ही अन्य सामाजिक अभियानो को भी जेडर पर आधारित असमानतओ और महिलाओ के विरुद्ध हिंसा का सामना करने का बल देगा।जब एक महिला काम करने घर से बाहर जाती है तो उसको पता नहीं होता है कि क्या सुविधा मिलेगी। जिन लोगों के साथ उसको काम करना है उनका व्यवहार कैसा है, मलिक कैसा है वहां का माहौल कैसा है। लेकिन फिर भी वह सशक्त होकर बाहर निकलती है। बाद में उसको किन-किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है यह वहस्वयं ही जानती है क्योंकि आज के परिवेश में महिलाओं की जो स्थिति है वह कहीं ना कहीं आर्थिक स्थिति और अपने आप को बढ़ावा देने के लिए है।1990 के दशक के बाद से महिलाओं की समानता और सशक्तीकरण की पहल को सबसे आगे रखा गया है ताकिशहरी और ग्रामीण परिवेश में महिलाओं की पिछड़ेपन, गरीबी और सामाजिक बहिष्कार की पीड़ा को मिटाकर सतत् विकास को सुनिश्चित किया जा सके। इस प्रक्रिया में विकास के क्षेत्र में काम करने वाली नारी अधिकारियों ने लैंगिक समानता और सिर्फ विकास को बढ़ावा देने के लिए एक पसंदीदा रणनीति के रूप में सशक्तीकरण की अवधारणा के वैश्वीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।वर्तमान समय में महिला सशक्तीकरण का मुद्दा न केवल भारत वरन् विश्व में गहन चिन्तन का विषयबना हुआ है। सामान्यतः इसके मूल में यही भाव रहा है किजब तक इस करीब आधी आबादी की सहभागिता राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों से ओझल रहेगी, तब तक समग्र विकास का सपना अधूरा ही रहेगा। महिला और पुरूष दोनों एक-दूसरे के विपरीत होते हुए भी न केवलपूरक हैं वरन् एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। दोनो के सहयोग से ही सृष्टि की निरन्तरता बनी हुई है।इसके बावजूद हमारे समाज में पुरुष और महिला के आपसी संबंधों के बीच समानता व सन्तुलन के अभाव के साथ-साथ दोनों के महत्व, स्थान और रूतबे में काफी अन्तर दिखाई देता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और पारिवारिक स्तरों पर महिला को पुरूष से हीन और दुर्बल माना

जाता रहा है। यह सोच महिलाओं के प्रति समाज के व्यवहार में झलकती है। जब तक इस करीब आधी आबादी की सहभागिता राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों से ओझल रहेगी, तब तक समग्र विकास का सपना अधूरा ही रहेगा। महिला और पुरूष दोनों एक-दूसरे के विपरीतहोते हुए भी न केवल पूरक हैं वरन् एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संभव नहीं है। दोनो के सहयोग से ही सृष्टि की निरन्तरता बनी हुई है। इसके बावजूद हमारे समाज में पुरूष और महिला के आपसी संबंधों के बीच समानता व सन्तुलन के अभाव के साथ-साथ दोनों के महत्व, स्थान और रूतबे में काफी अन्तर दिखाई देता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और पारिवारिक स्तरों पर महिला को पुरूष से हीन और दुर्बल माना जाता रहा है। यह सोच महिलाओं के प्रति समाज के व्यवहार में झलकती है। सिंधु घाटी सभ्यता काल में नारी की पूजा अत्यधिक लोकप्रिय थी। वैदिक युग भारतीय नारी का स्वर्णयुग था, इस युग में नारी बुद्धि और ज्ञान के क्षेत्र मेंप्रवीण थी। लेकिन उत्तरवैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति की स्थिति में अंतर आया। इस युग में जन्म से मृत्यु तक वह पुरूष के नियंत्रण मे रखी जाने लगी, विवाहो पूर्व वह माता-पिता तथा विवाहोपश्चात् वह पति द्वारा नियंत्रण में रखने के लिए निर्देशित की गई। गुप्त व गुप्तोत्तर काल में नारी का स्थान सम्मानजनक रहा, किन्तु मध्यकाल में नारी की स्थिति थोड़ी दयनीय हो गई। उन्नसवीं शताब्दी से पूर्व ही भारतीय नारी की दुर्बलता अपनी चरम अवस्था तक पहुँचचुकी थी। इस शताब्दी से पूर्व भारतीय नारी गृह कारा की बन्दिनी बन गरीबी का असली चेहरा एक महिला का है। इसके आधार पर गरीबी के मुद्दे पर अधिक से अधिक महिलाओं तक पहुँच बनाने पर जोर दिया गया। महिलाओं द्वारा लिया गया ऋण परिवार व परिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये इस्तेमाल होता है। महिलायें कर्ज वापसी में पुरूषों की तुलना में अधिक अनुशासित व प्रतिबद्ध होती है इसलिये अधिकतर लघुऋण कार्यक्रम महिला समूहों के साथ काम कर रहे है। स्व-सहायता समूह का उद्देश्य केवल गरीबी उन्मूलन ही नहीं बल्कि महिला सशक्तीकरण भी है। स्त्रियों के अस्तित्व का अधिकार और समाज द्वारा उसकी स्वीकार्यता है। महिलाओं द्वारा स्वयं के शरीर पर, प्रजनन के क्षेत्र में, आय पर, श्रम शक्ति पर, सम्पत्ति पर, सामुदायिक संसाधनों पर नियत्रंण कर पाना, उनका सबलीकरण है और यही सशक्तीकरण का उद्देश्य हैं। 1देश की लगभग 50 प्रतिशत महिला आबादी के स्वास्थ्य, शिक्षा और सशक्तीकरण के बिना विकास की यात्रा पूरी नहीं की जा सकती है। महिला विकास के प्रति एक बहु दिशात्मक व्यवस्थित दृष्टिकोण निश्चित रूप से देश को इस मार्ग पर काफी आगे ले जाएगा। "

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शुक्ला, अंजु. (2014) "ग्रामीण महिलाओं में सामाजिक गतिशीलता
2. रजी, शाहीन. (2019) "सशक्त महिला सशक्त समाज" मार्च
3. राजपूत, उदससिंह. (2011) "भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में महिलाओं की सहभागिता
4. शर्मा, राजेश कुमार. (2011) "महिला सशक्तीकरण एक बहुप्रतीक्षित वास्तविकता"
5. गोयल, ममता. (2009) महिला सशक्तीकरण हेतु शासकीय प्रयास एवं संभावित उपायों का अध्ययन,
6. नाटाणी, प्रकाशन नारायण (2005) महिला सशक्तीकरण और आरक्षण,
7. रजी, शाहीन. (2019) "सशक्त महिला सशक्त समाज" मार्च,
8. दुबे, निशा व मालवीया, मुकेश कुमार. (2010) "नारीवाद राजनीति में महिलाओं की भागीदारी" ।

****

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की वर्तमान समय में प्रासंगिकता

-डॉ. रश्मि गुप्ता
असिस्टेंट प्रोफेसर ,
रसायन शास्त्र विभाग
श्री द्रोणाचार्य पीजी कॉलेज दनकौर,
गौतम बुद्ध नगर (उत्तर प्रदेश)

सार संक्षेप:

शिक्षा किसी भी देश और समाज के विकास की महत्वपूर्ण आधार होता है। शिक्षा का वास्तविक अर्थ ज्ञान, कौशल, मूल्यों को प्राप्त करना और उस क्षेत्र में निरंतर कार्य करना और प्रगति करना है। शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होती है । आधुनिक भारत में नई शिक्षा नीति का विशिष्ट महत्व है। नई शिक्षा नीति में रोचक, महत्वपूर्ण व अनुकरणीय विचार समाहित किए गए हैं। आधुनिक युग में हमारे देश में शिक्षा व्यवस्था हेतु प्रमुख रूप से शिक्षा नीतियां वर्ष 1968, 1986 एवं 2020 में लागू की गई है। पूर्व शिक्षा नीतियाँ 1968, 1986 देश की आवशयकताओं व अपेक्षाओं को पूरा करने में असमर्थ रही हैं। स्वस्थ, सशक्त, समृद्ध, आत्मनिर्भर तथा श्रेष्ठ भारत के निर्माण की परिकल्पना के साथ राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अस्तित्व में आ चुकी है। वर्तमान में आयी नई शिक्षा नीति-2020 (NEP-2020) पिछली दो नीतियों की तुलना में अत्यंत महत्वाकांक्षी व दूरगामी परिणामों का सफलता संकल्प है। ऐसा इसलिए की यह शिक्षा में बुनियाद से लेकर उच्च स्तर तक के परिवर्तनों के बारे में कथनी की तुलना में करनी को महत्व देती है। इसमें प्राचीन और नवीन का सन्तुलन बनाया गया है। ज्ञान, विज्ञान, प्रोद्यौगिकी, कम्प्यूटरीकरण और तकनीकी में नित नए प्रयोगों तथा नवोन्मेषी अनुसंधानों के साथ-साथ नई शिक्षा नीति के निर्माण में हमारे प्राचीन ज्ञान और विज्ञान तथा दर्शन को सहेजने व उस पर गहन अध्ययन एवं शोध को भी महत्व दिया गया है। अपनी जडों से जुडे रहकर ज्ञान के शिखर पर पहुंचने का यह प्रभावी मंत्र है। वर्तमान में केंद्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पूरी तरह लागू करने का लक्ष्य वर्ष 2040 तक रखा गया है। अब इस शिक्षा नीति को धरातल पर प्रभावी रूप से लागु किये जाने का समय है। अतः जीवित रहने के लिये हमें ज्ञान, विज्ञान और प्रोद्यौगिकी में विश्वस्तरीय होना होगा अन्यथा हम अपना अस्तित्व नही बचा पाएँगे।

बीज शब्द: ज्ञान, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, विज्ञान, दर्शन, कौशल ।

शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है जो जीवन भर चलती रहती है।शिक्षा का लक्ष्य केवल ज्ञान प्राप्त करना नहीं है, बल्कि चरित्र का निर्माण करना भी है।शिक्षा सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध होनी चाहिए, चाहे उनकी जाति, धर्म, लिंग या सामाजिक-आर्थिक स्थिति कुछ भी हो। समाज में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि यह समृद्धि, समानता, और सहानुभूति को बढ़ावा देता है। शिक्षा समाज के विभिन्न वर्गों को एकत्र करती है और समृद्धि की दिशा में प्रेरित करती है। इसके लिए, शिक्षा समाज की संस्कृति और सभ्यता को विकसित करने का महत्वपूर्ण माध्यम होती है। इसके अलावा, भारतीय शिक्षा प्रणाली में संस्कृति, नैतिकता, और धार्मिकता को महत्व दिया जाता है जो छात्रों को समाज में सही मानवीय मूल्यों की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। इसका उद्देश्य छात्रों को एक समर्थ और संवेदनशील नागरिक बनाना है जो समाज के लिए सकारात्मक परिणाम उत्पन्न कर सके। नेल्सन मंडेला के अनुसार "शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है जिसे आप दुनिया बदलने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं।"

एक राष्ट्र की मुख्य आशा अपने युवाओं की उचित शिक्षा में निहित है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) 2020 में शिक्षा के उसी दृष्टिकोण की कल्पना की गई है, जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और अनुसंधान के माध्यम से सभी छात्रों के लिए सस्ती और सुलभ बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में केंद्रीय केबिनेट ने नयी शिक्षा नीति 2020 को मंजूरी दी। इस नीति से पूर्व भारत में दो शिक्षा नीति लागू हुई, जिनसे शिक्षा व्यवस्था का संचालन हो रहा है। प्रथम शिक्षा नीति 1968 में डीएस कोठारी की अध्यक्षता में बनी। यह कोठारी कमीशन (1964-1986) की सिफारिशों पर आधारित थी। इस नीति को तत्कालीन इंदिरा गांधी सरकार ने लागू किया था। दूसरी शिक्षा नीति 1986 में बनी जिसे तत्कालीन राजीव गांधी सरकार लेकर आई थी। और 1992 में पीवी नरसिंह राव ने आवश्यकतानुसार संशोधित किया। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक पूर्व इसरो प्रमुख पद्म विभूषण डॉ.के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा नीत 2020 का प्रारूप तैयार किया गया। कस्तूरीरंगन समिति के नाम से इसका गठन जून, 2017 में किया गया तथा मई, 2019 में 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति का प्रारूप' कैबिनेट को प्रस्तुत किया गया। 29 जुलाई, 2020 को केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा इसे मंजूरी मिली। अब 34 वर्षो पश्चात बहुत बड़े विमर्श के बाद 29 जुलाई, 2020 को प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा तीसरी राष्ट्रीय शिक्षा नीति की घोषणा की गई। इस शिक्षा नीति के विमर्श में 2 वर्ष का समय एवं 2 करोड़ से अधिक लोगों के सुझाव समाहित हैं। विमर्श में शिक्षक, विद्यार्थी, राजनेता, अभिभावकगण, जनप्रतिनिधि एवं समाजसेवी सभी के सुझाव समाहित किये गए हैं। इसलिए यह शिक्षा नीति सर्वस्पर्शी, सर्वव्यापी,

सर्वसमावेशी एवं राष्ट्रीय विचारों से ओत-प्रोत है और कहा जाए कि लंबे समय की मेहनत के पश्चात निकला वह नवनीत है जो देश के समग्र विकास में अपनी महती भूमिका अदा करेगा।

नई शिक्षा नीति 1968 और 1986 का लक्ष्य शिक्षा के क्षेत्र में समता और समानता को बढ़ावा देना था। शिक्षा नीति 1968 में जहाँ शैक्षिक ढांचे में सुधार पर जोर था । 1968 की शिक्षा नीति को लागू करने के लिए 10+2+3 शिक्षा प्रणाली लागू की गई। शिक्षा के सभी स्तरों पर व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ावा देने के साथ ही क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने पर ज़ोर दिया गया।एवं शिक्षा में समानता लाने के लिए विभिन्न योजनाओं का शुभारंभ किया गया। वहीं, 1986 की शिक्षा नीति में शैक्षिक असमानताओं का उन्मूलन चिंता के केंद्र में था। 1986 की शिक्षा नीति में शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए कई पहल की गई। अतः शिक्षा में लैंगिक समानता लाने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों की शुरुआत की गई एवं वंचित वर्गों के लिए शिक्षा के अवसरों को बढ़ाने पर ध्यान दिया गया। शिक्षा का राष्ट्रीयकरण और विकेंद्रीकरण पर ज़ोर दिया गया। इसके विपरीत नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अधुनातन शैक्षिक साधनों और नवोन्मेष के माध्यम से समानता और समावेशन को बढ़ावा देती है। 2020 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिक्षा में नवीनतम तकनीकों और नवाचारों का उपयोग करने और शिक्षा को लचीला, छात्र-केंद्रित बनाने पर ध्यान दिया गया है। शिक्षा में समावेशन और समानता को बढ़ावा देने के अलावा शिक्षा में गुणवत्ता और अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिए कई प्रावधान किए गए हैं। यह कहना गलत नहीं होगा कि 2020 की शिक्षा नीति पिछली शिक्षा नीतियों का एक क्रांतिकारी और प्रगतिशील संस्करण है।

नई शिक्षा नीति 2020 के पाँच स्तंभ यानी "वहनीयता, अभिगम्यता, गुणवत्ता, न्यायपरस्ता, और जवाबदेही" को सुनिश्चित करने का उद्देश्य है। शिक्षा को सभी के लिए सुलभ और गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए एक महत्वपूर्ण कदम है। यह नीति निरंतर सीखने की प्रक्रिया को सुनिश्चित करने के लिए तैयार की गई है, जो इस समाज और अर्थव्यवस्था में ज्ञान की मांग के रूप में नागरिकों की जरूरत के अनुरूप है। नीति के मुख्य उद्देश्यों में : नियमित आधार पर नए कौशल हासिल करने की आवश्यकता को पूरा करना, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना, सभी के लिए आजीवन सीखने के अवसर प्रदान करना, संयुक्त राष्ट्र सतत् विकास लक्ष्य 2030 में सूचीबद्ध पूर्ण और उत्पादक रोजगार और अच्छे से काम की ओर अग्रसर होना शामिल हैं।

नीति के कुछ प्रमुख पहलू:

- 5+3+3+4 शैक्षिक ढांचा: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP 2020) 5+3+3+4 शिक्षा ढांचे की शुरुआत करती है। यह ढांचा 3 से 18 वर्ष की आयु के सभी बच्चों के लिए स्कूली शिक्षा को पुनर्गठित करता है।फाउंडेशनल स्टेज (5 वर्ष : 3-8 वर्ष) के पहले भाग में, बच्चों को प्री-स्कूल या बालवाटिका में भेजा जाएगा। इस चरण में, वे खेल, कहानियों, और अन्य गतिविधियों के माध्यम से सीखेंगे। फाउंडेशनल स्टेज (3 वर्ष : 3-8 वर्ष) के दूसरे भाग में, बच्चों को कक्षा 1 और 2 में भेजा जाएगा। इस चरण में, वे भाषा, गणित, विज्ञान और सामाजिक अध्ययन जैसे बुनियादी विषयों का अध्ययन करेंगे। प्रीपरेटरी स्टेज (3 वर्ष : 8-11 वर्ष) में, बच्चों को कक्षा 3 से 5 में भेजा जाएगा। इस चरण में, वे बुनियादी विषयों का अध्ययन जारी रखेंगे और अधिक गहन रूप से सीखना शुरू करेंगे। सेकेंडरी स्टेज (4 वर्ष : 11-18 वर्ष) में, बच्चों को कक्षा 6 से 12 में भेजा जाएगा। इस चरण में, वे विषयों का चुनाव कर सकेंगे और अपनी रुचि के अनुसार अपनी शिक्षा को आगे बढ़ा सकेंगे।
- बहुविषयी शिक्षा छात्रों को विभिन्न विषयों में अध्ययन करने और अपनी रुचि और प्रतिभा के अनुसार विषयों का चयन करने की सुविधा प्रदान करती है, जिससे उनकी समृद्ध और सक्षम शिक्षा होती है। बहुविषयी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यह है कि छात्र स्वयं अपनी प्रतिभा, रुचि, और अवसरों के आधार पर विषयों का चयन कर सकें, जिससे उनकी स्वतंत्रता और स्वाधीनता में वृद्धि हो। यह शैक्षणिक प्रणाली छात्रों को अनुकूलित, स्वतंत्र, और सक्षम बनाती है।
- नई शिक्षा नीति 2020 में प्राथमिक स्तर एवं माध्यमिक स्तर पर (कक्षा 5 एवं 8वीं कक्षा तक की) शिक्षा में मातृभाषा/स्थानीय/क्षेत्रीय भाषा को अपनाने और आगे की शिक्षा में भी मातृभाषा को प्राथमिकता देने पर ज़ोर दिया गया है, जो उनके मनोवैज्ञानिक और अध्यापन तकनीकी विकास के लिए महत्वपूर्ण है। मातृभाषा बच्चों को अपनी संस्कृति और पहचान से जोड़ती है। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों को सहयोगी शिक्षा प्रदान करना है ताकि उनका शिक्षा और सामाजिक विकास सुनिश्चित हो सके। त्रिभाषिक शिक्षा को बढ़ावा दिया जाएगा।
- यह नीति शिक्षा को अधिक समावेशी बनाती है, जिससे सभी बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर मिलता है। नीति का मुख्य उद्देश्य है विभिन्न वर्गों, लिंगों, क्षेत्रों, और आर्थिक परिस्थितियों से संबंधित छात्रों के समावेश को सुनिश्चित करना।
- नई शिक्षा नीति 2020 में बधिर छात्रों के लिए राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर पाठ्यक्रम सामग्री विकसित की जाएगी । आई एसएल को पूरे देश में मानकीकृत किया जाएगा । आईएसएल में शिक्षण देने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण भी दिया जाएगा । बधिर छात्रों को शिक्षा प्राप्त करने में मदद करने के लिए तकनीकी सहायता प्रदान की जाएगी ।
- नई शिक्षा नीति 2020 के अंतर्गत देश में IIT और IIM के

समकक्ष वैश्विक मानकों के बहुविषयक शिक्षा एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय (MERU) की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है। ये विश्वविद्यालय विभिन्न विषयों का अध्ययन करने के लिए छात्रों को प्रोत्साहित करेंगे। इन विश्वविद्यालयों में अनुसंधान को प्राथमिकता दी जाएगी। इन विश्वविद्यालयों को वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बनाने के लिए उच्चतम मानकों को अपनाया जाएगा। इन विश्वविद्यालयों को स्वायत्तता प्रदान की जाएगी ताकि वे अपनी आवश्यकताओं के अनुसार काम कर सकें।

- भारतीय भाषाओं, लिपियों, और संस्कृतियों को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न प्रोग्राम और योजनाओं का भी विकास किया जाएगा। इससे भारतीय समाज को भाषा और सांस्कृतिक धरोहर के प्रति जागरूकता बढ़ाने में मदद मिलेगी
- नई शिक्षा नीति 2020 में भारतीय परंपराओं एवं संस्कृति का विकास करना और देश की प्राचीन एवं आधुनिक संस्कृति, ज्ञान एवं परंपराओं का समावेश करना । विविधता और स्थानीय प्रवेश को ध्यान में रखते हुए शिक्षा देना और विद्यालय से महाविद्यालय शिक्षा तक सभी स्तरों के पाठ्यक्रमों में तालमेल एवं सामंजस्य बिठाना । भारतीय भाषाओं, लिपियों, और संस्कृतियों को प्रोत्साहित करने के लिए विभिन्न प्रोग्राम और योजनाओं का विकास करने का प्रस्ताव किया गया है। इन प्रोग्रामों और योजनाओं से भारतीय भाषाओं के विकास, समृद्धि और भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण करने में मदद मिलेगी। जिससे राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने में मदद मिलेगी।
- नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षा प्रणाली छात्रों को 21वीं सदी के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करने पर केंद्रित है। व्यावसायिक शिक्षा और प्रशिक्षण (वीईटी) को स्कूली शिक्षा का एक अभिन्न अंग बनाया जाएगा। छात्रों को कक्षा 6 से ही वीईटी के विभिन्न विकल्पों से अवगत कराया जाएगा। छात्रों को व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के लिए इंटर्नशिप और अप्रेंटिसशिप के अवसर प्रदान किए जाएंगे। यह नीति छात्रों को रोजगार के लिए तैयार करने और उन्हें जीवन में सफल होने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।
- नई शिक्षा नीति 2020 (एनईपी 2020) शिक्षा प्रणाली में शिक्षकों को बेहतर प्रशिक्षण प्रदान करने और उनकी क्षमताओं को विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करती है। यह नीति शिक्षकों को सीखने का केंद्र मानती है और उनकी भर्ती, प्रशिक्षण और विकास के लिए उन्नत सुविधाओं का विकास करने पर ज़ोर देती है। शिक्षकों की भर्ती योग्यता और अनुभव के आधार पर की जाएगी। शिक्षकों को नियमित रूप से प्रशिक्षण प्रदान किया जाएगा ताकि वे नवीनतम शिक्षण विधियों और तकनीकों से अवगत रहें। शिक्षकों को अपनी क्षमताओं को विकसित करने के लिए विभिन्न अवसर प्रदान किए जाएंगे। शिक्षकों के लिए अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहित किया जाएगा। शिक्षकों को उचित वेतन और भत्ते प्रदान किए जाएंगे।
- नई शिक्षा नीति 2020 (एनईपी 2020) शिक्षा प्रणाली में शिक्षा को अधिक प्रभावी और सुलभ बनाने के लिए प्रौद्योगिकी के उपयोग पर ज़ोर देती है। यह नीति शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रौद्योगिकी के एकीकरण को प्रोत्साहित करती है, ताकि सभी छात्रों को समान शिक्षा का अवसर प्रदान किया जा सके। स्कूलों और कॉलेजों में डिजिटल बुनियादी ढांचे का विकास किया जाएगा और ऑनलाइन शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाएगा। छात्र ऑनलाइन कक्षाएं ले सकते हैं, ऑनलाइन पाठ्यक्रमों में नामांकन कर सकते हैं, और ऑनलाइन ट्यूटोरियल प्राप्त कर सकते हैं।डिजिटल सामग्री का विकास किया जाएगा और छात्रों को उपलब्ध कराया जाएगा। छात्र डिजिटल पाठ्यपुस्तकें, ई-लर्निंग मॉड्यूल, और शैक्षिक वीडियो का उपयोग कर सकते हैं। शिक्षकों को डिजिटल शिक्षण विधियों और तकनीकों का उपयोग करने के लिए प्रशिक्षित किया जाएगा। शिक्षक ऑनलाइन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग ले सकते हैं और डिजिटल शिक्षण विधियों और तकनीकों का उपयोग करने के लिए प्रशिक्षित हो सकते हैं। शिक्षा में एआई के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाएगा। एआई (AI) का उपयोग छात्रों के सीखने को अनुकूलित करने, उन्हें व्यक्तिगत शिक्षा प्रदान करने, और उनकी प्रगति को ट्रैक करने के लिए किया जा सकता है।
- नई शिक्षा नीति 2020 शिक्षा प्रणाली में सीखने के लिए सतत मूल्यांकन पर जोर देती है, न कि परीक्षा को महत्व देना। यह नीति शिक्षा को अधिक समग्र और छात्र-केंद्रित बनाने, छात्रों को अपनी पूरी क्षमता तक पहुंचने में मदद करने, शिक्षा में रचनात्मकता और नवाचार को प्रोत्साहित करने और कोचिंग संस्कृति का विनाश करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। छात्रों का मूल्यांकन पूरे वर्ष विभिन्न तरीकों से किया जाएगा, जैसे कि परियोजनाओं, प्रस्तुतियों, और पोर्टफोलियो के माध्यम से। छात्रों के गैर-शैक्षणिक कौशल, जैसे कि रचनात्मकता, टीमवर्क और समस्या-समाधान, का भी मूल्यांकन किया जाएगा। छात्रों को अपनी प्रगति का आकलन करने और अपनी सीखने की प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा।बोर्ड परीक्षाओं की संख्या कम की जाएगी। परीक्षा के पैटर्न को अधिक व्यापक और छात्र-केंद्रित बनाने के लिए बदला जाएगा। अंतरिम मूल्यांकन को अधिक महत्व दिया जाएगा। नीति में शिक्षा में समानता को प्रोत्साहित करने के लिए कई कदम उठाए गए हैं, जैसे कि समान शिक्षा का उपलब्ध कराना, विशेष शिक्षा को बढ़ावा देना, और छात्रों की

भाषा और संस्कृति का सम्मान करना। नई शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा मानकों की नवीनीकरण के लिए भी प्रोत्साहन दिया गया है, जिससे छात्रों को अधिक सक्षम बनाने में मदद मिल सके।

2020 में लागू होने वाली नई शिक्षा नीति देश में शिक्षा व्यवस्था में एक बड़ा बदलाव ला रही है।यह नई शिक्षा नीति 21वीं सदी की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए बनाई गई है। इसका उद्देश्य भारत को एक वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाना है। यह नीति शिक्षा को सभी के लिए सुलभ, गुणवत्तापूर्ण और रोजगार-सक्षम बनाने पर ज़ोर देती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति में परिकल्पित पाठ्यचर्या और शिक्षा विधि छात्रों में इस विजन को विकसित करने पर ध्यान केंद्रित करती है कि छात्रों में भारतीय होने का गर्व, न केवल विचारों में बल्कि उनके व्यवहार, बुद्धि, और कार्यों में भी प्रतिफलित हो। इसके साथ ही, उन्हें ज्ञान, कौशल, और मूल्यों का सही संतुलन और सोच में समग्रता की भावना होनी चाहिए। इसके माध्यम से, छात्रों को मानवाधिकारों, स्थाई विकास, जीवन यापन और वैश्विक कल्याण के प्रति प्रतिबद्धता के मूल्यों की महत्वपूर्णता की जागरूकता होती है, जिससे वे समाज में उत्तम नागरिक बन सकें। इस नीति के अनुसार, शिक्षा प्रणाली के संस्थानों को छात्रों के बुनियादी दायित्व, मौलिक कर्तव्यों और संवैधानिक मूल्यों के साथ जुड़े और उनकी सोच में वैश्विक परिवर्तन के प्रति उत्साह और जागरूकता को बढ़ावा देना चाहिए। इससे छात्रों में देश के प्रति जुड़ाव, मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशीलता और उनकी बदलते विश्व में नागरिक की भूमिका के प्रति उत्तरदायित्व की जागरूकता बढ़ेगी। इस प्रकार, यह नीति भारत के शिक्षा प्रणाली को एक नई दिशा देती है जो छात्रों को समृद्ध और सशक्त समाज के निर्माण में योगदान करने के लिए तैयार करने का लक्ष्य रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 निश्चित रूप से भारत के भविष्य के लिए एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह नीति शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण बदलाव लाएगी। यह नीति भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाने में भी योगदान देगी। राष्ट्रीय शिक्षा नीति निश्चित रूप से भारतीय मूल्यों मूल्यों और नैतिकता पर आधारित शिक्षा प्रणाली का निर्माण करती है। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों को एक समर्पित और समग्र शिक्षा प्राप्त कराना है, जो उन्हें न केवल विज्ञानिक या तकनीकी दृष्टिकोण से बल्कि उनके मौलिक मूल्यों और सामाजिक जिम्मेदारियों के संबंध में भी सशक्त बनाए। यह नीति सभी को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराकर और उन्हें जिम्मेदार और योग्य नागरिक बनाने में मदद करके भारत को एक जीवंत, विकसित और समृद्ध राष्ट्र बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

संदर्भ :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

भारत सरकार, 1986, नई शिक्षा नीति-2020, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली

भारत सरकार, 1968, नई शिक्षा नीति-2020, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली

सच्चिदानंद पाठक, जर्नल ऑफ एडवांसेज एंड स्कॉलरली रिसर्चेस इन अलाइड एजुकेशन बहुविषयक शैक्षणिक अनुसंधान, आईएसएसएन: 2230-7540, वर्ष-अक्टूबर, 2021, खंड: 18 / अंक: 6, पृष्ठ: 216 - 220 (5)

प्रो० सतीश देशपांडे, साक्षात्कार: शिक्षा ज्ञान और समाज का समकाल,सामाजिक; (अंक-अक्टूबर-दिसम्बर, 2021)

डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल, नई शिक्षा नीति-2020 - बेबाक विश्लेषण, शैक्षिक उन्मेष पत्रिका

सुरेश कुमार मिश्रा उरतृप्त, नई शिक्षा नीति-2020 : एक संकल्प यंत्र से मानव बनाने की ओर, शैक्षिक उन्मेष पत्रिका

राष्ट्रीय शिक्षा नीति - 2020, भारतीयता का पुनरुत्थान, अतुल कोठारी (संपादक), प्रभात प्रकाशन, 2021

मीना, मोनिका शर्मा, नए भारत की नींव- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020, हंस शोध सुधा, खंड 1, अंक 3 जनवरी-मार्च, 2021, पृष्ठ 59- 62.

****

भारतीय संविधान में डॉ.आंबेडकर के योगदान : एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन

-शशिकान्त कुमार,
समाजशास्त्र विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

सारांश

भारतीय संविधान का निर्माण भारतीय लोकतंत्र के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। इस प्रक्रिया में डॉ. भीमराव आंबेडकर का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। डॉ. आंबेडकर, जिन्हें भारतीय संविधान का मुख्य शिल्पकार कहा जाता है। संविधान निर्माण में न केवल कानूनी और राजनीतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण भूमिका निभाई बल्कि सामाजिक न्याय और समानता के सिद्धांतों को भी संविधान में सम्मिलित किया। उनके विचार और योगदान भारतीय समाज के सामाजिक ढांचे में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने वाले साबित हुए।

इस शोध आलेख का उद्देश्य डॉ. आंबेडकर के योगदान का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करना है ताकि उनके विचारों और कार्यों का व्यापक विश्लेषण किया जा सके। इस शोध में डॉ. आंबेडकर के योगदान का विश्लेषण भारतीय संविधान निर्माण के संदर्भ में किया गया है। संविधान सभा की कार्यवाही, डॉ. आंबेडकर के भाषण और लेख, और उनके द्वारा प्रस्तुत विधेयकों का विश्लेषण शामिल है। इसके अलावा, द्वितीयक स्रोतों के रूप में संबंधित साहित्य, पुस्तकें और शोध पत्रों का भी अध्ययन किया जाएगा।

बीज शब्द : संविधान, आंबेडकर, योगदान, विचार, समाज, सामाजिक न्याय, असमानता, अधिकार।

प्रस्तावना

भारतीय संविधान का निर्माण एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रक्रिया थी, जिसमें अनेक विद्वानों और राजनेताओं ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रक्रिया में डॉ. भीमराव आंबेडकर का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट था। डॉ. आंबेडकर न केवल एक प्रखर विधिवेत्ता थे बल्कि एक समाज सुधारक, अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ भी थे। डॉ. आंबेडकर का संविधान सभा में भूमिका का विश्लेषण करते समय यह महत्वपूर्ण है कि हम उनके द्वारा प्रस्तुत विभिन्न विधेयकों और प्रस्तावों पर ध्यान दें। उनके योगदान को तीन प्रमुख पहलुओं में विभाजित किया जा सकता है: मौलिक अधिकार, सामाजिक न्याय और दलित अधिकार। डॉ. आंबेडकर ने संविधान सभा में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह कदम भारतीय समाज में सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ(Karade, 2015)।

डॉ. आंबेडकर का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण उनके जीवन और कार्यों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त जातिवाद और असमानता के खिलाफ संघर्ष किया और सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए निरंतर प्रयास किए। उन्होंने संविधान के माध्यम से अस्पृश्यता उन्मूलन और समानता के अधिकार को संस्थागत रूप देने का प्रयास किया। उनका मानना था कि जब तक समाज में सभी को समान अधिकार और अवसर नहीं मिलेंगे, तब तक सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती। डॉ. आंबेडकर के विचारों का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने दलित समाज को आत्म-सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरूक किया। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में कई सकारात्मक बदलाव हुए। संविधान में शामिल मौलिक अधिकारों और सामाजिक न्याय के प्रावधानों ने सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए। इन प्रावधानों ने न केवल विधिक ढांचे में बदलाव किया बल्कि समाज में समानता और न्याय की भावना को भी प्रोत्साहित किया। डॉ. आंबेडकर के योगदान का राजनीतिक प्रभाव भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उन्होंने भारतीय राजनीति में दलितों और पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए। उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में दलितों की भागीदारी को बढ़ावा दिया और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए कई विधायी प्रावधान किए(Omvedt, 2017)।

शोध की आवश्यकता :

आंबेडकर के योगदान का अध्ययन कई दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण है। पहला, भारतीय संविधान में उनके योगदान को समझने से हमें भारतीय लोकतंत्र की नींव और उसके मूल्यों की गहरी समझ मिलती है। दूसरा, डॉ. आंबेडकर के सामाजिक न्याय और समानता के विचार आज भी प्रासंगिक हैं और उनके अध्ययन से वर्तमान सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए मार्गदर्शन मिल सकता है। तीसरा, डॉ. आंबेडकर के विचारों और कार्यों का विश्लेषण समाज में व्याप्त असमानताओं और जातिगत भेदभाव के खिलाफ संघर्ष में प्रेरणा स्रोत हो सकता है।

उद्देश्य:

इस शोध का मुख्य उद्देश्य डॉ. आंबेडकर के भारतीय संविधान निर्माण में योगदान का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। इसके तहत उनके विचारों का ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक संदर्भ में अध्ययन किया जाएगा। इसके अलावा, इस शोध का उद्देश्य उनके द्वारा प्रस्तावित विभिन्न विधेयकों और प्रावधानों का विश्लेषण करना और यह समझना है कि कैसे उनके विचार भारतीय समाज में सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए।

शोध विधि

इस शोध आलेख में डॉ. आंबेडकर के योगदान को ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। यह आलेख न केवल उनके ऐतिहासिक योगदान को उजागर करता है, बल्कि उनके विचारों और कार्यों का आधुनिक भारतीय समाज पर प्रभाव भी दर्शाता है। अनुसंधान की पद्धति के तहत प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों का

उपयोग किया गया है, जिसमें संविधान सभा की कार्यवाही, डॉ. आंबेडकर के लेख और भाषण शामिल है। डेटा विश्लेषण की विधियों का उपयोग करके डॉ. आंबेडकर के योगदान का व्यापक और सटीक मूल्यांकन किया गया है। इस अध्ययन के माध्यम से हम यह समझने का प्रयास किया गया है, कि डॉ. आंबेडकर के विचार और कार्य किस प्रकार भारतीय संविधान और समाज में स्थायी परिवर्तन लाने में सफल हुए। उनके द्वारा स्थापित सामाजिक न्याय के सिद्धांत आज भी भारतीय समाज के लिए प्रेरणास्त्रोत हैं और उनके योगदान का अध्ययन वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

महत्व

यह अध्ययन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पहला, यह शोध डॉ. आंबेडकर के विचारों और उनके योगदान की व्यापक समझ प्रदान करेगा, जो भारतीय संविधान और समाज को गहराई से प्रभावित करते हैं। दूसरा, यह शोध भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक असमानताओं और भेदभाव के खिलाफ संघर्ष में डॉ. आंबेडकर के विचारों की प्रासंगिकता को रेखांकित करेगा। तीसरा, इस शोध से प्राप्त निष्कर्ष वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक नीतियों के निर्माण में सहायक हो सकते हैं और सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में ठोस कदम उठाने में मार्गदर्शन कर सकते हैं।

इस प्रकार, यह शोध न केवल डॉ. आंबेडकर के योगदान का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करेगा बल्कि भारतीय समाज के समकालीन संदर्भ में उनके विचारों की प्रासंगिकता और प्रभाव को भी उजागर करेगा। इससे डॉ. आंबेडकर के योगदान को समझने और उनके विचारों को वर्तमान सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए उपयोग करने में सहायता मिलेगी।

डॉ. आंबेडकर का जीवन और शिक्षा

डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 को महाराष्ट्र के महूँ में एक दलित परिवार में हुआ था। उन्होंने बचपन में ही जातिगत भेदभाव का सामना किया और शिक्षा प्राप्त करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके बावजूद, उन्होंने अपनी शिक्षा को पूरा करने के लिए निरंतर संघर्ष किया। उन्होंने बॉम्बे यूनिवर्सिटी से बीए की डिग्री प्राप्त की और बाद में कोलंबिया यूनिवर्सिटी से एमए और पीएचडी की डिग्री हासिल की। इसके बाद उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से डीएससी और ग्रेज़-इन से बार-एट-लॉ की डिग्री प्राप्त की। उनकी शिक्षा और उनके अनुभवों ने उन्हें सामाजिक न्याय और समानता के प्रति जागरूक और समर्पित नेता बना दिया(S. Ambedkar & Khan, 2022)।

भारतीय संविधान निर्माण की प्रक्रिया

भारतीय संविधान का निर्माण एक जटिल और विस्तृत प्रक्रिया थी, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के बाद शुरू हुई। संविधान सभा की स्थापना 1946 में हुई थी और इसमें विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक विचारधाराओं के प्रतिनिधियों को शामिल किया गया था। संविधान निर्माण की प्रक्रिया में अनेक समितियों का गठन किया गया, जिनमें से प्रत्येक समिति ने विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श किया। डॉ. भीमराव आंबेडकर को प्रारूप समिति का अध्यक्ष नियुक्त किया गया, जिन्होंने भारतीय संविधान का मसौदा तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। संविधान सभा की बैठकें तीन वर्ष, ग्यारह महीने और अठारह दिन चलीं और अंततः 26 नवंबर 1949 को संविधान को स्वीकृति मिली। संविधान को 26 जनवरी 1950 को लागू किया गया, जिसे हम गणतंत्र दिवस के रूप में मनाते हैं(Rathore, 2020)।

संविधान सभा में डॉ. आंबेडकर की भूमिका

संविधान सभा में डॉ. आंबेडकर की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और विशिष्ट थी। उन्हें प्रारूप समिति का अध्यक्ष बनाया गया, जिसने भारतीय संविधान का मसौदा तैयार किया। उन्होंने मौलिक अधिकारों, सामाजिक न्याय, और दलित अधिकारों के प्रावधानों को संविधान में शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. आंबेडकर ने संविधान सभा में अपने विचारों को स्पष्ट और सशक्त रूप से प्रस्तुत किया और अनेक विधेयकों और प्रस्तावों को पारित कराने में सफलता प्राप्त की। उनका मानना था कि संविधान को समाज के सभी वर्गों के अधिकारों और हितों की रक्षा करनी चाहिए और इसे एक सशक्त और समावेशी दस्तावेज बनना चाहिए। डॉ. आंबेडकर ने अपने ज्ञान, अनुभव और दृष्टिकोण के माध्यम से संविधान में मौलिक अधिकारों, सामाजिक न्याय और समानता के प्रावधानों को सुनिश्चित किया। उन्होंने संविधान सभा में अपने विचारों को स्पष्ट और सशक्त रूप से प्रस्तुत किया और अनेक विधेयकों और प्रस्तावों को पारित कराने में सफलता प्राप्त की। उनके विचारों का प्रभाव संविधान के प्रत्येक अनुच्छेद में देखा जा सकता है, विशेषकर मौलिक अधिकारों और सामाजिक न्याय के प्रावधानों में(Verma, 2023)।

सामाजिक न्याय और समानता :

डॉ. आंबेडकर का सामाजिक न्याय और समानता पर गहरा विश्वास था। उनका मानना था कि जब तक समाज में सभी को समान अधिकार और अवसर नहीं मिलेंगे, तब तक सच्ची स्वतंत्रता और लोकतंत्र स्थापित नहीं हो सकता। उन्होंने संविधान में अस्पृश्यता उन्मूलन, जातिगत भेदभाव के खिलाफ प्रावधान, और अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान सुनिश्चित किया। उनके विचारों ने भारतीय समाज में व्याप्त असमानताओं और भेदभाव के खिलाफ संघर्ष में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। डॉ. आंबेडकर का मानना था कि संविधान को सामाजिक और आर्थिक न्याय को सुनिश्चित करने के लिए एक साधन बनना चाहिए और इस दृष्टिकोण को उन्होंने संविधान में मूर्त रूप दिया। डॉ. आंबेडकर के विचार और योगदान भारतीय संविधान और समाज में स्थायी परिवर्तन लाने वाले साबित हुए। उनके द्वारा प्रस्तावित सामाजिक न्याय और समानता के सिद्धांत आज भी प्रासंगिक हैं और भारतीय समाज के विकास और समृद्धि के लिए मार्गदर्शन करते हैं, जो भारतीय संविधान के निर्माण और समाज के सामाजिक ढांचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सहायक साबित हुए हैं(H. D. Sharma, 2002)।

मौलिक अधिकार और सामाजिक न्याय

डॉ. आंबेडकर का मानना था कि एक सशक्त और समावेशी संविधान ही समाज में स्थायी परिवर्तन ला सकता है। उन्होंने संविधान में

मौलिक अधिकारों को विशेष महत्व दिया, जिससे प्रत्येक नागरिक को समानता, स्वतंत्रता, और न्याय की गारंटी मिल सके, मौलिक अधिकारों में शामिल हैं। जाति, धर्म, लिंग, वंश, या किसी अन्य आधार पर भेदभाव के बिना सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार। स्वतंत्रता, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, और धर्म की स्वतंत्रता। शोषण के खिलाफ, सभी प्रकार के शोषण और अन्याय के खिलाफ सुरक्षा। धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने का अधिकार। इन अधिकारों के माध्यम से डॉ. आंबेडकर ने यह सुनिश्चित किया कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर और न्याय मिले (Chitkara, 2002)।

अस्पृश्यता उन्मूलन और दलित अधिकार

डॉ. आंबेडकर का एक प्रमुख लक्ष्य भारतीय समाज से अस्पृश्यता और जातिगत भेदभाव को समाप्त करना था। उन्होंने संविधान में अस्पृश्यता के उन्मूलन और दलित अधिकारों की सुरक्षा के लिए कई महत्वपूर्ण प्रावधान किए। अस्पृश्यता का उन्मूलन, संविधान के अनुच्छेद 17 के तहत अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया और इसे दंडनीय अपराध घोषित किया गया। आरक्षण, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए शिक्षा और रोजगार में आरक्षण का प्रावधान, जिससे समाज के पिछड़े वर्गों को समान अवसर मिल सके। दलित अधिकारों की सुरक्षा, दलितों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए विशेष प्रावधान किए गए। डॉ. आंबेडकर का मानना था कि जब तक समाज के सबसे कमजोर और वंचित वर्गों को सशक्त नहीं किया जाएगा, तब तक सच्ची स्वतंत्रता और लोकतंत्र की स्थापना संभव नहीं है (Jaffrelot, 2006)।

संविधान निर्माण में डॉ. आंबेडकर विचारों का प्रभाव

डॉ. आंबेडकर के विचारों का भारतीय संविधान निर्माण पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके विचारों को संविधान में शामिल करने से भारतीय समाज में कई महत्वपूर्ण बदलाव देखे जा सकते है। डॉ. आंबेडकर ने संविधान में मौलिक अधिकारों को शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि सभी नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता, और न्याय की गारंटी हो। उनके विचारों के परिणामस्वरूप, भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों का प्रावधान किया गया, जो समाज में समानता और न्याय की दिशा में महत्वपूर्ण कदम था। डॉ. आंबेडकर के विचारों के अनुसार, सामाजिक न्याय और समानता को संविधान का प्रमुख उद्देश्य बनाया गया। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि संविधान में सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार और अवसर हो, और समाज के सभी वर्गों को न्याय मिले। उनके विचारों ने संविधान को एक सशक्त और समावेशी दस्तावेज बनाया। डॉ. आंबेडकर ने संविधान सभा में अपने विचारों को स्पष्ट और सशक्त रूप से प्रस्तुत किया। उनके विचारों का प्रभाव संविधान सभा के सदस्यों पर पड़ा और उन्होंने सामाजिक न्याय, समानता, और मौलिक अधिकारों को संविधान में शामिल करने के लिए समर्थन किया (Chakrabarty, 2018)।

भारतीय समाज पर डॉ. आंबेडकर के विचारों का प्रभाव

डॉ. आंबेडकर के विचारों और उनके योगदान का भारतीय समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप भारतीय समाज में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। सामाजिक जागरूकता, डॉ. आंबेडकर ने दलित समाज को आत्म-सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरूक किया, जिससे वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित हुए। सामाजिक संरचना में परिवर्तन, उनके विचारों ने समाज में व्याप्त असमानताओं और भेदभाव को चुनौती दी और सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए। राजनीतिक प्रभाव, डॉ. आंबेडकर ने दलितों और पिछड़े वर्गों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए, जिससे उनकी राजनीतिक स्थिति मजबूत हुई। शैक्षिक सुधार, डॉ. आंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक सुधार का प्रमुख साधन माना और शिक्षा के क्षेत्र में कई सुधार किए, जिससे वंचित वर्गों को शिक्षा के समान अवसर मिल सके (D. K. Sharmaइत्यादि, n.d.)।

डॉ. आंबेडकर के विचार और उनके द्वारा स्थापित सिद्धांत आज भी भारतीय समाज के लिए प्रेरणास्रोत हैं। उनके योगदान को समझना और उसका मूल्यांकन करना न केवल ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है बल्कि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों के लिए भी आवश्यक है। उनके विचारों ने भारतीय संविधान और समाज को एक सशक्त और समावेशी ढांचा प्रदान किया, जो सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में निरंतर प्रगति कर रहा है(Agrawal, 2020)।

सामाजिक संरचना और जाति व्यवस्था में परिवर्तन

डॉ. आंबेडकर के विचारों और उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप, भारतीय समाज की सामाजिक संरचना और जाति व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए: जाति व्यवस्था का पतन, डॉ. आंबेडकर के विचारों और उनके संघर्ष ने जाति व्यवस्था के खिलाफ एक महत्वपूर्ण आंदोलन को जन्म दिया। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप, समाज में जातिगत भेदभाव के खिलाफ जागरूकता बढ़ी और अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए ठोस कदम उठाए गए। सामाजिक समानता, डॉ. आंबेडकर ने सामाजिक समानता के विचार को प्रोत्साहित किया और इसे संविधान में सुनिश्चित किया। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप, समाज में समानता की भावना बढ़ी और सभी नागरिकों को समान अधिकार और अवसर मिले। दलित अधिकारों की सुरक्षा, डॉ. आंबेडकर के प्रयासों ने दलित समाज को आत्म-सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरूक किया। उनके योगदान से दलितों के सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा सुनिश्चित हुई। आरक्षण प्रणाली ने दलित समाज को शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में समान अवसर प्रदान किए। शैक्षिक सुधार, डॉ. आंबेडकर ने शिक्षा को सामाजिक सुधार का प्रमुख साधन माना और शिक्षा के क्षेत्र में कई सुधार किए। उनके प्रयासों से वंचित वर्गों को शिक्षा के समान अवसर मिले और समाज में शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन आए। डॉ. आंबेडकर के विचारों और उनके योगदान ने भारतीय समाज में स्थायी और गहरे परिवर्तन लाए। उनके विचारों ने भारतीय संविधान और समाज को एक सशक्त और समावेशी ढांचा प्रदान किया, जो सामाजिक न्याय और समानता की दिशा में निरंतर प्रगति कर रहा है। उनके योगदान का समाजशास्त्रीय और राजनीतिक प्रभाव आज भी भारतीय

समाज के विकास और समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है(B. Ambedkar, 2021)।

डॉ. आंबेडकर के योगदान का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. भीमराव आंबेडकर का योगदान भारतीय समाज के सामाजिक ढांचे और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को स्थापित करने में महत्वपूर्ण रहा है। उनका समाजशास्त्रीय विश्लेषण उनके विचारों और कार्यों के माध्यम से किया जा सकता है। डॉ. आंबेडकर ने भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय के प्रावधानों को शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि संविधान में सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार, अवसर, और न्याय की गारंटी हो। उनका मानना था कि समाज के सभी वर्गों को समान अधिकार और अवसर मिलना चाहिए, ताकि सामाजिक असमानताओं को समाप्त किया जा सके। डॉ. आंबेडकर ने अपने जीवन के अधिकांश समय जातिगत भेदभाव और अस्पृश्यता के खिलाफ संघर्ष किया(Chitkara, 2002)। उन्होंने संविधान में अनुच्छेद 17 के माध्यम से अस्पृश्यता को समाप्त करने का प्रावधान किया। यह कदम भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव को समाप्त करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित हुआ। डॉ. आंबेडकर ने शिक्षा और आर्थिक सुधारों को सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख साधन माना। उन्होंने अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए शिक्षा और रोजगार में आरक्षण का प्रावधान सुनिश्चित किया, जिससे वंचित वर्गों को समान अवसर मिल सके। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप, समाज में शिक्षा और आर्थिक सुधारों के माध्यम से सकारात्मक बदलाव हुए(Jatava, 2001)।

Top of Form

Bottom of Form

निष्कर्ष

इस शोध आलेख के माध्यम से डॉ. भीमराव आंबेडकर के भारतीय संविधान निर्माण में योगदान का गहन विश्लेषण किया गया है। डॉ. आंबेडकर ने संविधान सभा में एक प्रमुख और निर्णायक भूमिका निभाई। प्रारूप समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने भारतीय संविधान के मसौदे को तैयार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके विचारों ने संविधान को एक सशक्त और समावेशी दस्तावेज बनाने में मदद की। डॉ. आंबेडकर ने संविधान में मौलिक अधिकारों और सामाजिक न्याय के प्रावधानों को शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके प्रयासों से सभी नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता, और न्याय की गारंटी मिली। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि समाज के सभी वर्गों को समान अवसर और अधिकार मिले। डॉ. आंबेडकर ने अस्पृश्यता के उन्मूलन और दलित अधिकारों की सुरक्षा के लिए संविधान में कई महत्वपूर्ण प्रावधान किए। अनुच्छेद 17 के माध्यम से अस्पृश्यता को समाप्त किया गया और अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान सुनिश्चित किया गया। सामाजिक संरचना और जाति व्यवस्था में परिवर्तन, डॉ. आंबेडकर के विचारों और प्रयासों के परिणामस्वरूप भारतीय समाज की सामाजिक संरचना और जाति व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जातिगत भेदभाव के खिलाफ जागरूकता बढ़ी और दलित समाज को आत्म-सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरूक किया गया(Gore, 1993)।

संदर्भ सूची :-

Agrawal, S. K. (2020). *Dr. Bhim Rao Ambedkar: Dr. Bhim Rao Ambedkar: Architect of India's Constitution and Social Reforms*. Prabhat Prakashan. https://books.google.co.in/books?id=H2twBgAAQBAJ

Ambedkar, B. (2021). *Castes In India: Castes In India: Dr. Babasaheb Ambedkar's Groundbreaking Critique of the Caste System*. Prabhat Prakashan. https://books.google.co.in/books?id=rs_WDwAAQBAJ

Ambedkar, S., & Khan, N. (2022). *Babasaheb: My Life With Dr Ambedkar*. Penguin Random House India Private Limited. https://books.google.co.in/books?id=diyWEAAAQBAJ

Chakrabarty, B. (2018). *The Socio-political Ideas of BR Ambedkar: Liberal constitutionalism in a creative mould*. Taylor & Francis. https://books.google.co.in/books?id=yaxvDwAAQBAJ

Chitkara, M. G. (2002). *Dr. Ambedkar and Social Justice*. A P H Publishing Corporation. https://books.google.co.in/books?id=riTiTry4U3EC

Gore, M. S. (1993). *The Social Context of an Ideology: Ambedkar's Political and Social Thought*. SAGE Publications. https://books.google.co.in/books?id=iG1uAAAAMAAJ

Jaffrelot, C. (2006). *Dr Ambedkar and Untouchability: Analysing and Fighting Caste*. Permanent Black. https://books.google.co.in/books?id=zEWTSAe-KkQC

Jatava, D. R. (2001). *Sociological Thoughts of B.R. Ambedkar*. ABD Publishers. https://books.google.co.in/books?id=ztPAAAAACAAJ

Karade, J. (2015). *Caste-based Exclusion*. Rawat Publications. https://books.google.co.in/books?id=zuSGrgEACAAJ

Omvedt, G. (2017). *Ambedkar: Towards An Enlightened India*. Random House Publishers India Pvt. Limited. https://books.google.co.in/books?id=WvjHMX8ksIsC

Rathore, A. S. (2020). *Ambedkar's Preamble: A Secret History of the Constitution of India*. Penguin Random House India Private Limited. https://books.google.co.in/books?id=AGnLDwAAQBAJ

Sharma, D. K., Debnath, D., & Saxena, M. (n.d.). *Dr. B.R. Ambedkar: Education, Equality and Empowerment*. Krishna Publication House. https://books.google.co.in/books?id=kmpvEAAAQBAJ

Sharma, H. D. (2002). *B.R. Ambedkar: A Crusader for Equality*. Rupa & Company. https://books.google.co.in/books?id=zVImAAAACAAJ

Verma, S. (2023). *Dr. Bhimrao Ambedkar: Father of our Constitution*. True Sign Publishing House. https://books.google.co.in/books?id=SUfLEAAAQBAJ

****

स्वच्छ भारत अभियान के प्रति जागरुकता में प्रिन्ट मीडिया का योगदान (वाराणसी शहर से प्रकाशित प्रमुख हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों पर आधारित अध्ययन)

-मनीष कुमार शुक्ल,
शोधार्थी
वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्विद्यालय,
जौनपुर, उत्तर प्रदेश

सार-

एक धारणा है कि स्वस्थ नागरिक ही एक स्वस्थ एवं मजबूत राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। चूँकि स्वास्थ्य और स्वच्छता का सीधा संबंध है और एक स्वस्थ जीवन के लिए स्वच्छता एक अति आवश्यक तत्व है, इस कारण यह कहना गलत नहीं होगा कि स्वस्थ देश स्वस्थ नागरिकों का गारंटी कार्ड है। कहने का तात्पर्य साफ है कि जिस देश के नागरिक स्वस्थ होंगे स्वच्छ होंगे, वही देश समृद्ध हो सकेगा, उन्नति कर सकेगा। इस शोध पत्र में भारत सरकार द्वारा चलाए गए स्वच्छ भारत अभियान में दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों के योगदान का अध्ययन किया गया। जिसके अन्तर्गत ये जाना कि स्वच्छ भारत अभियान में दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित समाचार, विज्ञापन, संपादकीय, लेख और प्रकाषित सकारात्मक, नकारात्मक और उदासीन सामग्री का अध्ययन करना।

की वर्ड- स्वच्छ भारत, दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान, आज समाचार पत्र।

साहित्य समीक्षा-

1. श्रीराम, के. (2013) इस शोध में ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम में सूचना, शिक्षा और संचार अभियानों की भूमिका और प्रभावों का अध्ययन व ग्रामीण स्वच्छता के दृष्टिकोण और संचार प्रक्रियाओं के माध्यम से ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के तौर तरीकों को समझना और ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रमों पर आंध्र प्रदेश सरकार का प्रयास आदि का अध्ययन किया गया। इस अनुसन्धान में मेडक जिले के दो गांवों का परिवर्तित स्वच्छता व्यवहार के सन्दर्भ में एक सर्वेक्षण किया गया था।[1]

2. डर्म, अभय बी. (2014) के अनुसार स्वास्थ्य और स्वच्छता मानव जीवन के सबसे महत्वपूर्ण तत्व हैं। उन्होंने स्वास्थ्य से सम्बंधित पत्रिका "यूनिक जनरल ऑफ मेडिकल एंड डेंटल साइंस" में छपे लेख "स्वच्छ भारत मिशन- समय की आवश्यकता" में लिखा कि पूरे देश में स्वच्छता की व्यवस्था करना जन स्वास्थ्य के लिहाज से सर्वाधिक प्रभावी कार्य है। उन्होंने आहवान किया कि अब यह समय की आवश्यकता बन चुका है कि स्वच्छता को सर्वोपरि समझा जाए। लोगों को स्वस्थ वातावरण प्रदान करने हेतु स्वच्छता को जन आंदोलन बनाना जरूरी है। इसमें प्रचार का अपना महत्व है।[2]

3. खान, एम. इसरत व कुमार, सर्वेश (2016) द्वारा स्वच्छ भारत अभियान का ग्राम स्तरीय सूक्ष्म अध्ययन ग्राम नरायनपुर, तहसील बीसलपुर, जनपद पीलीभीत के विशेष सन्दर्भ में किये गए अध्ययन में स्वच्छ भारत अभियान के सम्बन्ध में एवं इसके विभिन्न आयामों के सम्बन्ध में जन सामान्य की जागरूकता एवं प्रतिक्रिया का स्तर जानने का प्रयत्न किया गया। इस योजना के माध्यम से क्या कार्य किये जा रहे हैं? इन लोगों को इस योजना का लाभ मिल पा रहा है? इस योजना से साफ-सफाई के प्रति जागरूकता का मूल्यांकन किया जा रहा है। शोधपत्र में प्राथमिक सर्वेक्षण पद्धति के आधार पर चयनित 50 लोगों से प्राप्त आँकड़ों का प्रयोग करते हुए स्वच्छ भारत अभियान के क्रियान्वयन तथा उसके समाज पर होने वाले प्रभाव का अध्ययन किया गया है।[3]

4. देशमुख, प्रो. सयाली (2016) "औरंगाबाद क्षेत्र के विशेष संदर्भ में स्वच्छ भारत अभियान का प्रभाव" विषय पर आधारित इस शोध पत्र में स्वच्छ भारत के लिए आवंटित किये गए।[4]

शोध के उद्देश्य-

1.दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित कुल सामग्री का अध्ययन करना।

2.दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित समाचार का अध्ययन करना।

3.दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित विज्ञापन का अध्ययन करना।

4.दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित संपादकीय का अध्ययन करना।

5.दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित लेख का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि-

1.अध्ययन का क्षेत्र- प्रस्तुत शोध समस्या स्वच्छ भारत अभियान के प्रति जागरुकता में प्रिन्ट मीडिया का योगदान (वाराणसी शहर से प्रकाशित प्रमुख हिन्दी दैनिक समाचार पत्रों पर आधारित अध्ययन) में वाराणसी शहर से प्रकाशित होने वाले दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों का अध्ययन किया गया है।

2.प्रतिदर्श स्वरुप- प्रतिदर्श के रुप में वाराणसी से प्रकाशित होने वाले दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाषित सामग्री में समाचार, विज्ञापन, संपादकीय, लेख और स्वच्छ भारत अभियान के प्रति सकारात्मक और नकारात्मक सामग्री का चयन किया गया है।

3.अध्ययन का समय- शोध के अध्ययन के समय के लिए 1 अक्टूबर 2018 से लेकर 2 अक्टूबर 2019 तक दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में प्रकाशित सामग्री को एकत्रित किया

गया।

4.शोध प्रारुप- अन्तर्वस्तु या विषय-वस्तु विश्लेषण अनुसंधान की वह विधि है जिसका उद्देश्य प्राप्त सामग्री दस्तावेज, पुस्तकों, अखबारों, पत्रिकाओं तथा अन्य लिखित सामग्री का मात्रात्मक या गुणात्मक विश्लेषण करना है। अन्तर्वस्तु विश्लेषण या सामग्री विश्लेषण मीडिया या विषयवस्तु विश्लेषण संचार शोध की एक अत्यंत ही महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट पद्धति है। इसे सांकेतिकरण के नाम से भी जाना जाता है। इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार की मीडिया सामग्री का संकलन एवं विश्लेषण किया जाता है। यह गुणात्मक हो सकता है, गणनात्मक भी हो सकता है, सैद्धान्तिक हो सकता है और व्यवहारिक भी हो सकता है।

बर्नार्ड बेरेल्सन के अनुसार- ''अन्तर्वस्तु विश्लेषण संचार के व्यक्त संदर्भ के विषयात्मक, क्रमबद्ध एवं परिणामात्मक वर्णन की एक अनुसंधान प्रविधि है।''

जार्ज बी. जीरो के अनुसार- ''अंतर्वस्तु विश्लेषण के द्वारा मीडिया उपभोक्ताओं के बारे में भी अप्रत्यक्ष रुप से यह जाना जा सकता है कि वे क्या पढ़ते हैं, क्या सुनते हैं या क्या देखते हैं।''

तालिका 1 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कुल प्रकाशित सामग्री

क्र	समाचार पत्र	संख्या	प्रतिशत
1	दैनिक जागरण	887	33.36
2	अमर उजाला	623	23.43
3	हिन्दुस्तान	476	17.9
4	आज	673	25.31
	कुल	2659	100

चित्र 1 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कुल प्रकाशित सामग्री

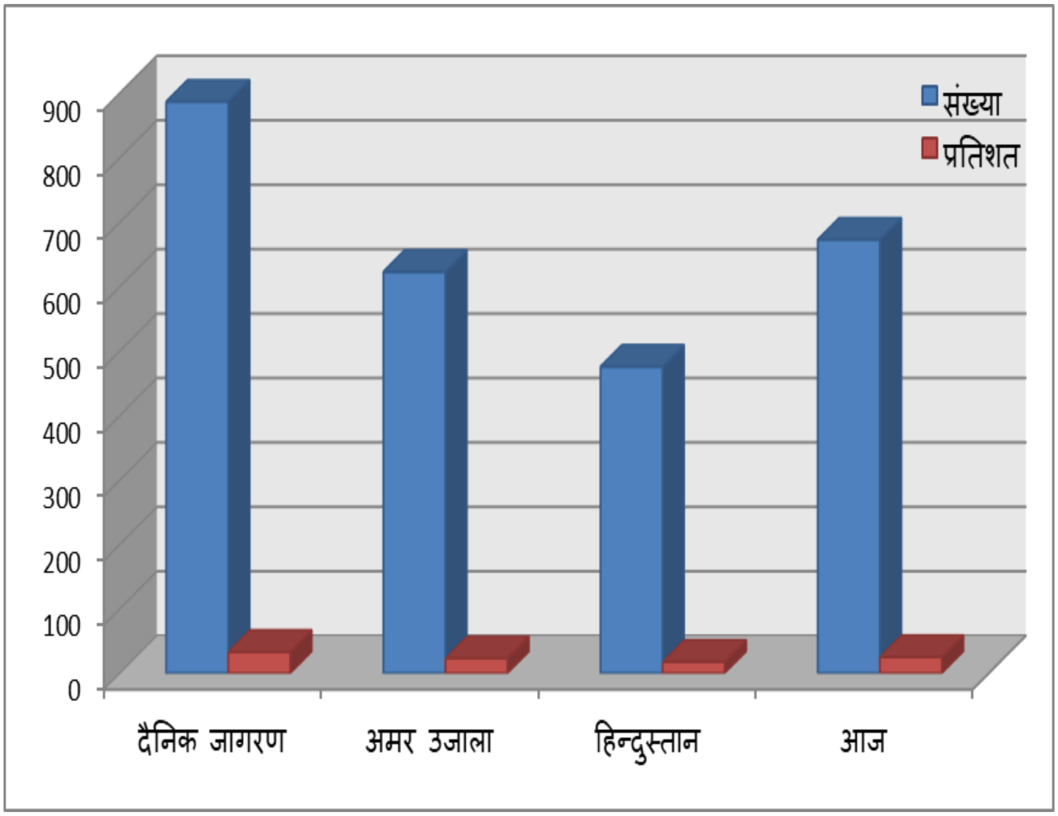

विश्लेषण - उपरोक्त तालिका क्रमांक 1 के आंकड़ों का विश्लेषण दर्शाता है कि स्वच्छ भारत अभियान संबंधी दैनिक जागरण समाचार पत्र ने 887 (33.36 प्रतिशत), अमर उजाला समाचार पत्र ने 623 (23.43 प्रतिशत), हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने 476 (17.9) और आज समाचार पत्र ने 673 (25.31 प्रतिशत) सामग्री प्रकाशित की।

तालिका 2 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित समाचार

वर्ष	माह	दैनिक जागरण		अमर उजाला		हिन्दुस्तान		आज		कुल	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
2018	अक्टूबर	51	4.92	63	6.08	35	3.38	37	3.57	186	17.95
2018	नवम्बर	29	28	68	6.56	31	2.99	29	2.8	157	15.15
2018	दिसम्बर	29	2.8	5	0.48	7	0.68	29	2.8	70	6.76
2019	जनवरी	15	1.45	15	1.45	8	0.77	18	1.74	56	5.41
2019	फरवरी	17	1.64	14	1.35	9	0.87	14	1.35	54	5.21
2019	मार्च	16	1.54	3	0.29	13	1.25	23	2.22	55	5.31
2019	अप्रैल	27	2.61	18	1.74	6	0.58	25	2.41	76	7.34
2019	मई	25	2.41	5	0.48	17	1.64	10	0.97	57	5.5
2019	जून	33	3.19	10	0.97	16	1.54	22	2.12	81	7.82
2019	जुलाई	21	2.03	17	1.64	12	1.16	19	1.83	69	6.66
2019	अगस्त	37	3.57	17	1.64	10	0.97	19	1.82	83	8.01
2019	सितम्बर	28	2.7	17	1.64	19	1.83	28	2.7	92	8.88
कुल		328	31.66	252	24.32	183	17.66	273	26.35	1036	100

चित्र 2 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित समाचार

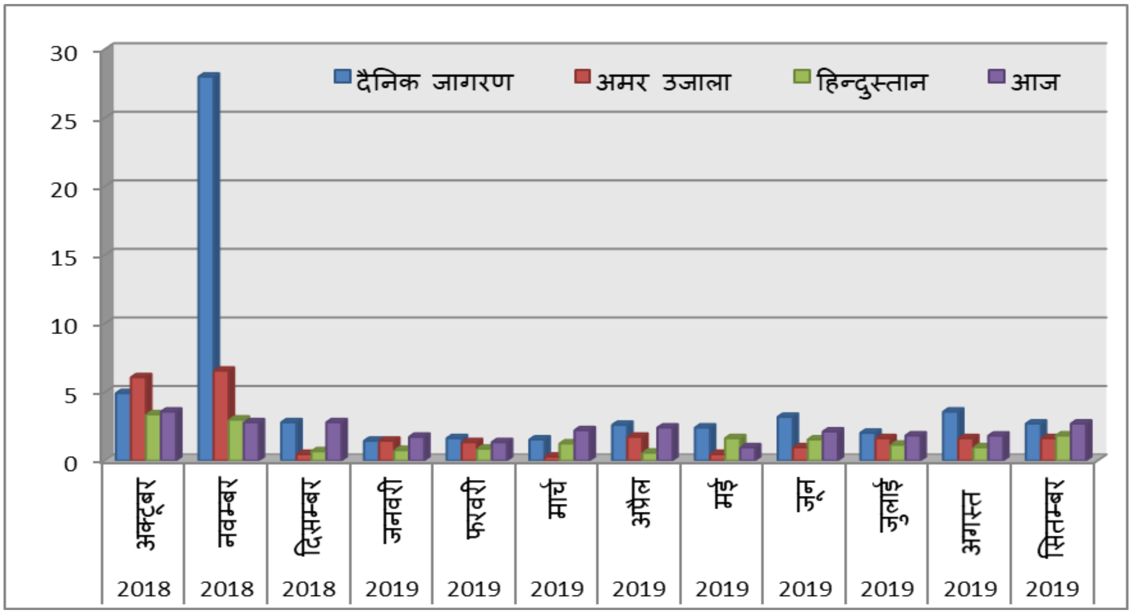

विश्लेषण - उपरोक्त तालिका क्रमांक 2 के आंकड़ों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अक्टूबर माह में दैनिक जागरण में 4.92 प्रतिशत, अमर उजाला में 6.08 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 3.38 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 3.57 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। नवम्बर माह में दैनिक जागरण में 2.8 प्रतिशत, अमर उजाला में 6.56 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 2.99 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.8 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। दिसम्बर माह में दैनिक जागरण में 2.8 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.48 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.68 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.8 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। जनवरी माह में दैनिक जागरण में 1.45 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.45 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.77 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.74 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। फरवरी माह में दैनिक जागरण में 1.64 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.35 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.87 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.35 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। मार्च माह में दैनिक जागरण में 1.54 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.29 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.25 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.22 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। अप्रैल माह में दैनिक जागरण में 2.61 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.74 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.58 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.41 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। मई माह में दैनिक जागरण में 2.41 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.48 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.64 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 0.97 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। जून माह में दैनिक जागरण में 3.19 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.97 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.54 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.12 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। जुलाई माह में दैनिक जागरण में 2.03 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.64 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.16 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.83 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। अगस्त माह में दैनिक जागरण में 3.57 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.64 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.97 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.82 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए। सितम्बर माह में दैनिक जागरण में 2.7 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.64 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.83 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.7 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी समाचार प्रकाशित हुए।

तालिका क्रमांक 3 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित विज्ञापन

वर्ष	माह	दैनिक जागरण		अमर उजाला		हिन्दुस्तान		आज		कुल	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
2018	अक्टूबर	7	1.99	8	2.27	15	4.26	8	2.27	38	10.8
2018	नवम्बर	3	0.85	8	2.27	12	3.41	8	2.27	31	8.81
2018	दिसम्बर	18	5.11	23	6.53	0	0	13	3.69	54	15.32
2019	जनवरी	28	7.95	24	6.82	25	7.1	22	6.25	99	28.13
2019	फरवरी	6	1.7	6	1.7	0	0	5	1.42	17	4.83
2019	मार्च	4	1.14	5	1.42	5	1.42	5	1.42	19	5.4
2019	अप्रैल	0	0	0	0	2	0.57	3	0.85	5	1.42
2019	मई	0	0	0	0	4	1.14	5	1.42	9	2.56
2019	जून	0	0	0	0	0	0	1	0.28	1	0.28
2019	जुलाई	4	1.14	0	0	6	1.7	1	0.28	11	3.13
2019	अगस्त	16	4.55	9	2.56	16	4.55	2	0.57	43	12.22
2019	सितम्बर	8	2.27	3	0.85	6	1.7	8	2.27	25	7.1
कुल		94	26.7	86	24.43	91	25.85	81	23.1	352	100

चित्र 3 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित विज्ञापन

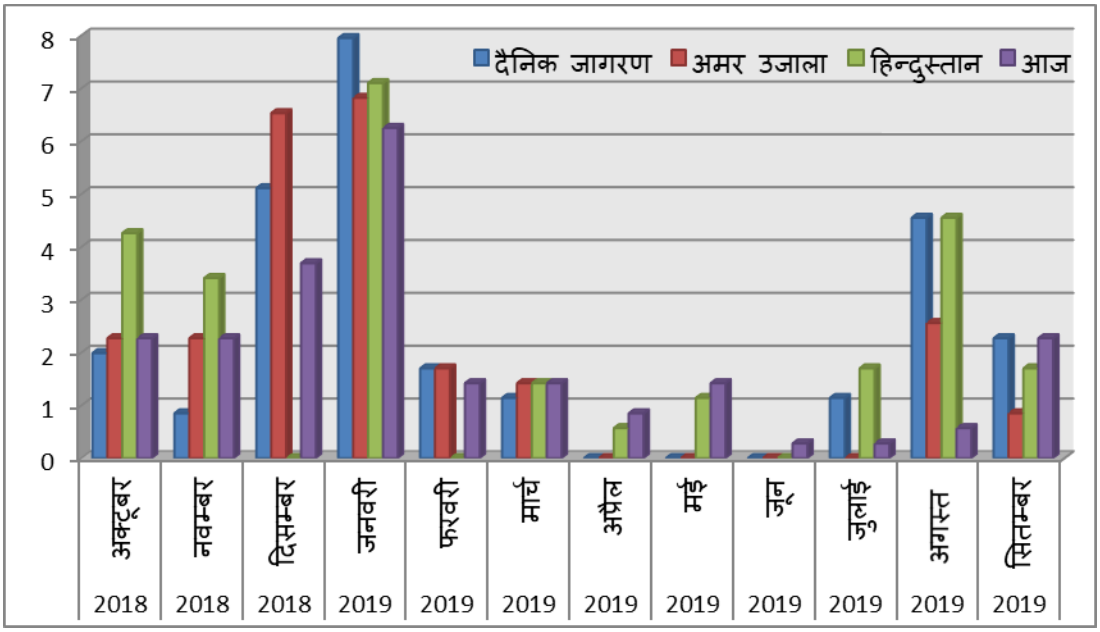

विश्लेषण- उपरोक्त तालिका क्रमांक 4.5.4 के आंकड़ों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अक्टूबर माह में दैनिक जागरण में 9.09 प्रतिशत, अमर उजाला में 13.64 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 13.64 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 18.18 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित हुए। नवम्बर माह में दैनिक जागरण में 4.55 प्रतिशत, अमर उजाला में 4.55 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित हुए। जबकि हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में कोई भी स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुआ। दिसम्बर माह में आज समाचार पत्र में 4.55 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित हुए। जबकि दैनिक जागरण, अमर उजाला और हिन्दुस्तान समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुए। जनवरी माह में आज समाचार पत्र में 4.55 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित हुए। जबकि दैनिक जागरण, अमर उजाला और हिन्दुस्तान समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुए। फरवरी माह में दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुआ। मार्च माह में दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुआ। अप्रैल माह में दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुआ। मई माह में आज समाचार पत्र में 4.55 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित हुए। जबकि दैनिक जागरण, अमर उजाला और हिन्दुस्तान समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुए। जून माह में हिन्दुस्तान समाचार पत्र में 4.55 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित हुए। जबकि दैनिक जागरण, अमर उजाला और आज समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुए। जुलाई माह में दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुआ। अगस्त माह में अमर उजाला में 4.55 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित हुए। जबकि दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुआ। सितम्बर माह में दैनिक जागरण में 4.44 प्रतिशत, अमर

उजाला में 4.55 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 4.55 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित हुए। जबकि आज समाचार पत्र में कोई भी स्वच्छ भारत अभियान संबंधी संपादकीय प्रकाशित नहीं हुआ।

तालिका क्रमांक 5 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित लेख

वर्ष	माह	दैनिक जागरण		अमर उजाला		हिन्दुस्तान		आज		कुल	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
2018	अक्टूबर	4	8.7	6	13.04	2	4.35	7	15.22	19	41.3
2018	नवम्बर	2	4.35	0	0	0	0	2	4.35	4	8.7
2018	दिसम्बर	1	2.17	0	0	0	0	4	8.7	5	10.87
2019	जनवरी	3	6.52	0	0	0	0	1	2.17	4	8.7
2019	फरवरी	0	0	0	0	0	0	0	0	0	0
2019	मार्च	1	2.17	1	2.17	0	0	0	0	2	4.35
2019	अप्रैल	1	2.17	1	2.17	0	0	0	0	2	4.35
2019	मई	1	2.17	0	0	0	0	0	0	1	2.17
2019	जून	0	0	0	0	0	0	2	4.35	2	4.35
2019	जुलाई	0	0	0	0	0	0	1	2.17	1	2.17
2019	अगस्त	0	0	1	2.17	0	0	0	0	1	2.17
2019	सितम्बर	1	2.17	0	0	1	2.17	3	6.52	5	10.87
कुल		14	30.43	9	19.57	3	6.52	20	43.48	46	100

चित्र 5 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी प्रकाशित लेख

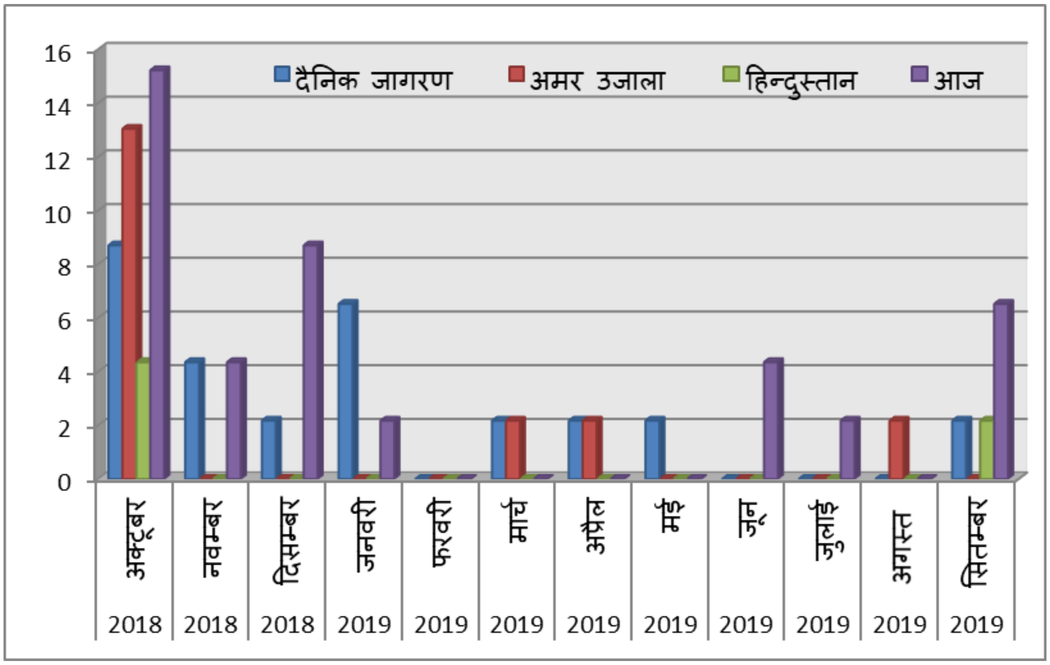

विश्लेषण- उपरोक्त तालिका क्रमांक 5 के आंकड़ों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अक्टूबर माह में दैनिक जागरण में 8.7 प्रतिशत, अमर उजाला में 13.04 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 4.35 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 15.22 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। नवम्बर माह में दैनिक जागरण में 4.35 और आज समाचार पत्र में 4.35 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाषित हुए। जबकि अमर उजाला और हिन्दुस्तान समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ। दिसम्बर माह में दैनिक जागरण में 2.17 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 8.7 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। जबकि अमर उजाला और हिन्दुस्तान समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ। जनवरी माह में दैनिक जागरण में 6.52 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.17 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। जबकि अमर उजाला और हिन्दुस्तान समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ। फरवरी माह में दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ। मार्च माह में दैनिक जागरण में 2.17 प्रतिशत और अमर उजाला में 2.17 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। जबकि हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ। अप्रैल माह में दैनिक जागरण में 2.17 प्रतिशत और अमर उजाला में 2.17 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। जबकि हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ। मई माह में दैनिक जागरण में 2.17 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। जबकि अमर अजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ। जून माह में आज समाचार पत्र में 4.35 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। जबकि दैनिक जागरण, अमर उजाला और हिन्दुस्तान समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुए। जुलाई माह में आज समाचार पत्र में 2.17 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। जबकि दैनिक जागरण, अमर उजाला और हिन्दुस्तान समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुए। अगस्त माह में अमर उजाला में 2.17 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। जबकि दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में स्वच्छ भारत अभियान संबंधी कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुए। सितम्बर माह में दैनिक जागरण में 2.17 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 2.7 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 6.52 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी लेख प्रकाशित हुए। जबकि अमर उजाला में कोई भी लेख प्रकाशित नहीं हुआ।

तालिका क्रमांक 6 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधित सकारात्मक सामग्री

वर्ष	माह	दैनिक जागरण		अमर उजाला		हिन्दुस्तान		आज		कुल	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
2018	अक्टूबर	98	4.83	93	4.59	72	3.55	63	3.11	326	16.07
2018	नवम्बर	59	2.91	81	3.99	54	2.66	57	2.81	251	12.38
2018	दिसम्बर	81	3.99	19	0.94	10	0.49	77	3.8	187	9.22
2019	जनवरी	69	3.4	38	1.87	39	1.92	42	2.07	188	9.27
2019	फरवरी	39	1.92	23	1.13	9	0.44	22	1.08	93	4.59
2019	मार्च	25	1.23	8	0.39	27	1.33	29	1.43	89	4.39
2019	अप्रैल	45	2.22	24	1.18	10	0.49	31	1.53	110	5.42
2019	मई	50	2.47	6	0.3	30	1.48	18	0.89	104	5.13
2019	जून	48	2.37	31	1.53	21	1.04	55	2.71	155	7.64
2019	जुलाई	44	2.17	34	1.68	35	1.73	29	1.43	142	07
2019	अगस्त	102	5.03	41	2.02	31	1.53	21	1.04	195	9.62
2019	सितम्बर	52	2.56	37	1.82	36	1.78	63	3.11	188	9.27
कुल		712	35.11	435	21.45	374	18.44	507	25	2028	100

विश्लेषण- उपरोक्त तालिका क्रमांक 6 के आंकड़ों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अक्टूबर माह में दैनिक जागरण में 4.83 प्रतिशत, अमर उजाला में 4.59 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 3.55 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 6.25 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। नवम्बर माह में दैनिक जागरण में 2.91 प्रतिशत, अमर उजाला में 3.99 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 2.66 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.81 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। दिसम्बर माह में दैनिक जागरण में 3.99 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.94 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.49 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 3.8 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। जनवरी माह में दैनिक जागरण में 3.4 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.87 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.92 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.07 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। फरवरी माह में दैनिक जागरण में 1.92 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.13 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.44 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.08 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। मार्च माह में दैनिक जागरण में 1.23 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.39 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.33 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.43 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। अप्रैल माह में दैनिक जागरण में 2.22 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.18 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.49 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.53 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। मई माह में दैनिक जागरण में 2.47 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.3 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.48 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 0.89 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। जून माह में दैनिक जागरण में 2.37 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.53 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.04 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.71 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। जुलाई माह में दैनिक जागरण में 2.17 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.68 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.73 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.43 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। अगस्त माह में दैनिक जागरण में 5.03 प्रतिशत, अमर उजाला में 2.02 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.53 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.04 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। सितम्बर माह में दैनिक जागरण में 2.56 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.82 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.78 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 3.11 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई।

तालिका क्रमांक 7 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधित नकारात्मक सामग्री

वर्ष	माह	दैनिक जागरण		अमर उजाला		हिन्दुस्तान		आज		कुल	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
2018	अक्टूबर	19	3.78	25	4.97	12	2.39	21	4.17	77	15.31
2018	नवम्बर	11	2.19	15	2.98	19	3.78	8	1.59	53	10.54
2018	दिसम्बर	19	3.78	14	2.78	1	0.2	13	2.58	47	9.34
2019	जनवरी	9	1.79	9	1.79	3	0.6	11	2.19	32	6.36
2019	फरवरी	3	0.6	10	1.99	5	0.99	9	1.79	27	5.37
2019	मार्च	2	0.4	3	0.6	3	0.6	8	1.59	16	3.18
2019	अप्रैल	9	1.79	14	2.78	4	0.8	9	1.79	36	7.16
2019	मई	11	2.19	3	0.6	6	1.19	9	1.79	29	5.77
2019	जून	10	1.99	7	1.39	5	0.99	15	2.98	37	7.36
2019	जुलाई	14	2.78	20	3.98	6	1.19	9	1.79	49	9.74
2019	अगस्त	16	3.18	7	1.39	9	1.79	9	1.79	41	8.15
2019	सितम्बर	11	2.19	23	4.57	8	1.59	17	3.38	59	11.73
कुल		134	26.64	150	29.82	81	16.1	138	27.44	503	100

विश्लेषण- उपरोक्त तालिका क्रमांक 7 के आंकड़ों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अक्टूबर माह में दैनिक जागरण में 3.78 प्रतिशत, अमर उजाला में 4.97 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 3.39 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 4.17 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। नवम्बर माह में दैनिक जागरण में 2.19 प्रतिशत, अमर उजाला में 2.98 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 3.78 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.59 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। दिसम्बर माह में दैनिक जागरण में 3.78 प्रतिशत, अमर उजाला में 2.78 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.2 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.58 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। जनवरी माह में दैनिक जागरण में 1.79 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.79 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.6 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.19 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। फरवरी माह में दैनिक जागरण में 0.6 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.99 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.99 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.79 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। मार्च माह में दैनिक जागरण में 0.4 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.6 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.6 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.59 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। अप्रैल माह में दैनिक जागरण में 1.79 प्रतिशत, अमर उजाला में 2.78 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.8 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.79 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। मई माह में दैनिक जागरण में 2.19 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.6 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.19 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.79 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। जून माह में दैनिक जागरण में 1.99 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.39 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.99 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.98 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। जुलाई माह में दैनिक जागरण में 2.78 प्रतिशत, अमर उजाला में 3.98 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.19 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.79 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। अगस्त माह में दैनिक जागरण में 3.18 प्रतिशत, अमर उजाला में 1.39 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.79 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.79 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई। सितम्बर माह में दैनिक जागरण में 2.19 प्रतिशत, अमर उजाला में 4.57 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.59 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 3.38 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी नकारात्मक सामग्री प्रकाशित हुई।

तालिका क्रमांक 8 दैनिक जागरण, अमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्र में स्वच्छ भारत अभियान संबंधित उदासीन सामग्री

वर्ष	माह	दैनिक जागरण		अमर उजाला		हिन्दुस्तान		आज		कुल	
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
2018	अक्टूबर	4	3.13	10	7.81	4	3.13	3	2.34	21	16.41
2018	नवम्बर	0	0	2	1.56	6	4.69	2	1.56	10	7.81
2018	दिसम्बर	6	4.69	2	1.56	0	0	0	0	8	6.25
2019	जनवरी	4	3.13	5	3.91	1	0.78	4	3.13	14	10.94
2019	फरवरी	1	0.78	0	0	0	0	0	0	1	0.78
2019	मार्च	3	2.34	1	0.78	0	0	4	3.13	8	6.25
2019	अप्रैल	3	2.34	1	0.78	2	1.56	5	3.91	11	8.59
2019	मई	0	0	1	0.78	3	2.34	2	1.56	6	4.69
2019	जून	4	3.13	0	0	0	0	3	2.34	7	5.47
2019	जुलाई	9	7.03	4	3.13	0	0	2	1.56	15	11.72
2019	अगस्त	6	4.69	5	3.91	2	1.56	3	2.34	16	12.5
2019	सितम्बर	1	0.78	7	5.47	3	2.34	0	0	11	8.59
कुल			41	32.03	38	29.69	21	16.41	28	21.88	128

विश्लेषण- उपरोक्त तालिका क्रमांक 8 के आंकड़ों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि अक्टूबर माह में दैनिक जागरण में 3.13 प्रतिशत, अमर उजाला में 7.81 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 3.13 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.34 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। नवम्बर माह में अमर उजाला में 1.56 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 4.69 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.56 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। जबकि दैनिक जागरण समाचार पत्र में कोई भी उदासीन सामग्री प्रकाशित नहीं हुई। दिसम्बर माह में दैनिक जागरण में 4.69 प्रतिशत और अमर उजाला में 1.56 प्रतिशत समाचार स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। जबकि हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में कोई भी उदासीन सामग्री प्रकाशित नहीं हुई। जनवरी माह में दैनिक जागरण में 3.13 प्रतिशत, अमर उजाला में 3.91 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 0.78 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 3.13 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। फरवरी माह में दैनिक जागरण में 0.78 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। जबकि उमर उजाला, हिन्दुस्तान और आज समाचार पत्रों में कोई भी उदासीन सामग्री प्रकाशित नहीं हुई। मार्च माह में दैनिक जागरण में 2.34 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.78 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 3.13 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। जबकि हिन्दुस्तान समाचार पत्र में कोई भी उदासीन सामग्री प्रकाशित नहीं हुई। अप्रैल माह में दैनिक जागरण में 2.34 प्रतिशत, अमर उजाला में 0.78 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.56 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 3.91 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। मई माह में अमर उजाला में 0.78 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 2.34 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.56 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। जबकि दैनिक जागरण में कोई भी उदासीन सामग्री प्रकाशित नहीं हुई। जून माह में दैनिक जागरण में 3.13 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.34 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। जबकि अमर उजाला और हिन्दुस्तान समाचार पत्रों में कोई भी उदासीन सामग्री प्रकाशित नहीं हुई। जुलाई माह में दैनिक जागरण में 7.03 प्रतिशत, अमर उजाला में 3.13 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 1.56 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। जबकि हिन्दुस्तान समाचार पत्र में कोई भी उदासीन सामग्री प्रकाशित नहीं हुई। अगस्त माह में दैनिक जागरण में 4.69 प्रतिशत, अमर उजाला में 3.91 प्रतिशत, हिन्दुस्तान में 1.56 प्रतिशत और आज समाचार पत्र में 2.3 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। सितम्बर माह में दैनिक जागरण में 0.78 प्रतिशत, अमर उजाला में 5.47 प्रतिशत और हिन्दुस्तान में 2.34 प्रतिशत स्वच्छ भारत अभियान संबंधी उदासीन सामग्री प्रकाशित हुई। जबकि आज समाचार पत्र में कोई भी उदासीन सामग्री प्रकाशित नहीं हुई।

निष्कर्ष-

- स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सबसे अधिक दैनिक जागरण समाचार पत्र ने 887 (33.36 प्रतिशत), दूसरे स्थान पर आज समाचार पत्र ने 673 (25.31 प्रतिशत), तीसरे स्थान पर अमर उजाला समाचार पत्र ने 623 (23.43 प्रतिशत) और चौथे स्थान पर हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने 476 (17.9) और सामग्री प्रकाशित की।
- स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सबसे अधिक समाचार दैनिक जागरण ने 328 (31.66 प्रतिशत), दूसरे स्थान पर आज समाचार पत्र ने 273 (26.36 प्रतिशत), तीसरे स्थान पर अमर उजाला ने 252 (24.32 प्रतिशत) और चौथे स्थान पर हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने 183 (17.66 प्रतिशत) प्रकाशित किए।
- स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सबसे अधिक विज्ञापन दैनिक जागरण ने 94 (26.7 प्रतिशत), दूसरे स्थान पर हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने 91 (25.85 प्रतिशत), तीसरे स्थान पर अमर उजाला ने 86 (24.43 प्रतिशत) और चौथे स्थान पर आज समाचार पत्र ने 81 (23.1 प्रतिशत) प्रकाशित किए।
- स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सबसे अधिक संपादकीय आज समाचार पत्र ने 7 (31.82 प्रतिशत), दूसरे स्थान पर अमर उजाला समाचार पत्र ने 6 (27.27 प्रतिशत), तीसरे स्थान हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने 5 (27.73 प्रतिशत) और चौथे स्थान पर दैनिक जागरण समाचार पत्र ने 4 (18.18 प्रतिशत) प्रकाशित किए।
- स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सबसे अधिक लेख आज समाचार पत्र ने 20 (43.48 प्रतिशत), दूसरे स्थान पर दैनिक जागरण ने 14 (30.43 प्रतिशत), तीसरे स्थान पर अमर उजाला ने 9 (19.57 प्रतिशत) और चौथे स्थान पर हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने 3

(6.52 प्रतिशत) प्रकाशित किए।

- स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सबसे अधिक सकारात्मक सामग्री दैनिक जागरण समाचार पत्र ने 712 (35.11 प्रतिशत), दूसरे स्थान पर आज समाचार पत्र ने 507 (25 प्रतिशत), तीसरे स्थान पर अमर उजाला ने 435 (21.45 प्रतिशत) और चौथे स्थान पर हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने 374 (18.44 प्रतिशत) प्रकाशित की।
- स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सबसे अधिक नकारात्मक सामग्री अमर उजाला समाचार पत्र ने 150 (29.82 प्रतिशत), दूसरे स्थान पर आज समाचार पत्र ने 138 (27.44 प्रतिशत), तीसरे स्थान पर दैनिक जागरण ने 134 (26.64 प्रतिशत) और चौथे स्थान पर हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने 81 (16.1 प्रतिशत) प्रकाशित की।
- स्वच्छ भारत अभियान संबंधी सबसे अधिक उदासीन सामग्री दैनिक जागरण ने 41 (32.03 प्रतिशत), दूसरे स्थान पर अमर उजाला ने 38 (29.69 प्रतिशत), तीसरे स्थान पर आज समाचार पत्र ने 28 (21.88 प्रतिशत) और चौथे स्थान पर हिन्दुस्तान समाचार पत्र ने 21 (16.41 प्रतिशत) प्रकाशित की।

सन्दर्भ-

1. Shriram, K. (2013). Role and Impact of IEC Campaign on Rural Sanitation in AP. (Ph.D. Study), Department of Communication & Journalism, University College of Arts & Social Sciences, Osmania University, Hyderabad
2. Darm, B. A. (2014). Swachh Bharat Mission for India's Sanitation Problem: Need of the Hour. Unique Journal of Medical and Dental Sciences, Vol- 02(04) P. 58-60. Retrived from- www.ujconline.net
3. Khan, M.E. & Kumar,S. (2016). International Journal of Advanced Education and Research (2016). Vol. 1, Issue 8 P.55-61.
4. Deshmukh, S. (2016). Impact of Swachh Bharat Abhiyan with special reference to Aurangabad region. International Research Journal of Commerce Arts and Science, Volume 7, Issue 6. http://www.casirj.com
5. दैनिक जागरण समाचार पत्र, वाराणसी।
6. अमर उजाला समाचार पत्र, वाराणसी ।
7. हिन्दुस्तान समाचार पत्र, वाराणसी।
8. आज समाचार पत्र, वाराणसी।

****

लोकसभा चुनाव 2019 में बीजेपी और कांग्रेस के जन अभियान में सोशल मीडिया की भूमिका,

-नितिन भगौरिया
अतिथि व्याख्याता, कर्मवीर विद्यापीठ (एम.सी.यू)

सार

21वीं सदी में सोशल मीडिया ने संचार के क्षेत्र में एक क्रांति ला दी है। शुरुआत में सोशल मीडिया का उपयोग सिर्फ संचार के माध्यम के रूप में मनोरंजन के लिए किया जाता था। परन्तु वर्तमान समय में सोशल मीडिया संचार का एक प्रमुख माध्यम बन गया है, क्या बच्चें, क्या नौजवान और क्या बुजुर्ग सब पर सोशल मीडिया का नशा सर चढ़ कर बोल रहा है। ऐसे में राजनीतिक दल भी अपने चुनाव प्रचार के लिए सोशल मीडिया का उपयोग प्रचुर मात्रा में कर रहें हैं, क्योंकि सोशल मीडिया के माध्यम से मतदाता तक सीधे तौर पर जुड़ सकते हैं वो भी बिना किसी द्वारपाल के। इस शोध पत्र में लोकसभा चुनाव 2019 में बीजेपी और कांग्रेस के जन अभियान में सोशल मीडिया की भूमिका, उपयोगिता एवं प्रभाव का अध्ययन किया गया है तथा साथ में ये भी जानने का प्रयास किया गया है कि सोशल मीडिया मतदान व्यवहार को परिवर्तित करने में सक्षम है या नहीं।

की वर्ड - बीजेपी, कांग्रेस, सोशल मीडिया।

साहित्य समीक्षा-

1. रॉबिन एफिंगः जोस वैन हिल्सबर्ग और थियो हुइबर्स ने ''सोशल मीडिया एण्ड पॉलिटिकलः आर फेसबुक, ट्विटर एण्ड यूट्यूब डेमोक्रेटीजिंग आवर पॉलिटिकल सिस्टम्स'' (2011) शीर्षक के अन्तर्गत शोध किया। शोध का उद्देश्य नीदरलैंड के 2010 और 2011 के चुनाव परिणाम में सोशल मीडिया और भागीदारी के संबंध में एक साहित्य समीक्षा के परिणाम को प्रस्तुत करना है। शोध में पाया गया कि सोशल मीडिया ने स्थानीय चुनावों (2010/2011) के दौरान मतदान के व्यवहार को महत्वपूर्ण रुप से प्रभावित नहीं किया। लेकिन राष्ट्रीय चुनाव के दौरान, उच्च सोशल मीडिया का उपयोग करने वाले राजनेताओं को सोशल मीडिया का उपयोग नहीं करने वाले राजनेताओं से अधिक वोट मिले।

2. सौमन होंग और डैनियल नाडलर (2012) ने शीर्षक "कौन से उम्मीदवार चुनाव अभियान में ऑन लाइन सार्वजनिक चर्चा करते हैं"? 2012 के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवारों द्वारा सोशल मीडिया का उपयोग के अन्तर्गत शोध किया। इस शोध का उद्देश्य यह जानना है कि अमेरिका के राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार सार्वजनिक चर्चा करते है। यह जानने के प्रयास किया गया कि क्या सोशल मीडिया चुनाव को प्रभावित कर सकती है। शोध यह अनुभवजन्य साक्ष्य प्रदान कराता है। शोधकर्ता ने तथ्यों को एकत्रित करने के लिए सोशल मीडिया साइट "ट्विटर" का अध्ययन किया। अपने इस शोध में शोधकर्ता ने पाया कि चुनावी जन अभियान में सोशल मीडिया मतदाताओं पर न्यूनतम ही प्रभाव पड़ता है।

3. सेबस्टियन स्टीय अर्निम ब्लेयर हाइको लिट्ज़ और मार्कस स्ट्रोहमेयर ने "इलेक्शन कैंपेनिंग ऑन सोशल मीडियाः पॉलीटिशियन, ऑडियंस एण्ड दी मेडिएशन ऑफ पॉलिटिकल कम्युनिकेशलन ऑन फेसबुक एण्ड ट्विटर" 2013 शीर्षक के अन्तर्गत शोध किया। इस शोध का उद्देश्य 2013 में हुए जर्मन संघीय चुनाव में राजनेता चुनाव अभियान के लिए सोशल मीडिया का उपयोग कैसे करते हैं। फेसबुक और ट्विटर की सहायता से उनका संचार किस हद तक प्रभावी रहा। शोध में पाया गया कि राजनेता विभिन्न उद्देश्यो के लिए सोशल मीडिया (फेसबुक और ट्विटर) उपयोग करते हैं। सोशल मीडिया पर राजनीतिक संचार राजनेता और मतदाताओं के बीच मध्यस्थता का कार्य करता है।

4. ऐंद्रिला विश्वसा निखिल इंगल और मौसमी रॉय (2014) ने शीर्षक ''वोटिंग बिहेवियर पर सोशल मीडिया का प्रभाव'' के अन्तर्गत शोध किया। इस शोध का उद्देश्य भारत में 16वें लोकसभा चुनाव 2014 में सोशल मीडिया के माध्यम से युवा मतदाताओं को प्रभावित करना और उनका मत हासिल करना है। शोधकर्ता द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग करते हुए प्रश्नावली के माध्यम से 18 से 30 वर्ष की आयु वाले उत्तरदाताओं से आंकड़ों का संग्रह किया गया। इस अनुसंधान में शोधकर्ता का केन्द्र बिन्दु युवा वोटर या पहली बार मतदान करने वाले वोटर थे। शोध में पाया गया कि सोशल मीडिया युवा वोटर या पहली बार मतदान करने

वाले वोटरों पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। सोशल मीडिया ने परम्परागत मीडिया को प्रतिस्थापित कर दिया है। लक्षित दर्शक (जनसमूह) तक पहुंचने का सोशल मीडिया सबसे अच्छा माध्यम है।

शोध के उद्देश्य-

- राजनीतिक दल स्वयं के जन अभियान के लिए न्यू मीडिया का सकारात्मक एवं विरोधी दल के लिए नकारात्मक उपयोग करते हैं।
- न्यू मीडिया पर प्रकाशित/प्रसारित विषयवस्तु पर लोगों की प्रतिक्रिया सकारात्मक होती है।
- न्यू मीडिया पर प्रकाशित/प्रसारित विषयवस्तु में दृश्य-श्रव्य का प्रयोग अधिक किया जाता है।
- न्यू मीडिया का प्रयोग सत्ताधारी दल अधिक करता है। न्यू मीडिया चुनाव को प्रभावित करने में सक्षम है।

शोध प्रविधि- लोकसभा चुनाव 2019 में बीजेपी और कांग्रेस के जन अभियान में सोशल मीडिया की भूमिका, उपयोगिता एवं प्रभाव का अध्ययन के विषय पर प्रस्तुत शोध पत्र में सोशल मीडिया की भूमिका, उपयोगिता और प्रभाव का अध्ययन करने के वर्ष 2021, जुलाई माह में गूगल फॉर्म पर प्रश्नावली का निर्माण कर ऑन लाइन सर्वेक्षण किया गया। तथ्यों के संकलन के लिए शोधकर्ता ने प्रश्नावली के लिंक को अपने फेसबुक अकाउंट, व्हाट्सएप और टेलीग्राम जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म माध्यम का उपयोग करके 15 दिनों की समय-सीमा में उत्तरदाताओं से तथ्यों का संकलन किया गया। इस समय समय-सीमा में 204 उत्तरदाताओं ने सर्वेक्षण में भाग लिया। प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण हेतु वर्णनात्मक शोध प्रारुप का उपयोग किया गया।

तालिका 1 उत्तरदाताओं का लिंग

क्र.	लिंग	संख्या	प्रतिशत
1	महिला	56	27.9
2	पुरुष	145	71.6
3	अन्य	01	0.5
	कुल	202	100

चित्र 1 उत्तरदाताओं का लिंग

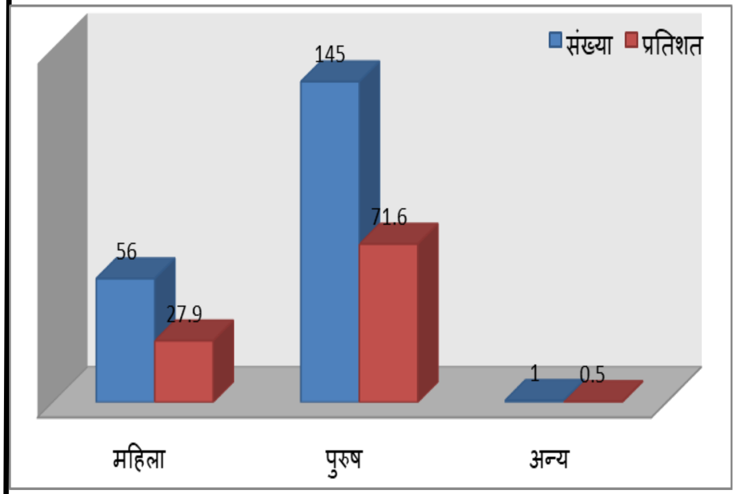

विश्लेषण- 204 उत्तरदाताओं में से 202 उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न पर अपनी प्रतिक्रिया दी। जिसमें 71.6 प्रतिशत पुरुष, 27.9 प्रतिशत महिला और 0.5 प्रतिशत अन्य लिंग के उत्तरदाता हैं।

तालिका 2 उत्तरदाताओं की आयु

क्र.	आयु	संख्या	प्रतिशत
1	20 से 30 वर्ष	112	55.7
2	31 से 40 वर्ष	50	24.8
3	41 से 50 वर्ष	19	9.5
4	50 वर्ष से अधिक	20	10
	कुल	201	100

चित्र 2 उत्तरदाताओं की आयु

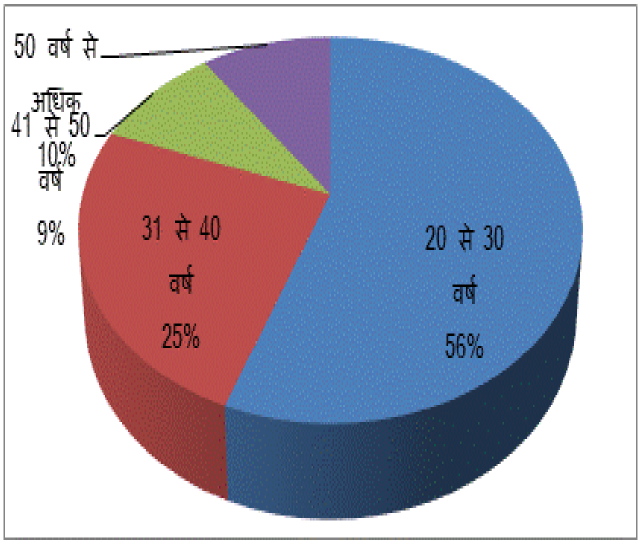

विश्लेषण- 204 उत्तरदाताओं में से इस प्रश्न पर 201 उत्तरदाताओं ने अपनी प्रतिक्रिया दी। जिसमें सबसे अधिक 55.7 प्रतिशत 20 से 30 वर्ष की आयु के उत्तरदाता है, दूसरे स्थान पर 24.8 प्रतिशत 31 से 40 वर्ष की आयु के उत्तरदाता हैं एवं तीसरे स्थान पर 10 प्रतिशत उत्तरदाता 50 वर्ष से अधिक आयु के हैं। वहीं सबसे कम केवल 9.5 प्रतिशत उत्तरदाता 41 से 50 वर्ष की आयु के हैं।

तालिका 3 उत्तरदाताओं का निवास

क्र.	निवास	संख्या	प्रतिशत
1	शहरी	134	66.3
2	ग्रामीण	41	20.3
3	अर्ध शहरी/अर्ध ग्रामीण	27	13.4
	कुल	202	100

विश्लेषण- 204 उत्तरदाताओं में से इस प्रश्न पर 202 उत्तरदाताओं ने अपनी प्रतिक्रिया दी। आंकड़ों से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं में सबसे अधिक 66.3 प्रतिशत शहरी हैं, दूसरे स्थान पर 20.3 प्रतिशत उत्तरदाता ग्रामीण हैं। वहीं सबसे कम केवल 13.4 प्रतिशत उत्तरदाता अर्ध शहरी/अर्ध ग्रामीण हैं।

तालिका 4 उत्तरदाताओं का धर्म

क्र.	**धर्म**	**संख्या**	**प्रतिशत**
1	हिन्दू	180	89.1
2	मुस्लिम	18	8.9
3	सिख	00	00
4	ईसाई	00	00
5	अन्य	04	02
	कुल	202	100

चित्र 3 उत्तरदाताओं का धर्म

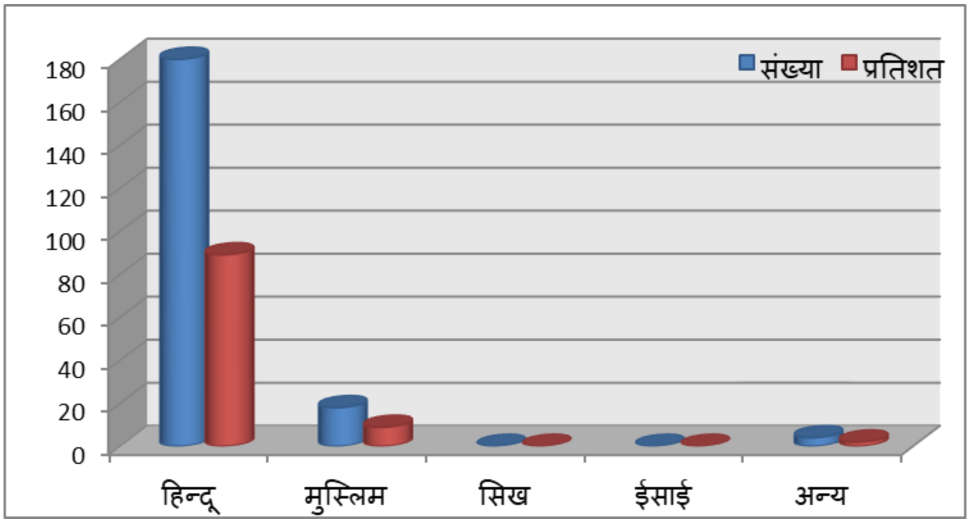

विश्लेषण- 204 उत्तरदाताओं में से 202 उत्तरदाताओं ने ने अपनी प्रतिक्रिया दी। जिसमें सबसे अधिक 89.1 प्रतिशत हिन्दू, दूसरे स्थान पर 8.9 प्रतिशत मुस्लिम एवं तीसरे स्थान पर 02 प्रतिशत अन्य धर्म के उत्तरदाता हैं। वहीं सिख और ईसाई धर्म का कोई भी उत्तरदाता नहीं हैं।

तालिका 5 उत्तरदाताओं की शिक्षा

क्र.	शिक्षा	संख्या	प्रतिशत
1	हाई स्कूल से कम	05	2.5
2	12वीं तक	11	5.5
3	स्नातक	66	32.7
4	परास्नातक	96	47.8
5	डिप्लोमा	08	04
6	अन्य	15	7.5

विश्लेषण- 204 उत्तरदाताओं में से 201 उत्तरदाताओं ने अपनी प्रतिक्रिया दी। प्राप्त आंकड़ों से ज्ञात होता है कि शिक्षा के आधार पर सबसे अधिक 47.8 प्रतिशत परास्नातक, दूसरे स्थान पर 32.7 प्रतिशत स्नातक एवं तीसरे स्थान पर 7.5 प्रतिशत इण्टरमीडिएट (12वीं) वहीं सबसे कम केवल 2.5 प्रतिशत डिप्लोमा प्राप्त उत्तरदाता हैं।

तालिका 6 उत्तरदाताओं की सामाजिक स्थिति

क्र.	सामाजिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1	सामान्य	108	53.5
2	ओबीसी	54	25.7
3	एससी/एसटी	41	20.8
	कुल	203	100

विश्लेषण- 204 उत्तरदाताओं में से इस प्रश्न पर 203 उत्तरदाताओं ने अपनी प्रतिक्रिया दी। जिसमें सबसे अधिक 53.5 प्रतिशत सामान्य, दूसरे स्थान पर 25.7 प्रतिशत ओबीसी एवं तीसरे स्थान पर 20.8 प्रतिशत एससी/एसटी उत्तरदाता हैं।

तालिका 7 सोशल मीडिया का उपयोग

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
क्या आप सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं?	हाँ	196	96.1
	नहीं	08	3.9
	कुल	204	100

विश्लेषण- प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 96.1 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। वहीं केवल 3.9 प्रतिशत उत्तरदाता सोशल मीडिया का उपयोग नहीं करते हैं।

तालिका 8 सोशल मीडिया प्लेटफार्म का उपयोग

प्रश्न	उत्तर	प्रतिशत
आप सोशल मीडिया के किस प्लेटफार्म का उपयोग करते हैं?	फेसबुक	87.6
	इंस्टाग्राम	57.9
	यूट्यूब	76.7
	ट्विटर	52.5

विश्लेषण- सारणी से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि 87.6 प्रतिशत लोग फेसबुक, 57.9 प्रतिशत लोग इंस्टाग्राम, 75.7 प्रतिशत लोग यूट्यूब और 52.5 ट्विटर का उपयोग करते हैं।

तालिका 9 जन अभियान के लिए सोशल मीडिया का उपयोग

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा जन अभियान के लिए किस सोशल मीडिया प्लेटफार्म का सबसे अधिक उपयोग किया गया?	फेसबुक	126	62.6
	इंस्टाग्राम	08	04
	यूट्यूब	13	6.5
	ट्विटर	54	26.9
	कुल	201	100

विश्लेषण- 204 उत्तरदाताओं में से 201 उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न पर अपनी प्रतिक्रिया दी। सारणी से स्पष्ट है कि सबसे अधिक 62.6 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं कि लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा जन अभियान के लिए फेसबुक का उपयोग किया जाता है, दूसरे स्थान पर 26.9 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत है कि लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा जन अभियान के लिए ट्विटर का उपयोग किया जाता है एवं तीसरे स्थान पर 6.5 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत है कि लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा जन अभियान के लिए यूट्यूब का उपयोग किया जाता है। वहीं सबसे कम केवल 04 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत है कि लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा जन अभियान के लिए इंस्टाग्राम का उपयोग किया जाता है।

तालिका 10 सोशल मीडिया के ग्रुपों या पेजों का अध्ययन

प्रश्न	उत्तर	प्रतिशत
आप किस प्रकार के ग्रुपों या पेजों को फॉलो करते हैं?	धार्मिक	30.2
	राजनीतिक	55.4
	मनोरंजनात्मक	45.5
	शैक्षणिक	70.3
	अन्य	23.3

विश्लेषण- प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण करने से स्पष्ट है कि 30.2 प्रतिशत लोग धार्मिक पेज या ग्रुप को, 55.4 प्रतिशत लोग राजनीतिक पेज या ग्रुप को, 45.5 प्रतिशत लोग मनोरंजनात्मक पेज या ग्रुप को 70.3 प्रतिषत लोग शैक्षणिक और 23.3 प्रतिशत लोग अन्य पेज या ग्रुप को फॉलों करते हैं।

तालिका 11 राजनीतिक पोस्टों पर प्रतिक्रिया

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
आप राजनीतिक पोस्टों पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं?	सहमत	90	44.8
	असहमत	53	26.4
	तटस्थ	58	28.8
	कुल	201	100

चित्र 4 राजनीतिक पोस्टों पर प्रतिक्रिया

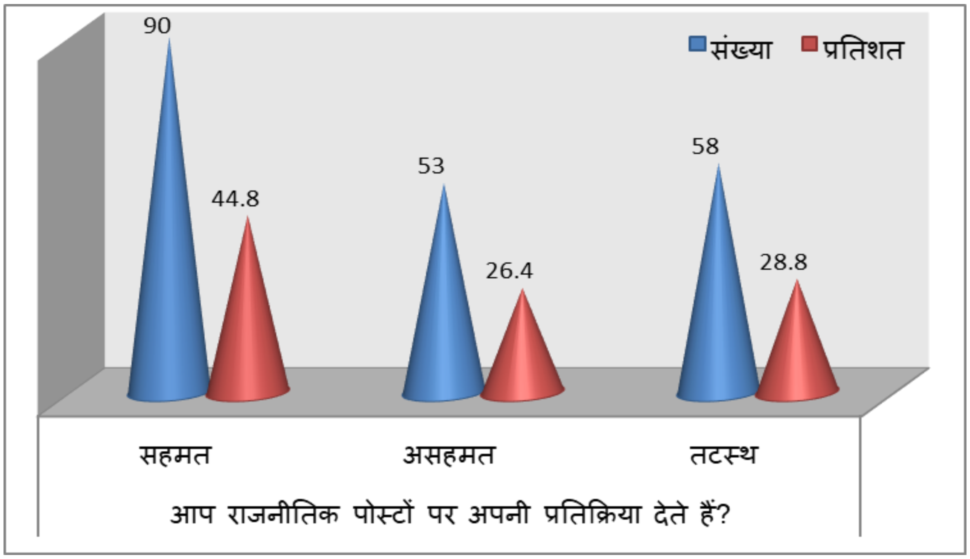

विश्लेषण- 204 उत्तरदाताओं में से 201 उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न पर अपनी प्रतिक्रिया दी। प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि 44.8 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक पोस्ट पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं, 26.4 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक पोस्ट पर अपनी प्रतिक्रिया नहीं देते हैं। वहीं 28.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

तालिका 12 राजनीतिक पोस्टों पर मित्रों से चर्चा का अध्ययन

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्टों पर आप अपने मित्रों के साथ चर्चा करते हैं?	सहमत	130	64.4
	असहमत	42	20.8
	तटस्थ	30	14.8
	कुल	202	100

विश्लेषण- इस प्रश्न का उत्तर कुल 204 उत्तरदाताओं में से 202 उत्तरदाताओं ने दिया। 64.4 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्टों पर वे अपने मित्रों के साथ चर्चा करते हैं। 20.8 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्टों पर वे अपने मित्रों के साथ चर्चा नहीं करते हैं। 20.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्टों पर वे अपने मित्रों के साथ चर्चा करते हैं।

तालिका 13 सोशल मीडिया पर भ्रामक (फेक न्यूज) जानकारी का अध्ययन

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर भ्रामक (फेक न्यूज) जानकारी दी जाती है?	सहमत	151	75.1
	असहमत	16	08
	तटस्थ	34	16.9
	कुल	201	100

चित्र 5 सोशल मीडिया पर भ्रामक (फेक न्यूज) जानकारी का अध्ययन

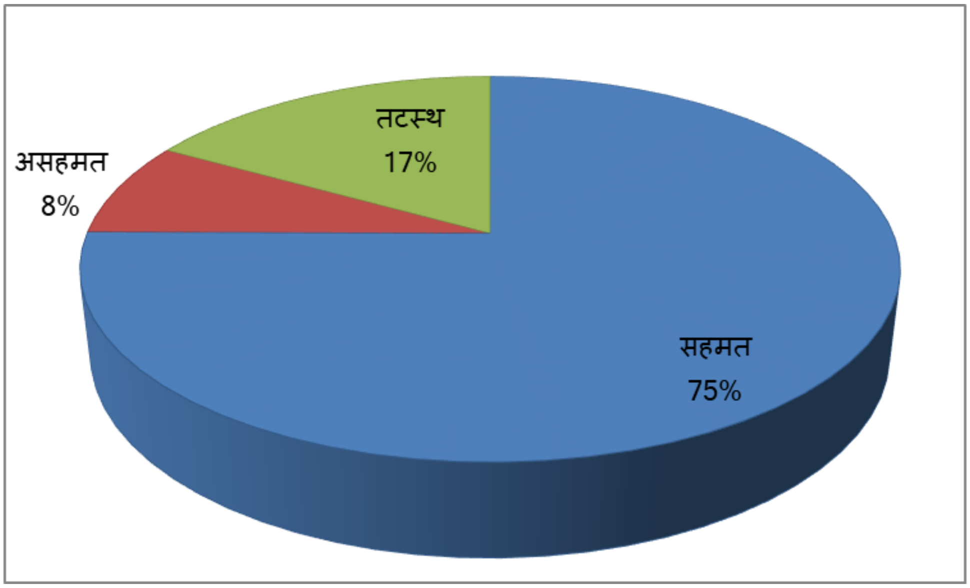

विश्लेषण- इस प्रश्न का उत्तर कुल 204 उत्तरदाताओं में से 201 उत्तरदाताओं ने दिया। 75.1 प्रतिशत उत्तरदाता सहमत हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर भ्रामक जानकारी दी जाती है। 08 प्रतिशत उत्तरदाता असहमत हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर भ्रामक जानकारी दी जाती है। 16.9 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर भ्रामक जानकारी दी जाती है।

तालिका 14 राजनीतिक पोस्ट को शेयर करना

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
आप राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई विषयवस्तु को शेयर करते हैं?	सहमत	51	25.5
	असहमत	100	50
	तटस्थ	49	24.5
	कुल	200	100

विश्लेषण- इस प्रश्न का उत्तर कुल 204 उत्तरदाताओं में से 200 उत्तरदाताओं ने दिया। 25.5 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई विषयवस्तु को शेयर करते हैं। 50 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई विषयवस्तु को शेयर नहीं करते हैं। 24.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई विषयवस्तु को शेयर करते हैं।

तालिका 15 पोस्ट की विषयवस्तु के प्रभाव का अध्ययन

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई विषयवस्तु आपको प्रभावित करती है?	सहमत	97	48
	असहमत	68	33.7
	तटस्थ	37	18.3
	कुल	202	100

विश्लेषण- इस प्रश्न का उत्तर कुल 204 उत्तरदाताओं में से 202 उत्तरदाताओं ने दिया। 48 प्रतिशत उत्तरदातओं को राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई विषयवस्तु प्रभावित करती है। 33.7 प्रतिशत उत्तरदातओं को राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई विषयवस्तु प्रभावित नहीं करती है। 18.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

तालिका 16 राजनीतिक जानकारियों के लिए सोशल मीडिया का उपयोग

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
आप राजनीतिक जानकारियों के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं?	सहमत	149	73.8
	असहमत	35	17.3
	तटस्थ	18	8.9
	कुल	202	100

चित्र 6 राजनीतिक जानकारियों के लिए सोशल मीडिया का उपयोग

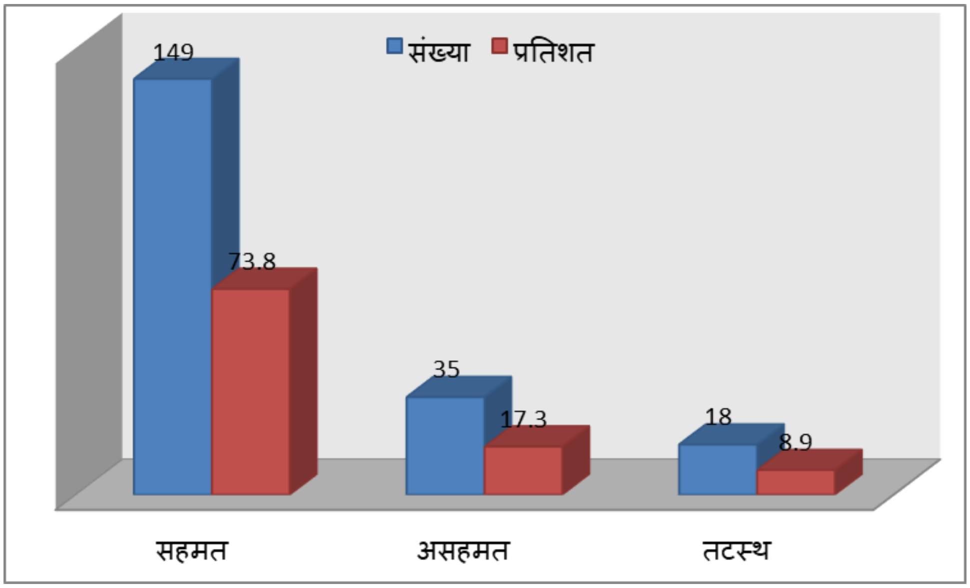

विश्लेषण- इस प्रश्न का उत्तर कुल 204 उत्तरदाताओं में से 202 उत्तरदाताओं ने दिया। 73.8 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक जानकारियों के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं। 17.3 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक जानकारियों के लिए सोशल मीडिया का उपयोग नहीं करते हैं। केवल 8.9 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

तालिका 17 विचारधारा के प्रभाव का अध्ययन

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
सोशल मीडिया लोगों की विचारधारा को प्रभावित करती है?	सहमत	182	90.1
	असहमत	12	5.9
	तटस्थ	08	04
	कुल	202	100

चित्र 7 विचारधारा के प्रभाव का अध्ययन

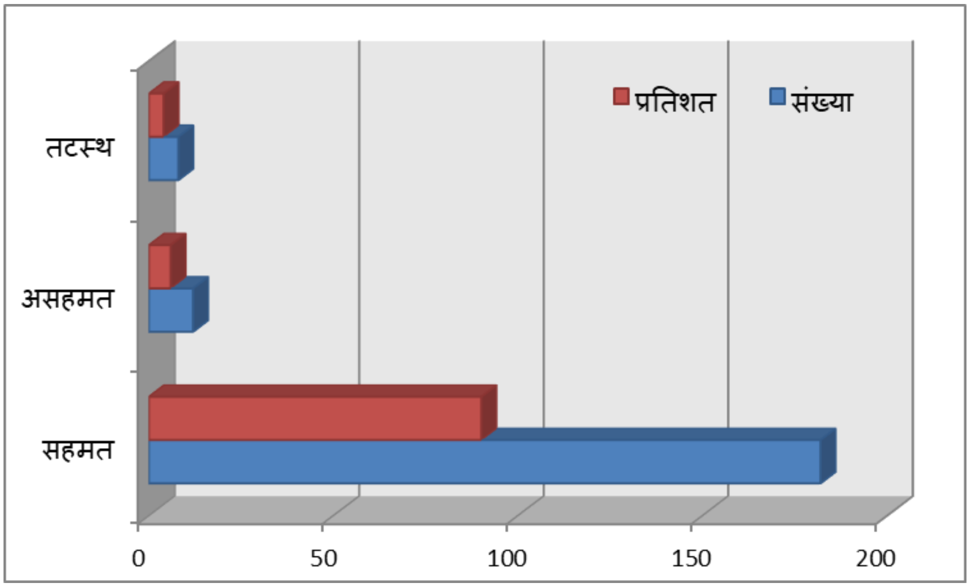

विश्लेषण- इस प्रश्न का उत्तर कुल 204 उत्तरदाताओं में से 202 उत्तरदाताओं ने दिया। 90.1 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि सोशल मीडिया लोगों की विचारधारा को प्रभावित करती है। केवल 5.9 प्रतिशत उत्तरदाता नहीं मानते हैं कि सोशल मीडिया लोगों की विचारधारा को प्रभावित करती है। वहीं केवल 04 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

तालिका 18 लोगों के मतों का निर्धारण का अध्ययन

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्ट लोगों के मतों का निर्धारण करती है?	सहमत	131	64.9
	असहमत	45	22.3
	तटस्थ	26	12.8
	कुल	202	100

चित्र 8 लोगों के मतों का निर्धारण का अध्ययन

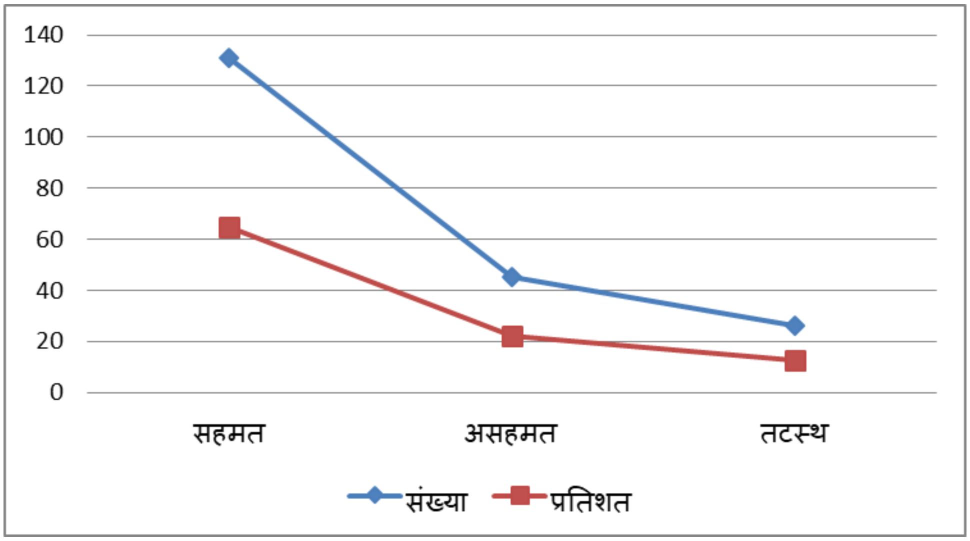

विश्लेषण- कुल 204 उत्तरदाताओं में से 202 उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न पर प्रतिक्रिया दी। 64.9 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्ट लोगों के मतों का निर्धारण करती है। 22.3 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत नहीं हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्ट लोगों के मतों का निर्धारण करती है। वहीं 12.8 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

तालिका 19 दृश्य-श्रव्य सामग्री की अधिकता का अध्ययन

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्टों में दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग अधिक किया जाता है?	सहमत	174	86.1
	असहमत	27	13.9
	कुल	201	100

विश्लेषण- इस प्रश्न का उत्तर कुल 204 उत्तरदाताओं में से 201 उत्तरदाताओं ने दिया। 86.1 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्टों में दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग अधिक किया जाता है। केवल 13.9 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से असहमत हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्टों में दृश्य-श्रव्य सामग्री का प्रयोग अधिक किया जाता है।

तालिका 20 सोशल मीडिया के सकारात्मक और नकारात्मक उपयोग का अध्ययन

प्रश्न	**उत्तर**	**संख्या**	**प्रतिशत**
राजनीतिक दल स्वयं के लिए सोशल मीडिया का सकारात्मक एवं विरोधी दल के लिए नकारात्मक उपयोग करते हैं?	सहमत	170	84.2
	असहमत	15	7.4
	तटस्थ	17	8.4
	कुल	202	100

विश्लेषण- इस प्रश्न का उत्तर कुल 204 उत्तरदाताओं में से 202 उत्तरदाताओं ने दिया। 84.2 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि राजनीतिक दल स्वयं के लिए सोशल मीडिया का सकारात्मक एवं विरोधी दल के लिए नकारात्मक उपयोग करते हैं। केवल 7.4 प्रतिशत उत्तरदाता नहीं मानते है कि राजनीतिक दल स्वयं के लिए सोशल मीडिया का सकारात्मक एवं विरोधी दल के लिए नकारात्मक उपयोग करते हैं। वहीं 8.4 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

तालिका 21 सोशल मीडिया की पोस्टों पर लोगों की प्रतिक्रिया

प्रश्न	**उत्तर**	**संख्या**	**प्रतिशत**
राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्ट पर आपकी प्रतिक्रिया कैसी होती है?	सकारात्मक	125	67.2
	नकारात्मक	61	32.8
	कुल	186	100

चित्र 9 सोशल मीडिया की पोस्टों पर लोगों की प्रतिक्रिया

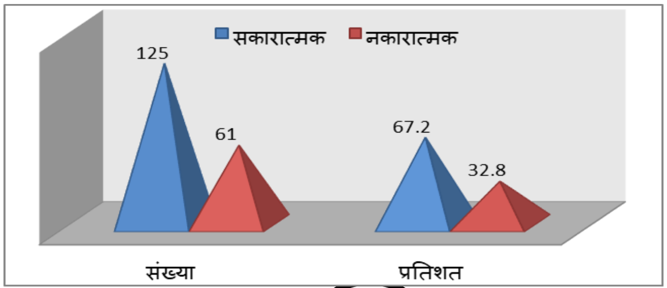

विश्लेषण- कुल 204 उत्तरदाताओं में से 186 उत्तरदाताओं ने इस प्रश्न पर प्रतिक्रिया दी। 67.2 प्रतिशत उत्तरदाताओं की राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्ट पर प्रतिक्रिया सकारात्मक होती है। वहीं 32.8 प्रतिशत उत्तरदाताओं की राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्ट पर प्रतिक्रिया नकारात्मक होती है।

तालिका 22 सत्ताधारी दल द्वारा सोशल मीडिया का उपयोग

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
सोशल मीडिया का उपयोग सत्ताधारी दल अधिक करता हैं?	सहमत	121	60.5
	असहमत	52	26
	तटस्थ	27	13.5
	कुल	200	100

विश्लेषण- कुल 204 उत्तरदाताओं में से 200 उत्तरदाताओं ने दिया। 60.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं कि सोशल मीडिया का उपयोग सत्ताधारी दल अधिक करता है। 26 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात से सहमत नहीं हैं कि सोशल मीडिया का उपयोग सत्ताधारी दल अधिक करता है। वहीं केवल 13.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

तालिका 23 सोशल मीडिया का चुनाव पर प्रभाव

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
सोशल मीडिया चुनाव को प्रभावित करता है?	सहमत	171	86
	असहमत	17	8.5
	तटस्थ	13	5.5
	कुल	201	100

चित्र 10 सोशल मीडिया का चुनाव पर प्रभाव

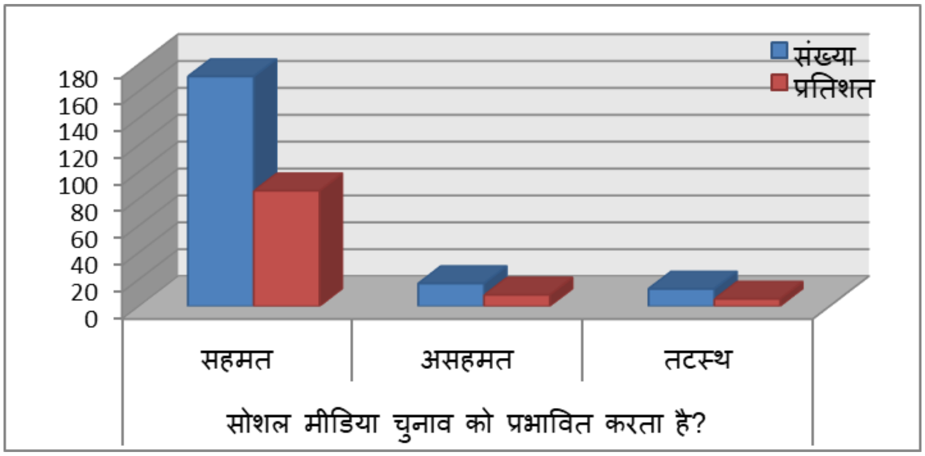

विश्लेषण- कुल 204 उत्तरदाताओं में से 201 उत्तरदाताओं ने दिया। 86 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि सोशल मीडिया चुनाव को प्रभावित करता है। केवल 8.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं नहीं मानते हैं कि सोशल मीडिया चुनाव को प्रभावित करता है। वहीं केवल 5.5 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

तालिका 24 जनमत निर्माण में सोशल मीडिया का प्रभाव

प्रश्न	उत्तर	संख्या	प्रतिशत
सोशल मीडिया चुनाव में जनमत निर्माण का प्रभावी माध्यम है?	सहमत	172	84.7
	असहमत	16	7.9
	तटस्थ	15	7.4
	कुल	203	100

विश्लेषण- कुल 204 उत्तरदाताओं में से इस प्रश्न पर 203 उत्तरदाताओं ने प्रतिक्रिया दी है। 84.7 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है न्यू सोशल मीडिया चुनाव में जनमत निर्माण का प्रभावी माध्यम है। केवल 7.9 प्रतिशत उत्तरदाता नहीं मानते हैं कि सोशल मीडिया चुनाव में जनमत निर्माण का प्रभावी माध्यम है। वहीं केवल 7.4 प्रतिशत उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

निष्कर्ष - प्रस्तुत शोध ''लोकसभा चुनाव 2019 में बीजेपी और कांग्रेस के जन अभियान में सोशल मीडिया की भूमिका, उपयोगिता एवं प्रभाव का अध्ययन'' प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त उत्तरदाताओं के आंकड़ों का विश्लेषण करने से निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए -

- उत्तरदाताओं में एक चौथाई से थोड़ी अधिक महिलायें, तीन चौथाई से थोड़े कम पुरुष और बहुत कम अन्य लिंग के हैं।
- उत्तरदाताओं में आधे से थोड़े अधिक 20 से 30 वर्ष, लगभम एक चौथाई 31 से 40 वर्ष और बहुत कम 41 से 50 वर्ष के एवं 50 वर्ष से अधिक आयु के हैं।
- उत्तरदाताओं में आधे से अधिक शहरी, एक चौथाई से थोड़े कम ग्रामीण और बहुत कम अर्ध शहरी/अर्ध ग्रामीण हैं।
- उत्तरदाताओं में तीन चौथाई से अधिक हिन्दू, बहुत कम मुस्लिम और अन्य धर्म के हैं, जबकि सिख और ईसाई धर्म के कोई भी उत्तरदाता नहीं हैं।
- उत्तरदाताओं में लगभग आधे परास्नातक, एक चौथाई से अधिक स्नातक और बहुत कम अन्य, 12वीं, और हाई स्कूल से कम शिक्षा प्राप्त हैं।
- उत्तरदाताओं में आधे से थोड़े अधिक सामान्य वर्ग, एक चौथाई से थोड़े अधिक ओबीसी और एक चौथाई से कम एससी/एसटी हैं।
- लगभग सभी उत्तरदाता सोशल मीडिया का प्रयोग करते हैं।
- 87.6 प्रतिशत उत्तरदाता फेसबुक का प्रयोग करते है, 57.9 प्रतिशत उत्तरदाता इंस्टाग्राम का प्रयोग करते हैं, 76.7 प्रतिशत उत्तरदाता यूट्यूब का प्रयोग करते हैं और 52.5 प्रतिशत उत्तरदाता ट्विटर का प्रयोग करते हैं।
- आधे से अधिक उत्तरदाताओं का मानना है कि लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा जन अभियान के लिए फेसबुक का उपयोग होता है, एक चौथाई से थोड़े अधिक उत्तरदाताओं का मानना है कि लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा जन अभियान में लिए ट्विटर का उपयोग होता है, कम उत्तरदाताओं का मानना है कि लोकसभा चुनाव में राजनीतिक दलों द्वारा जन अभियान के लिए यूट्यूब का उपयोग किया, वहीं बहुत कम उत्तरदाताओं का मानना है कि केवल राजनीतिक दलों द्वारा जन अभियान के लिए इंस्टाग्राम का प्रयोग होता है।
- (70.3 प्रतिशत) उत्तरदाता शैक्षणिक ग्रुपों या पेजों को फॉलो करते हैं, (55.4 प्रतिशत) उत्तरदाता राजनीतिक ग्रुपों या पेजों को फॉलो करते हैं, (45.5 प्रतिशत) उत्तरदाता मनोरंजनात्मक ग्रुपों या पेजों को फॉलो करते हैं, (30.2 प्रतिशत) उत्तरदाता धार्मिक ग्रुपों या पेजों को फॉलो करते हैं वहीं 23.3 प्रतिशत उत्तरदाता अन्य ग्रुपों को फॉलो करते हैं।
- आधे से थोड़े कम उत्तरदाता राजनीतिक पोस्टों पर अपनी प्रतिक्रिया देते हैं, लगभग एक चौथाई उत्तरदाता राजनीतिक दलों की पोस्टों पर अपनी प्रतिक्रिया नहीं देते हैं वहीं एक चौथाई से थोड़े अधिक उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।
- आधे से अधिक उत्तरदाता राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्टों पर अपने मित्रों के साथ चर्चा करते हैं, एक चौथाई से कम उत्तरदाता इस बात पर असहमत हैं वहीं कम उत्तर इस बात पर तटस्थ हैं।
- तीन चौथाई उत्तरदाता मानते हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर भ्रामक (फेक न्यूज) जानकरी दी जाती है, बहुत कम

उत्तरदाता इस बात से असहमत हैं, वहीं कम उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।

- एक चौथाई उत्तरदाता मानते हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई विषयवस्तु को वे शेयर करते हैं, आधे उत्तरदाता इस बात से असहमत हैं वहीं लगभग एक चौथाई उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।
- लगभग आधे उत्तरदाता इस बात से सहमत हैं कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर पोस्ट की गई विषयवस्तु उनको प्रभावित करती हैं, एक चौथाई से अधिक उत्तरदाता इस बात पर असहमत हैं, वहीं कम उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।
- लगभग तीन चौथाई उत्तरदाता राजनीतिक जानकारियों के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करते हैं, कम उत्तरदाता इस बात पर असहमत हैं वहीं बहुत कम उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।
- तीन चौथाई से बहुत अधिक उत्तरदाताओं का मानना है कि सोशल मीडिया लोगों की विचारधारा को प्रभावित करती है, वहीं बहुत कम उत्तरदाता इस बात पर असहमत और तटस्थ हैं।
- आधे से अधिक उत्तरदाता इस बात से सहमत है कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्ट लोगों के मतों का निर्धारण करती है, एक चौथाई से थोड़े कम उत्तरदाता इस बात पर असहमत हैं, वहीं बहुत कम उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।
- तीन चौथाई से अधिक उत्तरदाताओं का मानना है कि राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्टों में दृश्य -श्रव्य सामग्री का प्रयोग अधिक किया जाता है तथा बहुत कम उत्तरदाता इस बात पर असहमत हैं।
- तीन चौथाई से अधिक उत्तरदाताओं का मानना है कि राजनीतिक दल स्वयं के लिए सोशल मीडिया का सकारात्मक एवं विरोधी दल के लिए नकारात्मक उपयोग करते हैं, बहुत कम उत्तरदाता इस बात पर असहमत और तटस्थ हैं।
- आधे से बहुत अधिक उत्तरदाताओं की राजनीतिक दलों द्वारा सोशल मीडिया पर की गई पोस्ट पर सकारात्मक प्रतिक्रिया होती है, एक चौथाई से अधिक उत्तरदाता इस बात पर असहमत हैं।
- आधे से अधिक उत्तरदाताओं का मानना है कि सोशल मीडिया का उपयोग सत्ताधारी दल अधिक करता है, लगभग एक चौथाई उत्तरदाता इस बात से असहमत हैं वहीं बहुत कम उत्तरदाता इस बात पर तटस्थ हैं।
- तीन चौथाई से बहुत अधिक उत्तरदाताओं का मानना है कि सोशल मीडिया चुनाव का प्रभावित करता है, बहुत कम उत्तरदाता इस बात पर असहमत और तटस्थ हैं।
- तीन चौथाई से बहुत अधिक उत्तरदाता सहमत हैं कि सोशल मीडिया चुनाव में जनमत निर्माण का प्रभावी माध्यम है, बहुत कम उत्तरदाता इस बात पर असहमत और तटस्थ हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची-

- *(555-594).* Newbury Park, CA: Sage.
- Rogers, E.M., Hart, W. B., & Dearing, J.W. (1997). A paradigmatic history of agenda-setting research. In Iyengar, S. & Reeves, R. (Eds.) *Do the media govern? Politicians, voters, and reporters in America (225-236)*. Thousand Oak, CA: Sage.
- Shaw, D. L. & McCombs, M. (1977). *The Emergence of American Political Issues: The Agenda-Setting Function of the Press*. St. Paul: West.
- Shih, Clara,2010. The facebook Era. Dorling Kindersley India Pvt. Ltd.
- Singh, Nikita,2011. Love@ Facebook. Pustak Mahal, New delhi.
- Waldman, Joshua,2009. Searching with social media for Dummies. John wiley and Sons,New Jersey.
- Sartory, G. (1988) The Parties as Part in Louis J. Cantori and Andrew H. Ziegler, Jr. (eds.), Comparative Politics in the Post-Behavioural Era. Colorado: Lynne Rienner Publishers.
- Sartori, G. (1988) The Parties as Part in Louis J. Cantori and Andrew H. Ziegler, Jr. (eds.) Comparative Politics in the Post-Behavioural Era. Colorado: Lynne Rienner Publishers. pp. 232
- Hague, R. and Harrop, M. (1982) Comparative Government: An Introduction. London: Macmillan. pp. 100

****

आश्वलयानगृह्य सूत्र में विवाह के प्रकार एवं विधि

- सौरभ
शोधार्थी, पीएच.डी.
संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली-10007

विवाह शब्द 'वि' उपसर्गपूर्वक वह् धतु से घञ प्रत्यय लग. ने पर निष्पन्न होता है जिसका तात्पर्य है 'विशिष्टं वहनम्' अर्थात् एक शास्त्रीय परम्परा जिसके द्वारा स्त्री एवं पुरुष परस्पर दाम्पत्यसूत्रा में आबद्ध होते हैं। फलस्वरूप पुरुष को सम्पूर्ण जीवन तक स्त्री का और स्त्री को पुरुष का विशेष रूप से वहन करना पड़ता है। विवाह दो हृदयों का एकीकरण तथा द्वैत को मिटाकर अद्वैत की ओर अभिगमन है। विवाह का जीवन में अत्यध्कि महत्त्व है। यह किसी न किसी रूप में वैदिककाल में भी होता था। इस संस्कार के विषय में गृहयसूत्रों में मतैक्य नहीं है।

विवाह के भेद – धर्मसूत्र में विवाह के अनेक भेदों का जैसा उल्लेख है वैसा गृह्यसूत्रों में नहीं है, परन्तु आश्वलायनगृह्य सूत्र में विवाह के आठ भेदों का उल्लेख किया गया है। साथ ही इस बात का भी निर्देश है कि किस प्रकार के विवाह से उत्पन्न सन्तान माता–पिता को कितनी पीढ़ी तक पवित्र करती है।

(i)ब्राह्म विवाह – आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार ब्राह्मविवाह में कन्या को भलीभाँति अलङ्कृत करके उदकपूर्वक दान दिया जाता है। उस कन्या से उत्पन्न सन्तान माता और पिता – दोनों के कुलों को बारह पीढ़ी पूर्व तक तथा बारह पीढ़ी बाद तक पवित्र करती है। मनु के अनुसार वेद पढ़े हुए सदाचारी वर को स्वयं बुलाकर उसकी पूजा कर और वस्त्राभूषण आदि से दोनों को अलङ्कृत कर कन्या–दान करना ब्राह्म–विवाह है।

(ii)दैव विवाह – इस विषय में आश्वलायन का कहना है कि यज्ञकर्म में प्रवृत्ता ऋत्विज् को दानस्वरूप अलङ्कारपूर्वक जो कन्या प्रदान की जाती है उसे दैव विवाह कहते हैं। उस कन्या से उत्पन्न सन्तान माता और पिता – दोनों के कुलों को दस पीढ़ी पूर्व तथा दस पीढ़ी बाद तक पवित्र करती है।

(iii)प्राजापत्य विवाह – आश्वलायन के मतानुसार प्राजापत्य विवाह वह है जिसमें 'सह धर्मं चरत' ऐसा कहकर कन्या का दान दिया जाता है। उस कन्या से उत्पन्न सन्तान माता और पिता के कुलों को आठ पीढ़ी पूर्व तथा आठ पीढ़ी बाद तक पवित्र करती है।

(iv)आर्ष विवाह – आश्वलायन गृह्यसूत्रा के अनुसार कन्या के पिता को गो–मिथुन प्रदान कर जब कन्या ग्रहण की जाती है तो वह आर्षविवाह होता है तथा उस कन्या से उत्पन्न सन्तान माता और पिता के कुलों को सात पीढ़ी पूर्व एवं सात पीढ़ी बात तक पवित्र करती है। आर्ष विवाह के विषय में सूत्राकार के मत का यह अर्थ लेना असघँत ही होगा कि सूत्रकार ने कन्या के पिता को वर से रिश्वत लेने के लिए कहा है।

(v)गान्धर्व विवाह – आश्वलायनगृह्यसूत्राकार का कहना है कि परस्पर अनुरक्त होकर (अर्थात् 'त्वं मम भार्या भव, अहं तव भर्ता भवामि' ऐसा कहकर) जो कन्या ग्रहण की जाती है वह गान्धर्व विवाह होता है।

(vi)आसुर विवाह – इस विषय में आश्वलायन गृह्यसूत्र में ऐसा उल्लेख है कि कन्या के पिता को ध ान द्वारा सन्तुष्ट करके जो कन्या ग्रहण की जाती है वह आसु संज्ञक विवाह होता है। इस विषय में गौतम का कहना है कि आसुर विवाह वह है जिसमें कन्या के अभिभावकों को धन देकर कन्या का ग्रहण किया जाता है।

(vii)पैशाच विवाह – आश्वलायन के मतानुसार सोयी हुई अथवा असावधन कन्या का अपहरण करके जो विवाह किया जाता है वह पैशाच संज्ञक है। मनु के अनुसार पैशाच विवाह वह है जिसमें सोई हुई मद आदि से व्यावुफल और अपने शील की रक्षा करने में प्रमादयुक्त कन्या के साथ विवाह किया जाता है।

(viii)राक्षस विवाह – आश्वलायनगृह्यसूत्रा के अनुसार मारकर या शिर आदि का भेदन करके रुलाते हुए अथवा रोती हुई कन्या का अपहरण करके जो विवाह किया जाता है वह राक्षस विवाह होता है। गौतमर्धसूत्र के अनुसार भी बलपूर्वक कन्या का अपहरण कर लेने पर रा क्षस विवाह होता है।

कुलपरीक्षा – हववाह एक ऐसा संस्कार है जिसके द्वारा दो आत्माओं का शाश्वत सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। यह सम्बन्ध कभी शिथिल न हो, इसलिए प्राचीन ऋषियों ने विवाह से पूर्व वर–कन्या के कुल एवं उनके गुण तथा दोषों का पूर्ण रूप से विवेचन किया है। आश्वलायन ने इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम वर–कन्या दोनों के कुलों के विषय में परीक्षा करने के लिए कहा है कि जो माता एवं पिता के कुलों से असमान तथा पवित्र हो अर्थात् 'सप्तपुरुषावध्यः सपिण्डा, दशपुरुषावध्यः सकुल्याः, अत् ऊर्ध्व गोत्राः' वचन के अनुसार वर एवं कन्या को सपिण्डक तथा समानगोत्रीय नहीं होना चाहिए। साथ ही साथ माता एवं पिता दोनों के कुलों के लोगों को शुभकर्मी तथा पुण्यवान् भी होना चाहिए। गौतमधर्मसूत्र में असमान प्रवर के लोगों में तथा पिता के सात पीढ़ी ऊपर और माता से पाँच पीढ़ी ऊपर की कन्या से विवाह करने के लिए कहा गया है।

कन्यापरीक्षा – प्राचीनकाल में कन्या की परीक्षा की जाती थी। इसके उपरान्त उसे विवाह के योग्य अथवा अयोग्य घोषित किया जाता था। आश्वलायन ने कन्या के दुर्विज्ञेय लक्षणों को जानने के लिए एक विशेष प्रकार के उपाय को बतलाया है कि क्षेत्र, गोश. ाला, यज्ञवेदी, तालाब, देवस्थान, चतुष्पथ (चौराहा), हरिण (ऊसर) तथा श्मशान – इन आठ स्थानों की मिट्टी से आठ पिण्डों को बनाकर ऋतमग्रे प्रथमं जज्ञ ऋते सत्यं.' मन्त्र से उनको अभिमन्त्रित करने के अनन्तर कन्या से कहे कि इनमें से एक पिण्ड को ग्रहण करो। यदि वह कन्या क्षेत्रा की मिट्टी से निर्मित पिण्ड को ग्रहण करे तो उसकी प्रजाएँ अन्नवती होंगी, गोशाले की मिट्टी से बने हुए पिण्ड को ग्रहण करे तो वह अत्यधिक पशुओं वाली होगी, वेदी की मिट्टी वाले पिण्ड को ग्रहण करे तो वह ब्रह्मवर्चसी होगी, तालाब की मिट्टी से बने हुए पिण्ड को ग्रहण करती है तो वह सर्वगुणसम्पन्न होगी, देवस्थान की मिट्टी से निर्मित पिण्ड को ग्रहण करे तो वह जुआरी होगी, चतुष्पथ की मिट्टी वाले पिण्ड को ग्रहण करती है तो संन्यासिनी होगी, हरिण की मिट्टी से बने पिण्ड को ग्रहण करे तो सन्तानरहित होगी तथा श्मशान की मिट्टी से निर्मित पिण्ड को ग्रहण करती है तो वह पतिघ्नी होगी – ऐसा जानना चाहिए।

मधुपर्क–विधि – वर का आगमन होने पर मधुपर्क के द्वारा उसका सर्वप्रथम स्वागत किया जाता है। मध ुपर्क शब्द का अर्थ 'मधुना पर्कः सम्पर्को यस्य सः' अर्थात् मधु से सम्पर्क हो जिसका वह मधुपर्क कहलाता है। इसमें प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों की संख्या के विषय में गृह्यसूत्रों में मतैक्य नहीं है। आश्वलायन ने दधि में मधु अथवा मधु के अभाव में घृत को मिलाने के लिए कहा है।

आश्वलायनगृह्यसूत्रा के अनुसार इस विषय में विवेचन किया जा रहा है – अर्चक व्यक्ति घर पर आये हुए सम्मानार्ह व्यक्ति को बैठने के लिए सर्वप्रथम कुशासन, पैरों को धोने के लिए जल, आचमन करने के लिए गन्ध पुष्पादि से सुगन्धित जल तथा मधुपर्क एवं एक गाय देता है। साथ ही साथ प्रत्येक वस्तुओं को देते समय उससे तीन बार 'विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम्' ऐसा कहता है। तत्पश्चात् प्रतिगृहीता व्यक्ति 'अहं वर्ष्मोस्मि सजातानां विद्युतामिव सूर्यः.' मन्त्रा से उदगग्र रखे हुए कुशासन पर बैठता है तथा दोनों पैरों का प्रक्षालन कराता है। इस विषय में सूत्रकार ने एक विशेष बात का विधन किया है कि यदि पाप्र क्षालन करने वाला ब्राह्मण हो तो अर्घ्य व्यक्ति सर्वप्रथम दाहिने पैर को तथा शूद्र हो तो बायें पैर को प्रक्षालन करता है। तदनन्तर वह अर्घ्य (जल) को अञ्जलि से ग्रहण कर आचमन करने योग्य जल द्वारा 'अमृतोपस्तरणमसि.' मन्त्रा से आचमन करता है तथा मध ुपर्क देने वाले अर्घ्यदाता को 'मित्रस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्ष.' मन्त्रा से देखता है। तत्पश्चात् 'देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे.' मन्त्रा से मधुपर्क को अञ्जलि से ग्रहण कर उसको बायें हाथ पर रखकर 'मधुवाता ऋतायत.' ऋचात्मक मन्त्र से उसको देखकर दाहिने हाथ की अनामिका तथा अङ्गुष्ठा दोनो अङ्गुलियों से उसका तीन पर प्रदक्षिण क्रम से आलोडन करता है। तदनन्तर उसके कुछ अंश को 'वसवस्त्वा गायत्रोण छन्दसा भक्षयन्ति', 'रुद्रास्त्वा त्रैष्टुभेन छन्दसा.', 'आदित्यास्त्वा जागतेन छन्दसा.' तथा 'विश्वे त्वा देवा अनुष्टुभेन छन्दसा.' इन चार मन्त्रों से क्रमशः पूर्व, दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर दिशाओं में तीन–तीन बार छिड़ककर 'भूतेभ्यस्त्वा.' मन्त्रा से उसके मध्य से थोड़ा सा मधुपर्क किलकर उफपर की ओर तीन बार छिड़कता है। तत्पश्चात् 'विराजो देहोऽसि.' 'विराजो दोहमशीय.' तथा 'मयि दोहः पद्यायै विराज.' इस तीन मन्त्रों से मधुपर्क का क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय बार प्राशन करता है। तदनन्तर सूत्राकार ने इस बात का निर्देश दिया है कि सम्पूर्ण मधुपर्क का तृप्तिपूर्वक भक्षण नहीं करना चाहिए। तत्पश्चात् अर्घ्य व्यक्ति अवशिष्ट को उत्तराभिमुख बैठो हुए ब्राह्मण को दे देता है। ब्राह्मणाभाव होने पर उसे जल में डाल देता है तथा अन्त में पूर्व गृहीत आच–मन करने योग्य जल के द्वारा 'अमृतापिध ानमसि.' मन्त्र से प्रथम बार एवं 'सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयताम्.' मन्त्र से द्वितीय बार आचमन करता है। इसके उपरान्त अर्घ्य व्यक्ति के सम्मान में अर्घ्यदाता गौ को निवेदित करता है। अर्घ्य व्यक्ति 'हतो मे पाप्मा पाप्मा मे हत.' मन्त्रा का जप करके यदि गौ को मारने की इच्छा हो तो ' ॐ कुरुत' तथा यदि गाय का उत्सर्जन करना हो तो 'माता रुद्राणां दुहिता वसूनाम्.' मन्त्र का जप करके ' ॐउत्सृजेत्' ऐसा कहता है।

अग्निस्थापन तथा परिस्तरणविधि – आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार जिस किसी भी स्थान पर होम करना हो वहाँ एक हाथ लम्बा एवं एक हाथ चौड़ा स्थण्डिल (स्थान) को चारों ओर से गोबर से लिप्त करके उसके उफपर समिध् के द्वारा छः रेखाओं को खींचना चाहिए। रेखाओं के विषय में सूत्राकार का कहना है कि स्थण्डिल के पश्चिम ओर से उदगग्र एक रेखा को खींचकर उसके दोनों किनारों को स्पर्श न करती हुई पूर्वाग्र दो रेखाओं को खींचने के पश्चात् उनके मध्य में दक्षिण ओर से पूर्वाग्र ही परस्पर अस्पर्शित तीन रेखाओं को खींचना चाहिए। तदनन्तर उनको जल से प्रोक्षित करके अग्नि को स्थापित करना चाहिए तथा 'मैं अमुक देवता के उद्देश्य से अमुक द्रव्य की, अमुक संख्या में आहुतियों को प्रदान करूँगा – ऐसा सङ्कल्प करके स्थण्डिल के चारों ओर प्रदक्षिण क्रम से तीन बार जल से परिसमूहन कर उसके चारों ओर उदगग्र तथा पूर्वाग्र वुफशों को बिछाना चाहिए। इसके उपरान्त अमन्त्रक ही

उनके ऊपर जल छिड़कना चाहिए।

आज्योत्पवन – आश्वलायन ने वुफश के दो पवित्रों द्वारा आज्य का उत्पवन (शुद्धिकरण) करने के लिए कहा है। इस विषय में सूत्रकार का कहना है कि जिनके अग्रभाग टूटे हुए न हों तथा जिनके गर्भ में अन्य कुश न हों ऐसे प्रादेशमात्रपरक दो कुशों (पवित्रों) को दोनों हाथों के अङ्गुष्ठ एवं अनामिका अङ्गुलियों से कुछ अन्तर के साथ पकड़कर उनके द्वारा 'सवितुष्ट्वा प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण.' मन्त्रा से आज्य का आश्वलायन ने ध्वन्तरियज्ञ तथा शूलेगव कर्म को छोड़कर अन्य कर्मों में ब्रह्मा का स्थ. ापन वैकल्पिक माना है।

होम – होम के विषय में सूत्रकारों में मतैक्य नहीं है। आश्वलायनगृह्यसूत्रा के अनुसार विवाह में पाणिग्रहण से पूर्व अग्नि में आज्य की आघार तथा आज्यभागसंज्ञक आहुतियों को देने के अनन्तर 'अग्न आयूंषि पवस.')चात्मक मन्त्रा से अथवा व्याहृतिमन्त्राों (ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः) से तीन आहुतियाँ देनी चाहिए। इसके उपरान्त 'त्वमर्यमा भवसि यत्कनीनाम्.' मन्त्र से एक आहुति देकर 'प्रजापते न त्वदेतान्यन्य.' मन्त्र से एक आहुति देना चाहिए। कतिपय आचार्यों के मतानुसार ऋक मन्त्रों एवे व्यावहृति मन्त्रों को मिलाकर आठ आहुतियाँ देना चाहिए। आश्वलायन ने इस प्रसङ में आघार तथा आज्यभाग संज्ञक आहुतियों का उल्ले ख नहीं किया है और न इस विषय में किसी मन्त्रा का ही निर्देश दिया है , परन्तु आश्वलायनाचारी ऋग्वेदियों के यहाँ सभी संस्कारों के आरम्भ में इन आहुतियों को देने की परम्परा है तथा पार्वण–स्थालीपाक के प्रसङैं में सूत्रकार ने इन आहुतियों का उल्लेख किया है।

उदकुम्भस्थापन – आश्वलायनगृह्यसूत्र में अग्नि–वेदी के पश्चिम ओर पाषाण खण्ड को स्थापित करके उसके पूर्वोत्तर दिशा में उदकुम्भस्थापन का निर्देश है ,परन्तु इस विषय में किसी मन्त्र का उल्लेख नहीं है।

पाणिग्रहण – आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार पूर्वाभिमुख वर, वधू के अन्वारब्ध होने पर स्थण्डिल पर स्थापित अग्नि में आज्यागान्त कर्म करके प्रधान आहुतियों को देता है तदनन्तर पूर्वाभिमुख आसीन कन्या के अभिमुख खड़ा होकर उसके हाथ को अपने दाहिने हाथ से 'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय.' मन्त्र से पकड़ता है।

इस विषय में आश्वलायन गृह्यसूत्राकार ने एक विशेष बात का विधन किया है कि यदि वर को पुत्रा की कामना हो तो अङ्गुष्ठ सहित, पुत्री की कामना हे तो अङ्गुलियों सहित अथवा दोनों प्रकार की कामना हो तो साङ्गुष्ठ अङ्गुलियों सहित कन्या के हाथ को पकड़ना चाहिए।

लाजाहोम – आश्वलायनगृह्यसूत्रा के अनुसार कन्या का भाई अथवा भ्रातृस्थानी अन्य कोई (ममेरा, चचेरा भाई आदि) व्यक्ति कन्या की बँधी हुई अञजलि को पैफलाकर उसमें दो बार लाजाओं को डालता है। आश्वलायन ने इसी प्रसङ में आचार्यों के मतों का भी उल्लेख किया है। जमदग्नि ऋषि के मतानुसार लाजाओं को घृत से स्निग्ध करके अवदान धर्मपूर्वक तीन बार कन्या की अञजलि को पकड़कर 'अर्यमणं नु देवं कन्या.', 'वरुणं नु देवं कन्या.' तथा 'पूषणं नु देवं कन्या.' मन्त्रों से क्रमशः अग्नि में तीन बार आहुति देता है। आश्वलायनगृह्यसूत्रा में गृहप्रवेशनीय–होम तथा त्रिरात्र आदि व्रत के पश्चात् वधू पूर्वधरित वस्त्र को सूर्या मन्त्र को जानने वाले विद्वान् ब्राह्मण को दे देने के लिए कहा गया है।

लाजाहोम की प्रत्येक आहुति के पश्चात् वर–सधू द्वारा अग्नि–परिक्रमा तथा वधू द्वारा अश्मारोहण होता है।

अग्निपरिक्रमा – आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार वर एवं वधू 'अमोहमस्मि सा त्वमस्य मोहं.' मन्त्र से अग्निवेदी तथा उदकुम्भ की प्रदक्षिण क्रम से तीन बार परिक्रमा करते हैं।

अश्मारोहण – आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार अग्निपरिणयन के पश्चात् वर अग्नि वेदी के पश्चिम ओर र खे हुए दृषद् (सिल) पाषाण के ऊपर 'इममश्मानमा–रोहाश्मेव त्वं स्थिर भव.' मन्त्रा से वधू को आरूढ़ करता है। अश्मारोहरण का उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि वधु अश्मा के सदृश दृढ़ विचार–वाली हो तथा वर–वधू के बीच में स्थिर प्रेम का अभ्युदय हो। आपस्तम्ब तथा पारस्करगृह्यसूत्राों में भी अश्मा–रोहण के विषय में इसी प्रकार का उल्लो है।

सप्तपदी – इस प्रसधैं में आश्वलायन ने उफन के टुकड़े से बँधी हुई कन्या के दाहिने तथा बायें दोनों ओर की शि खाओं को देशकर्मानुसार व्रफमशः 'प्र त्वा मुञचामि वरुणस्य. ' तथा 'प्रेतो मुञचामि.' दो मन्त्राों से खोलने के लिए कहा है ;कहने का तात्पर्य यह है कि यदि उस देश या स्थान की ऐसी परम्परा हो तभी ऐसा करना चाहिएद्ध। सप्तपदी का तात्पर्य है, अग्निवेदी के उत्तर की ओर सात पद–प्रयाण। यह प्रमाण सात मन्त्रों द्वारा होता है। आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार वर अग्निवेदी के पूर्वोत्तर दिशा में कन्या को सात पद चलाता है तथा 'इष एकपद्यूर्जे द्विपदी रायस्पोषाय.' इन सातों मन्त्रों का क्रमशः उच्चारण करता है।

वर–वधू का अभिषिञचन –सप्तपदी के अनन्तर वर–वधू का परस्पर शिर–सन्निधन करके आचार्य के द्वारा अग्नि के ईशानकोण में स्थापित कलश के जल से दोनों का अभिषिञचन किया जाता है ऐसा आश्वलायनगृह्यसूत्र में विध ान है।

ध्रुव–अरुन्धती एवं सप्तऋषिमण्डल का दर्शन – आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार स्विष्टवृफतादि होम करने के अनन्तर वर–वधू को रात्रि में ध्रुव, अरुन्धती तथा सप्त ऋषिमण्डल का दर्शन कराकर 'जीवपत्नीं प्रजां विन्देय.' मन्त्र से उसका वाग्–विसर्जन कराता है।

गृहप्रवेशनीय होम – यह होम विवाह के पश्चात् वर के गृह में वधू के प्रवेश के पूर्व होता है। आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार संस्कृत स्थान पर विवाहाग्नि को विधिपूर्वक स्थापित करके उसके पश्चिम की ओर बिछे हुए प्राग्ग्रीव तथा पीछे की ओर पृष्ठ भाग है जिसका ऐसे वृषभ के चर्म

पर वधू के बैठ जाने पर उससे अन्वारब्ध होकर वर अग्नि में आज्यभागान्त कर्म करके 'आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिः.' चतुर्ऋचात्मक मन्त्रा से घृत की चार बार आहुति देता है। तत्पश्चात् 'समञ्जन्तु विश्वेदेवाः.' से स्वयं दधि का प्राशन करके शेष दधि को वधू को प्राशनार्थ दे देता है (वधू मौन होकर उस दधि का प्रशन करती है) अथवा पूर्वोक्त 'समञ्जन्तु विश्वेदेवाः.' मन्त्र से हुतशेष घृत को अपने तथा वधू के हृदय पर लगाता है तथा अन्त में स्विष्ट वृफतादि कर्म करके शेष कर्म का समापन करता है।

संदर्भ

1.आ.गृ.सू. 1/6/1
2.म.स्मृ. 3/27
3.आ.गृ.सू. 1/6/1
4.आ.गृ.सू. 1/6/1
5.आ.गृ.सू. 1/6/1
6-आ.गृ.सू. 1/6/1
7.आ.गृ.सू. 1/6/1
8.गौ.ध्.सू. 1/4/9
9.आ.गृ.सू. 1/6/1
10.म.स्मृ. 3/34
11.आ.गृ.सू. 1/6/1
12.गौ.ध्.सू. 14/10
13-आ.गृ.सू. 1/5/1
14.गौ.ध्.सू. 1/4/2–3
15-आ.गृ.सू. 1/24/4–6
16.आ.गृ.सू. 1/24/7
17.आ.गृ.सू. 1/24/8
18-आ.गृ.सू. 1/24/9–10
19.आ.गृ.सू. 1/24/11 पर नारायणवृत्ति
20 आ.गृ.सू. 1/24/11–13
21 आ.गृ.सू. 1/24/14–15
22 आ.गृ.सू. 1/24/16
23 आ.गृ.सू. 1/24/17–18–22
24 आ.गृ.सू. 1/24/23–25
25 अग्नि को स्थापित करने के अनन्तर उसके चारों ओर भूमि का स्पर्श करते हुए प्रदक्षिण व्रफम से जलयुक्त दाहिने हाथ को तीन बार घुमाया जाता है। इस व्रिफया को परिसमूहन कहते हैं।
26 आ.गृ.सू. 1/3/1
27 आ.गृ.सू. 1/3/2
28 आ.गृ.सू. 1/3/3
29 आ.गृ.सू. 1/3/6
30 आ.गृ.सू. 1/3/3–4
31 आ.गृ.सू. 1/7/3
32 आ.गृ.सू. 1/7/3
33 आ.गृ.सू. 1/7/3–4
34 आ.गृ.सू. 1/10/13
35 आ.गृ.सू. 1/7/8
36 आ.गृ.सू. 1/7/9–13
37 आ.गृ.सू. 1/9/23
38 आ.गृ.सू. 1/7/6
39 आ.गृ.सू. 1/7/7
40 आ.गृ.सू. 1/5/2
41 आ.गृ.सू. 1/7/16–18
42 आ.गृ.सू. 1/7/19
43 आ.गृ.सू. 1/7/20
44 आ.गृ.सू. 1/7/22
45 आ.गृ.सू. 1/8/9

****

भवभूति की दृष्टि में राम

-डॉ.सर्वेन्द्र कुमार
सहायकाचार्य
संस्कृत विभाग,
देशबंधु महाविदयालय, दिल्ली

शोध सारांश

कविकुल–कमल–विभाकर, कविता–वनिता वरेण्य महाकवि भवभूति संस्कृत साहित्यरूपी जगत् की विलक्षण विभूति हैं, जिन्होंने अपनी नयी–नयी कल्पनाओं से काव्य रूपी संसार को पुष्पित एवं पल्लवित किया है। भवभूति के राम का चरित्र मानवता की चरम अभिव्यक्ति है। उन्होंने राम को विषम परिस्थितियों में भी शिष्ट आचरण करते हुए अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों का सम्यक् निर्वहण करते हुए चित्रित किया है। भवभूति के राम राजभोग की भावनाओं से राजसिंहासन अंगीकार नहीं करते, अपितु धर्म के अधीन रहकर कर्तव्यपालन के लिए राजसिंहासन को स्वीकार करते हैं। जिसके प्रमाण स्वरूप भवभूति ने नाटक के प्रारम्भ में ही 'धर्मासन' शब्द का प्रयोग करके उनके आदर्श जीवन को परिभाषित कर दिया है। यहाँ से बालि वध के पश्चात् राम की जो नकारात्मक छवि बन गयी थी उसको भवभूति ने बड़ी ही रमणीयता से दूर कर चरित को श्री सम्पन्न कर दिया है। राम का जीवन उच्च आचरण से आदर्श पुरुष के रूप में देदीप्यमान है। भवभूति ने राम के जिस गुण को सबसे अधिक सराहा है वह है उनका प्रजानुरंजन। राम का प्रजानुरंजन रूप अद्वितीय है। प्रजापालन के लिए राम किसी भी रूप में तत्पर रहते हैं। सामान्यतः देखा जाए तो सीता का परित्याग बहुसंख्यक जनता की राय नहीं है, अपितु एक अल्पमत मात्र है जिसकी अवहेलना सरलता से की जा सकती थी किन्तु राम ने ऐसा नहीं किया क्योंकि ''इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्र. जानाम्'' ।।

शोध–आलेख

कविवर भवभूति संस्कृत साहित्य जगत् की विलक्षण विभूति हैं। संस्कृत कवि–परम्परा में उनका विशिष्ट स्थान है, उन्होंने अपनी नवीन कल्पनाओं से काव्य संसार को परिपुष्ट किया है। उनकी कविता–वनिता कला एवं भाव दोनों पक्षों से समलंकृत है। भवभूति के नाटकत्रय में भावों की अभिव्यंजना का सुन्दर समन्वय हुआ है, उनकी इन कृ तियों में भारतीय संस्कृति के प्राणतत्त्व सुरक्षित हैं। भवभूति स्वभाव से ही गम्भीर प्रकृति के कवि हैं। अपनी गम्भीर प्रवृत्ति के अनुरूप ही उन्होंने अपने पात्रों की सृष्टि की है, क्योंकि ये पात्र ही कवि एवं काव्यों के उद्देश्यों के संवाहक होते हैं। पात्रों के उदात्त चरित्र–चित्रण से ही कवि मानवीय चेतनाओं का सूक्ष्मतम विश्लेषण कर पाता है। भवभूति के राम का चरित्र मानवता की चरम अभिव्यक्ति है। उन्होंने राम को विषम परिस्थितियों में भी अविचल शिष्ट आचरण करते हुए चित्रित किया है। वे धर्मतः जीवन यापन करते हुए समाज व राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का सम्यक् निर्वहण करते हैं। वे भोग की भावनाओं से राज सिंहासन अंगीकार नहीं करते अपितु धर्म के अधीन रहकर कर्त्तव्यपालन के लिए इसको स्वीकार करते हैं।

"उत्तररामचरितम्'' के प्रथम अंक में राम जब राजसभा को विसर्जित करके निवास–गृह में सीता से मिलने के लिए जाते हैं तो वहाँ कहा गया है –

धर्मासनात् विशति वासगृहं नरेन्द्रः

अर्थात् रामधर्म के आसन से उठकर निवासगृह में गए। यहाँ भवभूति ने 'राजसिंहासन' या 'सिंहासन' पद का प्रयोग न करके धर्मासन पद का प्रयोग किया है। क्योंकि सम्पूर्ण जीवन में धर्म के अनुसार चलते हुए वे नैतिकता की कसौटी पर खरा उतरे हैं। इसलिए भवभूति ने नाटक के प्रारम्भ में ही 'धर्मासन' पद का प्रयोग करके उनके आदर्श जीवन को परिभाषित कर दिया है। महावीरचरितम् में भी राम की मर्यादा हमें चमत्कृत करती है। इस नाटक में भवभूति ने राम और बालि का प्रत्य क्ष युद्ध दिखलाया है, क्योंकि वाल्मीकीय रामायण में बालि राम का शत्रु नहीं है, अपितु सुग्रीव से सखा भाव होने के कारण राम छिपकर उसका वध करते हैं। किन्तु 'महावीरचरितम्' में भवभूति ने बालि को रावण के सहायक के रूप में चित्रित किया है जो रावण से प्रेरित होकर राम से युद्ध करने के लिए जाता है तथा प्रत्य क्ष युद्ध में राम के द्वारा वीरगति को प्राप्त होता है।

वाल्मीकीय रामायण में बालि वध करने के कारण राम की जो नकारात्मक छवि थी उसको भवभूति ने बड़ी रमणीयता से दूर किया है तथा राम–चरित को श्री सम्प. न्न कर दिया है।

भवभूति के राम का चरित्र मानवता की चरम अभिव्यक्ति है। उन्होंने राम को विषम परिस्थितियों में भी अविचल शिष्ट आचरण करते हुए चित्रित किया है। वे ध र्मतः जीवन यापन करते हुए समाज व राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व का सम्यक् निर्वहन करते हैं।

भवभूति ने अपनी कृतियों में राम को एक उत्कृष्ट कोटि के धीरोदात्त नायक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। धीरोदात्त नायक का लक्षण दशरूपककार ने इस प्रकार किया है –

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढ़ाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।।
(दशरूपक)

धीरोदात्त नायक के लक्षण के सभी गुण भवभूति के राम में स्पष्टतः चरितार्थ होते हुये दिखाई भी देते हैं। भवभूति की सर्वोत्कृष्ट कृति 'उत्तररामचरितम्' के नायक युग–दृष्टा, युग–सृष्टा, रघुवंश केतु श्रीराम हैं। भवभूति के नाट्यरूपी दर्पण में राम आदर्श लोकानुरंजन स्वामी, आदर्श पति और आदर्श भ्राता के रूप में स्पष्ट प्रतिबिम्बित होते हैं। राम का जीवन उच्च आचरण से अनुकरणीय आदर्श पुरुष के रूप में देदीप्यमान है। वे युद्ध में भी मर्यादा का ध्यान रखते हैं। परशुराम जब युद्ध में राम से पराजित हो जाते हैं तो भी अन्त में राम उनसे अविनय व्यवहार के लिए क्षमा याचना करते हैं। वे अत्यन्त विनम्र एवं साधु स्वभाव के हैं। 'उत्तररामचरितम्' के 'चित्रदर्शन' प्रकरण में उनकी विनम्रता तब पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है जब वे परशुराम के प्रति किए गए अपने शौर्य को इस बहाने से नहीं दिखलाना चाहते कि – "अरे अभी और बहुत कुछ देखने योग्य है, दूसरी ओर दिखाओ।"

इसी प्रकार जब लक्ष्मण मन्थरा के चित्र को दिखलाते हैं तब वे माता कैकेयी के वृत्तान्त को टालने के लिए शीघ्र ही श्रृंगवेरपुर में निषादपति के साथ समागम करने में लग जाते हैं। यहाँ राम का यह गुण दृष्टिगोचर हो रहा है कि वे दूसरों की प्रशंसा तो करते हैं, किन्तु अपनी प्रशंसा उन्हें अधिक अच्छी नहीं लगती।

भवभूति राम के जिस गुण को सर्वाधिक प्रकाश में लाये हैं वह है उनका प्रजानुरंजन में गहरी आस्था का होना। राम का प्रजानुरंजक रूप अनुपम है। वे प्रजा के हित–चिन्तन को परम कर्त्तव्य मानते हैं। प्रजापालन के लिए किसी भी रूप में तत्पर रहते हैं, क्योंकि इक्ष्वाकुवंश की यह मर्यादा है। वे कहते हैं–

सत्तांकेनापिकार्येणलोकस्याराधनंव्रतम्।
यत्पूरितंहितातेनमां च प्राणांश्चमुंचता।।

सीता का परित्याग बहुसंख्यक जनता की राय नहीं है, अपितु एक अल्पमत मात्र है, उसकी सरलता से उपेक्षा की जा सकती थी परन्तु राम ऐसा सोच भी नहीं सकते क्योंकि इक्ष्वाकुवंश प्रजा को अभीष्ट है–**इवाकुवंशोऽभिमतः प्रजानाम्** तथा गुरु वशिष्ठ का भी यही आदेश है – **युक्तः प्रजानामनुरंजने स्याः**अर्थात् प्रजा की भलाई के लिए तत्पर रहो। अतः प्रजानुरंजन ही राम के लिए सर्वोपरि है। वे कहते हैं –

स्नेहंदयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा।।

यहाँ यह विचारणीय है कि राम जानकी के सच्चरित्र एवं पवित्रता से परिचित न हों। ऐसी बात नहीं है, क्योंकि सीता के विषय में वह स्वयं कहते हैं कि – "जन्म से पवित्र सीता को शुद्धि के लिए तीर्थ–जल और अग्नि जैसे पवित्रताकारी पदार्थों की आवश्यकता नहीं है।"किन्तु लोकाराधना की वेदी पर अपने निज सौख्य को तिलांजलि देना राम की कर्तव्यनिष्ठता का एवं आदर्श भूपतित्व का दृष्टान्त है। यहाँ राम का चरित्र राजतन्त्र में लोकतन्त्र की भावना को उद्घाटित करता है, वे लोकभावना का सम्मान करते हुए शासन प्रबन्ध करते थे।

राम ने सीता का परित्याग तो कर दिया किन्तु जो तीव्र वेदना और प्रहार उनके हृदय पर हुआ है वह स्थान–स्थान पर प्रस्फुटित होता है। "हा देवी! देव यजनसम्भवे? हा स्वजन्मानुग्रह पवित्रत वसुधरे? हा मुनिजन नन्दिनि? हा पावक वशिष्ठरुन्धती प्रशस्तशीलशालिनि? हा रामभय जीविते? हा महारण्यवासप्रिय सखि? हा तातप्रिय? हा स्रोकवादिनि? कथमेव विधायास्तवार्यमीदृशः परिणामः?

त्वया जगन्ति, पुण्यानि त्वय्यपुण्या जनोक्तयः।
नाथवन्तस्त्वया लोकास्त्वमनाथा विपत्स्यसे।।

राम का हृदय जानकी के प्रति बड़ा उदार एवं आदर की भावनाओं से तरंगित हो रहा था। परन्तु वह सीता के त्याग की कल्पना से ही काँप उठता था। वे सीता की पवित्रता की घोषणा करते हुए कहते हैं कि तुम बिना संसार ही अपवित्र है और तुमको प्राप्त करके भी संसार धन्य है, परन्तु तुम ही अनाथ होकर कैसे आपत्तियाँ सहन करोगे। वह स्वयं राम तुम्हारे परित्याग करने मात्र को ही सोचने से महत दुःखी हो रहा हूँ। परन्तु ऐसे ही श्रीराम ने जब सीता का परित्याग करके, पञ्चवटी में सीता से सम्बन्धित स्थानों को देखकर जो विलाप किया है। उस कारुण्य धारा में पथिक भी अपने मन को द्रवित पाता है। यही नहीं अपितु उस राम के कारुण्य का श्रवण करके तो प्रस्तर खण्ड भी रो पड़ते हैं। राम के दाम्पत्य जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहा है कि इतना आदर्शमय दाम्पत्य प्रणय बड़े ही सौभाग्य से मिलता है, जो प्रणय सुख–दुःख की सभी अवस्थाओं में एक–सा रहता है और किसी विशिष्ट अवस्था में परिवर्तित नहीं होता। सदा चित्त को अपूर्व सुख और शक्ति का प्रदायक होता है। यथा –

अद्वैतसुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्,
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्प्रेमसारे स्थितं,
भद्रंतस्य सुभानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राथ्र्यते।।

श्रीराम का दाम्पत्य प्रेम अत्यन्त पावन एवं आदर्शमय है। वे सीता के विरहोत्पन्न दुःख से अत्यन्त कृशकाय, मलिन छवि वाले हो जाते हैं कि राम को पह. चानना कि ये राम हैं कठिन हो गया है। प्रजानुरञ्जक, सीता के विरह में क्षीण कलेवर श्रीराम दुखार्त्त होकर कहते हैं कि हे देवि! सीता के विरह में मेरा हृदय खण्ड–खण्ड हो रहा है और इस समय संसार शून्य सा प्रतीत हो रहा है। अजस्र वियोगाग्नि की ज्वाला से अन्तः करण जल रहा है; विरह से व्याप्त हृदय अन्धकार में डूब रहा है और मुझे बार–बार मूर्छा आ रही है। मैं अभागा अब क्या करूँ?

"हा हा देवि! स्फुरति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः,

शून्ये मन्ये जगदविरज्वालमन्तर्ज्वलामि।
सीदन्नधे तमसि विधुरोमज्जतीवा तरात्मा,
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि?।।

अतः स्पष्ट है कि जनकसुता के प्रति राम का प्रगाढ़ प्रणय था। राम एक पत्नी व्रतधारी हैं। जब अश्वमेध यज्ञ किया, तो अपरा स्त्री को पत्नी के रूप में स्वीकार न करके, स्वर्णमयी प्रतिमा ही अपने वाम अंग रखते हैं। यही एक पत्नीव्रत नियम के पालन का एक सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

प्रजानुरञ्जक आदर्श शासक श्रीराम इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न थे, स्ववंशपरम्परा के प्रायः सभी गुण विद्यमान थे। राम ने स्वयं इक्ष्वाकुवंश की परम्परा की रक्षा के लिए सजग रहना सूचित करते हुए कहा है – "इक्ष्वाकूणां कुलध् ानमिदं यत्समराधनीयः कृत्स्नो लोकः।"

राम स्वभाव से अत्यन्त गम्भीर हैं। भीतर से चाहे कितने भी क्षुब्ध हों लेकिन बाहर उसे प्रकट नहीं होने देते इसके लिए भवभूति ने पुटपाक की उपमा दी है। पुटपाक में पदार्थ जिस प्रकार अन्दर ही अन्दर खौलता रहता है उसी प्रकार राम का करुण भाव है। उनकी व्यथा यद्यपि अत्यन्त घ ानी है पर वह इतनी गूढ है कि कोई भी व्यक्ति उसे समझ नहीं पाता –

अनिर्भिन्नो गभीरत्वादन्तर्गूढ घनव्यथः।
पुटपाकप्रतीकाशो रामस्य करुण रसः।।

भवभूति ने इस प्रकार की राम की कारुणिक स्थिति दिखलाकर हृदयहीन में भी सहृदयता का संचार कर दिया है तथा क्रूर से क्रूर प्राणी भी उसे हृदयङ्गम करता है और जन्म जन्मान्तरों के कुटिल संस्कारों के बावजूद भी वह द्रवित हो जाता है। सीता वियोग–रूपी शोक से पीड़ित राम वासन्ती से कहते हैं कि मेरा हृदय शोक की व्याकुलता से फट रहा है परन्तु दो टुकड़ों में विभक्त नहीं होता –

दलति हृदयं शोकोद्वेगाद् द्विधा तु न भिद्यते,
वहति विकलः कायो मोहं न मुंचति चेतनाम्।।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्।।

यहाँ भवभूति ने सीता निर्वासन की पीड़ा को राम के आत्मनिर्वासन की गहनतर पीड़ा अन्तरित कर उनके राजधर्म एवं मनुष्यधर्म के बीच के तीक्ष्ण अन्तर्द्वन्द्व को जिस सूक्ष्मता और सहृदयता से रूपायित किया है उससे उनका सीता परित्याग रूपी कलंक धूमिल होता हुआ सा प्रतीत होता है।

उत्तररामचरित में भवभूति ने राम की सीता के प्रति प्रेम की ग्रन्थियों को खोला है भवभूति ने राम को अपना पक्ष रखने का पूर्ण अवसर दिया है। लेकिन भवभूति ने सीता–परित्याग विषय जो समाज में राम के प्रति जो क्रोध की भावना को उत्पन्न करता है अथवा सचित्रा नारी के परित्याग का जो प्रश्न समाज में व्याप्त है उन्होंने उत्तररामचरित में राम से वासन्ती के द्वारा पूछा है।

त्वं जीवितं, त्वमसि मे हृदयं, द्वितीयं
त्वं कौमदी नयनयोरमृतं त्वमङ्गे।
इत्यादिभिः प्रियशतैरनुरुध्य मुग्धां
तामेव शान्तमथवा किमतः परेण?।।

अर्थात् "बोलो राम वह सीता अब कहाँ है, जिसे तुम अप. ना जीवन व दूसरा हृदय कहते थे, जो तुम्हारी नेत्रों की चाँदनी थी वह सीता अब कहाँ है?"

भवभूति के उत्तररामचरित के तृतीय अङ्क पढ़ने से ऐसा ज्ञात होता है कि भवभूति ने राम को सीता–परित्याग दोष से मुक्त किया हो व सामाजिक के हृदय में विद्यमान राम के प्रति एक–एक प्रश्न को पूछा हो, तभी तो उन्होंने छायाङ्क के प्रारम्भ में भगवति गोदावरी को सावधान कर दिया है कि हे गोदावरी अब राम को आपको प्रत्येक मूर्छा से अपने जल से होश में लाना है–

वीचीवातै शीकरक्षोदशीतैराकर्षद्भिः पद्म किञ्जलकगन्धान्
मोहे–मोहे रामभद्रस्य जीवं स्वैरं स्वैरं प्रेरितैस्तर्पयेति।।

पुनः शम्बूक वध के लिए पञ्चवटी में आये राम से भवभूति ने वासन्ती पात्र द्वारा अनेक जनस्थानों को दि खाकर वासन्ती पात्र द्वारा राम की आलोचना की है।

वासन्ती राम से कहती है "देखो महाराज यह वही, प्रियतमा के सहचर तुम्हारा घने और सुकुमार केलों के वन के मध्य में स्थित यह शयन करने के योग्य शिलातल है। यहाँ पर बैठी हुई सीता वन में रहने वाले मृगों को घास दिया करती थी।"

भवभूति ने अनेक उदाहरणों द्वारा मानो राम से यह पूछने का प्रयत्न किया है कि तुमने सीता का परित्याग क्यों किया? वासन्ती कहती है हे राम! देखो –

सीतादेव्यास्वरकरकलितैः सल्लकीपल्लवाग्रै
रंग्रे लालः करिकलभको यः पुरा वर्धितोऽभूत्।
वध्वा सार्धं पयसि विहरन् सोऽयमन्येन दर्पा
दुद्दामेन द्विरदपतिना सन्निपत्याभियुक्तः

वासन्ती कहती है महाराज देखो इस करिशावक को सीता ने सल्लकी लता के अग्रभागों को खिलाकर बड़ा किया वह यह अपनी भार्या के साथ जल में क्रीडा कर रहा है। मानो वासन्ती पूछ रही हो कि तुम्हारी भार्या सीता कहाँ है –

अयि कठोर! यशः किल ते प्रियं

हे राम! तुम निष्ठुर, तुमने अपने यश के लिए सीता का परित्याग कर दिया है।

अतः इन सब उदाहरणों से यह ज्ञात होता है कि भवभूति ने जनसाधारण के हृदय में विद्यमान सीता परित्याग के कारण को राम से पूछने का प्रयत्न किया है वहीं दूसरी तरफ राम को अपना पक्ष रखने का अवसर दिया है।

उत्तररामचरित में भवभूति राम के माध्यम से यह मूल्य स्थापित करते हैं कि राजा को अपने व्यक्तिगतमूल्यों को तिलांजलि देकर लोक–आराधन के लिए कष्टप्रद निर्णय लेने पड़ते हैं। लेकिन भवभूति ने राम के पक्ष को स्पष्ट किया जब वासन्ती राम को सीता के विषय में विभिन्न

उद्धरणों के माध्यम से पूछ रही है तो राम उन स्थानों को देखकर मूर्छित हो जाते हैं तब तमसा कहती है –

त्वमेव ननु कल्याणि! सञ्जीवय जगत्पतिम्।
प्रियस्पर्शो हि पाणिस्ते तत्रैष निरतो जनः।।

अर्थात् हे कल्याणि! तुम्हीं जगत्पति (रामचन्द्र) को जीवित कर सकती हो, उसी में रामचन्द्र अनुक्त हैं।

उत्तररामचरित के एक अन्य उदाहरण से ज्ञात होता है कि भले राम ने सीता का परित्याग किया है। लेकिन वे इस घटना के बारह वर्ष व्यतीत होने पर भी सीता के स्पर्श को पहचान रहे हैं –

स्पर्शः पुरा परिचितो नियत स एव
सञ्जीवनश्च मनसः परितोषणश्च।
सन्तापजां सपदि यः परिहृत्य मूर्च्छा–
मानन्देन जडतां पुनरातनोति।।

इस प्रकार भवभूति ने राम का पक्ष रखते हुए स्पष्ट किया है कि राम लोकानुरञ्जन के लिए तत्पर हैं। महाकवि भवभूति ने राम के माध्यम से इस जगत् को शिक्षा दी है कि किस प्रकार मानव विभिन्न परिस्थितियों में वीरतापूर्वक आगे बढ़ता हुआ अपने शील के रक्षण में तत्पर रहकर उद्देश्य की ओर अग्रसर होता रहता है।

राम एक आदर्श प्रजापालक राजा के साथ–साथ आदर्श पति भी हैं। यहाँ यह आक्षेप हो सकता है कि जब राम ने सीता का परित्याग कर दिया था तो वे आदर्श पति कैसे हुए? किन्तु यहाँ विचारणीय है कि सीता के प्रति सहज आन्तरिक अनुराग से उनका हृदय उन्हीं में स्थिर है तथा शक्तिशाली एवं समर्थ होते हुए भी अनन्य भाव से सीता के प्रति आदर्श प्रेम प्रदर्शित करते हुए किसी अन्य कन्या से परिणय नहीं करते हैं, अपितु अश्वमेध यज्ञ के समय सहधर्माचारिणी के रूप में पवित्र सीता की प्रतिमा को पत्नी के रूप में रखते हैं। राम की कारुणिक स्थिति एवं अपने प्रति इस अगाध प्रेम को देखकर एक स्थल पर सीता भी परित्याग से सहमत होती सी प्रतीत होती हैं। वह कहती हैं–

अहो उत्खातितमिदानीं मे परित्याग शल्यमार्यपुत्रेण

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाकवि भवभूति ने राम के माध्यम से इस जगत् को शिक्षा दी है कि किस प्रकार मानव विभिन्न विकट परिस्थितियों में वीरतापूर्वक आगे बढ़ता हुआ अपने शील के रक्षण में तत्पर रहकर उद्देश्य की ओर अग्रसर होता रहता है। आज हमारे देश की जो नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दुर्गति हुई है तथा देश दुर्बल हुआ है। इस चिन्ताजनक परिदृश्य में शील रक्षण में तत्पर राम का व्यक्तित्व हमारा सहायक हो सकता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने शब्दों से नहीं वरन् अपने आचरण से भी जाति–पाति एवं ऊँच–नीच के भेदभाव को नकार कर राष्ट्रिय एकता का आदर्श प्रस्तुत किया है। उनका दृष्टिकोण समन्वयवादी है। वे केवल निषाद और शबरी जैसे पिछड़े वर्ग के नर–नारियों को ही हृदय में स्थान नहीं देते अपितु निकृष्ट समझे जाने वाले वानर सुग्रीव एवं राक्षस विभीषण को भी सखा बनाकर भारत के विघटित समाज को संगठित होने का मार्ग प्रशस्त करते हैं। अतः हम अन्त में भवभूति के शब्दों में राम के लिए कह सकते हैं –

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।

सन्दर्भ :

1. महावीरचरितम्, मालतीमाधवम्, उत्तररामचरितम्।
2. उत्तररामचरितम् – 1/7.
3. वाल्मीकीय रामायण – किष्किन्धाकाण्ड – 16/36, 22/24.
4. महावीरचरितम् – 5/61
5. वहीं, 4/21.
6. उत्तरारामचरितम् – प्रथम अंक, पृ. 37.
7. वहीं, पृ. 41.
8. वहीं, 1/41.
9. वहीं, 1/44.
10. वहीं, 1/11.
11. वहीं, 1/12.
12. उत्तररामचरितम्, 1/43
13. उत्तररामचरितम् 1/39
14. उत्तररामचरितम् 3/38
15. उत्पत्तिः परिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः। तीर्थोदकं च बह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः।। उत्तररामचरितम् – 1/13.
16. वहीं, 3/1.
17. उत्तररामचरितम् 3/26
18. उत्तररामचरितम् 3/2
19. उत्तररामचरितम् 3/21
20. उत्तररामचरितम् 3/6
21. उत्तररामचरितम् 3/27
22. उत्तररामचरितम् 3/10
23. उत्तररामचरितम् 3/12
24. वहीं, 3/31.
25. वहीं, अंक–3, पृ. 255.

****

भारतीय संस्कृति में तीर्थ यात्रा का धार्मिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व (नदी तीर्थ गंगा के विशेष संदर्भ में)

-डॉ.चंद्रशेखर पासवान

स्कूल ऑफ बुद्धिस्ट स्टडीज एंड सिविलाइजेशन

गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, ग्रेटर नॉएडा, उत्तर प्रदेश

सार संक्षेप

यहाँ मेरा शोध आलेख नदी तीर्थ गंगा से सम्बंधित है। वैदिक काल से भारतीय धर्म ग्रंथों में तीर्थों के बारे में विशद व्याख्या किया गया है। तीर्थ अनेक प्रकार से किया जाता है जिनमें नदी तीर्थ ,पर्वत ,मंदिर ,स्तूप ,विहार , चौत्य ,वन आदि आते हैं। मेरा शोध आलेख नदी तीर्थ पर आधारित मुख्य रूप से हिन्दू तीर्थ परम पावनी गंगा नदी तीर्थ से है। मुख्य रूप से तीर्थ का अर्थ ,व्याख्या ,धर्म शास्त्रों में वर्णन , तीर्थ क्यों आवश्यक है ,तीर्थ का महत्व , आदि वर्णन किया गया है।

बीज शब्द—नदी तीर्थ हरिद्वार ,प्रयाग ,काशी ,गंगा सागर का मुख्य विषय।

विस्तृत व्याख्या

भारतवर्ष में पवित्र स्थानों में अति महत्वपूर्ण योगदान किया है। विशाल एवं लम्बी नदियां, पर्वत एवं वन सदैव पुण्यप्रद एवं दिव्य स्थल कहे गये है। प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत में तीर्थयात्राओं से समाज एवं स्वयं तीर्थयात्रियों को बहुत लाभ होते थे। यद्यपि भारतवर्ष कई राज्यों में विभाजित है और लोग भांति—भांति के सम्प्रदायों एवं उपसम्प्रदायों के अनुयायी है, किन्तु तीर्थयात्राओं ने भारतीय संस्कृति एवं देश की महत्वपूर्ण मौलिक एकता की भावना को संवर्धित किया। यद्यपि हिन्दू समाज बहुत—सी जातियों में विभक्त है और जाति—संकीर्णता में जकड़े हुए हैं। किन्तु तीर्थयात्राओं ने सभी को पवित्र नदियों एवं स्थलों में एक स्थान पर सभी एक है। पवित्र स्थानों से संबंधित परम्पराओं, तीर्थयात्रियों की संयमशीलता, पवित्र एवं दार्शनिक लोगों के समागम एवं तीर्थों के वातावरण ने यात्रियों को एक उच्च आध्यात्मिक स्तर पर अवस्थित कर रखा है और उनके मन में एक ऐसी श्रद्धा—भक्ति की भावना भर उठती थी। जो तीर्थयात्रा से लौटने के उपरान्त भी दीर्घ काल तक उन्हें अनुप्राणित किये रहती थी। प्राचीन काल में तीर्थयात्रा करना एक ऐसा सााधन था जो साधरण लोगों को स्वार्थमय जीवन—कर्मो से दूर रखने में सहायक होता था और उन्हें उच्चतर एवं दीर्घकालीन महान नैतिक एवं महान नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन मूल्यों के विषय में सोचने को उत्तेजित करता रहता था।पवित्र तथा तीर्थ के स्थलों पर देवों का निवास माना जाता है। अतः इस भावना से उत्पन्न स्पष्ट लाभ एवं विश्वास के कारण प्राचीन धर्मशास्त्रकारों ने तीर्थों की यात्राओं पर बल दिया। विष्णुधर्मसूत्र के अनुसार सामान्य धर्म में निम्न बातें आती हैं—क्षमा, सत्य, दम ;मानस संयम, शौच, दान, इन्द्रिय—संयम, अहिंसा, गुरुशुश्रूषा, तीर्थयात्रा, दया, आर्जव ,ऋजुता, लोभशून्यता, देवब्राह्मणपूजन एवं जीवन मुक्ति ।

तीर्थ का अर्थ एवं विकास

ऋग्वेद एवं अन्य वैदिक संहिताओं में 'तीर्थ' शब्द बहुध प्रयुक्त हुआ है। तीर्थ शब्द, मार्ग या सड़क के अर्थ में आया है। कुछ स्थानों पर इसका तात्पर्य नदी का सुतार , उथला स्थान है। तीर्थ उस मार्ग को भी कहते हैं जो यज्ञिय स्थल ,विहार से आने—जाने के लिए। जिस प्रकार मानवशरीर के कुछ अंग, यथा दाहिना हाथ या कर्ण, अन्यअंगों से अपेक्षाकृत पवित्र माने जाते हैं, उसी प्रकार पृथिवी के कुछ स्थल पवित्र माने जाते हैं। तीर्थ तीन कारणों से पवित्र माने जाते हैं, यथा—स्थल की कुछ आश्चर्यजनक प्राकृतिक विशेषताओं के कारण, या किसी जलीय स्थल की अनोखी रमणीयता के कारण, या किसी तपःपूत ऋषि या मुनि के वहां स्नान करने, तपःसाधना करने आदि के लिए रहने के कारण।

अतः तीर्थ का अर्थ है वह स्थान या स्थल या जलयुक्त स्थान ,नदी, प्रपात, जलाशय आदि जो अपने विलक्षण स्वरूप के कारण पुण्यार्जन की भावना को जाग्रत करे। क्षेत्र ,स्थान विशेष तो आजकल प्रधान रूप से तीर्थ माना ही गया है, क्योंकि आज सभी लोग प्रायः स्थल विशेष के लिए ही तीर्थ शब्द का प्रयोग करते हैं। विश्वप्रकाश कोशकारने शास्त्र, यज्ञ, क्षेत्र, उपाय, उपाध्याय, मन्त्री, अवतार, ऋषियेवित जल, आदिको तीर्थसंज्ञा दी है।

तीर्थ शास्त्राध्वरक्षेत्रोपायोपाध्यायमन्त्रिशु।

अवतारर्शिजुस्टाम्भः स्त्रीरजःसु च विश्रुतम्।।[1]

ऋग्वेद में तीर्थ शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है, जिसमें अनेक स्थलों पर यह मार्ग अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2] ऋग्वेद[3] की व्याख्या में सायण ने तीर्थ का अर्थ—'पापोत्तरणसमर्थ' दिया है। अवतरण प्रदेश ,नदी का किनारा, घाट, यज्ञ तथा स्थान विशेष के लिए भी तीर्थ शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है।[4] अथर्ववेद में तीर्थ शब्द यज्ञ तथा नदी के अवतरण प्रदेश घाट अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद कहता है— मनुष्य तीर्थोंके सहारे भारी से भारी विपत्तियोंको तर जाता है। तीर्थोंके सेवनसे बड़े—बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं।

भारत में तीर्थों का महत्व बहुत प्राचीन काल से रहा है। ऋग्वेद, अथर्ववेद, तैत्तिरीय संहिता, शुक्ल यजुर्वेद आदि वैदिक साहित्य में तीर्थ शब्द का प्रयोग पवित्र स्थान के अर्थ में हुआ है। रामायण एवं महाभारत काल में भी तीर्थों का माहात्म्य अधिक था। महाभारत में तो तीर्थों का वर्णन –प्राधन्य को स्वीकारोक्ति स्पष्ट शब्दों में है–

तीर्थानां नाम पुण्यानां देशानां चेह कीर्त्तनम् ।
वनानां पर्वतानां च नदीनां सागरस्य च ।।
देशानां चैव पुण्यानां पुराणानां चैव कीर्त्तनम् ।[5]

तथा यह प्रधानता महाभारत में अनेक स्थलों पर विस्तृत वर्णन द्वारा भी प्रतिपादित है। पुलस्त्य–भीष्म–संवाद, गौतम–अर्घिरस्–संवाद तथा धौम्य युधिष्ठिर–संवाद में तीर्थों का माहात्म्य एवं फल सम्बन्धी विवेचन विस्तृत रूप से किया गया है।[6]रमणीय वन तथा पर्वत प्रदेशों में एवं नदियों के किनारे अनेक तीर्थ थे। अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य, विशुद्ध जलवायु तथा निर्जनता के कारण ये देवर्षि–सिद्ध –जन–निवास करते थे। देवों एवं महर्षियों ने यज्ञ, तप आदि के द्वारा इन आश्रमों को पवित्र किया था, जिससे तीर्थयात्री के मन में भावि–जीवन को प्रभावित करने वाली आध्यात्मिक अनुभूति होती थी, जो आत्मोन्नति में बड़ी सहायक होती थी। केवल सनातन धर्मावलम्बी ही नहीं, किंतु अन्य धर्मावलम्बी भी तीर्थ–माहात्म्य को स्वीकार करते हैं। महाभारत और पुराणों में भी यही भावना थोड़ी विकसित अवस्था में पहुँची है तथा यज्ञों के स्थान पर तीर्थ पर तीर्थ–संस्था का विकास हुआ। धर्मसूत्रों से भी पता चलता है कि उत्तर वैदिक काल में यज्ञ, तप, स्नान, श्राद्ध, तर्पण, दान, शुद्धि तथा प्रायश्चित इत्यादि कर्मकाण्डों के लिये भी तीर्थ स्थानों को ही महत्व दिया गया। दैनिक ''पंचमहायज्ञ'' के विधान में ही पितृ–तर्पण का महत्व मिलता है। तीर्थों में तर्पण, श्राद्ध तथा पूजापाठ का मूल भी पितृतर्पण के कर्मकाण्ड तथा विधान में ही पाया जाता है। इन कर्मकाण्डों के सम्पादन के लिये पवित्र जलीय स्थानों अथवा नदियों को ही महत्व दिया गया।

महाभारत के अनुशासन पर्व से हमें पता चलता है कि अध्याय 25 में युद्धिष्ठिर के पूछने पर भीष्म कहते हैं कि एक बार अंगिरा ने गौतम से विभिन्न तीर्थों का माहात्म्य बतलाया था, उसे सुनोः–तीर्थानां दर्शनों श्रेयः स्नानं च भरतर्षभ। अवणं च, महा प्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि तत्वतः।

पृविव्यां यानि तोर्थानि पुण्यानि भरतर्षभ। वक्तुमहासि में वानि श्रोतास्मि नियतं प्रभों।

इममंगिरसा भक्त तीर्थवर्ष महाद्यते।श्रोतुमहसि भद्रं ते प्राप्यसे धर्ममुत्तमम्।

तीर्थों के दर्शन, वहाँ स्नान तथा तीर्थों का श्रवण करना तीनों लाभदायक बतलाया। तीर्थ–प्रचार ऐसे समय में जब कि जनता का ध्यान यज्ञों की ओर से हट चला था, मार्ग–प्रदर्शन के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ। महाभारत के शल्य–पर्व में लगभग 30 तीर्थ आये हैं। शल्य–पर्व के तीर्थों पर एक दृष्टि स्वरूप की दृष्टि ये घाट, कूप, स्त्रोत, वन, तपोभूमि, आयम, नदी तथा हृद हैं।

धर्मशास्त्र–संबंधी ग्रन्थों में तीर्थ पर जो साहित्य है वह अपेक्षाकृत सबसे अधिक विशद है। वनपर्व एवं शल्यपर्व में ही लगभग तीर्थयात्रा–संबंधी श्लोक हैं। इसके अतिरिक्त निम्न निबन्ध एवं तीर्थ–संबंधी ग्रन्थ उल्लेखनीय है। लक्ष्मीधर के कल्पतरु का तीर्थविवेचन काण्ड, हेमाद्रि की चतुर्वर्ग–चिन्तामणि का तीर्थखण्ड जो अभी उपलब्ध नहीं हुआ है, वाचस्पति की तीर्थचिन्तामणि, नृसिंहप्रसाद का तीर्थसार, नारायण भट्ट का त्रिस्थलीसेतुसारसंग्रह, रघुनन्दन का तीर्थतत्त्व या तीर्थयात्रा–विधितत्व, मित्र मिश्र का तीर्थप्रकाश, नागेश या नागोजि का तीर्थेन्दुशेखर। विद्यापति का गंगावाक्यावली नामक ग्रन्थ, सुरेश्वराचार्य का काशीमृतिमोक्ष–विचार, रघुनन्दन की गयाश्राद्धपद्धति एवं पुरुषोत्तमक्षेत्रतत्व।[7]

तीर्थों के प्रकार

ब्रह्मपुराण ने तीर्थों को चार कोटियों में बांटा है– दैव द्वारा उत्पन्न, आसुर जो गय, बलि जैसे असुरों से संबंधित है, आर्ष एवं मानुष, जिनमें प्रत्येक पूर्ववर्ती अपने अनुवर्ती से उत्तम है। ब्रह्मपुराण में विन्ध्य के दक्षिण की छः नदियों और हिमालय से निर्गत छः नदियों को देवतीर्थों में सबसे आध्कि पुनीत माना है, यथा–गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी, भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका एवं वितस्ता। इसी प्रकार काशी, पुष्कर एवं प्रभास देवतीर्थ हैं। प्रथमतः तीर्थों को तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं। 1. जंगम 2. मानस 3. स्थावर।

स्थावर **तीर्थ**

भूमि एवं जल के तेज से तथा महर्षियों के आश्रय के कारण ये स्थावर तीर्थ अत्यन्त पुण्य हैं। मानस एवं पार्थिक तीर्थ पुण्य हैं। जो इन उभयविध तीर्थों में स्नान करता है, वह शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करता है। तीर्थों के अनेक अर्थों में से व्यवहार में प्रचलित अर्थ स्थावर तीर्थ ही है। ये तीर्थ नदी, कूप, सरोवर आदि, महर्षियों के आश्रम, देव तीर्थ, वन, वृक्ष, पर्वत आदि, और अन्य विविध तीर्थ के रूप अनेक प्रकार के हें। महर्षियों द्वारा सेवित सभी पुण्यस्थल तीर्थ माने गये हैं।[8]महाभारत में इन स्थावर तीर्थों के सम्बन्ध में बहुत ही विस्तृत वर्णन है। स्थावर तीर्थों का विभाजन अन्य प्रकार से भी हो सकता है–नैसर्गिक अथवा स्वयम्भूतः जैसे प्रभास आदि सरोवर, काम्यक आदि वन, हिमवदादि पर्वत, गंगादि नदी तथा समुद्रादि।

तीर्थयात्रा के उद्देश्य –तप के लिये–तीर्थस्थान का वातावरण शान्त एवं पवित्र होने के कारण वह तप के लिये उपयुक्त होता है। इसीलिये देवों एवं महर्षियों ने तीर्थों में जाकर तप तथा यज्ञ किये हैं।

पापनाश हेतु–तीर्थसेवन से पापनाश होते हैं। अतः पापशमनार्थ तीर्थयात्रा करना चाहिये। धर्मशील देवों ने नदी, समुद्र, सरोवर आदि पुण्यतीर्थ स्थानों में जाकर यज्ञ,

दान, तप आदि के द्वारा पापनाश कर श्रेयः एवं उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त किया

शौचार्थ—तीर्थयात्रा से बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकार की शुद्धि हो जाती है। शौचार्थ तीर्थावगाहन करना श्रेयस्कर है। इसीलिये पुण्यदेश में जाना परमपवित्र माना गया है।

दान देने के लिये—महाभारत के अनुसार 'जो तीर्थों में जाकर दान नहीं देता, वह सन्यास आश्रम में प्रवेश करने पर भी दोनों लोकों से भ्रष्ट होता है। पुण्यक्षेत्रों में दिया गया दान अधिक फलप्रद होता है। अतः दानपफल प्राप्त्यर्थ तीर्थों में जाकर दान करना चाहिये। तीर्थों में भूमिक्रय कर उस भूमि में श्राद्ध करके दान करने का महापफल कहा गया है। श्राद्ध हेतु, स्वाध्याय हेतु तीर्थाटन करते हुए पृथिवी पर भ्रमण करते थे। मन की अशान्ति दूर करने हेतु।

तीर्थ यात्रा का अधिकारी

तीर्थयात्रामें सभी श्रद्धालुओं का अधिकार है, चाहे वे किसी भी वर्ण या आश्रम के क्यों न हों। जो मनुष्य विषयों में आसक्त रहता है, वह संसार में बंधा रहता है, किन्तु जो विषयों को त्याग देता है, उस व्यक्ति का विषयविरक्त मन ही मुक्ति का कारण बन जाता है। इसीलिए महर्षियों ने मनःशुद्धि को सर्वप्रधन माना है। काम एवं क्रोध दोनों ही मनुष्य को मदान्ध कर देते हैं, अतः कामना—निवृत्ति के अनन्तर क्रोध पर विजय पाना भी आवश्यक है। वही व्यक्ति तीर्थफल को पाता है, जो क्रोध को त्याग देता है। दृढ़प्रतिज्ञ तथा सत्य आचरण करने वाले व्यक्ति की ही तीर्थयात्रा सफल होती है। अन्य प्राणियों में अपने समान ही भावना रखना चाहिये। सभी प्राणियों में वही एक अखण्ड, अद्वैत ब्रह्म मणियों की माला में सूत्र के समान है।, इस प्रकार विचार कर किसी से भी राग—द्वेष न करते हुए सभी का कल्याण करना हमारा धर्म है, ऐसा जानकर वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त अपनाते हुए प्राणिमात्र पर दया करना चाहिये।

प्रसिद्ध **तीर्थ**

गंगा

नदीसूक्त में सर्वप्रथम गंगा का ही आह्वान किया गया है। महाभारत एवं पुराणों में गंगा की महत्ता एवं पवित्रीकरण के विषय में सैकड़ों प्रशस्तिजनक श्लोक हैं। स्कन्द. में गंगा के एक सहस्र नामों का उल्लेख है। गंगा के माहात्म्य एवं उसकी तीर्थयात्रा के विषय में पृथक्—पृथक् ग्रन्थ प्रणीत हुए हैं। यथा गणेश्वर का गंगापत्तलक, मिथिला की रानी विश्वासदेवी की गंगावाक्यावली, गणपति की गंगा भक्ति—तरंगिणी एवं वर्द्धमान का गंगाकृत्यविवेक। यदि कोई सैकड़ों पापकर्म करके गंगा—जल का अवसिंचन करता है तो गंगाल्जल उन दुष्कृत्यों को उसी प्रकार जला देता हे, जिस प्रकार अग्नि इंधन को। कृतयुग में सभी स्थल पवित्र थे, त्रेता में पुष्कर सबसे अधिक पवित्र था, द्वापर में कुरु क्षेत्र एवं कलियुग में गंगा। नाम लेने पर गंगा पापी को पवित्र कर देती है, इसे देखने से सौभाग्य प्राप्त होता है, जब इसमें स्नान किया गया जाता है या इसका जल ग्रहण किया जाता है तो सात पीढ़ियों तक कुल पवित्र हो जाता है। जब तक किसी मनुष्य की अस्थि—गंगा—जल को स्पर्श करती रहती है। तब तक वह स्वर्गलोक में प्रसन्न रहता है। वह देश, जहां गंगा बहती है और वह तपोवन जहां गंगा पायी जाती है, उसे सिद्धिक्षेत्र कहना चाहिए, क्योंकि वह गंगातीर को छूता रहता है। अनुशासनपर्व में आया है कि वे जनपद एवं देश, वे पर्वत एवं आश्रम, जिनसे होकर गंगा बहती है, पुण्य का फल देने में महान है। जो लोग, गंगा में स्नान करते हैं उनका फल बढ़ता जाता है, वे पवित्रात्मा हो जाते हैं और ऐसा पुण्यपफल पाते हैं जो सैकड़ों वैदिक यज्ञों के सम्पादन से भी नहीं प्राप्त होता। भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि धाराओं में गंगा हूं। कुछ पुराणों ने गंगा को मंदाकिनी के रूप में स्वर्ग में, गंगा के रूप में पृथिवी पर और भोगवती के रूप में पाताल में प्रवाहित होते हुए वर्णित किया है। गंगा सव. 'प्रथम सीता, अलकनंदा, सुचक्षु एवं भद्रा नामक चार वि. भन्न धराओं में बहती हे, अलकनन्दा दक्षिण की ओर बहती है, भारतवर्ष की ओर आती है और सप्त मुखों में होकर समुद्र में गिरती है। गंगा दिन—प्रतिदिन प्राणियों को पवित्र करती है जब सहस्रों योजन दूर रहनेवाले लोग गंगा नाम का उच्चारण करते हैं तो तीनों जन्मों के एकत्र पाप नष्ट हो जाते हैं। बराहपुराण में गंगा का व्युत्पत्ति 'गां गता' है। गंगा के विषय में निम्न मूलमंत्र दिया है —'ओ नमो गंगाये विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नाम नमः।'

गंगा दशहरा का पर्व—ज्येष्ठमास शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को गंगा दशहरा के नाम से जाना जाता है। जिस दिन पूर्वान्ह में दशमी अैर आगे बताये जानेवाले दश योग हों, उस दिन करना चाहिए। दश योग ये हैं— (1) ज्येष्ठमास, (2) शुक्लपक्ष, (3) दशमीतिथि, (बुधवार), (5) हस्तनक्षत्र, (6) व्यतीपातयोग, (7) गरकरण (8) आनन्दयोग (बुधवार के दिन हस्तनक्षत्र होने से आनन्दयोग माना जाता है), (9) कन्यारशि का चंद्रमा और (10) वृषराषि का सूर्य। इस दश योगों में से दशमी और व्यतीपपातयोग मुख्य हैं।[9] ज्येष्ठमास शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को गंगा दशहरा के नाम से जाना जाता है। इसी दिन सरिताओं में श्रेष्ठ गंगाजी को राजा भागीरथ ने स्वर्ग से पृथ्वी पर लायी था।[10] इस दिन गंगा में स्नान करने से दश पापों का नाश होता है।[11] ज्येष्ठ मास की शुक्लदशमी के दिन हस्तनक्षत्र में गंगाजी भूतल में अवतीर्ण हुई थीं। गंगाजी का जन्म दिन होने के कारण इस तिथि का विशेष महत्व है। भारतीय धर्म—ग्रंथों में हिन्दू—समाज के लिए इस तिथि को विषेश महत्व दिया गया है, क्योंकि गंगा के बिना समग्र हिन्दूजाति के कल्याण की कल्पना नहीं की जा सकती जो आज है। गग़ा में पतितपावनी हैं। मुगल बादशाह अकबर को तो गंग़ाजल से बड़ा ही प्रेम था। अबुलफजल अपने आईने अकबारी में लिखता है कि

बादशाह गंगाजल को अमृत समझते हैं और उसका बराबर प्रबन्ध रखने के लिए उन्होंने योग्य व्यक्तियों को नियुक्त कर रखा है। वन पर्व में सभी तीर्थों में पितृ तर्पण करने का उल्लेख मिलता है। महाभारत युद्ध के बाद मृत सैनिकों का सामूहिक रूप से गंगा–जल में तर्पण करने का उल्लेख प्राप्त होता है। शान्तनु की मृत्यु के बाद भीष्म ने हरिद्वार तीर्थ में श्राद्ध किया था।

हरिद्वार – हिन्दू धर्म नदी तीर्थ में गोमुख ,हरिद्वार परमप. ावन माना जाता है। हरिद्वार स्वर्ग के समान है जैसा की पद्मपुराण आदिखंड[12] तथा महाभारत वनपर्व में वर्णन है –स्वगद्वारेण तत तुल्यं गंगाद्वारे न संशयः। तत्राः भिषेकं कुर्वीत कोटीतीर्थे समाहितः।[13] अर्थात हरिद्वार सात पुरयों में मायापुरी हरिद्वार के विस्तार के अंतर्गत माना जाता है। हिन्दू धर्म गंगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्वते। स्नात्वा कनखले पुनर्जन्म न विद्यते। अर्थात राजा भगीरथ तपस्या के फलस्वरूप ब्रह्मा जी कहने पर गंगा जी स्वर्ग से धरती पर पधारी थीं। इसलिए यहाँ ब्रह्म कुंड नाम से व्यक्ति स्नान कर मुक्ति पता है। राजा भतृहरि तपस्या करके अमरत्व पाया था यहाँ उन्होंने सीढ़ी बनबाया था जिसे हर की पैरियाँ (हरकीपौड़ी) कहा जाता है।

प्रयाग

गंगा–यमुना के संगम से संबंधित अत्यन्त प्राचीन साक्ष्य ऋग्वेद में मिलता है और उसका अनुवाद यों है– 'जो लोग श्वेत सित या कृष्ण नील या असित दो नदियों के मिलन–स्थल पर स्नान करते हैं, जो लोग वहां अपना शरीर त्याग करते हैं। वे मोक्ष पाते हैं। महाभारत ने प्रयाग की महत्ता का वर्णन किया गया है। मत्स्य, कूर्म आदि पुराणों में ऐसा कहा गया है कि प्रयाग के दर्शन, नाम लेने या इसकी मिट्टी लगाने मात्र से मनुष्य पापमुक्त हो जाता है। यह पुनीत स्थल तीर्थराज है। इसी को त्रिवेणी की संज्ञा मिली है। 'प्रयाग' शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से की गई है। वनपर्व में आया है कि सभी जीवों के अधीश ब्रह्मा ने यहां प्राचीन काल में यज्ञ किया था और इसी से 'यज्' धातु से 'प्रयाग' बना। स्कन्द. ने इसे 'प्र' एवं 'याग' से युक्त माना है। प्रयाग एवं वेणी त्रिवेणी का विस्तार परिधि ा में पांच योजन है और ज्यों ही कोई उस भूमिखण्ड में प्रविष्ट होता है, उसके प्रत्येक पद पर अश्वमेध का फल होता है। यहां तीन पवित्र कूप है, यथा प्रयाग, प्रतिष्ठानपुर एवं अलर्कपुर में। यहां तीन अग्निकुंड हैं और गंगा उनके मध्य से बहती है। वेणी–स्थल–स्नान और वेणी का तात्पर्य है दोनों ;गंगा एवं यमुना का संगम। सभी वर्णो के लोग, स्त्रियां, वर्णसंकर आदि यह स्नान कर सकते हैं।ये जो वर्णन है– "द तीर्थसहस्राणि कोट्स्त्रथापराः। समागच्छति माध्यां तु प्रयोग भरतवर्षम। माघमासं प्रयोग तु नियतः स्वर्गमाप्नुयात्।[14] प्रयाग को तीर्थराज कहा गया है। पुराणों मे प्रमुखतः मत्स्यपुराण, कर्मपुराण, स्कन्दपुराण (काशीखण्ड) आदि में प्रयाग के बारे में कहा गया है कि प्रयाग का दर्शन नाम लेने और उसकी मिट्टी लगाने मात्र से मनुष्य पाप मुक्त हो जाता है। कर्मपुराण में कहा गया है कि प्र. जापति का पवित्र स्थल है। जो यहा स्नान करत है वह वेतरणी पार कर जाता है, वे स्वर्ग जाते है, और जो यहॉं मर कर मुक्ति पाता वह पुर्नजन्म नहीं लेता। यह स्थल तीर्थराज है जो 'केशव, (भगवान श्री कृष्ण) को प्रिय है। त्रिस्थली सेतु में उद्यृत है–यथा–" ओमित्ये का क्षर ब्रह्मम् परब्रह्मम् भिषायकम्। तदेव वेणी विज्ञेया सर्वसैख्य प्रदायनी। अकारः शारदा प्रोक्ता प्रद्युम्नस्त्रत जायते। उकारा यमुना......। मकारो जाह्नवी गंगा तत्र संकषणो हरिः । एंव त्रिवेणी विख्याता वेदबीजं प्रकीर्तिता।[15] तीन नदियों का संगम 'ओंकार" संबंधित माना गया है (ओकार प्रणव का द्योतक है) "ओम् के तीन भाग ,– गंगा, यमुना, सरस्वती माना है एवं तीनों को जल प्रद्युम्न, अनिरूद्ध एंव सकर्षण हरि के प्रतीक हैं।[16] यहॉं कि महिमा कि यात्री को देवरक्षित प्रयाग में ब्रह्ममचर्य पूर्वक एक मास यहा ठहरना चाहिए तथा प्रयाग त्रिवेणी स्नान कर दान करना चाहिए।

गंगासागर तीर्थयात्रा

गंगासागर तीर्थ गंगा मुहाना– हुगाली नदी–सागर संगम के पूर्वी तट पर स्थित तटवर्ती क्षेत्र है। इसे गंगासागर कहते है। यहॉं यात्री मकर संक्रांति के दिन तीर्थ स्वरूप ध ाार्मिक स्नान करते है तथा समुद्र देवता को जनेऊ एंव नारियल अर्पण करते है। पूजा एंव पिण्डदान के उदेश्य से पूजा कराने वाले पंडा (पूजारी) रहते है, ऐसी अवधारणा है कि हम अपने पितरों को समुद्र जल अर्पित करना चाहिए इसे भवसागर पार कह सकते हैं। गंगासागर का महत्व मोक्ष के साथ स्वर्ग तक पहूँचने का माध्यम माना गया है। धर्मशास्त्र के अनुसार एक कथा है कि भगवान श्रीराम के वंश में सूर्यवंशीय पूर्वजो में महाराजा भागीरथ गंगाजी को पृथ्वी पर लाये और राख बने अपने पूर्वजो को गंगा जल से पवित्र किया और वे लोग मोक्ष प्राप्त कर स्वर्ग लोक पहूँच गये। इसलिए मकर संक्रांति के पर्व पर लोग गंगा सागर मे स्नान करते हैं। यही परम्परा हिन्दुओ का अपने पूर्वजों को सम्मान दिलाता है और यात्रा मुख्य उदेश्य पूरा होता है।

काशी

काशी में तीर्थ स्थान एवं दान सर्वोत्तम होता है। यहां मु ख्यतः निम्न दिनों में स्नान सर्वोत्तम माना गया है। तीनों दिन माघ की मकर–संक्रान्ति, सप्तमी एवं अमावस्या है। हिन्दुओं के लिए यह नगर अटूत धार्मिक, पवित्रता, पुण्य एवं विद्या का प्रतीक रहा है। महाभाष्य में पतंजलि ने वाराणसी के गंगा के किनारे अवस्थित कहा है।

तीर्थ एवं सांस्कृतिक विकास

तीर्थों के विषय में इस अनुसंधान से भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक स्थिति के क्रमिक विकास पर अवष्य प्रकाष पड़ता है। जहां तक तीर्थो में उनके प्रतीक मिलते

हैं वे आदिकालीन विष्वब्यापर प्रकृति–पूजा, गन्धर्व, अप्सरा, नाग लिंग, यानि, यक्ष, वृक्ष, पशु पर्वतीय शिव, कुवेर, कार्तिकेय तथा गण–गणेश इत्यादि हैं। अवतारों के भी तीर्थ मिलते हैं। विभिन्न आदिकालीन संस्कृतियों में सूर्य, पर्वत, वन, वृक्ष, पाषाण, वृष्टि, कृषि, तड़ित, पशु, पक्षी, नाग इत्यादि की समादर–भावनाये मिलती हैं। स्थान भेद से मुख्य तीर्थों का वर्णन महाभारत तथा पुराण से मिलाकर पढ़ने से तीर्थस्थानों पर पूर्ण रूप से प्रकाश पड़ता है। समय सयम राजाओं तथा महाराजाओं ने इन संस्कृतियों के उत्थ. ान में सहायता प्रदान की।

मूल्यांकन

भारतीय संस्कृति में तीर्थों का महत्व

राष्ट्रिय एकता –

यद्यपि भारत अनेक जातियों तथा राज्यों में विभक्त था, तथापि तीर्थयात्रा भारतीय संस्कृति एवं भारत की एकता में बड़ी सहायक होती थी। आज भी इससे एकता की भावना सुदृढ़ की जा सकती है। प्रान्तीय – भेद, जाति भेद एवं उँच–नीच के भेद की समाप्ति। हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक एवं बंगाल से लेकर गुजरात तक सम्पूर्ण देश में भिन्न–भिन्न स्थानों में तीर्थ हैं। इन स्थानों में भ्रमण करने से भिन्न–भिन्न प्रान्त एवं जाति के लोग एक दूसरे के संपर्क में आते हैं, जिससे भेदभाव कम होकर धर्मिक सहिष्णुता की वृद्धि होती है। तीर्थों में राजा और रंक समान हैं। वहां उंच–नीच का भेद नहीं है।

सांस्कृतिक विकास

भिन्न–भिन्न प्रान्तों के लोगों के सम्पर्क एक दूसरे की संस्कृति तथा आचार–विचार का आदान–प्रदान होता है, जिससे व्यक्ति अपनी संकुचित मनोवृत्ति को त्याग कर उदात्त भावना जागृत कर सकता है। व्रत–नियमादि के कारण सादगी की शिक्षा– अनेक तीर्थों की यात्रा संयम, नियम, व्रत–उपवासपरायण एवं ब्रह्मचारी होकर करने का विधान है। इस प्रकार व्रत नियमादि के पालन से सादगी की शिक्षा मिलती है। जिसे चारित्रिक विकास होती है। तीर्थस्थान की दिव्यता एवं मान्यतायें, वहां के पवित्रा एवं दार्शनिक महात्माओं का सम्पर्क, पवित्रा वातावरण आदि यात्री के मन में आध्यात्मिक शक्ति एवं आदर की भावना जागृत करते है।, जो उनके मन पर जीवन भर प्रभ. ाव डालती हैं यही कारण है, कि धर्मशास्त्रकारों ने तीर्थयात्रा पर जोर दिया है। प्राचीन काल में यातायात के साधन न होने से यात्रा में अत्यध्कि कठिनाई थी। पर आज जहां एक ओर यातायात के साधन बढ़ जाने से यात्रा सुलभ हो गई है।, वहां दूसरे अवरोध हमारे सामने आ गये हैं–आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा, कठिन आर्थिक परिस्थिति एवं कठोर जीवनसंघर्ष ने हमें आध्यात्मिकता से दूर हटाकर केवल भौतिकता की ओर आकृष्ट कर लिया है। आज संकीर्णता को दूर हटाकर भारत की एकता के लिये प्रयास करना आवश्यक है। यदि इस भाव का ध्यान में रखकर भ्रमण किया जाय, जो तीर्थयात्रा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये बड़ी सहायक होगी। तीर्थ भावना के विकास के पूर्व आदिकालीन तथा प्राग्वैदिक सभ्यता के कितने ही स्तर प्रस्तरकाल से लेकर अब तक व्यतीत हो चुके थे, उसकी कल्पना करना कठिन है, किन्तु जहाँ तक तीर्थों में उनके प्रतीक मिलते हैं ये आदि कालीन विश्वव्यापी प्रकृति–पूजा–संस्कृति, तप–प्रधान मुनि–संस्कति, इत्यादि हैं। वैदिक समन्वय–भावना आज तक भारतीय संस्कृति में चली आ रही है।

एकं सद् विप्रा वहुधा वदन्ति।[17]

यों देवानां नामधा एक एव।[18]

पाद टिप्पणी

1.तीर्थांक,संख्या636,गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ ,743

2.वही,2

3.ऋग्वेद 10.114.7

4.वही,2

5.आदिपर्व, 51/43–44

6.हजारी राजा राम, प्राचीन भारत में तीर्थ, पृष्ठ,भूमिका

7.काणे पी0 बी0 धर्मषास्त्र का इतिहास, भाग–1, 2, 3, 4, 5.,पुरुशोत्तमदास हिन्दी भवन पृष्ठ, हिन्दी समिति उत्तर प्रदेष षासन लखनऊ 1975, पृष्ठ,1310

9.धर्मसिन्धुः,श्रीकाषीनाथोपाध्यायविरचितः,चौखम्भा प्रकाषन, वाराणसी,वि0 सं0 2075,पृश्ठ,101

10.व्रतपर्वोत्सव–कल्याण विषेशांक,अंक–1,गीताप्रेस,गोरखपुर,वर्श 76,पृश्ठ,207

11.वही पृश्ठ,462

12.पद्मपुराण आदिखंड 28 , 27 –30

13. तीर्थांक ,गीता प्रेस गोरखपुर ,पृ.104

14.अनुषासनपर्वः,88/36–38

15.वही,1329

16.काणे पी0 बी0 धर्मषास्त्र का इतिहास, भाग–1, 2, 3, 4, पुरुशोत्तमदास हिन्दी भवन पृश्ठ, हिन्दी समिति उत्तर प्रदेष षासन लखनऊ 1975, पृश्ठ,1229

17.ऋग्वेद, 1/164/46

18.ऋग्वेद, 10/82/2

*****

कोंकणी उपन्यास 'पोको':एक विवेचन

-डा. एस. वी. शेण्वि,
हिंदी सह प्राध्यापक
डा. ए. वी. बाळिगा वाणिज्य महाविद्यालय, कुमटा (उ.क.) कर्नाटक

डा. एस. डी. बुळ्ळा,
ग्रंथपाल
डा. ए. वी. बाळिगा वाणिज्य महाविद्यालय, कुमटा
(उ.क.) कर्नाटक

साहित्य के संदर्भ में मानवीय चेतना एवं सामाजिकता का मूल्य सर्वोपरी होता है और इसे स्पष्टरूपेण शब्दबद्ध करने की क्षमता मात्र उपन्यास में है। उपन्यास गद्यलेखन की एक सशक्त विधा है। उपन्यास का अर्थ होता है सामने रखना। अर्थात उपन्यास वह विधा जिसमें मानव जीवन के किसी तत्व को उक्ति-उक्त रूप में समन्वित कर रखा जाये। शायद इसीलिए उपन्यास को 'गद्य का महाकाव्य' भी कहा गया है। उपन्यास के माध्यम से जीवन तस्वीर प्रस्तुत होती है। "उपन्यास पर्याप्त आकार की वह मौल्कि गद्यकथा है जो पाठक को एक काल्पनिक, पर यथार्थ संसार में ले जाती है, जो लेखक द्वारा व्यक्तिगत रुप से अनुभूत और सर्जित होने के कारण नवीन होता है।"[१] हिन्दी उपन्यास शिल्प की यात्रा के अध्ययन में हम मग्न थे कि मातृभाषा कोंकणी साहित्य के प्रति मन में अचानक उत्सुकता जागी कि कोंकणी उपन्यास 'पोको' कोअन्य भाषा के पाठकों से परिचित कराये यहीकोशिश आपके सम्मुख है।

कोंकणी भारत के पश्चिमी तट में स्थित कोंकण प्रदेश में बोलीजानेवाली मीठी बोली थी। यह गोवा, महाराष्ट्र के दक्षिण भाग, कर्नाटक के उत्तरी भाग, केरल के कुछ क्षेत्रों में बोली जाती है। गोवावाला प्रदेश सदियों तक पुर्तगाल के अधीन रहा। पुर्तगालियों ने जोर जबर्दस्ती धर्मपरिवर्तन किया और उनके मूल सांस्कृतिक रूप को छिन-भिन्न की। इन विषम परिस्थितियों में भी लोगों ने अपनी मातृभाषा की रक्षा की। संविधान के आठवीं अनुसूची के तहत आज कोंकणी को भाषा का स्थान प्राप्त है। सन १९८७ ई. में गोवा में कोंकणी को मराठी के बराबर राजभाषा का दर्जा दिया गया है। आज कोंकणी देवनागरी, कन्नड, मलयालम और रोमनापि मेंखी जाती है। सत्रहवीं सदी से पूर्व कोंकणी का कोईखित साहित्य उपलब्ध नहीं था। किंतु आज कोंकणी में पर्याप्त साहित्याखा जा रहा है।

नंदा धर्मा बोरकार कोंकणी के प्रतिभासंपन्न लेखक है। विशेषत: उपन्यास और नाटक क्षेत्र में उनका अपना एक विशिष्ट स्थान है। ३३ साल हिन्दी, मराठी और कोंकणी में अध्यापन का सुदीर्घ अनुभव है। शिक्षा के साथ सामाजिक क्षेत्र में सेवानुभव है। हिन्दी भाषा के प्रचारक और प्रसारक भी रहे हैं। कोंकणी और मराठी नाटकों में अभिनय किया है। 'नवप्रभा', 'बिम्ब' आदि पत्रिकाओं में लेखन प्रकाशित हुए हैं। विवेच्य उपन्यास 'पोको' बोरकरजी का सामाजिक समस्या प्रधान उपन्यास है। यह एक अबोध मजदूर बालक की संघर्षमय जिंदगी की संवेदनपूर्ण कहानी है।

उपन्यास का नायक पोको गाँव में बसनेवाला गरीब मजदूर परिवार का लडका है। वह दत्तु और शांतु का बडा बेटा है। गरीब, इमानदार दत्तु पोको को मजदूरी करने अपने साथ ले जाता था। शांतु उसे पढानाचाहती थी लेकिन पहली कक्षा तक पढते ही स्कूल छोडने की अनिवार्यता आ गयी। वह पिता के साथ छोटे-मोटे काम करता था। पोको लिखने -पढने में, नारियल पेड चढने में, मच्छी पकडने में, खेती करने में माहिर था। गाँववालों के साथ खान में काम करने की अनिवार्यता आन पडती है। खान का मालिक उसके काम से प्रसन्न था। बारिश में जब खान बंद हो जाता था भाई का घर अपना समझकर काम करता।उसे भाई के घरपैसे चुराने का इलजाम लगता है। होटल में दो साल काम करने की नौबत आती है। पश्च्चात खान में मजदूरसप्लाई करने का कांट्रेक्ट मिलता है। इस व्यवहार में उसे नुकसान भी उठानी पडती है। पोको किसी के नीचे काम करना पसंद नहीं करता था। वह लोगों का खेत जोतता। उसेहल बैल बेचकर बहन पीसू की शादी करने की अनिवार्यता आती है। काशीनाथ को अपने दोस्तों के साथ अंग्रेजी बात करते देख पोको गाँव के किसी मास्टर से थोडा बहुत अंग्रेजी बोलना सीखता है। आगे उसे७५ रुपये की सुपरवैसर की नौकरी मिलती है। अनुशासित पोको से सभी प्यार करते थे। पास गाँव के नये कंपनी केलिए पोको मजदूर ले जाता है। उन्हें मजदूरी न मिलने परअपने पैसों से किराना दिलाता है। धीरे-धीरे वह हिन्दी के प्रबोध, प्रवीण, एस.एस.सी.परीक्षा में पासहो जाता है। मिशनरी स्कूल

ISSN-2321-1504Naagfani RNINO.-UTTHIN/2010/34408

में हिन्दी विषय में अध्यापक के रूप में उसकी नियुक्ति होती है। अपनी मेहनत और योग्यता के बल पर उच्चतर शिक्षा बी.ए., एम.ए. डिग्री प्राप्त कर युवापीढी केलिए आदर्श साबित होता है। पोको के इस विजयी यात्रा केलिए उसका दृढ संकल्प, कर्मठता महत्व रखता है,लेकिन लोगतो मात्र तकदीर को क्रेडिट देते हैं।

साहित्य सृजन के पीछे रचनाकार के दो संघर्ष मायने रखते हैं एक आत्मसंघर्ष और दूसरा सामाजिक संघर्ष। सबसे बडी बात है साहित्य सृजन के पीछे जो भी होवह अंततः 'लोकमंगल' में परिवर्तित होता है। इस दृष्टि से देखा जाय तो उपन्यास 'पोको' का नायक एक अद्भुत पात्र है। मजदूर और श्रमिक वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवालेपोको को अपने जीवन में दंश ही दंश प्राप्त हुई लेकिन उसने कभी अच्छाई नहीं छोडी। अच्छाई और श्रम के प्रति उसके मन में पूजा का भाव है। पोको एक अतीतजीवी प्राणी है। उसने संपूर्ण जीवनबनावटीपन से दूर सादगी से जीती है। उपन्यास की पृष्ठभूमि में ग्रामीण भारतीय समाज है।"आधुनिक काल के उपन्यासों और संस्कृत की आख्यायिकाओं में यों तो बहुत अंतर है, मगर कथानक की दृष्टि से आधुनिक उपन्यास संस्कृत-परंपरा के विकसित एवं सुसंस्कृत रूप ही प्रतीत होते हैं।"[2]भारतीय समाज के उच्च लोकाचार, लोक मान्यताएँ व लोकसंस्कृति को देखकर मन प्रसन्न अवश्य होता है कि ये भारतवासी सदियों की अपनी सभ्यता एवं संस्कृति से विलग नहीं हुए। उपन्यास के जरिये लेखक वर्णनात्मक शैली से पाठकों को अनुभूत कराते हैं कि यह अंत नहीं है बकि एक अनवस्त सिलसिला है। प्रस्तुत उपन्यास की उपलब्धी यह भी है कि यह निराशा की जगह जीवनोत्साह उत्पन्न करता है। साथ ही एक ऐसा सेन्स आफ रियलाईजेशन भी है जिससे हम अपने 'सेल्फ' का भी मूल्यांकन कर सकते हैं। उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट है कि सपना देखना गलत नहीं है बकि परिश्रम से अपने सपने को साकार करने की क्षमता हममें अवश्य होनी चाहिए। जिंदगी का नाम आगे बढना है। तकदीर नहीं आत्मविश्वास, दृढसंक्ल्प और परिश्रम से मात्र व्यक्ति अपनी जिंदगी के मुकाम तक सफलपतापूर्वक रास्ता तैर कर सकता है और यही प्रस्तुत उपन्यास का केंद्रबिन्दु है।"उपन्यास मानव जीवन को समग्र रुप से देखने का सर्वप्रथम प्रयास है।"[3]

किसी की सफलता के पीछे तकदीर से बढकर परिश्रम की अहं भूमिका होती है, इसे गरीब-मजदूर पोको पात्र के जरिये दर्शाया गया है। शिक्षित व्यक्ति की सुनहरे भविष्य की कल्पना पर विश्वास रखते हुए लेखक स्त्री की दूरदर्शिता और अपने संतान के प्रति चिंता की बात गरीब और अनपढ शांतु पात्र के जरिये अभिव्यक्त करते हैं। खान के काम में मौजूद खतरा और इसमें काम करनेवाले मजदूर से कंट्राक्टर तक की जिंदगी में जो अनिवार्यता, असहायकता, अनिश्चितता है उस पर प्रकाश डालने की उपन्यासकार की कोशिश प्रशंसनीय है। समाज और अपने परिवार के प्रति उत्तरदायित्व की भावना पोको पात्र के जरिये व्यक्त कर रास्ते से भटके हुए युवापीढी को वापस पटरी पर लाने की उपन्यासकार की कोशिश सचमुच सराहनीय है। साथ ही समाज मेंघुलमिले खिंचातानी प्रवृत्ति के प्रति सचेत करने की कोशिश भी स्पष्ट दिखाई गई है। उपन्यास में लेखक की मजदूर और श्रमिक वर्ग के प्रति गहरी संवेदनशीलता, सामाजिक चिंता, आर्थिक वैषम्य और शोषण की चककी में निरंतर पिसती विवशता के भी गहरे अनुभवजन्य चित्र उपस्थित हुए हैं। समाज, संस्कृति, धर्म इतिहास-परंपरा पर लेखक ने गम्भीर विश्लेषण प्रस्तुत कर दार्शनिक पक्ष का भी अधिकारिक तौर पर निर्वाह किया है।

सहायक ग्रंथ :

1. हिन्दीउपन्यास का इतिहास - गोपाल राय, पृ. २४
2. डा. मोहन अवस्थी - हिन्दी साहित्य का विवेचनपरक इतिहास पृ. २३९
3. डा. जयनारायण वर्मा - हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ. १२५
4. कोंकणी साहित्य का इतिहास - मनोहर राय सरदेसाइ
5. कोंकणी भाषा की उत्पत्ति -कृष्णानंद कामत
6. अल्बुकर्कान गोंय कशे जिंकले -शेणय गोंयबाबा
7. गोमांतोपनिषद - शेणय गोंयबाबा
8. हिन्दी साहित्य का इतिहास ट्ट हेमंत कुकरेती
9. पोकोट्ट नंदा धर्मा बोरकर
10. कोंकणी साहित्य में लेखिकाओं का योगदान (पंचशील शोध समीक्षा) : डा. प्रभा भट्ट

*****

आंबेडकर का बौद्ध धर्म : एक समालोचनात्मक विश्लेषण

--डॉ.नवीन कुमार
इतिहास विभाग, राजधानी कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोध सार:

यह शोध डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर के बौद्ध धर्म के प्रति दृष्टिकोण का समालोचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें मुख्यतः उनकी पुस्तक "बुद्ध और उनका धर्म" को आधार बनाते हुए बौद्ध धर्म के तत्वों, उनके अनुभवजन्य विश्लेषण, और उनके दृष्टिकोण की प्रामाणिकता का अध्ययन किया गया है।

शोध में यह जांचने का प्रयास किया गया है कि आंबेडकर बौद्ध धर्म के ग्रंथगत तथ्यों से किस हद तक सहमत थे और उनकी सहमति या असहमति का आधार क्या था। क्या यह उनकी निजी अनुभूति और सामाजिक अनुभव का परिणाम था, या फिर यह ऐतिहासिक तथ्यों और तर्कों के असंगत मेल पर आधारित था?

शोध इस अवधारणा पर आधारित है कि ज्ञान और विचार नवीनता के आभास से प्रेरित होते हैं, लेकिन वे हमेशा सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों से प्रभावित होते हैं। आंबेडकर ने बौद्ध धर्म को केवल एक आध्यात्मिक पथ के रूप में नहीं देखा, बल्कि सामाजिक परिवर्तन और समानता का साधन माना। उन्होंने बुद्ध के धर्म को व्यक्तिगत अनुभव और सामाजिक चेतना के संदर्भ में पुनर्परिभाषित किया।

बीज शब्द: धम्म, थेरवाद, नवयान, महायान, हीनयान, पारमिता, दशभूमिका ससूत्र, ध्यान, धर्मांतरण |

शब्द विज्ञान के अनुसार बुद्ध और धर्म दोनों की अध्यात्मिक अवस्था एक ही है। बुद्ध और धर्म दोनों के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अनुभूति के स्तर पर जागृत रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति में इतिहासकारों तथा समाजशास्त्रियों द्वारा यह प्रश्न उठाया जाना की कौन सा कथन किसका है? उसके कथन की प्रामाणिकता कितनी है ? इन सब प्रश्नों पर इस शोध में विचार किया जाएगा। यह स्पष्ट करने कि हमारी कोशिश है कि बौद्ध धर्म के संबंध में ग्रंथगत सूचनाओं के विषय में डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर कितना सहमत थे? उनकी सहमति तथा असहमति का आधार क्या उनका कोई व्यक्तिगत अनुभव था? या फिर तथ्य के असंगत मेल से उत्पन्न तर्क था? उपरोक्त प्रश्नों का विश्लेषण उनके द्वारा लिखी गई पुस्तक "बुद्ध और उसका धर्म" के आधार पर किया जाएगा। विचारों की प्रामाणिकता के संबंध में हमारी अवधारणा है कुछ भी पूरी तरह से नया नहीं होता है। प्रत्येक बदलाव नवीनता का आभास मात्र है। अतः जब हम किसी भी सम्पर्क सूत्र से ज्ञान का कोई भी स्वरूप ग्रहण करते हैं उसमें अपनी सहुलियत के अनुसार अपेक्षित और सामाजिक बदलाव करते हैं।

बौधधर्मः शब्द ज्ञान बनाम अनुभवजन्य

भीमराव आंबेडकर ने सर्वसाधारण मनुष्यों के लिए बुद्ध की जीवनी तथा उनके उपदेशों की संक्षिप्त और तार्किक ढंग से विवेचना की है। आंबेडकर द्वारा प्रस्तुत पूरी विवेचना को यहाँ रखना हमारा उद्देश्य नहीं है। बल्कि इसमें हम यह समझने का प्रयास करेंगे, अंबेडकर ने बौद्ध ग्रंथ में दी गई सूचनाओं को किस नजरिए से समझा है? उदाहरण के लिए बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के बारे में आदर्श व्याख्या यह है। जब, "उन्होंने एक दिन एक बूढ़ा आदमी, एक मृतक, एक बीमार और एक प्रसन्न चित भिक्षाटन करते हुए साधु को को देखा तो ऐसे सांसारिक दुःखों का समाधान करने के लिए उन्होंने गृह त्याग किया" । [1]इसके विपरीत आंबेडकर ने 'बुद्ध के गृह त्याग का कारण रोहिणी नदी के जल विवाद को बताया जो कि शाक्य तथा कोलिय गणराज्यों के बीच जलविवाद था। [2]इस विवाद को रोकने के लिए बुद्ध ने गृह त्याग किया।

बुद्ध की साधना के संबंध में यह बताया जाता है कि उन्होंने क्रमशः दो शिक्षकों से प्रारम्भिक शिक्षा ली थी। उन्होंने 'अलार कलाम से 'सांख्य दर्शन' और 'उद्रक रामपुत्र' से 'न्याय दर्शन' [3]की शिक्षा ली थी। परंतु जीवन तथा संसार के संबंध में सिद्धार्थ के मन में उपजे कारणों का समाधान परम्परागत ज्ञान से संबंधित नहीं था। उनके बुद्धत्व के बारे में यह बतलाया जाता है कि चार सप्ताह में वे पूर्ण जागृत हो गए थे। इस संख्यात्मक विचार पर अंबेडकर का एक अलग ही मानना है। यह बुद्ध के ज्ञान प्राप्ति करने की अवधि नहीं बल्कि उनके ज्ञान की "चार अवस्थाएँ थी। [4]वे चार अवस्थाएँ

निम्नलिखित है:-

1. कारण और अनुसंधान की अवस्था

2. ध्यान

3. संतुलन और स्मृति

4. संतुलन की शुद्धता और स्मृति की शुद्धता की अवस्था

क्या कोई बुद्धत्व प्राप्त व्यक्ति सभी तरह की स्मृतियों से मुक्त हो जाता है? क्या सिद्धार्थ के विचारों पर बुधत्व प्राप्ति के बाद किसी पूर्ववर्ती विचार का असर नहीं था? प्रारंभिक तौर पर यह कहना कठिन है कि बुद्ध ज्ञान प्राप्ति के बाद समस्त आचरण, आत्मअनुभव से करते थे? जैसा कि हम जानते हैं कि गौतम बुद्ध को कपिल के सांख्य दर्शन की शिक्षा दी गई थी। तो बुद्ध के विचारों पर सांख्य दर्शन के कौन-कौन से विचारों का प्रभाव देखा जा सकता है? जो निम्नलिखित हैं-

1. "वस्तुगत ज्ञान प्रमाण पर अवलंबित होता है और विचार भौतिकता पर आधारित होता है।[5]

2. ईश्वर के अस्तित्व और उसके सृष्टिकर्ता के रूप में अस्वीकृति है।

3. संसार में दुःख शाश्वत है।

गौतम बुद्ध ने ज्ञान प्राप्ति के बाद संसार का प्रवर्तन करने का निश्चय किया। इसके लिए उन्होंने प्रथम पाँच ब्राह्मण (पंचवर्गीय) भिक्षुकों को धर्मचक्र प्रवर्तन का उपदेश दिया। इस प्रवर्तन के अंतर्गत चार आर्य सत्य का उपदेश दिया जिसकी चर्चा यहाँ अपेक्षित नहीं है। क्योंकि हमने उन चार आर्य सत्य की चर्चा प्रसंगवश कहीं की है। यहाँ सिर्फ इतना स्पष्ट करना जरूरी है कि बुद्ध के धर्म प्रवर्तन में सभी वर्ग के लोग मौजूद थे-

1. सेठी तथा राजाओं का परिवार

2. सामाजिक रूप से शोषित तथा वंचित वर्ग

3. धार्मिक समुदाय

4. परिवार और नाते रिश्तेदार

उपरोक्त वर्गों के संबंध में आंबेडकर का दृष्टिकोण सकारात्मक है। परंतु आंबडेकर ने बुद्ध के विचारों 'को तीन हिस्सों में रखा हैं-[6]

1. **धर्म**- धर्म उसे कहा जाता है जो आत्म अनुभव पर आधारित हो। धर्म सिद्धांत नहीं है, धर्म अभ्यास है, और धर्म प्रयोग है।

2. **अधर्म**- अधर्म उसे कहते हैं जो यज्ञ और पूजा-पाठ में विश्वास करता हो। वैदिक तथा पौराणिक ग्रंथों में विश्वास करने के लिए बाध्य करता हो। अनुभव जन्य ज्ञान के बजाय आदर्श ज्ञान का महत्व देता हो।

3. **सधर्म**- सधर्म की प्राप्ति प्रज्ञा से संभव है, इसमें आत्मअनुभव, अभ्यास सर्वकल्याण, समानता तथा भेद रहीत समाज की अवधारणा निहित होती है।

आंबेडकर ने बाहह्मण ग्रंथों में उल्लेखित धर्म शब्द को बौद्ध धर्म के ग्रंथों में वर्णित धर्म शब्द के अर्थ से अलग बताया है। धर्म प्रत्येक व्यक्ति की जागृत अवस्था है। उस अवस्था में स्वभावतः परिवर्तन की गति को देखना तो धर्म है। यह व्यक्तिगत मानसिक जरूरत है जबकि ब्राह्मण धर्म निश्चित नियमों तथा सिद्धांतों पर टिका हुआ है। यह मनुष्य की सामुदायिक अवस्था है इससे समाज में वर्ग संघर्ष का विकास होता है। इसके अलावा आंबेडकर ने अहिंसा के औचित्य को यथावत नहीं स्वीकार किया है। आंबेडकर ज़रूरतों के मद्देनजर की गई हिंसा को हिंसा नहीं मानते हैं। वे अंहिसा के दो सिद्धांत बताते हैं-

1. हिंसा की ज़रूरत। ।

2. हिंसा की मानसिकता।

इसके विपरीत प्रारम्भिक बौद्ध धर्म में अहिंसा के सिद्धांत के पालनार्थ कृषि कर्म और वर्षा के मौसम में भ्रमण करने को भी हिंसा समझा जाता था। परंतु कालांतर में अहिंसा के सिद्धांत में बदलाव दिखलाई देता है। जिसके अंतर्गत तीन प्रकार से हिंसक गतिविधि को भी हिंसक रूप में प्रदर्शित किया जा सकता है। इसे हम 'तिकोटि परिशुद्धि' कहते हैं-

1. स्वयं के द्वारा हत्या (वध) न करना।

2. मारते या हत्या करते समय आप के द्वारा न देखना।

3. आपने हत्या के लिए आदेश न दिया हो।

यह अहिंसा की अवधारणा निश्चित रूप से आंबेडकर के विचारों को प्रभावित करती है। आंबेडकर की विवेचना से कहीं भी यह स्पष्ट नहीं होता है। कैसी आवश्यकत्ता और कैसी इच्छा की स्थिति में हिंसा को अहिंसा समझा जा सकता है? कालांतर में अहिंसा संबंधी यह उद्धरण आंबेडकर के अनुयायियों के लिए "शारीरिक रूप से सशक्त बनने तथा युद्ध स्तर पर सामाजिक प्रतिकार करने के लिए सैन्य बल तथा लामबंद हो रहे हैं।" अहिंसा अपरिवर्तनीय सिद्धांत नहीं है। इसका बेशक शाब्दिक अर्थ किसी को नुकसान पहुंचाना हो। लेकिन ज़रूरतों की आपूर्ति शक्ति तथा साम्राज्य का विस्तार तथा महत्वाकांक्षा के हालात में भी अहिंसा का सहारा लेकर इसका प्रयोग किया जाता है।

"कार्ल मार्क्स ने धर्म को गरीबों की अफीम बताया था, जबकि भीमराव आंबेडकर ने, "धर्म को गरीबों की आवश्यकता बताया है।" धर्म के माध्यम से सामान्य व्यक्ति मुश्किल संघर्ष करता है और जीवन यापन की उम्मीद करता है। आंबेडकर के अनुसार धर्म की परिभाषा क्या है? 'धर्म व्यक्तिगत विकास है।" [7] समाज में एक साथ रहने के लिए यह आवश्यक है। इसका संबंध अध्यात्म और चेतना से नहीं है। आंबेडकर ने ईसाई, इस्लाम, सिख तथा पारसी धर्मों का सामान्य अध्ययन किया। तमाम सारे अध्ययनों में उन्हें

यह समझ में आया कि यीशु इसाई धर्म में यीशु मुक्तिदाता तथा पापमोचक है। इसके समानान्तर इस्लाम धर्म में मोहम्मद साहब उनके पैगम्बर है, वे केवल मुस्लिमों को मुक्ति देते हैं। पारसी धर्म में जरथुस्त्र के सिद्धांत के सिवाय दुनिया में कुछ भी सत्य नहीं है। सिख धर्म में सत्य केवल उनके गुरुजनों की बातें ही हो सकती है। इन सभी धर्मों में अनुयायी पाप से मुक्ति तथा मोक्ष की प्राप्ति के लिए अपने कर्मों के बजाय अपने ईश्वर पर आश्रित है।

आंबेडकर ने बौद्ध धर्म के अध्ययन से यह साबित किया कि बौद्ध धर्म में कोई ईश्वर नहीं है। कोई भी आप के पापमोचक और मोक्ष का ठेकेदार नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति का आत्म अनुभव ही उसे सभी तरह के बंधनों से मुक्त करा सकता है। ऐसे में आंबेडकर की पुस्तक 'बुद्ध और उसका धर्म' के बारे में पूछा जाता रहा है। क्या आंबेडकर के प्रस्तुत विचार बौद्ध शास्त्र के हिसाब से है? सामान्य परीक्षण में यह पाया गया है कि इस पुस्तक में अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को यथावत नहीं स्वीकार किया है बल्कि उन्होंने अपने अनुभव और तर्क को भी शामिल किया है।

बौध धर्म के सिद्धांतों के प्रति आंबेडकर की आपत्तियां। आंबेडकर यह नहीं मानते हैं कि "सिद्धार्थ ने घर का त्याग इसलिए किया क्योंकि उन्होंने एक बीमार, एक बुढ़ा, एक मृतक और एक प्रसन्नचित साधु को देखा था।"[8] आंबेडकर के अनुसार ये सिद्धार्थ के हृदय परिवर्तन के घटक नहीं हो सकते हैं। क्योंकि सिद्धार्थ ने 29 वर्ष की आयु में पहली बार उपरोक्त मनुष्य की चार अवस्थाएँ नहीं देखी होगी। इसलिए वे इस व्यवस्या को अस्वीकार करते हैं। आंबेडरक की इस टिप्पणि के संबंध में हमारे मन में कुछ सहज प्रश्न है। क्या कोई व्यक्ति हमेशा जितना देखता है उतना ही समझता है? क्या किसी व्यक्ति का परिवेश बदलने से उसके दृष्टिकोण नहीं बदलते हैं? क्या हमेशा प्राकृतिक छटाएँ तथा मानवीय छवि सामने वाले के मन में एक ही तरह का असर छोडती है?

उपरोक्त तीनों प्रश्नों पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है। आंबेडकर के विश्लेषण में अनुभव और अनुभूति से ज़्यादा तर्क का दखल था। आंबेडकर के प्रश्नों को समझने के लिए और खुद के द्वारा उठाए गए तीनों प्रश्नों का उत्तर देने के लिए एक दृष्टांत अपेक्षित हैं। न्यूटन ने अपने जीवन में पहली बार सेब गिरते नहीं देखा था। ना तो न्यूटन पहला व्यक्ति था जिसने सेब गिरते देखा था। जब उसने जिस सेब को गिरते देखा था उसके गिरने के साथ न्यूटन की अनुभूति जुड़ी हुई थी। जिससे उसने गुरुत्वाकर्षण की शक्ति का सिद्धांत दिया। अतः हमें यहां यह समझना चाहिए बेशक किसी ने कहा हो प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया होती है। परन्तु प्रत्येक क्रिया के साथ हमेशा एक जैसा अनुभव व अनुभति काम नहीं करती है।

आंबेडकर की बाईस प्रतिज्ञाएँ

आंबेडकर ने सामाजिक रूप से पिछड़ी जातियों को यह समझाया कि बुद्ध ने प्रारम्भ में 'पाँच भिक्षुकों को उपदेश दिया था ।10 और उसके बाद चालीस लोगों को संघ में प्रवेश दिया था। उनका काम बौद्ध धर्म का प्रचार करना था । बुद्ध के अनुयायियों में सभी वर्गों के लोग मौजूद थे। बुद्ध ने 'यस' जैसे सेठियों को निर्देश दिया, "धमार्थ अपनी कमाई का बीसवाँ हिस्सा खर्च (दान) करो।"11जिस धर्म का उद्देश्य आदि मंगल, मध्य मंगल और अंत मंगल है। बुद्ध के इस विचार में आंबेडकर भी सहमति प्रकट करते हैं। उन्होंने भी अपने अनुयायियों से आह्वाहन किया। अब भिक्षुक संघ नहीं है। धर्म का प्रचार करना आप सब की जिम्मेदारी है।" [9]और प्रमार्थ कल्याण के लिए आप को भी अपनी कमाई का 20वां हिस्सा खर्च करना चाहिए। आंबेडकर ने बौद्ध धर्म के अनुयायियों के लिए 'बाईस प्रतिज्ञाएँ घोषित की है।' [10]वे बाईस प्रतिज्ञाएँ निम्नलिखित हैं-

1. मैं ब्रह्मा, विष्णु और महेश को कभी ईश्वर नहीं मानूंगा और ना उनकी पूजा करूँगा।
2. मैं राम और कृष्ण को ईश्वर नहीं मानूंगा और न उनकी पूजा करूँगा।
3. मैं गौरी और गणपति आदि हिन्दू देवता और देवियों को नहीं मानूंगा और ना उनकी पूजा करूँगा।
4. मैं ईश्वर के अवतारवाद पर विश्वास नहीं करूँगा।
5. मैं कभी बुद्ध को विष्णु का अवतार नहीं मानूंगा।
6. मैं श्राद्ध नहीं करूँगा।
7. मैं बौद्ध धर्म विरोधी बातों को स्वीकार नहीं करूँगा।
8. मैं कोई भी धार्मिक क्रियाकलाप का आयोजन ब्राह्मणों द्वारा नहीं कराऊँगा।
9. मैं सभी मनुष्यों की समानता में विश्वास करूँगा।
10. मैं समानता की स्थापना के लिए प्रयत्न भी करूँगा।
11. मैं तथागत बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग का पालन करूँगा।
12. मैं बुद्ध द्वारा बताई दस पारमिताओं का पालन करूँगा।
13. मैं प्राणी मात्र पर दया करूँगा।
14. मैं चोरी नहीं करूँगा।
15. मैं झूठ नहीं बोलूँगा।
16. मैं व्यभिचार नहीं करूँगा।
17. मैं नशे का सेवन नहीं करूँगा।
18. मैं बौद्ध धर्म के प्रमुख तीन तत्वों का पालन करूँगा जिसमें निहित है, सहानुभूति, समानता, और स्वतंत्रता।

19. मैं हिन्दू धर्म का त्याग करता हूँ और बौद्ध धर्म को ग्रहण करता हूँ।
20. मैं बौद्ध धर्म के सधर्म में विश्वास करता हूँ।
21. मुझे विश्वास है कि मैं (इस धर्म परिवर्तन के द्वारा) फिर से जन्म ले रहा हूँ.
22. मैं बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के अनुरूप आचारण करूँगा।

आंबेडकर की इन प्रतिज्ञाओं का सामान्य वर्गीकरणः-

1. इसमें पहली प्रतिज्ञा से लेकर पाँचवी प्रतिज्ञा तक हिन्दू देवी देवताओं के त्याग की घोषणा है।
2. छठवीं प्रतिज्ञा से आठवीं प्रतिज्ञा तक ब्राह्मण परंपरा की अवज्ञा है।
3. नौंवी प्रतिज्ञा से बारहवीं प्रतिज्ञा तक बौद्ध धर्म के सामान्य नियमों के प्रति स्वीकृति है।
4. तैरहवीं प्रतिज्ञा से सत्रहवीं प्रतिज्ञा तक विनय के सामान्य नियमों के प्रति स्वीकृति है जिसकी वजह से शुद्र वर्ण को कुख्याति मिलि है।
5. अठारहवीं प्रतिज्ञा से बाइसवीं प्रतिज्ञा तक बौद्ध धर्म के सिद्धांतों तथा उसके प्रति श्रद्धा और विश्वास है।

आंबेडकर की 22 प्रतिज्ञाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

आंबेडकर की बाईस प्रतिज्ञाओं के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से "हमने कुछ ऐतिहासिक समझ की ओर जाने का प्रयास किया है। आंबेडकर परम्पराओं में विश्वास करने के विरूद्ध थे। इसीलिए उन्होंने हिन्दू देवी-देवताओं तथा उनके अवतारवाद में अविश्वास प्रकट किया। इसके विपरीत वे भलि-भाँति समझते थे कि सामाजिक रूप से पिछड़ी जातियाँ आर्थिक रूप से कमजोर थी। इससे बचाव करते हुए उन्होंने हिन्दू ग्रंथों द्वारा निर्धारित श्राद्ध तथा यज्ञ करने से रोका। क्योंकि ऐतिहासिक रूप से भी उन्हें मामूल था कि 'बुद्ध के जीवनकाल में भी धार्मिक अनुष्ठान अमीरों के लिए ही संभव थे।"[11]

आंबेडकर के मन में केवल ज्ञान के स्पष्टिकरण के लिए वर्गीय अवधारणा नहीं थी। उन्हें भारतीय समाज में शूद्रों की स्वीकार्यता की तलाश थी। इसलिए, उन्होंने अपनी तेरहवीं से

ए सत्रहवीं प्रतिज्ञा में निश्चित गुणों के विकास पर जोर दिया। ताकि बहुमत से प्राप्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अवसर में साझेदारी हो सके।

आंबेडकर ने बौद्ध धर्म के ग्रंथों में उल्लिखित सिद्धांतों को 'तीन भागों में बाँटा है-

1. धर्म
2. अधर्म
3. सधर्म[12]

इन तीनों कारकों का उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। परन्तु प्रसंग स्पष्ट करने के लिए इनका एक बार फिर जिक्र करना आवश्यक है। आंबेडकर ने अपने अनुयायियों को सधर्म का पालन करने के लिए कहा। इसकी छाप उनकी प्रतिज्ञा संख्या नौवीं से बारहवीं और अठारहवीं से बाईसवीं में देखी जा सकती है। इसके अंतर्गत उन्होंने "धर्म तथा धर्म के कारकों का इस्तेमाल एकता के लिए किया है।"[13] ताकि संघर्ष सफल हो सके उन्होंने अपने धर्मांतरण नामक भाषण में बुद्ध की मूर्ति पूजा और विशेष पोशाक का समर्थन किया है। ऐसे तत्वों को वे सामाजिक एकता के लिए आवश्यक मानते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उन्होंने अपने लोगों का मन तभी समझ लिया था जब सवर्णों के खिलाफ 'चौदार सत्याग्रह" [14](तालाब पर पानी पीने के लिए) और मंदिर प्रवेश सत्याग्रह किया था। इस आंदोलन में दलितों को अपमान का घूँट पिना पड़ा था। इसके बावजूद इस वर्ग का हिन्दू धर्म के प्रति मोह भंग नहीं हो रहा था। इसलिए उन्होंने अपने अनुयायियों को धर्म के बदले धर्म दिया। आंबेडकर के अनुसार धर्म व्यक्तिगत विकास के लिए आवश्यक है जबकि हिन्दू धर्म वर्ग विकास को केन्द्र में रखता है, इतना ही नहीं आंबेडकर की आर्थिक सुधार तथा सामाजिक सुधार जैसी प्राथमिकता सामाजिक सुधार की देन है।

आंबेडकर की बाईस प्रतिज्ञाओं का राजनीतिक विश्लेषणः -

प्रतिज्ञाओं के मद्देनजर उन्हें हम सीधे तौर पर राजनीतिककरार नहीं दे सकते हैं। लेकिन इतना सच है कि आंबेडकर यह भलि-भाँति समझ सकते थे। "अगर दलितों का बहुमत धर्म के साथ समायोजन नहीं हो सकता है, तो उन्हें उभरते नए वर्ग के साथ राजनीतिक समायोजन के लिए बाध्य किया जा सकता है ।"[15] नए वर्ग का उभार बदलते धार्मिक समीकरणों तथा गठजोडों से संभव है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि बौद्ध धर्म समता मूलक धर्म है। स्वतंत्रता तथा समानता इसका मूल लक्षण है। फिर भी तत्कालिक समाज पर इसका केवल धार्मिक एवं आध्यात्मिक असर नहीं था। ठीक उसी प्रकार से आंबेडकर की बाईस प्रतिज्ञाओं का संबंध केवल धर्मांतरण से नहीं हो सकता है। उदारण के लिए समसामयिक भारत में महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, हरियाणा के साथ-साथ और भी कई राज्य है। जहाँ धर्म पर आधारित छोटे-छोटे संगठन भारतीय राजनीति के पूरक के रूप में उभर रहे हैं। इतना ही नहीं "प्रथम चुनावी घोषणा से लेकर अभी तक की चुनावी घोषणाओं के विषय के रूप में। उभरते वर्ग भारतीय राजनीति में स्थान बना रहे हैं। [16]आंबेडकर की पहली प्रतिज्ञा से दसवी प्रतिज्ञा तक का राजनीतिक असर यह है कि मुस्लिम और इसाई राजनीतिक दृष्टि से दलित संगठनों के साथ आसानी से जुड़े सकते हैं। इसके विपरीत ग्यारहवीं से सत्रहवीं प्रतिज्ञा तक के राजनीतिक मायने यह है कि सामान्य विचार धारा वालों के साथ

शामिल होना संभव और शामिल करना संभव है। इसके अलावा आंबेडकर की अठारहवीं से बाईसवीं प्रतिज्ञा दलितों को पृथक राजनीतिक एवं धार्मिक अस्तित्व बनाये रखने में मदद करती है।

आंबेडकर ने अपनी बाईस प्रतिज्ञाओं के अन्तर्गत "विशेष करके ग्यारहवीं प्रतिज्ञा में अष्टांगिक मार्ग के पालन की चर्चा की है।"[17] उनका उल्लेख किसी दूसरे शोध में किया जा चुका है। इसके अलावा उन्होंने अपनी बारहवीं प्रतिज्ञा में दस पारमिताओं के पालन करने पर जोर दिया है। 'बौद्ध धर्म की दस पारमिताए[18] निम्नलिखित है-

1. "दान पारमिता"
2. "शील पारमिता"
3. "नेक्खम्मा (त्याग) पारमिता "
4. "पण पारमिता"
5. "वीरिय पारमिता "
6. "खांती पारमिता "
7. "सच्च पारमिता "
8. "अधिष्ठान पारमिता "
9. "मेत्ता पारमिता "
10. "उपेक्खा पारमिता"

उपरोक्त पारमिताएँ थेरवादी परंपरा के अनुसार है। इसके अलावा महायान में 'छः पारमिताएँ [19]बतलाई गई है जो निम्नलिखित-

1. "दान पारमिता"
2. "शील पारमिता"
3. "कान्ति पारमिता"
4. "वीर्य पारमिता
5. "ध्यान पारमिता
6. "प्रज्ञा पारमिता"

इसके अलावा "दशभूमिकासूत्र' में निम्नलिखित "चार पारमिताएँ"[20]भी गिनायी गयी है जो निम्नलिखित है-

7. 'उपाय पारमिता'
8. "प्राणिधान पारमिता।"
9. "बल पारमिता"
10. "ज्ञान पारमिता"

आंबेडकर की बारहवीं प्रतिज्ञा तथ्यात्मक दृष्टि से अस्पष्ट है क्योंकि उन्होंने अपनी धार्मिक अवधारणा पुष्ट करने के लिए बौद्ध धर्म की विशेष शाखा का अनुसरण नहीं किया है। ऐसी स्थिति में कुछ अंतर के साथ तीन तरह की पारमिता का समूह है-

1. थेरवादियों की दस पारमिताएँ।
2. महायानियों की छः पारमिताएँ।
3. "दशभूमिकासूत्र" के अनुसार चार पारमिताओं।

महायानियों की छः पारमिताओं में से चार पारमिताएं थेरवादी पारमिताओं से शाब्दिक समानता रखती है। महायानी परम्परा की प्रज्ञा तथा ध्यान पारमीता परस्पर अलग है। जबकि इसके विपरीत दशभूमिकासूत्र में वर्णित चार पारमिताएं महायानी तथा थेरवादि परंपरा से मेल नहीं खाती है। लेकिन यह विरोधाभासी बात है। "दशभूमिकासूत्र" महायान परंपरा का ग्रंथ है। इसे हम बौद्ध धर्म में वैचारिक स्वतंत्रता के मिसाल के रूप में दर्शा सकते हैं। यद्यपि, पारमिताओं के संबंध में अंतरभूत दार्शनिक समझ के मामले में हमारी असमर्थता है। इस पक्ष पर विशेष कुछ नहीं कहा जा सकता।

बुद्ध के कौन से विचार ऐसे थे जिनसे आंबेडकर प्रभावित हो के दलितों का मार्ग दर्शन कर रहे थे? कि बौद्ध धर्म एक बेहतर धर्म है। आंबेडकर ने सामाजिक समरसता के संबंध में या जाति उच्छेदवाद के संबंध में विशेष तौर से तीन सूत्रों का सहारा लिया है-

1. "अस्वलायनसूत्र"[21]
2. "ऐसुकारीसूत्र," [22]मज्झिम निकाय से
3. "अज्ञिय भारद्वाज सूत्र," [23]दिघनिकाय से उद्धरित किया है।

इन तीनों सूत्रों में बुद्ध जातीय अथवा वर्ण श्रेष्ठता को अस्वीकार करते हैं। उन्होंने जन्म पर आधारित श्रेष्ठता के बजाय कर्म पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को स्वीकार किया है। कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि बुद्ध ने कहीं भी जातीय तथा लैंगिक बदलाव की बात नहीं की है। इसके संबंध में आंबेडकर का मानना है। सामानता, स्वतंत्रता तथा सहानुभूति बौद्ध धर्म के अभिन्न अंग है। अतः इनके माध्यम से सामाजिक बदलाव किया जा सकता है I

निष्कर्ष

आंबेडकर ने मार्क्सवादी दृष्टिकोणों के विपरीत धर्म के माध्यम से वर्ग-संघर्ष तथा वर्ग गठजोड़ को जारी रखना चाहा था। आंबेडकर के सिद्धांत सुधारों के संबंध में केवल सामाजिक एवं आर्थिक नहीं है, बल्कि राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक भी है। इसलिए आंबेडकर के व्यक्तित्व को बौद्ध धर्म की किसी विशेष शाखा के साथ लाक्षणिक दृष्टि से जोड़ कर देखना संभव नहीं है। उन्होंने प्रायः बौद्ध धर्म के सामान्य नियमों का प्रतिपादन किया है। उनके धार्मिक स्पष्टिकरण का अधिकांश हिस्सा उनके अनुभव व तर्क पर आधारित है। उनके धर्मांतरण की नीति का दलित वर्ग पर राजनीतिक व आर्थिक प्रभाव पड़ा है। जबकि वे सामाजिक परिवर्तन को प्राथमिकता देते

थे। उन्होंने अपनी भाषा में स्वीकार किया है, 'जब किसी धर्म का संरक्षक, प्रचारक तथा अनुयायी नहीं होता है तब धर्म का बुरा दौर होता है। यद्यपि यह विचार आंबेडकर ने मिलिन्द प्रश्न' से लिया है। इसमें मिलिन्द नागसेन से पूछता है कि, 'धर्मग्लानि क्या है? इसके जबाव में नागसेन ने उपरोक्त व्यक्तव्य दिया था। जहाँ तक हमने समझा है। नये वर्ग का उभार और उसका गठजोड़ संख्यात्मक शक्ति का विषय है। यह कुशल नेतृत्व के अभाव में संभव नहीं है। बौद्ध धर्म ऐसी मुश्किलों से गुजर रहा है। संविधान में आरक्षण का प्रावधान यदि सही समय पर लागू होता। तो सबसे पहले सामाजिक परिवर्तन होता। प्राथमिक रूप में आरक्षण के अतंर्गत अल्पसंख्यकों को नहीं शामिल किया गया था। कालांतर में बढ़ते राजनीतिक दबाव के कारण अल्पसंख्यकों को आरक्षण के दायरे में लाया गया। शुरुआती दौर में इसके अंतर्गत इस्लाम तथा इसाई धर्म के अनुयायियों को रखा गया। बाद में बौद्धों तथा जैनों को भी अल्प संख्यक के दायरे में लाया गया। जो कि शुरूआती संविधानिक प्रावधान में हिन्दुओं के साथ रखा गया था। यह आंबेडकर की धार्मिक चेतना के साथ नये वर्ग के उभार के संबंध में विरोधाभासी राजनैतिक नीति थी।

1. डॉ ई ओवरमिलर, (अनु), हिस्ट्री ऑफ बुद्धिस्म, (हईडनबर्ग, जर्मनी, 1931), पृ. 8-10.
2. डी डी कोशांबी, एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, (पापूलर प्रकाशन,बांबे, 1956), पृ. 144-183.
3. हरमन हेस्से, सिद्धार्थ एन इंडियन टेल, (ई बुक, 1971), पृष्ठ 8।
4. डॉ बी आर कॉम, बुद्ध एंड हिज धम्मा, (सिद्धार्थ बुक डिपो, दिल्ली, 2006), पी.60-68.
5. दास गुप्ता, अ हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलास्फी, (कैंब्रिज, लदंन, 1922), पृ.6.
6. वहीं, अंबेडकर, बुद्ध एण्ड हिज धम्म, पृ 70-75.
7. अंबेडकर, धर्मांतरण क्यों ? (गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2010), पृ. 20-40.
8. सब्यसाची भट्टाचार्य, बुद्ध फॉर यंग, (एन बी टी, दिल्ली, 2001), पृ 1-10.
9. वही, पृ.115.
10. स्वपन कुमार बिस्वास, बौद्ध धर्म, मोहनजोदड़ो हड़प्पा नगरों का धर्म, (ओरीयन बुक्स, कलकता, 1999), पृ. 338-383.
11. वही, पृ. 172-204.
12. वही, अंबेडकर, बुद्ध एंड हिज धम्मा, पृ.88.
13. डॉ. अंगने लाल, बौद्ध संस्कृति के विविध आयाम, (उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, 2008), पृ. 1-38.
14. वही, स्वपन बिस्वास, बौद्ध-मोहनजोदड़ो हडप्पा नगरी का धर्म, पृ.55.
15. वलेरीयन रोडरीगज, ओरीजन एण्ड डवलपमेंट ऑफ द डिस्कोर्स इन मॉडर्न इण्डिय, (संदीपा बुक शॉप, श्री लंका, 1977), पृ.10.
16. वही, पृ.15
17. वही, स्वपन बिस्वास, बौद्ध धर्म, मोहन जोदड़ो हड़प्पा नगरी का धर्म, पृ.70.
18. रीचर्ड एफ. गोम्वरीच, थेरवादा बुद्धिस्म अ सोशल हिस्ट्री फ्रॉम एन्शीयंट बनारस टू गॉडर्न कोलम्बों, (राउटलेज, लंदन, 2006), पृ. 119-136
19. थ. स्त्रावास्की, बौद्धिसत्व, (मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली, 1992), पृ. 29-32.
20. वही, पृ.40.
21. एडवर्ड कोन्जे, (अनु), द लार्ज सूत्रा ऑफ परफेक्ट विजडम, (कैलिफोर्निया, प्रेस, एल ए. 1984), पृ.37.
22. भीखू ननमोलि और भिखू बौद्धी, (अनु), द मिडल लेंथ डिस्कोर्स ऑफ दी बुद्धा, (बौद्ध पब्लिकेशन सोसाइटी, कैंडी, श्रीलंका, 1995), पृ.786।
23. स्टीवन कॉलिन्स, अगंय सुत्त, (ऑनलाईन, पृ. 15

संदर्भ ग्रंथ सूची

प्राथमिक स्रोत

1. अम्बेडकर भीमराव, पत्र-संग्रह, (गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 1995).

2 कोन्जे ऐडवर्ड, (अनु.), द लार्ज ऑफ प्रफेक्ट विजडम, (कैलिफॉर्निया प्रैस, एल.ए, 1984)

3. कॉलिन्स स्टीवन, अग्यं सूत्र, (ऑनलाइन, 2018)

4 गांगुली किसारी मोहन, (अनु), द महाभारत, (इ. लाइब्रेरी, 2003)

5 गांधी एम. के. (अनु.), अनाशक्ति योग, (श्रीमदभागवत गीता) (नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 2014)

6. तुलसीदास गोस्वामी, रामचरितमानस, अयोध्या कांड, (गीताप्रैस, गोरखपुर, 2007)

7. ग्रीफिथ रॉल्फ टी.एच., रामायन ऑफ वाल्मिकी, (टूबनर एण्ड कम्पनी, लंदन, 1870)

8. जोशी के.एल., अग्निपरन, (डायमंड बुक्स, दिल्ली, 2004)

9. टॉल्सटॉय, वॉर एण्ड पीस, (बुक वन, 1805)

10. डन जॉन, (अनु.) हिन्द स्वराज, (कैम्बीज यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1997),

11 थेरो वेरागडा सारदा, धम्मपद, (बौद्ध धर्म एजूकेशन ऐसोसियेशन, थाइवान, 2007)

12. पाण्डे उमेश चन्द्र, गौतम धर्मसूत्र, (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी)

13. फैड्रीक पॉल, (अनु.) द गीता, (सनी प्रेस, न्यूयोर्क, 2003)

14. बैबिट सी. ऐलन, जातक का टेल्स, (द सेंचूरी कं. न्यूयोर्क, 1912)

15. बूलर जॉर्ज, (अनु.) द लॉज ऑफ मनु, (एशियाटिक सोसाईटी ऑफ बंगाल, 1895)

16. बौद्ध भिक्षु और भिक्षु नान मौली, द मिडलैंग्थ डिस्कोर्स, ऑफ़ दी बुद्धा। (बौद्ध प्रकाशन, सोसायटी, कैंडी, इंडिलैण्ड, 1995)

17. रस्किन जॉन, अन टू द लास्ट, (जॉन विलि एंड संस, 1881)

18. बॉस मंदक्रांता, (अनु.), द रमायना रीविसिटेड, (ऑक्सफार्ड यूनिवर्सिटि, प्रेस, 2004)

19. भारत सरकार, जनगणना, 2011, (गृह मंत्रालय, 2011)

20. समस्त्रे आर. (अनु), कॉटिल्य अर्थशास्त्र, (गवर्नमेंट प्रैस, बैंगलोर, 1915)

21. शास्त्री स्वामी द्वारिकादास, सूत्रपिटक (दिघनिकायपाली), (बुद्ध भारती, वाराणसी)

22. शास्त्री स्वामी द्वारिकादास, सद्धर्मलडकावतासूत्रम्, प्रमुख वैपुल्यसूत्रम्, (बुद्ध भारती, वाराणसी, 1996)

23 हैल्सी चार्ल्स, थेरीगाथा पायम्स ऑफ द फर्स्ट बुद्धिस्ट वूमन, (तीन मूर्ति, क्लासिकल लाईब्रेरी, 1913)

द्वितीयक स्रोत

1. अमिन, शाहीद, इवैन्ट मैटाफर चौरी चौरा, (ऑक्सफोर्ड, 1922-1992)

2. अम्बेडकर, बी.आर. हू वर शूद्रास? (ठकर्स बाम्बे, 1949)

3. अम्बेडकर, बी.आर, बुद्ध और उसका धर्म (सिद्धार्थ बुक, दिल्ली, 2006)

4. अम्बेडकर, बी.आर., धर्मांतरण क्यों? (गौतम बुक सेंटर, दिल्ली, 2010)

5. अय्यर, राघवन, द मोरल एंड पोलिटिक्ल थॉट ऑफ महात्मा गांधी, (ऑक्सफार्ड, लंदन, 1973)

महावाक्योपनिषदि प्रतिपादिताद्वैतवेदान्तविचार:

प्रस्तोता- विभाकर कुमार दीक्षितः
शोधच्छात्रः- दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
शोधनिर्देशकः- प्रो. दयाशंकर तिवारी
संस्कृतविभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

प्रस्तावना

तरौ मधुकोशं परितः मधुमक्षिकाः इव मनुष्याः विषयासक्ताः। अवलिप्तविषयाश्च मनुष्याः इममेव लोकम् उत्कृष्टं मन्यमानाः, परलोकं च अमन्यमानाः परमपुरुषार्थात् विहन्यन्ते। उक्तं च- "अयं लोके नास्ति पर इति मानीपुनः पुनर्वशमापद्यते मे"[1] इति किन्तु परमकारुणिका भगवती श्रुतिःजगतस्थितिकारणं परिपिपालयिषुः प्राणिनां अनेकजन्ममृत्युजराबन्धादिभ्यः निवृत्तिकामा परमपुरुषार्थप्रयुक्तेतरत्रिपुरुषार्थसाधिका प्रवर्तते लोके। तामेव श्रुतिमादाय सर्वाणि सांख्ययोगादीनि आस्तिकानि वेदप्रामाण्याभ्युपगन्तॄणि दर्शनानि मनुष्यबुद्धिसहजानि ऋषिभिः प्रणीतानि। यद्यपि एतानि भिन्नभिन्नोपायप्रदर्शकानि किन्तु लक्ष्यैकमात्रबोधकानि। यथा "तत्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः"[2] इति सूत्रेण तत्वज्ञानात् मोक्षसिद्धिः इत्यभाणि महर्षिभिः गौतमैः। "व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्"[3] इति सांख्याः, एवमेव अन्यैरपि दार्शनिकैः ज्ञानदेव मोक्षः इति आख्यायि। किन्तु यदा ज्ञानप्राप्तसाधनविचारः आयाति तदा योगदर्शनं दर्शनामस्तकर्माधिरोहति।

न च यावता चित्तैकाग्र्यं सिद्ध्यति तावता ज्ञानसंभवः। स च तत्वविषयको वा ब्रह्मविषयको वा स योगादेवेति नास्ति संन्देहलेशोऽपि। ज्ञानादेव कैवल्यमिति ब्रुवतां ज्ञानकैवल्ययोर्मध्ये साध्यसाधनभावः उच्यते किन्तु वेदान्तदर्शने ज्ञानमेवमोक्षः ब्रह्मणः ज्ञानस्वरूपत्वात्, ज्ञानस्वरूपस्यैव मोक्षत्वात्। अतः एव ज्ञानप्राप्तौ यानि शास्त्राणि प्रवर्तन्ते तानि साधनशास्त्राणि वेदान्तस्तु साध्यशास्त्रम्। साध्यसाधनयोश्च तादाम्यात् योगवेदान्तयोः अस्ति साध्यसाधनरूपः सम्बन्धः इति अमुमेवांशं बोधयन्ति विंशत्यधिकाः योगान्तर्गताः योगशिखोपनिषदाद्यः। इदमेव भारतीयदर्शनानां सौन्दर्यम्। अधुना सङ्कल्पितो विषयः महावाक्योपनिषदि – अद्वैतवेदान्तविमर्शः इति। शोधपत्रेऽस्मिन् योगोपनिषदि विद्यमानान् वेदान्तोपयुक्तान् साधनविशेषान् प्रमेयान् च संगृह्य प्रसिद्धवेदान्तप्रस्थानत्रयेण तुलना समीक्षा च विधीयते यथा च द्वयोः दर्शनयोः वैमनस्यं च न स्यात् तथा यत्नो विधीयते। वैमस्यप्राप्तौ तु "एतेन योगः प्रत्युक्तः" [4]इति वैय्यासिकं सूत्रम् मनसि निधाय आक्षिप्यते जनैः, स च विचारः अन्यः, साधनविचारश्च अन्यः इति इति वैमनस्य हेतुं पृथक्कृत्य साधनविचारमात्रे सौमनस्यसाधनार्थं प्रवर्तते शोधलेखः।

महावाक्योपनिषदः परिचयः स्वरूपञ्च

महावाक्योपनिषद् अथर्ववदीया अस्ति। अस्यामुपनिषदि द्वादशमन्त्राः सन्ति द्वादशमन्त्रैश्च कथं प्रजापतिः ब्रह्मा देवानां सम्मुखे रहस्यविद्यां प्रकटीचकार इति अस्य विस्तृतं वरणं कृतं वर्तते। महावाक्यं नाम किमिति जिज्ञासायाम्- यत्र अल्पैः अक्षरैः महत्त्वं प्रतिपाद्यते अथवा उपनिषदां मुख्यप्रयोजनभूतं जीवब्रह्मणोः ऐक्यं येन वाक्येन बोद्ध्यते तद् वाक्यं महावाक्यमिति कथ्यते। यद्यपि अस्मिन् संस्कृतवाङ्मये चत्वारि महावाक्यानि प्रसिद्धानि वर्तन्ते किन्तु तानि महावाक्यानि केवलं प्रत्येकमपि वेदस्य उपलक्षणानि एव सन्ति। अतः भारतीयसंस्कृतवाङ्मये न केवलं चत्वारि एव महावाक्यानि किन्तु अनेकान वाक्यानि वर्तन्ते, इत्येव विज्ञातव्यम् अतः यदा उपनिषदामध्ययनं क्रियते तदानीं तत् तत् उपनिषदः प्रमेयम् अल्पैः अक्षरैः प्रतिपाद्यते तत्सर्वमपि महावाक्यमिति वक्तुं शक्यते। अल्पाक्षरयुतानां गूढतत्त्वप्रतिपादकवाक्यानां महावाक्यसंज्ञा वर्तते। तद्वदेव महावाक्योपनिषद्यपि द्वादशमन्त्रैः समग्रं व्याख्यानं समग्रोपनिषदां सारः प्रतिपादितः अस्ति इति कृत्वा एषा महावाक्योपनिषदिति कथ्यते। अस्यां महावाक्योपनिषदि अपरोक्षानुभवोपदेशाधिकारी, विद्याविद्ययोः स्वरूपं तत्कार्यं तथा च तत्त्वज्ञानस्य वृत्तिरूपत्वं कथं भवितमर्हति इत्यादि अनेके विषयाः प्रतिपादिताः सन्ति। एषा च उपनिषद् अत्यन्तं च गोपनीया, ये केवलं कठिनपरिश्रमेण अधिकारित्वं सम्पादयन्ति ते एव अस्यामुपनिषदि अधिकारिणः भवितुमर्हन्ति। अत्र प्रतिपाद्यमानः यः ब्रह्मविषयकः अपरोक्षानुभवः वर्तते, तस्य उपदेशः वेदान्ताधिकारिस्वरूपं यथा अन्येषु वेदान्तग्रन्थेषु वेदान्तसारेषु निर्णीतमस्ति तादृशाय अधिकारिणे एव प्रदेयमिति अत्र निरूपितमस्ति। यतोहि अत्र प्रतिपाद्यमाना या विद्या हंसविद्या परमात्मविद्या च तत् सामान्यजनैः अवगन्तुं न शक्यते इति कृत्वा अधिकारादि स्वरूपं च अत्र चिन्तितं वर्तते। अस्याश्च उपनिषदः प्रत्येकमपि वाक्यं महावाक्यं वर्तते। अतः आदौ एव मन्त्रारम्भे एव उपनिषदः आरम्भः अस्ति- **अथ हो वाच भगवान्ब्रह्माऽपरोक्षानुभवपरोपनिषदं व्याख्यास्यामः इति।** अत्रापि ब्रह्मणः देवं प्रति यः उपदेशः उपदेशमाध्यमेन ब्रह्मणः तत्वप्रतिपादननिरूपणप्रकारः वर्तते स सर्वोऽपि उपनिषदामन्त्यन्तमपि गूढतमं तत्त्वं सारल्येन कथमवगन्तुं शक्यते इति निमित्तिकृत्य आख्यायिकायाः आख्यायिकया गूढतमा विद्या प्रतिपाद्यते। अतः अत्रापि अन्योपनिषद्वत् आख्यायिकाविद्या स्तुत्यर्था वर्तते, परं तत्वं मुख्यप्रतिपाद्यमस्ति। अत्र उपनिषत्सु उपलभ्यमानानां तत्त्वानां कथं वेदान्तेन सह सम्बन्धः भवितुमर्हति इति अग्रे मीमांसा करिष्यते।

प्रतिपाद्यविषयाः

एषा उपनिषत् अथर्ववेदस्था इति आहुः साम्प्रदायिकाः। किन्तु क्वापि वेदप्रामाण्येन अनुपलब्धेः योगोपनिषदां न अपौरुषेयत्वमित्यपि केचित् आहुः। किन्तु इह प्रामाण्याप्रामाण्यविचारो नैव प्रस्तूयते। यथासंप्रदायं टीकाकृद्भिः अस्याः उपनिषदः कृष्णयजुर्वेदे प्रविभागो दर्शितः इत्यतः तस्था इत्येव मन्तव्यम्। अस्याञ्च उपनिषदि स्वात्मव्यतिरेकेण अनुभूयमानस्य प्रपञ्चस्य ब्रह्मावबोधानन्तरं ब्रह्ममात्रत्वमेव भविष्यति इति अशेषं जीवब्रह्मयोरैक्यं बोध्यते। न तावत् महावाक्योपनिषत् इति नामश्रवणमात्रेण तत्त्वमस्यादि प्रसिद्धवाक्यानां विचारो विधीयते इति मन्तव्यम्।

सम्प्रदाये महावाक्यं नाम यैः वाक्यैः जीवब्रह्मणोः ऐक्यं प्रतिपाद्यते तत् वाक्यं महावाक्यसंज्ञा लभते। अतश्च जीवेश्वरयोः अभेदः एव अस्याः उपनिषदः विषयो वरीवर्ति।

को नाम अपरोक्षानुभवे अधिकारी इति जिज्ञासायाम् उच्यते-

"अथ होवाच भगवन् ब्रह्माऽपरोक्षानुभवपरोपनिषदम् व्याख्यास्यामः"।

"गुह्याद्गुह्यतरमेषा न प्राकृतामोपदेष्टव्यासात्विकामान्तमुखाय परिशुश्रूषते" ॥[5]

अत्र च मन्त्रे कीदृशाय शिष्याय अधिकारिणे वा ब्रह्मरूप- अपरोक्षानुभवस्य उपदेशः करणीयः इत्युच्यते। प्रकृते च ब्रह्मा एव उत्तमाधिकारिणं संप्राप्य स्वानुभवं प्रकटयति। तत्र तावत् ब्रह्मणः स्वानुभवप्रतिपादको भवति प्रथमः मन्त्रः। अयमेव हि विषयः कठोपनिषदि प्रतिपाद्यते मुण्डकोपनिषदि च। तत्र नचिकेतसं प्रति प्रह्मविद्यायाः स्तुतिं कुर्वन् यमो ब्रवीति "श्रवणायादि बहुभिर्नलभ्यः"[6]। इत्यस्मिन् मन्त्रे-"आश्चर्यो वक्ता कुशलोस्य लब्धा आश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः"[7]। इति अत्र यः वक्ता स च अनुभवपूर्वकारी इति भवेत्।अनुभवहीनेन आचार्येण अपरोक्षानुभवोपदेशः न कथञ्चित् उपदेष्टुं शक्यते इत्युच्यते। मुण्डकोपनिषदि उपदेष्टुः कौशल्यं ब्रह्मवित्त्वं च सूचयति श्रुतिः।"स गुरुमेवाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"[8] इत्यादि। इत्थं च समग्रे वेदान्तशास्त्रे सर्वत्रापि अयमेव उपदेशः भवति यत् केनचित् ब्रह्मविदा आचार्येण एव एतस्योपदेशः करणीयः इति॥

द्वितीये च मन्त्रे वक्ष्यमाणायाः उपनिषदः रहस्यार्थतत्त्वम् उपदिश्यते, अर्थात् न अयं अपरोक्षानुभवोपदेशः सर्वेभ्यः देयः इति। तदेव उक्तं महावाक्योपनिषदि "गुह्यात् गुह्यतरमेषा"[9] इति। इममेवांशं भगवान् वासुदेवः मोक्षसंन्यासयोगाख्ये श्रीमद्भगवद्गीतायाः अष्टादशे अध्याये आह- "इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया"[10] इति। अर्थात् इहापि स्मृतिप्रस्थाने साक्षात् वासुदेवेन मत् ज्ञानं निरदेशि तस्य च गुह्यत्वं स्वयमेव ब्रवीति। न केवलं गीतायां किन्तु ब्रह्मविद्योपनिषदि अपि, "गुह्याद् गुह्यतरं गोप्यं ग्रहणीयं प्रयत्नतः"[11] इत्येवं प्रयत्न्तः उपदिश्यते। इत्थं च अस्याः विद्यायाः अस्य शास्त्रस्य वा यत्र क्वापि वा गोपनीयत्वविषयतां पश्यामः, अनेकाः तत्र श्रुतयः अनेकाः तत्र स्मृतयश्च प्राप्यन्ते।

कस्मै प्रदेयं कस्मै न प्रदेयमिति जिज्ञासायां पूर्वं अप्रदेयता सूच्यते प्राकृताय न देयम् इति। अथ को नाम प्राकृतः इति जिज्ञासायामुच्यते प्राकृतो नाम अत्र यथौक्तसाधनविकलः इत्यर्थः। यथोक्तसाधनविकलाय इदं गुह्यं अपरोक्षानुभवं न ब्रूयात्। तर्हि कीदृशाय शिष्याय इयं विद्या प्रदेया तत्प्रति उच्यते "सात्विकाय अन्तर्मुखाय परिशुश्रूशवे"[12] इति। केवलसत्त्ववृत्तिमत्प्रयङ्खाय अथ च स्वाचार्यशुश्रूषादिसाधनसम्पन्नाय ब्रह्मविद्या उपदेष्टव्या। अयमर्थश्च साक्षात् उपदिश्यते मुण्डकश्रुत्या- "तस्मै स विद्वान् उपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय"[13] इति।

इत्थं च अनेकासु उपनिषत्सु अधिकारिणः लक्षणानि उक्तानि सन्ति। यद्यपि शब्देषु भेदः स्यान्नाम तथापि अर्थस्तु समानः एव भविष्यति। इत्थं च प्रथमे द्वितीये च मन्त्रे अपरोक्षानुभवस्य गोपनीयत्वम्, ब्रह्मणः स्वानुभवत्वम्, अनधिकारित्वम्, अधिकारित्वञ्च। एवमेव महावाक्योपनिषन्नामिकायां योगोपनिषदि विद्याविद्ययोः स्वरूपं कार्यं च। हंसविद्याभ्यासेन परमात्मविभविः तत्त्वज्ञानस्य वृत्तिस्वरूपत्वम्, प्रणवहंसज्योतिध्यानं, हंसज्योतिविद्याफलम् इत्यादयः अनेके विषयाः तत्र प्रतिपादिताः सन्ति। शोधपत्रस्य लघुस्वरूपत्वात् संक्षेपतः कथमस्यामुपनिषदि अद्वैतवेदान्तविचारः कर्तुं शक्यते इति प्रदर्शितमस्ति। यथा च अन्यासामुपनिषदां स्वरूपं भवति तथैव अस्याः अपि उपनिषदः अस्ति॥ आदौ अधिकारचिन्ता मध्ये च विषयवर्णनम् अन्ते वर्णितविषयविज्ञानस्य फलमिति अस्ति स्थितिः। इत्थं च संक्षेपतः महावाक्योपनिषदि अद्वैतवेदान्तविचारः प्रस्तुतः।

तच्च ब्रह्म शास्त्रेणैव अवगन्तुं शक्यते नान्यथा अत एव शास्त्रेषु ब्रह्मणः शास्त्रैकगम्यत्वरूपः सिद्धन्तः प्रसिध्यति। तद्यथा- अयं विचारः **"शास्त्र्योनित्वात्"**[14] इत्यधिकरणे द्वितीयवर्णके पुनः भगवद्गीतायाम् "अनाशिनोप्रमेयस्य"[15] इति अप्रमेय इति पदस्य विवरणकाले कृतः। शास्त्रमिह वेदः स्वीकार्यः। अतः शास्त्रम् ऋग्वेदादि योनिः कारणं प्रमाणमस्य ब्रह्मणः यथावत्स्वरूपाधिगमे इत्यर्थः उक्तः भाष्ये। शास्त्रं **"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति,"**[16] **यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति"** इत्यादि वेदवाक्येन ब्रह्मणः जगज्जन्मादिहेतुत्वं प्रस्तूयते। तादृशं ब्रह्म अहमिति **अहं ब्रह्मास्मि**[17] इत्यादि शास्त्रेण आत्माभेदे प्रतिपादिते प्रमाणप्रमेयव्यवहारस्य आत्मज्ञानेन बाधात्, प्रमाणप्रमेयव्यवहाराः न सम्भवन्ति। अप्रमेयस्य आत्मनः कथं आगमेन परिच्छेदः इति चेत् **"तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि"** इति श्रुत्या ब्रह्मणः शास्त्रैकगम्यत्वं प्रतिपाद्यते इति वदामः।

शास्त्रं त्विह अन्त्यं प्रमाणम् । कथमिति चेत् उच्यते । लोके तावत् अहं मनुष्यः, अहं स्थूलः इत्यादि प्रत्ययैः आत्मा अतद्धर्मविशिष्टः भाति । तद्विषये शास्त्रं शास्ति **"अस्थूलम् अनणु"** इत्यादि यथार्थप्रत्ययान् । अतः शास्त्रं स्वभावतः सिद्धः यः प्रपञ्चाभावः तदुपदेशेन स्थूलादिप्रत्ययान् अयथार्थान् निवर्तयति केवलम् । तेन द्वारेण हि शास्त्रस्य प्रमाण्यम् । न तु अयं घटः इति इदंतया ब्रह्म बोधयति शास्त्रम् तदुक्तं भाष्ये – **न शास्त्रम् इदंतया विषयभूतं ब्रह्म प्रतिपिपादयिषति ; किं तर्हि ? प्रत्यगात्मत्वेन अविषयतया प्रतिपादयत् अविद्याकल्पितं वेद्यवेदितृवेदनादिभेदम् अपनयति । तथा च शास्त्रं – "यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः" "न दृष्टेः द्रषटारं पश्येः"** इत्यादि [18]।

एतद्विज्ञानेन किं फलमिति जिज्ञासायामुच्यते महावाक्योपनिषदि एव "श्रीमहाविष्णुसायुज्यमवाप्नोतीत्युपनिषत्" इति। विदिततरमेव भवति सकलशास्त्रविजिज्ञासुभिः यत् सर्वेषामेव शास्त्राणां फलं मोक्षप्राप्तिरिति तदेवेह संकीर्त्यते। तत्र विष्णुशब्दस्य व्याप्त्यर्थकधातोः निष्पन्नत्वात् व्यातिमद्ब्रह्मैव गीयते इति अद्वैतिनः। तत्सायुज्यप्राप्त्यभावात् तत् तत्वमेवाप्नोति इति मन्तव्यम्। यदि तु प्राप्तिः चिन्त्यते तर्हि तदुपासनाफलमिति मन्तव्यम् इति दिक्।

उपसंहारः

आदौ यत्प्रतिज्ञातं यत् महावाक्योपनिषदि अद्वैतवेदान्त विमर्शः इति अत्रैतावता विस्तरेण जगत्स्वरूपं, गुरूपसदनं, प्रयोजनं च व्याख्यातम् तथा महावाक्योपनिषदि परिपठितानाम् सिद्धान्तानां वेदन्तेन समन्वयं विधाय तेषां च वेदान्तदिशाप्रामाणिकतां च न्यरूपि तथा च वेदान्तवासनावासितत्वात् उपनिषदां योगमार्गबोधकत्वेपि आरात् ब्रह्मज्ञानं प्रति उपकारकत्वं भवत्योव। अत्र शोधप्रबन्धे योगोपनिषदि अद्वैतवेदान्तविचाराख्ये संङ्क्षेपेण सूक्ष्मतया अध्ययनं विधाय तेषां वेदान्तप्रमाणपूर्विका चर्चा करिष्यते। इहोपन्यस्तन्यतिरेकेण अस्यामुपनिषदि मुक्तिमार्गस्य दुर्लभत्वम् ब्रह्मणः शास्त्रैकगम्यत्वम् ब्रह्मण जीवभावः ज्ञानयोगाभ्याम् दोषविनाशः जानस्वरूपं तत्फलम् अहं भावश्च सर्वानर्थमूलकत्वमित्यादि -अनेक योग वेदान्त समानाः विचाराः उपन्यस्ता। ते च यथा प्रतिभानं भाष्यादिग्रन्थसाहाय्येन व्याचक्ष्महे। येन च सिद्ध्येत अस्य शोधप्रबन्धस्य द्वयोः दर्शनयोः साम्यवैषम्यविवेकरूपं प्रयोदनम् इति शम्।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1.योगशिखोपनिषत्, अड्यारसंस्कृतपुस्तकलय, 1983.

2.अष्टोत्तरशतोपनिषदः, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2000.

3.कठोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2005.

4.मुण्डकोपनिषद् गीताप्रेस, गोरखपुर, 2000.

5.तैत्तिरीयोपनिषद्, स्वामिचिन्मयानन्दा, चिन्मयप्राकशन्, 2011.

6.ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, आचार्यजगदीशशास्त्रिणा, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 2018.

7.गीताभयाष्यम्, गीताप्रेस, गोरखपुर, 2021.

8.योगसूत्रम्, स्वामी विवेकानन्दः, लिटरसीहौस्, 2019.

9.भारतीयदर्शनम्, चन्द्रधरशर्मा, मोतीलाल बनारसीदास,दिल्ली, 2005.

10.वेदान्तपरिभाषा, धर्मराजाध्वरीन्द्र, चौखम्बा सीरीज, 2005

11.वेदान्तसारः, सदानन्दः, परिमल्पब्लिकेषन्स्, 2005

12. भारतीय दार्शनीक निबन्ध, डॉ. डी.डी. बन्दिष्टे, डॉ. रमाशंकर शर्मा, 2008

13. पातञ्जलयोगदर्शनम्, आचार्य भवानी शंकर, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय,20

1. कठोपनिषद् १.२.६
2. न्यायसूत्रम् १.१
3. सांख्यकारिका २
4. ब्रह्मसूत्रम् २.१.३
5. योगोपनिषत् म.वा. १,२
6. कठोपनिषद् १-२-७
7. कठोपनिषद् १-२-७
8. मुण्डकोपिनिषत् १-२-१२
9. महावाक्योपनिषद १-२
10. भगवद्गीता १८-६३
11. ब्रह्मविद्योपनिषत् ८
12. महावाक्योपनिषद १-२
13. मुण्डकोपिनिषत् १-२-१२
14. ब्र सू ३
15. भ गी २/१८
16. तै उ-३/१
17. बृ०उ-१/४/१०
18. ब्र सू १/१/४
19. महावाक्योपनिषद १-१२

भारतेन्दु का अनुवाद सिद्धांत

-डॉ. अभिषेक कुमार पटेल
सहायक प्राध्यापक
शासकीय शहीद कौशल यादव महाविद्यालय ,
गुण्डरदेही,जिला बालोद, छत्तीसगढ़पिन कोड 491223
मोबाईल नंबर 7869668874
ईमेल patelabhishek84@gmail.com

नाट्यानुवाद - नाटकों को मूलतः मंच पर प्रस्तुत करने के उद्देश्य से लिखा जाता है और नाट्यानुवाद का भी यही उद्देश्य है। अतः लेखकों को अपने-अपने माध्यम या अपनी विधा की विशेष जानकारी होना जरूरी हो जाता है। नाट्यानुवादक के सामने उपस्थित कठिनाईयाँ बहुमुखी और विकट हैं। दो भाषाओं के पूर्ण ज्ञान के साथ रंगमंचीय जानकारी भी अनिवार्य है। अगर नाटक को प्रस्तुति योग्य बनाना है तो उसमें कुछ न कुछ काटना, बदलना या बढ़ाने का निर्णय अनुवादक को स्वयं लेना पड़ता है।

मंचीय अनुवाद अभिनय, रस एवं प्रभाव को दृष्टि में रखकर एक तरह का अनुसृजन है। वास्तव में नाटकानुवाद में नाटक के संपूर्ण परिवेश को, अपने दृश्यत्व एवं काव्यत्व को एक सासथ लक्ष्य भाषा में उतारना चाहिए। आजकल के बहुत से नाटकों का अनुवाद सिर्फ अनुवाद मात्र है। यही कारण होगा कि विद्वानों ने पठनीय एवं मंचीय नाटकों की चर्च की है। पाठ्यानुवाद से तात्पर्य है कि टेक्स्ट का ज्यों का त्यों, उसी लक्ष्य भाषा में अनुवाद करना। लेकिन हमें यह सोचना चाहिए कि पठनीय नामक कोई नाटक नहीं है। आजकल 'नाटकानुवाद' से बहुत से लोगों का तात्पर्य इसी पठनीय नाटक से है।

नाटक श्रव्य और दृश्य काव्य के अन्तर्गत आता है। इसलिए एक भाषा के नाटक का दूसरी भाषा में अनुवाद करना आसान नहीं होता है। रंगमंच के अनुकूल बनने पर ही नाट्यानुवाद सफल हो पाता है। अनुवादक को अभिनेयता तथा रंगमंच का समुचित ज्ञान आवश्यक है। इसके अभाव में अनुवाद अस्पष्ट एवं अपूर्ण होगा। नाटक में संवाद योजना का विशेष महत्व है। अतः उत्तम संवाद में संक्षिप्तता मार्मिकता, प्रवाहमयता, गतिशीलता, पात्रानुकूलता तथा नाटकीयता जैसा गुण अनिवार्य हैं। नाट्यानुवाद की भाषा सरल, ध्वांन्यात्मक, व्यंग्यात्मक और नाटकीय होती हो, इसका बराबर ध्यान रखना चाहिए। राजेन्द्र यादव, चेखव के नाटकों का तथा लक्ष्मीनारायण मिश्रा ने इब्सन के नाटकों का सफल अनुवाद किया है। नाटक में रसानुभूति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। देश-काल-वातावरण, संस्कृति-सभ्यता को भी देखना चाहिए। इनकी मूलवत प्रस्तुति होनी चाहिए। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के कुछ अनुवादों में ऐसा नहीं है। दुष्यंत, शकुन्तला फिल्मी नायक, नायिका से हो गए हैं। अनुवादक को भाषाओं का अच्छा ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। रंग-परंपराओं की सम्पूर्ण पहचान और मूल नाटक से जुड़ी रंग परम्परा की विशिष्ट पहचान भी होनी चाहिए।

युगद्रष्टा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र देश ओर समाज की उन्नति के लिए हिन्दी की उन्नति आवश्यक समझते थे। इसके लिए वे विभिन्न भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथों को भी हिन्दी में अनूदित करने के पक्ष में थे। उनकी राय है कि "यदि 'अल्हा विरह' अंग्रेजी में अनूदित हो सकता है तो अंग्रेजी की पुस्तकों को हिन्दी में अनुवाद करके अपनी भाषा को समृद्ध क्यों नहीं किया जा सकता ?"[1]

"आल्हा विरह की नयी अंग्रेजी अनुवाद। यह लखि लाज न आई तु महि न होय विखाद।"[2] भारतेन्दु सभी भाषाओं के श्रेष्ठ ग्रंथों की हिन्दी में अनुवाद के लिए आदेश देते हुए कहते हैं -"अंग्रेजी उर्दू, फारसी, अरबी संस्कृत ढेर। खुले खजाने निहिं क्यों जूटत लावहु देर॥ सबको सार निकाल के पुस्तक रचहु बनाई। छोटी बड़ी अरेक विधा विविध विषय की लाई।"3

अनुवाद के संबंध में भी भारतेन्दु का एक विशिष्ट दृष्टिकोण था। उनके अनुसार "बिना पूर्व कवि के हृदय से हृदय मिलाये अनुवाद करना शुद्ध झक मारना ही नहीं कवि की लोकोत्तरस्थिति आत्मा को नरक कष्ट देना है। भारतेन्दु एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्दाशः अनुवाद किये जाने पर अर्थ का अनर्थ हो जाने की संभावना को स्वीकार करते हैं। इसलिए वह इसी प्रकार के अनुवाद के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार ग्रंथ के मूल भाव को ज्यों का त्यों ग्रहण करना चाहिए। पर साथ ही अनूदित ग्रंथ पर अपने देश और अपनी भाषा व संस्कृति की मौलिक छाप छोड़ने के पक्षधर भी थे ताकि वह अपनी भाषा के अन्य मौलिक ग्रंथों से अलग-अलग विदेशी ग्रंथ सा प्रतीत न हो और पाठकों को अपनी भाषा के अन्य मौलिक ग्रंथों जैसा ही आनंद हो सके।"4 नाट्यानुवाद भारतेन्दु ने जहां एक तरफ कैसे हो ? इसे न सिर्फ बताया बल्कि 'विद्यासुन्दर', 'मुद्राराक्षस', 'रत्नावली' आदि नाटकों का उत्कृष्ट अनुवाद कर उदाहरण भी प्रस्तुत किया। भारतेन्दु की

अनुवाद दृष्टि को समझने में उनके अनुवाद संबंधी अच्छे एवं बुरे अनुवादों संबंधी विचारों से काफी मदद मिलता है। भारतेन्दु द्वारा लिखित नाटक निबंध से हम अनुवादक के दायित्व तथा बुरे अनुवादों आदि के सम्बंध में विस्तार से प्रकाश डाला गया है। इसमें तत्कालीन अनुवाद-स्तर का परिचय मिलता है तथा शासकीय कृपा पर पलने वाली साहित्यिक वृत्ति पर भारतेन्दु के विचारों को देखा जा सकता है।

"यही दशा बुरे अनुवादों की भी होती है। बिना पूर्व कवि के हृदय से हृदय मिलाए अनुवाद करना शुद्ध झख मारना ही नहीं, कवि का लोकांतर स्थित आत्मा को नरक कष्ट देना है।

इस रत्नावली की दुर्दशा को दो चार उदाहरण यहां दिखलाए जाते हैं। यथा 'तब यह प्रसंग हुआ कि यौगंधरायण प्रसन्न होकर रंगभूमि में आया और बोला: और गान कर कहता है कि अए मदनिक। अब कहिए यह राम कहानी है कि नाटक ? और आनंद सुनिए 'जो आज्ञा रानी जी की ऐसा कर वैसा ही करती है, हा हा हा !!! एक आनंद और सुनिए। नाटकों में कहीं कहीं आता है 'नाट्येनोपविश्य' अर्थात् पात्र बैठने का नाट्य करता है। उसका अनुवाद हुआ है। राजा नाचना हुआ बैइता है। 'नाट्येनोल्लिख्य' की दुर्दशा हुई है ऐसे नाचते हुए लिखती है। ऐसे ही लेखनी को लेकर नाचती हुई निकट बैठकार नाचती हुई। और आनंद सुनिए। 'इति विष्कम्भकः' का अनुवाद हुआ है पीछे विष्कम्भक आया।' अन्य अनुवादकत्रा और अन्य गवर्नमेंट जिसने पढ़ने वालों की बुद्धि का सत्यानाश करने को अनेक द्रव्य का श्राद्ध करके इसको छाया !!! "[5]

गवर्नमेंट की तो कृपादृष्टि चाहिए योग्यायोग्य के विचार की आवश्यकता नहीं। फालेन साह की डिक्शनरी के हेतु आधे लाख रूपये से विशेष व्यय किया गया तो यह कौन बड़ी बात है। ..... भारतेन्दु के उपयुक्त निर्भीक तथा सजग वक्तव्य से उनके सजग, अनुवादक रूप पर प्रकाश तो पड़ता ही है, शासन द्वारा कराए जाने वाले इस प्रकार के कार्यो के सम्बन्ध में चेतावनी भी स्पष्ट है - भले ही शासन विदेशी हो अथवा स्वाधीन देश का अपना।

भारतेन्दु ने पारसी थियेटरों की कुत्सित प्रवृत्ति को अवरूद्ध करने के लिए प्रतिक्रिया स्वरूप स्वस्थ तथा साहित्यिक नाटक लिखना प्रारंभ किया। भारतेन्दु समान भाव से संस्कृत और अंग्रेजी के ज्ञाता थे और संस्कृत की नाट्य रचना का वाह्य आकार लेकर असमें पाश्चात्य नाट्य आदर्शों का समावेश करके प्राचीन संस्कृत पटिपाटी को तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तन करके उसे युगानुकूल बनाया।

हिन्दी साहित्य को संपन्न और अपनी नाट्यकला को सुस्थिर करने के उद्देश्य से भारतेन्दु ने विभिन्न भाषाओं से नाटकों का अनुवाद करने लगे। संस्कृत, बांग्ला, प्राकृत और अंग्रेजी से विख्यात नाटकों का उन्होंने हिन्दी में अनुवाद किया।

भारतेन्दु के अनूदित नाटक हैं - विद्यासुंदर, रत्नावली नाटिका, पाखंड विडंबन, भारत जननी, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस, कर्पूरमंजरी और दुर्लभ बंधु। भारतेन्दु के अनूदित नाटकों के बारे में विद्वानों में मतभेद है। श्री गोपीनाथ तिवारी के अनुसार भारतेन्दु द्वारा अनूदित नाटकों की संख्या दस है - 'प्रवास', 'रत्नावली', 'पाखंड विडंबन', 'धनंजय विजय', 'मुद्राराक्षस', 'कर्पूरमंजरी', 'दुर्लभबंधु', 'भारत जननी', 'विद्यासुंदर', और सत्य हरिश्चन्द्र'। श्री गोपीनाथ तिवारी के उपर्युक्त मन्तव्य से कई विद्वान सहमत नही है। डा० वीरेन्द्र कुमार शुक्ल 'भारत जननी' को मौलिक नाटक मानते हैं लेकिन 'सत्य हरिश्चन्द्र' को रूपान्तरित मानते हैं। लेकिन नये शोधों से स्पष्ट हो गया है कि 'भारत जननी' अनूदित कृति है, 'सत्य हरिश्चन्द्र को अधिकांश विद्वान मौलिक ही मानने के पक्ष में हैं। उन विद्वानों के अनुसार भारतेन्दु के अनूदित नाटक आठ हैं - 'विद्यासुंदर', 'रत्नावली नाटिका', 'पाखंड विडंबन', 'धनंजय विजय', 'मुद्राराक्षस', कर्पूरमंजरी', 'भारत जननी' और 'दुर्लभबंधु'।

भारतेन्दु ने जिस समय नाटक लिखना प्रारंभ किया उस समय हिन्दी में मौलिक अथवा अनूदित नाटकों का पूर्ण अभाव था। अतएव भारतेन्दु ने स्वाभाविक रूप से संस्कृत, अंग्रेजी तथा बांग्ला का आश्रय लिया। उन्होंने अनुवाद कार्य से इस अभाव को मिटाना चाहा। किन्तु अंग्रेजी और संस्कृत के नाटकों के अनुवाद में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी नाटक का आदर्श प्राप्त नही हुआ। इसे भारतेन्दु ने बांग्ला नाटकों से प्राप्त किया। क्योंकि सन् 1852 ई० से लेकर सन् 1868 ई० तक बांग्ला ने संस्कृत और अंग्रेजी नाट्य शैलियों के समन्वय पर आधारित एक सर्वथा नवीन नाट्य शैली का निर्माण कर लिया था।"[6]

भारतेन्दु ने जिन बांग्ला नाटकों का हिन्दी अनुवाद किया, ने अनुवाद मात्र न होकर युग की विभिन्न धाराओं के प्रवर्तक बने। इनका प्रभाव उनके अपने नाटकों पर ही नही युग पर भी पड़ा।

भारतेन्दु ने बांग्ला से यतीन्द्रमोहन ठाकुर कृत 'विद्यासुंदर' नामक नाटक का अनुवाद किया। इसके अनुवाद करते समय उन्होंने जिस अनुवाद तकनीक का प्रयोग किया उसे उन्होंने छाया अनुवाद माना। उन्हीं के शब्दों में "महाराज यतीन्द्र मोहन ठाकुर ने उसी काव्य का अवलंबन करके जो विद्यासुंदर नाटक बनाया था, उसी की छाया लेकर आज पंद्रह बरस हुए यह हिन्दी भाषा में निर्मित हुआ है।"[7]

भारतेन्दु का विद्यासुंदर हिन्दी नाटक साहित्य के आविर्भाव में नई दिशा का प्रवर्तन करता है। उसकी कथावस्तु का आधार प्रचलित प्रेमगाथा होते हुए

भी नाट्यकला की दृष्टि से वह पर्याप्त सफल एवं सरस रचना है। 'विद्यासुंदर' से हिन्दी में प्रेमप्रधान नाटकों का सूत्रपात हुआ। फिर भी इसकी मौलिकता के बारे विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है।

आचार्य शुक्ल, मिश्र बंधु, श्यामसुंदर दास, दिनेशनारायण उपाध्याय, डा. जयनाथ नलिन तथा डा. रामरतन भटनागर इसे यतीन्द्र मोहन ठाकुर के इसी नाम के नाटक का अनुवाद मानते हैं। डा. दशरथ ओझा, गुलाबराय, हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा कुंवर चंद्रप्रकाश सिंह इसे छायानुवाद कहते हैं। डा. लक्ष्मीसागर वष्र्णेय वैसे तो इसे अनुवाद समझते हैं। परंतु उनके विचार से "भारतेन्दु के अनूदित नाटक शब्दशः अनुवाद न होकर रूपांतर अधिक है।"[8]

इस नाटक को शब्द अनुवाद करने क बजाय भारतेन्दु ने इसे छायानुवाद करते हुए इसे हिन्दी भाषा परिवेश के अनुकुल की तरह मूल के परिवेश एवं संस्कृति को व्यक्त करने की। यहाँ भारतेन्दु की दृष्टि रचना को अपने साहित्य का अंग बना लेने की है। दरअसल भारतेन्दु हिन्दी साहित्य में नाटकों की अभाव की पूर्ति करना चाहते थे।

भारतेन्दु का यह नाट्य प्रयास 'सिंहासन बत्तीसी' और 'बैताल पच्चीसी' शैली की कथावस्तु पर आधारित है। भारतेन्दु की प्रारंभिक नाट्यकृति होने से इसका कथानक अस्वाभाविक प्रसंगों से समाविष्ट है फिर भी वह मनोरंजक है। डा. दशरथ ओझा ने इस नाटक के "चिरंजीवि।"[9] बताया है।

भारत जननी भारतेन्दु की मौलिक कृति है या नहीं इस पर मतभेद है। बा. राधाकृष्णदास एवं बा. ब्रजरत्नादासजी ने इसे भारतेन्दुजी की कृति माना है। बा. ब्रजरत्नदास का मत है "कहा जाता है एक उनकी एक मित्र की लिखी है पर वह इतनी भ्रष्ट थी कि भारतेन्दुजी ने उसका पूरा संषोधन कर तथा अपनी कविता मिला कर इसे प्रकाषित कराया था। मित्रजी की इसी कारण अपना नाम इसके मुख्यपृष्ठ पर देने या दिलाने का साहस नहीं पड़ा।"[10] डा0 वीरेन्द्रकुमार षुक्ल ने भी इसे भारतेन्दुजी की मौलिक कृति माना है। उनका कथन है " 'भारत जननी' बंगला के नाटक 'भारत माता' के आधार पर लिखी गई एक मौलिक रचना है, अन्य किसी का इसमें कोई हाथ नहीं है।"11 बाबू राधाकृष्णदासजी का कथन था कि भारतेन्दुजी ने इतना संषोधित किया कि इसका मूल रूप ही परिवर्तित हो गया। अतः यह भारतेन्दुजी की कृति मानी जानी चाहिए। स्वयं भारतेन्दुजी की स्वीकार किया है कि यह मेरी रचना नहीं है, मैंने संषोधन मात्र किया है। भारतेन्दुजी ने जब भारत जननी को कवि-वचन-सुधा (26.11.1878) में पुनः मुद्रित किया तो इसके विषय में लिखा था 'भारत जननी' रूपक जो गत नवम्बर से छपता है उसके ऊपर मेरा नाम लिख है। यह रूपक मेरा बनाया नहीं है। बंगभाषा में 'भारत माता' नामक जो एक रूपक है। यह उसी का अनुवाद है जो मेरे एक मित्र ने किया है। जिन्होंने अपना नाम प्रकाषित करने को मना किया है। मैंने उसको षोधा है और जो अंष कुछ भी अयोग्य था उसको बदल दिया है। कवि की कीर्ति का लोप नहीं करना, अतएव यह प्रकाष करना मुझ पर आवष्यक हुआ। यह सन् 1877 ई. के दिसम्बर की चन्द्रिका में छपा था उससे 'कवि-वचन-सुधा' में पुनः मुद्रित होता है।"[12]

इससे स्पष्ट है कि कुछ लोगों ने इस नाटक को भारतेन्दुजी-कृत कहना प्रारम्भ कर दिया था। अतः भारतेन्दुजी को यह घोषणा करनी पड़ी कि यह मेरे मित्र की अनूदित कृति है जिसे मैंने संषोधन किया है। साथ ही वे कहते है। कि मेरे मित्र की कृति को मेरे नाम से मत गिनिये क्योंकि इससे मेरे मित्र की कीर्ति का लोप होता है। भारतेन्दुजी की इसी स्वीकारोक्ति के आधार पर डा. शिव नंदनसहाय ने इसे भारतेन्दुजी की नाटक-सूची में सम्मिलित नहीं किया है।

सत्य हरिश्चंद्र की पौराणिक गाथा हमारे देष में प्राचीन काल से प्रसिद्ध रही है। महाभारत में यह विस्तार से कही गई है। 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के प्रकाशन से भारतेन्दु को बहुत ख्याति मिली करूणा-आप्लावित कथा के अतिरिक्त पात्रों का विश्लेषण तरल एवं मर्मस्पर्शी है। इसका सृजन भारतेन्दु ने सन् 1875 ई. में किया। यह आर्य क्षेमीश्वर के चण्ड कौशिक' का अनुवाद कहा जाता है, पर इसकी मौलिकता का प्रश्न आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उठाया 'सत्य हरिश्चन्द्र' मौलिक समझा जाता है, पर हमने एक पुराना बंगला नाटक देखा है जिसका वह अनुवाद कहा जा सकता है13 विद्वानों में इस निष्कर्ष के बारे में पर्याप्त मतभेद है। बाबू गुलाबराय उसे मौलिक नाटक समझते हैं जिसमें 'चण्ड कौशिक की 'क्षीण छाया' प्रकट हुई है। मिश्रबन्धु, ब्रजरत्नदास, डा. लक्ष्मीसागर वाष्र्णेय तथा डा. भानुदेव शुक्ल की भी यह धारणा है।

हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा. सोमनाथ गुप्त, श्रीकृष्णदास के विचार से न तो यह अनुवाद मात्र है और न मौलिक रचना है। परन्तु कुँवर चन्द्रप्रकाश की दृष्टि से यह रचना मौलिक है।

वस्तुतः उक्त सब विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारतेन्दु की प्रतिभा एवं क्षमता असाधारण थी और उन पर 'चण्ड कौशिक' का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा निश्चय ही ऐसी दृष्टि में शुक्ल के प्रश्न का समाधान नहीं होता। वस्तुतः इस ओर विद्वानों ने यथेष्ट ध्यान नहीं दिया। संभवतः इसी भावना से प्रेरित होकर डा. दशरथ ओझा ने शुक्ल के प्रश्न को नया रूप दिया है। उनकी दृष्टि से 'सत्य-हरिश्चन्द्र' के निर्माण से भारतेन्दु को इतना गौरव एवं प्रसिद्धि मिली कि इसका प्रचार एवं प्रसार अन्य प्रादेशिक भाषाओं में हो गया। प्रभावस्वरूप इसके अन्य भाषाओं में रूपांतर किए

गए हैं। उस समय बंगला में मनमोहन बसु का 'हरिश्चन्द्र नाटक' अन्ना साहब किलोस्कर (मराठी) तथा रण छोड़ भाई (गुजराती) के हरिश्चन्द्र नाटक (1880 ई०) का पता लगा है। डा. ओझा का यह अनुमान तथ्यपरक कम पर कल्पनापरक अधिक है। जैसा कि उन्होंने स्वयं स्वीकार भी किया है; मनमोहन बसु के नाटक का रचनाकाल दिसम्बर, 1874 ई० है। भारतेन्दु का 'सत्यहरिश्चन्द्र' 1875 ई में निकला। ऐसी स्थिति में बसु के नाटक पर प्रभाव की गुंजाइश दिखाई नहीं देती। वैसे भी दोनों नाटकों के सामान्य पर्यवेक्षण एवं विश्लेषण से स्पष्ट हो जाएगा कि उनमें कोई उल्लेखनीय समता नहीं है। दोनों के पात्र, घटनाक्रम तथा मूल उद्देश्य में भिन्नता मिलती है। भारतेन्दु के 'सत्य हरिश्चन्द्र' का मूलस्वर है -पौराणिक कथावस्तु में सजीवता लाना। बसु के लिए पौराणिक कथा निर्मित मात्र है। उनका नाटक भाव प्रधान है। कमला जैसे भावपूर्ण पात्र का परिचय भारतेन्दु में नहीं मिलता। राजा हरिश्चन्द्र एवं शैव्या के अतिरिक्त दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि बसु नाटक में बंगला-स्वभाव की कोमलता एवं सुकुमारता उभरी है। भारतेन्दु के नाटक के वातावरण में वैसी भावप्रवणता नहीं है। इसके अतिरिक्त दोनों नाटककारों के वि ितव एवं साहित्यिक दृष्टिकोण में अंतर है। मनमोहन बसु प्रमुख रूप से पौराणिक नाटकों में रूचि रखते हैं उन्होंने ब्रह्म समाज के सुधारों पर कटाक्ष किया उनका लक्ष्य यात्रा एवं पाँचाली लोक-नाट्य प्रणालियों को साहित्यिक रूप देना रहा है। इसीलिए उनमें गीतों की प्रधानता है। भारतेन्दु ने पौराणिक नाटक अवश्य लिखे हैं परन्तु उनमें सामाजिक चेतना अधिक है उनमें सर्वत्र नवीन उत्थान एवं अभ्युदय के लिए आग्रह है ऐसी स्थिति में बसु के हरिश्चन्द्र नाटक से बहुत कुछ साम्य दिखाई देना निराधार लगता है। इसी प्रकार मराठी एवं गुजराती नाटक पर प्रभाव की संभावना का अनुमान लगाया जा सकता है।

आचार्य शुक्ल के कथन में कोई भूल नहीं थी। उन्होंने काशीनाथ भट्टाचार्य के 'कुपित कौशिक' के अध्ययन के बाद अपना मन्तव्य प्रकट किया होगा जिसमें अंतिम दो अंक 'सत्य हरिश्चन्द्र' से पर्याप्त मेल खाते हैं। परन्तु उसका रचनाकाल 1878 ई. है। स्पष्ट है, भारतेन्दु पर उसके प्रभाव की कोई गुंजायश नहीं। यह भी संभव नहीं है कि काशीनाथ भट्टाचार्य ने भारतेन्दु का अनुकरण किया हो क्योंकि दोनों के उद्देश्य तथा शैली में अंतर है। उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतेन्दु का 'सत्य हरिश्चन्द्र' किसी बंगला नाटक का अनुवाद या भावानुवाद नहीं है। अतः इसे भारतेन्दु का मौलिक नाटक मानना ही उचित है। परन्तु जैसा कि प्रायः विद्वान स्वीकार करते हैं उसे आर्य क्षेमीश्वर के चंडकौशिक से प्रभावति माना जा सकता है।

हिन्दी साहित्यकार का साहित्यिक आदर्श संस्कृत साहित्य का था। भारतेन्दु भी इससे अलग नहीं रह सके। सुन्दर नाट्य रचना कर आदर्श पेश करने के लिए उन्होंने संस्कृत के नाटकों का भी अनुवाद किया। संस्कृत से भारतेन्दु ने रत्नावली नाटिका, पाखंड विडंबन, धनंजय विजय, मुद्राराक्षस आदि नाटकों का अनुवाद किया।

भारतेन्दु ने विद्यासुंदर के बाद श्री हर्ष रचित 'रत्नावली' का अनुवाद सन् 1886 ई० में किया। रत्नावली के अनुवाद के बारे में भारतेन्दु का कथन है कि "शकुंतला के सिवाय और सब नाटकों में रत्नावली नाटिका बहुत अच्छी और पढ़ने वालों को आनंद देने वाली है। इस हेतु से मैंने पहले इसी नाटिका का तर्जुमा किया है। रत्नावली के अनुवाद के संबंध में भारतेन्दु का विचार है - "इसका उल्था अगर कोई अच्छी हिन्दी जानने वाला करता तो रचना अति उत्तम होती। हिन्दी जगत के सामने शास्त्रीय दृष्टि से एक अत्यंत सफल नाटिका का उदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से ही भारतेन्दु ने संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुंतलम', जैसे नाटक को छोड़कर 'रत्नावली' नाटिका का अनुवाद किया।

'रत्नावली' एवं 'विद्यासुंदर' नाटकों के चार वर्ष पश्चात् पाखंड विडंबन की रचना हुई। यह अपूर्ण नाटक संस्कृत के प्रसिद्ध नाटक प्रबोध चंद्रोदय के तीसरे अंक का अनुवाद है। कृष्ण मिश्र द्वारा लिखित प्रस्तुत नाटक अध्यात्मिक ज्ञान और भक्ति से सम्पन्न हैं भारतेन्दु ने किस उद्देश्य से प्रबोध चंद्रोदय के तीसरे अंक का अनुवाद पाखंड विडंबन के नाम से किया है? इस नाटक के समर्पण में उन्होंने यह व्यक्त किया है - भला इससे पाखंड का विडंबन क्या होता है ? यहाँ तो तुम्हारे सिवा सभी पाखंड है क्या हिन्दु, क्या जैन ? कयोंकि मै पूछता हूँ कि बिना तुमको पाए मन की प्रवृत्ति क्यों है, तुम्हें छोड़कर मेरे जान सभी झूठे हैं, चाहे ईश्वर हो, चाहे ब्रह्म, चाहे वेद हो, चाहे इंजील। तो इससे शंका न करना कि मैंने किसी मत की निंदा के हेतु यह उल्था किया है। क्योंकि सब तुम्हारा है, इस नाते से सभी अच्छा है और तुमसे किसी से संबंध नहीं है - इस नाते सभी बुरे हैं'। भारतेन्दु के अनुसार देश में प्रचलित चार संप्रदायों में जैन, बौद्ध, शैव, और वैष्णव में केवल विष्णु भक्ति में ही सात्विक श्रद्धा और धर्म उपलब्ध था। अन्य संप्रदायों में इनके संबंध में अनेकानेक आडंबर और पाखंड फैले हुए हैं, इसका सम्यक प्रस्फुटन प्रबोध चंद्रोदय में नाटककार द्वारा किया गया है।

संस्कृत कवि कांचन के 'धनंजय वियज व्यायोग' का अनुवाद भारतेन्दु ने सन् 1873 ई० में किया। यह महाभारत को आधार बनाकर लिखा था। व्यायोग होने से इसमें स्त्री पात्र कम और पुरूष पात्र अधिक है।

राजा शिवप्रसाद सितारे के तर्ज पर भारतेन्दु ने संस्कृत के प्रसिद्ध कवि विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' का अनुवाद 1875 में किया। इस अनुवाद को भारतेन्दु के सफल अनुवादों में गिना जाता है। राजनीति के घात-

प्रतिघात से युक्त प्रस्तुत नाटक का अपूर्व नाटक है, इस नाटक का अनुवाद भारतेन्दु ने बड़े मनोयोग से किया है जिसमें मूल नाटक की सभी विशेषताएँ सुरक्षित है।

भारतेन्दु ने बांग्ला, संस्कृत, अंग्रेजी के अतिरिक्त प्राकृत से भी नाटकों का अनुवाद किया। प्राकृत से उन्होंने केवल एक ही नाटक का अनुवाद किया वह था कर्पूरमंजरी। इसके मूल लेखक राजशेखर हैं उन्होंने लोक को ध्यान में रखकर ही इस नाटक का सृजन किया। दसवीं शताब्दी में अपभ्रंश भाषाओं का प्रचार बढ़ गया लोगों को संस्कृत समझाने में कठिनाई उपस्थित हुई। इससे सर्वजन को ध्यान में रखकर संस्कृत के विद्वान होते हुए भी उन्होंने शौरसेनी प्राकृत में इस सट्टक की रचना की। सर्वसुलभ भाषा होने के कारण कर्पूरमंजरी बड़ी लोकप्रिय सिद्ध हुई। भारतेन्दु ने इस नाटक के अनुवाद करके हिन्दी नाट्य साहित्य में सट्टक के अभाव की पूर्ति की।

भारतेन्दु हिन्दी प्रदेश में नए नाट्य प्रयोग करने के लिए उत्सुक थे। इस उद्देश्य से उन्होंने विदेशी नाट्य प्रयोगों का अध्ययन करके हिन्दी प्रदेश में दिखाया। बंगला से बड़ी सहायता मिलने पर भी अतृप्त भारतेन्दु अंग्रेजी नाट्य विधा पर मुग्ध थे। पाश्चात्य नाट्य विधा को यहाँ प्रदर्शित करने के उद्देश्य से उन्होंने सुप्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकार विलियम शेक्सपिअर के नाटक मर्चेंट आफ वेनिस का अनुवाद किया। भारतेन्दु इसका अनुवाद 'दुर्लभ बन्धु' नाम से किया। इसके संबंध में श्री ब्रजरत्नदास का कथन है - ''इसका प्रथम दृश्य ज्येष्ठ शुक्ल सं. 1937 की हरिश्चंद्र चंद्रिका और मोहन चंद्रिका में प्रकाशित हुआ। वहाँ लिखा हुआ है कि निज बंधु बालेश्वर प्रसाद की सहायता से और बांग्ला पुस्तक 'सुरलता की छाया' से हरिश्चंद्र ने लिखा है। यह आवश्य अपूर्ण रह गया था, जिसे पं. रामशंकर व्यास तथा राधाकृष्ण दास ने पूर्ण कर प्रकाशित कराया था। यह कथन कि यह अनुवाद बा. बालेश्वर प्रसाद कृत है, भ्रममात्र है, क्योंकि उक्त सज्जन ने जो फारसी के अच्छे ज्ञाता थे, इसका अनुवाद 'वेनिस का सौदागर' के नाम से किया था।''[14] इससे स्पष्ट है कि इस नाटक का अनुवाद स्वयं भारतेन्दु ने किया है। केवल इसके अपूर्ण अंश का अनुवाद रामशंकर व्यास और राधाकृष्ण दास दोनों ने किया था। भारतेन्दु ने प्रस्तुत अनुवाद भारतीय परिवेश के अनुकूल भारतीयकरण किया है। पात्रों को भारतीय नाम दिया। इसी प्रकार घटना स्थल का भी परिवर्तन करके भारतीय नामकरण दिया गया है। इसे पढ़कर लगता है मानों किसी भारतीय नाटककार ने इसे लिखा है। यह अनुवाद आज के छायानुवाद या भावानुवाद के करीब जान पड़ता है। अतः भारतेन्दु का उद्देश्य अनुवाद के माध्यम से श्रेष्ठ साहित्य को हिन्दी साहित्य को समृद्ध करना था। साथ ही इसे भारतीय परिवेश के अनुरूप ढाल कर इसे हिन्दी भाषी जनता के लिए बोधगम्य भी बना रहे थे।

साहित्य की सभी विधाओं में नाटक के सर्वाधिक सामाजिक स्वरूप होने के कारण नवजागरण की सामाजिक स्वरूप होने के कारण नवजागरण की सामाकि चेतना को पुष्ट करने में यह विधा सर्वाधिक साहयक हो सकती थी। इसलिए भारतेन्दु ने नवजागरण बोध को जन-जन तक पहुँचानें के लिए नाटाकें पर विशेष जोर दिया। इसी क्रम में उन्होंने संस्कृत बांग्ला और अंग्रेजी के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद किया। भारतेन्दु के अनुवाद सिद्धांत पाठ केन्द्रित न होकर भाव केन्द्रित है। इसलिए कई अनूदित कृतियां तो उनकी मौलिक प्रतिभा का स्पर्श पाकर मूल से भी अधिक प्रसांगिक हो गयी हैं। कई नाटक इतना परिवर्तर्तित हो गए है कि उसे मौलिक कहा जाए या अनुवाद इसे लेकर बड़ा विवद खड़ा हो गया है। भारत जननी, सत्य हरिश्चन्द्र, विद्यासुन्दर ऐसे ही नाटक है। दरअसल भारतेन्दु का उद्देश्य कोई अनवाद सिद्धान्त गढना नहीं था। 'निज भाषा उन्नती', हिन्दी नाटक एवं रंगमंच का विकास और हिन्दी भाषी लोगों में देश उद्धार एवं नवजागरण की अलख जगाने की विराट लक्ष्य को लकर बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी के सर्वश्रेष्ठ एवं समकालीन संदर्भों में प्रसंगिक नाटकों का अनुवाद किया है। इन अनूदित नाटकों ने हिन्दी के विाकस में क्रांतिकारी भूमिका अदा की। इससे एक तरफ दूसरे भाषाओं के श्रेष्ठ नाटकों का अनुवाद हिन्दी में हुआ दूसरी तरफ हिन्दी नाटकों से मौलिक लेखन की शुरूआत हुई।

संदर्भ संकेत:-

1.भारतेन्दु हरिश्चन्द्र - डा. रमेश गुप्त, 'अनुवाद' अक्टूबर - दिसंबर - 1984, पृ०-45
2.भारतेन्दु ग्रंथावली - सं. डा. ओमप्रकाश सिंह, भाग - 02, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृ० – 45
3.वही, पृ० - 45
4.वही, पृ० - 46
5.वही, भाग-1 पृ० - 10
6.डा. माहेश्वर - हिन्दी बांग्ला नाटक, राजकमल, दिल्ली, 1986, पृ० - 94
7. भारतेन्दु ग्रंथावली - सं. डा. ओमप्रकाश सिंह, भाग - 02, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृ० - 06 (विद्यासुंदर की भूमिका)
8.भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -डा. लक्ष्मीसागर वर्षोय, लोकभारती, इलाहाबाद, 1968, पृ० - 72
9.हिन्दी नाटक उद्धव और विकास - डा. दशरथ ओझा, आगरा 1997, पृ० - 203
10.हिन्दी नाट्य-साहित्य-च.सं., पृ0 81
11.भारतेन्दु का नाट्य-साहित्य, प्र.स. पृ0 74
12.हरिश्चंद्र-शिवनन्दन सहाय-प्र.सं., पृ0 208
13.आचार्य रामचन्द्र शुक्ल -'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० 461
14.वही, पृ. -222
15.भारतेन्दु ग्रंथावली -सं. डा.ओमप्रकाश सिंह, वही, 'रत्नावली की भूमिका'पृ० - 43
16.डा. दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक उद्धव और विकास, वही, पृ० – 150

*****

शुक्लयजुर्वेद में वर्णित चातुर्मास्य यज्ञ मीमांसा

-हंसराज
शोधार्थी
एमिटी विश्वविद्यालय नोएडा
मो. 8810533783
ईमेल – hansrajr18@gmail.com

– डा. देवेन्द्र नाथ ओझा
शोधनिर्देशक
सहायक प्रोफेसर,
एमिटी विश्वविद्यालय नोएडा

संक्षेपिका

यहां पर शुक्लयजुर्वेद में वर्णित चातुर्मास्य यज्ञ मीमांसा के विषय में बताया गया है यह यज्ञ श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक इन चार मासों में सम्पन्न किया जाता है। इन मासों में क्रमशः वैश्वदेव यज्ञ, वरूणप्रघास, साकमेध, शूनासीरीय अनष्ठानों को पूर्ण किया जाता है, इनका यहां पर विस्तृत वर्णन किया गया है। इनमें यज्ञ का पूर्ण फल तभी प्राप्त होता है, जब उसमें प्रयुक्त द्रव्य शुद्ध हो, यज्ञ क्रिया शुद्ध हो और प्रयुक्त मन्त्र शुद्ध रूप से पढे गए हों। यदि अन्याय से उपार्जित धन द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है, तो उसका फल न तो इस लोक में प्राप्त होता है और न ही परलोक में, अपितु इस लोक में अपयश ही मिलता है।

बीज शब्द – शुक्लयजुर्वेद, चतुर्मास, यज्ञ, चातुर्मास्य यज्ञ ।

परिचय

'यज्ञ' शब्द देवपूजा, संगतिकरण, और दान अर्थवाली यज्ञ धातु में नङ् प्रत्यय से बना है।[1] जिस कर्म में देवपूजा, यजमान का देवताओं से सान्निध्य तथा दान हो, उसे यज्ञ कहते है। दान का अर्थ प्रक्षेप है और वह विधिविहित आधार में ही होता है।[2] यदि 'दान' शब्द से विधिविहित अग्नि में हविष्य के प्रक्षेप को न ग्रहण किया जाये, तो वह यज्ञ नही होगा। तात्पर्य यह है कि हविष्य का प्रक्षेप अग्नि में न करके अन्यत्र करना यज्ञ नही है, क्योंकि हविष्य के प्रक्षेप के वैध आधार की उपलब्धि अन्यत्र नही है। यदि ऐसा मान भी लिया जाये, तो तिल और यव आदि को कूडे में डाल देना भी दान होकर यज्ञ का अभिव्यंजक होगा, परन्तु ऐसा नही है। सामान्य रूप से यज्ञ का अर्थ होता है-जहॉ हविष्य प्रदान किया जाय या जहां देवताओं का यजन किया जाए[3]।

यज्ञ का पूर्ण फल तभी प्राप्त होता है, जब उसमें प्रयुक्त द्रव्य शुद्ध हो, यज्ञ क्रिया शुद्ध हो और प्रयुक्त मन्त्र शुद्ध रूप से पढे गए हों। यदि अन्याय से उपार्जित धन द्वारा यज्ञ का अनुष्ठान किया जाता है, तो उसका फल न तो इस लोक में प्राप्त होता है और न ही परलोक में, अपितु इस लोक में अपयश ही मिलता है। न्यायोपार्जित धन से यज्ञानुष्ठान करने पर यश और पारलौकिक सुख की प्राप्ति होती है।

चातुर्मास -

चातुर्मास यज्ञ जैसा कि नाम से हि ज्ञात होता है कि इसे चातुर्मास यज्ञ में चार मास तक चलने वाले यज्ञ एवं चार पर्वो का विधान है।[4] प्रति चार मास में अनुष्ठेय होने के कारण 'पर्वों' वाला यज्ञ है। जो माह निम्नलिखित है -

1. श्रावण।
2. भाद्रपद।
3. अश्विन।
4. कार्तिक।

पर्वों का वर्णन-

उपरोक्त चार मासों को हि चार पर्वों में विभक्त किया गया है[5]। इन पर्वों का क्रमशः फाल्गुनि पुर्णिमा, आषाढी पूर्णिमा, कार्तिकी पूर्णिमा तथा फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा को अनुष्ठान किया जाता था। यथा-

1. वैश्वदेव यज्ञ।
2. वरूणप्रघास।
3. साकमेध।
4. शूनासीरीय।

यज्ञ विधि -

इस यज्ञ में दो वेदियां होती है तथा दो ही अग्नियां। इस यज्ञ में दो अग्नि और दो वेदियॉ किस लिए हो इसके प्रति उत्तर में कहा जाता है कि वह दोनों और से प्रजा को वरूण के जाल से मुक्त कर देता है, दोनों ओर का तात्पर्य यहॉ उपर और नीचे से है।[6] उत्तर दिशा में उत्तर की वेदी बनाई जाती है, न की दक्षिण की दिशा में। जो जिस दिशा में होती है उसी दिशा में उस

वेदि का निर्माण होता है। वरूण क्षत्रिय है, और मरूत वैश्य है। इस यज्ञ में क्षत्रियों को वैश्यों से उच्च स्थान पर आसन दिया जाता है तथा सर्व साधारण उनकी पुजा किया करते हैं। क्योंकि क्षत्रिय वैश्य से उच्च वर्ण वाले स्वीकार किए जाते है। यही कारण हैं कि उत्तर दिशा में वेदि बनाते हैं न कि दक्षिण दिशा में। [7]

यज्ञ में सर्वप्रथम पांच हवियॉ होती है। क्योंकि इन पॉच हवियों के द्वारा ही प्रजापति ने प्रजाएं उत्पन्न कीं और इन्हीं के द्वारा प्रजाओं को दोनों और से वरूण के जाल से बचाया जा सके, यही कारण है कि पांच हवियॉ होती हैं।[8] इन्द्राग्नि के लिए पांच कपालों में पुरोडाश दिया जाता है। इन्द्राग्नि वस्तुत प्राण और उदान के समान हैं। यह एक प्रकार से उसके लिए पुण्य करना हैं जिस प्राणी ने पुण्य किया है। क्योंकि इन दोनों के कारण ही आज प्रजा जीवित है। इसीलिए वह इन पुरोडाशों के द्वारा प्रजा को सम्पन्न करता हैं। अतः प्रजाओं में प्राण और उदान को स्थापित करता हैं। इसलिए बारह कपालों का पुरोडाश इन्द्र और अग्नि के लिए हैं। दोनों के लिए पयस्या की आहुति होती है। क्योंकि दुग्ध से ही प्रजा जीवित हैं, इसलिए उस वस्तु के द्वारा जिससे वह बचे रहें और जिससे वह पलते एवं पोषित होते हैं। वह पयस्या उनको उपर और नीचे दोनों ओर से उनकी रक्षा करता हैं। इसी कारण से दोनों के लिए पयस्या की आहुति होती हैं।

ब्रह्मणों के अनुसार उत्तर की हवि वरूण के लिए होती हैं। क्योंकि वरूण ने ही तो उसकी प्रजा को पकडा था। इसलिए वह प्रत्यक्ष ही वरूण के जाल से प्रजा को छुडाता हैं। दक्षिण की हवि मरूतों के लिए होती हैं। एक जैसी हवि न हो इसके अलग दिशा का वर्णन है। यदि दोनों आहुतियॉ वरूण के लिए होती तो एक सा हो जाता। दक्षिण दिशा से ही मरूतों ने प्रजा को मारना चाहा था, और उसी भाग से प्रजापति उनको शांति प्रदान की। इसलिए वह प्रजाओं को उसी से सुख पहुंचाता हैं। उनके उपर वह शमी के पत्ते भी डालता हैं। प्रजापति ने सभी प्रजाओं को शमी के वृक्षों से ही शान्त किया था।[9]

एक कपाल पुरोडाश प्रजापति के लिए दिया जाता हैं। क्योंकि 'क' का अर्थ होता हैं प्रजापति। यज्ञ के प्रथम दिन अन्वाहार्य पचन अर्थात् दक्षिणाग्नि पर जौं की भूसी निकाल कर और उनको कुछ पकाकर करम्भ के इतने पात्र बनातें हैं। जितने कि घर के सदस्य हो तथा उनसे एक अधिक होना चाहिए। करम्भ पात्र का निर्माण जौ को दहि के साथ मिलाकर बनता हैं।[10]

यज्ञ में मेष और मेषी बनाने का भी विधान हैं क्योंकि मेष प्रत्यक्ष रूप से वरूण का पशु माना जाता हैं। मेष और मेषी का निर्माण जौं के द्वारा होता है। इनको जौं का इसलिए बनाते हैं क्योंकि जब इन्होने जौं को खाया तभी तो वरूण ने इनको अधिगृहित किया था। इन दोनों का जोडा इस लिए बनाते हैं क्योंकि जोड़े से प्रजा वरूण के पाश से मुक्त हो पाती हैं। उत्तरी पयस्या पर मेषी को तथा दक्षिण पयस्या पर मेष को रखा जाता हैं। [11]

शुक्लयजुर्वेद के अनुसार अध्वर्यु अन्य सब हवियों को उत्तर की वेदी में स्थापित करता हैं, और प्रतिस्थाता दक्षिण की वेदी में पयस्या को स्थापित करता हैं। हवियों को रखकर अग्नि का मंथन करता हैं। अग्नि को मथकर और वेदी पर लाकर आहुति देता हैं। पहले अध्वर्यु होता से कहता है कि 'अग्नये समिध्यमानाम्' तब अध्वर्यु और प्रस्थाता एक-एक समिधा को स्थापित करते हैं। इसके पश्चात् दोनों आहुति प्रदान करते हैं। तब प्रस्थाता अपनी सहवासिनी से कहलवाता हैं कि प्रघास और कम्भ नामी हवियों को अधिक खाने वाले और इन शत्रुऔं का नाश करने वाले मरूतो को हम बुलाते हैं। इससे वह मरूतों को पात्रों तक बुलाते हैं।[12] प्रत्येक के लिए एक पात्र का विधान हैं। जितने घर के सदस्य होते हैं उनसे एक अधिक पात्र होने चाहिए। एक-एक पुरूष के लिए एक-एक पात्र इसलिए होता हैं जो प्रजा उत्पन्न हो चुकि हैं वह सम्पुर्ण प्रजा वरूण के जाल से बच सकें और जो एक अधिक पात्र का विधान है वह इसलिए है कि जो प्रजा भविष्य में उत्पन्न होगी उसे वरूण के जाल से बचाया जा सके। इसीलिए एक पात्र अधिक होता हैं। पात्र का विधान इसलिए हैं क्योंकि पात्रों में ही सभी भोजन को ग्रहण करतें हैं, और ये पात्र जौं के इसलिए बनाए जाते हैं क्योंकि जब प्रजा ने वरूण के यवों को खाया तभी वरूण ने उन्हे अधिगृहित किया था। इस यज्ञ में शूर्प से आहुति दि जाती हैं क्योंकि शूर्प के द्वारा ही अन्न को पकाया जाता हैं। इस यज्ञ में पति के साथ ही पत्नी को भी आहुति देनी चाहिये क्योंकि दोनों के सामुहिक अर्पण से ही प्रजा को वरूण के पाश से मुक्त कराया जा सकता हैं।[13] इस पर शुक्लयजुर्वेद में कहा है कि यज्ञ से पूर्व आहुतियो को इसलिए अर्पण किया जाता हैं क्योंकि मरूत आहुति का भक्षण नही करतें हैं। जब प्रजापति की प्रजा को वरूण ने पकड लिया और वह रोगी हो हई तब मरूतों ने ही सारी प्रजा की रक्षा कि थी। इसी लिये कहा जाता हैं कि इस यज्ञ में यजमान की सन्तान को पापों से मरूत ही बचाते हैं। अतः एव यज्ञ से पहले इन्हें ही आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं। तब वह यह कह कर आहुति पदान करता हैं कि जो पाप मैने गॉव और अरण्य अर्थात् जंगल में किये उन सब के लिए यह आहुति प्रदान करता हुं।[14] पुनः शुक्लयजुर्वेद में कहा है कि जो पाप सभा में किए और जो पाप इद्रियों में उनके लिए।[15] यहॉ सभा का अर्थ मनुष्यों के समुह से हैं। इस सब का तात्पर्य यह हैं कि जो भी पाप हमने किए

उन सबके लिए यज्ञ करतें हैं। अब अध्वर्यु कहता हैं कि 'अग्नये अनुब्रुहि' अग्नि के लिए पार्थना कर। यह अग्नि की और संकेत करते हुए कहता हैं। फिर 'सोमाय अनुब्रुहि' कहता हैं कि अब सोम के लिए पार्थना कर। तब 'श्रोषट्' अध्वर्यु होता से कहता हुआ 'सोमं यजः' इस प्रकार से कहता है। तब दोनों 'वषट्' कहकर आहुतियॉ प्रदान करतें हैं।[16] वाणी से जो कुछ कहा जाता है उस सब को अध्वर्यु ही कहता है न की प्रतिस्थाता। प्रतिस्थाता तो केवल अध्वर्यु के किए का अनुकरण करता हैं। प्रतिप्रस्थाता दो श्रुवों को हाथ में लेकर बैठ जाता हैं। तब अध्वर्यु उन आहुतियों को करता हैं। जो निम्न प्रकार की है -

1. अग्नि की आहुति आठ कपाल वाले पुरोडाश की।

2. सोम की चरू के द्वारा।

3. सविता की बारह या आठ कपालों वाले पुरोडाश से।

4. सरस्वति कि चरू से।

5. पुषा की चरू से।

6. इन्द्राग्नि की कपालो के पुरोडाश से।

अब अध्वर्यु तीन समिष्ट-यजुष् की आहुति देता हैं। प्रतिप्रस्थाता स्रूच लेकर मौन होकर आहुति देता हैं। यजमान और पत्नी ने जो वस्त्र वैश्वदेव के समय पहने थे वह अब इस यज्ञ में भी पहननें चाहिए। अब वरूण की पयस्या के जले भाग को लेकर अवभृथ अर्थात् स्नान के स्थान में आना चाहिए। यह स्नान वरूण के लिए हैं जिसके पाश से मुक्त हो जाए। वहॉ साम नही गाया जाता क्योंकि साम से तो कुछ किया नही जाता। अध्वर्यु शान्ति से वहॉ जाकर जले भाग के पात्र को उठाकर जल में डुबों देता हैं। उस समय वह कहता हैं कि हे धीरे चलने वाले जलाशय, तु शान्त होकर चलता हैं। देवों की सहायता से ये देव-कृत पापों से मुक्त हो जाऊॅ और मनुष्यों की सहायता से मनुष्य-कृत पापों से मुक्त हो जाऊॅ। हे देव मुझे राक्षस से बचा ले। इस प्रकार की प्रार्थना करता हैं। क्योंकि यह वस्त्र दीक्षित पुरूष के तो होते नही, इनको त्यागकर जिस प्रकार शर्प केंचुली को छोडता हैं उसी प्रकार यह हमारे पापों को नष्ट करता हैं। [17]

इसके पश्चात् यजमान के केश कर्तन किए जाते हैं तथा दोनों अग्नियों को लेते है। क्योंकि स्थान परिवर्तन करके ही दुसरा यज्ञ होता हैं। उत्तर वेदी पर अग्निहोत्र करना ठीक नही होता हैं। तब घर जाकर अग्नि मथ कर यजमान पुर्णमासी का यज्ञ करता हैं। यह चातुर्मास्य यज्ञ अलग हैं पूर्णमासी का यज्ञ निश्चित है। इसलिए वह निश्चित यज्ञ द्वारा अपने आप को स्थापित कर लेता हैं। इसीलिए वह यजमान स्थान परिवर्तन करता हैं।

इस प्रकार वर्षाकाल का वरूण प्रघास पर्व का वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों एवं वेदो में हुआ हैं।

दक्षिणा -

शुक्लयजुर्वेद में यज्ञ दक्षिणा पर भी कतिपय निर्देश प्राप्त होते हैं। यजमान द्वारा सामान्य यज्ञों की दक्षिणा, उसके पास स्थित धन की सामर्थ्य के अनुसार दी जाती है। दक्षिणा केवल ऋत्विजों को ही नही किन्तु यज्ञ में उपस्थित ब्राह्मणों को भी दी जाती है।[18] जिस ऋत्विक् को दक्षिणा दी जाती है, संकल्प में उसके गोत्र, प्रवर, नाम तथा उसके द्वारा स्वाध्याय में पठनीय वेद की शाखा का उच्चारण कालनिर्देश पूर्वक करना चाहिए। [19] त्रिशीर्षा विश्वरूप के वधजन्य पाप को अपने उपर लेकर इन्द्र को ब्रह्महत्या के पातक से विमुक्त करने वाले आप्तयों द्वारा ब्रह्महत्या का पातक उस यजमान के उपर आरोपित कर दिया जाता है, जो दक्षिणा-रहित यज्ञ से यजन करता है, इसीलिए देवताओं द्वारा दर्शपौर्णमासेष्टि दक्षिणा का विधान किया गया है।[20] यह ओदन इतनी अधिक मात्रा में तैयार करना चाहिए कि चार ऋत्विजों के भोजन के लिए पर्याप्त हो।[21] यजमान बह्मा, होता, अध्वर्यु तथा आग्नीध के लिए अन्वाहार्य ओदन के चार भाग बनाता हैं और ब्रह्मा को अन्वाहार्य का ब्र्रह्मभाग देते समय यजमान उससे कहता है कि हे ब्र्रह्मन्! यह आपका भाग है, इसे आप ग्रहण किजिए।[22] होता अध्वर्यु तथा आग्नीध्र के लिए भी उनका दक्षिणाभाग प्रदान करते समय यजमान उनका सम्बोधन करके यही कहता है कि वे अपना अन्वाहार्य-भाग ग्रहण कर लें। इसके अतिरिक्त यजमान ऋत्विजों को अपनी श्रद्धा के अनुसार अन्य द्रव्यों की दक्षिणा भी प्रदान करता है।

निष्कर्ष-

अतः यह कहा जा सकता है कि चातुर्मास यज्ञ को चार-चार महीने में पूर्ण किया जाता है। यह जो कहा गया हैं कि देवों ने साकमेध यज्ञ के द्वारा वृत्र को मारा और उस विजय को पा लिया जो उनको प्राप्त हैं। यह सभी चातुर्मास्य यज्ञों के द्वारा ऐसा हुआ कि देवों ने वृत्र को मारा और जो विजय उनको प्राप्त है वह सभी के द्वारा हुई हैं। जब यह शंका उत्पन्न हुई कि किस राजा के द्वारा और किस नेता की सहायता से हम युद्ध करेंगें। तब अग्नि ने कहा, मेरी सहायता से युद्ध को सम्पन्न किया जायेंगा। अग्नि की सहायता से उन्होनें चारों महीनों को जीता। और ब्रह्म तथा तीन विद्याओं की सहायता से उनको घेरा था। आगे जब यह शंका उत्पन्न हुई अब किस राजा और किस नेता की सहायता से देव वृत्र के साथ युद्ध करेंगें। फिर इन्द्र ने कहा कि मेरे द्वारा। इन्द्र राजा और इन्द्र नेता की सहायता से उन्होनें शेष चार महीनों को जीता। पुनः उन्हें ब्रह्म और तीन विद्याओं की सहायता से उन्हें घेरा। जब यजमान

वैश्वदेवयज्ञ करता हैं तो इसी अग्नि राजा और अग्नि नेता की सहायता से चारों महीनों को जीतता हैं। जब वह यजमान वरूणप्रघास यज्ञ करता है तो वरूण राजा और वरूण नेता के द्वारा दुसरे चार मासों को जीतता हैं। तब भी त्र्येनी शलली और तांबे का क्षुरा काम में आता हैं। उसी से सिर मुंडता हैं। इस प्रकार ब्रह्म और तीन विद्याओं की सहायता से उन्हें घेरता हैं। जब साकमेध यज्ञ करता हैं तो इन्द्र राजा और इन्द्र नेता की सहायता से चारों मासों जीतता हैं। जब वह वैश्वदेव यज्ञ करता हैं तो अग्नि ही हो जाता हैं। और अग्नि के सायुज्य और सालोक्य को प्राप्त करता हैं। जब वह वरूण प्रघास यज्ञ करता हैं तो वरूण हो जाता हैं और वरूण के सायुज्य ओर सालोक्य को प्राप्त करता हैं। जब वह साकमेध यज्ञ करता है तो इन्द्र हो जाता हैं और इन्द्र के सायुज्य ओर सालोक्य को प्राप्त होता हैं। वह जिस ऋतु में परलोक को जाता हैं वह ऋतु उसको दुसरे ऋतु के हवाले करता है और वह अपने से आगे वाले ऋतु के हवाले करता है। जो चातुर्मास्य यज्ञ को करता हैं। वह परम धाम और परम गति को प्राप्त करता है। इसीलिए कहा जाता हैं कि चातुर्मास्य यज्ञ करने वाले को कोई भी प्राप्त कर पाता हैं क्योंकि वह परम धाम और परम गति को प्राप्त होता हैं।

संदर्भ

1. यज्ञदेवपूजासङ्गतिकरणदानेषु।- सिद्धान्त कौमुदी, क्रमांक 3211 यज्ञयाचयतवच्छप्रच्छरक्षोनङ्।-पा0 अष्टाध्यायी 3.3.90
2. दान चेह प्रक्षेपः। सच वैधे आधारे हविषश्चेति स्वमावाल्लम्यते। -सिद्धान्त कौमुदी क्रमांक 3306
3. पु , इज्यते हविर्दीयतेऽत्र। (इज्यते देवता अत्र इति वा)- शतपथ, काण्ड, 4, पृष्ठ 6
4. शत0 2.6.4.5.8
5. शत0 ब्रा0 2.5.1-2.6.4
6. तद्वै द्वे वेदी द्वावग्नी भवतः। शत0 ब्र0 2.5.2.5
7. स उत्तरसयामेव वेदौ ।....शत0 2.5.2.6
8. अथैता{न्येव पंच हवींषि ।.... शत0 ब्रा0 2.5.2.7
9. तयोरूभयोरेव शमीपलाशान्यावचति । शं वै प्रजापतिः प्रजाभ्यः शमीपलाशैर कुरूत शम्वेवैष एतत्प्रजाभ्यः कुरूते ॥ शत0 ब्रा0 2.5.2.12
10. अन्वाहार्य पचने{तुषानिव यवान्कृत्वा तानीष दिवोपतप्य तेषां करम्भ पात्राणि कुर्वन्ति यावन्तो गृह्याः स्मुस्तावन्त्येकेनातिरिक्तानि ॥ शत0 ब्रा0 2.5.2.14
11. स उत्तरस्यामेव पयस्यायां मेषीमदधाति । ..... शत0 ब्रा0 2.5.2.17
12. प्रघासिनो हवामहे मरूतश्च रिशादसः । कम्भेण सजोषसः ॥ -यजु0 3/444
13. पात्राणि भवन्ति पात्रेषु .....प्रमुंचति ॥ शत0 ब्रा0 2.5.2.23
14. यद्ग्रामे यदरण्ये ... ॥ यजु0 3/45
15. यत् सभायां यदिन्द्रिय......॥ यजु0 3/45
16. अथाध्वर्युरेवाह सोमायानुब्रुहीति ।शत0 ब्रा0 2.5.2.32
17. अवभृथ निचुम्पुण निचेरूरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनो{यासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरू राव्णो देव रिषस्पाहि ॥ यजु0 3/48
18. शुक्लाम्वरधरः शुक्लमाल्यानुलेपनो यजमान आचार्ययि ब्राह्मणेभ्य ऋत्विग्भ्यश्च वित्तानुसारेण दक्षिणां दद्यात् । यजुर्वेद संहिता-, पृ0 47
19. अथेहैत्यादिकालज्ञानं कृत्वा । अस्यमखस्य कर्मणः सांगतासिद्धध्यर्थममुकप्रवरायामुकशर्मणे ब्राह्मणायामुकवेदैकशाखाध्यायिने आचार्ययेमान्दक्षिणां तृभ्यमहं सम्प्रददे । यजुर्वेद संहिता-, पृ0 47
20. आप्त्या उ ह तस्मिन् मृजते-यो{दक्षिणेन हविषा यजते । ततो देवा एतां दर्शपूर्णमासयार्दक्षिणामकल्पयन्- यदन्वाहार्यम् । नेददक्षिर्ण हविरसद। शतपथ ब्रा0- 1.2.1.4-5
21. अध्वर्युः अन्वाहार्य ;दक्षिणार्थमोदनंद्ध चतुर्णाम् ऋत्विजां तृप्तिपर्यन्तभोजन समर्थ दक्षिणाग्नौ श्रपणार्थमधिश्रयेत् । का0 दी0, पृ0 23
22. इमाम् अन्वाहार्यदक्षिणां ब्रह्मादिभ्य ऋत्विग्भ्यः समविभागेनाहं संप्रददे इति संगकल्प्य बह्मन् यस्ते भागः स प्रतिगृह्यताम् अध्वर्यो, यस्ते भागः स प्रतिगृह्यताम्, अग्नीद्यस्ते भागः स प्रतिगृह्यताम् इत्येवं समर्पयेत् । का0 दी0, पृ076

*****

Green Chemistry: Sustainable Synthesis And Applications Of Renewable Resources

-Pooja S Pawar,
M.Sc in Inorganic Chemistry,
Karnatak University, Dharwad.

Abstract:

This study highlights the core principles and applications of Green Chemistry, focusing on its role in promoting sustainable synthesis and utilization of renewable resources across various industries. Green Chemistry is a pioneering discipline that aims to revolutionize the chemical industry by promoting sustainable practices and minimizing its environmental impact. At its core, Green Chemistry emphasizes the design and implementation of chemical processes that are environmentally benign, economically viable, and socially responsible. One of the central pillars of Green Chemistry is the integration of renewable resources as raw materials for synthesis. This approach reduces our reliance on finite fossil fuels and mitigates the environmental consequences associated with their extraction and usage. Renewable feedstocks, such as biomass, agricultural waste, and natural plant extracts, offer vast potential for sustainable chemical production. This study explores the diverse applications of Green Chemistry in various sectors. From the pharmaceutical industry, where sustainable synthesis using bio-based starting materials yields eco-friendly active pharmaceutical ingredients, to materials science, where biodegradable plastics derived from plant sources offer alternatives to conventional plastics, Green Chemistry plays a transformative role. The study further delves into Green Chemistry's contributions to agriculture, energy production, water treatment, and pollution control. Sustainable agrochemicals derived from renewable resources provide safer and more efficient solutions for crop protection, while biofuels present renewable energy alternatives that reduce greenhouse gas emissions. Additionally, eco - friendly water treatment methods utilizing renewable adsorbents offer sustainable solutions for pollution control and water purification. In conclusion, this study emphasizes Green Chemistry's pivotal role in fostering a more sustainable future by incorporating renewable resources into chemical synthesis and diverse applications. By minimizing hazardous waste, reducing dependence on non-renewable resources, and promoting the circular economy, Green Chemistry serves as a potent tool in achieving a harmonious coexistence between human activities and the natural environment.

Keywords: *Green Chemistry, Sustainable Synthesis, Applications, Renewable Resources etc.*

INTRODUCTION:

Green Chemistry, also known as sustainable chemistry, is a revolutionary scientific approach that seeks to transform the traditional chemical industry into a more environmentally friendly and sustainable enterprise. It emphasizes the design, development, and implementation of chemical processes and products that reduce or eliminate hazardous substances, waste generation, and overall environmental impact. By harnessing the power of renewable resources and adopting innovative methodologies, Green Chemistry aims to pave the way for a more sustainable and harmonious relationship between human activities and the natural world. The foundation of Green Chemistry lies in a set of twelve guiding principles, established by chemists Paul Anastas and John Warner in the 1990s. These principles serve as a compass, directing chemists and engineers to develop greener alternatives that minimize harm to the environment and human health. Embracing these principles fosters a circular

economy, where resources are used more efficiently and waste is minimized through recycling and repurposing. One of the key tenets of Green Chemistry is the use of renewable resources as raw materials for synthesis. Unlike finite fossil fuels, renewable resources such as biomass, plant-derived materials, and agricultural waste can be continually replenished, reducing our dependence on non-renewable resources and mitigating the environmental impact of resource extraction.

Green Chemistry's impact extends beyond the laboratory, reaching diverse industries such as pharmaceuticals, materials science, agriculture, energy, and more. Innovations in Green Chemistry have led to the development of biodegradable plastics, sustainable agrochemicals, and eco-friendly energy production technologies, among other groundbreaking applications. Moreover, Green Chemistry champions the concept of "benign by design," encouraging chemists to consider the environmental and health impacts of their creations from the outset. By adopting this proactive approach, chemists can identify potential hazards and develop safer, more sustainable chemical processes. As the world faces pressing environmental challenges, Green Chemistry emerges as a powerful tool to address these issues head-on. By embracing this transformative discipline, we can build a more sustainable future, where chemistry and industry coexist in harmony with the natural world, fostering a cleaner, healthier, and more prosperous global community.

OBJECTIVE OF THE STUDY:

This study highlights the core principles and applications of Green Chemistry, focusing on its role in promoting sustainable synthesis and utilization of renewable resources across various industries.

RESEARCH METHODOLOGY:

This study is based on secondary sources of data such as articles, books, journals, research papers, websites and other sources.

GREEN CHEMISTRY: SUSTAINABLE SYNTHESIS AND APPLICATIONS OF RENEWABLE RESOURCES

Green Chemistry, also known as sustainable chemistry or environmentally benign chemistry, is a rapidly evolving scientific discipline focused on designing chemical processes and products that minimize the use and generation of hazardous substances. Its core principle revolves around the goal of developing more sustainable and eco-friendly solutions to traditional chemical practices. One of the fundamental aspects of Green Chemistry is the utilization of renewable resources as raw materials for synthesis. Renewable resources are natural substances that can be replenished or regenerated over time, unlike fossil fuels or non-renewable minerals. These resources include biomass, plant-derived materials, agricultural waste, and even CO2, among others. The synthesis of chemicals and materials using renewable resources can offer several advantages over conventional methods. For one, it reduces the dependence on finite fossil fuel reserves, thereby diminishing the environmental impact of extraction and refining processes. Additionally, by incorporating renewable feedstocks, Green Chemistry contributes to a circular economy where resources are continually recycled and reused, promoting sustainable practices throughout the supply chain.

THE APPLICATIONS OF RENEWABLE RESOURCES IN GREEN CHEMISTRY

The applications of renewable resources in Green Chemistry span across various industries, including pharmaceuticals, materials science, agriculture, and energy production. Below, we explore some key areas where sustainable synthesis and renewable resources are making significant strides.

- Agriculture and Agrochemicals: Green Chemistry principles are applied in designing safer and more efficient agrochemicals. Pesticides and fer-

tilizers derived from renewable resources are less harmful to ecosystems and human health, addressing concerns associated with conventional agrochemical use.

- Energy Production and Storage: Green Chemistry plays a crucial role in advancing sustainable energy technologies. For instance, biofuels produced from agricultural waste or algae offer a renewable alternative to fossil fuels, reducing greenhouse gas emissions and promoting energy independence.
- Green Solvents: Traditional chemical processes often rely on hazardous solvents. Green Chemistry promotes the use of benign solvents, such as water, supercritical CO2, and ionic liquids, which have lower toxicity and reduced environmental impact.
- Materials Science: Innovations in Green Chemistry have led to the development of biodegradable and renewable materials. For instance, bioplastics derived from plant starch or cellulose are being used as sustainable alternatives to conventional plastics, which are notorious for their long-lasting environmental impact. Such materials can find applications in packaging, consumer goods, and medical devices.
- Pharmaceutical Industry: Green Chemistry has enabled the synthesis of pharmaceutical compounds using bio-based starting materials, reducing the environmental burden associated with traditional processes. Natural plant extracts and biocatalysis are employed to produce active pharmaceutical ingredients, enhancing both efficiency and sustainability. This approach also opens up opportunities for the discovery of novel drugs from natural sources.
- Water Treatment and Pollution Control: Renewable resources are employed in the development of eco- friendly water treatment methods and pollution control technologies. Natural adsorbents derived from plant materials can effectively remove pollutants from water bodies, offering a more sustainable approach to water purification.

Furthermore, the integration of Green Chemistry principles into industrial processes not only benefits the environment but also brings economic advantages. Embracing sustainable synthesis and renewable resources can lead to cost savings in the long run, as it reduces the reliance on expensive fossil fuels, minimizes waste disposal costs, and fosters resource efficiency. Additionally, companies adopting Green Chemistry practices often gain a competitive edge by appealing to environmentally conscious consumers who prioritize products with a lower environmental impact. In academia, research and education in Green Chemistry are gaining momentum, leading to a new generation of chemists and engineers with a focus on sustainability. Universities and research institutions worldwide are emphasizing the importance of incorporating Green Chemistry concepts into their curricula, driving innovation and encouraging the adoption of greener practices in the industry. Regulatory bodies and governments have also recognized the significance of Green Chemistry in addressing environmental challenges and promoting sustainable development. Initiatives and policies have been introduced to encourage the adoption of cleaner technologies and sustainable practices across different sectors. Tax incentives, grants, and regulatory support for green initiatives incentivize businesses to invest in greener alternatives and technologies.

In the pursuit of a sustainable and green future, continuous research and development efforts are necessary to refine and expand the applications of Green Chemistry. **Following are some key areas of focus to accelerate progress:**

- Bio-based Feedstocks: Expanding the range of available renewable resources is essential to increase the versatility of Green Chemistry applications. Research in biotechnology, genomics, and agricultural sciences can lead to the discovery and cultivation of novel bio-based feedstocks with improved properties and performance.
- Catalysts and Processes: Developing efficient and selective catalysts for renewable feedstock conversion is crucial for enhancing the sustainability

and competitiveness of Green Chemistry processes. Continuous efforts are needed to optimize existing catalysts and explore new ones that can facilitate more eco-friendly chemical transformations.

- Circular Economy Integration: Green Chemistry can further contribute to the circular economy by designing products that are easily recyclable or biodegradable. Implementing closed-loop systems and sustainable waste management practices can minimize waste and promote resource conservation.
- Collaboration and Networking: Encouraging collaboration between academia, industry, and government agencies fosters the exchange of knowledge, resources, and expertise. Collaborative efforts can accelerate the development of sustainable technologies and their successful implementation on a larger scale.
- Education and Outreach: Promoting awareness and understanding of Green Chemistry principles among students, professionals, and the general public is crucial for driving widespread adoption. Educational programs, workshops, and outreach initiatives can inspire and empower individuals to incorporate sustainable practices into their work and daily lives.
- Life Cycle Analysis: Conducting comprehensive life cycle assessments of Green Chemistry processes and products is vital to ensure their overall environmental benefit. Evaluating the entire supply chain, from raw material extraction to product disposal, helps identify potential environmental hotspots and opportunities for improvement.
- Policy and Incentives: Governments can play a pivotal role in supporting the transition to Green Chemistry by implementing supportive policies, offering incentives, and setting standards for sustainable practices. By creating a conducive regulatory environment, governments can encourage companies to invest in green innovations and align their operations with sustainable principles.
- Public-Private Partnerships: Collaboration between the public and private sectors can expedite the translation of research findings into commercial applications. Public-private partnerships can facilitate funding, access to resources, and knowledge-sharing, enabling the successful deployment of Green Chemistry solutions.

There are specific sectors and challenges where innovative solutions can make a significant impact:

- Carbon Capture and Utilization: To combat climate change, Green Chemistry can play a role in developing carbon capture and utilization technologies. Converting CO2 into valuable products such as chemicals, fuels, and building materials can help reduce greenhouse gas emissions while simultaneously creating economic opportunities.
- Energy Storage: With the growing demand for renewable energy sources, efficient and sustainable energy storage systems are essential to ensure a stable and reliable power supply. Green Chemistry can contribute by developing eco-friendly and cost-effective materials for batteries, supercapacitors, and other energy storage technologies.
- Green Analytical Techniques: Analytical chemistry plays a crucial role in environmental monitoring and assessing the impact of industrial processes. Green Chemistry advocates for the use of eco-friendly and energy-efficient analytical techniques, reducing hazardous waste generation and resource consumption.
- Green Nanotechnology: Nanotechnology holds tremendous promise in various industries, but concerns about potential environmental and health impacts exist. Green Chemistry approaches can ensure the sustainable synthesis of nanoparticles and nanomaterials, minimizing potential risks and maximizing their benefits.
- Medicinal Plant Chemistry: Exploring the potential of medicinal plants and natural compounds can lead to the discovery of new drugs and therapies. Green Chemistry principles can guide the sustainable extraction and synthesis of these

compounds, promoting biodiversity conservation and reducing the environmental impact.

- Sustainable Agriculture: Green Chemistry can revolutionize agriculture by developing environmentally friendly pesticides, fertilizers, and soil additives. By harnessing renewable resources for these applications, we can promote healthier ecosystems and reduce the environmental impact of conventional agricultural practices.
- Sustainable Construction Materials: Green Chemistry can contribute to the production of sustainable construction materials like green concrete, which utilizes waste materials or renewable resources as partial replacements for traditional cement, reducing carbon emissions.

Sustainable Polymers: Green Chemistry can drive the development of sustainable and biodegradable polymers, reducing the environmental burden associated with conventional plastics. These materials can be used in packaging, textiles, and other applications without leaving a lasting ecological footprint.

- Waste Valorization: Green Chemistry can contribute to waste valorization by developing processes to convert waste materials into valuable products. By transforming waste into raw materials for new products or energy generation, we can reduce landfill waste and promote a circular economy.
- Water Scarcity: Green Chemistry can address water scarcity challenges by developing water-efficient processes, sustainable desalination methods, and eco-friendly water treatment technologies. Utilizing renewable resources to produce water treatment chemicals can reduce the environmental impact of these critical processes.

Incorporating Green Chemistry principles into these areas can drive innovation and create a more sustainable future. As the world faces pressing challenges related to climate change, resource scarcity, and environmental degradation, the adoption of Green Chemistry becomes increasingly imperative. By fostering research, encouraging collaboration, and implementing supportive policies, we can accelerate the transition towards a greener and more sustainable world. Let us embrace the potential of Green Chemistry to shape a future where human progress and environmental stewardship go hand in hand.

CONCLUSION:

Green Chemistry emerges as a critical scientific discipline that holds the key to addressing global challenges related to environmental sustainability and human well-being. Its principles and applications present a powerful pathway to build a more resilient and harmonious relationship between human civilization and the natural world. By adopting the guiding principles of Green Chemistry, chemists and engineers can create innovative and sustainable solutions that prioritize human health, minimize environmental impact, and foster economic prosperity. Through the utilization of renewable resources as raw materials for synthesis, Green Chemistry reduces our reliance on finite fossil fuels and helps mitigate the ecological consequences associated with their extraction and consumption. This paradigm shift towards renewable feedstocks promotes a circular economy, where resources are used efficiently, waste is minimized, and materials are continually recycled and reused. Green Chemistry's influence extends across a broad spectrum of industries. From pharmaceuticals to materials science, from agriculture to energy production, and from water treatment to pollution control, the applications of Green Chemistry hold tremendous promise. The development of eco-friendly pharmaceuticals, sustainable construction materials, and bio-based plastics are just a few examples of how this discipline can revolutionize various sectors, minimizing their ecological footprints while enhancing performance and economic viability.

Moreover, Green Chemistry fosters innovation and research in cutting-edge areas like carbon capture and utilization, energy storage, and nanotechnology. By designing processes and materials that are safe and sustainable from the outset, Green

Chemistry's "benign by design" approach ensures that environmental and health impacts are thoroughly considered during development.

Collaboration and knowledge-sharing among academia, industry, governments, and individuals are fundamental to advancing Green Chemistry's transformative potential. Governments can play a vital role in supporting the transition to greener practices through policy incentives, funding research, and implementing regulations that encourage sustainable practices. Industries that embrace Green Chemistry stand to gain not only by enhancing their environmental reputation but also by reducing long-term costs and enhancing their competitiveness in an increasingly eco-conscious market. As we navigate the complexities of environmental challenges and seek a more sustainable future, Green Chemistry offers a guiding light. Embracing this discipline is not merely an ethical choice but an essential and strategic decision for securing a thriving future for humanity and the planet. By harnessing the power of sustainable synthesis and renewable resources, Green Chemistry paves the way for a world where innovation and environmental stewardship go hand in hand. The journey towards a greener and more sustainable world requires commitment, collaboration, and collective action, and Green Chemistry provides the roadmap to make this vision a reality.

REFERENCES:

1. Anastas, P. T., & Warner, J. C. (1998). Green Chemistry: Theory and Practice. Oxford University Press.
2. Capello, C., Fischer, U., Hungerbühler, K. (2007). What is a Green Solvent? A Comprehensive Framework for the Environmental Assessment of Solvents. Green Chemistry, 9(9), 927-934.
3. Clark, J. H., & Macquarrie, D. J. (Eds.). (2016). Handbook of Green Chemistry. Wiley-VCH.
4. Clark, J. H., Luque, R., Matharu, A. S. (2012). Green Chemistry, Biofuels, and Biorefinery. Annual Review of Chemical and Biomolecular Engineering, 3, 183-207.
5. Sheldon, R. A., & Arends, I. W. (Eds.). (2007). Green Chemistry and Catalysis. Wiley-VCH.

*****

श्री कमलकांत त्रिपाठी कृत ऐतिहासिक उपन्यास 'पाहीघर' का कथ्य विश्लेषण"

-डॉ. चंद्रशेखर लमाणी
प्राचार्य सरकारी प्रथम दर्जा कॉलेज,
हलियाल, कर्नाटक
मेल : chandrulamani76@gmail.com
मोबाईल सं. : 9945246365

I. **प्रस्तावना** : नवें-दसवें दशक के संभावनशील कथा-साहित्यकार के रूप में श्री कमलकांत त्रिपाठी सामने आते हैं। जिनका स्थान कथा-साहित्य में निराला है। मुख्यतः भावात्मक सजगता और अनुभूतिगत तीव्रता का यथार्थ कथाकार हैं। आपने ऐतिहासिक परिवेश के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था और आधुनिक प्रणाली का अंकन अपने साहित्य द्वारा किया है। कहानी, उपन्यास, काव्य आदि रचनाओं द्वारा अपनी प्रतिभा का जन सामान्य तक पहुँचाया है। आपने समाज गाँव लोक परंपरा, मर्यादा, रीति-रिवाजें, ग्रामीण जीवन पद्धति, जाति विशेष-स्वतंत्र भारत के नवें दशक के पिछड़े गाँव की स्थिति-गति को अत्यंत सहज एवं यथार्थ रूप से चित्रित किया है। आपके साहित्य में गाँव के लोक जीवन को बड़ी आत्मीयता एवं लगाव के साथ गाँव की धूप-धूल, फूल, नदी-पहाड़, जंगल-झाडियाँ, सत असत्य, न्याय-अन्याय, रुढियों एवं लोक परंपरा में जीते लोगों के चित्रण को चित्रित किया है। इक्कीसवीं सदी की देहरी पर खड़े ये गाँव अब भी स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् पाँचवें दशक में भी पिछड़े हैं। धीमी गति से विकास और नई चेतना की आहट भी आने लगी है। लेखक कमलकांत त्रिपाठी ग्रामीण जनता के सुख-दुःख आशा निराशा, जय-पराजय एवं जीवन संघर्षों से जुड़े सामाजिक जीवन का खुला चित्रण किया है।

II.**उपन्यास पाहीघर का कथ्य :** पाहीघर में मुख्य कथा गुरुदत्त दूबे के परिवार से शुरु होती है जो दो पीढ़ियों तक चलती है। उस क्रम में तत्कालीन अवध की जमींदारी और सामंती जीवन का एक-एक तार सामने आता जाता है। इस कथा के समानांतर अवध के नवाब वाजीद अली शाह की कथा चलती है, जो अंग्रेजों के अवध पर पाँव जमाने और सिपाही विद्रोह की स्थिति तक आती है। कथा बहुत तेजी के साथ आगे बढ़ती है। गुरुदत्त दूबे मिरजापुर जिले में विंध्याचल के पास कंतित गाँव के रहने वाले थे और वहीं रहकर देवी के मंदिर में पंडा का काम कर अपने परिवार का भरण पोषण करते थे। नवरात्र के अवसर पर दशरथपुर रियासत को राय कुंजल सिंह जब देवी दर्शन के लिए यहाँ आए तो गुरुदत्त दूबे ने उनकी भरपुर आवभगत की। इस पुरजोर स्वागत का सुपरिणाम यह निकला कि रायबहादुर ने प्रसन्न होकर उन्हें दशरथपुर आकर बसने का आमंत्रण दे डाला और यह भी सलाह दी कि वहाँ बसौली गाँव के उनकी खुदकाश्त जमीन भी वे ले लें और उसे जोतें-बोवें। गुरुदत्त ने इस प्रस्ताव पर तत्काल कोई निर्णय नहीं दिया। उन्होंने प्रस्ताव को अपने परिवार के सामने रखा तो बड़े बेटे शंकर ने उसे स्वीकारने का निर्णय दिया। अंत में दूबे परिवार बसौली आकर बस गया। उनका ठाट सामंती हो गया। खेती अच्छी होने लगी। राय बहादूर उन पर प्रसन्न हो गए। आसपास के छोटे जातियों के लोग दिन-भर सबकी सेवा टहल करते और बदले में उन्हें कुछ सेर अनाज मिल जाता।

शंकर की उम्र अधेड़ की हो गई थी इसलिए उनकी शादी न हो सकी। दुर्बली की शादी जल्दी हो गई। गौना के समय का संयोग ऐसा विपरीत हुआ कि इधर बहू का पाँव पड़ा और उधर ससुर गुरुदत्त दूबे हैजे का शिकार हो गए। शंकर की मुस्तद सक्रियता से गृहस्थी पर कोई अंतर नहीं आया। राय बहादूर ने इन्हें जो मालगुजार का ओहदा दिया था उसे वे बखूबी निभाते रहे। लेकिन इस बीच वे अपने कारंदे जैकरन की बिटिया रूप्पी (रुपा) के करीब आए। मिलना-जुलना जारी रहा बात हवा बन गई। इस बात को बसौली के सारे लोग जान गए। जैकरन भी जाना पर मजबूरी के कारण वह अनसुना किए रहा। रुप्पी से शंकर के संबंधों के कारण जैकरन की जिंदगी में कोई कमी न रही। उसके पास शंकर की दी हुई दो बीघा जमीन भी थी और ऊपर से और भी खर्चे मिलते थे। दुर्बली बड़े, भाई शंकर की इस स्थिति से जलता भी था और तिलमिलाता भी। उसे इस जीवन व्यवस्था से घृणा थी। लेकिन इसे वह व्यक्त न करता था। उससे घर का काम भी न होता था। मौका पाकर वह घर से भागा और सलतापुर रिसाले की फौज में भरती हो गया।

अवध के नवाब वाजिदली शाह मसनद पर बैठते ही आवाम की हालात सुधारने के लिए वे बेताब हो उठे। उन्हें अपने इलाके के रियाया की बदहाली पर तरस आता है। उन्होंने आवाम की हालत सुधारने की गरज से सबसे पहले फौजी ताकत बढाने का काम सोचा, जिससे तालुकेदारों और जमींदारों की मनमानी को रोका जा सके। लेकिन इस्ट इंडिया कंपनी के कलकत्ता स्थित बडे लाट का खरीता आ गया जिसमें उसने फौजी ताकत न बढ़ाने की चेतावनी दी थी। बादशाह ने मजबूरी में इस मंसूबे को रोका और आवास के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को भूलकर एय्याशी में डूब गए। उधर स्लीमैन नामक अंग्रेज ऑफिसर ने अवध का दौरा कर कंपनी हुकूमत को यह सुझाव दे डाला कि अवध की हालत खराब है, कंपनी अपने कब्जे में ले ले। हुआ भी यही, बादशाह को हटाकर अवध का प्रशासन कंपनी ने संभाल लिया। इधर कारतूस में गाय और सुअर की चर्बी के मिलावट की अफवाह से सिपाहियों ने विद्रोह किया। कंपनी ने जमींदारी और तालुकेदारी की नई शक्ल दी और लगान बढाई गई। शंकर की मालगुजार की पदवी खत्म हो गई। दुर्बली विद्रोह में मारा गया और रूप्पी गर्भवती के बाद उपचार के अभाव में या गर्भपात कराने के कारण चल बसी। शंकर ने जैकरन को उसकी जमीन से बेदखल कर दिया। इस कारण जैकरन ने जहर खाकर आत्महत्या कर ली। इस तरह 'पाहीघर' का आरंभिक मजमा समय की आँधी में तबाह

हो गया।

कमलकांत त्रिपाठी ने 'पहीघर' उपन्यास में वर्तमान युगीन सामाजिक परिवारिक विषमताओं को ही उद्घाटित किया है। किसान शोषण हमारे समाज में एक प्राचीन समस्या रही है। जिसके समाधान के रूप में ऊपरी तौर से काम किए जा रहे हैं। प्रारंभ से ही हमारे समाज में यही मानसिकता बनी रही है, कि किसान जमींदार या तालुकेदार से कमजोर है। किसान को पूजा के योग्य मानकर उसे उसके मूलभूत अधिकारों से वंचित रखा गया है।

वर्तमान युग में शिक्षा से प्रभावित होकर किसान और जमींदार को समान मानना केवल नारेबाजी लगाने में ही है। वास्तविकता यह है कि जमींदार परंपरागत रूप से किसान पर प्राप्त अपने अधिकार से वंचित नहीं होना चाहता। किसान की मानासिकता भी यही रही है कि यह स्वयं को जमींदार से कमजोर मानकर उसके शोषण का शिकार बना रहा है। किन्तु उसमें आज विद्रोह की चेतना उत्पन्न होने पर भी वह संपूर्ण रूप से विद्रोह करने में सफल नहीं है। लेखक ने 'जैकरन के जीवन के माध्यम से किसान जीवन की विडंबनापूर्ण स्थिति को उजागर किया है।

'पाहिघर' ऐसी अनेक त्रासदियों की कथा है, जिसमें मनुष्यता की साँसे टूटती हैं। जैकरन भारतीय किसानों की परंपरा में 'होरी' की श्रृंखला में आता है, जिसकी उम्मीदें निर्यात के पाटों में पिस जाती है। सामंती युगीन परिवेश में आम किसानों की यातना और उससे उभरने के लिए उनके द्वारा किया गया संघर्ष अंततः कारगर नहीं होता और उन्हें मौत के मुँह में जाने से कोई नहीं रोकता।

लेखक ने उपन्यास को रजक बनाने का प्रयत्न किया है पाठक की जिज्ञासा बनाए रखने के लिए कथा में मोड़ है। नारी तथा यौनाकर्षण को विशेष स्थान मिला है। इस उपन्यास में रूपा शंकर दूबे को आकर्षित करती है। जब तक रूपा का सौंदर्य रहता है तब तक शंकर दूबे उसका फायदा उठाता है। कुछ दिन के बाद रूपा का शरीर रोगग्रस्त हो जाता है तथा एक दिन उसका देहांत भी हो जाता है। जो रूपा के पिता जैकरन को दिए दो बीघा जमीन वापस ले लेता है। हम यहाँ पर किसान शोषण के साथ-साथ नारी शोषण को भी देख सकते हैं। इस तरह का शोषण भारत के गाँवों में हो रहा है।

प्रेमचंद से जिस औपन्यासिक परंपरा का सूत्रपात हिंदी में हुआ कहना चाहिए कि उसी परंपरा को कमलाकांत त्रिपाठी ने 'पहीघर' से आगे बढाया है। इस दृष्टि से कहा जाता है कि 'पहिघर, गोदान, मैला आँचल, बूँद और समुद्र तथा राग दरबारी' का नूतन उन्मेष है। वर्षो बाद ग्रामीण भारत की विद्रूपता को उसी तेवर में उपस्थित करने का सफल प्रयास कमलाकांत त्रिपाठी ने किया है।

वैचारिक स्तर की खोज करने में इस उपन्यास में दिक्कतें आती हैं। उपन्यासकार ने ऐसा कोई मुख्य पात्र नहीं बनाया, जिसके वक्तव्यों के आधार पर 'पहीघर' में विचारधारा की भूमिका की जांच पड़ताल की जा सके। लेकिन इतना जरूरी है कि 'पहीघर' में आम जनता की वकालत हुई है। उसके दुःख दर्द की दुहाई दी गई है और समूचे उपन्यास में सामंती और जमींदारी व्यवस्था को कोसा गया है। इस प्रकार आवाम की खुशहाली के लिए संघर्ष करता यह उपन्यास 'स्वतंत्रोत्तर भारत' की हिंदी उपन्यासों की परंपरा में एक अत्यंत प्रासंगिक और अनूठा उपन्यास बन पड़ा है।

निष्कर्ष :

निःसंकोच कहा जा सकता है कि इस उपन्यास के माध्यम से तत्कालीन समाज की विसंगतियों और अंतद्वंद्व का भी दर्पण है। जिसके कारण कल और आज में कोई तात्विक फर्क नहीं दिखता। सांप्रदायिक और जातीय तनाव पैदा कर राजनीति करनेवाले तब भी थे और आज भी हैं, बस फर्क यह है, कि उनके मुखौटे बदल गए हैं। उस वक्त यह काम विदेशी करवाते थे और अब यही काम देशी चरित्र करा रहे हैं। समाज में परिवर्तन लाने के लिए जन चेतना आवश्यक है। यह परिवर्तन उपन्यासों के सृजन से ही संभव हो सकेगा ऐसा मेरा विश्वास है। वर्तमान राजनीति भ्रष्टाचार के चरम बिंदु को छूने के लिए कृत संकल्प है। आज जनता को भ्रष्ट राजनीति से उभार कर नूतन एवं स्वस्थ परिवेश प्रदान करने के लिए इसी तरह सशक्त औपन्यासिक कृतियों की सृजन की ज्यादा ही आवश्यकता है। यह संतोष का विषय है, कि हिंदी के कथाकार इसी ओर सचेष्ट हैं और इस विषय पर निरंतर योग्य कथा कृतियों का सृजन कर रहे हैं।

संदर्भ सूचि :

1. पहिघर (उपन्यास) : श्रीलाल शुक्ल
2. हिंदी उपन्यास एक अंतयात्रा : डॉ. रामदरश मिश्र
3. हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यास : डॉ. रामनारायण सिंह 'मधुर'

*****

अनुदित साहित्यों द्वारा साहित्य का विकास.
(तमिलनाडु के विशेष संदर्भ में)

-डॉ. एस.प्रीति
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
फैकल्टी ऑफ़ साइंस एंड ह्यूमैनिटीज
एसआरएम इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइंस एंड टेक्नोलॉजी
कॉटानकोलेथूर -603203
दूरभाष-8939934141

पृष्ठभूमि-

अनुवाद का मूल अर्थ है पुनः कथन या किसी के कहने के बाद उसे दोहराना। शब्दार्थ चिंतामणि नामक संस्कृत कोश ग्रंथ में अनुवाद का अर्थ दिया गया है- प्राप्रस्य पुनः कथने या' ज्ञातार्थस्य प्रतिपादने' अर्थात पहले कहे गये अर्थ को फिर से कहना।प्राचीन भारत में शिक्षा की मौखिक परंपरा थी ।विद्याज्ञान विषय को वाङ्मय कहा गया था। गुरु नानक या आचार्य जो कहते सीखाते उसे तत्काल दोहराते थे ।इस दोहराने को भी अनुवाद या अनु वचन कहते थे।

जब विश्व के सभी देश की अपनी अपनी संस्कृति है, अपनी अपनी समस्याएं हैं ,अपनी व्यवस्था है ,उनकी परिस्थितियों के अनुरूप इस परिवेश में वहां साहित्य सृजन भी हो रहा है, तो फिर अनुवाद की आवश्यकता क्यों है? वास्तव में आज की परिस्थितियों में हम देख रहे हैं कि वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप विश्व सिमट कर इतना छोटा हो गया है कि वैश्वीकरण और भूमंडलीकरण का बोलबाला है ।आज विश्व के किसी कोने में किसी भी दूसरे देश के वास्तु मिलन असंभव नहीं लगता तो साहित्यिक आदान-प्रदान की विश्व मानव को एक दूसरे के करीब लाने का एक साधन बन गया है

जर्मन महाकवि गेट अभिज्ञान शाकुंतलम् को पढ़कर झूम उठे। इस नाटक से मुक्त होकर ही उन्होंने विश्व को जर्मन भाषा में एक बेहतरीन कलाकृति प्रदान की ।कालिदास के इस नाटक का संस्कृत से जर्मन में अनुवाद करते समय गेटे ने एक कलाकार के रूप में कथ्य संदेश और उन प्रतिको ,बिंबो ,रोशनी एवं प्रकृति चित्रणों को लक्ष्य भाषा में से बखूबी से उडेला था और मानो एक शरीर से आत्मा निकालकर दूसरे शरीर में डाल दी गई हो उसने कला सौंदर्य की अभिव्यंजना पर जरा भी ख़रोंच नहीं आने दी।

परिचय-

भारत विविधताओं से भरा देश है । जहां विभिन्न धर्मों, समुदायों, रीति -रिवाजों, खान-पान एवं वेशभूषा वाले लोग निवास करते हैं। भारत विविधताओं से भरा होने के साथ-साथ बहुभाषी देश है। संपूर्ण विश्व में भारत ही एकमात्र देश है जिनकी मिट्टी इन विविधताओं से सुशोभित है। जैसे किसी वाटिका की सुंदरता उसके नाना प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों से होती है, ठीक वैसे ही भारत की सुंदरता इसकी विविधताओं से ही है।

हम सभी जानते हैं, भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त भारत में 100 से अधिक क्षेत्रीय भाषाएं हैं, जिनमें नित् नए उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाएं हो रही है।

साहित्य के सागर में उठने वाले इन बुलबुलों से हम सभी खुद को सुशोभित करना चाहते हैं। क्योंकि मानव एक जिज्ञासु प्राणी है और वह प्रत्येक चीजों को जानना, समझना और परखना चाहता है। लेकिन मानव सभ्यता का एक कटु सत्य यह भी है कि वह सभी चीजों की एक साथ जानकारी नहीं मिल सकती है। यह स्थिति भाषा के साथ भी होती है। व्यक्ति को प्रत्येक भाषा का ज्ञान होना संभव नहीं होता। ऐसे में अनुवाद एक ऐसा सशक्त माध्यम होता है, जो सभी भाषाओं को एक सूत्र में पिरोता है, जिससे व्यक्ति विभिन्न साहित्यिक रचनाओं का रसपान कर पाते हैं।

अनुवाद का स्वरूप:

अनुवाद के माध्यम से ही भारत विविधताओं से भरा होने के बावजूद एक कड़ी में बंधा हुआ है। यदि अनुवाद नहीं होता तब 'अनेकता में एकता', महज एक अवधारणा ही रहती। इस पंक्ति का यथार्थ से दूर-दूर तक कोई नाता नहीं होता।

कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तथा पोरबंदर से लेकर सिलचर तक अनुवाद ही पूरे भारत को जोड़ने में सेतु का काम करता है। अनुवाद के कारण ही हम सभी संविधान में वर्णित 22 भाषाओं सहित सभी क्षेत्रीय भाषाओं में रचित रचनाओं से साहित्यिक परिमार्जन कर पाते हैं।

अनुवाद उत्तर और दक्षिण को जोड़ने में सेतु का काम करती है!

तमिल साहित्य और अनुवाद:

हिंदी में तमिल साहित्य का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करने वाले पहले विद्वान श्री पुर्णम सोमसुंदरम् ने अपनी लघु पुस्तक 'तमिल और उसका साहित्य' में तमिल साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा मात्र प्रस्तुत की। एन. वी. राजगोपालन जी ने 'तमिल साहित्य का नवीन इतिहास' शीर्षक की अपनी कृति में तमिल साहित्य के विभिन्न युगों की साहित्यिक प्रवृत्तियों का अपेक्षाकृत विस्तार से विवेचन किया है। साथ ही के. ए. जमुना जी, शंकर राजू नायडू जी, पी. जयरामन जी जैसे विद्वानों ने तमिल साहित्य का छायानुवाद किया। बाद में माननीय श्री एम. शेषन जी ने साहित्य अकादमी के अनुरोध पर तमिल के

सुप्रसिद्ध विद्वान मु. वरदराजन कृत 'तमिल इलक्कम वरलारू' का हिंदी रूपांतरण 'तमिल साहित्य का इतिहास' शीर्षक से किया। जो अकादमी द्वारा प्रकाशित क्रमबद्ध रूप से प्रथम बार हिंदी पाठकों के सम्मुख आया।

तमिल भाषा के प्राचीन नीति ग्रंथ एवं तमिलवेद के नाम से प्रसिद्ध संत तिरुवल्लुवर रचित 'थिरुकुरल' का हिंदी अनुवाद मु. गो. वेंकटकृष्ण जी ने उत्तर वेद के नाम से किया। मूल कृति डेढ़ चरण वाले तमिल भाषा के प्राचीनतम छंद 'कुरुल' में रचित है और उनमें 1330 कुरूल संकलित है। वेंकट कृष्ण जी ने समस्त कुरूलों का अनुवाद आधुनिक खड़ी बोली और दोहा छंद में किया जो कि इस अनुवाद की विशेषता है। श्री वी. डी. जैन, श्री टी. इ. एस. राघवन, श्री शंकर राजू नायडू, डॉ एन सुंदरम् जी, डॉ राम शंकर मिश्रा एवं हाल ही में डॉ. गोविंद राजन द्वारा अनूदित थिरुकुरल पुस्तक का विमोचन हमारे माननीय प्रधानमंत्री द्वारा 'काशी तमिल संगमम्' में किया गया.

संधोतर काल में रचित पांच सर्वश्रेष्ठ काव्य 'पंच वृहद काव्य' - शीलप्पदीकारम, मणिमेखलै, जीवक चिंतामणि, वलप्पापदी और कुण्डलकेसी है। यह ग्रंथ संख्या, मीमांसा, सिद्धांतवाद एवं बौद्ध भिक्षुओं के बीच शास्त्रार्थ, धर्म के तर्क - वितर्क का अखाड़ा है। इस रस - सिद्ध काव्य का अनुवाद एस. एन. गणेशन जी ने किया है।

संधोत्तर काल में पारलौकिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का जो प्रादुर्भाव हुआ उसका भक्तिकाल धारा के रूप में उसका विकसित होना स्वाभाविक है। भक्तिकाल की सभी रचना शैव एवं वैष्णव कवियों द्वारा रचित है। वैष्णव संत कवि अलवार (रक्षक) कहलाते हैं। 12 अलवारों द्वारा रचित चार हजार कविताओं का वृहद संग्रह दिव्य प्रबंधम् कहलाता है। इस बृहद काव्य का अनुवाद पं. श्रीनिवास राघवन ने किया है। साहित्य की इस अनमोल कृति को राष्ट्रपति पुरस्कार से सम्मानित किया गया। जनता में छाए हुए नैराश्य को दूर करके मानव हृदय में सरलता का संचार करने में शैव संतो की अद्वितीय देन रही है। शैव सिद्धान्तों पर कई साहित्यिक रचनाएं हुई है। इनमें 12 तिरुमूरै का उल्लेखनीय स्थान है ।इन पदों का भावानुवाद श्री एन सुंदरम् जी ने किया।

11वीं शताब्दी में चोल राजा द्वितीय कुलोतुंगन के समय में महाकवि कम्बन ने रामायण के अमर काव्य की रचना की। कम्बन की रामायण मौलिक रचना है। यह वाल्मीकि के महाकाव्य के आधार पर लिखी गई है। कम्बन की रामायण 10,500 वृत्त कविताओं में निर्मित काव्य है। कैकयी, मंथरा - वालि, सीता-हरण, रावण-वध, कुंभकरण आदि पत्रों में कम्बन ने मौलिक विचार व्यक्त कर तमिल संस्कृति के अनुरूप एक नया मोड़ दिया है। कम्बन का महत्व इसमें यह है कि, उन्होंने संस्कृत एवं तमिल काव्य शैलियों का समुचित समन्वय किया है। कम्बन ने प्रधान पात्रों के ही नहीं, गौण पात्रों के भी चरित्र चित्रण में अद्भुत कलाकारिता एवं सहद्धय सूझ का परिचय दिया है। इस तमिल रामायण का अनुवाद न. वि. राजगोपाल जी ने किया है। अनुवाद गद्य शैली में है।

इसी तरह सुब्रमण्यम भारती जी जिन्होंने तमिल साहित्य एवं समाज में एक क्रांति मचा दी। जिससे दोनों का काया पलट हो गया। उन्होंने पंडिताऊ शैली के बंधन से भाषा को मुक्त किया और लोगों को संकुचित भावनाओं से ऊपर उठकर विशाल राष्ट्रीयता एवं मानवता का दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया। सुब्रमण्यम भारती जी के खंडकाव्य में पांचाली शपथम् का विशेष स्थान है। महाभारत की द्रौपदी की शपथ कथा को आधार बनाकर भारती ने पांचाली शपथम् की रचना की। एन. सुंदरम तथा विश्वनाथ विश्वासी जी ने इसका अनुवाद किया।

हिंदी लेखकों ने तमिल के अनेक नए पुराने कथाकारों से हिंदी जगत का परिचय कराया। जैसे एन. सुंदरम जी के मूरदराजन कृत 'कारीटुडू' का हिंदी अनुवाद 'कोयले का टुकड़ा' नाम से किया है।

सुन्दरम्

तमिलनाडु के भूतपूर्व मुख्यमंत्री स्वर्गीय मु. करुणानिधि कृत 'औैरक्तम्' का हिंदी अनुवाद 'एक ही रक्त'

हिमांशु जोशी 'उन्नकाग' का हिंदी अनुवाद 'तुम्हारे मित्र'

विष्णु प्रभाकर अर्धनारीश्वर का अनुवाद किया है।

तमिल साहित्य और अनुवाद का अनुपम संग्रह:

डॉ वी. पद्मावती

(1) 20वीं शताब्दी की तमिल कहानी - 100 कहानी संकलनों

(2) ओरुग्राम्मत नदी- सी.पी. बालासुब्रमण्यम - एक ग्रामीण नदी

(3) कालजयी महाकवि सुब्रमण्यम भारतीयार की चुनी हुई कविताओं का अनुवाद

हिंदी में

(1) विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की चुनी हुई कविताओं का कितग्गिय नान् नाम से तमिल में अनूदित

(2) हिंदी के विख्यात साहित्यकार गोविंद मिश्रा उपन्यास 'कोहरे में कैद रंग' का तमिल में अनुवाद 'मुदपनि सिरभईल वंधल'।

डॉ एम गोविंदराजन

कहानी संकलन

(1) डॉ रमेश पोखरियाल निशंक जी का कहानी संकलन 'संकल्प' तमिल में अनुवाद 'एनदु शबरम्'

(2) सिदुल नलन्द सेंदामरै हिंदी से तमिल अनुवाद

(3) तमिल कहानियों का हिंदी अनुवाद

(4) डॉ रमेश पोखरियाल निशंक जी का ए वतन तेरे लिए का तमिल अनुवाद 'ताए नाडे उनक्काह'

(5)आदरणीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी का हिंदी कविता साक्षी का तमिल पद्यनुवाद अंन्नैविन तिरूवडिहलुवकु

(6) विद्यापति की पदवालियों का तमिल अनुवाद 'विद्यापति काण्ह कादल चुवै सिल तुलीगल'

नाटक

(1) डॉ .चतुर्भुज जी का हिंदी नाटक रावणन् का अनुवाद

जीवनी

(1) डॉ कमल किशोर गुप्ता रचित महामनीषी आचार्य रघुवीर का तमिल अनुवाद मामनिद अचार्यर रघुवीर

आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुवाद:

(1) तुलसीदास जी कृत रामचरितमानस का तमिल गद्यानुवाद

(2) तुलसीदास जी कृत विनय पत्रिका का तमिल गद्यानुवाद

रा. शौरीराजन
(1) कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुंतलम का हिंदी अनुवाद
(2) डी. जयकांतन (भूले गुनाह नहीं होती) एवं 10 कहानियों का हिंदी अनुवाद
(3) एन शंकरण के यात्रा वृतांत का हिंदी अनुवाद 'बीस साल के देश (जर्मनी) मे 20 दिन की यात्रा कृति को केंद्र सरकार द्वारा पुरस्कृत किया गया।
(4) सुजाता के तमिल उपन्यास पदिनाल नाटकल 'चौदह दिन' का अनुवाद
(5) डॉक्टर एम. शेषन जी ने शिवकुमार मिश्र के निलाचंद उपन्यास का तमिल में अनुवाद किया
(6) डॉ.पी.के. बालासुब्रमण्यम जी ने तमिल के समकालीन ग्रंथों, जो की 20 के लगभग है, का अनुवाद हिंदी में प्रस्तुत किए। जिनमें तिरुवल्लुवर आत्तिच्चुडि, तिरूमुरूगाटुप्पडै, नट्रिणै, ने कलित्तोगे, आदि है।

तमिलनाडु में अनुवाद का विस्तार:

साहित्य समाज का दर्पण होता है और भारत जैसे बहुभाषिक एवं विविधतापूर्ण देश में इसके अनेक प्रतिबिंब है। अनुवाद एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा उत्तर से दक्षिण के बीच विभिन्न भाषाओं में पारस्परिक अनुवाद होता है। आलेख में तमिलनाडु में तमिल विद्वानों द्वारा भारतीय भाषाओं की साहित्यिक कृतियों पर विशेष आलोक प्रदान कर तमिलनाडु के साहित्यिक विरासत की ओर अलौकित किया गया है ।इसके साथ ही इसमें उत्तर भारतीय अनुवादकों द्वारा तमिल में उपलब्ध साहित्य समाज एवं भक्ति से संबंधित महान कृतियों का उल्लेख किया गया है।सन् 1934 में श्रीमती अंबुजम्माल ने रामचरितमानस के अयोध्या कांड एवं गोदान का तमिल अनुवाद किया। श्री के. एम. शिवराम शर्मा ने महाकवि सुब्रमण्यम भारती की तराजू,ज्ञानररथम् आदि तमिल कृतियों का हिंदी रूपांतर किया।

डॉ. एन सुंदरम, डॉ. एम.शेषन, डॉ. आर. एम. श्रीनिवासन, डॉ. एम. गोविंदराजन, डॉ. बालशौरि रेड्डी, डॉ .पी.के. बालासुब्रमण्यम डॉ शोरि राजन, डॉ रुकमा जी राव अमर, डॉ.श्रीधारन,श्रीमती सरस्वती रामनाथन, डॉ. के ए जमुना, डॉ पी जयरामन, डॉ. एस. एन. गणेशन, डॉ. शारदा रमणी, डॉ. राजलक्ष्मी कृष्णन्, डॉ. जमुना कृष्णराज, डॉ. एथिल नचयार, डॉ. के सुलोचना, पार्वती, डॉ. के गौरी , डॉ. चित्रा अवस्थी,आदि ऐसे नाम है जो अनुवाद को ही अपना तरकश बनाया।

ऐसे में साहित्यिक और संस्कृतिक आदान-प्रदान के लिए अनुवाद आज के युग में अनिवार्य आवश्यकता है।

इस प्रकार यह आलेख साहित्य एवं समाज के मध्य अनुवाद को एक सेतु की तरह दर्शाता है।

अनुवादक विमल मिश्र' "अनुवादकों की जिम्मेदारी तय करते हुए कहते हैं मूल रचनाकार अपनी रौ में लिखता जाता है उस पर कोई बंदिश नहीं होती लेकिन अनुवादक को रेलगाड़ी की तरह पटरी पर चलना पड़ता है ।वह आगे जोड़ते हैं जैसे इंजन के ड्राइवर की जिम्मेदारी होती है मुसाफिरों को उनके गंतव्य तक सुरक्षित पहुंचाने की, ठीक वैसे ही जिम्मेदारी अनुवादक की होती है मूल रचना के भाव को अनूदित रचना में समेकित करने की, अनुवादक को देना पड़ता है- प्रकाशक को ,पाठकों को ,और मूल पुस्तक के रचनाकार?"

अतः प्रस्तुत आलेख पर दृष्टिगोचार करते हुए हमें तमिलनाडु में अनुवाद एवं अनूदित साहित्यों द्वारा साहित्य के चतुर्थीक विकास की झलक दिखाई देती है

निष्कर्षत:इस आलेख के मूल मर्म को स्वरचित निम्नलिखित पक्तियों से सुशोभित किया जा रहा है :

भाषा- भाषा के संगम में सेतु है अनुवाद
उत्तर -दक्षिण पूरब -पश्चिम विस्तारित निर्विवाद

संदर्भ ग्रंथ

1.अनुवाद सिद्धांत और प्रयोग- डॉ. अमर सिंह वधान
2.भारतीय अवधारणा तमिल संस्कृति के मुख्य सोपान - डॉ.पी .आर .वासुदेवन "शेष"
3.अनुवाद कला -डॉ.एन. ई. विश्वनाथ अय्यर
3.अनुवाद विज्ञान सिद्धांत और प्रवृत्ति- भोलानाथ तिवारी
4.अनुवाद शिल्प: समकालीन संदर्भ, कुसुम अग्रवाल
5.अनुवाद प्रक्रिया एवं परिदृश्य -रीतारानी पालीवाल

*****

नाथ साहित्य और गोरखनाथ

कपिल कुमार रंजन
शोधार्थी,
हिंदी विभाग
काशी हिंदू विश्वविद्यालय
सम्पर्क सूत्र-9807566898

नाथ संप्रदाय के प्रमुख संतो में गोरखनाथ का नाम बड़े आदर और सम्मान से लिया जाता हैं। ये मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य थे। मध्ययुगीन भारतीय समाज में उत्पन्न इस सम्प्रदाय में प्रमुख रूप से बौद्ध, शैव तथा योग की परम्पराओं का एक अद्भुत समन्वय दिखाई देता है। नाथ सम्प्रदाय हठ योग की साधना पद्धति पर आधारित है। गोरखनाथ इस पंथ के उन्नायक है। इनका जन्म पश्चिमी भारत में 9वीं शताब्दी से12वीं शताब्दी के मध्य माना जाता है। नाथ सम्प्रदाय सहजयानियों की भाँति केवल भारतवर्ष के किसी क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं है बल्कि पूरे देश में व्याप्त एक धर्मसाधना पद्धति है। नाथ सम्प्रदाय तथा उसकी शाखा और उप-शाखाएं देश के अलग- अलग रूप में फैली हुई हैं। नाथ सम्प्रदाय के विस्तार को देखने से यह प्रतीत होता है कि इस सम्प्रदाय में और भी बहुत-सी छोटी- बड़ी धर्मसाधनाएँ कालान्तर में विलीन होती रही हैं। वैसे तो नाथ संप्रदाय के धर्माचार्यों में गोरखनाथ ही सबसे अधिक प्रभावशाली और प्रख्यात रहे हैं,परन्तु वे नाथ सम्प्रदाय के संस्थापक नहीं थे। वे इस सम्प्रदाय की पहले से चली आ रही परम्परा की धारा के उन्नायक हुए थे, इसलिए निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इस धारा का सूत्रपात कब और कैसे हुआ है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल एक प्रमुख धारा के रूप में विद्यमान है। सिद्ध और नाथ साहित्य इसी धारा के अन्तर्गत आते है। सिद्ध संप्रदाय का ही एक विकसित स्वरूप नाथ सम्प्रदाय है,जिसमें बौद्ध और शैव मत के कुछ प्रमुख सिद्धांत और विचारों को स्वीकार कर नया आयाम दिया गया है। लोक जनमानस में यह कहावत प्रचलित है की अंतिम सिद्ध संत मत्स्येंद्रनाथ जब विषय और भोग- वासना के गिरफ़्त में फंस गए थे तब गोरखनाथ ने उनको जगाने के लिए कहां 'जाग मछंदर गोरख आया' यह पंक्ति ही मत्स्येंद्रनाथ के लिए एक तरह से विषय वासनाओं को छोड़ अपने को नित्य नियम, आचार, विचार और संयम की ओर उन्मुख करने वाला रहा है। इसके प्रभाव से ही मत्स्येंद्रनाथ की दिशा बदल गई और वे सांसारिक कार्य और आकर्षणों से पूर्णतः मुक्त हुए।

'अथर्ववेद' और 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' संहिता ग्रंथ में 'नाथ' शब्द का प्रयोग 'रक्षक' या 'शरणदाता' के अर्थ में मिलता है। महाभारत एवं रामायण तथा अन्य ग्रंथों में नाथ' शब्द का प्रयोग स्वामी अथवा पति के रूप में पाया जाता है। शैव मत के अनुयायी 'नाथ' शब्द का प्रयोग आराध्य देव शिव के अर्थ में रूप में करते है। गोरखनाथ ने भी 'नाथ' शब्द का प्रयोग किया है। 'गोरखबानी' में संगृहीत-संपादित रचनाओं में 'नाथ' शब्द का व्यवहार दो अर्थों में हुआ है। भणिति में 'नाथ' शब्द का प्रयोग मिलता है- "नाथक है तुम आपाराखौ। नाथक है तुम सुनहुरे अवधू।।"[1] नाथ संप्रदाय से संबद्ध साहित्य में प्रयुक्त 'नाथ' शब्द के इस विवेचन से यह अर्थ निकलता है कि 'नाथ' शब्द के दो अर्थ हैं-परमतत्व या ब्रह्म, गुरु। हिंदी के सुप्रसिद्ध आलोचक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा हैं कि "नाथ पंथ या नाथ-संप्रदाय के सिद्ध-मत, सिद्ध- मार्ग, योग- मार्ग, योग-संप्रदाय, अवधूत-मत एवं अवधूत- संप्रदाय नाम से भी प्रसिद्ध है।"[2] सिद्धयोगियों के वामाचार का विरोध करते हुए जो विचार धारा खड़ी हुई वह नाथ पंथियों की थी। यद्यपि इनका मूल बौद्ध धर्म की वज्रयान शाखा से है। सिद्धयोगियों ने योग साधना को मैथुन का स्वरूप देकर समाज में अपने स्वराचार को वाममार्गी शरण दी थी।

नाथ संप्रदाय ने योग साधना को एक स्वस्थ और समाज उन्मुख साधना के रूप में अपनाया और आदिकालीन धार्मिक सामाजिक जीवन में व्याप्त अनाचार को खत्म करने का प्रयास किया। यद्यपि नाथ संप्रदाय में इस मत के प्रवर्तक के रूप में हम 'आदिनाथ शिव' को मानते हैं, लेकिन सही अर्थ में इस मत को सुव्यवस्थित रूप देने का श्रेय हमारे सामाजिक और लोक उन्मुख पहले कवि और समाज सुधारक गोरखनाथ को ही माना जा सकता है। गोरखनाथ ने अपने इस संप्रदाय को सिद्ध साधकों के वामाचार से न सिर्फ अलग किया अपितु अपने सम्प्रदाय को 'नाथ संप्रदाय' के रुप में प्रचलित भी किया। 'नाथ' शब्द में से 'ना' का अर्थ है 'अनादि रूप' और 'थ' का अर्थ है- भुवनत्रय में स्थापित होना। इस प्रकार 'नाथ'शब्द का अर्थ है वह अनादि धर्म, जो भुवनत्रय की स्थिति के कारण है। इस संप्रदाय के अंतर्गत आदिनाथ (स्वयं शिव), मत्स्यन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गहिणीनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, जालंधरनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचन्दनाथ कुल नौ नाथ हुए। इन्होंने अपनी शिक्षा और योग सिद्धियों और धार्मिक मान्यताओं के प्रचार के लिए जो साहित्य रचा वहीं नाथ साहित्य कहलाता है। नाथ साहित्य के संदर्भ में हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं कि "नाथ संप्रदाय में भी शास्त्रज्ञ विद्वान नहीं आते थे। इस संप्रदाय के कनफट रमते योगी घर के भीतर के चक्रों, सहस्त्रदल, कमल, इडा, पिंगला, नाड़ियों इत्यादि की ओर संकेत करने वाली रहस्यमयी बानियाँ सुनाकर और करामात दिखाकर अपनी सिद्धों की धाक सामान्य जनता पर जमाए हुए थे। वे लोगों को ऐसी बातें सुनाते आ रहे थे कि वेदशास्त्र पढ़ने से क्या होता है, बाहरी पूजा अर्चना की विधियां व्यर्थ हैं, ईश्वर तो प्रत्येक के घट के भीतर है, अंतर्मुख साधनों से ही वह प्राप्त हो सकता है, हिंदू मुस्लिम दोनों एक हैं, दोनों के लिए शुद्ध साधना का मार्ग भी एक है, जाति-पाँति के भेद व्यर्थ खड़े किए गए हैं।"[3]

नाथ संप्रदाय में गोरखनाथ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है इनका साहित्य सृजन 'गोरखवाणी' नाम से प्रचलित है। इस साहित्य में यदि कोई त्रुटि देखने को

मिलती है तो वह है गृहस्थ जीवन के प्रति उदासीनता भाव। नाथ पंथ के प्रमुख रचनाकार हैं, गोरखनाथ, चौरंगीनाथ, गोपीचंद चुणकरनाथ भरथरी का नाम प्रसिद्ध हैं। गोरखनाथ की हिन्दी की रचनाओं में गोरखबोध, गोरखनाथ की सत्रह कला, दत्त गोरख संवाद, योगेश्वरी माखी, नरवइ बोध, विराणपुराण, गोरख सार तथा गोरखनाथ बानी उपलब्ध हैं। हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त गोरखनाथ का कुछ साहित्य संस्कृत में भी प्राप्त होता हैं। अन्य नाथ कवियों की भी कुछ रचनाएँ मौखिक रुप से उपलब्ध है। हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ.पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ की चौदह रचनाओं को उनकी प्रामाणिक रचना मानकर 'गोरखबानी' नाम से उसका संपादन किया है। 'गोरखवानी' से ही हमें गोरखनाथ की रचनाओं बारे में ठीक से पता चलता है। गोरखनाथ ने अपनी रचनाओं में गुरु-महिमा, इन्द्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मनःसाधना, कुंडलिनी जागरण, शून्य समाधि इत्यादि का वर्णन किया है। इनकी रचनाओं में नीति और साधना पद्धति पर अत्यधिक जोर दिया गया है। गोरखनाथ ने सामाजिक कुरीतियों और बाह्याडंबर का पुरजोर खंडन किया और कथनी और करनी की एकता पर बल देने का कार्य किया है। गोरखनाथ के सामाजिक प्रतिरोध के बारे में हिंदी के प्रख्यात आलोचक हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा हैं कि- "गोरखनाथ की साधना का मूलस्वर शील, संयम और शुद्धतावादी है। उन्होंने तांत्रिक उच्छ्रृंखलताओं का विरोध निर्मम हथौड़े की चोट से साधु और गृहस्थ दोनों की कुरीतियों को चूर्ण-विचूर्ण करने में किया।"[4] गोरखनाथ ने नाथपंथ के विचार और सिद्धांतों को समाज के सभी वर्ग,जाति- उपजाति और संप्रदाय तक पहुंचाने का कार्य किया। नाथपंथ में गुरु का स्थान सर्वोपरि है। जैसे- "गुरु की जै गहिला निगुरा न रहिला। गुरु बिनं ग्यांन न पाईला रे भाईला ।।"[5]

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि नाथ सम्प्रदाय को गोरखनाथ ने लोक कल्याण और आम-जनमानस के लिए जिस रूप में विस्तार दिया उसे नाथ साहित्य के रूप में हम देख सकते हैं। नाथ साहित्य के संदर्भ में डॉ.रामकुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक में लिखा हैं कि "गोरखनाथ ने नाथ संप्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ है। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहां दूसरी ओर विकृत करने वाली समस्त परंपरागत रूढ़ियों पर भी आघात किया गया है। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आत्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ जी ने किया है।"[6] नाथ सम्प्रदाय के अनुयायी साहित्य सृजन की दृष्टि से नही बल्कि अपनी मानवीय संवेदना को वह जीव- जगत और मानव कल्याण के लिए लोक-जनमानस तक पहुँचाने का कार्य किया। यही कारण है कि नाथ साहित्य और गोरखनाथ के विचार और सिद्धांत आज भी लोक की स्मृति में सुरक्षित है। यही उसकी लोकप्रियता और प्रासंगिकता है।

संदर्भ ग्रंथ :-

1.गोरख-बानी,पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल,हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग,इलाहाबाद,पृष्ठ-11,26

2.हिंदी साहित्य: उद्भव और विकास, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,राजकमल प्रकाशन,पृष्ठ-31

3.हिंदी साहित्य का इतिहास,आचार्य रामचंद्र शुक्ल,प्रयाग पुस्तक सदन,इलाहाबाद,पृष्ठ-33

4.नाथ-संप्रदाय,आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,हिंदुस्तानी एकेडमी,उत्तर प्रदेश,इलाहाबाद,पृष्ठ-88

5.गोरख-बानी,पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल,हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग,इलाहाबाद,पृष्ठ-128

6. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास,डॉ.रामकुमार वर्मा,लोकभारती,प्रकाशन,नई दिल्ली,पृष्ठ-120

*****

दलित वैचारिकता एवं दलित आत्मकथा लेखन

-डॉ. अब्दुल हासिम
परामर्शदाता, इग्नू
सम्पर्क : ahasim.jamia@gmail.com

शोध सार- दलित वैचारिकी को परंपरागत भारतीय जन चेतना और जातीय व्यवस्था के सामने एक प्रश्न चिह्न और एक विरोधाभास की तरह देखने का प्रयास इस मायने में महत्त्वपूर्ण है कि दलित चेतना का उभार भारतीय समाज में नई भूमिका का आह्वान कर रहा है। भारत में विशेष रूप से स्वीकृत परंपराओं के आगे दलित अस्मिताओं का प्रतिरोध एक महत्त्वपूर्ण पहलू बन कर उभरा है जिसमें दलितों के राजनीतिक और सामाजिक उत्थान और विकास के साथ-साथ दलित समाज की अवस्थाओं का श्वेत-श्याम चित्रण जरूरी बात हो जाती है, इस मूलगामी दृष्टि के माध्यम से ही दरअसल हम सही मायने में दलित वैचारिकी का अध्ययन करने में सक्षम हो पाएँगे। दलित-आत्मकथाएँ दलित साहित्य की सबसे मारक विधा के रूप में उभरती हैं। यहाँ तक दलित कथा साहित्य में भी दलित आत्मकथाओं की ही छाप दिखाई देती है। दलित आत्मकथाओं ने अपने प्रामाणिक अनुभव द्वारा सामाजिक सच को अपने नजरिये से प्रस्तुत करते हुए अमानवीयता को उद्घाटित किया है।

बीज-शब्द: दलित-वैचारिकी, दलित-आत्मकथाएँ, दलित-संस्कृति, दलित-चेतना, प्रतिरोध, राजनीतिक चेतना, आरक्षण, दलित-सौंदर्यशास्त्र।

हिंदी साहित्य में दलित लेखन ठोस वैचारिकता की जमीन से प्रस्फुटित हुआ है। भारतीय इतिहास का संघर्षशील दौर दलित लेखन की दिशा को तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज जब हम साहित्य के विभिन्न पहलुओं को सूक्ष्मता से समझने और परखने की कोशिश कर रहे हैं तब यह अति आवश्यक हो जाता है कि हम विभिन्न वैचारिकियों के आलोक में अस्मिता पर लेखन को भी समझने और देखने की कोशिश करें। वैचारिकी का अर्थ केवल किसी विशेष विचारधारा का अनुपालन करना नहीं है बल्कि समाजशास्त्रीय सूत्रों को समझते हुए साहित्य की मूलगामी भूमिका को भी उद्घाटित करना है। दलित लेखन में विशेषकर आत्मकथा का गौरवशाली इतिहास रहा है जिसने भविष्य की पीढ़ियों को भी उद्वेलित एवं आंदोलित करने का कार्य किया है ऐसे में किस तरह इन आत्मकथाओं पर दलित लेखन की मूल वैचारिकियों का प्रभाव रहा है उसे समझना अत्यंत आवश्यक है।

दलित प्रतिरोधात्मकता के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो जो एक महत्त्वपूर्ण बिंदु उभर कर आता है वह है दलित आत्मानुभव द्वारा चिंतन की क्रांतिधर्मिता का प्रस्फुटन। दलित चिंतक, विचारक अथवा साहित्यकार सभी में अनुभव की महत्ता को रेखांकित किया जा सकता है। दलित आत्मकथाओं में अनुभव की इसी दीप्त चेतना का प्रभाव परिलक्षित होता है, महत्त्वपूर्ण है कि यह अनुभव किसी एकांतिक अस्तित्व-दर्शन का प्रतिपादन नहीं है अपितु अपने काल-समाज के द्वंद्व से उपजा है। समाज में व्याप्त ठस एवं जड़ चेतना पर प्रहार करता है। दलित आत्मकथाओं में स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है, यह आत्मकथाएँ अपने अनुभवों की कटु सच्चाइयों के माध्यम से सामाजिक क्रांतिधर्मिता का आह्वान हैं तथा सामाजिक संरचना में मूलभूत परिवर्तन की मांग भी हैं। दलित आत्मकथाएँ इसलिए राजनीतिक चेतना की निर्वाहक रही हैं। दलित अभिव्यक्ति सत्ता-संरचना पर प्रहार भी करती है और सत्ता और शक्ति के द्वैत को समाप्त भी करना चाहती हैं।

उदारीकरण के बाद वंचित-साहित्य में, विशेषकर दलित एवं आदिवासी साहित्य में प्रतिरोधात्मकता स्वत: स्फूर्त थी। यह इसलिए भी साहित्य में मुख्य रूप से मुखर होने लगी क्योंकि उदारीकरण के बाद सामाजिक शोषण की पुरानी पद्धतियाँ पूंजीवाद के विकास में बाधक सिद्ध होने लगी। स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति के समीकरण तेज़ी से बदले थे और जन-आंदोलनों ने इस में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। संविधान में किए गए सामाजिक समता के प्रावधानों ने भी दलित समुदाय को क़ानूनी रूप से यह शक्ति प्रदान की कि वह भी उन सभी अधिकारों को प्राप्त करे जो मनुष्य को किसी भी विभेद से मुक्त करे और सभी को सामाजिक रूप समान अवसरों को प्रदान करे, उल्लेखनीय है, "वर्तमान समय में दुनिया का अधिकांश सर्वश्रेष्ठ साहित्य आजादी की चाह के लिए ही लिखा जाता है। अगर हम भारतीय संदर्भ में बात करे तो यहाँ के दलित साहित्य में भी सदियों से प्रताड़ित, शोषित, दमित, पराजित दलितों की आवाज और आकांक्षा व्यक्त होती है। दलित साहित्य में सामाजिक ऐतिहासिक, अनुभवों की गहरी अभिव्यक्ति और मानव जीवन की दशाओं के बारे में अपनी अलग अंतर्दृष्टि है इसमें विरोध एवं आक्रोश का स्वर है इसमें ब्राह्मणवादी व्यवस्था से पीड़ित और प्रताड़ित व्यक्ति की आवाज सुनाई देती है, इसमें व्यवस्था से आजादी या स्वतंत्रता के साथ समता और बंधुत्व की भावनाओं की गहरी अभिव्यक्ति मिलती है।"[1] भारतीय राजनीति के पिछले कुछ दशक इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण रहे हैं, अस्सी के दशक में हुए जन-आंदोलन ने भी बहुजन राजनीति को नई शक्ति प्रदान की। भारतीय राजनीति में दलित नेताओं का हस्तक्षेप ही नहीं बढ़ा बल्कि राजनीतिक रूप से दलित समुदाय को पहली बार पहचान भी मिली। डॉ. आंबेडकर के अनुसार, "दलितों में आत्मसम्मान का भाव जाग्रत होना चाहिए....दलितों को सत्ता के सूत्र और कानून बनाने की ताकत हासिल करनी चाहिए।"[2] जिस चेनता का सूत्रपात ज्योतिबा फुले ने किया, आंबेडकर ने जिसे क्रांति के रूप में परिणत किया तथा मूलगामी परिवर्तन का आह्वान किया उसका राजनीतिक प्रतिरूपण

दलित नेताओं के निर्वाचन एवं संवैधानिक पदों पर दलितों के पहुंचने के रूप में दिखाई देने लगा। प्रियंका सोनकर लिखती हैं, "अस्सी का दशक दलित राजनीति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण था। जिस समकालीन दलित विमर्श की चर्चा जोरों पर थी, उसका उदय इसी काल में हुआ। इसी अस्सी के दशक में दलित राजनीति को अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाने का अवसर मिला। 1980 में कांशीराम 'बामसेफ' (बैकवर्ड एंड मायनारिटीज शेड्यूल्ड कास्ट इंप्लाई फेडरेशन) के माध्यम से भारतीय समाज में एक नया दलित विमर्श लेकर अवतरित हुए। 'रिपब्लिकन पार्टी' के पतन के बाद कांशीराम ने दलित वर्गों को लामबंद करना शुरू किया। इसके तहत उन्होंने सबसे पहले दलित, पिछड़े और अल्पसंख्यक समुदाय के कर्मचारियों का फेडरेशन (बामसेफ) कायम किया, जिसकी स्थापना तो यद्यपि 1978 में ही उन्होंने कर ली थी पर उसका व्यापक असर 1980 में देश में दिखाई दिया । इस नए दलित विमर्श ने दलित वर्गों को सबसे ज्यादा प्रभावित किया।" [3]सातवें-आठवें दशक के संक्रमण काल से ही दलित आत्मकथाओं के प्रकाशन की नई परिपाटी विकसित होती दिखाई देती है जिसमें आत्मानुभवों के माध्यम से सामाजिक शोषण तंत्र को अनावृत करने का कार्य किया। आत्मकथा लेखन की मुख्य परिपाटी से यह अलग लीक थी। जिसमें दलित समाज के आकांक्षाओं का स्वर भी समर्थता से व्यक्त हुआ। दलित आत्मकथाओं को चिंतन की नई परंपरा का समर्थक भी माना जा सकता है।

दलित आत्मकथाओं में राजनीतिक प्रतिरोधात्मकता का विश्लेषण करने के लिए यह आवश्यक है कि उन वैचारिक प्रभावों का विश्लेषण भी किया जाए जिसने दलित चेतना का निर्माण किया है। दलित चेतना के निर्माण और उसके प्रसार का अध्ययन भी किया जाए। दलित साहित्य का विमर्श रूप में प्रसार बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की देन कही जा सकती है। दलित आत्मकथाओं में आरंभ से ही आत्मभिव्यक्ति की तुष्टि से अधिक सामाजिक पीड़ा और संघर्ष को लक्षित करना था। आत्मकथाएँ जीवन अनुभव के दर्पण में मनुष्य को वह स्पेस देती हैं जिसमें पाठक स्वयं को खड़ा पाता है और उसके माध्यम से अपने संघर्षों के प्रति नवीन दृष्टि को प्राप्त करता है- "आत्मकथा के बारे में कहा जा सकता है कि यदि यह निजी इतिहास नहीं है, उसमें समाज का कोई भी पाठक अपनी स्थिति पहचान सकता है। हर आत्मकथा में 'मैं' और 'वे' के अलावा एक तुम होता है। यह एक व्यापक 'तुम' है, जो समुदाय निरपेक्ष है। हर आत्मकथा सहृदय पाठक से पूछती है, तुम कहा खड़े हो? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हर पाठक आत्मकथा भी रचता है, यह अपने को पुनर्उपलब्ध कराता है।"[4] दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में इस व्यापक तुम में संभावनाओं का व्यापक प्रसार संभव है। चेतना का प्रसार संभव है, समतामूलक समाज के लिए आवश्यक सहृदयता का भाव व्याप्तता है। यही कारण है कि इन आत्मकथाओं के प्रभाव के विस्तृत प्रभाव से इनकार नहीं किया जा सकता।

विमर्श आधारित चिंतन ने यह तय किया कि साहित्य में बने सत्ता तंत्र को उखाड़ फेंका जाए। अपने मनमाफिक साहित्य को प्रवृत्ति एवं काल के आधार पर विवेचित करने की एकरेखीय पद्धति को अस्वीकार किया जाए। उत्तर-आधुनिक विमर्श ने जिस तरह पश्चिम में स्वयम्भू एवं वर्चस्व का विरोध किया उसी प्रकार भारत में विमर्शों ने उस केंद्रीयकरण खत्म किया जिसने साहित्य को कभी तो आनंद, कभी क्रांति और कभी कला के जद मानकों पर ही कसने में अपनी सफलता समझी थी। प्रो. शम्भुनाथ इस संदर्भ में लिखते हैं,"सामुदायिक विमर्श पर आधारित साहित्य का एक योगदान यह है कि इसने साहित्य का केंद्रीयकरण खत्म किया और विविधता को प्रोत्साहित किया। इसने स्वयंभू साहित्यिक नेताओं की इजारेदारी दूर की। साहित्य बहु-केंद्रित हुआ। एक बार लघु पत्रिकाओं ने साहित्य को केंद्रित किया था इस बार विमर्शों ने उसी काम को आगे बढ़ाया।"[5] दलित चेतना के इन आयामों की चर्चा इसलिए भी देखना आवश्यक है क्योंकि प्रतिरोध का जो स्वरूप दलित विमर्श ने प्रेषित किया है वह बहु-आयामी है और कि मोर्चों पर लगातार लड़ा जाता रहा है और तब तक लड़ा जाता रहेगा जब तक वर्ण आधार शोषण का कोई भी पद-चिह्न शेष रहता है। दलित आत्मकथाएँ सामाजिक जड़ताओं पर प्रहार करने के साथ प्रतिरोध संस्कृति को भी विकसित करना चाहती हैं। वंचित तबके के सत्य को समाज के सामने लाकर उसका आईना दिखाना चाहती हैं। दलित आत्मकथाओं का उद्देश्य बहुत व्यापक है जिसमें आमूल-चूल परिवर्तन का स्वप्न निहित है, शंभुनाथ इसके व्यापक अर्थो को विवेचित करते हुए लिखते हैं- "दलित साहित्य, जो मुख्यत: आत्मकथाओं के रूप में सामने आया, दलित चेतना का उदाहरण है। दलित साहित्य दलित पर अत्याचार को एक बड़े सामाजिक यथार्थ के रूप में देखा गया है। इसमें संदेह नहीं कि इसका संबंध ऐसे लेखकों के साहित्य से हैं जिन्होंने खुद भूख, अवमानना, भेदभाव, अपमान और शर्म की जिंदगी जी है ऐसी जिंदगी से उन्हें बिल्कुल इंकार है। उन्होंने अब ना सिर्फ सामाजिक जंजीरे तोड़ दी हैं, बल्कि अपनी भाषा और मुहावरे भी बनाए हैं। उन्होंने अपना एक विकासशील सौंदर्यशास्त्र रचा है, हालांकि वैश्वीकरण के सौंदर्यशास्त्र से उसका रिश्ता स्पष्ट होना बाकी है, आमतौर पर दलित लेखक राजनीतिक सत्ता संघर्ष से एकाकार नहीं हुए हैं। कहा जा सकता है, दलित विमर्श कब तक बना रहेगा, जब तक दलित की अवमानना और उस पर अत्याचार होते रहेंगे।" [6]इसी बात की पुष्टि करते हुए हरिनारायण ठाकुर लिखते हैं कि "दलितों ने सामाजिक मुद्दों के साथ-साथ आर्थिक मुद्दों की लड़ाइयाँ लड़ी। भूमि का बंटवारा, जातिगत बेगारी और दिहाड़ी आदि के श्रम से मुक्ति के आंदोलन भी चलाए गए।"[7] उपरोक्त कथन के आलोक में हम इन आत्मकथाओं में निहित राजनीतिक प्रतिरोध के लक्ष्य स्पष्टत: समझ सकते हैं। यह प्रतिरोध आनुभविक प्रमाण के आधार पर संवाद स्थापित करना चाहता है।

दलित आत्मकथाएँ दलित साहित्य में केंद्रीय प्रवृत्ति के रूप में उभरीं जिसमें सामाजिक सच्चाई अपनी विद्रूपता के साथ प्रकट हुई है। उपन्यास अथवा अन्य कथा साहित्य की तुलना में आत्मकथाएँ बृहद सत्य को उद्घाटित करने का कार्य करती हैं। इसमें मनुष्य जातिवाद की पीड़ा का भयावह सच उभरकर आया जिसे सामाजिक संरचना के रूप में विभिन्न तर्कों से जायज ठहराने की कोशिश की जाती रही थी। दलित आत्मकथाओं में पहली बार दलित चिंतकों ने उन संबंधों को भी उद्घाटित किया जिसकी बात

अवधारणात्मक रूप से सबाल्टर्न विमर्श करता आ रहा था। दलित आत्मकथाओं ने उस संबंध पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जिसे उत्तर-आधुनिक विमर्श में सेल्फ एंड 'अदर' यानी कि 'आत्मा' और 'अन्य' के रूप में विवेचित किया जाता रहा है। दलित साहित्य ने पहली बार यह प्रयास किया कि वह अन्य के रूप में उस समाज को चित्रित करें जिसने आज तक शूद्रों और वंचितों को हाशिए पर रखने का प्रयास किया। दलित आत्मकथाओं ने उस सत्य को अपने अनुभव तथा पीड़ा के माध्यम से स्वर दिया जिसे साहित्य और इतिहास में अब तक हाशिए पर रखा था। डॉ॰ विमलकीर्ति लिखते हैं कि, "दलित साहित्य में आत्मकथात्मक लेखन को अधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है....आत्मकथा लेखन ज़्यादातर वास्तविक होता है, उसमें काल्पनिकता का विशेष महत्त्व नहीं होता, उसमें व्यक्ति तथा समाज की सच्चाई प्रमुखता से सामने आती है। आत्मकथा लेखन सिर्फ प्रसंगों और घटनाओं का पोथा नहीं है, उसमें साहित्य का गुण, पठनीय, जीवन की सच्चाई, समाज और अपने काल की वास्तविकता तो आनी ही चाहिए। उसी प्रकार आत्मकथात्मक लेखन ज़्यादातर व्यक्तिवादी या व्यक्ति केंद्रित नहीं, बल्कि व्यक्ति के माध्यम से समाज की और व्यवस्था की सच्चाई प्रदर्शित करने वाली होनी चाहिए।"[8] यह परिवर्तन क्रांतिकारी भी कहा जा सकती है क्योंकि इस साहित्य के प्रचलन ने इस बात को पुष्ट किया कि मुख्यधारा का साहित्य दरअसल सत्ता में काबिज़ उन लोगों की साजिश है जो लगातार स्वयं को सत्ता में बनाए रखने के लिए तरह-तरह के शोषण तंत्र तैयार करते हैं और उसे उचित ठहराने के लिए धर्म एवं सामाजिक अनुशासन की बात करते आए हैं। भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था इसी राजनीति का प्रतिफल था। जिस पर पहला प्रश्न चिह्न ज्योतिबा फुले ने लगाया और इस षड्यंत्र पर प्रकाश डाला कि वर्ण-व्यवस्था दरअसल ब्राह्मणवादी समाज की साजिश है जो यह चाहता है एक समाज उसकी गुलामी करे और वह समाज के सर्वोच्च पदों पर अपने आप को काबिज़ रखने के षड्यंत्र में कामयाब हो जाएँ। साठ के दशक में दलित पैंथर्स आंदोलन के दौरान पहली बार दलित चेतना की व्यापकता पर प्रकाश डाला गया और इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि इस चेतना का प्रसार बहुसंख्यक समाज में होना अतिआवश्यक है। हिंदी में दलित आत्मकथाएँ मुख्यतः 90 के बाद ही लिखी गई, किंतु हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि उसमें व्याप्त चेतना का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य है, जो अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के बाद दलित समुदाय में धीरे-धीरे आई और जिसे आंबेडकरवादी चिंतन ने साकार किया। दलित आत्मकथाओं का सबसे समर्थ रूप में मराठी जगत में दिखाई देता है जो कि हिंदी जगत में अनुकरण के रूप में ही आया, यही कारण है कि मराठी में लिखी गई आत्मकथाएँ अधिक क्रांतिकारी एवं मूलगामी में परिवर्तन की आकांक्षी हैं किंतु हिंदी की आत्मकथाएँ उस मायने में कमजोर सिद्ध होती हैं। शरण कुमार लिंबाले का कहना है- 'मराठी लेखक आंदोलन से जुड़ा है, इसलिए आक्रामक है, मगर हिंदी लेखक सरकारी नौकर, मुख्यधारा के साहित्य वाली मानसिकता से बुरी तरह ग्रस्त है।'[9] शरण कुमार लिंबाले के इस कथन से सहमति और असहमति के अपने बिंदु हो सकते हैं किंतु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मराठी में लिखी गई दलित आत्मकथाएँ हिंदी में लिखी गई दलित आत्मकथाओं से कहीं अधिक प्रभावी हैं। मोहनदास नैमिशराय का कथन भी इस सन्दर्भ में महत्वपूर्ण है, **"मराठी में दलित आत्मकथाओं की संख्या दो सौ के लगभग बतायी जाती है. हिंदी तथा अन्य भाषाओं में भी तेज़ी के साथ आत्मकथाएं लिखी जा रही हैं. आत्मकथा दलित सहित्य की महत्त्वपूर्ण विधा है. दलित आत्मकथा पढ़ते हुए मज़े लेना नहीं बल्कि गम्भीरता से दलितों के विषमतापूर्ण जीवन और उनकी त्रासदियों में डूब उतरना है. आत्मकथाएं लिखते हुए दलित लेखकों को गर्म सलाखें छूने जैसा अनुभव होता है क्योंकि आत्मकथाओं में इतिहास के साथ उनकी स्मृतियां भी उतरती हैं. पीड़ा और आक्रोश उभरता है. और उतरती हैं उनके तल्ख जीवन की सच्चाइयां, जिनमें उनके लिए सिर्फ़ बेचैनी का सबब होता है. वैसा जीवन क्या आज भी दलित जी रहे हैं? मेरा जवाब हां में होगा. जीवन के हर मोड़ पर दलित को अभी भी उसकी अपनी जाति के सवालों से रू-ब-रू होना पड़ता है और कुछ को स्वाभिमान से जवाब देने के जुर्म में उसकी कीमत भी चुकानी पड़ती है."**[10] यह कहना गलत नहीं होगा कि मराठी आत्मकथाओं के अनुकरण में ही हिंदी में भी दलित आत्मकथा लिखने का प्रचलन तेजी से बढ़ा। महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि पिछले दो दशकों में हिंदी में जो दलित आत्मकथाएँ आई हैं अधिक परिपक्व और समर्थ चेतना से भरी हुई हैं।

दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह भी है कि दलित आत्मकथाएँ आत्म-अभिव्यक्ति से ज्यादा सामाजिक अभिव्यक्ति की ओर उन्मुख होती हैं। दलित आत्मकथा की यह सामाजिकता उसे राजनीतिक चेतना से पूर्ण बनाती है। इस तरह पिछले कुछ दशकों में भारतीय बौद्धिक चेतना में वर्ण-व्यवस्था के प्रति जो रोष दिखाई देता है उसमें दलित चेतना एवं आंदोलनों का व्यापक प्रभाव रहा है। सामाजिक संरचना में हाल के वर्षों में जिस समानता पर भारतीय राजनीति केंद्रित हुई है उसके कारणों की विवेचना भी आवश्यक है। दलित चेतना ने यह तो अवश्य तय किया है कि संविधान द्वारा दी गई समर्थता ने पुरानी सामाजिक व्यवस्था को शोषणकारी सिद्ध करने के साथ इस बात को भी सुनिश्चित करने का प्रयास अवश्य किया है कि आने वाली पीढ़ियाँ कम से कम इस विषमता के दंश से खुद को बचा पाए और बेहतर सामाजिक संरचना को स्थापित की जा सके। दलित आत्मकथा की पीड़ा में, उसकी अपनी अभिव्यक्ति में चेतना एवं जागरूकता के बीज छुपे हुए हैं। दलित आत्मकथाओं ने दरअसल समाज के अन्य तबकों से अपनी शर्तों पर संवाद स्थापित करने का प्रयास किया और यही कारण है कि तार्किक और वैज्ञानिक सोच से विकसित हुई आधुनिक पीढ़ी ने इस वर्ण-व्यवस्था का समर्थन ही नहीं किया बल्कि वर्ण-व्यवस्था को घोर अन्यायकारी एवं मनुष्य जाति के नाम पर काला धब्बा भी माना है। भारतीय राजनीति में इसी कारण सामंतवाद की पकड़ कमजोर हुई और बहुसंख्यक समाज के स्वर को सुनने का प्रयास उसे करना पड़ा। दलित साहित्य ने यह सुनिश्चित किया कि वह मुख्यधारा के साहित्य के बरअक्स अपनी आवाज को ना सिर्फ स्थापित करें बल्कि साहित्य में भी स्थापित वर्ण-व्यवस्था की जड़ों को समूल नष्ट

ISSN-2321-1504Naagfani RNINO.-UTTHIN/2010/34408

कर पाए।

हिंदी साहित्य में अस्मितावादी स्वरों की पहचान को नई सदी में सबसे अधिक तवज्जो मिली है। इसके कारण सामाजिक एवं राजनीतिक होने के साथ-साथ विभिन्न अंतर-अनुशासनात्मक अध्ययनों की देन भी मानी जा सकती है जिन्होंने अपने अध्ययन में इस बात को स्पष्ट किया कि अभी तक प्राप्त सभी साहित्य, अध्ययन तथा इतिहास भी सही मायने में उस सत्य को उद्घाटित नहीं करते जो घटित हुए थे। अभी तक का इतिहास एवं मानवीय अभिव्यक्ति जो स्वीकृत एवं प्राप्त होती है वर्चस्ववादी समाज की अभिव्यक्ति एवं इतिहास है। वंचित एवं शोषित द्वारा लिखित इतिहास और अभिव्यक्ति प्राप्त होता है और ना ही उसका कोई उल्लेख मिलता है। इसका कारण यह भी रहा कि संघर्षशील समुदाय की अभिव्यक्तियों को जानबूझकर नष्ट किया गया। तथ्यों को वर्चस्ववादी समाज ने अपने अनुसार प्रस्तुत किया, उसकी विवेचना अपने अनुसार की, तर्क भी अपने अनुसार बनाएँ और इस तरह एक सोची-समझी राजनीति के तहत अभी तक का प्राप्त साहित्य यहाँ तक कि इतिहास भी घटनाओं एवं विवरणों को साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करता आया है। अस्मितावादी विमर्श ने न सिर्फ इन तथ्यों की तरफ ध्यान दिलाया बल्कि इस साजिश को भी उद्घाटित करने का कार्य किया। उत्तर आधुनिक समय में अस्मितावादी स्वर को वर्चस्व के खिलाफ एक आवश्यक हस्तक्षेप के रूप में देखा गया। उत्तर आधुनिक चिंतन में उन सभी स्वरूप को स्वीकारा जिसे आज तक मुख्यधारा का साहित्य नगण्य या अनावश्यक मानता आया था। इस इस चिंतन में प्रगतिशील साहित्य की गतिशीलता को भी चिह्नित किया क्योंकि वह विविधतावादी स्वरूप को संपूर्ण क्रांति के लिए बाधक मानता आया था। इस तरह अस्मितावादी विमर्श अतितोंमुखी भी कहा गया और इसकी आलोचना भी की गयी। इन सभी आलोचनाओं के जवाब के रूप में भी दलित आत्मकथाओं को देखा जा सकता है जिन्होंने इस बात का प्रमाण दिया कि आज भी दलितों का शोषण एवं उनके अधिकारों से उन्हें वंचित करने की साजिश समाज में चलती आ रही है। जिस दहेज एवं मानसिक हिंसा का सामना दलित को करना पड़ता है आज भी अन्य समुदाय के लोगों को उसका सामना नहीं करना पड़ता। मुख्यधारा के साहित्य में व्याप्त इस ब्राह्मणवादी सोच पर प्रश्नचिह्न लगाने का प्रयास करती है और इसमें काफी हद तक वह सफल भी हुई है। इस विवेचना से यह सिद्ध होता है कि दलित आत्मकथा में राजनीतिक प्रतिरोध का स्वर सामाजिक स्तरों पर मूलगामी परिवर्तन का प्रयास है और उसे साकार करने के लिए अथक प्रयास किया जा रहा है।

सन्दर्भ:

1. https://sablog.in/dalit-literature-incomplete-without-ambedkar-jan-2018/
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- शरण कुमार लिंबाले, पृष्ठ-52
3. प्रियंका सोनकर, स्त्रीकाल, https://streekaal.com/2017/07/from-kanshiram-tomayawati-dalit-politics-and-dalit-women-qestion/
4. हिंदी उपन्यास राष्ट्र और हाशिया- शंभुनाथ, पृष्ठ 305
5. वही, पृष्ठ 305
6. वही, पृष्ठ, 300
7. दलित साहित्य का समाजशास्त्र- हरीनारायण ठाकुर, पृष्ठ-250
8. दलित दखल- डॉ. विमलकीर्ति, 1999, पृष्ठ- 90
9. शरण कुमार लिम्बाले, साक्षात्कार, 2014
10. मोहनदास नैमिशराय, नवनीत, अप्रैल 2016, पृष्ठ https://www.navneethindi.com/दलित-आत्मकथाओं-की-अंतर्व/

*****

राजी सेठ की कहानियों में प्रेम और सौन्दर्य की नई अवधारणा

डॉ गीता रानी,
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिंदी विभाग, जनता वैदिक कॉलेज, बड़ौत (बागपत).
Email - drgeetarani14@gmail.com

अनिता देवी,
शोधार्थी,
जनता वैदिक कॉलेज, बड़ौत(बागपत).
Email -anitakalshyan@gmail.com.

सार

राजी सेठ हिंदी साहित्य की प्रतिष्ठित कथाकार हैं, जिनकी कहानियाँ प्रेम और सौंदर्य की पारंपरिक अवधारणाओं को चुनौती देकर उन्हें एक नया, बहुआयामी और गहन स्वरूप प्रदान करती हैं। यह शोध पत्र उनके साहित्य में प्रेम और सौंदर्य की विशिष्ट व्याख्याओं का अध्ययन करते हुए समकालीन हिंदी साहित्य में उनके योगदान को रेखांकित करता है। राजी सेठ के साहित्य में प्रेम केवल भावनात्मक आकर्षण तक सीमित नहीं रहता, बल्कि आत्मनिरीक्षण और अस्तित्व की खोज की प्रक्रिया बन जाता है। उनकी कहानियों में प्रेम सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देने के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को भी उजागर करता है। उनकी कहानियों में नायिका प्रेम को आत्म-खोज के रूप में देखती है, जबकि विवाह संस्था की पारंपरिक व्याख्या को खारिज कर प्रेम को व्यक्तिगत स्वतंत्रता और भावनात्मक साझेदारी का प्रतीक बनाया गया है। इसी प्रकार, प्रेम सांस्कृतिक पहचान और वैश्विक नागरिकता के विचार को बल देता है। सौंदर्य की अवधारणा भी उनके साहित्य में बाह्य आकर्षण तक सीमित न होकर आंतरिक गुणों, संवेदनशीलता और आत्मबोध से परिभाषित होती है। उनके साहित्य में सौंदर्य के पारंपरिक सामाजिक मानकों को चुनौती दी जाती है, जबकि नायिका गहरे रंग के कारण सामाजिक भेदभाव का सामना करते हुए आत्मबोध और बुद्धिमत्ता के माध्यम से सौंदर्य की नई परिभाषा गढ़ती है। राजी सेठ के साहित्य में प्रेम और सौंदर्य परस्पर पूरक हैं, जहाँ प्रेम आंतरिक सौंदर्य को पहचानने और आत्मिक उन्नति का मार्ग बनता है। उनकी कहानियाँ हिंदी साहित्य में प्रेम और सौंदर्य की अवधारणाओं को एक दार्शनिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आयाम प्रदान करती हैं, जो परंपरागत दृष्टिकोणों से अलग होते हुए व्यक्ति की आत्मनिर्भरता और सामाजिक परिवर्तन का प्रतीक बन जाती हैं।

प्रस्तावना

राजी सेठ हिंदी साहित्य की एक प्रमुख कथाकार हैं, जिनकी रचनाएँ मानवीय संवेदनाओं, सामाजिक विद्रोह, और आत्मिक खोज के गहन चित्रण के लिए जानी जाती हैं। उनकी कहानियों में प्रेम और सौंदर्य की अवधारणाएँ पारंपरिक दृष्टिकोण से हटकर एक नवीन और बहुआयामी स्वरूप ग्रहण करती हैं। यह शोध पत्र राजी सेठ के साहित्य में प्रेम और सौंदर्य की विशिष्ट व्याख्या को उनकी कहानियों के माध्यम से विश्लेषित करते हुए, समकालीन हिंदी साहित्य में उनके योगदान को रेखांकित करता है।

प्रेम की अवधारणा: मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

राजी सेठ के साहित्य में प्रेम केवल भावनात्मक आकर्षण नहीं, बल्कि एक आत्मनिरीक्षण की प्रक्रिया है। उनकी कहानी **"एक ठांव कहीं"** (सेठ, 1998) में नायिका प्रेम को अपने अस्तित्व की खोज के रूप में अनुभव करती है। यहाँ प्रेम शारीरिक आकर्षण से आगे बढ़कर आत्मा की गहराइयों तक पहुँचता है। नायिका का संघर्ष उसके "स्व" और "पर" के बीच का द्वंद्व है, जो प्रेम को एक मानसिक यात्रा बना देता है। शर्मा (2020) के अनुसार, राजी सेठ के पात्र प्रेम के माध्यम से अपनी असुरक्षाओं और अंतर्द्वंद्वों का सामना करते हैं, जो उन्हें वास्तविकता से जोड़ता है। मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के संदर्भ में, फ्रॉयड के "इड, ईगो, और सुपर-ईगो" के सिद्धांत के अनुसार, नायिका का संघर्ष उसके ईगो (अहं) और सुपर-ईगो (सामाजिक नैतिकता)

के बीच का संतुलन दर्शाता है। वहीं, कार्ल युंग के "आर्केटाइप्स" के अनुसार, प्रेम उसके "अनिमा" (स्त्रीत्व) के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास है।

राजी सेठ की रचनाओं में प्रेम सामाजिक मानदंडों के विरुद्ध एक सशक्त हथियार भी है। **"सात फेरे"** (सेठ, 2001) में विवाह संस्था की पुनर्व्याख्या की गई है। पात्र विवाह को समाज की अपेक्षाओं के बजाय एक व्यक्तिगत बंधन के रूप में देखते हैं। यह कहानी समाज के रूढ़िवादी ढाँचे को चुनौती देती है, जहाँ प्रेम स्वतंत्रता और समानता का प्रतीक बन जाता है। पांडेय (2019) के अनुसार, राजी सेठ का साहित्य "प्रेम को सामाजिक परिवर्तन का माध्यम" मानता है। उदाहरण के लिए, कहानी में नायिका कहती है, *"हमारे रिश्ते की डोर समाज के हाथों में नहीं, हमारे दिलों में बँधी है"* (सेठ, 2001, पृष्ठ 45)। यह वाक्य पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं की भूमिका पर सवाल उठाता है और विवाह को "सामाजिक अनुबंध" के बजाय "भावनात्मक साझेदारी" के रूप में प्रस्तुत करता है।

सांस्कृतिक संदर्भ में, **"दूसरा किनारा"** (सेठ, 2000) में प्रेम सांस्कृतिक पहचान के संघर्ष से जुड़ा है। नायक और नायिका अलग-अलग सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आते हैं, और उनका प्रेम समाज की सीमाओं को तोड़कर एक नई सांस्कृतिक समझ का निर्माण करता है। यहाँ प्रेम "वैश्विक नागरिकता" की ओर इशारा करता है, जो पारंपरिक विभाजनों से ऊपर उठता है। उदाहरण के लिए, नायक (उत्तर भारतीय) और नायिका (दक्षिण भारतीय) के बीच भाषा, रीति-रिवाजों का अंतर प्रेम के माध्यम से सांस्कृतिक एकीकरण की कोशिश को दर्शाता है। समकालीन साहित्य से तुलना करें तो मन्नू भंडारी के **"आपका बंटी"** में प्रेम व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संदर्भ में है, जबकि राजी सेठ इसे सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन से जोड़ती हैं।

सौंदर्य की अवधारणा: आंतरिकता और सामाजिक प्रतिमान

राजी सेठ के साहित्य में सौंदर्य का आधार बाहरी आकर्षण नहीं, बल्कि आंतरिक गुण हैं। **"सपनों की कोई सीमा नहीं"** (सेठ, 1998) की नायिका शारीरिक रूप से सामान्य है, लेकिन उसकी संवेदनशीलता और दृष्टिकोण उसे विशिष्ट बनाते हैं। यह कहानी "सौंदर्य के मापदंडों की पुनर्परिभाषा" करती है (शर्मा, 2020)। सैद्धांतिक आधार पर, कांट के "सौंदर्यशास्त्र" के अनुसार, सौंदर्य को नैतिकता और बुद्धिमत्ता से जोड़ा जाता है, जबकि टैगोर की अवधारणा में "सौंदर्य सत्य का आवरण है।"

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में, **"एक ठांव कहीं"** के पात्र अपने सौंदर्य को आत्म-स्वीकृति के माध्यम से परिभाषित करते हैं। नायक का आत्मसंघर्ष यह दर्शाता है कि सौंदर्य एक मानसिक प्रक्रिया है, जो आत्मविश्वास और आत्मज्ञान से जुड़ी है। उदाहरण के लिए, नायक अपने प्रतिबिंब को देखकर सोचता है, *"क्या यह चेहरा वास्तव में मैं हूँ? या वह व्यक्ति जो मैं होना चाहता हूँ?"* यह प्रश्न उसकी आत्म-पहचान के संघर्ष को उजागर करता है।

सामाजिक मानकों के प्रतिरोध में, **"आत्मकथा"** (सेठ, 2000) की नायिका समाज के "गोरे रंग" के मानदंड को चुनौती देती है। उसका संघर्ष दर्शाता है कि सौंदर्य के सामाजिक प्रतिमान अक्सर व्यक्ति की आंतरिक पहचान को नष्ट कर देते हैं। पांडेय (2019) के अनुसार, यह कहानी "सौंदर्य के नाम पर होने वाले उत्पीड़न" की ओर संकेत करती है। उदाहरण के लिए, नायिका को उसके गहरे रंग के कारण समाज में हीन समझा जाता है, लेकिन वह अपनी बुद्धिमत्ता और संवेदनशीलता के माध्यम से इस पूर्वाग्रह को तोड़ती है।

प्रेम और सौंदर्य का अंतर्संबंध

राजी सेठ के लिए प्रेम और सौंदर्य दोनों ही आत्मिक अनुभव हैं। **"अनकही"** (सेठ, 2001) में नायक का प्रेम नायिका के आंतरिक सौंदर्य को पहचानने से उपजता है, जो समाज के बाहरी मापदंडों से परे है। यहाँ प्रेम और सौंदर्य एक-दूसरे के पूरक हैं, जो व्यक्ति को समग्रता की ओर ले जाते हैं। दार्शनिक संदर्भ में, प्लेटो के "सिम्पोजियम" के अनुसार, प्रेम सत्य और सौंदर्य की खोज है, जबकि ओशो की अवधारणा में "प्रेम सौंदर्य का प्रतिबिंब है।"

निष्कर्ष

राजी सेठ की कहानियाँ प्रेम और सौंदर्य की पारंपरिक अवधारणाओं को एक नई दिशा प्रदान करती हैं, जहाँ ये मात्र बाहरी आकर्षण या सामाजिक मान्यताओं तक सीमित नहीं रहते, बल्कि आत्मिक अनुभव और अस्तित्व की खोज का माध्यम बन जाते हैं। उनका साहित्य प्रेम को केवल एक भावनात्मक बंधन न मानकर आत्मनिरीक्षण, स्वतंत्रता और सामाजिक चेतना का प्रतीक बनाता है। उनकी कहानियों में प्रेम आत्मबोध की प्रक्रिया के रूप में उभरता है, जो पात्रों को सामाजिक रूढ़ियों से मुक्त कर उनके आंतरिक संघर्षों से अवगत कराता है। इसी प्रकार, सौंदर्य की उनकी अवधारणा केवल शारीरिक आकर्षण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि आंतरिक गुणों, बुद्धिमत्ता, संवेदनशीलता और आत्म-स्वीकृति को सौंदर्य का वास्तविक रूप मानती है। उनकी नायिकाएँ समाज द्वारा बनाए गए सौंदर्य के मानकों को अस्वीकार कर आत्मनिर्भरता और आत्मसम्मान के नए प्रतिमान स्थापित करती हैं। राजी सेठ की कहानियाँ प्रेम और सौंदर्य को सामाजिक और सांस्कृतिक बदलाव का माध्यम बनाती हैं। वे यह दर्शाती हैं कि प्रेम केवल व्यक्तिगत भावनाओं तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक संरचनाओं को प्रभावित करने वाला तत्व भी है। इसी तरह, सौंदर्य का वास्तविक स्वरूप व्यक्ति की आंतरिक विशेषताओं में निहित होता है, न कि बाहरी रूप-रंग में। उनका साहित्य हिंदी कथा जगत को एक नई दृष्टि प्रदान करता है, जो मानवीय संबंधों और अस्तित्ववादी चिंतन की गहराई को नए संदर्भों में प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची

1. सेठ, राजी. (1998). *एक ठांव कहीं*. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
2. सेठ, राजी. (2001). *सात फेरे*. मुंबई: वाणी प्रकाशन.
3. सेठ, राजी. (2000). *आत्मकथा*. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.
4. सेठ, राजी. (1998). *सपनों की कोई सीमा नहीं*. दिल्ली: वाणी प्रकाशन.
5. शर्मा, अर्चना. (2020). "राजी सेठ के साहित्य में सामाजिक विद्रोह." *हिंदी साहित्य समीक्षा*.
6. पांडेय, सुधीर. (2019). "प्रेम और आत्मनिरीक्षण: राजी सेठ की कहानियों का अध्ययन." *भारतीय साहित्य जर्नल*.
7. फ्रॉयड, सिगमंड. (1923). *द इगो एंड द इड*.

   युंग, कार्ल. (1968). *मैन एंड हिज सिंबल्स*.

*****

 ISSN-2321-1504Naagfani RNINO.-UTTHIN/2010/34408

वैदिक प्रकृति और पर्यावरण मीमांसा

शुभम केशरी
(शोधछात्र),
डॉ. श्रुतिकान्त पाण्डेय (सहायकाचार्य),
एमिटी इंस्टीट्यूट फॉर संस्कृत स्टडीज़ एण्ड रिसर्च,
एमिटी विश्वविद्यालय, उत्तरप्रदेश, नोएडा।

शोधसारांश – वैदिक साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण के प्रति गहन संवेदनशीलता प्रदर्शित होती है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और अथर्ववेद में प्रकृति को दिव्यता का प्रतीक मानते हुए इसकी सुरक्षा और संतुलन बनाए रखने का उपदेश दिया गया है। इन ग्रंथों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, और आकाश को "पञ्चमहाभूत" के रूप में वर्णित किया गया है, जो सृष्टि के मूलभूत तत्व हैं। वैदिक ऋषियों ने पर्यावरणीय संतुलन को धार्मिक और नैतिक कर्तव्य माना।

ऋग्वेद में पृथ्वी को 'माता' और आकाश को 'पिता' कहा गया है, जो प्रकृति के प्रति मातृवत् स्नेह और संरक्षण की भावना को उजागर करता है। यजुर्वेद में यज्ञों के माध्यम से पर्यावरण को शुद्ध रखने की विधियां दी गई हैं। सामवेद में प्राकृतिक तत्वों के साथ सामंजस्य स्थापित करने की प्रेरणा है, जबकि अथर्ववेद में औषधियों, वनस्पतियों, और जल स्रोतों के संरक्षण की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

वैदिक साहित्य में मानव को प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व का संदेश दिया गया है। यह स्पष्ट किया गया है कि प्रकृति का अतिक्रमण करने से पर्यावरणीय असंतुलन उत्पन्न होता है, जो विनाश का कारण बनता है। पर्यावरणीय समस्याओं के समाधान हेतु वैदिक दृष्टिकोण में पुन: प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करने पर बल दिया गया है।

इस शोध में वैदिक साहित्य में निहित पर्यावरणीय संदेशों का अध्ययन करते हुए आधुनिक समय में उनकी प्रासंगिकता पर चर्चा की गई है। यह शोध स्पष्ट करता है कि वैदिक विचारधारा केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि वैज्ञानिक और पर्यावरणीय दृष्टिकोण से भी महत्त्वपूर्ण है।

कूटशब्द - वैदिक पर्यावरण, प्रकृति संरक्षण, पञ्चमहाभूत, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, यज्ञ, सह-अस्तित्व, पर्यावरणीय संतुलन, प्राकृतिक संसाधन, प्रदूषण नियंत्रण, पुनः चक्रण, आध्यात्मिकता, स्थिर विकास।

विषयप्रविष्टि - संस्कृत वाङ्मय विश्व की अमूल्य निधि है। जिसमें विविध प्रकार का ज्ञान-विज्ञान स्थित है। इस अमूल्य निधि की प्रासंगिकता वर्तमान समय में भी उतनी ही है, जितनी की प्राचीनकाल में थी, अपितु और अधिक दृष्टिगत होती है। संस्कृत वाङ्मय में 'प्रकृति' शब्द कों अनेक अर्थो में दृष्टिगत किया जा सकता है। जिसका प्रयोग प्रायः माया, कारण, प्रजा और स्वभाव के अर्थ में देखा जाता है। पाश्चात्य विद्वानों ने प्रकृति या 'नेचर' शब्द का प्रयोग स्वरूप अर्थ में भी किया है।

प्र उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर प्रकृति शब्द का निर्माण होता है, जिसके आधार पर अर्थ होगा कि **'प्रकर्षेण सृष्ट्यादिकं करोतीति प्रकृतिः'** अर्थात् सृष्टि के करने में जो प्रकृष्ट हो। वह प्रकृति कहलाती है।

इस प्रकार प्रकृति के संरक्षण में पर्यावरण का विशेष योगदान है। जहॉ-जहॉ प्रकृति शब्द का प्रयोग होगा वहॉ-वहॉ स्वतः ही पर्यावरण शब्द आ जायेगा।

पर्यावरण शब्द 'परि' और 'आङ्' उपसर्ग पूर्वक 'वृत्त आच्छादने' धातु से ल्युट् प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।

'परि' का अर्थ है चारों ओर से, 'आङ्' का अर्थ है मर्यादा अथवा अभिविधि या सब प्रकार से, सब ओर से तथा 'वृत्त' धातु का अर्थ है वरण करना। इस प्रकार पूर्ण शब्द पर्यावरण का अर्थ होगा कि जो चारों ओर से आच्छादित करता है, आच्छादित किया जाता है। **'परित आव्रियन्ते आच्छान्द्यन्ते जलादीनि पंचतत्त्वानि सामाजिक-नैतिक-विचाराः वा यस्मिन् तत् पर्यावरणम्'** अर्थात् जिसमें चारों ओर से आकाश, जल, वायु आदि पंचतत्त्व अथवा सामाजिक, नैतिक आदि विषयों से सम्बन्धित विचार आवृत्त रहते हैं उसे पर्यावरण कहतें हैं। हमारे शरीर की सृष्टि पंचमहाभूतों के संतुलन से हुई है। इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि भी इन्हीं से हुई है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश मिलकर पंचमहाभूत है। जो इस प्रकृति में व्याप्त है।

'प्रकृति' से तात्पर्य हमारे चारों ओर के पर्यावरण से है। पर्यावरण का सीधा अर्थ है-'प्राकृतिक वातावरण'। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इसके प्रमुख तत्त्व हैं। ये पॉचों ही मिलकर या पृथक् रूप से हमारे पर्यावरण का निर्माण करते हैं। इसीलिए वेदों में इन पॉचों तत्त्वों को देवता के रूप में प्रतिष्ठापित करके इनकी महिमा का वर्णन अनेक सूक्तों व मन्त्रों में किया गया है, जिनसे सुस्पष्ट होता है कि पर्यावरण के इन घटक तत्त्वों पंचमहाभूतों का मानव-कल्याण के लिए कितना महत्त्व है। वेदों में प्राणियों और प्रकृति के मध्य अटूट सम्बन्ध को बहुत महत्त्व दिया गया है।

ऋग्वेद में पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश का विस्तृत विवेचनात्मक विश्लेषण किया गया है और इस बात पर बल दिया गया है कि इस भू-मण्डल पर जीवन को, चाहे वह जरायुज, अण्डज, उद्भिज अथवा स्वेदज किसी भी प्रकार का क्यों न हो उन्हें इन्हीं पंचमहाभूतों से बल मिलता है।

सांख्य के अनंसार संसार की रचना प्रकृति से हुई है। अर्थात् संसार की रचना करने वाली मूलभूत प्रकृति ही है जो किसी भी तत्त्व की कार्य अर्थात् विकृति नही है। अपितु वह समस्त संसार की कारण अर्थात् अविकृति ही है। जिससे समस्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं। [1]

जब हम विश्व के मूल कारण की खोज करते हैं तो ज्ञात होता है कि विश्व में दो प्रकार की वस्तुएं हैं। स्थूल पदार्थ और सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थ। स्थूल पदार्थ से तात्पर्य मिट्टी, पानी, वायु से है और सूक्ष्मातिसूक्ष्म पदार्थो का तात्पर्य इन्द्रिय, मन और अहंकार आदि से है। विश्व का मूल कारण वही हो सकता है जो इन दोनों प्रकार के पदार्थो को आधार दे सकें। अतः प्रकृति ही वह मूलकारण है जिससे ये दोनों प्रकार के पदार्थ उत्पन्न हो सकतें है। किंतु वर्तमान प्रसंग में प्रकृति से तात्पर्य भौतिक वातावरण से है। यथार्थता में पर्यावरण पृथ्वी पर वह परिवृत्त है जो मानव को चारों ओर से घेरे हुए है। जिसे चतुर्दिक की संज्ञा से भी अभिहित किया जा सकता है। आदि मानव के चतुर्दिक का एक भाग होने के कारण प्राकृतिक या मानवीय वातावरण में कोई अन्तर नहीं किया गया है। इस प्रकार पर्यावरण के शब्द जाल में मनुष्य तथा बाहर के समस्त तत्त्व वस्तुओं, स्थितियों तथा दशाओं को सम्मिलित करते हैं। जिनका प्रभाव मनुष्य के समस्त विकास पर सतत् पड़ता है। वातावरण का शब्दार्थ पारिस्थितिक कारकों का योग अर्थात् जीवन की परिस्थितियों के समग्र तथ्य हैं।

भारतीय दर्शन में प्रकृति का स्वरूप वर्तमान प्रसंग से भिन्न है। दर्शन के अनुसार प्रकृति एक तत्त्व का नाम है। जिसके विषय में विशद् विचार किया गया है सांख्य दर्शन में पुरुष की भांति ही प्रकृति एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। जहॉं कारण के लिए प्रकृति और कार्य के लिए विकृति शब्द का प्रयोग हुआ है। इसलिए सांख्याचार्य ईश्वर कृष्ण ने सृष्टि की आदि कारण भूता प्रकृति के लिए मूल प्रकृति तथा अविकृति शब्द का प्रयोग किया है।

सांख्य दर्शन में इसी प्रकृति तत्त्व से शेष 23 तत्त्वों की उत्पत्ति मानी गयी है आचार्य वाचस्पति मिश्र इसको सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीन गुणों की साम्यावस्था बतलाते है। साम्यावस्था में प्रकृति में सरूपपरिणाम सतत् रूप से चलता रहता है। प्रकृति इस समय भी निरन्तर सक्रिय होती है किन्तु इस समय सत्त्व, रजस् और तमस् गुण अपने-अपने भीतर ही क्रियाशील रहते हैं। यह अवस्था तब बदलती है जब पुरुष की सन्निधि के कारण गुणक्षोभ होता है। इससे सर्वप्रथम रजस् गुण गतिशील होता है और तदुपरान्त तीनों गुण एक-दूसरे के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया करते हैं। [2] यही विरूपपरिणाम है जो सृष्टि के लिए उत्तरदायी है। इसी के कारण विश्व की सभी वस्तुओं का निर्माण होता है और उनकी प्रवृत्ति भी उनमें विद्यमान गुणों के अनुपात से निर्धारित होती है। [3]

दार्शनिक परम्परा से भिन्न वर्तमान समय में प्रकृति अभिप्राय पर्यावरण से है। जो हमारे चारों ओर फैला हुआ है। चतुर्दिक व्याप्त यह वातावरण प्राकृतिक दशाओं का मिला-जुला रूप है, जो धरातल तत्त्व भूगोल, भूगर्भ, जलवायु, अग्नि, तथा व्योम अर्थात् आकाश से निर्मित है। इन सभी लक्षणों का प्रभाव मानव की समस्त गतिविधियों पर ही नहीं अपितु पशु-पक्षी, पेड़-पौधों पर भी परिलक्षित होता है। इस प्रकार ये सभी प्रकृति प्रदत्त शक्तियॉं प्राकृतिक वातावरण या पर्यावरण का निर्माण करती है।

सभी प्राणी प्रकृति के पर्यावरण में रहते हुए भी अपना जीवन यापन करते हैं। उक्त प्राकृतिक पर्यावरण सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिवेश का निर्माण करता है। अतः विभिन्न क्षेत्रों में मानव समूह विभिन्न क्रियाओं द्वारा अपनी अलग संस्कृति व समाज का निर्माण करता है। इसीलिए पृथिवी सूक्त में कहा गया है कि **'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'**[4] अर्थात् भूमि मेरी माता है और मैं इसका पुत्र।

प्रकृति एक व्यापक स्वरूप को धारण किये हुए है। पृथिवी पर पाए जाने वाले वृक्ष, नदी, तालाब, सरोवर, पशु-पक्षी, पवन, मेघ आदि चर-अचर, जड़-चेतन सभी प्रकृति के ऐसे अंग व उपांग हैं जो सभी प्राणियों के पोषक एवं रक्षक है।

अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त में पर्यावरण के प्रमुख घटक तत्त्व पृथ्वी की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस मातृभूमि पर समुद्र, अनेक नदियॉं, झरने, झील, ताल-तलैया आदि हैं, जिस पर अन्न आदि नाना प्रकार की कृषि होती है, जिस पर यह जीता-जागता, चलता-फिरता संसार अन्न-जल ग्रहण कर तृप्त होता है और प्राण धारण करता है वह भूमि हमें समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें।[5]

ऋग्वेद के वातसूक्त में वायु से दीर्घ जीवन की प्रार्थना करते हुए उसे हृदय के लिए परम औषधि, कल्याणकारी तथा आनन्ददायक माना गया है। [6] वायु की भॉंति ही जल भी प्राणियों के प्राण धारण के लिए अत्यावश्यक है। जल मल नाशक, शरीर शोधक तथा बलवर्धक भी है। वेद ने इसे औषधि तुल्य तथा रोगों का नाश करने वाला बताया है।[7] वेद में गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, असिम्न्या, मरूद्दा, वितस्ता आदि नामों को भरतखण्ड की प्रसिद्ध नदियों के अर्थ में लिया गया है।[8] इन नदियों को आचार्य यास्क ने

इस प्रकार से व्यक्त किया है कि 'गंगा-गमनात् अर्थात् गमनशील नदी को गंगा।[9] अन्य नदी में मिलने वाली (युमिश्रणे) होने से नदी को यमुना कहा जाता है। प्रचुर जल वाली नदी सरस्वती, क्षिप्र गति से चलने वाली नदी को शुतुद्रि तथा विविध प्रकार से गति करने वाली नदी को विपाशा कहा जाता है। बाद में इन्हीं नदीयों को गंगा, यमुना, सतलुज, व्यास आदि विशिष्ट नदियों को दे दिये गये।

संसार को सुरक्षित रखने के लिए प्रकृति एवं मानव के बीच संतुलन आवश्यक है। प्राकृतिक व्यवस्था ही पर्यावरण है। पर्यावरण की शुद्धता जीवनदायिनी शक्ति है। पर्यावरण के शुद्ध होने पर रोगी स्वस्थ हो जाते हैं और अशुद्ध होने पर स्वस्थ प्राणी भी रोगी हो जाते हैं। क्योंकि ऋग्वेद में प्रार्थना की गई है कि 'हे स्वास्थ्यप्रद वायु, आप हमारे लिए स्वास्थ्य प्रदान करने वाली औषधियों को लाए। जो रोग हैं, उन्हें दूर करो। सत्य ही आप रोगनाशक औषधि के समान है, इसलिए आप दिव्य गुणों वाले देवों के इष्ट कहलाने के सर्वथा योग्य है'।[10] मनुष्य प्राकृतिक पर्यावरण से ही पोषित एवं पालित है। मानव-जीवन के विकास के सभी गुण प्रकृति में पहले ही विद्यमान है। पर्यावरण की शुद्धता के लिए प्रकृति के साथ मिल कर चलना अनिवार्य है।

अथर्ववेद के पृथिवी-सूक्त में पर्यावरण के प्रमुख घटक तत्त्व पृथ्वी की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिस मातृभूमि पर समुद्र, अनेक नद, नदियॉ, झरने, झील, ताल आदि हैं, जिस पर अन्न आदि नाना प्रकार की खेती होती है, जिस पर यह जीता-जागता, चलता-फिरता संसार अन्न-जल ग्रहण कर तृप्त होता है और प्राण धारण करता है वह भूमि हमें समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें।[11] ऋग्वेद में वायु को जल का मित्र, सबसे पहले उत्पन्न हुआ और सत्य नियमों का नियमित रूप से पालन करने वाला बतलाया गया है।[12] संसार के समस्त जीवों के लिए प्राणवायु की नितान्त आवश्यकता है। वायु के बिना जीवन सम्भव ही नहीं है, इसलिए हमारे वैदिक ऋषियों ने हवन आदि के द्वारा वायु की शुद्धता बनाये रखने की अनेक मन्त्रों में प्रार्थना की है। इसी प्रकार वेदों में जल के पर्यावरण सम्बन्धी महत्त्व को भी विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। जल ही जगत् की प्रतिष्ठा है। [13] क्योंकि जल के बिना जीवन असंभव है, जल सभी औषधियों वाला है। [14]

वेदों में मानव तथा नदी की पारस्परिकता का वर्णन करते हुए नदी को सम्पूर्ण चराचर जगत् की माता के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है।[15] मातृरूपा नदियों के प्रति यह श्रद्धाभाव जल संसाधनों को शुद्ध रखने का सर्वोत्तम प्रभावी उपाय प्रतीत होता है।

वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक शक्तियों को दिव्य एवं उपास्य माना है। आचार्य यास्क ने देव शब्द का निर्वचन इस प्रकार किया है यथा- **'देवो दानाद्वा दिपनाद्वा द्योतनाद्वा'** [16]इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो दान दें, प्रकाशित हो या प्रकाशित करें वे देवता हैं। प्रकृति मानव को अन्न, जल, वायु, प्रकाश, ऊर्जा, आवास, आवरण आदि सभी कुछ प्रदान करती है, अतः प्रकृति का देवत्व सर्वथा सार्थक है। वैदिक मंत्रों में इन्द्र, अग्नि, वरुण, सूर्य, मरुत, वात, पर्जन्य, सरित, अपस्, पृथ्वी आदि देवताओं की स्तुति करके सहायता एवं सम्पन्नता की कामना की गई है। वेदों में प्रकृति की अनुकूलता हेतु प्रार्थना करके उसके वास्तविक महत्त्व को प्रकट किया गया है, क्योंकि प्राकृतिक शक्तियों के प्रतिकूल होने पर मानव-जीवन एवं उसकी सुख-स्मृद्धि असम्भव है। वेदों में समस्त वनस्पति जगत् में किसी न किसी देवता का वास मानकर उनके दिव्य-गुणों को भी प्रकट किया गया है। अथर्ववेद के पृथिवी सूक्त के मन्त्रों में कहा गया है कि इस पृथिवी पर पवित्र जल की धारा है, प्राणदायिनी औषधियॉ हैं, वन हैं, पर्वत हैं, सागर हैं। [17]साथ ही पृथिवी सूक्त में पर्यावरण की समस्या और उसके समाधान की ओर भी स्पष्ट संकेत किया गया है। जिसमें कहा गया है कि जमीन पर खेती करने से उसको हम कमजोर करते हैं और उसके अन्दर के तत्त्वों का उपयोग करते हैं जिनकी पूर्ति यदि न हो तो एक ऐसा असन्तुलन उत्पन्न होगा जो प्राणि-मात्र के लिए हानिकारक होगा।

वस्तुतः प्राकृतिक तत्त्वों की अपरिहार्य महिमा का निरुपण वेदों की प्रकृति उपासना को सारवान् बनाता है। वैदिक बहुदेववाद विभिन्न प्राकृतिक तत्त्वों के सापेक्षिक महत्त्व के पर्यावरणीय तथ्य का प्रकारान्तर से प्रतिपादन करता है।

मानव के समान पशु-पक्षी भी ईश्वरीय कृति हैं। ये सभी पर्यावरण के सन्तुलन को बनाये रखने में महत्त्वपूर्ण हैं। यही कारण है कि भू-लोक एवं दिव्य लोक के वन्य पशु, मृग तथा पक्षियों की हिंसा से विरत रहने की भावना भी वेदों में अभिव्यक्त हुई है। [18]

वैदिक काल में मानव प्रकृति के साथ तालमेल रखते हुए अपना जीवनयापन करते थे। प्रातःकाल सभी लोग ऊर्जा के असीमित स्रोत सूर्य देवता के प्रति नमस्कार, अर्घ आदि विविध रीतियों से सम्मान और कृतज्ञता व्यक्त करते थे। सूर्य देवता भूमण्डल का जीवनदाता है, क्योंकि सूर्य की शक्ति और प्रकाश के बिना हमारी पृथ्वी पर किसी भी प्रकार के वन और वनस्पतियों की उत्पत्ति किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। अतः मानव-जीवन की सुख-स्मृद्धि एवं सृष्टि की स्थिति के लिए हमारे मन्त्रदृष्टा ऋषियों ने विविध मन्त्रों के द्वारा सूर्य देवता की स्तुति की है। ऋग्वेद के सूर्य-सूक्त में कहा गया है कि सूर्य मनुष्यों के सभी कृत्यों को देखते हैं। [19] वही संसार को स्थिर रखने वाले एवं जगत् के रक्षक हैं।[20] उसके बिना इस संसार की कल्पना भी नही की जा सकती है। सूर्य स्थावर तथा जंगम जगत् की आत्मा है।[21]

हमारे वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के शान्त और एकान्त वातावरण में जीवन की सफलता और लोक कल्याण के लिए साधना की थी। वे विविध यज्ञादि द्वारा प्राकृतिक वातावरण को शुद्ध करने में तत्पर रहते थे। वन-अन्नादि से परिपूर्ण रहने पर ही मानव-जीवन सुख, स्वास्थ्य, स्मुद्धि अर्जित कर सकता है।

अतः प्रकृति का प्रभाव व्यक्ति की शारीरिक संरचना, स्वास्थ्य और मन पर पड़ता है। पर्यावरण के प्राकृतिक साधन के स्वच्छ व निर्मल होने पर शरीर और मन भी स्वस्थ और निर्मल होते हैं, क्योंकि प्रत्येक जीवन अनुवांशिकीय तथा पर्यावरण का संयुक्त प्रतिफल होता है।

निष्कर्ष – अत: वैदिक साहित्य में प्रकृति और पर्यावरण को धार्मिक, आध्यात्मिक, और वैज्ञानिक दृष्टि से अनन्य महत्त्व दिया गया है। यह अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वैदिक ऋषियों ने हजारों वर्ष पहले ही पर्यावरणीय संकटों का समाधान प्रस्तुत कर दिया था। वैदिक ग्रंथों में वर्णित यज्ञ, मंत्र, और नैतिक आदर्श पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में सहायक सिद्ध होते हैं।

ऋग्वेद में "माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः" के माध्यम से पृथ्वी के प्रति सम्मान और उत्तरदायित्व का बोध कराया गया है। यजुर्वेद में वायु, जल, और पृथ्वी को शुद्ध रखने के उपाय बताए गए हैं। सामवेद में प्रकृति के साथ सामंजस्य का संदेश है, जो आधुनिक स्थिर विकास की अवधारणा के अनुरूप है। अथर्ववेद में औषधीय पौधों और जल स्रोतों के संरक्षण की महत्ता पर बल दिया गया है।

शोध में यह भी पाया गया कि वैदिक संस्कृति में प्रकृति की पूजा केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि वैज्ञानिक सोच का परिचायक है। यज्ञों में प्रयुक्त सामग्री और विधियां पर्यावरणीय प्रदूषण को रोकने का एक व्यवस्थित उपाय थीं।

आधुनिक समय में पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान वैदिक दृष्टिकोण को अपनाकर किया जा सकता है। प्राकृतिक संसाधनों का संतुलित उपयोग, प्रदूषण नियंत्रण, और पुन: चक्रण की अवधारणा वैदिक साहित्य में परिलक्षित होती है। यह शोध मानव और प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व के महत्त्व को समझाने के साथ-साथ पर्यावरणीय संरक्षण हेतु वैदिक सिद्धांतों के अनुपालन पर बल देता है।

शोध में निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि वैदिक साहित्य केवल प्राचीन ज्ञान का स्रोत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की पर्यावरणीय चुनौतियों का समाधान भी प्रदान करता है। इसे आधुनिक संदर्भ में पुन: व्याख्यायित कर पर्यावरणीय संकटों का स्थायी समाधान खोजा जा सकता है।

1. प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारतस्माद् गणश्च षोडशकः। तस्मादपि षोडशकात् पंचभ्यः पंच भूतानि।। सांख्यकारिका 22
2. त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि। सांख्य कारिका 11
3. सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः। महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च।। सांख्यकारिका 8
4. अथर्ववेद 12.1.12
5. यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यान्नं कृष्टयः सम्बभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।। अथर्ववेद 12.1.3
6. वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे। प्राण आयुंषि तारिषत्।। ऋग्वेद 10.186
7. ऋग्वेद 10.137.6
8. ऋग्वेद 10.75.5
9. निरुक्त 9.25
10. आवात वायु भेषजं विवात वाहि यदपः। त्वं हि विश्वभेषणो देवानां दूत ईयसे।। ऋ0 10.137.3
11. यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः सम्बभूवुः। यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु।। अथर्ववेद, पृथ्वी 3
12. अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुतः आ बभूव। ऋग्वेद 10.168
13. आपो वा सर्वस्य जगतः प्रतिष्ठाः। शतपथ0 ब्रा0 6.8.2.2
14. आपश्च विश्वभेषजीः। ऋग्वेद 1.23.20
15. यूयं हि ष्ठा भिषजौ मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः। ऋ0 6.50.7
16. निरुक्त 2.14
17. यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो नाना वीर्या औषधीर्या बिभर्ति। गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु।। अथर्ववेद 12.1 पार्थिवाः दिव्याः पशवः आरण्या उत ये मृगाः।
18. शकुन्तान् पक्षिणो ब्रूमस्ते नो मुंचत्वंहसः।। अथर्ववेद 11.6.8
19. पश्चन् जन्मानि सूर्य । ऋक्0 1.125
20. 'विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा' ऋक्0 1.125
21. चित्रं देवानामुदगादनीकं, चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं, सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।। ऋ0 1.125.1

*****

A COMPREHENSIVE EXAMINATION OF TERRORISM'S HISTORICAL EVOLUTION IN INDIA

Shantanu Mukharji
PhD Scholar,
Noida International University

Prof. (Dr.) Vikram Singh
Chancellor,
Noida International University

-Prof. (Dr.) Aparna Sharma
Director,
School of Liberal Arts, Noida International University

Abstract
Terrorism in India has deep historical roots, shaped by complex socio-political, religious, and economic dynamics over centuries. This paper examines the historical trajectory of terrorism in India, tracing its evolution from colonial times to the modern era. The research delves into the impact of British policies, such as the partition and communal strategies, in sowing the seeds of division and unrest. Post-independence, terrorism emerged as a multifaceted challenge, driven by regional separatist movements, ideological extremism, and cross-border influences, particularly in Punjab, Jammu and Kashmir, and the northeastern states. The study highlights the role of global terrorism networks and geopolitical pressures in exacerbating India's vulnerabilities. By analysing key events, movements, and governmental responses, the paper underscores the interplay of historical grievances, socio-economic disparities, and identity politics in fuelling terrorism. The findings aim to provide a nuanced understanding of the historical context of terrorism in India and its implications for formulating effective counter-terrorism strategies.

Introduction
Terrorism has been a persistent and evolving challenge for India, rooted in its complex socio-political history and shaped by internal and external dynamics. The phenomenon of terrorism in India cannot be understood without examining its historical underpinnings, which reveal a confluence of ideological, regional, and geopolitical factors. From colonial resistance to contemporary separatist and extremist movements, the trajectory of terrorism in India highlights the interplay between historical grievances and modern realities.

Historically, the seeds of organized violence were sown during the colonial period, when British policies of divide and rule exploited communal and regional divides, fostering unrest and division (Kumar & Singh, 2015). The partition of 1947 further deepened societal fissures, leading to mass violence and displacement, the aftershocks of which continue to influence India's socio-political landscape (Roy, 2019). Post-independence, terrorism in India evolved into a multifaceted problem, driven by demands for autonomy, ethnic identity, and religious separatism, particularly in regions like Jammu and Kashmir, Punjab, and the northeastern states (Ahmed, 2018).

Cross-border influences have also played a significant role, with India's geopolitical position making it a target of state-sponsored terrorism from neighbouring countries. As Bose (2020) argues, regional tensions and global terror networks have exacerbated the country's vulnerabilities, necessitating a historical and contextual approach to understanding the roots of terrorism. At the same time, socio-economic disparities and identity politics have further fuelled discontent and created fertile ground for extremist ideologies to take root (Chakraborty & Sharma, 2021).

This paper explores the historical trajectory of terrorism in India, focusing on key events, movements, and policy responses. By situating contemporary challenges within a historical framework, it aims to provide a nuanced understanding of the factors that have shaped terrorism in India and their implications for counter-terrorism strategies. Through this perspective, the study contributes to the growing body of literature on the historical dimensions of terrorism and their relevance to modern security challenges.

Methodology
This research adopts a qualitative and historical approach to examine the evolution of terrorism in India, focusing on its socio-political, economic, and geopolitical dimensions. The study is based on secondary sources, including scholarly articles, historical records, government documents, and reports from international organizations. A critical analysis framework is employed to identify patterns, causes, and consequences of terrorism across various historical periods.

1. **Literature Review** A comprehensive review of existing literature was conducted to establish a foun-

dation for understanding the historical context of terrorism in India. Key scholarly works were analysed to trace the development of terrorism, from colonial resistance movements to contemporary extremism. The literature review included studies such as Kumar & Singh (2015), which examine the colonial roots of communal violence, and Bose (2020), which highlights geopolitical influences on terrorism in modern India.

Historical Analysis

The study employs a historical lens to analyze primary and secondary data, focusing on major events and movements associated with terrorism in India. Historical records, such as those related to the partition of India (Roy, 2019), were examined to understand the socio-political disruptions that contributed to organized violence. Case studies of regional insurgencies, such as those in Jammu and Kashmir, Punjab, and the Northeast, were selected to explore the role of identity politics and separatist ideologies (Ahmed, 2018).

Thematic Analysis

Thematic analysis was used to categorize the data into recurring themes, including colonial policies, post-independence separatist movements, socio-economic disparities, and cross-border influences. This method allowed for an in-depth understanding of how historical grievances and global dynamics have interacted to shape terrorism in India. For instance, Chakraborty & Sharma (2021) provided insights into the socio-economic underpinnings of extremism, which were analysed alongside other sources.

This methodology aims to provide a nuanced and historically grounded understanding of terrorism in India. The findings are expected to contribute to the academic discourse on terrorism and inform policy-making by offering insights into the historical roots of contemporary challenges.

Analysis

Terrorism in India has evolved over centuries, shaped by a myriad of socio-political, economic, and geopolitical factors. This analysis employs a historical lens to examine how colonial policies, post-independence challenges, and global dynamics have contributed to terrorism in India. By exploring recurring themes through a critical and comparative framework, the study reveals the complex interplay of historical grievances, regional aspirations, and external influences in fostering terrorism.

Colonial Legacies and the Origins of Organized Violence

The colonial period marked the genesis of many of the divisions that later fuelled terrorism in India. The British administration's "divide and rule" strategy exploited India's religious and ethnic diversity to maintain control. As Kumar & Singh (2015) argue, policies such as separate electorates for Muslims and Hindus institutionalized communal divisions, sowing the seeds of mistrust that would later escalate into organized violence.

The partition of Bengal in 1905 is a case in point. While officially justified as an administrative necessity, the division was strategically designed to weaken nationalist movements by fostering Hindu-Muslim discord. The consequences of such policies became starkly evident during the partition of India in 1947, which witnessed unprecedented communal violence. As Roy (2019) notes, the partition displaced nearly 15 million people, with over a million killed in riots and massacres. This traumatic event not only solidified communal identities but also set a precedent for violence as a means of asserting group interests.

The colonial era also saw the emergence of early forms of organized resistance, which the British labelled as "terrorism." Groups like the Anushilan Samiti and the Hindustan Socialist Republican Association (HSRA) adopted militant tactics to challenge British rule. While their actions were driven by anti-colonial sentiments, they laid the groundwork for the use of violence as a political tool, a legacy that would influence post-independence movements (Chakraborty & Sharma, 2021).

Post-Independence Challenges and the Rise of Regional Insurgencies

The transition to independence brought new challenges, as the nascent Indian state grappled with regional aspirations, identity politics, and socio-economic disparities. These issues manifested in the form of regional insurgencies, many of which employed terrorism as a strategy to achieve their objectives.

The Northeast: Ethnic Identity and Autonomy Movements

The Northeast region, home to a diverse array of ethnic groups, has long been a hotspot for insurgency. Movements such as the Naga National Council (NNC) and later the National Socialist Council of Nagaland (NSCN) were driven by demands for autonomy and recognition of ethnic identities. Ahmed (2018) highlights how historical neglect and cultural marginalization by the central government fuelled

resentment among these communities.

The insurgency in Assam, led by groups like the United Liberation Front of Asom (ULFA), was similarly rooted in grievances over resource exploitation and demographic changes. These movements often resorted to terror tactics, including bombings and kidnappings, to draw attention to their demands. The failure of the state to address these issues holistically has perpetuated a cycle of violence in the region.

Punjab: The Khalistan Movement

The Khalistan movement in Punjab during the 1980s represents a stark example of how religious identity can be mobilized for political ends. Initially a demand for greater federal autonomy, the movement escalated into a violent separatist struggle following the militarization of Sikh identity. Bose (2020) observes that Operation Blue Star, the Indian Army's assault on the Golden Temple, was a turning point that intensified Sikh alienation and radicalized sections of the community.

The assassination of Prime Minister Indira Gandhi by her Sikh bodyguards in 1984 and the subsequent anti-Sikh riots further deepened the divide. This period of violence underscored the dangers of heavy-handed state responses and the need for more nuanced approaches to conflict resolution.

Jammu and Kashmir: A Geopolitical Flashpoint

The insurgency in Jammu and Kashmir, which began in the late 1980s, is perhaps the most enduring and complex example of terrorism in India. Rooted in historical grievances over the region's accession to India and exacerbated by political mismanagement, the conflict was further fueled by cross-border interference from Pakistan. Chakraborty & Sharma (2021) emphasize the role of Pakistan-backed militant groups like Lashkar-e-Taiba (LeT) and Jaish-e-Mohammed (JeM) in sustaining the insurgency.

High-profile attacks, such as the 2001 Indian Parliament attack and the 2019 Pulwama bombing, highlight the geopolitical dimensions of the conflict. These incidents have not only strained India-Pakistan relations but have also drawn international attention to the challenges of counter-terrorism in the region.

Socio-Economic Disparities and Extremism

Socio-economic disparities have been a significant driver of terrorism in India, particularly in regions like central India, where the Maoist insurgency is active. Often referred to as Naxalism, this movement emerged in the 1960s as a response to landlessness, poverty, and the exploitation of tribal communities. Ahmed (2018) argues that the failure of successive governments to address these structural issues has allowed Maoist groups to position themselves as champions of the marginalized.

The Maoist strategy of targeting state infrastructure, such as schools and communication networks, reflects their broader goal of undermining state authority. However, as Chakraborty & Sharma (2021) note, the lack of effective governance in these regions has made it difficult to implement development programs, perpetuating the cycle of violence.

Urban terrorism, often linked to Islamist groups, has also been influenced by socio-economic factors. The 1993 Bombay bombings, orchestrated in response to the Babri Masjid demolition and subsequent communal riots, underscored the alienation of marginalized communities in urban centers. This incident highlighted the intersection of economic disparities and communal tensions in fostering extremism.

Cross-Border Influences and Geopolitics

India's geopolitical position has made it a target for cross-border terrorism, particularly from Pakistan and China. The Pakistan-backed insurgency in Jammu and Kashmir is the most prominent example, with militant groups receiving logistical and financial support from across the border (Bose, 2020).

China's role in supporting insurgent groups in the Northeast during the Cold War further complicated India's security landscape. Kumar & Singh (2015) highlight how external powers have historically exploited India's internal vulnerabilities to advance their strategic interests.

In recent years, the rise of global terror networks like Al-Qaeda and the Islamic State has added a new dimension to India's terrorism challenges. Radicalization through online propaganda and the recruitment of Indian youth into global jihadist movements have emerged as significant threats.

Government Responses and Their Consequences

The Indian state's responses to terrorism have varied over time, ranging from military operations to development initiatives. While some measures have been effective, others have inadvertently fueled the problem. For instance, the heavy militarization of Jammu and Kashmir has been criticized for alienating the local population and exacerbating grievances (Ahmed, 2018). Similarly, Operation Blue Star, though aimed at quelling the Khalistan movement, is widely regard-

ed as a miscalculation that deepened the crisis (Roy, 2019).

On the other hand, initiatives such as the surrender and rehabilitation policies for former militants have shown promise in reducing violence. Development programs targeting marginalized regions, such as the Northeast and Maoist-affected areas, have also contributed to mitigating the socio-economic causes of terrorism (Chakraborty & Sharma, 2021). However, the success of these measures depends on their consistent implementation and the inclusion of affected communities in the decision-making process.

Comparative Analysis of Regional Movements

A comparative analysis of regional movements reveals both commonalities and unique factors driving terrorism in India. For example, while the Khalistan movement and the insurgency in Jammu and Kashmir share religious underpinnings, their origins and trajectories differ significantly. The former was rooted in political demands for federal autonomy, whereas the latter has been shaped by historical grievances and cross-border dynamics (Bose, 2020). Similarly, the Maoist insurgency and the Northeast's ethnic movements, though driven by socio-economic factors, differ in their methods and objectives. While Maoist groups aim to overthrow the state and establish a communist regime, the Northeast's movements are primarily focused on preserving ethnic identities and securing regional autonomy (Ahmed, 2018).

Conclusion

The historical perspective of terrorism in India highlights the multifaceted nature of the challenge, shaped by colonial legacies, regional aspirations, socio-economic inequalities, and geopolitical pressures. A thematic analysis of terrorism in India reveals recurring patterns, including the role of historical grievances, identity politics, and socio-economic inequalities. The colonial legacy of communal divisions continues to influence contemporary conflicts, as seen in the communal riots that often serve as precursors to acts of terrorism.

Identity politics has been another consistent theme, with religious, ethnic, and linguistic identities often at the centre of terrorist movements. Whether it is the demand for Khalistan in Punjab or the insurgencies in the Northeast, identity has been a powerful mobilizing force.

Socio-economic inequalities, particularly in regions with high levels of poverty and marginalization, have also played a significant role. The Maoist insurgency and urban terrorism highlight the need to address structural inequalities as part of counter-terrorism efforts.

By examining the interplay of these factors, this analysis underscores the importance of adopting a nuanced and context-specific approach to counterterrorism. The findings suggest that addressing the root causes of terrorism, such as marginalization and external interference, is essential for achieving long-term stability and security in India.

References:

Ahmed, A. (2018). *The roots of insurgency in India: An analysis of separatist movements*. Journal of South Asian Studies, 25(4), 345–360.

Bose, S. (2020). *Geopolitics and terrorism: Examining India's challenges in a global context*. International Journal of Security Studies, 12 (3), 214–229.

Chakraborty, R., & Sharma, P. (2021). *Socio-economic inequalities and the rise of extremism in India: A historical perspective*. Economic and Political Review, 36(7), 89–102.

Kumar, R., & Singh, M. (2015). *Colonial policies and the seeds of communal violence in India*. Historical Review of South Asia, 18(2), 134–148.

Roy, A. (2019). *The partition of India and its impact on communal relations: A historical analysis*. Journal of Modern Asian History, 14(1), 57–73.

****

शोधालेख प्रकाशन के मानक

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

UGC CARE LISTED हिन्दी की स्तरीय पत्रिका 'नागफनी' के जो सदस्य हैं उनका ही आलेख प्रकाशित होगा। जो भी व्यक्ति शोधालेख भेजना चाहते हैं कृपया वें अपने लेख में निम्न बिंदु आवश्यक रूप से रखें जैसे–

1. भूमिका/प्रस्तावना 2. विषय वस्तु/बीज शब्द 3. मुख्य अंश/उद्देश्य
4. परिणाम/निष्कर्ष 5. सन्दर्भ
6. शब्द मर्यादा अधिकतम शब्द 3000 इससे ज्यादा शब्द है तो कार्यकारी संपादक से परामर्श कीजिएगा।
7. सत्यापन एवं सहमति पत्र देने पर ही आलेख के सम्बन्ध में निर्णय होगा।

सत्यापन प्रमाण–पत्र

1. मैं ....सत्यापित करता/करती हूँ की 'नागफनी' के लिए प्रस्तुत शोधालेख शीर्षक................मौलिक एवं अप्रकाशित है। लेखन संबंधित सारे संदर्भ सत्य हैं। किसी भी अंश के विवादित स्थिति के लिए मैं स्वयं जिम्मेदार रहूँगा/रहूँगी। साथ ही प्रस्तुत शोधालेख में नागफनी के पीयर रिव्यू कमेटी को संशोधन संपादन और संवर्धन करने की सहमति जताता/जताती हूँ।

2. शोधालेख प्रकाशित–अप्रकाशित करने का पूर्ण अधिकार सम्पादक मंडल और पीयर रिव्यू कमेटी का है। स्तरीय एवं मौलिकता आदि के परीक्षण के बाद ही शोधालेख की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा, मुझे मान्य होगा। उपरोक्त नियम और शर्तों को मैं स्वीकार करता/करती हूँ।

हस्ताक्षर–
नाम–
मोबाइल नंबर–

व्यक्तिगत पंचवार्षिक सदस्यता लेने पर पांच साल तक पत्रिका मिलेगी। शोधालेख प्रकाशन की स्वीकृति/अस्वीकृति का जो भी निर्णय होगा वह आपको मेल से ही सूचित किया जाएगा। इसको लेकर संपर्क करने की आवश्यकता नहीं हैं।

STANDARD NORMS FOR AUTHORS

Nagfani, the U.G.C. Care listed journal publishes articles, research papers etc. written by the members of journals only. The manuscripts should contain the following:

1. Abstract with keywords 2. Objectives 3. Conclusions
4. References 5. Word limit is 3000 (For higher limits, please contact the editor)

I__________ certify/undertake to say that the manuscript entitled__________submitted for publication in the NAGFANI issue is an unpublished original work. I know that I will be fully responsible for any controversial situation arising out of the manuscript/article or part of it. I also transfer the rights to edit, review and conserve the manuscript to the peer review committee of NAGFANI.

Signature of the author:
Mobile No:

अधिक जानकारी के लिए वेबसाइट देखिए http%//naagfani.com

रोमी प्रेस बैढ़न / 9425179103